Kalā ke praṇetā

Śaci Rānī Gurtu.

India Publishing House

कला के प्रणेता

शचीरानी गुर्टू

संघमित्रा—नंदलाल बसु

इण्डिया पब्लिशिंग हाउस

प्रमुख कार्यालय
कामदार चेम्बर
ईस्ट सिम्रोन, बंबई-२२
दूरभाष : ४७३८०६

शाखा कार्यालय
३०-बी० प्रह्लाद मार्केट
करौलबाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६३२८२

प्रकाशक :

इंडिया पब्लिशिंग हाउस

प्रमुख कार्यालय
कामदार चेम्बर
ईस्ट सिम्रोन, बंबई-२२
दूरभाष : ४७३८०६

शाखा कार्यालय
५-ए, प्रह्लाद मार्केट
करौल बाग, नई दिल्ली-५
दूरभाष : ५६३२८२

१६६६ ई०

मूल्य :
चालीस रुपये

मुद्रक :
डिलाइट प्रेस, चूड़ीवालान
दिल्ली-६

नटीर नृत्य

—नंदलाल वसु

निवेदन

प्रस्तुत पुस्तक लिखने के दौरान जब एक सुप्रसिद्ध कलाकार से भेंट हुई तो अचानक वे मुझसे ही प्रश्न कर बैठे—'क्या आप खुद भी चित्र बनाती हैं ?' सुनकर कुछ अचकचा-सी गई। अपने स्कूली जीवन में ड्राइंग तो सीखी थी, पर पेंटिंग सचमुच मैंने कभी नहीं बनाई। हाँ—इधर कुछ वर्षों से साहित्य-समीक्षा के समानान्तर कला-समीक्षा का शौक़ तब जगा जब मैं प्रमुख कलाकारों पर स्फुट लेख लिख रही थी। चित्रों को देखकर उनके सूक्ष्म सौंदर्य में पैठने की चेष्टा करती रही हूँ, पर 'एब्स्ट्रैक्ट आर्ट' अथवा अत्याधुनिक शैली के ऊटपटाँग चित्रण में अभी तक मेरी बुद्धि धँस नहीं पाती।

समय परिवर्त्तनशील है और विकास अवश्यंभावी। आज कला के पैमाने बड़ी तेजी से बदलते जा रहे हैं। आगे बढ़ने की इस प्रवृत्ति को भला कैसे नकारा जा सकता है, पर जैसा कि किसी ने कहा है कला सौंदर्यानुभूति का अभिव्यक्तीकरण है। वाद या नियम केवल फार्मूले गढ़ते हैं जिनमें साँचे तो ढल सकते हैं, पर कला नहीं।

दरअसल, हमारे नये किंवा 'माडर्न' कलाकारों में मौलिकता का अभाव है। अनुकरण की प्रवृत्ति उन पर हावी है। दूसरे देशों की जूठन को पचा सकने की क्षमता उनमें होनी चाहिए और वह भी भारतीयता के परिप्रेक्ष्य में। तभी वे कुछ हद तक सफल हो सकते हैं।

फिर भी निर्विवाद है कि नये-पुराने जो साधनशील हैं, उनके प्रयास अभिनंदनीय हैं। तत्सम्बन्धी सामग्री जो मैं जुटा सकी उसे सामने रखने की धृष्टता की है। सम्भव है—कुछ तथ्य छूट गए हों अथवा कुछ उल्लेख्य कलाकारों पर न लिखा जा सका हो उनसे क्षमा-याचना करते हुए जो इस सन्दर्भ में जानकारी देंगे उसे आगामी संस्करण में ले लिया जाएगा।

नई दिल्ली
जनवरी, १९६९

शचीरानी गुर्टू

अनुक्रम

कलकत्ता ग्रुप १८६

बहु प्रवृत्तियों के कलाकार

दिल्ली के कलाकार

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार ५०६

राजस्थान के कलाकार ५१४

मंगल यात्रा

कलाकार :
अमितकुमार
हालदार

कला के प्रणेता

कला की अभिनव प्रवृत्तियाँ

उन्नीसवी शती तक समयाश्रित मान्य कला-शैलियों के माध्यम से भारतीय चित्रकला की परम्परा विभिन्न रूपों में विकसित होती रही। किन्तु मुग़ल-कला, राजस्थानी चित्र-शैली और हिमाचल कला के पश्चात् भारतीय कला के सहज क्रम में गतिरोध-सा उत्पन्न हो गया था। विदेशी शासन की चकाचौंध और नवीन संघर्षों ने हमारी हर चीज को बेगाना-सा बना दिया। विलायती चित्रों की भद्दी नकल ने यहाँ के धनिकों और नवाबों को आकृष्ट किया, और अपनी कला-निधियों को वे सर्वथा उपेक्षित कर बैठे। राष्ट्रीय जागृति न इस अन्ध तमस को भेद कर शीघ्र ही नवालोक का दर्शन कराया, यद्यपि काफ़ी अर्से तक पाश्चात्य कला-प्रणालियाँ यहाँ मौलिक कला-सर्जना को आक्रान्त किये रहीं। अंग्रेज़ी शिक्षा-प्राप्त राजा रवि वर्मा ने कला का सूत्रपात तो किया, किन्तु वे अतीत कालीन भारतीय कलादर्शों की गौरवशालिनी परम्परा से अनभिज्ञ रहे। उन्होंने विदेशी चित्रकला के अन्धानुकरण के साथ-साथ अभिव्यक्ति की विदेशी कल्पनात्मक प्रणालियों को ही दुहराया। फिर भी उनका यह प्रयास नूतन युग का सूचक था। भारतीय कला की अवरुद्ध धारा सर्वथा नवीन पथ पर अग्रसर हुई थी।

प्राच्य और पाश्चात्य प्रभावों के मिश्रण से कला में नवीनता आई थी, किन्तु कहाँ प्राचीन भारतीय उन्नत कला और कहाँ विदेशी जूठन पर पनपे नये कला-तत्त्व! प्रथम महान् कला-गुरु, जिन्होंने नवयुग के अर्थ को हृदयंगम किया और कला को विदेशी जकड़ से मुक्त कर नवीन जीवन-रस से प्लावित किया, वे थे आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर। उन्होंने कला के युगीन धरातल को नापते हुए एक ऐसा मध्यम मार्ग अपनाया जो पाश्चात्य प्रभावों के संस्पर्श से प्राचीन भारतीय कला की सम्पूर्णता में रमते हुए उसकी नींव सुदृढ़ कर सका। वे एक ऐसे परिवार में उत्पन्न हुए थे जो भारत की प्राचीन सांस्कृतिक परम्पराओं का पोषक होकर भी आधुनिक था। यूरोपीय

कला की विभिन्न प्रवृत्तियों का व्यापक और गम्भीर अध्ययन कर उनका उद्देश्य कला में एक ऐसी मानुपातिक समग्रता का विकास करना था जो प्राचीनता एवं आधुनिकता के बीच एक महान् कसौटी साबित हो सकता।

इस बीच कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल ग्रांफ ग्रार्ट के प्रिंसिपल और गवर्नमेंट ग्रार्ट-गैलरी के क्यूरेटर ई. बी. हेवेल ने भारतीय कला की खूबियों की ओर कला-प्रेमियों का ध्यान आकृष्ट किया। गुप्त कला, अजन्ता और एलोरा का अपूर्व कला-वैभव, मुग़ल और राजपूत चित्र-कृतियाँ तथा चोला मूर्त्तिकला की सूक्ष्मताओं में झाँक कर हेवेल ने भारतीय कला के मौलिक सत्यों को पहचानने का आग्रह किया। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, हेवेल और कुछ अन्य कला-प्रेमियों के प्रयास से कलकत्ता में 'दि इण्डियन सोसाइटी ग्रांफ ओरियण्टल ग्रार्ट' की स्थापना हो गई, जिसने कला-प्रशिक्षण एवं संरक्षण का समस्त उत्तरदायित्व अपने ऊपर ले लिया। इसके अतिरिक्त इस नव जागरण बेला में प्राच्य कला को गौरव प्रदान करने वालों में डॉक्टर आनन्दकुमार स्वामी अग्रणी थे, जिन्होंने अपनी तथ्यपूर्ण आलोचनाओं द्वारा विदेशियों तक का मुँह बन्द कर दिया। उन्होंने विलुप्त होती कला-परम्परा को एक नई सजीवता से आगे बढ़ाया और भारत के कला-वैभव की उन्मद सम्पन्नता में झाँक कर उसके सौन्दर्य का उद्घाटन किया। उनकी माता अंग्रेज़ थी, किन्तु पिता से उत्तराधिकार के रूप में प्राच्य कला-परम्पराओं का उन पर गहरा रंग चढ़ा था। उनका अद्भुत कला-प्रेम, अनासक्त भाव से कला की सर्जनात्मक शक्तियों को पहचानने की क्षमता, साथ ही कला की अर्थपूर्ण प्रवृत्तियों को सही आँक कर उसके पक्ष-समर्थन का प्रबल आग्रह उनके शक्तिशाली व्यक्तित्व के अपरिहार्य अंग थे जो प्राच्य और पाश्चात्य के विभाजन बिन्दुओं में कुछ हद तक सामंजस्य ला सके।

समयानुसार बंगाल के कुछ प्रतिभाशाली कलाकारों का एक ग्रुप अवनीन्द्र-नाथ ठाकुर के शिष्यत्व में भारतीय कला की गंभीर साधना में प्रवृत्त हुआ। कला अब तक एक निश्चित दिशा तो अपना चुकी थी, किन्तु अभिव्यक्ति में पूर्णता और परिपक्वता न आई थी। विदेशी दासता से छुटकारा पाना आसान न था और वह किसी न किसी रूप में निरन्तर प्रकट हो रहा था। नन्दलाल वसु इस नये मोड़ पर एक महान् सर्जक सिद्ध हुए। उनकी आत्मा कला के समस्त बन्धनों को तोड़ने के लिए मचल उठी और उनका क्रियाशील मस्तिष्क एक नई मंज़िल की तलाश में संलग्न हो गया। उनके सृजन में ऐसी प्राणवान चेतना नज़र आई जो गहरी भावना में पगी थी और जिसके परिपार्श्व में

सांस्कृतिक निर्माण की भावना प्रबल थी। उन्होंने अपने अनुभव के विस्तृत चित्रपट पर रूपाकार आँके और नवीन वातावरण में भी भारतीय रूप-विधान और वस्तु-तत्त्व में संतुलन स्थापित कर अमर सौन्दर्य की सृष्टि की। उनकी कला में वह शक्ति है जिसमें प्राणमय आशावादी स्वर गूँजते हुए नव-निर्माण की स्फूर्ति प्रदान करते हैं।

नन्दलाल वसु के साथ कितने ही सहयोगी कलाकारों ने भारतीय कला को स्थायी देन दी है। कुछ स्वतन्त्र प्रवृत्ति के कलाकार भी आजीवन क्रियाशील रहे, जो स्वतन्त्र पथ के अनुगामी बन कर हर तरह के बन्धनों की शृंखला को तोड़ते गये। गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने नव्य युग की कला–प्रवृत्तियों को सर्वथा मौलिक ढंग से अपनाया। पश्चिमी भावना और पूर्व की अन्तर्दृष्टि को विकसित कर स्वतन्त्र पद्धति पर उन्होंने यूरोपीय 'क्यूबिज़्म' को भारतीय जामा पहना कर प्रस्तुत किया। पिकासो और ब्राक़ से उन्होंने इस दिशा में प्रेरणा प्राप्त की थी, किन्तु उसमें रूमानी तत्त्वों को सम्पृक्त कर वे अपने ढंग से शक्ति सम्पन्न चित्रों की सृष्टि में प्रवृत्त हुए थे। उन पर जापानी चित्रकला का भी प्रभाव था। उनके जलरंग के दृश्यों, धार्मिक एवं पौराणिक विषयों तथा व्यंग्यात्मक चित्रों में सम्पूर्णतः पाश्चात्य प्रभाव को ग्रहण किया गया, किन्तु उनका भारतीयकरण नूतन कला धारा का प्रवर्त्तक सिद्ध हुआ।

भारतीय चित्रकला के आन्दोलन का प्रमुख केन्द्र शुरू में बंगाल था; किन्तु क्रमशः बम्बई, मद्रास, मछलीपट्टम, आन्ध्र, गुजरात, पंजाब, दिल्ली, जयपुर, लखनऊ, हैदराबाद आदि कला–केन्द्रों की अभिनव चित्र–सज्जा ने देश के कला–भाण्डार को समृद्ध किया। अब्दुर्रहमान चुग़तई, देवीप्रसाद राय चौधरी, असितकुमार हाल्दार, यामिनी राय, शारदा चरण उकील, रविशंकर रावल और अमृत शेरगिल आदि ने कला में नूतन प्रयोगों और ना-ना परीक्षणों द्वारा विभिन्न देशीय प्रभावों को आत्मस्थ कर अपना बना लिया। इन कलाचार्यों के अगणित शिष्य–प्रशिष्य देशी–विदेशी प्रवृत्तियों को चुनौती देकर कला की सुदृढ़ शृंखला स्थिर कर रहे हैं। इन्होंने जीवन और उसके व्यापक सत्यों को पकड़ा है, फलतः उनकी अभिव्यक्ति में भी एक घुमाव आ गया है।

पहले का कलाकार द्रष्टा था। विराट् प्रकृति से असंख्य तत्त्वों को बटोरकर अनेकविध अभिप्रायों की व्यंजना करता हुआ वह अचिन्त्य, अगम्य

सृष्टि के रहस्य और जीवन के मूलभूत अर्थों का अपनी चिरन्तन कला–सृष्टि में अमर कर देना चाहता था। उसकी स्वतःस्फूर्त सर्वांगीण दृष्टि भीतर की मौलिक प्रेरणा से उद्‌बुद्ध होती थी। वह गोपन स्वप्नों को साकार कर सौंदर्य और विस्मय की अनुभूति में ही अधिक रमता था। किन्तु आज का कलाकार परिस्थितियों का विश्लेषक बन गया है। भौतिक द्वन्द्वों ने उसमें असन्तोष जगा दिया है। समस्या की जटिलताओं के अनुसार अन्तर्द्वन्द्व ने उसके अन्तर को झकझोर डाला है। उसकी भिन्न–भिन्न वृत्तियाँ बाहरी और भीतरी आघातों के खिंचाव से ग्रस्त हैं। यही कारण है कि उसका व्यक्तिवादी 'अहम्' मौजूदा परिस्थितियों से सहमत न होकर कला में सामाजिक क्रान्ति उपस्थित कर देना चाहता है, जिससे जीवन के तथाकथित सत्यों को सर्वथा नवीन माध्यमों और नवीन दृष्टिकोणों से देखने–परखने की ख्वाहिश उसमें जग गई है।

फिर भी पाश्चात्य भावना ने यहाँ की कला–चेतना को आक्रान्त और अभिभूत कर रखा है। अब भी कलाकार हाथ पसारे पश्चिम का मुँह जोह रहे हैं। 'पोस्ट इम्प्रेशनिज़्म', 'इम्प्रेशनिज़्म', 'क्यूविज़्म', 'फाबिज़्म', 'सुर्रियलि–ज़्म', 'निग्रो–प्रिमिटिविज़्म', 'रियलिज़्म', आदि कितने ही 'इज़्म' भारतीय कलाकारों की चित्रशैली पर छाये हुए हैं। रोज़–व–रोज़ पाश्चात्य एवं पौर्वात्य कला–प्रणालियों के प्रयोग जारी हैं। कोई कहता है—कला असुन्दर हो गई है। बुजुर्गों की राय में कला के वे सौन्दर्य–तत्त्व नष्ट होते जा रहे हैं जो पुराने जमाने में उल्लासपूर्ण चारु वातावरण और कोमल अनुभूतियों के सहज प्रकम्पन से उद्‌भूत होते थे। 'आधुनिक' बनने के फेर में प्राचीन मर्यादाएँ शिथिल हो गई हैं। प्रभावोत्पादकता के लिए आज का कलाकार अपनी व्यंजना शक्ति की सीमा का इतना व्यापक विस्तार चाहता है, अभि–व्यक्ति वैचित्र्य में वह इतना खो गया है कि वस्तु और रूप-विधान को सर्वथा मौलिक ढंग से वह अनेक रूपों में व्यक्त करने की इच्छा रखता है, भले ही वे रूप निर्जीव और अर्थहीन रेखाओं का विशृंखल संघटन मात्र क्यों न हों। जो किसी निश्चित कला–टेकनीक में माहिर नहीं होते और प्राचीन परम्प–पराओं पर पदाघात कर नई लकीरें बनाते आगे बढ़ते हैं उनकी विद्रोही विध्वंसात्मक अभिव्यक्ति कुत्सित चेतना का प्रतीक बनकर कला को भी कुरूप बना देती है।

किन्तु इसके ये मानी नहीं कि ऐसी रेखाएँ सर्वथा सारहीन ही होती

हैं। यदि कलाकार में अपनी अनुभूति और दृष्टिकोणों में पूरी आस्था है तो उसकी तूलिका से जो निस्सृत होगा वह अवश्य ही दर्शक को प्रभावित करेगा। अमृत शेरगिल ने यह कहा था, 'अजन्ता! वह तो मेरी समझ से बाहर की चीज़ है। . . . . यद्यपि मैंने अध्ययन किया, लेकिन जिसे चित्रकला की शिक्षा कह सकते हैं वह यथार्थ रूप में मुझे कभी नहीं मिली, क्योंकि मेरी मनःस्थिति का गठन कुछ इस प्रकार है कि कोई भी वाह्य हस्तक्षेप मुझे सह्य नहीं। मैंने सदैव, सभी बातों में, अपना मार्ग स्वयं खोजना पसन्द किया है।'

'मैं व्यक्तिवादिनी हूँ और अपनी नई टेकनीक का विकास कर रही हूँ जो रूढ़िवादी दृष्टि से देखने पर अनिवार्यतः भारतीय शैली तो नहीं है, लेकिन उसकी आत्मा बुनियादी तौर पर भारतीय है। चित्रात्मक तथा मनोवैज्ञानिक तरीकों के प्रति मेरी तीव्र विद्रोहात्मक प्रतिक्रिया और मेरी चित्रकांन की पद्धति को तब कुछ सीमा तक समझा जा सकता है जब यह ज्ञात हो जाय कि मैंने भारत के विषय में जो चित्र देखे थे उनके स्थान पर मेरे भारत पहुँचने पर क्या प्रभाव भारत ने मेरे ऊपर डाला।'

आज के आतंकवाद ने एक विचित्र प्रकार का 'अहम्' कलाकार के भीतर जगा दिया है। असन्तोष से उत्पन्न आचारहीन व्यक्तिवाद की लहरें उसकी अभिव्यक्ति के कूल-किनारों से जा टकराती हैं, इसीलिए उसके रूप शिल्प और सौंदर्य—विधान की सुडौलता विरूप रेखाओं में दब जाती है। स्वयं पिकासो ने जीवन और उसके निर्धारित मानदण्डों से कुछ नवीन मौलिक तथ्यों का अन्वेषण कर कला में अजीब-अजीब प्रयोग किये हैं। एक सुप्रसिद्ध समकालीन आलोचक ने चैलेंज के रूप में कहा था, 'पिकासो! . . . . किन्तु क्या यह भी कोई कला है?' निश्चय ही, कला के असौंदर्य की पृष्ठभूमि में जीवन के तीखे अनुभव और युग के संघर्ष की प्रतिक्रयाएँ निहित हैं। विषम परिस्थितियों ने जीवन को विरूप कर दिया है। आज का मानव उनसे त्रस्त हो उठा है। उसकी मानसिक उलझनें उन असाधारण तत्त्वों की सृष्टि करती हैं जिससे यथातथ्य की विभेदक दरारें वस्तु के सहज स्वरूप पर छा जाती हैं। दुःख-दैन्य ने उसे इतना सचेत कर दिया है कि वह हर वस्तु में रस-सिद्धि नहीं, मार्मिक अनुसंधान की आकांक्षा रखता है।

आज का जीवन-दर्शन द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद से ग्रस्त है। अतीत का वह वैभव, वे आनन्दपूर्ण कल्लोलमयी रंगरलियाँ, सूक्ष्म भावजन्य मादकता से

मिश्रित और अणु-अणु को विभोर कर देने वाला जीवन का वह मधुर राग, वह झूठा सपना अब मिट गया है। कलाकार की सौंदर्य-चेतना एक ऐसी व्यापक चेतना में तिरोहित हो गई है कि जहाँ जीवन का सुन्दर-असुन्दर, अच्छा-बुरा, सब कुछ ग्राह्य है। प्राचीन अध्यात्म-चिन्तन और मध्ययुग के कल्पना-वैभव पर आज हाहाकारमय विषण्ण वातावरण का कुहरा है। महलों में गद्दे और मसनद पर बैठी किसी सुसज्जित नायिका की अपेक्षा आज उस चित्र को अधिक पसन्द किया जायगा जिसमें चिथड़ों में लिपटी जर्जरित, कंकाल मात्र, दर-दर की ठोकरें और अपमानों की चोट से मर्माहत किसी भिक्षुणी का चित्र अंकित होगा। टूटे-फटे घर, अर्द्धनग्न बच्चे, घर-गृहस्थी की छोटी-मोटी व्यवस्थाएँ और बच्चों की जिम्मेदारियों से परेशान, खेत-खलिहानों में कठिन श्रम करते और सूनी पगडंडियों पर पानी भरकर लाते हुए नर-नारियों में उन्हें अधिक आकर्षण दीख पड़ता है।

दृश्य-चित्रण की नई प्रवृत्ति भी आधुनिक कलाकारों में दीख पड़ रही है। पाश्चात्य कला के प्रभाव से उसमें कुछ अधिक व्यापकता आ गई है और कँवल कृष्ण जैसे कलाकार तिब्बत और अफ़गानिस्तान के दृश्य-चित्रों को सफलता पूर्वक आँक रहे हैं। चूँकि अब छायालोक की झलकियों को दर्शाने की सामर्थ्य कलाकारों में है, फलतः भारतीय लैंडस्केप-चित्रों में प्राकृतिक रंगों को सूक्ष्मता से पकड़ने के प्रयास हो रहे है। प्राचीन कला में छायालोक की झलकियों को यत्किंचित् ही उभारा जाता था, किन्तु आज प्राकृतिक दृश्यों के चित्रण की क्षमता बहुत बढ़ गई है। शुरू में फ्रांसीसी कलाकार वैंगाफ़ और अन्य प्रभाववादियों ने यहाँ के लैण्डस्केप-चित्रण को प्रभावित किया था जिससे उसमें नैसर्गिक सौंदर्य न आ सका। बेन्द्रे, विश्वनाथ मुखर्जी और गोपाल घोष ने पाश्चात्य प्रभाव से पृथक् रहकर भारत की प्राकृतिक सुषुमा को अपने ढंग से चित्रित किया है।

वर्त्तमान चित्रकला में प्रयोगवादी तत्त्व भी प्रमुख हो उठे हैं। हर कलाकार अपनी पृथक् टेकनीक, पृथक् शैली और चित्रांकन के पृथक् ढंग अपना रहा है। कितने ही उत्साही कलाकारों ने जीर्ण शृंखलाएँ तोड़ी हैं। उन्मुक्ति ही उनकी कला की कसौटी बन गई है। विकास के चरम लक्ष्य तक पहुँचने में कलाकारों को कितना आगे बढ़ना होगा—यह तो नहीं कहा जा सकता, पर रूढ़ि के बन्धनों से छूटकर विश्व के ओर-छोर छू लेने की आकांक्षा उनमें प्रबल हो उठी है।

सच्ची कला विश्व की परिचालित शक्ति है। वह समूचे मानवों को एकता के सूत्र में जोड़ती है। आज देश-देश की विभाजक सीमाएँ मिट चुकी हैं, किन्तु कलाकार जब अपनी अन्तर्नुभूति को जगत् की गति में लय कर देगा तभी उसके जीवन-दर्शन के पीछे छिपी मान्यताएँ चाहे वे सुन्दर हों या असुन्दर और उनमें वैचित्र्य-वैविध्य भी चाहे कितना ही हो, दर्शक पर प्रत्यक्ष और क्रियाशील प्रभाव डाल सकेंगी। प्रयोग होने चाहिए, महज वातावरण उत्पन्न करने के लिए कृत्रिम साधनों के नहीं, जीवन के अर्थ के। सच्ची अनुभूति के स्तर पर जो प्रयोग होंगे वे ही खरे उतरेंगे। वे भीतर से अन्तर्भूत हों, ऊपर से आरोपित नहीं। यदि कलाकार को स्वतःस्फूर्त्त और सहजात अन्तःशक्ति का बल न होगा और 'महत्' एवं 'शिव' की प्रयोजनीयता भी सिद्ध न कर सकेगा तो उसकी कृति से उसकी भावनाओं का मौलिक पार्थक्य सहज ही दीख पड़ेगा। भले ही चिरन्तन प्रयोगशीलता का दावा करता हुआ परिस्थितियों के अनुकूल अनेक मार्गों का उद्‌घाटन करे, लेकिन वह अपनी कला के परिवेश में हमारे मन को खींचकर तब तक ले जाने में समर्थ न होगा जब तक कि विश्वसनीय और सुपरीक्षित कला-रूप हमारे अन्तर में न पैठेंगे।

प्राचीन-अर्वाचीन के कलादर्श का प्रतीक यामिनीराय का एक चित्र

अनेक वादों से घिरी आधुनिक कला

मोड़ उपस्थित करने वाली एक कृति

रवीन्द्रनाथ ठाकुर

इस परिप्रेक्ष्य में मौजूदा कला को किन्हीं भी निर्णीत मान्यताओं की कसौटी पर नहीं परखा जा सकता। वैचारिक संघर्ष और तनाव भरे वातावरण में आज के कलाकार की आंतरिक संवेदना उस के वैयक्तिक स्वातंत्र्य की पहली शर्त है। उसी के संदर्भ में वह नये सर्जनात्मक मूल्यों की प्रतिष्ठा में लगा है, हालाँकि इस ऊहापोह में कला के कोई निश्चित प्रतिमान स्थिर नहीं हो पाये हैं। यह सही है कि अतीत में से उमड़ते अजस्र कलास्रोत का सुराग़ मिल चुका है और उस से अनुप्रेरणा भी मिलती है, पर नये मूल्यबोध से अनुप्राणित कितने ही विकासशील तत्त्व आज की कला के रूप-विधान पर हावी हैं। उसके चिरन्तन गतिशील क्रम में पुराने निर्णयों को चुनौती देते कितने ही वाद-विवाद केन्द्रबिन्दु बन कर सामने उभर रहे हैं। प्रयोग की स्थिति से गुज़र कर यद्यपि कला कुछ हद तक उपलब्धि की सीमा तक पहुँच चुकी है, पर अभी तक न तो उस का स्वरूप-निर्धारण हुआ है और न ही उस की मर्यादाओं का परीक्षण। नवोत्थान से स्फूर्त नये कलाकार की पैनी सजग दृष्टि सब कुछ समेटना चाह कर भी किसी एक ही तथ्य पर टिक नहीं पाती। परम्परा से पिंड छुड़ा कर वह कुछ नये फार्मूले पेश करने की फिराक़ में है। भावुक आक्रोश या प्रतिक्रिया जो इधर उस में मुखर हो उठी है, उससे उसकी संश्लेषणात्मक रुचियाँ—तर्कशील और बहुमुखी—बड़े ही जटिल और वैचित्र्यपूर्ण विधान की क़ायल है। विक्षुब्ध एवं शंकालु मनोवृत्ति के कारण सहज वातावरण से कटे रह कर वह अपने को 'आउटसाइडर' या समाजेतर प्राणी मानता हुआ व्यक्तिवाद की अतिशयता को प्रश्रय दे रहा है। यों निर्विकल्प अनुभूति और संवेग की उत्तेजना से गुज़र कर नितांत निराश्रय एवं निर्वासित-सा अपने में गहरी मसोस अनुभव कर रहा है, अतएव इस मानसिक अराजकता में कला-शिल्प में अभिप्रेत सूक्ष्म एवं कोमल कल्पना-सृष्टि का उन्मेष अथवा सृजन-

शिल्प का सम्यक् समाधान कहाँ है, साथ ही ऐसी स्थिति में कला की निश्चयात्मकता का मानदण्ड भी क्या हो सकता है ! फलतः भारतीय हो या विदेशी, कल्पनीय हो या अकल्पनीय, गहरी अनुभूतिशीलता से प्रेरित हो, चाहे छिछली उच्छृंखलतावादी प्रवृत्ति से—वह कुछ भी अच्छा-बुरा व्यक्त करने से नहीं हिचकता । नित-नये प्रयोगों का आवेश और प्रेरणा उस में जग गई है । भले ही उस में चित्रण-क्षमता नगण्य हो, पर वह कुछ 'नया' खोजने और पाने को उत्सुक है । एक अपरितृप्ति और बेचैनी की भावना उसे बरबस आगे ठेल रही है ।

इस से इन्कार नहीं किया जा सकता कि कला को एकाएक नये धरातल पर प्रतिष्ठित करने का आग्रह समयोचित माँग है। निश्चय ही यह वर्जनाहीनता बिकास की दिशा की ओर संकेत करती है, किन्तु कितनी ही बार कलाकार की बौद्धिकता आस्था का संवेग न हो कर प्रयोगवादिता तक सीमित रह जाती है।

कला की नई उपलब्धियों का आकलन किया जाए, तो कितने ही वाह्य और आंतरिक प्रभाव चरम सीमा पर दृष्टिगत होते हैं । चित्रात्मक अन्विति की दृष्टि से कहीं-कहीं कुछ चित्रों को देख कर लगता है कि विषय के साथ चित्रण-शिल्प की तर्कपूर्ण संगति नहीं बैठ पा रही है, तो कहीं कलाकार का आभ्यन्तरिक द्वन्द्व ही उसके प्रयत्न की प्रवंचना में खो गया है । भीतरी घुटन और अवसाद ने उस की निष्ठा, विश्वास, हौसला, हिम्मत सब को निढाल कर दिया है और वह बेतरतीब, दुरतिक्रम, आड़ी-तिरछी रंग-रेखाओं को आँक कर अक़्ल की बुलन्दी का परिचय दे रहा है । 'माडर्न आर्ट' के बारे में आम शिकायत है कि टेढ़ी-मेढ़ी अटपटी लाइनें समझ में नहीं आतीं । किसी का न सिर है न पैर, भला क्या यह भी कोई कला है ? चित्र चाहे उलटा टाँग दो या सीधा, कोई फ़र्क़ नहीं पड़ता । कहीं गोलाकृति, कहीं त्रिकोण, कहीं पंख-सा निकला हुआ, कहीं आँख नीचे तो नाक ऊपर, कहीं रंगों के झपाटे में समूची आकृति डूबी हुई, कहीं हाथ-पैर, कंधे-कमर में अजीब लचक और मरोड़, कहीं ज्यामितिक बिन्दुओं का छितराया संघटन, तो कहीं रंग-बिरंगे धब्बों का भौंडापन—इस प्रकार नयेपन के दुराग्रह में सभी कलाकृतियाँ चिरकालीन कल्पना और प्रणाली से भिन्न बन पड़ती हैं । वे बेढंगी, अवैज्ञानिक और शरीर-विज्ञान की बारीकियों से दूर हैं । सूक्ष्म चित्रण (एब्स्ट्रैक्ट आर्ट) जिसे अरूपवादी कला भी कहते हैं, आज एक फैशन बन गया है और उस में तरह-तरह के प्रयोग बरते जा रहे हैं । अकल्पनीय, अनदेखी, अजीबोग़रीब आकृतियाँ जिन के ढाँचे,

पैटर्न तथा डिज़ाइन मूल वस्तु से नहीं मिलते। रंग-रेखाओं के ये विचित्र रूपाकार कलाकार की मन की उलझन, दुविधा, कुंठा और विकृतियों के प्रतीक हैं, जिन में नौसिखुए कलाकारों को मनमानी आँकने का प्रोत्साहन मिल रहा है। उन्मुक्त सृजन का यह दुराग्रह कुछ ऐसा है कि उन्हें सूझ नहीं पड़ता कि कला के सूत्र कहाँ-कहाँ विच्छिन्न हैं, कहाँ टूट और जुड़ रहे हैं। सब कुछ उलझा हुआ बेतरतीब, क्रमहीन है। रंगों और रेखाओं का विस्तार अनुपातहीन है, कहीं रेखाएँ इतनी मुखर हैं कि रंग डूब रहे हैं तो कहीं रंगों की ऊब-डूब में रेखाएँ खो गई हैं।

नई दृष्टि और टेकनीक ने कलारूपों में क्रान्ति ला दी है। कलाकार की अनुभूति किन्हीं घेरों में नहीं बाँधी जा सकती। यदि उसकी कल्पना शाश्वत को नहीं छू पाती, तो वह क्षण में केन्द्रित रह कर सही ज़िन्दगी को उभार सके—यही क्या कम है। कभी-कभी निहायत अप्रत्याशित ढंग से संभावनाएँ कुछ और होती हैं और उन्हें दर्शाया जाता है कुछ और। सर्जक अपने अभीप्सित अथवा आकांक्षित स्वप्नों को पकड़ने के लिए कई तरह की राहें बदलते हैं। हवा की बेरुखी या तो क़तरा कर विस्मृति की गुहा में लीन हो जाती है, या उद्दाम उद्वेगों से सृजन को सशक्त भी बना जाती है। आधुनिक कला में कहीं भटकन, कहीं तनाव और कहीं अजीब-सी ऊटपटाँग अभिव्यक्ति दिखाई देती है, जो एक शिल्पगत दुर्भेद्य दुरूहता के कारण विकृतियों को ही अधिक उभार रही है। दमित कुंठाएँ, क्लांति और भीतर के बोधशून्य कोलाहल ने व्यापक मंगल एवं सौन्दर्य की भावात्मक प्रतीति को हिला दिया है। हीन संस्कारों से प्रताड़ित, 'अहम्' के अंधगर्त्त में लीन, निरोध के पूंजीभूत तत्त्व इस प्रकार अवांछित रूप से संघटित हैं कि वे दुरूह हो गए हैं और उन में विसंगतियाँ नज़र आती हैं। क्षत-विक्षत मन की मसोस प्रकारान्तर से उस विरोधाभास के 'इमेज' या भावप्रतीक हैं जो आज की ख़ासियत के निःशेष खाके मात्र बन कर रह जाते हैं। प्रत्येक चित्र इस अंदाज़ से बनाया जाता है कि आखिर किस हद तक उस में परम्परा से नाता तोड़ा जा सकता है। नये का अर्थ ही है परम्परा विच्छिन्न, अग्रगामी, अत्याधुनिक साथ ही अद्भुत, अनोखा और निराला। इस क्षण-नवीन में कुतूहल का आकर्षण तो है, पर टिकाऊपन नहीं। लगता है, अनुभूति की ऊष्मा जैसे अर्थहीन, रिक्त-सी हो गई है। सौन्दर्य-बोध और रस-धारा, जो शिराओं और धमनियों की राह कलाकार की आत्मा का अवगाहन करती हुई उस में नवीन उल्लास, नवीन स्फुरणा

जगाती है, अब बौद्धिक धरातल पर प्रतिक्रिया की परिणति के रूप में विरूपता या भौंडेपन को प्रश्रय दे रही है। उस के भीतर की ईहा और मन की मन-हूसियत ने कला को बदसूरत बना दिया है, जिसे कला की भयंकर 'ट्रेजेडी' कहा जा सकता है।

पर हाँ, आज की कला का एक अपना वैशिष्ट्य है। विविध इकाइयों ने उसे नये अर्थ और संदर्भ प्रदान किये हैं। बाहरी प्रभावों के कारण कलाकार की दृष्टि इतनी प्रखर और विश्लेषक बन गई है कि लगता है जैसे दृश्यात्मक प्रक्रियाओं को खण्ड-खण्ड कर के वह उस के भीतर के नग्न सत्य का पर्दाफ़ाश करना चाहता है। फलस्वरूप उस की हर कृति तात्त्विक रूप में एक संश्लेषण प्रस्तुत करती है। अनुभूति की नितान्त तात्कालिकता और कुछ मिथ्या भ्रान्तियों ने उस की संवेदनाओं का संस्कारच्युत रूप विकसित किया है; किन्तु वह नये की पृष्ठभूमि में संश्लिष्ट उन सभी मूल तत्त्वों के वृहत् अर्थ का अन्वेषक है जो नये परिप्रेक्ष्य में प्रश्रय पा रहे हैं। अशरीरी तत्त्व और अन्त:स्थित क्रियाओं के आधार पर एकांगी और पलायनवादी सौन्दर्यबोध के नये धरातल विकसित हुए हैं, जो कुरूपता के कर्दम से प्रस्फुटित पद्म-पुष्पों से कला के विशाल चित्रपट को सजाने-सँवारने में सचेष्ट है।

यों सभी प्रकार के दुराग्रहों एवं पूर्वाग्रहों से ग्रस्त कला आज की अति-वादिताओं की शिकार है, जो पुरानी लीक से हट कर आधुनिकता के चौराहे पर आ खड़ी हुई है और हलचल भरी विचित्र परिस्थितियों में 'जीवनवाद', 'कलावाद', 'प्रगतिवाद', 'प्रयोगवाद', 'प्रपद्यवाद' तथा और भी कितने ही नव्य वादों, अलग-अलग मनोवृत्तियों और उद्देश्यों, कृत्रिम रूप-विधानों और प्रतिगामी आलम्बनों, सृजनात्मक प्रवेगशील विविध पद्धतियों और अति विशिष्ट अचिंत्य अभि-व्यंजनाओं की विडंबना मे विवश जकड़ी है तथा जिस के डगमगाते कदम प्राय: अन्तहीन-सी साधना के पथ पर अग्रसर हो रहे है। फिर भी इसमें तो सन्देह नही कि कुंठित एवं निष्क्रिय कलात्मकता सक्रिय हो उठी है। युगगत व्यापक निरीक्षण, वाह्य एवं अंतर्जीवन की बिखरी अनुभूतियाँ, चिन्तन की बौद्धिक प्रक्रियाएँ, विविध विजातीय तत्त्व, विभिन्न रुचियाँ और परस्पर-विरोधी नाना प्रकार की असंगत कार्यशीलता का सामंजस्य भी उस की विशेषता है और यही आधार उस के विकास-क्रम में गतिशील हो उठा है।

सनातन विश्वासों पर क्या किसी का एकाधिकार है? चूँकि कला परि-वर्त्तनशील और सापेक्ष है, अतएव नये तत्वों का आविष्कार और स्थापना

अवश्यम्भावी है, बल्कि कभी-कभी तो अवैध प्रयोगों और निषिद्ध साधनों द्वारा ही अभूतपूर्व सम्पन्नता आती है। मौजूदा कलाकार में यह मुक्त चेतना ही सर्वाधिक मूल्यवान है, क्योंकि तर्क-वितर्क, संशय और विषम परिस्थितियों के बावजूद जीवन सम्बन्धी अनुभवों में निरन्तर वृद्धि हुई है। उस ने खुली आँख और खुले मस्तिष्क से सामाजिक परिवेश की विवशता और द्वन्द्व को समझा और आँका है। जीवन की ऊपरी सतह पर घटने वाले कार्य-व्यापार को भीतरी क्रिया-कलापों, भावनाओं, विचारों, आदर्शों से गूँथ कर युग परिस्थितियों की चेतना से प्रभावित और नवीन मान्यताओं से बल-संचय कर वह सर्वथा नवीन संभावनाओं की ओर अग्रसर हो रहा है। यह सच है कि आज की कला में वादों की नई उपधाराएँ आ जुड़ी हैं और इस प्रकार व्यतिक्रम और अस्तव्यस्तता-सी है, पर जब क्षीण धारा प्रशस्त होती है तब उस में तूफ़ानी हलचल और वेग का कोलाहल तो होता ही है। अतः निर्विवाद है कि अत्याधुनिक कला की उक्त कष्टसाध्य परम्परा में उस का बहुमुखी विकास पूर्णतः निरापद है।

राजा रवि वर्मा

कला के विकास के लिए जिस उर्वरा भूमि की अपेक्षा होती है वह उस समय न थी जब कि राजा रवि वर्मा का प्राकट्य हुआ। आज जब कि कलाकारों के भाव-बोध, उनके मैनरिज़्म, उनके फार्मूलों और सृजनात्मक कसौटियों में नित-नई प्रगति दीख पड़ रही है और चित्रण विधाओं की शिल्पसिद्धि में भी आश्चर्यजनक अभिवृद्धि हुई है तो तात्कालिक कला की पूर्वपीठिका और उसके मंद-मंथर पाथेय का अन्दाज़ लगाना कठिन है। मस्तिष्क और हृदय, बुद्धि और भावना का सुन्दर सामंजस्यपूर्ण सहयोग ही किसी सक्षम कलाकार की

मां और बच्चा

विशेषता है । देश और काल के अनुरूप वस्तुभिज्ञता ही सृजन की कसौटी है ।

सांस्कृतिक पुनरुत्थान काल के दौरान कला की अन्तर्जिज्ञासा जब रंग एवं रूपरेखाओं में मुखर हो उठी तो उस उषःवेला में राजा रवि वर्मा ही सबसे पहले कलाकार थे जिन्होंने एक नई प्रेरणा दी, एक नई दिशा अपनाई और अभिव्यक्ति की नव्य पद्धतियों का सूत्रपात किया। अतएव उनकी कला-साधना की एकान्विति भंग करना अथवा उनकी मुखर वैयक्तिकता का सही मूल्यांकन तो उनके सामाजिक तथा, और भी व्यापक रूप से, ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में ही शक्य हो सकता है। उनकी अनगढ़ और अपेक्षातीत सृजन प्रक्रिया समकालीनों से पृथक् और असम्पृक्त सी लगती है, किन्तु यह पार्थक्य, यह अलगाव ही उनकी वैयक्तिकता का पर्याय है।

सन् १८४८ में इनका जन्म मध्य केरल स्थित कोट्टायम नगर से बीस मील दूर किलीमनूर गाँव में हुआ था। त्रावणकोर के राजघराने से उनका

सत्यवादी हरिश्चन्द्र

बहुत समीप का रिश्ता था। बचपन से ही इन्हें चित्र बनाने का बेहद शौक था। एक बार इनके मामा राजराज वर्मा भगवान विष्णु का चित्र बना कर उसमें रंग भर रहे थे। बीच में उठकर वे किसी काम से बाहर गए। इतने में बालक रवि वर्मा अकस्मात् वहाँ आ पहुँचे। अधूरा चित्र पड़ा देखा तो तुरन्त बाल-औत्सुक्य वश उसे पूरा करने बैठ गये। साथ ही विष्णु के साथ गरुड़ का चित्र भी नीचे अंकित कर दिया। इनके मामा चुपचाप यह सब क्रिया दूर से देख रहे थे। बालक की इस तन्मयता से वे अभिभूत हो उठे। उन्होंने खुश होकर आशीर्वाद दिया—"बेटा तुम आगे चलकर एक बड़े

विचार गोष्ठी

चित्रकार बनोगे।" इनके मामा तंजोर पद्धति पर चित्र बनाया करते थे। फलतः इनकी कलात्मक अभिरुचियों के विकास में उसी का गम्भीर प्रभाव पड़ा। चौदह वर्ष की आयु में ये त्रिवेन्द्रम के राजमहल चले आये जहाँ उन्हें दरबारी चित्रकार रामास्वामी नायडू से कला प्रशिक्षण में प्रोत्साहन मिला। बड़े होने पर अलाग्री नायडू और भारत में भ्रमणार्थ आये हुए थियोडोर जेन्सन के कृतित्व की इन पर विशेष छाप पड़ी। अलाग्री नायडू

चांदनी रात में

मदुरा के चित्रकार थे जो यूरोपीय पद्धति पर चित्र बनाया करते थे। थियो-डोर जेन्सन पोर्ट्रेट पेण्टर थे और उनके छविचित्र हूबहू पाश्चात्य शैली पर निर्मित होते थे। इनकी मौलिक बुद्धि और इनका अपना एक काम का ढर्रा देखकर जेन्सन ने इन्हें अपना शिष्य बनाने से तो इन्कार कर दिया, सिर्फ़ काम करते हुए दूर से ये देखकर उनसे प्रशिक्षण ले सकते थे। किन्तु अलाग्री नायडू के ये अधिक निकट आ गए और उन्हें अपना गुरु मानने लगे। चूंकि उस समय अंग्रेज़ी सत्ता के प्रभाव से विदेशी चित्रण पद्धति का

अधिक ज़ोर था, इनका रुझान भी स्वभावतः उसी ओर हो गया। यद्यपि उन्होंने कभी भी किसी यूरोपीय व्यक्ति से कला-दीक्षा नहीं ली तथापि ये यूरोपीय शैली के विशेष प्रशंसक और अनुवर्त्ती बन गए।

राजा रवि वर्मा के आलोचकों ने उनके प्रतिपाद्य विषयों और कला-टेकनीक को लेकर सर्वथा भिन्न मत प्रकट किये हैं, पर इतना निर्विवाद है कि उन्होंने परम्परा को कभी फैशन नहीं बनाया, बल्कि बहुत हद तक उसे

पनघट से लौटते हुए

गरीबी

समझा और रचनात्मकता में ढाल दिया। उन्होंने पौराणिक और धार्मिक विषयों को लेकर देवी-देवताओं के चित्रों का निर्माण किया। नेताओं और विशिष्ट व्यक्तियों के पोर्ट्रेट, ऐतिहासिक और प्राचीन गाथाओं के दृश्यांकन इस खूबी से चित्रित किये जो महज़ अन्धानुकरण नही वरन् उनकी मौलिक सूझबूझ के परिचायक थे। उनमें बुद्धिवादी की वह बलवती स्पृहा न थी जो सायास कला-सृजन में बिना किसी ठोस धरातल के संवेदनाएँ कुंठित करती है, न ही उनमें इस तरह की हठवादिता थी कि केवल भारतीय विषयों को ही लिया जाए। कई बार उनके काम करने की प्रणाली विदेशी होती थी, पर प्रतिपाद्य विषय भारतीय। परम्परा के अतीत वैभव पर उन्होंने अपनी तूलिका से प्रहार नहीं किया वरन् विगत परम्पराओं के अंतराल को अर्थात् तात्कालिक पीढ़ी और विगत पीढ़ी की एक बड़ी दूरी को उन्होंने अपने ढंग से पाटा। जब कोई अपनी आस्था का उत्स खोज लेता है तो उसकी शक्ति का प्रवाह उसी

ओर उन्मुख होता है। देवी-देवताओं की पावनता में इनके मन को शह मिली और इन्होंने उनकी प्रतिच्छवियों को बड़ी श्रद्धा से आँका। भारत के घर-घर में जो लक्ष्मी, सरस्वती तथा अन्य देवी देवताओं के चित्रों की पूजा होती है वे राजा रवि वर्मा की तूलिका से सृष्ट हैं।

गहरे लाल, नीले, पीले, हरे, सुनहरे, जामुनी मूल रंगों का प्रयोग करके इन्होंने परम्परागत लालित्य को तेजोद्दीप्त रूपाकारों में ढाला और कृत्रिम औपचारिकताओं से परे यथार्थ छवियों की सी मांसल सजीवता प्रदान की। चटक रंगों के तीखेपन, चमक और निखार के माध्यम से दर्शक के अन्तर में उल्लास, करुणा एवं तादात्म्य भाव जाग्रत होता है, यहाँ तक कि इनकी रंग-योजना से चित्र का समूचा वातावरण चमकीला, आकर्षक और रम्य प्रतीत होता है। अचानक इनके चित्रों की माँग इतनी बढ़ गई कि इनके लिए उसे पूरा करना संभव न था। बड़ौदा के दीवान ने इनके महत्त्वपूर्ण चित्रों की प्रतिकृतियाँ यूरोप में ओयलिओग्राफ कराने की प्रार्थना की। फलतः इन्होंने बम्बई में इसी तरह का एक प्रिंटिंग प्रेस खोला जिसने सर्वप्रथम तैल पद्धति पर प्रचुर मात्रा में चित्रों की प्रतिकृतियाँ तैयार करने की पद्धति का विकास किया। चित्रकार के रूप में इनकी ख्याति दूर-दूर तक फैल गई, हालाँकि सौंदर्य की बारीकियों से अनभिज्ञ और कला की दिशा में अप्रशिक्षित जनता ही इनसे अधिक अभिभूत थी।

राजा-महाराजा, अमीर-उमरावों और अभिजात्य वर्ग में इनके चित्रों की धूम थी। ऊँची कीमत देकर वे उन्हें खरीदते और अपने भवनों एवं राजप्रासादों की शोभा बढ़ाते। त्रावणकोर, मैसूर, बड़ौदा और अन्य रियासतों के महाराज, मद्रास का अंग्रेज गवर्नर, बकिंघम का ड्यूक इनकी कला के विशेष प्रशंसक थे और अपने लिए उन्होंने ख़ास तौर पर इनसे चित्रों का निर्माण कराया। सन् १८७५ में जब प्रिंस आफ वेल्स त्रिवेन्द्रम पधारे तो त्रिवेन्द्रम महाराज ने उनकी सेवा में इनके चित्र भेंट किये। सन् १८८० की पूना कला प्रदर्शनी और १८९२ की वियना और शिकागो की प्रदर्शनियों में इनके चित्र बहुप्रशंसित हुए। त्रिवेन्द्रम के श्रीचित्रालयम् में इनके द्वारा निर्मित अनेक सुन्दर चित्रों का संग्रह है जिनमें इनकी विभिन्न रुचियों का दिग्दर्शन होता है। इसके अतिरिक्त बड़ौदा, मैसूर, उदयपुर के राजप्रासादों, हैदराबाद के सालारजंग म्यूज़ियम और नई दिल्ली की नेशनल आर्ट गैलरी में भी इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं।

भारत के अनेक कलातीर्थों और धार्मिक स्थलों में घूम-घूम कर इन्होंने वहाँ की पौराणिक वेषभूषा, देशीय पद्धति और रीति-रूढ़ि का अवलोकन किया। नाट्य मण्डलियों, धार्मिक प्रदर्शनों और जनरुचियों से भी इन्हें देवी-देवताओं की पोशाक, भावभंगी और दृश्य रूपों को आँकने में मदद मिली। ऊषा द्वारा अनिरुद्ध और दुष्यंत द्वारा शकुन्तला के छविचित्रों के चित्रण में और 'राम द्वारा समुद्र का मानभंग', 'सत्यवादी हरिश्चन्द्र', 'श्रीकृष्ण और बलराम', 'दूत

शकुन्तला

पक्षी दूत

के रूप में श्रीकृष्ण', 'रावण और जटायु', 'मत्स्यगन्धी' आदि चित्रों के दृश्यांकनों में प्राचीन पौराणिक आख्यान सजीव हो उठे हैं। 'दक्षिण भारत के जिप्सी' अभिव्यंजनावादी पद्धति पर निर्मित एक बड़ी ही बेजोड़ कृति है। नारी चित्रों में, खासकर केरल की नारियों की चित्रण-सौंदर्य-श्री के प्राचुर्य को देखकर टिशियन और र्‌यूवेन्स का स्मरण हो आता है, यद्यपि उसमें वैसी अवसादमयी एकरसता नहीं है। 'गंगावतरण', 'विराटा का दरबार', 'दादाभाई नौरोजी', 'ग़रीबी', 'मंदिर के द्वार पर भीख देते हुए', 'माँ और बच्चा' आदि अनेक चित्रों में जन-रुचि को प्रश्रय दिया गया है।

लगभग तीस वर्षों तक ये उस समय कला-साधना में जुट रहे जबकि भारतीय कला अंधकार के गर्त्त में समायी हुई थी। मुगल एवं राजपूत कला का केवल रूढ़ियों का ढाँचा मात्र अवशेष था और पहाड़ी कला के अंतिम कलाकार मोलाराम की मृत्यु के पश्चात् लगभग दो दशकों तक भारतीय कला के समूचे सूत्र विच्छिन्न हो चुके थे और उसके ओर-छोर का कुछ पता न था। राजा रवि वर्मा विदेशी कलातत्त्वों की चकाचौंध में भारतीयता से शह न ले सके, वह उनकी नजरों से ओझल ही रहा, आसपास के विदेशी रंग में रँगे वातावरण के कारण वह उसकी तात्कालिकता से अभिभूत हो गए।

•

डॉ० ग्रानन्द कुमार स्वामी के ये शब्द 'इनके चित्रों में नाटकीयता बहुत ग्रधिक है' ग्रौर ई. बी. हेवेल की दृष्टि में 'काव्यात्मक पैठ का ग्रभाव' कुछ मानों में सही हैं, पर इतना निर्विवाद है कि राजा रवि वर्मा के प्राकट्य ग्रौर कला-साधना ने ही डॉ० ग्रानन्द कुमार स्वामी ग्रौर ई. बी. हवेल जैसे मनीषियों का ध्यान इस ग्रोर ग्राकृष्ट किया।

बंगाल के पुनरुत्थान ग्रान्दोलन की उष:बेला में राजा रवि वर्मा शुक्र तारे की भाँति ग्रवतीर्ण हुए ग्रौर ग्राने वाले प्रभात का दिशा-निर्देश कर गए। कला की भावी समृद्ध परम्परा के लिए—इसमें संदेह नहीं—उन्होंने पृष्ठभूमि तैयार की ग्रौर ग्रपने समकालीनों की दृष्टि में वे न केवल एक महान् ग्रास्तिक ग्रौर श्रद्धालु सर्जक थे, वरन् महान् कलामर्मज्ञ भी थे। धर्म को ग्रपना लक्ष्य बनाने के पश्चात् भी वे न रूढ़ि पन्थी थे, न कट्टर धर्मान्ध। ग्राधुनिक चित्रकला के द्वार पर एक ग्रडिग प्रहरी की भाँति उन्होंने एक ग्रोर प्राचीन ग्रौर ग्रर्वाचीन का गठबंधन किया, तो दूसरी ग्रोर पाश्चात्य ग्रौर भारतीय कला-ग्रादर्शों का चित्रों में ग्रपने ढंग से समन्वय स्थापित किया।

अवनीन्द्र नाथ ठाकुर

भारतीय चित्रकला की सर्वांगीण उन्नति के लिए एक महाशक्ति के रूप में आचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का अभ्युदय उस समय हुआ था जब कि यहाँ चिर-सृजनाकांक्षा उन्मुक्त विचरण छोड़ कर विदेशी कंचनकारा में आबद्ध हो चुकी थी। वर्त्तमान कला-धारा का कोई ऐसा प्रमुख पक्ष नहीं है जिसका श्रीगणेश इस कला-साधक के हाथों न हुआ हो। अवनी बाबू की मौलिक प्रेरणा इतनी जागरूक थी कि जब पाश्चात्य और पौर्वात्य कलारूपों में अंतर्विरोध उठ खड़ा हुआ था और विदेशी दासता भारतीय कला की आत्मा पर पदाघात कर चुकी थी तो उन्होंने साहस पूर्वक आगे बढ़ कर उसका नेतृत्व किया। उन्होंने यहाँ की शिथिल, जर्जर कला-सम्पद् को पतन के गर्त्त से ही नहीं उबारा, वरन् उसका नवीन संस्करण कर उसमें गहराई और अभिनव सौन्दर्य भी भरा। उन की बहुमुखी कला-चेतना भारतीय चित्रकला के व्यक्तित्व के साथ इस परिपूर्णता से समाहित हुई सी लगती है कि कला का कोई भी पहलू ऐसा अछूता नहीं बचा है जिसकी मूल सत्ता से उनका तादात्म्य न हुआ हो।

कलकत्ता के इटालियन प्रिंसिपल सिन्योर ओ. गिलहार्डी तथा एक अन्य अंग्रेज़ आर्टिस्ट चार्ल्स पामर के तत्त्वावधान में उन्होंने पैस्टेल और तैल-चित्र बनाने का अभ्यास किया, लेकिन इससे उन्हें संतोष न हुआ। पाश्चात्य कला-टेकनीक के वे प्रशंसक तो थे, पर वह उनके अंतर में न धंस सकी थी। देशी झाँकियाँ और वे मधुर स्वप्न जो उनके भीतर बचपन से संचित होते गए थे कालान्तर में उनकी आत्मा के सच्चे प्रतीक बन कर रंग और रेखाओं में बिखर गए। उन्होंने स्वयं लिखा है, 'जोड़ासाँको भवन के अंतःपुर में प्रसाधन के समय जो सुन्दर मुख दिखाई देते थे मन ने उन सबका संग्रह कर लिया। तुम उनमें से कइयों को मेरे 'दुलहन का शृंगार' चित्र में पाओगे। सुख-स्वप्न को तोड़ने वाली जो दाह है उसने भी मेरे मन के उस संचय को 'शाहजहाँ की मृत्यु-शय्या' में उँड़ेल दिया। इत्रवाला यहूदी गैब्रियल साहब आया करता

था । उसे देख कर यों लगता था जैसे शाइलोक का चित्र सजीव होकर जोड़ा-माँको के दक्षिण बरामदे में इस्ताम्बूल का इत्र बेचने उतर आया हो । गैब्रियल साहब की ढीली अचकन और चूड़ीदार आस्तीन, पतले-पतले बटनों की कतार की जगमगाहट—इन सबको मैंने औरंगज़ेब के चित्र में ज्यों का त्यों उतार दिया ।'

थैला लिये महिला

बाल्यावस्था में इन्हें अपने भाई गगनेन्द्र ठाकुर और रवि काका अर्थात् रवीन्द्रनाथ ठाकुर से चित्रांकन की प्रेरणा मिली थी। वे लिखते हैं—'एक दिन मेरी चित्रशाला में आकर रवि काका ने चित्र बनाने का आदेश दिया। 'चित्रांगदा' उस समय ताजा ही लिखा गया था। रवि काका ने कहा–उसके चित्र प्रस्तुत करने हैं। मुझ में भी हिम्मत आई। उत्तर दिया—तैयार हूँ और 'चित्रांगदा' के सब चित्र तैयार कर डाले। उनकी प्रतिकृति सहित 'चित्रांगदा' प्रकाशित हुई। उन चित्रों को निहार कर आज तो निःसन्देह हँसी आती है, किन्तु रवि काका के साथ मेरे कला-सम्बन्धों का यह प्रथम संकेत है। तब से लेकर आज तक कितनी ही बार रवि काका के साथ इस दिशा में कार्य किया। उनसे प्रेरणा पाई। आज तक मैं जो कुछ कर सका हूँ उसके मूल में उनकी ही प्रेरणा रही है।'

तत्पश्चात् कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट के प्रिंसिपल और गवर्नमेंट आर्ट गैलरी के क्यूरेटर ई० बी० हेवेल ने, जो भारतीय कला-परम्पराओं के संधान में उन दिनों विशेष दिलचस्पी ले रहे थे और आर्ट गैलरी के यूरोपियन चित्रों को हटाकर मुग़ल, राजपूत और फ़ारसी शैली के चित्रों को अधिक सम्मान प्रदान कर चुके थे, अवनी बाबू को निजी देशीय कला अपनाने और इस दिशा में अगुआ बनने को प्रोत्साहित किया। उन्होंने अपने साथ कार्य करने के लिए उन्हें आर्ट स्कूल का उपाध्यक्ष नियुक्त कर लिया। अवनी बाबू हेवेल द्वारा सौंपे गए इस महान् उत्तरदायित्व को संभाल सके और भारतीय चित्रकला के ऐश्वर्य में झाँकते ही उनका पथ प्रशस्त हो गया। रामायण, महाभारत, पुराण, दर्शन और अन्य महत्त्वपूर्ण धार्मिक एवं ऐतिहासिक आख्यानों से उन्होंने कितने ही ऐसे विषय चुने जो रंग और तूलिका के योग से एक दम सजीव हो उठे हैं।

उमर खैय्याम

बहुत पहले ही अवनी बाबू यह बखूबी समझ गए थे कि भारतीय कला उन तत्वों को लेकर जियेगी जो उसके हैं और उसकी जान है। उन्होंने यहाँ की सांस्कृतिक परम्परा के अनुरूप देशी ढंग अख्तियार किया, यों उसमें नवयुग की माँग के अनुसार नई बौद्धिक पीठिका, नये विषय, पाश्चात्य कला टेकनीक को भी, जहाँ ठीक समझा, उचित समन्वय कर नई कल्पनाएँ दीं। उनकी सरस आस्था-वान प्रकृति ने उन्हें इतना पारदर्शक बना दिया था कि कोरी कल्पनाओं और स्वप्नों में न रम कर वे जीवन की संयत शक्ति को कला में रूपा-

बुद्ध और सुजाता

यित देखना चाहते थे। उनकी दृढ़ धारणा थी—कला अन्तर की वस्तु है। आन्तर प्रेरणा ही अभिव्यक्ति और सृजनात्मक प्रतिभा को जागरूक करती है। जहाँ अन्तर्नुभूति न होगी वहाँ ऊपरी लीपापोती से होगा ही क्या ?

अंतर्मन की सूक्ष्मता उनके व्यक्तित्व के साथ इस प्रकार अंतर्गूढ़ थी कि उन्होंने स्वयं में और अपने शिष्यों में इसी चीज़ को समझा-परखा। अपने संस्मरण 'जोड़ासाँकार धारे' में उन्होंने अपने प्रिय शिष्य नन्दलाल वसु के सम्बन्ध में एक प्रसंग की चर्चा की है—'एक बार की बात सुनाता हूँ। नन्दलाल ने 'उमा की तपस्या' नामक एक बड़ा चित्र बनाया। पहाड़ पर खड़ी-खड़ी उमा शिव के लिए तप कर रही है। उसके पार्श्व में मस्तक के पीछे चन्द्र की पतली सी रेखा है। इस चित्र में रंग जैसी कोई विशेष वस्तु नहीं थी। समूचे चित्र में यत्किंचित गेरुए रंग का आभास था। मैंने कहा 'नन्दलाल ! इस चित्र में थोड़ा भी रंग नहीं रखा। इसकी तरफ देखते हुए हृदय में कुछ हो जाता है। अधिक नहीं तो उमा को ज़रा सजा दे। इसके भाल पर ज़रा चन्दन लगा दे। कम से कम एक चम्पा का फूल।'

•

घर आ गया, परन्तु रात को नींद नहीं आई, रह-रह कर मस्तिष्क में प्रश्न उठने लगा। मैंने इतना अधिक नन्दलाल को क्यों कह डाला? कदाचित् उमा को उसने मेरी तरह न देखा हो। कदाचित् उसने उमा का यह रूप ही निहारा हो जिसमें उमा पाषाण सी दृढ़ है और कठिन तप करते करते उसका रंग, रूप, रस सब कुछ चला गया है। इसी से तो 'उमा का तप' देखते हुए हृदय फटा जाता है। फिर वह किस प्रकार चन्दन लगाए? उस रात ऊँघ नहीं आई। कब प्रभात होता है—यही सोचते-सोचते तड़पता रहा। प्रातःकाल होते ही नन्दलाल के पास दौड़ा गया। डर था कि उसने मेरी बात सुनकर कदाचित् रात में ही उस पर हाथ चलाया हो। जाकर देखा तो नन्दलाल चित्र के सामने बैठकर उस पर कूची फेरने से पूर्व विचार कर रहा था।

मैंने कहा, 'क्या करते हो, नन्दलाल! ठहरो ठहरो, मैं कैसी भूल कर रहा था। तुम्हारी उमा ठीक ही है। अब उस पर अधिक हाथ चलाने की आवश्यकता नही।' नन्दलाल ने कहा, 'आप कह गए थे कि उमा को ज़रा सजा दे। सारी रात मैं भी इस पर विचार करता रहा, इस समय भी इस पर विचार कर रहा था।'

माता

कैसा सर्वनाश कर बैठता मैं? ज़रा देर लगती तो ऐसा सुन्दर चित्र नष्ट हो जाता। तब से मैं बहुत साव-धान हो गया हूँ और समझ गया हूँ कि

चित्र तो सबका अपना अपना सृजन है ।'

अवनी बाबू की यह आंतर प्रेरणा इतनी उदात्त थी कि बहुतों की प्रेरणा के निकट रह कर भी वे इतनी उच्च स्थिति में जा पहुँचे थे कि सामान्य व्यक्ति की पकड़ से बाहर थे । उनका भोक्ता मन सृजन-प्रक्रिया से विलगाव लिये था । कितनी बार उन्होंने उन चित्रों को मिटाया जिनपर घण्टों वे कूची फेरते रहे थे । वे कहते थे—यदि चित्र में किसी प्रकार की त्रुटि रह जाय तो उसे नये सिरे से बनाना चाहिए । पुनः पुनः एक ही विषय को लेकर चित्रण किया जाय तो हानि क्या है । किसी चीज़ को एक ही ढंग से आँका जाय—यह दुराग्रह ठीक नहीं है । चित्रकर्म साधना से सफल बनाना चाहिए । अवनी बाबू के चित्रों में उनकी आत्मा प्रतिबिम्बित हो उठी और अंतर के रस में डूब कर 'भारत माता' 'राधाकृष्ण' और 'उमरखैय्याम' की चित्रावली 'तिष्यरक्षिता', 'शकुन्तला' 'कजरी', 'देवदासी', 'अभिसारिका', 'भगवान तथागत', 'हर पार्वती', 'सती', 'गणेशजननी', 'दुर्गा', 'कमला', ''अर्जुन', 'विरही यक्ष', 'पनिहारिन', 'माँ' 'सन्थाल युवती', 'बालक', 'मयूर', 'नर्त्तकियाँ', 'अंजना', 'माँझी', 'वियोगिनी', 'ध्यान मग्ना', 'प्रेयसी', 'पुजारिन', 'सुप्ता', 'युवती', 'एक युवती और दो सखियाँ', 'स्वतन्त्रता का स्वप्न', 'पद्म पत्र में अश्रुबिन्दु', 'वैतालिक', 'रेगिस्तान में संध्या', 'औरंगज़ेब का बुढ़ापा', 'रवीन्द्रनाथ का महा-

उमा

प्रयाण', 'दीनबन्धु ऐण्ड्रूज़', 'गाँधी जी की दांडी यात्रा', 'कृष्ण मंगल' के तैंतीस चित्र––इस प्रकार कितनी ही उत्कृष्ट कृतियाँ उनकी भावनाओं की सच्ची प्रतीक बनकर प्रकट हुई जो कलाकारों का सदैव पथप्रदर्शन करती रहेंगी।

चित्रों में सहज, सरल, स्वाभाविक विश्वासों को उतार देना, यहाँ तक कि मानव-मन की गहराइयों में पैठ कर सूक्ष्मतम भावों की अभिव्यंजना करना ही उनका ध्येय रहा। हर चीज़ को वे मौलिक रूप में ग्रहण करते थे। जो उनका अपना न था उसे भी वे आत्मीय भाव से ग्रहण करते और अपना बना लेते। जापानी कलाकार टाइकान और हिशिदा से भी वे प्रभावित हुए थे, फलत: जापानी, ईरानी, चीनी और अन्य विदेशी तत्त्वों को आत्मसात् करके वे उस रूप-विधान में समर्थ हुए, जो भारतीय कला को नई दिशा, नई कल्पना, नया अर्थ और गहराई दे सका। उनकी कला का सर्वश्रेष्ठ अवदान है भारतीय कला को, उसके इतिहास को, उसके गौरव को समझना, प्राचीनता और नवीनता का सामंजस्य करके अभिव्यक्ति को सबल और समयानुकूल बनाना।

अवनी बाबू ने पूरी शक्ति से कला के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टिपात करके एक समन्वयशील पथ अपनाया था। वे सृजन को एकदेशीय अथवा किसी प्रकार की संकीर्ण परिधि में बन्दी न बनाना चाहते थे। अनुभूति और विश्वास साधना से प्राप्त होते हैं और गंभीर साधना से ही कला की सच्ची उपलब्धि होती है। उन्होंने विविध कला-धाराओं का निकट अनुशीलन कर आत्म-चिन्तन द्वारा द्वन्द्व-संघर्ष से परे उस समझौते का मार्ग खोजा था जहाँ मानव की सर्जनात्मक प्रतिभा का समाधान, बहुविध तत्त्वों का समन्वय और आदान-प्रदान तथा जहाँ एक दूसरे की पूरक शक्तियाँ वैयक्तिक और सामाजिक मतभेदों का नेतृत्व करती है।

उनके चित्रों में प्रेम, आकर्षण, भक्ति, वात्सल्य और पार्थिव-अपार्थिव सम्मोहक भाव हल्के-गहरे रंगों में उभर आए हैं। कहीं रूमानी, कही विचित्र नीरव रहस्यात्मक कुहासा, कहीं उच्छ्वसित तरंगित भाव और कहीं अवसाद की धूमिलता उनकी सर्जना में एक गरिमामयी छन्दोबद्धता के साथ लहर लहर उठती है। उनमें यदि एक युगद्रष्टा कलाकार की जागृति और एक महान् सर्जक की चेतना थी तो एक साधक की समन्वयता और अनन्यता भी। चित्रों में उनकी मानवता और उदार समन्वयशील प्रवृत्तियाँ इतनी खुलकर व्यक्त हुई कि जीवन के अनेकों स्तरों में उनका अवतरण हुआ।

अपने लघुचित्रों में अवनी बाबू ने मुग़ल, राजपूत और पहाड़ी चित्रशैली के अनुरूप रंगों को ढाला, किन्तु ऐसे चित्रों में रूप, कल्पना, रंग-रेखाएँ और सधा चित्रण मुग़ल, राजपूत और पहाड़ी कलाविदों को भी मात कर गया। उनकी कला-टेकनीक, दृष्टिभंगी और विषयों के चुनाव का इतना व्यापक फैलाव था कि किसी एक सीमा में उसे आबद्ध नहीं किया जा सकता। जीवन के विविध रूप, चिंतन, दार्शनिकता, वैचारिक संघर्ष, सत्य-असत्य और नश्वर-अनश्वर को इस कला-शिल्पी ने बड़ी सूक्ष्म तूलिका से अंकित किया है। मानस सुषमा के अक्षय कोष में उनकी कला के अस्तित्व के सूत्र थे जो प्रबल उद्वेगों और जीवन की नैराश्यपूर्ण परिस्थितियों में भी विच्छिन्न न होने पाए। उनकी आत्मा की अनुभूति इतनी प्रखर हो चुकी थी जो उनकी दीर्घकालीन साधना से भी शिथिल न हुई। उनकी समन्वयशील बुद्धि दूर तक रमी, इतनी शैलियों और देशी-विदेशी कला-परम्पराओं को समेटती गई कि बहुतों को उनमें विसंगतियाँ नज़र आई। उनकी कला-शैली का काफ़ी दिनों तक विरोध हुआ और उन्हें जीवन में उपेक्षा भी सहनी पड़ी।

यद्यपि उनके ज्योतिर्मय जीवन में विपत्तियों की कुहेलिका छा गई, उन्हें दुश्चिन्ताओं और धनाभाव से त्रस्त होकर अपनी उत्कृष्ट कलाकृतियों से भी हाथ धोना पड़ा, तथापि अपने साधना के पथ पर निर्द्वन्द्व और निर्बाध गति से वे अग्रसर होते रहे, जहाँ उनके सृजन की प्रेरणा कभी शिथिल नही हुई। वृद्धावस्था में उन्हें चित्रण से अधिक खिलौनों के निर्माण और लकड़ी के टुकड़ो, टहनियों, घास के तिनकों से विविध आकृत्तियाँ बनाना अच्छा लगता था। वे कहा करते थे 'वृद्धावस्था दूसरी बाल्यावस्था है। इसलिए मुझे खिलौना बनाने में बहुत ही मज़ा आता है।' लकड़ी के टुकड़ों को छीलकर उसमें किंचित् तराश और कटाव करके वे उसमे आँख लगा देते और तत्क्षण वह घड़ियाल या अन्य कोई जानवर बन जाता। बाँस की गाँठ और पेड़ की ठूँठ से उन्होंने सिंह आदि कितनी ही पशुओं की मुखाकृतियाँ बनाई थीं। मिट्टी के हल्के-फुल्के खिलौनों में भी उन्होंने अंतर का वह उल्लास व्यक्त किया जो खेल-खेल में नये प्रयोग बन गए। रवीन्द्रनाथ ठाकुर के शब्दों मे—'जब कभी मैं सोचता हूँ कि बंगाल में सर्वाधिक सम्मान का अधिकारी कौन है तो मेरे समक्ष सबसे पहला नाम अवनीन्द्रनाथ ठाकुर का आता है। उन्होंने देश को आत्महनन के त्रास से बचा लिया। पतन और ग्लानि के गहरे गर्त्त से निकालकर उन्होंने उसे वह सम्मान्य स्थान दिलाया जिसका कि

वह अधिकारी था। उन्होंने अब तक मानवता की जो श्रेष्ठता प्राप्त की है और उसमें भारत की जो देन है, उसका श्रेय उसे दिलवाया। उन्होंने देश की कला चेतना को पुनः जाग्रत कर एक नवीन युग का समारम्भ किया। उन्ही से भारत ने अपने विस्मृत अतीत के गौरव का नया पाठ पढ़ा है।"

नमाज़

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर

सीढ़ियों में भेंट

भारतीय कला में जब नये अंकुर फूट रहे थे तब गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ऐसी मौलिक प्रतिभा लेकर अवतीर्ण हुए जिन्होंने अपनी संकल्पशील उद्दाम तेजस्विता से सर्वथा नई दिशा अपनाई। इनमें और अन्य कलाकारों में यह अन्तर था कि अब तक के कला-सिद्धान्त, रूप, प्रयोग, टेकनीक एवं प्रवृत्तियों का इन्होंने नये ढंग से पाश्चात्य पद्धति पर परीक्षण और संस्कार किया। भारतीय कला के पुराने परम्परागत साँचों के प्रति विद्रोह भाव से प्रेरित होकर नहीं, अपितु एक मेधावी मर्जक की भाँति कला में स्फूर्त्ति लाने के लिए उन्होंने नई उगती शक्ति को प्रश्रय दिया। इनके पास राजपूत और मुग़ल शैली की चित्रावली का बहुत बड़ा संग्रह था, फलतः इनकी सर्जनात्मक पनपती प्रतिभा पर इन चित्रों का क्रमशः सूक्ष्म अदृश्य प्रभाव पड़ रहा था।

सहजात सृजनाकांक्षा तो उनमें थी ही, सुख-चैन, धन-वैभव और अवकाश ने कूची और रंगों मे मनमानी खिलवाड़ करने की उन्हें छूट दे दी। अपनी अंतर्नुभूतियों और मन की विचित्र झोंक को उन्होंने रहस्यपूर्ण रंगों में व्यंजित किया। यद्यपि उनकी कला में कोई निश्चित तरतीब न थी, तथापि उनका चित्र-सृजन केवल रईसी विलास मात्र नहीं कहा जा सकता। एक प्रखर चित्रस्रष्टा होने के नाते कुछ निजी, कुछ पराया, कुछ नवीन, कुछ अनूठा देने की भावना और संकल्प था उनमें। वह पाश्चात्य टेकनीक और भावधारा को अपना कर पुरानी चिरपरिचित लीक से आगे बढ़ना चाहते थे। यूरोप में 'इम्प्रेशनिज़्म' और 'क्यूबिज़्म' का उस समय काफी जोर

था। क्यूबिक कलाकारों का मत है कि जिस चपटी सतह पर वे चित्र आँकते हैं वह द्विकोण होती है।, अतएव उसपर अंकित आकृतियाँ, वस्तुएँ और दृश्यचित्र भी त्रिकोण की बजाय द्विकोण ही होनी चाहिए। लेकिन वे चित्रांकन करते हुए वस्तु को द्विकोण न बना कर उसे इस पद्धति से घनाकृति (क्यूब) में दर्शाते थे कि वस्तु का सामने का भाग, पीठ पीछे, ऊपर व उसके भीतर की संस्थिति, किंचित् रंग-पाटव और रेखाओं की इतस्ततः खरोंच से इसी चपटी सतह पर बिना किसी आयास के उभर आते थे।

इसके विपरीत इम्प्रेशनिस्ट अर्थात् प्रभाववादी कलाकार वातावरण की प्रभावोत्पदकता के लिए धुंधले रंगों का प्रयोग आवश्यक समझते हैं। वे वस्तु को स्थूल रूप में उभारना पसन्द नहीं करते, वरन् रंग-भ्रांति, रूपगोपन और मिश्रित प्रकाश-छाया की झिलमिल गहराई लाने के लिए पृथक्-पृथक् रंगों की एक के ऊपर एक इस तरह 'टोनिंग' सी करते हैं। 'इम्प्रेशनिज़म' का महान् आविष्कर्त्ता माने था जिसने अपनी एक पेंटिंग को अकस्मात् अबूझे ही 'इम्प्रेशन' नाम दे दिया था। उसके बाद मोने, सेज़ाँ आदि कलाकारों ने इस परिपाटी को आगे बढ़ाया। ये सभी फ्रेंच कलाकार थे और उन्होंने अपनी इस नई शैली से प्रमुख देशों की कला को प्रभावित किया था।

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर इन्ही पाश्चात्य कला-शैलियों से आकृष्ट हुए। उन्होंने अकल्पनीय सम्मोहक छायालोक को सृष्ट कर अपने चित्रों में ऐसे रहस्यमय रंगों की सर्जना की जिसने पृष्ठभूमि में रेखाएँ उभारकर उन्हें अपनी निर्वाक् गरिमा से ढक लिया। 'इम्प्रेशनिज़म' और 'क्यूबिज़म' के प्राथमिक अनुभूत प्रयोगों में सामजंस्य स्थापित कर अपनी बरबस निर्माणात्मक कर्मशील प्रवृत्ति द्वारा चिर अमूर्त्त को नव्य मूर्त्त कर रहस् संकेतों में गगेन बाबू ने एक ऐसे अंतर्वातावरण की सृष्टि की जिसने कितने ही जादूभरे विचित्र रंग आँखों के आगे उँड़ेल दिए। कलापट पर बिखरा यह धूपछाँही सौंदर्य मन को विस्मित कर लेता है। पर इनकी कला की भावमयी गरिमा ऊब-भरी मनहूसियत लिये नहीं है। पौराणिक प्रेरणा भी उनके कृतित्व के मूल में नहीं कही जा सकती, वरन् इनके अवर्णनीय रूप-चित्रों में दृष्टि को चमत्कृत करने वाला सौंदर्य-रस छलकता है जो मन को अभिभूत कर लेता है।

उन के चित्रों में चाहे वे उषा की लालिमा लिये हों, या साँझ की क्रमशः मलिन होती आभा, अथवा कुहरा छाई रातों में गली के टिमटिमाते लैम्पों का मन्द प्रकाश हो या हिमालय प्रदेश में वर्षाकालीन दूर फैले मैदानों का

मोहक नज़ारा-सभी में ज़िन्दगी का राग और एक अखण्ड रसमय सौंदर्य-चेतना की दीप्ति है। उनकी घनाकृतियाँ ऐसी नहीं कि जो समझ में न आएँ, पाश्चात्य कलाकारों के 'क्यूबिज़म' का वे मात्र अंधानुकरण नहीं, बल्कि उनमें विशदतर एवं गम्भीरतर भाव एवं सौंदर्य निहित है। पश्चिमी घनाकृति चित्रों में कलात्मकता का समावेश वहाँ तक अभीष्ट है जहाँ तक कि चिंतन तत्त्व तदनुकूल वातावरण सृष्ट करने में सहायक हो। प्राय: प्रतीकों के उभार और संस्थिति में उनकी शक्ति इतनी केन्द्रित हो जाती है कि बाहरी सौष्ठव एवं सज्जा पर उनका विशेष ध्यान नहीं रहता। यहाँ तक कि मातीस और पिकासो जैसे महान् कलाकारों के चित्र भी कई बार इस कसौटी पर कलाहीन और अनाकर्षक से जँचते हैं। इसके विपरीत गगेन बाबू के कतिपय चित्रों में प्रकाश और अंधकार का शाश्वत संघर्ष दर्शाया गया है, लेकिन इस संघर्ष में सौंदर्य व्याप्त है और अंधकार के अवसाद को परास्त कर प्रकाश उस पर हावी हुआ है। उनके हर चित्र में सृजन की स्फूर्त्ति और उत्साह का ऐसा आलोक पूंजीभूत हुआ है कि उसमें शैथिल्य और अवसाद तिरोहित सा लगता है। 'मृत्यु' चित्र में भी उनकी रहस्यमयी प्रकृति सजीव होकर विहँस सी रही है। उनके रेखा और रंग हवा में तैर कर अलाउद्दीन के जादुई चिराग़ के से क़रिश्मे दिखाकर विलीन हो जाते हैं, किन्तु उसके चारों ओर के छाया सत्य के भीतर से कोई संगत, सहज, साध्य स्वरूप उभर आता है। जहाँ उन्होंने अपने कौतुकप्रिय मनमौजी स्वभाव से प्रेरित होकर अरबी ढंग की घना-कृतियाँ एवं समानान्तर अथवा अथवा अक्ष रेखाएँ आँकी हैं, वहाँ भी उनक चिन्त्य विषय प्रकट हो गया है। ओ० सी० गाँगुली के शब्दों में—"अत्यन्त सूक्ष्म समानान्तर रेखाओं से इन्होंने बड़ी ही आकर्षक 'हिमालय में बरसाती मैदान' का नज़ारा प्रस्तुत किया है। प्रकाश और छाया की असमाप्त त्रिकोण रेखाओं से एक बन्दी राजकुमारी का अनूठा अफ़साना व्यंजित किया है तथा एक 'नृत्य करती बालिका' के लहंगे की झिलमिलाती तहों से घनाकृति उभारी है जिसने मूल विषय को अपने आप में आवृत्त नही किया है।"

किन्तु जब कभी उनके रूपाकार अति भावुकता या सौंदर्य की खीचतान मे सर्वथा नई लकीरें बनाते चलते हैं, तो उनमें अभिव्यक्त निरी कल्पना और चित्रात्मकता उन्हें सारहीन, अस्पष्ट और दुर्बोध बना जाती है। उन में बाह्य आकर्षण का ह्रास तो होता ही है, व्यंजना भी दुरूह हो जाती है।

गगनेन्द्रनाथ ठाकुर को अत्यधिक चित्रण का शौक था। रूपहले-सुनहले

चमकते गत्तों पर और कभी सिल्क पर भारतीय स्याही में जिस में इतस्ततः हरे व लाल रंगों की अद्‍भुत छटा दर्शनीय है, वह जल्दी-जल्दी सधी उंगलियों से तिकोन, चौकोर, गोल, सीधी, घनाकार रेखाओं से भाँति-भाँति के चित्र आँकते थे। प्रारम्भ में जापानी चित्रकला ने उन्हें प्रेरित किया। काकुजी आकाकुरा का प्रभाव उन की प्राथमिक कलाकृतियों पर द्रष्टव्य है। 'भारतीय कौवे' शीर्षक चित्र में रंग-विधान और प्रकाश-छाया का कलात्मक निदर्शन लगभग इसी ढंग का है। अपनी परवर्त्ती कलाकृतियों में उन्होंने सुप्रसिद्ध जापानी चित्रकार ओगाता कोरिन का प्रभाव आत्मसात् करने का प्रयत्न किया, परन्तु ऐसी चित्रकला की दृष्टि से विशेष सफल नहीं हुए। हाँ, निशा दृश्यों के चित्रण में उन्होंने अनेक स्थलों पर जापानी चित्रकारों को भी मात दी है। खासकर आधी रात में गुज़रते जलूस, आनन्द और मौज भरे उत्सव, मंदिर और धर्मस्थलों में उमड़ती भीड़ को चित्रित करने में झिलमिल प्रकाश-छाया का जो अनूठा वातावरण प्रस्तुत किया गया है, उसमें चीनी रोशनी और असंख्य झाड़-फनूसों की शोभा को फीका कर दिया है।

पौराणिक विषयों और कल्पित आख्यानों को लेकर यदाकदा बनाये गए उनके चित्र भी बड़े ही सुन्दर बन पड़े हैं। 'माँ से विदा लेते समय चैतन्य का भक्ति-विह्वल कीर्त्तन' तथा अन्य कितने ही चित्रों में इस बंगाल के संत की विमोहक भाव-भंगिमाओं के दर्शन होते हैं। ग्राम्य हरीतिमा के क्रोड़ में बनी कुटिया का दृश्य और सिल्क पर बनी उनकी वह पेंटिंग जिसमें जगन्नाथपुरी के निकट समुद्र के किनारे रेत के एकाकी टीले पर श्री चैतन्य महाप्रभु गम्भीर चिन्तन मुद्रा में बैठे हैं और जल की उत्ताल लहरें उनके पावन चरणों को स्पर्श कर रही हैं, बड़ी ही यथार्थ और व्यंजक ज्ञात होती हैं। चन्द्र ज्योत्स्ना श्री चैतन्य की मुख दीप्ति को इस प्रकार द्विगुणित कर रही है कि निर्जन में उनकी उन्मुक्त आत्मा अमर शान्ति का सन्देश दे रही है। अनेक चित्रों में जहाँ कलाकार की आत्मा की गहराई पर्त्तों में से झाँकती है, एक सचेत जिज्ञासा की परिवृत्ति जादू का सा असर करती हुई दर्शक के मन पर छा जाती है। 'एकान्त गीत' में अद्‍भुत शान्ति, एकाकीपन व शोक का गहरा भाव है तो 'रहस्य का घर', 'स्वप्नदेश', 'मेरा अन्दरूनी बाग', 'सुबह का तारा', 'रहस्यमय घुड़सवार', 'परी देश' आदि कलाकृतियों में अन्तर के उखड़े-पुखड़े सपने साकार हुए हैं। मैसूर चित्रशाला में रखी इनकी एक पेंटिंग 'बन्दी प्रकाश' में और भी असाधारण तल्लीनता और विस्मृति का भाव है, कलाकार ने मानो

भगोड़े प्रकाश को इस चतुराई से अपनी जकड़बन्दी में गिरफ्तार किया है कि दहलीज, ज़ीने, तहखाने और किवाड़ों की दरार और झरोखों से उभरता हुआ प्रकाश सहमा रुक कर अंधकार को भासमान कर रहा है। 'राँची में संध्याकाल' के दृश्य में देशी सौंदर्य और भारत की ग्राम्य खुशहाली का दिग्दर्शन होता है।

गगेन बाबू प्रयोगी थे और उनके कतिपय अभिनव प्रयोगों एवं परीक्षणों में गहरी बौद्धिक पैठ थी। चित्रों के अलावा उन्होंने आकृतियों और छवि-चित्रों का भी निर्माण किया। विश्व कवि टैगोर और सर जे. सी. बोस के बहुत सुन्दर छवि-चित्र उन्होंने अंकित किये हैं। उनके व्यंग्य चित्र भी हैं जिनमें तीखी व्यंजना और दिल को बेधने वाला पैनापन है। 'कानून की शक्ति में' आदि व्यंग्य-चित्र बड़े ही सफल बन पड़े हैं। उन्होंने हिमालय की सौंदर्यमयी, गरिमा और पावनता का भी चित्रण किया है। 'प्रकाश की प्रथम रेखा' में हिमालय की ऊँची चोटियों पर उदित होते सूर्य की छिटकी किरणों से अरुणाभा फूट रही है जो बर्फ़ के साथ अठखेलियाँ करती हुई रंग-बिरंगा प्रकाश बिखेरती है। गगेन बाबू के मन की विचित्र झोंक और आवेश से अंकित कितनी ही ऐसी कलाकृतियाँ हैं जो निजी गम्भीरता और वैचित्र्य से दर्शक को अभिभूत कर लेती हैं।

ये अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के बड़े भाई थे। इकहत्तर वर्ष तक की आयु को भोग कर कला को एक अर्से तक अपना अमूल्य अवदान देते रहे। बर्लिन और हैम्बर्ग में इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ हुई और विदेशी कला मर्मज्ञों ने 'एक्सप्रेशनिज़्म' (अभिव्यक्तिवाद) के सफल चित्रण के लिए इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की। सन् १९१४ में पेरिस में, १९२७ में अमेरिका में और १९३४ में लन्दन में इनकी कला को समर्थन मिला और इस प्रकार विश्वव्यापी ख्याति

रहस्यमय घुड़सवार

इन्हें प्राप्त हुई। 'दि इंडियन सोसाइटी ग्राफ ग्रोरियन्टल ग्रार्ट' की स्थापना इन्ही की ग्रदम्य प्रेरणा का परिणाम थी। उसमें कितने ही प्रभावशाली व्यक्तियों—खासकर ब्रिटेन वालों की जिसमें ज़ेटलैंड के मारकिस सर जान वुड्रोफ ग्रौर पर्सीब्राउन ग्रदि मुख्य थे, संरक्षकता रही ग्रौर यह संस्था ग्रर्से तक भारतीय कला का नेतृत्व करती रही, यहाँ तक कि बंगाल स्कूल की प्रगति के बीज भी इसी में निहित थे।

गगेन बाबू के चित्रों का महत्त्वपूर्ण संग्रह बम्बई के प्रिंस ग्राफ वेल्स म्यूज़ियम, मैसूर के जगमोहन पैलेस, श्री चित्रालयम्, त्रिवेन्द्रम, हैदराबाद म्यूज़ियम भारत कला भवन, बनारस, कलकत्ता की ग्राशुतोष म्यूज़ियम ग्राफ इंडियन ग्रार्ट तथा ज़ेटलैंड के मारकिस के साथ हैं। युग की गतिविधि को लक्ष्य में रखते हुए इन्होंने जो कला में उदात्त सिद्धियाँ प्राप्त की वे ग्राज के कलाकारों को विस्मित तो कर ही रही है, भविष्य में भी उन्हें कला पथ पर उन्मुख करती रहेंगी।

नन्दलाल वसु

"......न जाने किस मधु-यामिनी में
कोई तुम्हारी पलकों में अंजन लगा गया,
तभी तो तुम्हारी आँखों के तारों ने ऐसी सृजन-दृष्टि पाई है।
तुम्हारी जन्म की थाली अमर पुष्पों का उपहार
रूप के लीलामय लेखों से भरपूर पारिजात की डलिया सजाकर लाई है।
अप्सराओं के नृत्य तुम्हारी तूली की नोंक पर थिरक उठे हैं।
जो मायाविनी असीम देश-काल के पट पर
कभी हरे, कभी नीले अथवा कभी लाल रंगों से
चौक पूरती या पूरकर मिटा देती है
अथवा कभी संध्याकाश के मलिन मेघों में
अपना रंगीन उपहास बिखेर देती है,
उसी मायाविनी ने अपनी रंग जगाने वाली सुवर्णमयी
जादूभरी लकुटी से तुम्हारा भाल छू दिया है,
विश्व तुम्हारे निकट न जाने कितने इशारे भेजा करता है और तुम भी
उसके समीप अपने मन चाहे न जाने कितने संकेत प्रेरित करते हो
.........जो चिर बालक विश्व-छवि आँककर खेला करता है, तुम
उसी के समवयस्क होकर मिट्टी के खेल-घर में खेला करते हो।
तुम्हारी इस तरुणाई को वयस क्या कभी ढक सकती है ?
अपने खेल के बेड़े पर अपने प्राणों को तुम असीम की ओर बहाया करते हो।"

नन्द बाबू की गतिशील, सशक्त अन्तर्प्रेरणा का उल्लेख करते हुए विश्व-कवि टैगोर ने एक अन्य स्थल पर लिखा था—

"जिस नदी में धार कम होती है वह सेवार के व्यूह जमा कर लेती है, उसके आगे का पथ रुद्ध हो जाता है। ऐसे बहुतेरे शिल्पी साहित्यिक हैं जो अपने अभ्यास और मुद्रा भंगिमा के द्वारा अपनी अचल सीमा बना लेते हैं। उनके काम में प्रशंसा के योग्य गुण हो सकते हैं, मगर वे मोड़ नहीं घूमते,

आगे बढ़ना नहीं चाहते, निरन्तर अपनी अनुकृति स्वयं ही करते रहते हैं। अपने ही किये कामों में अनवरत चोरी करते रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि अपनी प्रतिभा के यात्रा-पथ में अभ्यास की जड़ता के द्वारा इस सीमाबंधन को नंदलाल कभी सहन नही कर पाते हैं। उनके भीतर

मेले से लौटते हुए

नन्दलाल वसु

"......न जान किस मधु-यामिनी में
कोई तुम्हारी पलकों में अंजन लगा गया,
तभी तो तुम्हारी आँखों के तारों ने ऐसी सृजन-दृष्टि पाई है।
तुम्हारी जन्म की थाली अमर पुष्पों का उपहार
रूप के लीलामय लेखों से भरपूर पारिजात की डलिया सजाकर लाई है।
अप्सराओं के नृत्य तुम्हारी तूली की नोंक पर थिरक उठे हैं।
जो मायाविनी असीम देश-काल के पट पर
कभी हरे, कभी नीले अथवा कभी लाल रंगों से
चौक पूरती या पूरकर मिटा देती है
अथवा कभी संध्याकाश के मलिन मेघों में
अपना रंगीन उपहास बिखेर देती है,
उसी मायाविनी ने अपनी रंग जगाने वाली सुवर्णमयी
जादूभरी लकुटी से तुम्हारा भाल छू दिया है,
विश्व तुम्हारे निकट न जाने कितने इशारे भेजा करता है और तुम भी
उसके समीप अपने मन चाहे न जाने कितने संकेत प्रेरित करते हो
.........जो चिर बालक विश्व-छवि आँककर खेला करता है, तुम
उसी के समवयस्क होकर मिट्टी के खेल-घर में खेला करते हो।
तुम्हारी इस तरुणाई को वयस क्या कभी ढक सकती है?
अपने खेल के बेड़े पर अपने प्राणों को तुम असीम की ओर बहाया करते हो।"

नन्द बाबू की गतिशील, सशक्त अन्तर्प्रेरणा का उल्लेख करते हुए विश्व-कवि टैगोर ने एक अन्य स्थल पर लिखा था—

"जिस नदी में धार कम होती है वह सेवार के व्यूह जमा कर लेती है, उसके आगे का पथ रुद्ध हो जाता है। ऐसे बहुतेरे शिल्पी साहित्यिक हैं जो अपने अभ्यास और मुद्रा भंगिमा के द्वारा अपनी अचल सीमा बना लेते हैं। उनके काम में प्रशंसा के योग्य गुण हो सकते हैं, मगर वे मोड़ नहीं घूमते,

आगे बढ़ना नहीं चाहते, निरन्तर अपनी अनुकृति स्वयं ही करते रहते हैं। अपने ही किये कामों में अनवरत चोरी करते रहते हैं।

मैं जानता हूँ कि अपनी प्रतिभा के यात्रा-पथ में अभ्यास की जड़ता के द्वारा इस सीमाबंधन को नंदलाल कभी सहन नही कर पाते हैं। उनके भीतर

मेले से लौटते हुए

कितने ही दिनों से देखता आ रहा रहा हूँ कि यह विद्रोह सर्वत्र ही सृजन-शक्ति के अन्तर्गत है। यथार्थ सृजन पिटेपिटाये मार्ग पर नही चलता है। प्रलय-शक्ति की यह चंचलता उसके लिए रास्ता बनाती रहती है। सृजन-कार्य में जीवनी-शक्ति की यह चंचलता प्रकृति-सिद्ध है।"

अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के पश्चात् जो सबसे विख्यात् कलाशिल्पी भारत को विरासत के रूप में मिला उनमें नन्दलाल वसु से बढ़कर उस पीढ़ी में कोई और न था। कला की प्रगति में उन्होंने जो योगदान दिया वह महान् और गर्व की वस्तु है।

मंगल कलश

बाल्यावस्था से प्रौढ़ावस्था तक उनकी प्रतिभा का विकास इस गत्य-वेग से हुआ जो विस्तार में क्षितिज के ओर-छोर छूता हुआ भी भीतर ही भीतर मर्यादित और घनीभूत होकर आविर्भूत हुआ। साधना के अनंत पथ पर उन्हें कठिनता से ही पकड़ा जा सकता है। उनकी कला की महत्ता आँकने के लिए उनके सृजन की तह में पैठना होगा, उनकी असाधारण अंतश्चेतना में झाँकने के लिए उनकी कला के अंतरतम को खोल कर देखना होगा, उन्होंने स्वयं लिखा है—'शिल्प-साधना में शिल्पी सम्पूर्ण रूप से लय हो जाता है। कलाकार का अपना व्यक्तिगत भावावेग, आकांक्षा और संस्कार ही सब कुछ है। किन्तु किसी क्षण वह एक भाव के आवेग से विचलित हो रहा है और दूसरे क्षण सर्जन करने बैठ अपने आवेग से अपने को मुक्त कर लेता है, तब विषय लिप्त उसकी अपनी कोई आकांक्षा या आसक्ति

नहीं रहती। व्यक्तिगत उपलब्धि की तीव्रता ने निर्वैयक्तिक रूप धारण कर लिया है। सृजन के समय शिल्पी अपने व्यक्तित्व से ऊपर चला जाता है और उसका विषय भी आवेग से भावना के रस में पहुँच जाता है।"

उम्र पाते ही उन्हें अवनीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे महान् कलाचार्य की प्रेरणा का बल मिला, किन्तु गुरु और शिष्य का भेद होते हुए भी अपनी उद्दाम चेतना के कारण वे समानान्तर लीक पर ही सम्मुख आए, प्रत्युत् यों कहें कि कल्पना वैभव, पर्यवेक्षण शक्ति, उच्च कलाकारिता और अपने दृष्टिकोणों के उत्कर्ष पर पहुँचने में वे अपने गुरु से भी आगे बढ़ गए।

उन्नीसवीं शती के अन्तिम चरण तक आधुनिक भारतीय कला का विषय विस्तार बहुत व्यापक न था। यद्यपि कलाकार नये दृष्टिकोण लेकर आगे बढ़ रहे थे और विदेशी प्रभावों से भी एक हद तक मुक्त हुए थे, तथापि कला का अभी कोई सुनिश्चित पथ न था। नन्द बाबू ने अपनी बहुमुखी प्रतिभा से आधुनिक कला के प्रवर्त्तन और उसकी परम्परा के संगठन में अभूतपूर्व योगदान दिया। कैसे दो महान् कला शिल्पी एक दिन अप्रत्याशित रूप से आ मिले थे—इसका रोचक वर्णन स्वयं अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने 'जोड़ासाँकोर धारे' में किया है—

"कुछ दिन बाद सत्येन बटबल नामक एक एन्ग्रेविंग का विद्यार्थी एक लड़के को लेकर आया। वह आकर कहने लगा—'इसे आपको अपनी क्लास में लेना पड़ेगा।' उस समय तो मैं मास्टर था न? मैंने गम्भीरता से आँखें ऊँची करके देखा—श्यामल वर्ण का बैठे क़द का एक लड़का। मैंने पूछा 'कुछ पढ़ना लिखना सीखे हो?' उसने कहा–'मैट्रिक पास हूँ। एफ० ए० तक पढ़ा हूँ। मैंने कहा—'देखूँ, तुम्हारे हाथ का काम।'

उसने एक चित्र दिखाया। एक कन्या और एक हरिण और लता-पल्लव, पेड़-पौधे–उसने शकुन्तला चित्रित की थी। वह आजकल की छोकरियों जैसी मोटी थी। मैंने कहा–'यह यहाँ नहीं चलेगा। कल सिद्धिदाता गणेश का एक चित्र बना कर लाओ।' अगले दिन वह आया। एक लकड़ी पर ध्वजा स्थापित करके उसमें सिद्धिदाता गणेश का चित्र अंकित किया था। प्रातःकालीन सूर्य के वातावरण से मिलाकर सुन्दर चित्र बनाया था। मैंने कहा—'शाबाश'! उसके साथ उसके श्वसुर थे। उनका चेहरा सुन्दर था। उन्होंने कहा, 'इस लड़के को आपके हाथ सौंपता हूँ।' मैंने उनसे कहा—'अधिक विद्याभ्यास करता तो अच्छा धंधा प्राप्त कर लेता?' लड़के ने उत्तर दिया

"विद्याभ्यास करूँ तो भी तीस रुपये से अधिक कमाई तो होने की नहीं। इसमें मैं उससे अधिक प्राप्त कर सकूँगा।' मैंने कहा—'तब तो मुझे कोई आपत्ति नहीं है।' तब से वह लड़का, जो और कोई नहीं नन्दलाल था, मेरे पास रहने लगा। इस प्रकार सुरेन गांगुली और नन्दलाल के साथ मैंने कार्य प्रारम्भ कर दिया।"

कालान्तर में नन्दबाबू के चिंतन का अक्षय कोष और जीवन की विविधताएँ ही नई-नई कला-शैलियों के रूप में प्रवर्तित हुई जो भारतीय कला को निश्चित दिशा प्रदान करती गईं। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा जिस 'बंगाल आर्ट' की स्थापना हुई थी उसके स्वरूप का परिष्कार करने में उन्होंने कुछ उठा न रखा। उन्होंने सीधे अजंता और बाघ गुफाओं के चित्रांकन से प्रेरणा प्राप्त की थी। अपने सहपाठी असित कुमार हाल्दार के साथ वे अजंता गये और वहाँ से लौट कर ग्वालियर स्टेट में बाघ गुफाओं का अवलोकन किया। अतीत के इस कला-वैभव

में झाँककर वे आश्चर्यान्वित रह गये और उससे प्रेरणा प्राप्त कर उस कला-सर्जना में मग्न हो गये जो नितान्त अपनी थी और भीतर उनके अंतरतम तक घंस गई थी। यों कला के क्षेत्र में वे नवजागरण का सन्देश लेकर आगे आये।

सन् १६२२ में रवीन्द्रनाथ ठाकुर नन्दबाबू को शान्तिनिकेतन के 'कला-भवन' का अध्यक्ष बना कर ले आये। दो वर्ष बाद जब रवीन्द्रनाथ ठाकुर चीन गये तो इन्हें भी अपने साथ ले गये। चीनी-जापानी कला-परम्पराओं को आत्मसात् कर और तैक़बान, क्वान्ज़ान, हिशिदा, आराई आदि कलाकारों की कला में उन की कला-शैली, रूप-विधान और सृजन-चमत्कार में संकीर्ण परिधियों से परे

जीवन की विविध अनुभूतियों का समावेश हुआ। कितने ही विशिष्ट चित्र विस्मृत अतीत के गौरव का स्मरण दिलाते हुए इस रहस्यमयी प्रेरणा-कल्पना से प्रसूत हुए।

सूक्ष्म को पकड़ने-आँकने की उनमें अद्‌भुत क्षमता थी। चूँकि उनकी बुद्धि सतत जागरूक और संचरणशील थी, उनकी रंग एवं रेखाओं की थिरकती गति के साथ स्पन्दित होती प्राणधारा के समान वह कलावृक्ष के पोषण का मूल कारण बनी, साथ ही कला उनके प्राणों की अखण्ड साधना भी थी। वह चमकीले रंगों के वैभव में नहीं, आत्मा की अन्तर्मुखी वृत्तियो में तद्‌रूप हो उठी। उनके मत से 'साधक की जो धारा है वही शिल्पी की भी धारा है। दोनों अपने-अपने पथ चलकर एक विशुद्ध सर्वगत आनन्द को प्राप्त करते हैं। दूसरी उपासना या व्रत-आचार का पालन न करने पर भी शिल्पी अपने कला-कौशल की सहायता से ही साधना करता है।'

नन्द बाबू सृजन में कलात्मक सम्पूर्णता के क़ायल थे। एक और वे अतीत की असंख्य मान्यताओं और परम्पराओं से प्रभावित थे तो दूसरी ओर वर्त्तमान कला की सम्पूर्ण गहराई में झाँककर नवीन आलोक में उन्हें जाँचने-परखने का अनथक प्रयास कर रहे थे। अपनी कलाभिरुचियों का धरातल ऊँचा उठाने के लिए उन्होंने जीवन के विभिन्न पहलुओं और उनकी व्याख्याओं का आह्वान किया। जबकि चारों ओर धुंध सी छाई थी और कलाकारों को निश्चित् पथ नहीं सूझ रहा था नन्द बाबू नई टेकनीक लेकर पुराकालीन मानव-अनुभूतियों की अमूल्य विरासत का प्रतिनिधित्व करने और युग-जीवन को अभिव्यक्ति देने के लिए कला को सांगोपांग व्यापक बनाने में जुट गये। उनकी सर्जना में वे तत्त्व उभरे जो सशक्त, प्रभावशाली और मुखर होकर प्रत्येक घटना और विभिन्न प्रेरक-स्रोतों के छोरों को छू सके। उनकी प्राणवत्ता कभी श्रांत

न हुई, उनकी अन्त-र्निहित शक्ति कभी खंडित नहीं हुई। अपनी अद्भुत कला-सृष्टि से उन्होंने समूची कला को नाप डाला।

निःसन्देह, नन्द बाबू कभी हार मानने वाले व्यक्ति नही थे। रहस्य जानकर भी जिसकी जिज्ञासा शांति न हो, निरावृत्त सत्य के सम्मुख भी जो अपनी साधना को भंग न होने दे — वही वस्तुतः सच्चा स्रष्टा है। उन्होंने स्वयं लिखा है—'स्वकीयता क्या है? कोई रचना करते समय एक विषय के अंतर्निहित सत्य को अपने चित्र-सम्मत रस के भीतर से या अपने प्रकृतिगत कौशल के भीतर से विशिष्ट रूप देना ही स्वकीयता है। जहाँ उसका सत्य तक बदल जाता है या ग़लत हो जाता है वहाँ किसी प्रकार स्वकीयता नही होती, अर्वाचीनता भले ही हो। यदि रूपवस्तु का अंतरंग हो जाय तभी उसमे शिल्प-विषय के साथ एकात्मकता का बोध हो सकता है।' नन्द बाबू अपने 'स्व' की सीमा में आबद्ध न थे, उनकी कृतियों में उनका प्रशस्त हृदय और विराट् भावनाएँ प्रतिबिम्बित हुई हैं। वे इस युग के भारतीय कलाकारों की केन्द्रीय विभूति थे। उनके हाथ से जो निकलता था, उनकी तूलिका जिधर चल पड़ती थी वह ही कला की अमर कसौटी बन जाती थी। एक सर्जक कला-कार के पूर्णत्व को उन्होंने पा लिया था—'सीमार माझे असीम तुमि' अर्थात् तुम सीमा के भीतर असीम हो। जीवन के कितने ही मोड़ों को उन्होंने पार किया था, विभिन्न परिस्थितियों से गुज़र कर वे आगे बढ़े थे—प्रारम्भिक

स्थिति में जब अतीत के मोह से छूटकर उन्होंने श्रम और साधना द्वारा नये-नये अनुभव और आविष्कार द्वारा समकालीनों के मध्य विशिष्ट पथ बनाया—और वह चरम स्थिति जब अनुकृति से ऊबकर वे अपनी अंतर्भूत शक्ति से परिचालित हुए, भीतर के उल्लास-ह्रास में अतर के तार-तार झंकृत हो उठे और रंगों की मृदुता और उत्फुल्लता में मूक अल्पज्ञ जनता के समक्ष कुछ अधिक व्यक्त न कर इतने अंतर्मुखी हो गये कि दूसरों के लिए नही बल्कि 'स्वातः सुखाय' कला की सृष्टि में विभोर रहने लगे। साधना की चरमता पाकर उनकी निर्वाक् अन्तर्वीणा से मानवता की परिभाषा चित्रों में प्रतिध्वनित हो उठी। शुरू में भारतीय अध्यात्मवाद से उन्होंने प्रेरणा प्राप्त की, पर बाद में सांस्कृतिक संगम की महत्ता सिद्ध करने में वे संलग्न हो गये। अतीत और आगत को उन्होंने सृजन के सुदृढ़ समन्वयात्मक सूत्र में पिरो दिया।

नन्द बाबू ने एक सहस्र से भी अधिक चित्रों का निर्माण किया था। उन की प्रारम्भिक कृतियाँ अजन्ता और बाघ गुफाओं से प्रभावित तो थी ही, हिन्दू 'देववाद' के भी वे प्रबल समर्थक थे। पौराणिक और धार्मिक विषयों से प्रेरित 'सती', 'शिव का विषपान', 'शिव-विलाप', 'शिव-ताण्डव', 'उमा की तपस्या', 'विरहिणी उमा', 'युधिष्ठिर की स्वर्ग-यात्रा', 'दुर्गा, 'यम-सावित्री, 'कैकेयी', 'अहिल्या', 'सुजाता', 'कर्ण' आदि चित्र बड़े ही उत्कृष्ट बन पड़े है। उन्होंने लाइन स्केच भी बनाये और रेखाओं द्वारा अत्यन्त सुकोमल एवं सूक्ष्म भाव भी व्यंजित किये। 'वीणावादिनी', 'नटीर पूजा', 'नटीर नृत्य' और अन्य कितने ही लाइन-चित्रों में रेखाएँ सजीव होकर बोल उठी हैं। कतिपय चित्रो में रेखाओं और रंगों का मार्दव सारे वातावरण पर छाया हुआ सा लगता है।

भिखारी

'गान्धारी', 'कृष्ण और अर्जुन' चित्रो में उनका अद्भुत सृजन-शिल्प का परिचय मिलता है। कहीं उषा की सी जीवनस्पर्शी रंगमयता उभर आई है और कहीं आवेश की रंगीनियों में प्रकृति की मनोरम दृश्यावलियाँ मुखर हो उठी हैं। 'वसन्त', 'जगन्नाथ मन्दिर के गरुड़-स्तम्भ के पास श्री चैतन्य', 'स्वर्णकुम्भ', 'स्वप्न', 'बसन्त,' 'नये मेघ' आदि में ज्योतिर्मय रंगों का सौन्दर्य प्रस्फुटित हो उठा है। नन्द बाबू के काम करने का क्षेत्र इतना विस्तृत था कि उसका सहज ही अन्दाज़ लगाना कठिन है। उनकी रेखाओं में इतना गत्यात्मक वेग था कि वे अजंता के कलाकारों के समकक्ष थीं। भारतीय कलाकारों में नंदबाबू ही अजंता से सबसे अधिक प्रभावित हुए। इसका यह अर्थ नहीं कि उन में अपनी मौलिकता का समावेश न था, अपितु उन्होंने अपनी अंतःशक्ति से नव्य शैली का प्रवर्त्तन कर अजंता पद्धति पर सहस्रों रूपाकृतियाँ निर्मित कीं और उनके चित्रण का ढंग, रीति-नीति, भंगिमाएँ, विभिन्न स्थितियाँ, रंग-नियोजन, अलंकार सज्जा बहुत कुछ वैसी ही होते हुए भी उनके चित्रशिल्प के वैभव की अछूती धरोहर थीं। उनके भीतर उमड़ती-घुमड़ती, हिलोरे लेती हुई असंख्य भाव लहरियाँ रंग-रेखाओं में उन्मुक्त रूप से विखर जाती थीं और उनकी कोई थाह नहीं थी।

नटीर पूजा

नन्द बाबू ने भित्ति-चित्रों का भी अत्यन्त सफलतापूर्वक चित्रांकन किया। लेडी हेरिंगहम नामक अंग्रेज़ महिला की प्रेरणा से ही, जो अजंता के चित्रों की ख्याति सुनकर भारत आई थी, उन्होंने अजंता के भित्ति-चित्रों का अंकन किया। सन् १६२१ में उन्होंने बाघ-गुफा के चित्रों की प्रतिकृतियाँ तैयार कीं। लखनऊ, फ़ैज़पुर और हरिपुरा के अखिल भारतीय काँग्रेस के तीन अधिवेशनों

बंगाल का बाउल

दुर्गा

के पंडालों की कलात्मक सज्जा भी उन्होंने महात्मा गांधी के आग्रह से अपने हाथों ही सम्पन्न की थी। हरिपुरा में ऐसे लोकचित्रों को आँका जो सर्वसाधारण की समझ में भी आ सकें। १६३६ में बड़ौदा राज्य की ओर से इन्हें निमन्त्रण मिला। इन्होंने 'कीर्त्ति मन्दिर' को सुन्दर चित्रों से सुसज्जित किया।

दीवारों के प्रलेप और फड़ बाँधने में नन्द बाबू ने भित्ति-चित्रों की प्रलेप प्रक्रिया अपनाई। रंग और तूलिका भी विलायती न होकर स्वनिर्मित होती थी। उन्होंने पुरानी प्रलेपन-सामग्री और देशी रंगों के अगणित प्रयोग सिद्ध किये। वे और उनके सैकड़ों शिष्य-प्रशिष्यों ने इसी विधि से चित्रों के निर्माण की प्रक्रिया अपनाई। उन्होंने मिट्टी की मूर्तियाँ और लकड़ी पर भी खुदाई करके आकृतियाँ, निर्मित कीं। चीनी-जापानी और फारसी पद्धति के अनेक चित्र बनाये। रामायण, हरिपुरा और सप्तमा की चित्रावलियाँ तथा कालीघाट

के पटचित्रों से प्रेरित बंगाली लोककला की बारीकियाँ भी उनकी कला में उभर आई थी। फर्श सज्जा, नाटक में पात्रों की वेषभूषा, तोरण द्वारों की सजावट, भित्ति चित्रों का सुष्ठु अंकन, यहाँ तक कि आभूषण-अलंकारों एवं वस्त्रों तक में कला को प्रश्रय देने में उन्होंने दिलचस्पी ली। छोटे बालकों की पुस्तकों को सचित्र बनाना और पोस्टकार्डों पर हर तरह के हृद्गत भावों का अनायास ही आविर्भाव इनके कलामय स्वभाव की विशेषता रही थी।

माँ और शिशु

नन्द बाबू ने कला को प्राणों में ढाल लिया था। वह जैसे उनके जीवन के साथ एकाकार सी हो गई। वे एक अनथक प्रयोगी थे जिन्होंने कला की भिन्न-भिन्न टेकनीक और रूप-विधान को न जाने कितनी दृष्टि-भंगिमाएँ एवं मानदण्डों से जाँचा-परखा था। वर्तमान भारतीय कला-स्कूल के कितने ही चित्रकार प्रयोगो और परीक्षणों के लिए उत्साही रहते है, किन्तु किसी एक ही शैली, किसी एक ही दिशा में कुछ आगे बढ़कर उनकी प्रगति अवरुद्ध हो जाती है। इसके विपरीत नन्द बाबू सदा आगे बढ़ते रहे। उनमें न श्रांत होने वाली वह व्यापक अन्तश्चेतना थी जो नित-नए परीक्षणों से कभी थकती नहीं थी। उनका सौंदर्यबोध इतना विकसित हो चुका था कि वे हर हरकत, जीवन के हर पहलू को सौंदर्य से शराबोर देखना चाहते थे। मौजूदा युग की बौद्धिकता से वे असन्तुष्ट थे जिसने कला और सौंदर्य-चेतना को नितांत खंडहर-सा बना दिया है। यदि सौंदर्यबोध की महत्ता घट जायगी तो कलात्मक प्रतिभा का भी ह्रास होता जाएगा। नन्द बाबू के शब्दों में—"सौंदर्य के अभाव से मनुष्य केवल रस के क्षेत्र मे ही वंचित नहीं होता, अपने मानसिक और शारीरिक स्वास्थ्य की दृष्टि से भी वह क्षतिग्रस्त होता है। ...चारु शिल्प की चर्चा हमारे दैनन्दिन दुःख-द्वन्द्व से संकुचित मन को आनन्द लोक में मुक्ति देता है और कारुशिल्प हमारे नित्य प्रयोजन की वस्तुओं को सौंदर्य के सुनहरे स्पर्श द्वारा न केवल हमारी जीवनयात्रा-पथ को सुन्दर बना देता है बल्कि अर्थागम के लिए भी पथ बना देता है। कारुशिल्प की अवनति के साथ-साथ देश की आर्थिक

दुर्गति भी शुरू हुई है। अतएव, प्रयोजन के क्षेत्र में से शिल्प को निकाल देना राष्ट्र के अर्थागम की दृष्टि से भी अत्यन्त क्षतिकर है।

नन्द बाबू कला की टेकनीक और समस्त नियम-उपनियमों से ऊपर उठकर सृजन करते रहे। विकासोन्मुख प्रगति के अनन्त पथ पर एक अनथक यायावर के बतौर वे हर मंज़िल को अपने अश्रांत कदमों से नापते हुए श्रेय-प्रेय के तत्त्वों को उद्बुद्ध करने में जुटे रहे। कला उनके लिए जीवन के हर पक्ष में समा गई थी। वे सामान्य धरातल से इतने ऊपर उठ गए थे कि निम्न प्रवृत्तियाँ अथवा कला की कुत्साएँ उन्हें स्पर्श नहीं कर पाती थीं। १६ अप्रैल, १९६६ को उनका पार्थिव शरीर चला गया, किन्तु युग की वाणी को शाश्वत मुखरता प्रदान करता हुआ उनकी गरिमामय कला-साधना का पथ कितना प्रशस्त है—इसका अन्दाज़ लगाना कठिन है।

असितकुमार हाल्दार

इस युग के युगान्तरकारी कलाकार श्री अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की छत्रछाया में असितकुमार हाल्दार को भी अपने सहयोगी नन्दलाल वसु और सुरेन गांगुली जैसे अनेक वरिष्ठ कलाकारों के साथ चित्रकला सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था और आधुनिक भारतीय कला के प्रणयन एवं अनुशीलन में उन्हें उतनी ही एकनिष्ठ तपःसाधना भी करनी पड़ी थी। कला के बीहड़ पथ में भटकते हुए एक सुनिश्चित दिशा अपनाने में उन्होंने जो अनुभव संचय किये वे अधिकाधिक उनकी कला की परिपक्वता और गहरी पैठ में समाविष्ट होते गये। अनुभवजन्य गरिमा उनके सृजन को काल-निरपेक्ष चित्रात्मकता प्रदान करती गई जो पूर्वाग्रहों से सर्वथा मुक्त थी। यों कला की प्रगति में अपने समकालीन सहयोगियों के समान ही इनका हाथ रहा और इनके सृजन के महत्त्व को आँके बिना कला के क्रम-विकास के सूत्रों का सन्धान कदाचित् कठिन ही नहीं, न्यायोचित भी न होगा।

सन् १८९० में जोड़ासाँको स्थित टैगोर-भवन के विचित्र कलामय वातावरण में इनका जन्म हुआ। अल्पावस्था में ही ग्रामीणों के पट-चित्रण से इनका बाल-औत्सुक्य जगा और बाद में अपने दादा राखाल दास से, जो उस समय लन्दन यूनिवर्सिटी में संस्कृत के अध्यापक थे, इन्हें अपनी कलाभिरुचियों को विकसित करने में विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। पन्द्रह वर्ष की आयु में इन्हें कलकत्ता के गवर्नमेण्ट स्कूल आफ़ आर्ट में दाखिल करा दिया गया। उस समय ई० वी० हेवेल और आनन्दकुमार स्वामी-जैसे कलामनीषियों के सान्निध्य में कला के पुनरुत्थान की गतिविधियों पर इन्होंने दृष्टिपात किया और उन्हीं के कदमों का अनुसरण करते हुए अन्तर में सँजोये संस्कार ही इनके परवर्त्ती जीवन में सृजन-प्रक्रिया की मूल अन्तःप्रेरणा बन कर उजागर हुए।

सन् १९१० में आंग्ल महिला लेडी हेरिंगहम के आमन्त्रण पर नन्दलाल वसु के साथ हाल्दार भी अजन्ता के चित्रों की प्रतिकृतियाँ तैयार करने के लिए भेजे गये। तत्पश्चात् १९१४ में भारत सरकार के पुरातत्त्व-विभाग द्वारा, समरेन्द्रनाथ गुप्त के साथ, मध्यप्रदेश स्थित रामगढ़ पहाड़ी स्टेट में जोगीमारा

गुफाओं का चित्रांकन करने का इन्हें आदेश हुआ। पुनः १९१७ में ग्वालियर स्टेट ने बाघ-गुफाओं की जाँच-परख के लिए इन्हें आमन्त्रित किया। १९२१ में नन्दलाल वसु और सुरेन्द्र कार के साथ बाघ-गुफाओं के चित्रों की प्रतिलिपियाँ इन्होंने तैयार कीं। आज भी इनके द्वारा चित्रांकित अजन्ता की प्रतिलिपियाँ साउथ केन्सिंगटन म्यूज़ियम के भारतीय विभाग में, जोगीमारा की प्रतिलिपियाँ भारत सरकार के पुरातत्त्व विभाग में और बाघ गुफाओं के चित्रों की प्रतिलिपियाँ ग्वालियर के पुरातत्त्व संग्रहालय में सुरक्षित रखी हैं। किन्तु अनुकृति में इन्होंने अधिक समय नष्ट नहीं किया। शीघ्र ही ये मौलिक सर्जना की ओर प्रवृत्त हुए।

मध्यकालीन भारत में गर्मी से पीड़ित

१९१२ में आर्ट-स्कूल की शिक्षा समाप्त होते ही विश्वकवि टैगोर इन्हें शान्तिनिकेतन ले आए थे। उस समय अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने जो इनके मामा होते थे, आश्वासन दिया था, "इसको मैं भली भाँति तैयार कर दूँगा।··· कलाकार होने के लिए उत्कट पर्यवेक्षण-क्षमता ही तो चाहिए।" लगभग १९१२ से

१९२३ तक शान्तिनिकेतन के 'कला भवन' में ये विश्वकवि के सम्पर्क में रहे। चित्रकला के क्षेत्र में ये अब तक काफ़ी प्रख्यात हो चुके थे। इसी बीच जब महात्मा गान्धी शन्तिनिकेतन पधारे तो इन्होंने अपना 'बन्दिनी' चित्र उपहार में देकर उनका अभिनन्दन किया।

जोड़ामाँको-भवन में रवीन्द्र नाथ ठाकुर ने नन्दलाल वसु, मुकुल डे और अमित हाल्दार इन तीनों के सहयोग से 'विचित्रा' की स्थापना की थी। इसमें अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, समरेन्द्रनाथ गुप्त और विश्व कवि के सुपुत्र रथीन्द्रनाथ ठाकुर भी विशेष दिलचस्पी रखते थे। उनकी उत्कृष्ट कलाकृतियों ने कला-साधकों का पथ प्रशस्त कर दिया था।

हुक्के का मजा

असित हाल्दार में अद्भुत रूप-कल्पना थी, साथ ही चित्रण-सामर्थ्य और रंगों के नियोजन की जीवन्त प्रतिभा भी। वे कलाकार साधक और शिल्पी दोनों थे, फलतः उनके चित्र प्राणों के रस में डूबकर उतरने लगे। 'विचित्रा' में यदा-कदा उनके चित्रों की प्रदर्शनी तो होती ही थी, विश्वकवि की प्रशंसा और प्रोत्साहन भी उन्हें आगे बढ़ने की प्रेरणा देते रहे। उस समय के अपने हृद्गत उद्गार व्यक्त करते हुए अमित हाल्दार ने लिखा है :

"मुझे कभी-कभी एक प्रकार के अहंकार का अनुभव होता जब मैं देखता कि मेरी चित्रकला को देखकर गुरुदेव मुग्ध हो जाते हैं। मेरे आँके हुए रेखा-चित्रों पर उन्होंने कई गीतों की रचना भी की थी। 'चित्र-विचित्र' शीर्षक से वे मेरे चित्रों के साथ उन कविताओं को प्रकाशित भी करना चाहते थे, पर उनकी यह इच्छा कुछ कारणों से पूरी न हो सकी।

जब कभी गुरुदेव मेरी प्रशंसा करते थे तो साथ ही सावधान भी कर देते

थे–'देख, तेरी बड़ाई तो कर रहा हूँ, पर पतन का मूल अहंकार ही होता है। समझ गया न?' अनेक बार अनेक विषयों में मेरे ज्ञान की परीक्षा लेने के लिए प्रश्नादि भी किया करते थे।"

असित हाल्दार की असाधारण प्रतिभा हर प्रकार की परिस्थितियों में व्यंजित होती गई। यद्यपि प्रारम्भ में 'बंगाल स्कूल' की प्रचलित पद्धति पर ही उनकी कला का विकास हुआ, तथापि शनैःशनैः इनका रूमानी मानस चित्र-विचित्र रंगों के संयोग से रेखाओं में ढलकर उसी भाँति उभरा जैसे भीतर आनन्द का ज्वार उमड़ कर कविता की पंक्तियों में फूट पड़ता है। उनके स्वप्न, उनके अन्तर्भाव, अद्भुत रूप और अभिनव रंगों में गुंजरित हो चित्रों की तन्द्रा में खो गये। हाल्दार ने प्रकृति और विराट् मानवता को कवि की भावुक, उल्लसित दृष्टि से निहारा। उनके चित्रों में सूक्ष्म अनुभूतियाँ और संगीत का सा मार्दव व्यंजित हुआ। ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, उनकी सहजात सर्जक वृत्ति फ़ारसी और मुग़ल शैली की नफ़ासत लिये रूबाईयों के ढंग की सी चित्रात्मक कोमलता और काव्य के सौन्दर्य में प्रस्फुटित हुई। विश्वकवि ने अपने एक पत्र में इन्हें लिखा था, "तुम केवल चित्रकार ही नहीं हो, कवि भी हो। यही कारण है तुम्हारी तूली से रसधारा झरती है।"

असित हाल्दार के चित्रों में पार्श्व से ऊपर की ओर उठने वाली धूमिल-सी रेखाएँ और कोमल मृदु रंग कविता की तरह फैल जाते हैं। 'उसकी बपौती' चित्र में छिपते हुए सूर्य के सघन होते अन्धकार में एकाकी साधु की प्रतिच्छवि अंकित है। 'नये-पुराने' और 'बसंत-बहार' में उत्फुल्ल बाल्यावस्था के साथ जर्जर वृद्धावस्था का बड़ा ही कचोटता हुआ तुलनात्मक दिग्दर्शन है। 'ताल और प्रकाश, 'नववधू', 'संगीत', 'असीम जीवन' आदि चित्रों में आत्मा की गहराई उँड़ेल दी गई है और मुसीबत के दिनों में एक हताश माँ, जो निर्धनता के कारण कलंकित जीवन बिताने को बाध्य हुई है, अपने असहाय बालक को अंक में चिपकाए बैठी है। उनके पौराणिक चित्र 'हर-पार्वती', 'शिव', 'लक्ष्मी', 'कच-देवयानी' आदि में जीवन की आधार-भूमि बहुत क्षीण है, वह रूढ़िवादिता से प्रेरित हुई है, फिर भी उनकी रेखाएँ और रंग-विधान में सादगी, सरलता और चारु भव्यता है।

अपनी विशिष्ट शैली से हटकर असित हाल्दार ने भावात्मक विषयों को भी भौतिकवादी पद्धति से निरूपित किया। 'प्रारब्ध' शीर्षक चित्र में कितने ही अमूर्त्त भाव मूर्त्त हो उठे हैं। सूक्ष्म कल्पना भावात्मक शैथिल्य में खोकर

ऐसे अज्ञात एवं भिन्न तत्त्वों के सम्मिश्रण से सर्वथा मौलिक कल्पित रूपों और विकास-प्रक्रिया को लेकर उभरी है।

प्रारम्भ में असित कुमार हाल्दार ने भित्ति-चित्रकार के रूप में ख्याति प्राप्त की थी। सम्राट् जार्ज पंचम जब कलकत्ता आये थे तो उनके स्वागत में लगाये गये शामियाने को नन्दलाल बसु और वेंकटप्पा के साथ इन्होंने चित्रों से सुसज्जित किया था। इनके उस समय के बड़े-बड़े चित्र भित्ति-चित्रण-शैली एवं उसी टेकनीक को लेकर निर्मित हुए।

अल्हड़ यौवन

इनके विषयों की तन्मय एकाग्रता एवं गाम्भीर्य में अजन्ता की कला का प्रभाव द्रष्टव्य है। अनेक चित्रों में ग्रामीण बालक-बालिकाओं, सन्थाल और उनके लोकनृत्यों की सुन्दर अभिव्यक्ति हुई है। कृष्ण की रासलीला और गोप-गोपियों को मुग्ध, भक्ति-विह्वल भाव से सिरजा गया है। 'अशोक-पुत्र कुणाल', 'राम और गुह', 'चन्द्रमा और कमल' आदि चित्रों में बड़ी ही कोमल

व्यंजना है, चित्रकार होने के साथ-साथ ये बहुपठित साहित्यिक मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उन्होंने प्रारम्भ में जब बंगला और अंग्रेजी निबन्ध और एकांकी नाटक भी लिखे तो उसी के समानान्तर स्केच और खेल-खेल में कितने ही रंगों पर प्रयोग किया। किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया इनकी दिल की कहानी रंगों में अधिक ढलती गई। साहित्य की अन्तरंग साधना ने इनकी कला में दुहरी सबलता भर दी और निजी मन की सर्जना चित्रों की गम्भीरता में लय होकर आविर्भूत हुई।

सन् १९२३ में विलायत से लौट कर इन्होंने जयपुर और लखनऊ के शिल्प-विद्यालयों के अध्यक्ष-पद पर कार्य किया। ये पहले भारतीय कलाकार थे जिन्हें अंग्रेजी साम्राज्यशाही के उस ठेठ जमाने में लखनऊ के गवर्नमेण्ट स्कूल आफ़ आर्ट के प्रिंसिपल के गौरवपूर्ण पद पर नियुक्त किया गया था। भारतीयता पर गर्व करने वाले कितने ही विशिष्ट एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों की नजर उस समय इन पर थी कि किस नैपुण्य और कौशल से सरकार के मातहत तत्कालीन कला को भारतीय तत्त्वों से सम्पुष्ट एवं समृद्ध बनाया गया। सुदूर अतीत की कला-प्रणालियों को नई दृष्टिभंगी से उस समय भारत की अपनी निजी परम्परा के अनुसार शिक्षा देने की ओर इनकी विशेष रुचि थी। जयपुर में 'राजपूती क़लम' की उन सभी विशेषताओं के पुनरुद्धार का इन्होंने घोर प्रयत्न किया जो अब तक विस्मृति के गर्त्त में विलुप्त हुई-सी लगती थीं। इन्होंने लिखा—"पाश्चात्य आदर्श के अनुसार साउथ केन्सिगटन में

वेदाध्ययन

मुलग़ सम्राट्-अकबर

अंग्रेज़ शिक्षकों द्वारा दी जानेवाली कला-शिक्षा का अनुकरण करते हुए हमारे यहाँ भी प्रादेशिक कला-विद्यालयों में कला की शिक्षा दी जाती थी। इसके स्थान पर भारतीय परम्परा के अनुसार शिक्षा देने के लिए मैं प्रयत्नशील हुआ। मैंने यह भी देखा कि यूरोपीय कला-शिक्षा-पद्धति का भी हमारे देश पर विशेष प्रभाव था। डेढ़ सौ वर्ष के अंग्रेज़ों के राज्य-काल में हमने दो सहस्र वर्ष पुराने अपने कृतित्व को सर्वथा भुला दिया था। जब देशवासियों को यह ज्ञान हो जायेगा कि कला के क्षेत्र में हमारा निजी आदर्श सक्रिय रहा और दो हज़ार वर्ष तक सारे एशिया-खंड में उस कला का विस्तार रहा, तभी देश की कला के प्रति वे सच्चे श्रद्धावान बनेंगे। यूरोप की कला ने हमारे देश की कला पर अपनी छाप डाली, पर इस देश की कला के आदर्श को ग्रहण करने में वह असमर्थ रही है। इस देश की कला और साहित्य की नींव रही है ––धर्म और दर्शन। वैज्ञानिकों के मन में यह आदर्श जम नहीं पाता। भारत की कला मानव-जीवन और धर्म के साथ ओत-प्रोत रही है, केवल ड्राइंगरूम सजाने की वस्तु ही नहीं रही है।"

देशी रचना-प्रक्रिया को प्रोत्साहन देने के साथ-साथ उन्होंने विदेशी कला की अच्छाइयों को भी आत्मसात् किया। काउण्ट ओकाकुरा की प्रेरणा से जापान की राष्ट्रीय चेतना पर पनपी चित्रकला हृदयंगम कर वहाँ के अनुभवों से इन्होंने पर्याप्त लाभ उठाया। शनैः-शनैः इनकी दृष्टि में इतनी व्यापकता आ गई कि बहुविध जीवन-तत्त्वों, विश्वासों, भावनाओं और आदर्शों को इन्होंने कला के माध्यम से अभिव्यंजित किया। काँसे और पक्की मिट्टी पर इन्होंने मूर्तियाँ गढ़ीं जलरंग एवं तैल-चित्रों का निर्माण किया तथा रेशेदार दफ़्ती और हाथ के बने कागज़ को भी उपयोग में लाये। हाल्दार की कितनी ही उत्कृष्ट कलाकृतियां आज व्यक्तिगत और सार्वजनिक संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। इलाहाबाद म्युनि-सिपल म्यूज़ियम के 'हाल्दार भवन' में उनके प्रतिनिधि चित्र तो संगृहीत हैं ही, इसके अलावा बोस्टन म्यूज़ियम, विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूज़ियम–लन्दन, इण्डियन म्यूज़ियम–कलकत्ता, श्रीचित्रालयम्–त्रिवेन्द्रम और रामास्वामी मुदा-लियर संग्रहालय में भी इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियाँ रखी हुई हैं।

असित हाल्दार ने भारतीय कला के विशाल सेतु के एक और स्तम्भ को मज़बूत किया था जिसके सुदृढ़ आधार पर कला अडिग रूप से स्थित है। उन्होंने अग्रणी कलाकारों के पदचिन्हों का अनुसरण करते हुए उतने ही श्रम और साधना से अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल वसु के साथ प्रारम्भिक कला की नींव को परिपक्व और सबल बनाने में योगदान दिया था।

के० वेंकटप्पा

युग-प्रवर्त्तक अवनी बाबू जब कला-जागरण का मन्त्र लेकर आगे बढ़े तो के० वेंकटप्पा भी उनके अग्रगण्य शिष्यों में से एक थे। उन्होंने कलागुरु और अन्य साथियों के साथ कला की सीमाओं को व्यापक बनाने में अदभुत योग दिया था। कला-प्रेमियों का सान्निध्य और तत्त्वावधान तो उनके लिए वरदान सिद्ध हुआ ही, उनमें प्रारम्भ से ही कलानुराग और गम्भीर साधना भी थी जो अनुभूति एवं कल्पना में संतुलित समन्वय खोज रही थी। कलकत्ता में अवनी बाबू का शिष्यत्त्व ग्रहण करने से पूर्व वे मद्रास के आर्ट स्कूल में कला की शिक्षा प्राप्त करते रहे। वहाँ उनकी प्रतिभा और सृजन की सहजात प्रेरणा का आभास मिल चुका था। मैसूर महाराज के प्राइवेट सेक्रेटरी, जो स्काट-लैंड निवासी थे, की सिफ़ारिश से ये कलकत्ता भेजे गए और इस प्रकार कला-गुरु के संरक्षण मे इनकी कला-साधना का पथ प्रशस्त होता गया।

सामान्य परिवार और सामान्य परिस्थितियों में उत्पन्न होने के कारण इनमें कोई ख़ास महत्त्वाकांक्षा न थी, फिर भी इनकी बौद्धिक चेतना इतनी जागरूक थी कि विवशताएँ इनके सामने उभर नहीं पाई। श्रम और मूक सन्तोष ही इनके जीवन का पाथेय बना रहा।

विचित्र सी मानसिक स्थिति में इस श्रमी और साधक कलाकार ने अपना विशिष्ट पथ चुन लिया। इन्होंने लघु चित्रण की टेकनीक को अपनाया जो अधिकांश राजपूत शैली और किंचित् मुग़ल पद्धति की छाप लिये है। इनकी भाव-व्यंजना सूक्ष्म और सांकेतिक होते हुए भी स्पष्ट और बोधगम्य है। बौद्धिक त्वरा होते हुए भी रंग-चयन में अतीन्द्रिय सौंदर्य विवृति झलकती है। विभिन्न रंगों का कुशलता के साथ सम्मिश्रण हुआ है और कहीं-कहीं वेंकटप्पा ने रंगों का टेम्परा में स्वयं ही आविष्कार भी किया है। इनके रेखांकन में हाथ की सफाई और सौम्य सौष्ठव है। लघु चित्रण ने उनकी व्यंजना को अधिक प्रखर बना दिया है। विषय-वस्तु में फैलाव दृष्टिगोचर नही होता, पर इसी कारण उसमें प्राणवत्ता और गहराई अधिक आ गई है।

'ग्रोटी' के विभिन्न प्रकृति चित्रणों में इनकी बहुमुखी अभिव्यक्ति के दर्शन हुए। लघु अंकन और सर्जना की अन्य विशेषताओं के संयोग से इन्होंने उसकी असलियत को समझा और हृदयंगम किया। फलतः इनके दृश्य-चित्रणों में यथार्थता का समावेश हो गया। मौसम और उनकी कतिपय भंगिमाओं के दिग्दर्शक चित्र इतने आकर्षक बन पड़े हैं कि महात्मा गांधी इनके चित्र-संग्रह को देखकर उनकी सुन्दरता पर मुग्ध हो गए थे। लैंडस्केप के दर्जनों चित्र इन्होंने अपने व्यक्तिगत संग्रहालय में शिष्यों को कला की ओर उत्प्रेरित करने के उद्देश्य से सजाये।

प्रकृति से इनकी कला का रागात्मक सम्बन्ध है। अनन्य निरीक्षण ने प्राकृतिक उपादानों के प्रति इनकी संवेदना को इतना अधिक उभारा है कि वे उसकी अंतरंग सुषमा में विभोर हो उठे हैं। इनकी वृत्ति अंतर्मुखी होकर प्रकृति की आत्मा में झाँकने का प्रयास करती है। फ्रेंच कलाकार सेज़ाँ की भाँति ही वस्तु के तथ्य में पैठने की प्रवृत्ति इनमें है और बाहरी प्रभावों को आत्मसात् कर इनकी कल्पना इतनी दुर्निवार हो उठती है कि वैशिष्ट्य की अभिव्यंजना में इनके मौलिक प्रतीक और भी मार्मिक एवं प्रभावोत्पादक बन जाते हैं। प्राकृतिक दृश्य कलाकार की भावना से आच्छन्न होकर सूक्ष्म, पर साथ ही अन्तर की आस्था को उद्बुद्ध करते हुए वे प्रकट होते हैं।

इनके जीवन का एक रोचक प्रसंग है कि एक बार गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, पर्सी ब्राउन और स्वयं इन्होंने दार्जिलिंग से हिमालय को चित्रित करने का प्रयत्न किया। ये तीनों कलाकार गर्मी भर वहीं रहे और प्रायः प्रतिदिन ही इस मनोरम दृश्य को अंकित करने के लिए जाते रहे, किन्तु हिमाच्छादित शिखरों पर संध्या समय जो सतरंगी रूपहली आभा लहराती सी प्रतीत होती है उन रंगों को वे आसानी से न पकड़ सके। एक रात वेंकटप्पा ने झोंक में सहसा उन रंगों का भी आविष्कार कर डाला जिन पर तीनों कलाकार अब तक सिरपच्ची करते-करते ऊब चले थे। जब इनके दोनों साथियों को ज्ञात हुआ तो चकित रह गए। ऐसे मौकों पर कलाकार की भावना शतधा होकर बह निकलना चाहती है और उसे किसी भी चारु वातावरण को आँकने के लिए उतना ही कल्पनाशील होना पड़ता है, किन्तु कोरी कल्पना से ही काम नहीं चलता, उसमें समुचित रंग-योजना और सानुपातिक रेखांकन अपेक्षित है। वेंकटप्पा में यह सामर्थ्य है और वे वस्तु की गहराई में पैठकर उसकी यथार्थता

बाली और सुग्रीव की लड़ाई

को पा जाने का पूरा प्रयत्न करते हैं।

वेंकटप्पा के सौंदर्यबोध की दूसरी विशेषता उनका हठयोग है। वे स्वयं निष्ठा के व्यक्ति है। उनका रौबीला ग्राडम्बरहीन व्यक्तित्व हर किसी के समक्ष खुलकर नहीं बिखरता। वे अपने आप में डूबे हुए से रहते है, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे निरे असामाजिक है। कभी-कभी उनमें ख़ब्त और झक सी सवार होती है अवश्य, किन्तु उनके रूखे स्वभाव के भीतर इतना सरल और करुणाविगलित हृदय छिपा है कि उनके साहचर्य की स्निग्धता को उनके समीप रहने वाले ही अनुभव कर सकते है। उनका विच्छिन्न चिन्तन उनके व्यक्तित्व की घनता में प्रायः दब जाता है, तथापि उनकी प्रखरता को कुंठित नहीं कर पाता। इनके अनेक चित्रों में अंतर की कुंठा उभर आई है। 'स्वर्णमृग', 'लंका तक पुल का निर्माण' आदि चित्रों में भीतर की उल्लासपूर्ण गरिमा के दर्शन होते है, फिर भी जीवन की नैसर्गिक निष्कृतियों से वे एक दम वंचित नहीं है। स्वर्णमृग में मारीच दूर खड़ा हुआ राम के समीप बैठी जानकी का ध्यान आकर्षित कर रहा है। उसकी छाया समीप ही पोखर के जल में प्रतिबिम्बित हो रही है। राम के मुखारबिन्द पर भावी संकट की द्योतक मायूसी और मलिनता है। सीता भयभीत सी कौतूहलपूर्ण दृष्टि से आदर्श हिन्दू पत्नी की भाँति पति में पूर्ण आश्वस्त हैं। मदोन्मत्त रावण बादलों के अंधकार में खोया हुआ दानवी घृणा को साकार कर रहा है। इस प्रकार राजपूती तर्ज़ पर कतिपय मानव-चेष्टाओं का इस टेम्परा-चित्रिका में सुन्दर निदर्शन हुआ है।

उनके कुछ अन्य चित्र 'बुद्ध और उनके अनुयायी', 'मृगतृष्णा' 'पक्षी, 'गोचारण' आदि उनकी सूक्ष्म सौंदर्य-दृष्टि और कल्पनाप्रवण रूप-विधान की विशेषता झलकाते है। इनके सुप्रसिद्ध चित्र 'संगीत मण्डली' में राजपूत और मुग़ल चित्रण पद्धति का अनुसरण किया गया है, अतएव इसमें वैयक्तिक या निजी आग्रह नही है। ऐसे चित्रों में एक विशेष प्रकार की आरोपित स्थूलता और सम धरातलता ही आदि से अंत तक मिलती है।

ये उभरे भित्ति-चित्रण में भी अत्यन्त दक्ष है। मैसूर महाराज स्वर्गीय कृष्ण राजेन्द्र जी के आग्रह से इन्होंने दरबार हाल के अम्बाविलास में बुद्ध और राम के जीवन-प्रसंगों का आकर्षक अकन किया था। 'भिक्षुक के रूप में बुद्ध' और 'हनुमान को अंगूठी देते हुए राम' प्राचीन और अर्वाचीन चित्रण परम्परा के अदभत समन्वय के दिग्दर्शक हैं। बहुत कम भारतीय चित्रकार इस ढंग की

चित्रण-पद्धति अपना सके है। दुःख है कि ये मूल्यवान कला-निधियाँ महलों में ही बन्दी होकर सामान्य जनों की दृष्टि से दूर जा पड़ी है। इन्होंने लघु आकृति चित्रों का भी हाथी दाँत पर निर्माण किया है। इनके प्राथमिक छवि-चित्रों में अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, रामास्वामी मुदालियर और महाराजा मैसूर के चित्र उल्लेखनीय हैं। कूचविहार की महारानी ने अपने मृत पति का एक आकर्षक छवि-चित्र इन्हीं से तैयार कराया था। राजा-महाराजाओं और वैभवशालियों के पास रहकर भी इनका दुर्दम्य व्यक्तित्त्व कभी दमित न हुआ। प्रारम्भ से ही इन्होंने जो ढंग अख्तियार किया था—वह किसी के दबाव से नहीं बदला, न ही कला के गम्भीर प्रयोजन को इन्होंने चटकीले रंगों के आकर्षण में भटकने दिया। जहाँ कहीं भी उनकी अन्तर्भावनाओं को उन्मुक्त अभिव्यक्ति न मिली, तुरन्त ही इनमें प्रतिवाद का भाव प्रकट हो गया। इनकी अपनी शर्तें हैं, अपना एक पृथक् तरीका है। इनकी कुछ निजी धारणाएँ ऐसी दृढ़ हैं कि अपने प्रति सच्चे रहकर इन्होंने निर्भीक और निश्चित बुद्धि से कला-सृजन में योग दिया है।

वेंकटप्पा में कलाकार की अहम्मन्यता है, पर कृत्रिमता नही। इनकी आन्तरिक निष्ठा और अटूट विश्वास इनके कृतित्व में द्रष्टव्य है जिससे सामान्य दर्शक प्रभावित ही नहीं—अभिभूत हो जाता है। इनकी विचारों की उच्चता, व्यक्तित्त्व की उत्कटता और जीवन के मार्मिक सत्य ने ही इनकी कला को स्फूर्त और प्रेरित किया है, उसमें रस दिया है, सौंदर्य भरा है। तथा दैनंदिन जीवन की क्षुद्रताओं से ऊपर उठा कर इन्हें कला-साधना के कठिन पथ का राही बनाया है। इनके जीवन का स्वप्न स्वयं कला-साधक बनकर दूसरों को भी इसी ओर प्रेरित करना है। इनका स्वप्न बहुत कुछ अंशों में सत्य हुआ है और यद्यपि वृद्धावस्था ने इनकी शक्ति को क्षीण किया है, तथापि कला को सशक्त और समृद्ध बनाने में ये आज भी प्रयत्नशील हैं।
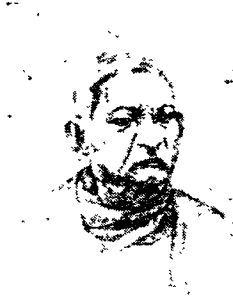
शैलेन्द्रनाथ दे

मानव-जीवन के मूक भावों को प्रत्यक्ष करने वाली कला ही एक चाक्षुष माध्यम है, इस सहज विश्वास को लेकर अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की छत्रच्छाया में शैलेन्द्रनाथ दे कला की अनेक नवीनताओं और विशेषताओं को लेकर अवतरित हुए। बनारस के 'कला-भवन' और कलकत्ता के 'इण्डियन सोसाइटी आफ़ ओरियिण्टल आर्ट' में कुछ अर्से तक काम करने के पश्चात् वे अपनी सहजात सृजन प्रेरणाओं को राजस्थान तक ले गये और जयपुर के आर्ट-स्कूल में प्राध्यापक रहकर कला के व्यापक प्रसार में योग दिया। यहाँ की 'आर्ट एकेडेमी' में कला की साधना में रत रहकर ये उसे समुन्नत बनाने की भरसक चेष्टा करते रहे हैं। 'भारतीय चित्रकला पद्धति' नामक स्वरचित पुस्तक में अपने आन्तरिक उद्‌गार व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—

विरक्त

भाव मुद्रा

"चित्रकला संसार की वह सजीव वस्तु है जिससे हम कभी पृथक् नहीं हो सकते। हमारे जीवन के प्रत्येक शुभाशुभ अवसर पर चित्रकला ही दृष्टि में आती है। मनुष्य जो कुछ देखता या अनुभव करता है उन्हीं वस्तुओं को वह काग़ज़, दीवार, पत्थर आदि पर रंग एवं तूलिका द्वारा चित्रित करता है। चित्रितावस्था के पश्चात् हम उस निरीक्षण या अनुभव के मूल परिणाम को, चित्र और उसके विज्ञान को चित्रकला कहते हैं। यों तो
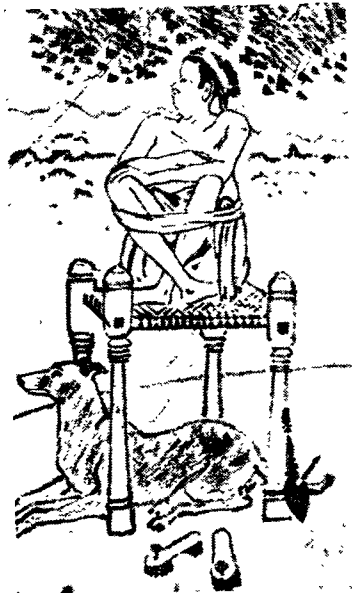
संसार ही चित्रमय है और हमारे मन में हर समय संसार का कोई न कोई दृश्य अवश्य अंकित रहता है, पर अनुभव होते हुए भी मनुष्य उसको नहीं पहचानता और इसीलिये उसका वास्तविक सुख भी नहीं उठा पाता।

जीवन के अनुभवों को निरीक्षण की परिधि मे समेट कर जो व्यक्ति रंग एवं रेखाओं द्वारा सब के सामने रखता है उसे ही वस्तुतः चित्रकार कहते हैं।"

शैलेन्द्र दे के कृतित्व में 'बंगाल स्कूल' की विशिष्ट कला-धाराएँ उतार पर आ गई थी। पौराणिक विषयों का बाहुल्य, चित्रों के रूढ़ ढाँचे, पुरातन घिसे-घिसाये रूपाकार और प्रचलित कला-पद्धतियाँ छोटे-छोटे कलाकारों के मनोरंजन की चीज़ें थी। कला के उच्च स्तर की दृष्टि से उनका महत्त्व घट गया था। शैलेन्द्र दे के प्राथमिक चित्रों—यथा 'यशोदा और बालक कृष्ण' में राजपूत अथवा मुग़ल कला के निष्प्राण अनुकरणशील तत्त्व दृष्टिगोचर होते हैं। इसके पीछे की कलाकृतियाँ—जैसे 'देवी जगद्धात्री' में पहले से अधिक परिपक्वता और कला-नैपुण्य तो था, किन्तु रेखाओं के संयोजन एवं सम्पुंजन में एकरूपता और सामंजस्य न था। कालान्तर में ज्यों-ज्यों उनकी कला पुष्ट होती गई, उनकी रंग और रेखाएँ अधिक सूक्ष्म और गहरी होकर उभरी, कला और जीवन के निकट-तम सम्बन्ध-सूत्र अधिक परिपक्व हो गए, सम्पूर्ण चित्र के आलेपन में एक लयमय कोमलता द्रष्टव्य हुई और भाव-प्रकाशन में अधिक सुचारुता और सजीवता आ गई। उदात्त सौंदर्य और संतुलित ज्यामितिक रेखांकन के अलावा उनकी 'यक्ष-पत्नी' में अकृत्रिम अभिव्यक्ति है। 'वनवासी यक्ष' में मूर्त्त प्रत्यक्षीकरण का वैलक्षण्य और कोमल भाव को अत्यन्त सूक्ष्मता से ग्रहण किया गया है। इनके चित्रों में इनकी अनुभूति के रूपचित्र एवं प्रतीक किसी बहिरंग मज्जा अथवा भाव से भिन्नान्तर होकर नही उभरे, अपितु इनके उन्मुक्त अन्तर से गहरे भाव में डूबे हुए उद्भूत हुए। इनके दृष्टि-कोण से "चित्रकार के लिए किसी वस्तु को देखकर उसमें तल्लीन हो जाना और अपने आप को भूल जाना ही भाव हैं। इस भाव का जो चित्रकार सफलतापूर्वक चित्रण करता है, वह चित्र अमर

एक नृत्य भंगिमा

हो जाता है। मान लीजिए मन्दिर के समक्ष नृत्य हो रहा है और चित्रकार इस भाव को चित्रित करना चाहता है। इसका पूर्व-चित्रण करने के पहले चित्रकार स्वयं अपने को मन्दिर के सामने नाचता हुआ अनुभव करता है अर्थात् यह कि किसी भी प्रकार का भाव क्यों न हो, चित्रकार जो भाव चित्रित करना चाहे उसे उस समय वैसा ही बन जाना चाहिए। हृदय में भाव उठते ही शरीर स्वयं वैसा ही हो जाता है। उसे ही चित्रकार का 'मूड' कहते है और ऐसी ही अवस्था में उत्तम चित्र बनता है। यदि वह हँसता हुआ, क्रीड़ा करता हुआ चित्र बनाना चाहे तो वह स्वयं भी उसी प्रकार करे जिससे उसका शुद्ध भाव प्रतीत हो।"

शैलेन्द्र दे ने मानव-जीवन के 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' में ही कलात्मक पूर्णता के दर्शन नही किये, वरन् कुरूप और असुन्दर में भी निर्माणोन्मुख विधायिनी शक्ति और अभिव्यंजना की रसात्मकता की इन्होंने कल्पना की। सच्चे कलासाधक को भले-बुरे, कुरूप-सुरूप दोनों में ही अद्भुत एकरूपता और साम्य दीख पड़ता है—"चित्रकार के लिए यह नहीं कि वह सब सुन्दर वस्तुओं का ही निरीक्षण करे। उसकी दृष्टि में कोई चीज़ बुरी नहीं होती। जिस प्रकार सृष्टि में परमात्मा के लिए सब समान हैं, वे केवल कर्मफल से विभिन्न स्वरूप लिये हुए है, परन्तु उन सब में परमात्मा का अंश है तथा बुरी से बुरी चीज़ में भी सौंदर्य व्याप्त है, उसी प्रकार चित्रकार सब वस्तुओं को समान रूप से देखता हुआ उनके मुख्य भावों का प्रदर्शन करता है।"

मध्य भाग की परिकल्पना

निःसन्देह, कलाकार की अन्तर्नुभूति और सर्जना की धाराएँ साथ-साथ बहा करती हैं। उसकी दृष्टि इतनी विराट् है कि उसके जीवन-दर्शन का कहीं ओर-छोर नहीं पाया जा सकता। जिस वस्तु-सत्य को साधारण प्रेक्षक की दृष्टि छू नहीं पाती, उसको वह देखता और दूसरों को दिखाता है। वह भीतर के संस्कारों को इतना समृद्ध और उदात्त बना लेता है कि सामान्य विश्वासों की अभि-

व्यक्ति भी सत्य दर्शन के अभेद को लेकर चलती है। जीवन की रागात्मक प्रवृत्तियाँ और मानवीय संवेदनाएँ कलाकार के कोष में संचित रहती हैं जिसके प्रत्येक पक्ष को समय-असमय अपनी तूलिका के जादूभरे स्पर्श से वह सजीव बनाता रहता है। उसका यह सृजन काल के बंधन से न बँधकर उस चिरंतन सत्य से बँधा है जो वाह्य से नहीं, हृदय से सम्बन्धित है। एक जगह इन्होंने कहा है—"चित्रकार तो एक साधक है, वह सदा सत्य के अनुसंधान में ही लगा रहता है और सत्य की ओर ही उसकी समस्त शक्ति केन्द्रित रहती है।"
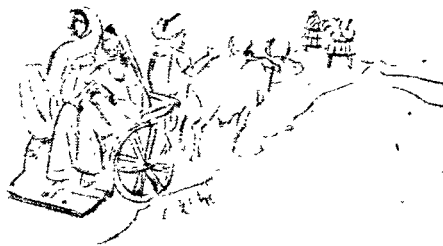
चलते फिरते

शैलेन्द्र दे ने मरुभूमि में कला का स्रोत बहाया है। उन्होंने कितने ही उत्साही युवकों को कला की दीक्षा दी और कलाकार तैयार किये। जो अचूक और भेदक दृष्टि इन्होंने पाई, जिस सहज विश्वास और सबल चिंतन से वे साधना-पथ पर अग्रसर होते रहे हैं, उससे कितनों ने ही प्रेरणा ली और लाभ उठाया। ये केवल चित्रकार ही नहीं कलामर्मज्ञ भी हैं। अपने घोर व्यस्त जीवन में इन्होंने चित्रकला की बारीकियों पर सविस्तार प्रकाश डाला जो कला में अभिरुचि रखने वाले विद्यार्थियों के लिए लाभप्रद है। इनकी उत्कृष्ट कलाकृतियाँ 'भारत कला भवन' बनारस और मैसूर के जगन्मोहन महल की चित्र-गैलरी में सुसज्जित हैं। इस आयु में भी ये कला के महान् उद्देश्य की पूर्ति और सहजात सर्जना के उदात्तीकरण की ओर उन्मुख हैं।

क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार

आधुनिक कला के क्षेत्र में अध्यात्म को आधार मानकर जीवन की सर्वात्मकता एवं समग्रता के आन्तरिक ऐक्य में आस्था रखने वाले कलाकारों में क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार अग्रगण्य हैं। ये भी अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रधान शिष्यों में से बंगाल स्कूल के सहयोगी और कला की पुनर्जागृति में योग देने वालों में से एक हैं। शुरू से ही इन्होंने एक सहज, निजी अनुभूत दर्शन अपना लिया था। अपने स्वभाव की सरल कोमलता, अंतर्मुखी वृत्ति एवं भीतरी तृप्ति के कारण विरोधाभासों और द्वन्द्वात्मक अनुभूति का परित्याग कर ये बहुत पहले ही जीवन के समत्व पर आ टिके थे। अतएव कभी भी अपनी कला को इन्होंने वादग्रस्त नहीं बनाया। अभिव्यक्ति की आत्मविह्वलता में वे उस सुषमा के संधान में लीन हो गए जो आध्यात्मिक आनन्दानुभूति की मधुरिमा से ओतप्रोत थी।
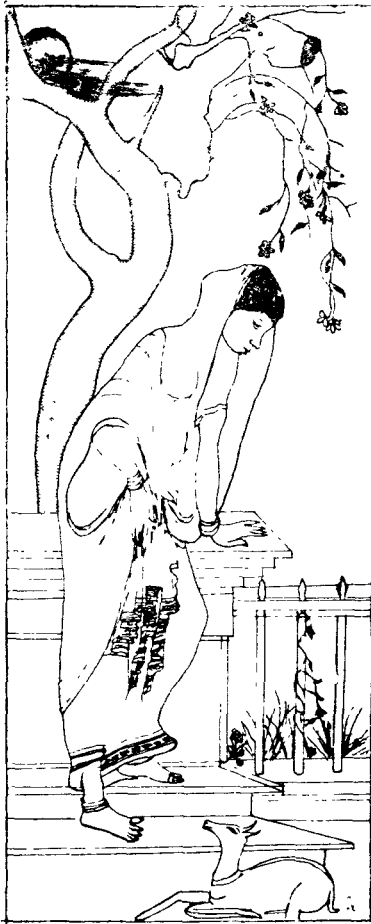
प्रिय को पुचकारते हुए

एक सजग प्रेक्षक की भाँति इनके काम करने की पृथक् प्रणाली है। इनकी रस-संवेदना इतनी विकसित हो चुकी है कि आत्मा और देह में विभेद किये बग़ैर इन्होंने जीवन के पूर्णतम सत्य से

साक्षात्कार किया है, तभी तो वे चैतन्य महाप्रभु के आध्यात्मिक व्यक्तित्व और राधा-कृष्ण की सैंकड़ों लीलाओं का रहस्यात्मक ढंग से चित्रांकन कर सके हैं। मजूमदार की अधिकांश उत्कृष्ट मौलिक कृतियाँ बंगाल के इसी महान् संत की अविरल जीवन-धारा से प्रेरित हुई हैं। कलाकार की रेखाएँ अनुभव की गहराइयों में डूबकर प्रकट हुई हैं, स्निग्धता और सरसता के कगारों को छूकर वे कोमल करुण के संस्पर्श से मानों प्रकम्पित सी हो उठी हैं। कौन सी रेखा है जो करुणार्द्र तरलता से सिक्त नहीं है, कौन सा ऐसा उल्लसित विराट् भाव है जो भीतर अनन्त प्रकाश की व्यापकता में नहीं रम गया है और कौन सी ऐसी व्यंजित भंगिमा है जो निर्लिप्त व अतिमानवीय सौंदर्य की सृष्टि नहीं कर रही है। क्षितीन्द्र मजूमदार कट्टर वैष्णव हैं। अपने दुर्बल शरीर, दूर भटकती दृष्टि, अनासक्त भाव और हवा में फहराते बालों से वे साधनानिष्ठ योगी से लगते हैं जिन्होंने अपने आराध्य को पाने के लिए जीवन उत्सर्ग किया है। उनकी चेतना अपने द्वारा सृजित विश्व में निरीह शिशु सी विचरती है। कल्पना के कलेवर को भावाच्छन्न करके वे अपनी शक्ति और स्फूर्त्ति को केन्द्रित कर जीवन के भीतर झाँका करते हैं।

यद्यपि वे सदैव अभावों में पले और शिक्षा भी उन्हें पूरी न मिल सकी, तथापि बचपन से ही उनका रुझान कला की ओर था। प्रारम्भ से ही ये अत्यधिक संकोची और बहुत कम बातचीत करते थे। चुपचाप किसी कोने में कागज़ व कूची लेकर बैठना और काम करना उन्हें रुचिकर था। उन्हें ख्याति या किसी के द्वारा पीठ ठोके जाने की क़तई पर्वाह न थी। भावना की सचाई, अध्यात्म की खोज, सामंजस्य का ध्यान और कलाकार की आश्चर्यजनक संवेदना ने ऐसे मार्मिक विषयों को चुना है, साथ ही ऐसे वातावरण की भी सृष्टि की है जो अपार्थिव और अपनी समग्रता में डूबा हुआ है। तरल संयत रेखाओं और धूमिल रंगों में 'रासलीला' का अपूर्व दृश्य-चित्र, जबकि रसराज कृष्ण की अभ्यर्थना में मदमत्त गोपियाँ ज्ञात और अज्ञात से अभय, श्रेय और प्रेय के द्वन्द्वों से नितांत अनभिज्ञ अपने भीतरी उल्लास के अणु-अणु से स्फुरित अकथ्य आशा-आकांक्षाओं की उद्दामता को चहुँ ओर दिशाओं की मौन मुग्ध परिच्छाया में एकतान कर रही हैं, और उनके अलसाये अलमस्त राग भू-नभ की सर्वव्यापी अनंतता को अपने आप में समेटते हुए रुपहली रात्रि की स्पृहणीय सुषमा में ओतप्रोत पुष्पों की आकर्षक रूपाभा और मलयज मारुत की तन्द्रिल सुरभि के अजस्र अनंत प्रवाह में सबको हतचेतन सा कर रहे हैं। कलाकार

की अनुभूति की तीव्रता ने समस्त गोचर उपकरणों को सहज संवेदनीय और वरेण्य बना दिया है। 'रासलीला' की दो आकर्षक भंगिभाएँ प्रस्तुत की गई हैं, जिनमें प्रेम और अखंड चेतना, भक्ति और शृंगार का मोहक सौन्दर्य झरता हुआ मानो गहरी भावना और पावनता बिखेर रहा है। 'रासलीला' के एक दृश्य में नृत्य करती हुई प्रत्येक गोपिका के साथ कृष्ण दिखाये गए हैं, समूची मंडली मानों उन्माद की सी स्थिति में तन्मय होकर थिरक रही है। दूसरे दृश्य में कृष्ण मध्य में खड़े है और गोपिकाएँ एक दूसरे का हाथ पकड़े गोल घेरा बनाये हुए आनन्द-सागर में निमज्जित सी हो रही हैं। वृन्दावन की इन भोली-भाली व्रजांगनाओं में दिव्य प्रेम का स्रोत प्रस्फुरित है, मानों उनकी समस्त आसक्ति-अनासक्ति अपने प्रिय की अचिन्त्य रूप माधुरी में खो गई है। सौन्दर्य और निष्ठा का यह कैसा द्युतिमान दृश्य है।

एक दूसरे चित्र 'भेंटत राधा स्याम तमालहि' में राधा भावावेश में तमाल वृक्ष की श्यामता पर मुग्ध हो उसे कृष्ण के रंग से मिलता-जुलता जानकर चिपट जाती है। राधा-कृष्ण और गोप-गोपियों के बड़े ही हृदयस्पर्शी अनूठे प्रसंग इनकी तूलिका से निस्सृत हुए हैं। कहीं वे प्रेम-संदेश भेज रही हैं, कहीं प्रिय की स्मृति में अपनी सुधबुध खोये हुए हैं, कहीं कृष्ण की किसी भी वस्तु का स्मरण करके व्याकुल हो जाती हैं, कहीं चित्र में उनके सुन्दर मुखड़े को निहार रही हैं और कहीं अन्न-जल, आभूषण-वस्त्र सब कुछ भूलकर श्याम के प्रेम में दीवानी हो रही हैं। चैतन्य महाप्रभु के जीवन-प्रसंग भी उतने ही कारुणिक और मर्मस्पर्शी हैं। चैतन्य की चटशाला, गुरु के द्वार पर, चैतन्य का गृह परित्याग, संत के रूप में, कृष्ण प्रेम में विभोर, पर साथ ही उनके घर की शून्यता और पत्नी का दैन्य यों भिन्न-भिन्न स्थितियों में एक सरल आकर्षण लेकर ये चित्र प्रकट हुए हैं। बरबस सिमटी करुणा, दीनता अथवा प्रतिकूल वातावरण को भी वे अपनी सरस स्निग्धता से दिव्य बना देते हैं। 'यमुना' चित्र में सौम्य आकर्षण के साथ-साथ इन्होंने आलंकारिक सज्जा की प्रवृत्ति भी दर्शायी है। 'शकुन्तला' में रंगमय मोहक वातावरण विषय के प्राणों को प्रस्फुरित करता हुआ रंगों की ताज़गी में घुलमिल जाता है। शकुन्तला की शारीरिक भंगिमा में शृंगारिक पुट है जो अत्यन्त कौशल से व्यंजित हुआ है।

क्षितीन्द्र मजूमदार के चित्रों की विशेषता है कि इनकी रंग और रेखाएँ किसी रूप विशेष की द्योतक न होकर इनकी आन्तरिक अभिव्यक्ति में तद्रूप

हो उठी हैं। कला की अंतर्हित एकता के प्रतिपादन में ये अत्यन्त सजग हैं। हरे, पीले, बैंगनी रंगों का हल्का, तरल फैलाव इनके चित्रों को सहज आकर्षण और रहस्यमयता से ओतप्रोत कर देता है। ये एक अन्तर्दर्शी कलाकार तो हैं ही, कवि हृदय भी रखते हैं। उतमारो की स्वप्नमयी नारियों की भाँति मजूमदार की नायिकाएँ और देवियाँ रंग-रूप के अपार्थिव लोक में विचरती हैं। इनके चित्रों में मानवीय आकृतियाँ अद्भुत लुनाई और चारुता लिये हैं, यद्यपि अनभ्यस्त आँखों को यदा-कदा वे दुर्बल, क्षीण और बुभुक्षित सी प्रतीत होती हैं। उनके झुके हुए शीश, पतली लम्बी मुड़ी हुई उंगलियाँ और शरीर के मोड़ तोड़ में इस दुनिया से परे किसी अपर लोक की झाँकी है।

प्रिय पक्षी

मजूमदार उन थोड़े से कलाकारों में से हैं जिन्हें सच्ची अन्तर्प्रेरणा की अनुभूति हुई है। यही कारण है कि उन्होंने कला में एक नई दिशा चुनी है और अभिव्यक्ति का नूतन ढंग अपनाया है। उन्होंने कभी किसी की अनुकृति नहीं की, पर इससे उनकी कला ऊसर भागों में नहीं भटकी। पैनी दृष्टि, दुर्दम्य इच्छा शक्ति और अपने निराले दृष्टिकोणों से इन्होंने उस भव्य कल्पना को साकार किया जो उनकी अत्यन्त आन्तर कोमलता की परिचायक है। वर्षों से तीर्थराज प्रयाग में रहकर वे कला-साधना में प्रवृत्त हैं। वे आत्म-प्रचार की ओछी भावनाओं से परे हैं और तुच्छताएँ उन्हें छू नहीं पातीं। एकान्त में मूक साधक होकर भी वे इस युग के श्रेष्ठ, प्रतिभाशाली कलाकारों की कोटि में आ चुके हैं कि जिनकी कलात्मक उपलब्धियाँ आज अशान्त

कोलाहलपूर्ण वातावरण में भी शानदार गरिमा के साथ मुखर दीख पड़ती हैं।

लखनऊ विश्वविद्यालय में अर्से तक ये फाइन आर्ट्स में लेक्चरार के पद पर कार्य करते रहे। आजकल इलाहाबाद विश्वविद्यालय के फाइन आर्ट्स डिपार्टमेंट के अध्यक्ष के बतौर ये कार्य कर रहे हैं। कलकत्ता म्यूज़ियम, भारत कलाभवन, वाराणसी, कलकत्ता की आशुतोष म्यूज़ियम, नेशनल गैलरी ऑफ़ माडर्न आर्ट आदि कला-संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

गोवर्द्धन धारण

शारदाचरण उकील

शारदाचरण उकील उन अग्रणी आचार्य कलाकारों में से हैं जिन्होंने समय के प्रवाह को पहचान कर अपनी रंग एवं तूली द्वारा तात्कालिक कला में विविधता का समावेश किया। प्राचीन कला-परम्परा की पृष्ठभूमि में आधुनिक कला-प्रणालियों को विकसित कर और निजी अनुभूतियों के सम्बल पर नित्य-नवीन मौलिक उद्भावनाओं का प्रश्रय लेकर वे आगे बढ़े, चित्र-कला में नये आविष्कार एवं प्रयोगों में सफल हुए और बाद में तथाकथित प्रयोग ही उपयोगिता के अनुपात में नव्य कला की चेतना के अंग बनते गए।

उस समय निश्चय ही इन्हें भिन्न क्रिया-प्रक्रियाओं की लघु-विस्तृत पग-डंडियों पर स्वयं रास्ता बनाना पड़ा था, किन्तु इस शंकाकुल स्थिति में भी कोई ऐसे विघटनकारी तत्त्व न थे जो इनकी सहज प्रसरणशील महती चेतना का मार्गावरोध करते।

शारदाचरण उकील का जन्म पश्चिमी बंगाल में पद्मा नदी के समीप विक्रम-पुर (ज़िला ढाका) में एक सुप्रसिद्ध बंगाली ब्राह्मण परिवार में हुआ था, पर इनकी ख्याति बंगाल प्रान्त तक ही सीमित न रहकर भारत और सुदूर देश-विदेशों तक फैल गई थी। जेनेवा, हेग, लंदन, डबलिन, अमरीका आदि देशों में इनकी कलाकृतियाँ भारतीय आध्यात्मिक साधना व दार्शनिक चिन्ताधारा की प्रतिनिधि मानी गई और उन्हें पुरस्कृत भी किया गया।

भाव-व्यंजना की दृष्टि से इनकी कला अन्तरंग गहराई और मार्मिक गूढ़ता लिये है, वरन् कहें कि लौकिक अभिव्यक्ति की लघुता के परे वह असीम की उपलब्धि अर्थात् संसृति के सनातन सौंदर्य की दिग्दर्शक है जिसमें कलाकार की तटस्थ एवं निस्संग साधना के उपकरण द्रष्टव्य हैं। चित्रों में दो या तीन हल्के रंग जो अत्यन्त कोमलता से फैलाये गए हैं और पृष्ठभूमि में भीनी छाया जो

कलाकार के निर्लिप्त भाव और अन्तरंग चिन्तन की द्योतक है, साथ ही उनकी अन्तर्मुखी प्रवृत्ति का, कमनीय कल्पना, निगूढ़ दार्शनिकता और आत्मोपलब्धि की सिद्धि का तथा स्थूल से सूक्ष्म सौन्दर्य के प्रति मानसिक आकर्षण के उच्छ्वसित अन्तर्भावों का दर्शन हम उनके चित्रों में करते हैं। उन्होंने ऐतिहासिक एवं पौराणिक विषयों को अधिक पसन्द किया। भगवान कृष्ण और गौतम बुद्ध के मार्मिक जीवन-प्रसंगों को लेकर अपनी करुणा और संवेदना उनमें ओतप्रोत की। सिल्क पर निर्मित चित्र जिसमें कृष्ण राधिका को वीणा बजाना सिखा रहे हैं, वसुदेव और कृष्ण जिसमें समयानुकूल वातावरण चित्रित हुआ है तथा इसी प्रकार के कितने ही राधा-कृष्ण के क्रीड़ा-कलाप एवं लीलाओं को लेकर आँके गए चित्र बड़ी ही परिष्कृत सृजन-रुचि को व्यंजित करते हैं। भगवान् बुद्ध की जातक-कथाओं सम्बन्धी पैंतीस चित्रों का निर्माण इन्होंने किया है जो कि नवा-नगर के जाम साहब के महलों को सुशोभित कर रहा है।

शारदा उकील आध्यात्मिक चिन्तन और दर्शन के क्षेत्र से होकर कला के सृजन की ओर अग्रसर हुए थे, अतएव उन्होंने इस निर्दिष्ट पथ की खोज में अपनी मौलिक प्रेरणा और अन्तर्भूत जिज्ञासा के सम्बल पर कार्य किया। बचपन से ही भगवान् बुद्ध के जीवन से वे अत्यधिक आकृष्ट हुए। बुद्ध की साधना और तपोमय जीवन में उनके प्राणों के लिए स्फूर्ति भी थी और शान्ति भी, फलतः उस विराट्, सूक्ष्म रहस्यमय के वे वैविध्यपूर्ण चित्र आँक सके। भावात्मकता की मूर्च्छना भी उनके चित्रों में समाहित हो गई। उकील ने स्वयं लिखा है—"जब मैं बालक था बुद्ध से मेरा सहज लगाव हो गया, बड़ा होकर मैं अभी तक भी इस प्राथमिक आकर्षण का विश्लेषण नहीं कर सका हूँ।" बुद्ध के महान् पौरुष में विश्वास और श्रद्धा उकील के अन्तर की गहराइयों में उतरती गई। मन से तादा-त्म्य स्थापित कर वे अपने रंग व रूपाकारों में इस गहरी अनुभूति को दर्शा सके। उन्होंने उत्पीड़ित जीवन की व्यथा को मुखर किया और महान् विपन्न तक के आगे श्रद्धा से सिर झुका दिया। उन्होंने निराश, व्यथित और कष्ट से गंभीर हुई मनः स्थितियों को दर्शाने में विशेषता प्राप्त की है। प्रेम-पीड़ित और विरहिणी नारियों को धुँधले रंगों और अस्पष्ट रेखाओं में चित्रित कर इन्होंने उनकी चित्रांकित छवि में उच्छल करुणा और गहरी संवेदना भर दी है। 'सन्देश' चित्र में एक गोपिका कृष्ण की बाँसुरी को उत्सुक नेत्रों से निहार रही है और कृष्ण ऊपर लटके हुए इन्द्र-धनुषी बादलों में छिपे बैठे हैं। एक दूसरे चित्र में विरहिणी सीता की दयनीय मुद्रा का बड़ा ही भव्य चित्रण हुआ है। कहीं-कहीं तो कथा

का कुहासा इतना गहरा और घनीभूत हो गया है कि जीवन्त, उल्लसित भाव निश्चेष्ट होकर निस्सत्व वातावरण और पूर्णतया शून्य में परिणत हुआ-सा लगता है, मानों कलाकार ने सृजन की मादक थकान से घबरा कर सहसा आँखें मूँद ली हैं और वह भीतर ही भीतर आत्मविभोर हो निष्क्रिय रह गया है। 'ईद और दूज के चाँद' में एक झुर्रीवाला जर्जर भिखारी एक लड़की द्वारा दिखाए गये चाँद को निहार रहा है, इस में भी कलाकार की भावना विमूर्च्छित-सी प्रतीत होती है और सहज विश्वास में भी ऐसी ही गोप्य जड़ता आ गई है।

शारदा उकील की कला का विस्तृत पट आध्यात्मिक है। सम्पूर्ण दृश्योपलब्धि की चिन्ता किये बग़ैर वे मन की सहजानुभूति को अदृश्य, अस्पृश्य, भावोच्छ्वास भरे रंगों में उँड़ेलते है। उनके मत से भारतीय कला का प्राण-रस ही सौंदर्य-चेतना के साथ भाव-सामंजस्य का पूर्ण विलय है जो मूल में आत्मनिष्ठता के कारण विराट् बन जाता है। उन्होंने एक अन्य स्थल पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा था—"कला के प्राच्य और

बसंत

पाश्चात्य दृष्टिकोण में प्रमुख अन्तर यही है कि यदि कोई यूरोपियन किसी वृक्ष को चित्रित करता है तो वह उसकी यथार्थ रूपरेखा, वाह्य कलेवर, पत्ते, टहनी, शाखा, तना सभी हूबहू दर्शा देगा, किन्तु यदि कोई भारतीय कलाकार उसी वृक्ष को चित्रित करेगा तो वह वृक्ष की स्थूल रूपरेखा तक ही सीमित न रह कर मुड़ी-तुड़ी शाखाओं, पत्ते और जड़ के साथ उसकी आत्मा में भी प्रविष्ट हो जाएगा।" इनके विचार में—"चित्र ऐसा होना चाहिए कि सारी

मानवता को अभिभूत कर ले। किसी एक ही व्यक्ति के लिए अथवा एकांगी दृष्टिकोण को लेकर आँका गया चित्र सर्वग्राही नहीं हो सकता। चित्र आदर्श होना चाहिए।"

उकील अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के प्रमुख शिष्यों में से थे, पर 'बंगाल स्कूल' की अनेक विकसित परम्पराओं से पृथक् उन्होंने वह पक्ष अपनाया जो कला के उदात्त सौष्ठव को उनके अपने ढंग से उभार सका। पाश्चात्य कला मर्मज्ञ रोथेन्सटाइन ने इनके सम्बन्ध में लिखा था : "उकील की कृतियों की भावुकता रवीन्द्रनाथ ठाकुर के गीतिकाव्य की सी है, उसका अभिजात्य और कलागत विचारमग्नता प्रेक्षक को भारतीय आत्मा में झाँकने का ऐसा ही सुअवसर देता है जैसे कि भारतीय संगीत।" उकील ने दिल्ली में 'शारदा कला केन्द्र' की स्थापना कर एक बहुत बड़ा कार्य सम्पन्न किया। इस संस्था ने कितने ही सुप्रसिद्ध कलाकारों को जन्म दिया है। कला में रुचि रखने वाली कितनी ही छात्र-छात्राएँ इसमें इच्छानुकूल कला की साधना में प्रवृत्त होती हैं और अच्छे शिक्षकों की देख-रेख में उनकी कलाभिरुचियों को पनपने का मौका दिया जाता है।

प्रमोदकुमार चटर्जी

प्रमोदकुमार चटर्जी की प्रारम्भिक कला-चेतना हिमाच्छादित पर्वतों की उज्ज्वल गरिमा में जाग्रत हुई। एक घरेलू अप्रिय प्रसंग ने इन्हें तरुणावस्था में ही घर छोड़ने को वाध्य किया था और जीवन-संघर्षों से श्रांत-क्लांत ये हिमालय के प्रशांत प्रदेश की ओर चल पड़े थे। कालान्तर में कितने ही पवित्र स्थलों का इन्होंने निरीक्षण किया, कैलाश और मानसरोवर की अलभ्य सुषमा के दर्शन किये, तिब्बत और वहाँ की कला को निरखा-परखा। हिमानी सौंदर्य के प्रति इस प्राथमिक आकर्षक का स्थायी प्रभाव इनके जीवन पर छाया रहा। पार्वत्य प्रदेश के नीरव वातावरण में मानसिक क्लान्ति बहुत कुछ कला की मूक साधना में परिणत हो गई। विपन्न स्थिति और मानसिक ऊहापोहों में भी ये अपने साथ रंग और कूची ले जाना न भूले थे। ज्यों-ज्यों इनकी अनुभूतियाँ परिपक्व होती गईं वे इनके भीतर प्राणों में गहरी उतरती गईं। हिमालय के रजत शिखर, हरी-भरी तलहटी और वहाँ वसने वाली विचित्र पहाड़ी जातियों का इन्होंने सुन्दर चित्रण किया।

चन्द्रशेखर

इस खानाबदोश शिल्पी के तूलिका-स्पर्श ने उस सजीव कला को मूर्तिमान

किया जिसमें निराकार की अनुभूति और गहरा आध्यात्मिक चिंतन निहित था। तिब्बत में भ्रमण करते हुए इन्हें एकान्त साधना का सुअवसर मिला था। प्रकृति के साहचर्य और वहाँ की सौंदर्य-श्री में मानो इनका समग्र व्यक्तित्व उद्भासित हो उठा। एकान्त निष्ठा ने इनकी अंतरंग वृत्तियों को इस हद तक उभाड़ा कि इनकी कला-चेतना किसी अज्ञात, इन्द्रियातीत के प्रति दृढ़ आस्था में बद्धमूल हो गई।

ये आध्यात्मिक संस्कार इनके भीतर इतने धँस गए कि इनका असर आज तक न मिटा। संघर्षों और परेशानियों में ही इन्होंने कला के 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम्' को पाया था। तिब्बत के भयंकर शीत, घृणोत्पादक गन्दगी, गरीबी और बीमारियों ने इनमें सृजन की चाह जगाई और कलात्मक संकेतों के प्रति इनकी उत्तरोत्तर निष्ठा बढ़ती गई। अपने चारों ओर के पर्यवेक्षण और जीवन के प्रति अंतःप्रेरित व काल्पनिक अनुभूति के फलस्वरूप, किन्तु साथ ही पर्वतों की गोद में पले भोलेभाले लोगों के सम्पर्क ने इनमें ऐसी संवेदना जगाई कि वे उनकी आत्मीयता में खो से गए। भीतर के मूक समाधान और सहृदय वातावरण की अनिर्वचनीय अनुभूति ने इनकी 'अहं' की सीमाओं को विराट् बना दिया था। अखंड सौन्दर्य-चेतना से इनका अन्तर्वाह्य दीप्त हो उठा था। क्या कभी ये अपनी जन्मभूमि भारत लौट सकेंगे—इसकी इन्हें आशा तक न थी।

किन्तु एक दिन दुर्दम्य इच्छा इन्हें स्वदेश ले आई। फक्कड़ ज़िन्दगी से सुस्थिर हो जाने और बेगाने लोगों से आत्मीय जनों के बीच प्रश्रय पाने में इन्हें विचित्र सुख की अनुभूति हुई। हिमालय की ओर प्रस्थान करने से पहले इन्हें 'पोर्ट्रेट' चित्र बनाने का शौक था जिससे अभी तक इनका पूरा लगाव न छूटा था। अन्य समवयस्क साथियों के साथ इन्होंने कलकत्ता के स्कूल आफ आर्ट में हें शिक्षा पाई थी, पर उनसे इनका मत-वैभिन्न्य था। हेवेल और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा चलाए अभिनव कला-आन्दोलन के ये घोर विरोधी थे। बुर्जुआ कलादर्शों को अपनाना अथवा अजंता की और वापसी इन्हें मान्य न थी। आखिर कला में पुरानी लीक को पीटते रहने से ही कौन-सा चमत्कार उत्पन्न होगा—यह इनकी समझ में न आता था। इसके विपरीत टिशियन, वालस्क्वेज, रेम्बरेंट आदि विदेशी कलाकारों के ये अनन्य भक्त थे और यामिनी राय की भाँति कला में वैचित्र्य और नवीनता के क़ायल।

किन्तु वापिस स्वदेश लौटकर इनकी अभिरुचि में पर्याप्त परिष्कृति आ गई थी। इनकी विचारधारा आवेशपूर्ण न होकर शान्त व सहज थी और ये

प्राचीन कला-परम्पराओं के विरोधी से उनके प्रबल समर्थक व प्रशंसक हो गये थे। इन्होंने सामान्य वस्तुओं को भी एक भिन्न दृष्टि से देखा। भ्रमणशील जीवन में जो संस्कार भीतर रम गये थे वे नये स्वर से फूट पड़े। पुरानी स्मृतियों ने इनमें एक नई प्रेरणा जगा दी। इन्होंने अपनी कला द्वारा आत्मज्ञान का प्रतिपादन किया। कला को शाश्वत मानकर जीवन के अनुभवों का उपयोग इन्होंने आध्यात्मिक और रहस्यात्मक दोनों रूपों में स्वीकार किया है। हिन्दू देवी-देवताओं को शक्ति का असमाप्य स्रोत मानकर इन्होंने रूपक एवं प्रतीकों का प्रश्रय लेकर चित्र-कल्पना सी की, यद्यपि ऐसा चित्रण भावातिरेक में आध्यात्मिक गाम्भीर्य तो लेकर प्रकट हुआ, पर उसमें सौन्दर्य की समग्रता का समावेश कम हुआ। सांख्य दर्शन से प्रेरित 'पुरुष और प्रकृति' में लंगड़े वृद्ध और अंधी तरुणी की चित्र-कल्पना प्रस्तुत कर प्रकृति और पुरुष से सादृश्य व सहभाव स्थापित किया गया है। लंगड़ा वृद्ध व्यक्ति (जो पुरुष है) नेत्रहीन सुन्दर युवती (जो प्रकृति है) के कन्धों पर चढ़ा हुआ है। पुरुष पथ-निर्देश कर रहा है और अंधी युवती के रूप में प्रकृति दुर्बल कन्धों पर असह्य भार लिये जड़खड़ाते क़दमों से आगे बढ़ रही है। इस प्रतीक कल्पना से यह व्यंजित होता है कि प्रकृति और पुरुष एक दूसरे पर निर्भर हैं, दोनों परस्पर के सहयोग से ही पूर्ण हैं तथा प्रगति और विकास में एक के बिना दूसरे का काम चल नही सकता। लक्ष्मी, दुर्गा और शारदा इन तीनों देवियों के चित्रण में पृथक्-पृथक् भाव और उनकी शक्ति रूपायित हुई है। अक्षय रूप-श्री और ऐश्वर्य की भण्डार लक्ष्मी, धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष इन चारों गुणों को चार हाथी द्वारा (जो मेघों की सी रूपच्छवि और घनता लिये हैं) व्यंजित कर रही है। चारों हाथी देवी की अभ्यर्थना में जल-सिंचन कर रहे है जो समस्त मानवता का कल्मष धोकर कल्याण और भौतिक सुख-समृद्धि के द्योतक हैं। 'दुर्गा' में भैंसे के रूप में तामसी शक्ति का दमन और शारदा में देवी के सिर के ऊपर चमकते तारे के अवतरण से अंतर्ज्योति का आलोक झरता हुआ दर्शाया गया है। इन त्रिदेवियों के चित्रण मे धार्मिक भावना का आवेश तो है, पर सूक्ष्म सौंदर्य-तत्त्वों का विश्लेषण अथवा गुप्त सत्य के निस्तल में पैठने की चेष्टा नही की गई है। उषा और वरुण, मनसा देवी, गायत्री, चित्रगुप्त, अश्विनी कुमार आदि चित्रों में प्रतिरूप तो उभर आए हैं, किन्तु सूक्ष्म कल्पना गौण पड़ गई है। विराट् सौन्दर्य देवत्व की मात्र छाया बनकर उसी के वृत्त में समाया हुआ सा ज्ञात होता है। इसके विपरीत इनका सुप्रसिद्ध चित्र 'चन्द्रशेखर' शिव की केन्द्रीय चेतना से दीप्त हो उठा है। प्रमोद

कुमार चटर्जी की यह कृति असाधारण है और इसमें अद्भुत विराट् के दर्शन होते हैं। सर्वप्रथम जब यह चित्र कलकत्ता की प्रदर्शनी में रखा गया तो इस पर कलाविदों का विशेष ध्यान न गया था, पर अकस्मात् एक जर्मन प्रेक्षक ने इसके सौन्दर्य पर दृष्टिपात किया। वह इसके ज्योतिर्मय, शांत, महिमोज्ज्वल रूप पर मुग्ध हो उठा और इसमें धार्मिक विशिष्ट गुणों से पृथक् सौन्दर्य का संधान किया। तत्पश्चात् डाक्टर कज़िन्स ने इस चित्र पर कितने हो महत्त्वपूर्ण भाषण देकर और पत्रों में छापकर इसकी खूबियों को दुनियाँ के सामने रखा और इसका महत्त्व बढ़ाया।

शिव का यह चित्र अभूतपूर्व बन पड़ा है। अंतर्द्रष्टा कलाकार ने अशेष अंतर्भाव को स्वप्निल सम्मोहन में परिणत कर दिया है। शोभा से वेष्टित शिव का मंगलमय रूप ऊपर से जितना ही शांत और सौम्य है उतना ही अतुल्य ऐश्वर्य से मंडित भी। सिर पर सर्प की फुंकार और भीतर तीव्र विषदाहक ज्वाला को छिपाए हुए भी अंतरतम की तन्मय लय में भावोल्लास की रश्मियाँ भाल पर विकीर्ण हो रही हैं, चन्द्र के संयोग से वह और भी दीप्त हो उठा है तथा मूक द्युति से मज्जित शिव की रूपच्छटा स्वर्गिक आभा बिखेर रही है। इस चित्र में कलाकार ने आध्यात्मिक शक्ति की समग्रता को साकार करने की चेष्टा की है। जल रंगों में यह इकरंगा चित्र प्रवहमान गहरी रेखाओं द्वारा आँका गया है। भाल पर की श्वेत चन्द्ररेखा (जिमने शिव की जटाओं, सर्प और नासिकाग्र को ज्योतित किया है), मस्तक पर चतुर्दिक मण्डलाकार प्रकाश और गले में धारण की हुई मुण्डमाल—यह सब—सफ़ेद कागज़ की पृष्ठभूमि से दर्शाया गया है। केवल एक रंग से ही शिव की महत् कान्ति प्रस्फुटित हो उठी है।

धार्मिक चित्रों के अतिरिक्त प्रमोद कुमार चटर्जी ने योद्धाओं और ऐतिहासिक महापुरुषों के चित्र भी अंकित किये हैं। इन्दौर के 'होम आफ ग्रेटनेस' के लिये अशोक महान् का खास तौर से चित्रांकन किया था। यह वह विस्मयकारी ऐतिहासिक क्षण है जबकि सम्राट् अशोक राजसी ठाठबाट में स्वर्ण-सिंहासन पर बैठा हुआ कलिंग युद्ध की अकल्पनीय भीषणता का स्मरण कर और क़त्ल हुए शत्रुओं का चिन्तन कर हिंसा की प्रतीक तलवार को बायें हाथ में धारण किये मन में अहिंसा का संकल्प कर रहा है। वह अपनी समस्त क्रूरताओं और विजयाकांक्षाओं का दमन फर बौद्ध धर्म को गले लगाने और उसके प्रचार की बात सोच रहा है। उसके चेहरे पर विषाद, मोहहीन तन्द्रा और क्रमशः उभरती स्थिति साकार हो उठी है। अशोक के जीवन के इस

महान् क्षण को चित्रांकन करने का कलाकार ने प्रयास किया है और वह इसमें एक हद तक सफल भी हुआ है। 'भगीरथ और गंगा', 'नर्त्तकी अम्बपाली', 'श्यामांग शारदा' और 'अश्विनीकुमार' आदि चित्र आध्यात्मिक भाव से प्रेरित हैं।

प्रमोद कुमार चटर्जी ने आन्ध्र प्रान्त में कला का खूब प्रचार किया। इनके शिष्यत्व में कितने ही उत्साही कलाकार बनकर निकले और उन्होंने ख्याति भी पाई। मछलीपट्टम के 'नेशनल कालेज' में ये वर्षों अध्यापन कार्य करते रहे और फिर बड़ौदा के गवर्नमेंट टेकनीकल स्कूल में कार्य किया। मैसूर के जगन्मोहन पैलेस की चित्र गैलरी में और त्रिवेन्द्रम के श्रीचित्रालयम् में इनकी कितनी ही कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं। ये पुनः आन्ध्र लौट आये हैं और कला एवं संस्कृति के प्राचीन केन्द्र अमरावती के समीप अपना निजी शिक्षणालय स्थापित कर आज भी कला की मूक साधना में निरत हैं।

वीरेश्वर सेन

प्रशस्त ललाट, चमकती भूरी आँखें, भावुक मुखाकृति और उभरी ठोड़ी--वीरेश्वर सेन के बाहरी व्यक्तित्व पर उनकी भीतरी अनुभूति की गहरी छाप और ज़िन्दगी के ठोस तजुर्बों से पुष्ट विचारधारा की झलक है। प्रारम्भ से ही उनकी विशेषता रही है कि उन्होंने परिस्थितियों की कभी दासता स्वीकार नहीं की और कला की दिशा में अग्रसर होने की प्रेरणा भी उन्हें अपनी आंतरिक रसज्ञता और भावुक प्राणों को अभिभूत करने वाली सरस संवेदना से ही प्राप्त हुई। उनके पितामह यज्ञेश्वर सेन, जो कलकत्ता हाईकोर्ट के एक सम्मानित कानूनी सलाहकार थे, चित्रकला में विशेष अभिरुचि रखते थे और कला-पुस्तकों का उनके यहाँ बहुत बड़ा संग्रह था। इनके पिता शैलेश्वर सेन शुरू में कलकत्ता यूनीवर्सिटी में अंग्रेजी के प्रोफेसर रहे, पुनः कॉमर्शल कालेज, दिल्ली में प्रिंसिपल नियुक्त होकर कार्य करते रहे। वे अपने पुत्र को अपनी ही तरह अंग्रेजी का विद्वान बनाना चाहते थे, फलतः वीरेश्वर सेन ने सन् १९२१ में इंग्लिश में एम० ए० परीक्षा प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण की। उसके दो वर्ष पश्चात् बिहार नेशनल कालेज, पटना में अंग्रेजी के प्रोफेसर होकर चले गए। लखनऊ आर्ट कालेज के प्रमुख कलाचार्य के रूप में इन्होंने उत्तरप्रदेशीय कला-प्रवृत्तियों को विकसित किया।

वीरेश्वर सेन की प्राथमिक कलाकृतियों में जलरंगों का प्रयोग हुआ है। बाल्यावस्था से ही इन्हें अपनी पाठ्य-पुस्तकों के दृष्टान्त-चित्रों में तरह-तरह के रंगों को भरने का शौक था। इनके दादा इनकी इन बाल-क्रीड़ाओं में अत्यधिक दिलचस्पी लेते थे और बच्चे का मन रखने के लिए तथा उसकी कला-प्रवृत्तियों को प्रोत्साहित करने के लिए आकर्षक चित्रों से सुसज्जित पुस्तकें और भाँति-भाँति के रंग का सामान लाकर देते थे। बालक वीरेश्वर अपने दादा के साथ कलकत्ता की इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिण्टियल आर्ट की कतिपय कला-प्रदर्शनियों में जाकर विभिन्न कलाकृतियों के सौन्दर्य में अपनी आँखों को विभोर करता था। यद्यपि उनमें अनुभवी व्यक्ति की सी प्रखर दृष्टि तो तब न थी, तथापि उनकी प्रशंसक आत्मा उन जादूभरे रंगों और रंगों से उद्भूत आकृतियों में इतनी अभिभूत हो जाती थी कि वे घण्टों उनमें डूबे रहते। 'मॉडर्न

रिव्यू' में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल बसु के रंगीन चित्रों से श्री सेन अत्यधिक प्रभावित हुए। सन् १६१८ में जबकि वे बी० ए० की तैयारी में संलग्न थे, तभी वे अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और नन्दलाल बसु के सम्पर्क में आए। कला की ओर उनका अत्यधिक झुकाव होता गया और लगभग छः वर्षों तक अवनी बाबू के तत्त्वावधान में वे कला की साधना में रत रहे।

वीरेश्वर सेन ने हिमाच्छादित हिमालय की रुपहली सौन्दर्य-राशि को रंगों में अन्वित किया है। हिम की कर्पूर-सी श्वेतिमा की घनीभूत एकप्राणता में कलाकार की आत्मा समरस हो उठी है। प्रकृति और उसका बिखरा वैभव उनके प्राणों में स्पंदन बनकर रम गया है और निस्सीम कुहेलिका की उमड़ती नीरवता को तूलिका से समेटने के लिए उनके हल्के-गहरे रंग भी त्वरा के साथ गतिमय सम्पूर्णता से रूपायित हुए हैं। कितने ही मूक भाव अभिव्यक्ति की विह्वलता में डूबकर वातावरण और भावना की पार्श्वभूमि को रंजित करते हैं और कितने ही देखे-अनदेखे चित्र विविध आकारों में कल्पना के साथ उभरे हैं। प्रारम्भ में इन्हें वृक्षों और पर्वतों के चित्रांकन में रुचि थी। 'शृंगार' चित्र में एक मुड़े-तुड़े वृक्ष और एक अस्पष्ट से धुंधले पर्वत की ओट में सुन्दर बंगाली महिला चौकी पर बैठी हुई हाथ में दर्पण लेकर एक परिचारिका द्वारा केशों की शृंगार सज्जा में संलग्न है। 'दमयन्ती' में शाल वृक्ष की मोटी शाखा के छाया तले मिट्टी के टीले पर नल की राजमहिषी दमयन्ती जीर्ण वस्त्रों में अपना लावण्य समेटे बैठी है। कालान्तर में ज्यों-ज्यों उनकी कला-प्रवृत्तियाँ विकसित होती गई, उनके स्थूल आकार धूमिल हो गए और प्रकृति का प्रसार सघन होकर अधिकाधिक चित्रों की पटभूमि में समाता गया। सन् १६३२ में इन्होंने हिमालय की कुल्लू घाटी में स्थित विश्वविश्रुत कलाकार निकोलस रोरिक के स्थान पर जाकर उन से भेंट की, तत्पश्चात् ये काश्मीर गए और वहाँ के प्राकृतिक सौन्दर्य को निरखा-परखा। एक महान् कलाकार का सम्मिलन-सुख और काश्मीरी सुषमा के ज्वार ने वीरेश्वर सेन की कला के रुख़ को अकस्मात् दूसरी दिशा में मोड़ दिया। हिमालय की अनन्त नीरव महिमोज्ज्वल गरिमा उनकी आत्मा की गहराइयों में पैठकर मूक अनुभूति बन गई और यह आन्तरिक चिन्तन, ये नूतन भाव अनेक प्रकार के बिम्बों की सृष्टि कर सके। अपनी परिपक्व कला-प्रवृत्तियों को उन्होंने हिमालय की शोभा के संधान में लगा दिया। वे उसमें नया अर्थ पाने और उसकी अलौकिक दृश्य-योजना के रहस्य और हिमखण्डों की निसर्ग रूपच्छटा से तादात्म्य स्थापित करने के प्रयत्न में लग गए। हिमशृंग की दिव्य शोभा, भयानक नदी-

नाले और हरहराते जल के त्वरित वेग को उन्होंने कितने ही लैण्डस्केप चित्रों में दर्शाया है। हिमालय के प्रति उनका अपरिसीम राग और आकर्षण ही उनकी कला के भीतरी स्तरों को अनुरंजित कर सका है।

स्वप्न और सत्य के सूक्ष्म बिन्दु तक पहुँचने के लिए उन्होंने बिम्ब-विधान की प्रक्रिया को प्रायः हल्के और छायादार रंगों में आँका है। रेखाएँ इतनी धुँधली और रंग ऐसे अखण्ड हैं कि उनकी निःस्तब्ध घनता में आत्मपूर्णता घुली जा रही है। मूक साधना में निरत प्रकृति के व्यापक रहस्य में श्री सेन ने अपने प्राणों के ज्वलन्त आवेग को डुबा दिया है। इनके सुप्रसिद्ध चित्र 'हम किसको बलिदान दें' में एक प्रचलित वैदिक मंत्र का दृष्टान्त-चित्र उपस्थित किया गया है, जिसमें एक उपासक प्रभातकालीन सूर्य की किरणों के प्रकाश से आलोकित प्रस्तर-स्तम्भ को यज्ञाहूति दे रहा है। इस चित्र में प्रज्ज्वलित अग्नि के सम्मुख एक युवक का हाथ पसारे और घुटने टेके नतशिर होना जीवात्मा का परमात्मा की खोज में भटकने का द्योतक है। जीवन न जाने कब से उस अज्ञात को पुकार रहा है। दुर्भेद्य कुहासा उस ज्योतिर्मय रूप का अजीब नशा भर देता है, पर आज तक उसका कोई पूर्ण आभास न पा मका। इस अद्भुत आँख-मिचौनी में मनुष्य ठगा-सा रह जाता है। यहीं से श्री सेन की कला में एक नया मोड़ उत्पन्न हुआ। उन्होंने अपनी जागरूक चेतना को सृष्टि के कण-कण में व्याप्त कर अपना क्षेत्र व्यापक बना लिया।

शुरू में उनकी कला-प्रतिभा बंगाल-स्कूल की छाया तले पनपी थी। उस समय उन्होंने 'दूधवाली', 'उषा', 'स्नान के बाद' आदि चित्रों में नारियों के सुन्दर चित्र अंकित किये थे, किन्तु तब तक मन के भीतर का गम्भीर सृजन संस्कार न जागा था। कलाकारोचित तटस्थता और कला से तन-मन की एकता भी तब तक स्थापित न हुई थी, यों उन चित्रों में भी उनकी गम्भीर दार्शनिकता झाँकने लगी थी। कुछ समय के लिए एडमंड ड्यूलाक से वे अत्यन्त प्रभावित रहे। तुर्की सौन्दर्य के द्योतक तंग पायजामें और क्षीण कटि को उन्होंने अत्यन्त नज़ाक़त से चित्रित किया। मुग़ल सम्राट् अकबर और शाहजहाँ के समय बने चित्रों के अनुकरण पर 'चिन्तन' (Meditation) नामक चित्र में उन्होंने मुग़ल शाहजादे की छवि अंकित की और 'समुद्री किनारे पर' ड्यूलाक द्वारा चित्रित दम्पति की हूबहू अनुकृति की। लेकिन ऐसे चित्र अस्वाभाविक और वीरेश्वर सेन जैसे विद्रोही कलाकार के अनुरूप न जंचे। शीघ्र ही वे इस प्रभाव से मुक्त भी हो गए।

•

अपने वृहदाकार चित्रों में गतिमय स्फूर्ति लाने के लिए उन्होंने पेस्टल में बनाना उन्हें अधिक पसन्द किया। 'स्वर्ण पर्वत' में नील वर्ण पहाड़ियों की सुनहरी चोटियाँ और देवदार के काले वृक्षों के बीच इठलाती, बलखाती जलधारा, 'जीर्ण आवरण' में पर्वत से नीचे ढुलकता हुआ बर्फ और 'सोते सिंह' में भूरा, गुलाबी और नीला रंग अत्यंत कौशल से प्रयुक्त हुआ। 'तीर्थयात्री' चित्र में जलरंगों में बद्रीनाथ के दर्शनों के इच्छुक यात्रियों को दुर्गम पथ पर चढ़ते हुए दिखाया गया है और 'नीली पहाड़ियों' में सुनहरे, भूरे, हरे और नीले रंगों का अद्भुत समन्वय है।

वृहदाकार चित्रों के साथ-साथ वीरेश्वर सेन ने लघु चित्रों का भी निर्माण किया है। उनके परवर्त्ती चित्रों में प्रकृति इतनी व्यापक रूप धारण कर गई है कि जानवरों और मनुष्यों की आकृतियाँ गौण हो गई है। ग्रामीण नारियाँ, घुड़सवार, गड़रिये, किसान और गाय, भैंस, बकरी, घोड़े आदि पशु बड़ी-बड़ी भयंकर चट्टानों और पर्वतों के मुकाबले में नगण्य से जान पड़ते हैं—मानो प्रकृति को दुर्द्धर्ष शक्तियों के सम्मुख प्राणी का कोई महत्त्व ही नहीं है। कहीं-कहीं बिना प्रयास के कूची के एक ही झपाटे में उन्होंने घड़ा ले जाती हुई औरत, चिलम पीता गड़रिया, गेरुए वस्त्र पहने साधू इतनी आसानी से आँक दिये प्रतीत होते है कि उनको आतशी शीशे में देखकर ही विश्लेषण किया जा सकता है। श्री सेन के लैण्डस्केप और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र बड़े ही कौशल और सूक्ष्मता से अंकित हुए हैं। सूर्य की विकीर्ण रश्मियाँ अथवा चंद्र-तारों के प्रकाश में पहाड़ी लोगों का झुण्ड या घूमते-फिरते साधू, चट्टानों या ऊबड़-खाबड़ पत्थरों के सहारे विश्राम करते एकाकी लामा, कभी काले-काले पर्वतों पर अथवा श्वेत हिमखण्डों पर अठखेलियाँ करता हुआ नीले अंतरिक्ष का रंग-बिरंगा प्रकाश, कभी उषःकालीन धुंध में उदित होते हुए सूर्य की किरणों का नर्त्तन, पर्वत श्रृंगों पर फिसलते बादल और नीचे लाल चट्टानों पर पड़ती उनकी छाया, हिम से मंडित ऊँचे-ऊँचे पर्वत और छोटी पहाड़ियों पर जहाँ पग-डंडियाँ आकर मिलती है, वर्षा की हल्की फुहार और विभिन्न आकृतियों में बनते-मिटते मेघ—यों इस प्रकृति प्रेमी कलाकार ने प्राकृतिक दृश्यों को नाना रंगों में समाविष्ट कर अपनी मनोभावनाओं को व्यक्त किया है।

वीरेश्वर सेन की कला के सौंदर्य-पक्ष में प्रकृति का मोहक आकर्षण अनुभूति की गहनता और सर्जनात्मक निष्ठा है। चित्र की विशालता एवं लघुता उनकी दृष्टि में विशेष महत्त्व नहीं रखती, वे तो कला में अंतर्निविष्ट सौंदर्य

ग्रौर रूप की ग्रखण्डता के हामी हैं। ग्रपने ग्रंग्रेजी ज्ञान के सहारे उन्हें विषयों के चुनाव ग्रौर ग्रपनी चित्राकृतियों का नामकरण करने में विशेष सुविधा रहती है। उन्होंने कला पर काफी पढ़ा ग्रौर लिखा है। बंगाल स्कूल की प्रचलित कला-रूढ़ियो ग्रौर ग्राज के कतिपय वादों—'क्यूबिज़्म,' 'सुर्रियलिज़्म' ग्रादि से उन्हें नफ़रत है। उनके मत से भारतीय कला विश्व की कला से विशेष भिन्न नहीं रहीं, हाँ—उसके विकास की परिस्थितियाँ ग्रौर वातावरण भिन्न ग्रवश्य रहा। कला सदैव से एक व्यापक संस्कृति की संदेशवाहिका ग्रौर उसके स्तर एवं स्थितियों की सूचक रही है। यही उसकी शक्ति है ग्रौर यही उसकी क्षमता का प्रतीक भी। जो कलाकार ग्रद्भुत सत्य एवं चरम चेतन के प्रति जितना ही सजग होगा वह उतना ही कला के भीतर पैठ सकेगा। श्री सेन उन सच्चे कलाकारों में से हैं जो प्रकृति के रहस्यों के ज्ञाता तो हैं ही, उसकी शक्ति में ग्रास्था ग्रौर मानवता के प्रति भी ग्रात्मीयता रखते हैं। उनकी कृतियाँ समय से ऊपर उठकर ग्रमर कला का प्रतिनिधित्व कर सकी हैं।

देवीप्रसादराय चौधरी

देवीप्रसाद राय चौधरी 'बंगाल स्कूल' की कला-प्रेरणाओं और प्रभावों को एक दिन मद्रास तक ले गये थे और सन् १६२८ से यहीं के आर्ट स्कूल में अध्यक्ष-पद पर कार्य कर रहे हैं। इस अर्से में एक पथ-प्रदर्शक की हैसियत से उनका कार्य इतना व्यापक हुआ कि वह सिर्फ़ अपनी परिधि में सिमटा न रहकर दूर-दूर तक अपनी शक्ति को बिखेर सका है। कला के पुनर्संस्थापन में जो प्राचीन भारतीय कला-परम्पराएँ विकसित हुई थीं, उनका कमज़ोर पौधा अभी मज़बूत न हो पाया था। नवीन वाद-विवादों की आँधियों और प्रचण्ड झोकों में वह भूमिसात् भी हो सकता था। राय चौधरी भी अवनीन्द्र-नाथ ठाकुर के उन प्रतिनिधि प्रतिभाशाली शिष्यों में से हैं, जिन्होंने इस पौध को सर्वथा नये प्रांत में सुदृढ़ तो किया ही, सामयिक गतिविधियों पर दृष्टिपात कर कला में नवीन दिशा का रुख़ भी अपनाया।

राय चौधरी की कलात्मक प्रतिभा की कुंजी उनके उद्दाम व्यक्तित्त्व में निहित है। उनकी सतत विकासशील प्रवृत्ति में कुछ ऐसी गति और वेग है कि उनके सृजन में चाहे वह तूली से किया गया चित्रण हो अथवा छेनी से कोरे गए रूपाकार एक दुर्द्धर्ष तनाव दीख पड़ता है। उनमें एक ऐसी आत्म-व्यंजक कचोट है जो सीधे मर्म पर कशाघात करती है। वे मूर्त्तिकार भी हैं और चित्रकार भी—दोनों में पृथक् ढंग से अपनी विश्रृंखल भावनाओं को ढाला है। जो उनकी भीतरी तह तक पैठ सकता है वही उनकी कला में झाँक सकता है। कहते हैं—राय चौधरी की उंगलियों के समक्ष मिट्टी झुक जाती है। वे उसका निर्माण नहीं करते, झपट्टा सा मारकर उसे निखोरते हैं मानो उनके मस्तिष्क की उथल-पुथल, संत्रस्त चेतना और अन्तर का सारा काठिन्य उसमें विश्राम पा जाता है। उनकी प्रतिमाएँ हृदय में उभरती हैं और स्वतः अनायास ही मिट्टी में ढल जाती हैं। उनकी यह निर्वैयक्तिकता, भीतरी आलोड़न और प्रबल व्यक्तित्व उनकी कला में व्यंजित हुआ है।

यद्यपि उनके कृतित्व में अनेक विसंगतियाँ द्रष्टव्य हैं, फिर भी उनकी चित्रकला और मूर्त्तिकला अनेक स्थलों पर तद्रूप हो गई है। उनकी अधिकांश

प्रतिमाएँ रेखाओं में व्यंजित आकृतियाँ हैं जिनमें विषम परिस्थितियों से द्वन्द्व संघर्ष निरूपित हुआ है। राय चौधरी ने श्रमिक और उनके जीवन की कितनी

जब शीत ऋतु आती है (प्लास्टर मूर्त्ति)

श्रम की विजय (कांस्य प्रतिमा)

ही समस्याओं को छुआ है। निम्न वर्ग के संघर्षपूर्ण जीवन और दीन-हीन मज़दूर उनकी कला की प्रेरणा रहे हैं। उनकी सुप्रसिद्ध कलाकृति 'श्रम की विजय' में संघर्ष और कशमकश की अलग-अलग लीकें पहचानी जा सकती हैं। यही एक विषय उनकी अन्तरात्मा को लगभग आठ वर्ष तक कचोटता रहा था। पुनः अपने कतिपय रेखाचित्रों में मन के इस द्वन्द्व को उन्होंने व्यक्त किया। 'सड़क बनाने वाले' और जब 'शीत ऋतु आती है' मूर्त्तियों में उनकी उदार करुणा का भाव झलकता है। भौतिक क्लान्ति के दारुण आघातों ने उनकी बौद्धिक संवेदना को अत्यन्त सूक्ष्मता से उभाड़ा है।

अपनी तरुणावस्था में उन्होंने बुजुर्ग कलाकारों की टेकनीक को अपनाया, पर किसी एक ही प्रवृत्ति को स्वीकार करना अथवा कूप-मंडूक बने रहना इन्हें रुचिकर न हुआ। नये मार्गों की खोज में वे अनवरत आगे बढ़ते रहे, किन्तु किसी एक निश्चित पथ पर पहुँचने का उपक्रम कर इन्होंने अपनी दिशा बदल दी। विषयवस्तु की नूतनता के साथ-साथ इन्होंने जीवन के प्रति मूलतः नये दृष्टिकोणों को अपनाया। इन्होंने यह अनुभव किया कि किसी एक ही रास्ते पर बहुत दिनों तक चलना इनके लिए सम्भव न हो सकेगा। विभिन्न स्थितियों के विपर्यय ने इनमें असंतोष जगा दिया और इनकी कुंठाएँ इनके रूपाकारों में प्रकट हुई। प्रतिकूल मान्यताएँ और जीवन के अन्तर्विरोधों ने इनमें तिलमिलाहट और जुगुप्सा उत्पन्न कर दी थी। आज की आर्थिक परि-स्थितियों में समाज का जो ढाँचा है और उसके भीतर जो हाहाकार, बेबसी और घुटन पैदा हो गई है उससे इनमें नये तर्क, नये सिद्धान्त, नूतन प्रेरणा शक्ति, दृढ़ता, आत्म-विश्वास और दर्प जगा। वे जीवन की गहराइयों में उतरते चले गए और उनके उन्मुक्त सृजन की गति के प्रेरणा स्रोत खुलते गए। उनके उद्वेग, उनकी सजग वृत्तियाँ बौद्धिकता से उलझ कर अजीब ढंग से प्रकट हुई। 'बंगाल स्कूल' की प्रचलित पद्धतियों और प्रभावों से वे सर्वथा मुक्त हो गये और उन्होंने पाश्चात्य कलाचार्यों की विशेषताओं का अध्ययन कर अपनी एक निजी शैली का प्रवर्त्तन किया जिसमें प्राचीन भारतीय क्लासिकल परम्पराएँ और पश्चिम के 'प्रकृतवाद' की सम्मिश्रित झलक थी।

राय चौधरी जीवन में सदैव नये मोड़ों को पसंद करते हैं। वे एक अनथक खोजी हैं जो नवीन टेकनीक और कार्य करने के उन तरीकों को अख्तियार करना चाहते हैं जो कभी पहले प्रयोग में नहीं लाये गये। इन नूतन ढंगों के पीछे वे इतने अधिक दीवाने हैं कि कभी-कभी अपनी बनाई प्रतिमाओं और

चित्रों को जो पूरे होने को होते हैं, पर जिन पर उन्हें यह सन्देह हो जाए कि ये उनके ही किसी पिछले मनोभाव अथवा किसी दूसरे कलाकार द्वारा बनाई वस्तुओं की अनुकृति हैं तो उन्हें वे निर्दयता पूर्वक एक झपाटे में फौरन नष्ट कर डालते हैं।

राय चौधरी द्वारा गढ़ी गई प्रतिमाओं में सौंदर्य, सुघट्टता और विवरणात्मक स्पष्टता है। वे नसों, मांस-पेशियों और शरीर की प्रौढ़ गठन पर विशेष ध्यान देते हैं। 'स्नान करती हुई नारी' में आदर्श निर्माण का प्रयास हुआ है, तथापि मूर्तियों में यथार्थ और वास्तविक स्वरूप का प्रदर्शन ही उन्हें अधिक रुचता है। कभी-कभी तो उनकी मूर्त्तियों में स्वाभाविकता से अधिक उद्दाम उभार है। वे मिट्टी में प्राणों को थिरकता हुआ देखना चाहते हैं। वे अभिव्यक्ति की सफलता के मूल में कठोर साधना और अन्तर में अनुभूत नैसर्गिक प्रेरणाओं की परिणति ही कला की सच्ची उपलब्धि मानते हैं। उन्होंने लिखा है,...... "चित्रों या मूर्तियों में व्यक्त धार्मिक विचारों अथवा सामाजिक धारणाओं के विकास का अध्ययन करने पर यह सिद्ध हो जाएगा कि कलाकारों को निर्माण की प्राणमयी प्रेरणा देने वाली वस्तु मूलभूत मानव-भावनाएँ ही थीं। यह गति-विधि प्रागैतिहासिक काल से चली आई है और इससे प्रेरणात्मक तत्त्व हजारों वर्षों तक जीवित रहकर प्राणी-जगत् के सर्वोच्च जीव—मनुष्य पर हावी रहा है, उस मनुष्य पर जिसमें असीम चिन्तन और कल्पना शक्ति है। इस प्रकार हम इस तथ्य पर भरोसा करते हैं कि कला का उद्देश्य रहा है—ऐसी निर्मल और सरल अभिव्यक्ति, जो व्यक्त विषय के उद्देश्य द्वारा अपेक्षित कतिपय कला-रूपों की माँग को संतुष्ट करती रही है और साथ ही जो उन कलारूपों के निर्माता के मनःपटल का प्रतिबिम्ब रही है। अतः इन कलारूपों की अभि-व्यक्तियों का कोई भी सम्बन्ध उन नैतिक विचारों से नहीं रहा जो व्यक्ति, समय और परम्पराओं की सुविधा के लिए विकसित किये जाते रहे।"

राय चौधरी कला की प्रच्छन्न महान् शक्तियों को उनके तात्त्विक रूप में क्रियाशील होते देखना चाहते हैं। उत्कृष्ट कृतियों के सृजन में उनकी हृद्‌गत भावनाएँ मूल वस्तु से एकाकार होने के लिए मचल उठती हैं। अंग-प्रत्यंगों के समानुपात पर वे इतना जोर नहीं देते जितना कि अपने विश्वासों के अनुरूप उन्हें ढालने में। उनके आभ्यंतर स्वप्न यथार्थ बनकर प्रकट होते हैं और अपनी सृजन-सामर्थ्य के उत्कर्ष को वे संपूर्णतः समर्पित कर देते हैं।

राय चौधरी की मूर्ति-कला पर रोदाँ और बोरदेले का प्रभाव पड़ा है,

किन्तु मैलोल और इप्सटाइन की भाँति उनकी कला 'आधुनिक' नहीं हो सकी है। आज की मूर्त्तिकला में कोमलता और मार्दव लाने की चेष्टा की जाती है, साथ ही स्वाभाविकता और यथार्थ रूपान्तरण की प्रवृत्ति भी दीख पड़ती है। कलाकार का अप्रत्यक्ष साक्षात् मूल वस्तु को आच्छन्न-सा कर लेता है। इसके विपरीत राय चौधरी के मुक्त प्रयास में स्नायविक तनाव और भीतरी प्रतिक्रिया की गहरी छाप द्रष्टव्य है। उनमें यह उत्तर स्वयमेव ध्वनित होता है कि समानुपात और मार्दव एक दूसरे से भिन्न वस्तु नहीं हैं, न उन्हें पृथक्-पृथक् दर्शाया ही जा सकता है। बल्कि यों कहें कि कलाकार के सौन्दर्य-विधान में ही सारी कोमलता और समानुपात निहित है। इंगलैण्ड के सुप्रसिद्ध मूर्तिकार हेनरी मूर की प्रतिमाओं में वस्तुस्थिति का संतुलित विधान और कोमल निष्ठा है, लेकिन वह ऊपर से थोपी हुई अथवा दिखावटी न होकर भीतर अनुभूत सत्य का परिणाम है।

मूर्त्तिकला के समान चित्रकला में भी इनके उत्तेजना से प्रकम्पित उद्वेग उभड़े हैं जिनमें भीतर की क़शिश और आलोड़न को व्यक्त किया गया है। कहीं-कहीं समूची चित्रमाला में ऐसी दृश्य-परम्परा उपस्थित हुई है जिसमें तादृश आलंकारिक सज्जा का विधान है, किन्तु उनमें रूढ़िगत चमत्कार न होकर दबाव का व्यक्त आग्रह है। अपने चित्रों में राय चौधरी ने सदैव वांछित वातावरण की ही सृष्टि की, उसे कभी प्रासंगिक अथवा भ्रम से धूमिल नहीं बनाया। चित्रगत यथार्थ को उन्होंने भावुकता का शिकार नहीं होने दिया। जब तब उद्वेग उमड़े तो उन्होंने क्लासिकल मर्यादाओं से बाँध कर उन्हें संयमित किया, पर उन्हें अनुचित रूप से दबाया अथवा मसोसा नहीं। चाक्षुष शृंगारिकता उत्पन्न करने में (जो शुद्ध ऐन्द्रिय होती है) इनका कोई सानी नहीं रखता। लेपचा कुमारी के स्वस्थ सौंदर्य को इन्होंने बड़े ही स्वस्थ रूप में दर्शाया है।

राय चौधरी का प्रकृति से लगाव है, पर उसका कृत्रिम चित्रण कर वे उसे विस्मयकारी आनन्दोपभोग का साधन नहीं बनाना चाहते, इसके विपरीत मानवीय सौंदर्य के संदर्भ में रखकर उसकी समस्त आन्तरिक शक्ति को उद्बुद्ध कर वे सरल किन्तु भव्य रूपरेखा में उसे बाँधना चाहते हैं। 'लेपचा कुमारी' के अतिरिक्त 'नेपाली लड़की,' 'भूटिया औरत' और 'तिब्बत की बालिका' ने भी उन्हें आकर्षित किया है। उनके सौंदर्य एवं हावभावों का बड़ा ही स्वाभाविक चित्रण इनकी तूलिका से हुआ है।

•

इन चित्रों में यौवन का उन्माद, स्नेह-स्निग्ध उज्ज्वल आभा, एक कलाकार का सुनहला स्वप्न, नई-नई कल्पनाओं की उमंग और वासना का उद्दाम वेग उमड़ा पड़ता है, किन्तु यह सब भीतर ही भीतर उनके रग-रग में समाविष्ट है, केवल ऊपर रंगों के फैलाव में ही गतिमान नही। प्रेम-प्रपीड़ित नारी की मनोव्यथा 'कमल उगे हुए पोखरों में' उसके मुरझाए मन और ढले यौवन का प्रतीक बनकर प्रकट हुई और 'कौतूहल' में एक चंचल सुन्दर नारी का सामाजिक मर्यादाओं के उल्लंघन का दुस्साहस दर्शाया गया है।

राय चौधरी आकृति-चित्रों में सर्वाधिक सफल हुए हैं। शारीरिक रेखाओं के उभार, समानुपात और सम्पुंजन को मनोवैज्ञानिक गहराई से चित्रांकन करने में और इस प्रकार हूबहू मानवीय रूप को सामने लाकर खड़ा करने में इन्होंने कमाल किया है। इनके महत्त्वपूर्ण पोर्ट्रेट-चित्रों में 'रवीन्द्रनाथ ठाकुर' जो रुपहले-सुनहले रंगों में रूपायित हुआ, 'अवनीन्द्रनाथ ठाकुर', 'ओ० सी० गाँगुली', 'मि० पर्सी ब्राउन', 'मिसेज ब्लैकवेल' तथा कुछ अन्य आकृति-चित्रों में, जिनमें रंगों की समृद्ध सुसज्जा है, 'मुसाफिर' जिसमें एक मनहूस, दाढ़ी वाले राहगीर का चित्र खींचा गया है, बड़ी ही सजीवता से आँके गए। 'ख़तरनाक रास्तों' में मानव के संघर्ष और घोर श्रम का दिग्दर्शन कराया गया है। कभी न हार मानने वाले उत्साही यात्री बर्फ़ से ढके उन पर्वत-शिखरों पर पहुँचने के लिए आतुर हैं जिनके खात्मे की कहीं सम्भावना नहीं है।

राय चौधरी की बहुमुखी प्रतिभा अनेक रूपों और विभिन्न धाराओं में विकसित हुई है। वे एक बड़े ही दक्ष निशानेबाज़, कुश्तीबाज़, संगीतज्ञ, नाविक और कुशल शिल्पी हैं। वे एक ऐसे सच्चे देशभक्त हैं जो मातृभूमि की रक्षा के लिए खून तक बहा सकते हैं, लेकिन विचारों से वे साम्यवादी हैं और मज़दूरों के हित में बड़े से बड़ा त्याग कर सकते हैं। जीवन की उमंग-उल्लास और रंगीनियों से वे कतराते हैं, उन्हें वहीं अपनत्व का अनुभव होता है जहाँ अभाव है, बेबसी है और ग़म की संजीदगी है। अपने धुन के वे इतने पक्के हैं कि जब तक वे सोते नहीं, बिना अवकाश लिये निरंतर काम में जुटे रहते हैं। वे एकान्त-प्रिय है, इधर-उधर घूमने-फिरने, मेल-जोल बढ़ाने, सोसाइटी और गोष्ठियों में जाने-आने का उन्हें क़तई शौक नहीं है। वे बहुत कम किसी से मिलते-जुलते हैं, हाँ—यदि किसी से उनका हार्दिक मैत्री भाव होता है तो उससे वे दिल खोलकर व्यवहार करते है। कभी-कभी उनसे मिलने आने वाले व्यक्ति उनकी स्पष्ट वक्तृता, सत्य किन्तु कटु आलोचना, जीवन की

विसंगतियों और अक्षम्य त्रुटियों पर किये गए क्रूर प्रहारों से तिलमिला उठते हैं। उनकी सत्यवादिता में एक ऐसा रूखापन और निर्मम दर्प है जो भयभीत-सा कर देता है, पर उनकी ईमानदारी और अन्तर में छिपे प्रेम को भी शीघ्र ही पहचाना जा सकता हैं।

जज्लाशील

राय चौधरी की सृजन-सामर्थ्य एकाधिक माध्यमों में प्रस्फुटित हुई है। मूर्त्ति-कला और चित्रकला में तो उनकी पूरी दखल है ही, पोर्ट्रेट-पेंटिंग, जलरंग, पैनल-पेंटिंग, वाश पद्धति और जापानी तरीके से सिल्क आदि पर चित्रांकन के भी इन्होंने सफल प्रयोग किये हैं। 'तूफान के बाद', 'आरती', 'स्नान का घाट' आदि चित्र इनकी विभिन्न रुचियों के द्योतक हैं। पोर्ट्रेट चित्रों में जलरंगों का प्रयोग होने पर भी उनमें तैलरंगों की सी गहराई और सुस्थिरता है। कुछ चित्रों का निर्माण ऐसी सजीवता से हुआ है कि व्यक्तित्व को ढालने के साथ-साथ उनमें सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताएँ भी उभर आई हैं। दृश्यचित्रों के भी ये दक्ष चित्रकार हैं। खासकर पर्वत शिखरों पर कुहरे से समाच्छन्न प्रातःकाल का बहुत सुन्दर चित्रण हुआ है। इसमें सन्देह नहीं कि भारतीय चित्रकला में विभिन्न प्रयोग किये गए हैं, पर अब इनका झुकाव अधिकाधिक यथार्थ की ओर होता जा रहा है। भारतीय नारियों के चित्रण में इन्होंने पूर्वदेशीय पद्धति अपनाई है, इनमें रेम्बरेंट और टिशियन का सा वैलक्षण्य ओर सौंदर्य की पकड़ का आभास मिलता है।

इनकी कला की अपनी निजी शैली, ढंग और खूबी है, फिर भी सभी शैलियाँ और कला-परम्पराएँ उनमें सामाहित हो गई हैं। टेकनीक उनके लिए खिलवाड़ है। उनकी कल्पना की दुनियाँ रूपाकारों और प्रतिरूपों की नहीं, अपितु चिन्तन और धारणाओं की जटिल संरचना है जो तूलिका के संस्पर्श से सुन्दर कलाकृतियों के रूप में व्यक्त हो जाती है।

●

देहातिन

उनकी लगन, अध्यवसाय तथा भीतर की उद्दाम प्रेरणाएँ इतनी प्रचंड हैं कि उनका उपयुक्त निकास किसी एक माध्यम में सम्भव नहीं। राय चौधरी का महत्त्व पाश्चात्य एवं पौर्वात्य कलाटेकनीक एवं दृष्टिकोणों के सामजंस्य तक ही सीमित नहीं है, अपितु मद्रास स्कूल के रूप में अपनी निजी कला-शैली प्रस्थापित कर कला के क्षेत्र में इन्होंने युगान्तर उपस्थित कर दिया है।

पुलिन बिहारी दत्त

आजादी का गीत

पुलिन बिहारी दत्त कलकत्ता में देवीप्रसाद राय चौधरी और प्रमोद कुमार चटर्जी के समकालीन थे और उन्हीं की भाँति अवनी बाबू के शिष्य भी, पर एकान्त अनुभूति और रागात्मक संस्पर्श में सभी से निराले थे। अल्प वय में ही कला के मर्म में पैठने की इनकी वृत्ति सजग हो गई और रंग व रेखांकन के सौंदर्य को परखने की क्षमता भी अद्‌भुत थी। तत्कालीन गवर्नर लॉर्ड रोनाल्डशे, जो सौंदर्य-प्रेमी और कला-मर्मज्ञ था, इनके बनाये चित्रों को देखकर इतना मुग्ध हुआ कि इस किशोर कलाकार से मिलने को आतुर हो उठा और स्वयं मिलकर पीठ ठोकने तथा चित्रों की सर्जना के लिये दाद देने का लोभ संवरण न कर सका। लॉर्ड रोनाल्डशे से हुई इन्टरव्यू और उन दिनों के अपने चित्रों की चर्चा करते हुए पुलिन दत्त लिखते हैं—

"मैंने जो कुछ चित्र उधर बनाये, वे भावोत्तेजना से प्रेरित होकर आँके गए। अतएव वे मेरे हृदय के अधिक निकट हैं। हमारे परिवार में एक बार एक दुखद घटना घटी जिससे मेरे दिल पर गहरा सदमा पहुँचा। मेरा कृतित्व इसके असर से अछूता नहीं रह सका। मैंने उस समय दो चित्र बनाये थे जिनके शीर्षक थे मृत्यु। रोनाल्डशे ने इन चित्रों को बड़े चाव से खरीदा। उन्होंने मुझसे मिलने की भी इच्छा प्रकट की। वे मुझसे चित्रों के सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त करना चाहते थे। उन्हें यह देखकर बड़ा आश्चर्य हुआ कि मेरी उम्र इतनी कम है। उन्होंने पूछा कि इस कच्ची उम्र में भी मृत्यु जैसी वीभत्स वस्तु को चित्रण करने के क्या अर्थ हैं। मैंने उन्हें बताया कि सिर्फ़ प्रयोग के लिए नहीं, अपितु इन चित्रों को चित्रण किये बग़ैर मैं रह नहीं सकता था। ज़िन्दगी ही क्यों, दृश्यमान जगत का समस्त सौन्दर्य भी उस समय मुझे अस्थिर और नाशवान जान पड़ता था, केवल मृत्यु ही मुझे सत्य और अवसादमयी वास्तविकता जान पड़ी।"

मृत्यु जैसी घटना अप्रतिम तो न थी, किन्तु इनके जीवन पर उससे गहरा प्रभाव पड़ा। फिर भी वे ऐसे कलामय वातावरण में पले थे कि शीघ्र ही मन को संयत कर वे एक निश्चित पथ के अनुगामी बन गए।

अपने अन्य साथियों की भाँति पुलिन दत्त ने कभी अंधाधुंध चित्रण नहीं किया। उन्होंने चित्रांकन के लिए जो कुछ प्रयास किया—बड़े धैर्य से, आत्म-विश्वास से और अपनी धीमी श्रम-साधना से सम्पन्न किया। इसका कारण है कि वे अपनी भावना का खुला प्रदर्शन अथवा छिछला बौद्धिक विलास पसन्द नहीं करते। वे जीवन की सूक्ष्मताओं में गहरे उतर कर उसके मर्म में पैठना चाहते हैं। नन्दलाल बसु की भाँति वे भी अल्पभाषी हैं, वे संयत, सहज प्रणाली को अपनाने के क़ायल हैं और सच्ची गति से कला-सौन्दर्य के विविध पहलुओं पर दृष्टिपात कर अपने एक खास नाज़-अन्दाज़ से देखते-परखते, समझते-बूझते, उसकी खूबियों और अंतर्विरोध को पहचानते हैं। जब उनकी भावनाएँ अधिक वेग और आवेग से उमड़ती हैं तो इनके नेत्र वाणी की अपेक्षा अधिक मुखर हो उठते है। मूक रह कर उनकी चेतना ज़्यादा जागरूक रहती है। वे अपने लक्ष्य, उद्देश्य, स्थिति, सामर्थ्य, साधन और गति की ओर निर्द्वन्द्व अनुधावित होते हैं।

'संन्यासी के वेश में बुद्ध', 'सिद्धार्थ और यशोधरा', 'अशोक', 'उत्सव का दिन' आदि उनके कुछ सुप्रसिद्ध चित्र नव्य बंगाल कला शैली और परंपरा का निर्वाह करते हुए धुंधले रंग, सुकोमल रेखाओं और हल्के ब्रुश से अवनी ठाकुर से प्रेरित होकर आँके गए हैं। इनकी सौंदर्यग्राहिणी वृत्ति संयत संस्थिति और सर्वातिशयता को पाने के लिए आरम्भ से ही इतनी तन्मय रही है कि भावाधिक्य में इनकी व्यंजना अत्यन्त सूक्ष्म, पर सचेत होकर प्रकट हुई है। कभी-कभी इस चिन्तक कलाकार की अन्तश्चेतना उस शीर्ष-बिन्दु के पार झाँकती है कि जहाँ उसकी सृजन-शक्ति बद्ध स्थिति से मुक्त होकर अद्भुत सौंदर्य-रूपों को स्फुरित करती हुई भीतर से शक्ति खीच कर नये-नये अचरज भरे प्रतीकों में उभरती है। 'मीरा' इनकी एक ऐसी ही असाधारण कृति है। कृष्ण-प्रेम में विह्वल मीरा के भाव-बिम्ब का बड़ा ही अपूर्व गत्यात्मक चित्रण है। अपने इष्ट बालक कृष्ण की मूर्त्ति के समक्ष उसकी नृत्य भंगिमा और 'मेरे तो गिरिधर गोपाल दूसरो न कोई' की अविभाज्य अनुभूति चित्र की घनीभूत एकप्राणता में रम गई सी प्रतीत होती है। मीरा का भावोन्माद और अंतः प्रेम की उच्छल हिलोरें इतनी प्रबल और आवेगपूर्ण है कि शरीर की गतिशील आकुल त्वरा, दोनों

मीरा

कोमल करों और पैरों की थिरकन, साड़ी की सिहरती लहरें, उद्भ्रान्त निराली आँखें और मुख का समर्पण भाव सार्वजनीन रसोद्बोधन करता हुआ सम ताल, सम लय और सम गति में एकाकार सा लगता है। पूर्वदेशीय टेकनीक व पद्धति पर समतल शैली में यह इकरंगा चित्र अंकित हुआ है। रेखाएँ इतनी मुखर और सजीव बन पड़ी है कि मीरा की आँखों में जो विराट् अचिन्त्य भाव है वह चित्र में उसकी मर्मान्तिक व्यथा और प्रिय को पाने की आकुलता को सहज रूप में व्यंजित कर रहा है। मीरा का जो महामानवी रूप है वह इस इकरंगे चित्र में अधिक स्पष्ट और गहरा हो उठा है।

'बुद्ध' का रंगीन चित्र भी बड़ा ही मार्मिक और प्रभावशाली है। 'आज़ादी का गीत' और 'चिन्तनरत वृद्धा' में भावव्यंजना सुन्दर है। जहाँ इनके चित्रों की सत्ता भाव-व्यापार में लीन हुई सी लगती है वहाँ रंगों का स्तर हल्का, प्रायः नगण्य और पृष्ठिका धूमिल हो जाती है। 'चित्तौड़ की पद्मिनी' पर इनका एक अधूरा चित्र है जो राजपूती शान और सौंदर्य का दिग्दर्शक है। राजस्थान की चमचमाती धूप में यह वीर क्षत्राणी अपने सौंदर्य को बिखेरती हुई बड़ी ही शानोशौक़त में खड़ी है जिसके एक संकेत पर कितनी ही राजपूत ललनाएँ प्रचण्ड अग्निशिखा में हँसते-हँसते कूद पड़ी थीं और न जाने कितने वीर योद्धाओ ने रणक्षेत्र में खून की होली खेली थी। हरे, काले, लाल, सफेद रंगों के मिश्रण से एक बालिका की शीर्ष आकृति बड़े ही आकर्षक ढंग से निर्मित हुई है। पुलिन दत्त ने महात्मा गांधी का भी एक सुन्दर चित्र बनाया है, जिसको उनके कतिपय अनुयायियों ने खूब सराहा है।

इनमें सृजनकांक्षा 'स्वान्तः सुखाय' है। अपने बनाये चित्रों को प्रदर्शित करना अथवा महज़ आर्थिक दृष्टि से बेचना उन्हें पसन्द नहीं। वे अपनी प्रशंसा से प्रोत्साहित हुए हैं, परन्तु प्रभाव की व्यंजना में अपने कृतित्व या व्यक्तित्व में कभी 'स्व' को विस्मृत नहीं किया। भाव-सौंदर्य के ऐश्वर्य की वृद्धि के लिए इन्होंने मुख्यतः चित्र-सृष्टि की है। एक सच्चे कलाकार की भाँति अनंत चिर सुन्दर की शाश्वत अभिव्यक्ति ही इनकी कला का उद्देश्य रहा है। प्रायः प्रत्येक कला-कृति में उनके हृदय के भाव-विशेष की उद्भावनाएँ उनके विकासशील चेतना की साक्षी रही हैं। इन्होंने बालकों को कला की शिक्षा देने में अपने जीवन की अधिकांश शक्ति व्यय की है। बम्बई के शिक्षणकेन्द्र में 'दत्त सर' के नाम से वे अपने छात्रों में अत्यंत प्रिय रहे हैं। उनके अनेक विद्यार्थी उच्चकुलीय हैं, साथ ही सामान्य वर्ग के भी कम नहीं हैं, फलतः उनमें सबके प्रति सामंजस्यपूर्ण

स्नेहिल भाव की आर्द्रता है। अमीर-गरीब, छोटे-बड़े—जिनमें अधिकतर बच्चे हैं—उन्होंने न केवल ड्राइंग बनाने की शिक्षा दी है, अपितु भारतीय जीवन में सच्चे अर्थों में वास्तविक सौंदर्य को खोजने की प्रवृत्ति भी जाग्रत की है।

पुलिन दत्त ने बम्बई में 'चाइल्ड आर्ट सोसाइटी' की स्थापना की है। यह संस्था समय-समय पर कला-प्रदर्शनियों और बच्चों के शिक्षण की व्यवस्था करतीं रहती है। बच्चों के स्नेह से इनका कलामय जीवन अधिक सुन्दर और सरस हो उठा है। इनकी अंतरंग और बहिरंग अनुभूति समयोचित महिमा की उपलब्धि कर कला-विकास के स्वर-संधान में संलग्न है।

मुकुल चन्द्र दे

रवीन्द्रनाथ ठाकुर की आकृति

महान् कलाकार अपनी कृतियों की अमिट छाप विश्व में छोड़ जाते हैं । कुछ तो जन्मजात प्रतिभा-सम्पन्न होते हैं, कुछ अपने प्रयास से बनते हैं और कुछ परिस्थितियों के वशीभूत होकर कलाकार बनने के लिये बाध्य होते हैं । सौभाग्य से दे परिवार में सारी सन्तति कला की सहजात प्रवृत्ति एवं अन्तश्चेतना को लेकर प्रकट हुई । परिस्थितियों ने तो उनका साथ दिया ही, समकालीन कलाचार्यों से भी उन्हें समयानुकूल पथ-प्रदर्शन मिला ।

मुकुल चन्द्र दे की सृजन-प्रतिभा विश्वकवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर और कलागुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर इन दो महान् कलाचार्यों की छाया तले पनपी थी । जब मुकल दे शांति निकेतन में थे तो विश्वकवि के साथ इन्हें जापान और अमेरिका जाने का सुअवसर मिला था । सान फ्रान्सिस्को, शिकागो और न्यूयार्क में इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ हुईं, तत्पश्चात् इन्होंने लंदन में 'स्लेड स्कूल आॅफ आर्ट' में सर मूरहेड बोन, हेनरी टोंक्स और रसेल के तत्त्वावधान मे कला की शिक्षा प्राप्त की । रायल कालेज आॅफ आर्ट, साउथ केंमिगटन में सर विलियम रोथेंस्टाइन की देखरेख में ये कला का अध्ययन करते रहे। रायल एकेडमी और 'न्यूइंग्लिश आर्ट' क्लब में इनकी कला-कृतियाँ प्रदर्शित की गई और उन्हें खूब सराहा गया। विदेशों में रहकर इन्होंने कलात्मक उपयोगिता के हर पहलू पर मनन किया और यूरोप के उच्च कोटि के चित्रों और पाश्चात्य कला की टेकनीक को बड़ी ही बारीकी एवं गहरी आलोचनात्मक दृष्टि से समझा-बूझा । जापान जाकर मुकुल दे की कला पर तैक़वान और क्वान्जान के नेतृत्व में हुए कला-आन्दोलनों का प्रभाव पड़ा था। इनके रंग एवं रेखाओं के स्वल्प प्रयोग पर और सामान्य वस्तुओं को अत्यन्त चमत्कृत रूप में चित्रित करने की पद्धति पर जापानी कला की गहरी छाप है । अमेरिका के प्रवास में 'इंचिग' कला ने इन्हें विशेष प्रभावित किया और शीघ्र ही उसमें इन्होंने दक्षता भी प्राप्त कर ली ।

ये इचिंग कलाकारों की शिकागो सोसाइटी के सदस्य बना लिये गए जो एक भारतीय के लिए प्रथम बार इस सम्मानित पद को प्रदान करने का अवसर दिया गया था। अपनी दूसरी लम्बी यूरोप यात्रा पर जाने से पूर्व एक बार बीच में ये भारत लौट आए थे, तत्पश्चात् लंदन के 'स्लेड एण्ड केंसिंगटन स्कूल्स आफ आर्ट' से कुछ समय के लिए ये सम्बद्ध हो गए।

वेम्बले प्रदर्शनी के समय इन्हें भारतीय कला-कक्ष की सुसज्जा का भार सौंपा गया। इससे इनकी ख्याति लंदन के कला-जगत में भी हो गई। इन्होंने वहाँ स्टूडिया खोल लिया जिसमें इन्होंने अपनी व्यक्तिगत इचिंग कलाकृतियों की प्रदर्शनी खोल ली। भारतीय कला-परम्परा में इचिंग बिल्कुल नई चीज़ थी। मुकुल चन्द्र दे ही कदाचित् अकेले थे जिन्होंने इस दिशा में बड़े ही प्रभावशाली ढंग से कार्य किया। परिणामस्वरूप सारे यूरोप में ये प्रसिद्ध हो गए।

कला के इस रूपान्तरण में कुछ इनकी सीमाएँ थीं, भारतीय विन्यास की प्रकृति का अन्तर तो था ही, तथापि एक कलाकार होने के नाते इस कार्य को सीखने एवं सम्पन्न करने में इन्होंने अपनी सुरुचि एवं सूक्ष्म बुद्धि-चातुर्य का अभूतपूर्व परिचय दिया। यों भी प्रारम्भ से इनकी शिल्प दृष्टि अतिशय ग्रहण-शील और व्यापक थी। यूरोप जाने से पहले जीवन और कला सम्बन्धी इनके दृष्टिकोण पर्याप्त परिपक्व हो गए थे। वस्तुतत्त्व और रूपविधान इन दोनों के आन्तरिक सामंजस्य में गांभीर्य और प्रभावपूर्ण एकतानता आ गई थी। यही कारण है कि विदेश जाने पर धातु के बारीक रेखांकन के बाहय रूप का भेदन करके ये उसके अंतर्निहित चिरंतन रूप को भाँप सके। अपने देश की सांस्कृतिक भावधारा से संजीवित होकर इनकी अंतर्भेदिनी दृष्टि अन्य प्रभावों को भी सूक्ष्मता से पकड़ सकी। सामान्यतः रेखाएँ अर्थात् धातु पर कोरी गई लाइनें सहज ही स्पष्ट नहीं हो पातीं कि कहाँ से उनकी सीमा प्रारम्भ होती है और कहाँ जाकर वे जीवन के सभी व्यक्त पहलुओं को व्यंजित करती हुई कलात्मक उपकरणों को समेटती हैं। जहाँ तक ये रेखाएँ पहुँच पाती हैं, जिन-जिन पार्थिव उपादानों को वे अपने आप में उतार सकती हैं, उन्हीं-उन्हीं वस्तुओं को कला की पारस मणि से स्पर्श कर स्वर्णिम बना देती हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि इचिंग कला का रहस्य शलाका की नोंक पर रहता है। अग-जग के छोर से स्वप्न उड़-उड़ कर कलाकार के पास आते हैं और उसकी रेखाओं में उभर कर सजीव हो जाते हैं। ये रेखाएँ जीवित होती हैं, चलती फिरती हैं, भूतल के दृश्य और दृश्येतर जगत् का कम्पन इनमें व्यक्त होता है।

•

इचिंग कला की यह विशेषता है कि उसकी पद्धति, उसका ढंग, उसकी टेकनीक पृथक् है। रेखाएँ विषय के साथ ग्रात्मसात् होकर टेकनीक की रचना करती हैं, यदि इस टेकनिक का ज्ञान नहीं है तो रेखाएँ निरर्थक हैं। ऐसी रेखाग्रों की न तो कोई यथार्थ व्याख्या हो सकती है ग्रौर न उनका तारतम्य ही जुड़ पाता है। इचिंग रेखांकन की विशेषता जीते-जागते कलात्मक प्रतिरूपों को उभारने में है। रेखाग्रों की स्वयं कोई हस्ती नहीं, वे एक कल्पना की ग्रोर इंगित करती हुई उनसे व्यंजित प्रभाव में लुप्त हो जाती हैं। रंगों को उपयोग में लाये बगैर ही उनकी ग्रनुभूति करानी पड़ती है ग्रौर विच्छिन्न रेखाग्रों में गति ग्रौर लय भरकर कला के महान् सत्य का भाव-निदर्शन किया जाता है।

मुकुल दे की इचिंग कलाकृतियों में इन सभी गुणों का समावेश है। 'ग्रजंता को राह पर', 'चाँदनी रात में गंगा' ग्रौर 'पवित्र वृक्ष' ग्रादि ग्रादर्श कला-कृतियाँ हैं। इनकी मौलिक कलाकृतियों में भी ग्रजन्ता ग्रौर जापान की कला का प्रभाव द्रष्टव्य है। यह प्रभाव इनकी मौलिकता को ग्रपहृत करने वाला नहीं, ग्रपितु समन्वित होकर नवीन वातावरण की सृष्टि करने वाला है, लेकिन इसके बावजूद उनका व्यक्तित्व बिल्कुल पृथक् दिखाई पड़ता है। इससे पूर्व ग्रजंता ग्रौर बाघ गुफाग्रों में भ्रमण करने के फलस्वरूप मुकुल दे को सुन्दर लहरदार लिखावट का भी ग्रभ्यास हो गया था, किन्तु इनकी कलात्मक प्रतिभा का सम्यक् विकास तो स्लेड ग्रौर साउथ केंसिंगटन में सर बोन, हेनरी टोंक्स ग्रौर सर विलियम रोथेंस्टाइन जैसे कलाविदों के तत्त्वावधान में ही हुग्रा। शुष्क रंगों के प्रयोग में इन्होंने कमाल कर दिखाया। विदेश लौटकर इन्हें कलकत्ता स्कल ग्राफ ग्रार्ट के प्रिंसिपल पद का दायित्व-भार सौंपा गया जिससे सन् १९४४ में इन्होंने ग्रवकाश ग्रहण किया।

ग्रपनी कला में कितने ही देशी-विदेशी प्रभावों को ग्रात्मसात् कर इन्होंने उसकी सहज गति को विकसित किया ग्रौर उसके भावोत्कर्ष में वृद्धि की है। समस्त बाहरी प्रभाव इनके चित्रों की लय ग्रौर भाव व्यापार में लीन हुए से ज्ञात होते हैं। इनकी कलाकृतियाँ, खासकर पोर्ट्रेट-चित्रों में, ग्रति सूक्ष्म रेखांकन, रूपातिशय्य ग्रौर सांकेतिक परिपूर्णता विद्यमान है। इनके द्वारा निर्मित रवीन्द्र नाथ ठाकुर ग्रौर ग्रवनीन्द्रनाथ ठाकुर के पोर्ट्रेट-चित्र बड़े ही भव्य बन पड़े हैं। उनका ग्रन्तर्विधान संतुलित है ग्रौर वे कलात्मक पूरक संयोजना को लिये हुए ग्रखंडित एकत्व ग्रौर रंगों की कोमल ग्रनुभूति से ग्रोतप्रोत हैं। विदेशों में रहने से मुकुल दे का कला-क्षेत्र बहुत व्यापक हो गया था, ग्रतएव नये विषयों के

साथ नई कल्पना, नये माध्यम और नई शैलियों का उपयोग इन्होंने किया। काले और श्वेत रंगों में डा०एनीबेसेंट, सर सुब्रह्मण्यम, बी० पी० वाडिया, हरीन चट्टोपाध्याय, मैसूर की वीणा सेषन्ना और कुछ अन्य लोगों के चित्रों के सेट में इनकी सूक्ष्म चारित्रिक पैठ का परिचय मिला। इन्होंने कुछ खास विशिष्ट बंगालियों के पेंसिल स्केच भी बनाये जो काफ़ी प्रसिद्ध हुए। जापान की सुप्रसिद्ध ऊकियो कला तथा वुड-कट छापों के आधार पर इन्होंने अपनी यात्रा में मिले अनेक जीवन-प्रसंगों और दृश्यों का चित्रांकन किया। अमेरिकन 'इचिंग' पद्धति से प्रभावित होकर जहाँ एक ओर इनकी कला में रेखाओं का संकोच और स्वीकारात्मक समता है, दूसरी ओर अजन्ता की छलकती शृंगारिता ने इनमें रूमानी सौंदर्य-गरिमा जाग्रत की है। 'शकुन्तला' और 'नृत्य करती बालिकाओं' में क्लासिकल निर्माण-शैली अपनाई गई है, फिर भी हल्के शृंगारिक तत्त्व उभर आए हैं। मुकुल दे की खूबी है—चित्रशिल्प की सादगी, वातावरण के चित्रण में स्वल्प प्रसार होते हुए भी प्रासंगिक चारुता और अविभाज्य स्वतःपूर्ण व्यष्टि। इनके चित्र 'विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूज़ियम', लन्दन, 'ग्लासगो आर्ट गैलरी', 'फिलडेल्फिया म्यूज़ियम' और 'प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम' को सुशोभित कर रहे हैं।

नृत्य विभोर

अब्दुर्रहमान चुग़तई

आधुनिक कला-जगत् के गण्यमान्य कला-गुरुओं की परम्परा में अब्दुर्रहमान चुगतई, जो कि अब पाकिस्तान जा बसे हैं, महत्त्वपूर्ण स्थान रखते हैं। जिस प्रवाह, जिस कला-शैली और बद्धमूल धारणाओं को लेकर बंगाल स्कूल विकसित हुआ था, उससे सहसा मुड़कर वे एक सर्वथा नई दिशा की ओर उन्मुख हुए। उन्होंने कला की किसी खास परिपाटी को जन्म नहीं दिया, न ही उनके चित्रों के मूल में कोई पूर्व-निर्धारित योजना अथवा सीखी हुई दक्षता थी; तथापि भीतर से सँजोई अनन्त प्रकाश की क्षमता और रंग एवं रेखाओं के सामंजस्यपूर्ण संघात ने विरासत में पाये संस्कारों के अनुरूप फ़ारसी सौंदर्य की कोमल भावनाओं को उभार कर उनकी कला को एक नया भव्य रूप प्रदान किया। ज्यों-ज्यों उनकी कार्य करने की शक्ति परिपक्व होती गई, उनमें एक समूचे प्रभाव को प्राणान्वित कर अभिव्यक्त करने की अधिकाधिक सामर्थ्य आती गई। उनके रंग और रेखाओं में एक अद्भुत संतुलन स्थापित हो गया। रंगों की सीमाएँ स्पष्ट होने लगीं, स्वप्निल-सी हल्की धूमिल छाया उनके चित्रों के समस्त वातावरण पर छा गई।

चुग़तई की अथाह निर्मुक्त ज़िन्दादिली में एक ऐसी सान्ध्य गगन की-सी उदासीनता समाई हुई है, जो साधारण प्रेक्षक के लिए दुर्भेद्य-सी हो उठती है। कहीं प्रेम और विरह का कम्पन मिलेगा, कहीं प्रकाश की भीनी रंगमयता और अंधकार का आह्वान, कहीं खिले हुए गहरे गुलाब के फूल का-सा अल्हड़ सौन्दर्य और कहीं भीतर की उमंगों को झकझोर देने वाली सघन मनोव्यथा। कहीं जीवन के प्रति महाराग प्रकट हुआ है, तो कहीं कलात्मक सृजन की चरम व्यापकता द्रष्टव्य है। दिव्यता और तरलता, छलकती हुई स्वप्नमयी कोमल करुणा, सृजन को शाश्वत गति देने वाली सौम्य लयमयता—इस प्रकार चुगतई की कला में आंतरिक कल्पना का वैभव पूर्णतः अभिव्यंजित हुआ है।

चुग़तई ऐसे परिवार में उत्पन्न हुए थे, जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी कला की उपासना में रत रहा था। कुशल शिल्पी, वास्तुकार, चित्रकार, सज्जाकार, कला-पारखी यहाँ पैदा होते रहे थे। मुग़ल शासन-काल में उनके परिवार के

कुछ सदस्य अत्यन्त प्रसिद्ध भवन-शिल्पी थे। शुरू में चुग़तई को उच्च शिक्षा देने का प्रयत्न किया गया, पर अपने जन्मजात संस्कारों के कारण वे कला की ओर आकृष्ट हुए। इक्कीस वर्ष की आयु में उन्होंने अपने चाचा से, जो एक दक्ष भवन-शिल्पी थे, पेंटिंग सीखनी प्रारम्भ की। लाहौर के मेयो आर्ट स्कूल में भी कुछ दिन काम करते रहे, पर अधिकतर उनकी कला-साधना स्वतःप्रेरित ही थी।

पुरानी यादगारें

उनके पिता चाहते थे कि वे इंजीनियर बनें, किन्तु चुग़तई अपना क्षेत्र स्वयं चुन चुके थे। कुछ अर्से तक व्यावसायिक कला और फोटोग्राफ़ी की ओर भी उनका झुकाव रहा। इसमें वे एक हद तक सफल भी हुए पर शीघ्र ही असन्तुष्ट होकर इस कार्य को उन्होंने छोड़ दिया। गम्भीर चित्रण प्रारम्भ कर देने के पश्चात् उनका कार्य योजनाबद्ध चल पड़ा। चुगतई की यह विशेषता है

कि शिक्षा, परम्परा और अपनी अतंर्जात प्रवृत्तियों के फलस्वरूप वे एशियाई कला-परम्पराओं से अत्यधिक प्रभावित रहे हैं। इनके मुकाबले में बहुत कम पौर्वात्य कलाकारों ने पाश्चात्य-कला की प्राचीन एवं अर्वाचीन धाराओं को हृदयंगम किया है, फिर भी ये सदैव एशियाई कला-परम्पराओं को ही महत्त्व देते रहे हैं। एशियाई चित्रकला की कतिपय विशेषताएँ - यथा प्रतिच्छाया का अभाव, प्रत्यक्ष की अवहेलना और किसी वस्तु के आकार में ऐच्छिक वृद्धि चुग़ताई की कला में भी द्रष्टव्य है। पौर्वात्य कलाकारों के सदृश इन्होंने कभी कोई स्थूल आधार अथवा माडल स्वीकार नहीं किया। ये अस से जलरंगों में काम कर रहे हैं और इधर तो इचिंग की ओर भी इनकी अभिरुचि बढ़ी है।

चिंतन-रत

चुग़ताई की कला को तीन कालों मे विभक्त किया जा सकता है। सन् १९१८ से १९२७ तक इन्होंने रेखाओं के उभार और चित्र के विस्तार पर ही अधिक ध्यान दिया। रंगों को शुद्ध वास्तविक रूप मे ग्रहण न कर एक दूसरे में मिश्रित करके उपयोग में लाये। कागज़ की सतह पर रंगों का मिश्रित फैलाव

और इस प्रकार यकसाँ असर पैदा करना इनका उद्देश्य था। इससे इनके प्रारम्भिक चित्रों में अपरिपक्वता और उथलापन नज़र आता है। लेकिन विषयों का चुनाव उन दिनों बहुत सुन्दर होता था। जीवन का दृष्टिकोण रूमानी था, पर साथ ही निष्क्रिय और शैथिल्य लिये हुए। इनके द्वारा अंकित मानवाकृतियों के इर्दगिर्द लगता है मानो स्वप्नमयी छाया सी फैली हो, तन्द्रा की-सी निश्चेष्ट स्थिति छा गई हो। औरतों को सोलहवीं शताब्दी की मध्य एशियाई पोशाक पहनाई गई है, पर वह इतनी महीन और हवाई है कि इस पृथ्वी पर भी उसका कहीं अस्तित्व होगा, यह संदेहास्पद है। चुग़तई के चित्रों के नारी-पुरुष अपनी समस्त गतिविधि के साथ कुछ क्षणों के लिए रुक गए-से, स्तब्ध और मूकवत्, प्रतीत होते हैं और मानो वे इतने चिंतातुर अथवा अपने-आप में खोए हुए हैं कि उन्हें अपनी चतुर्दिक् स्थिति का भी भान नहीं। जहाँ मनुष्यों का समूह चित्रित हुआ है, वहाँ भी हर शख्स गम्भीर मुद्रा में और एक दूसरे के अस्तित्व से बेख़बर जान पड़ता है। इन चित्रों को देखकर एक ओर हमें वात्तों (Watteau) के चित्रों का स्मरण हो आता है, दूसरी ओर अजंता के भित्ति-चित्र हमारे दृष्टि-पथ के सम्मुख आकर बिछ जाते है।

चुग़तई के एक चित्र में एक स्त्री अपने प्रियतम की प्रतीक्षा में संगमरमर के फ़र्श पर बाल बिखेरे अत्यन्त दयनीय अवस्था में बैठी है। उसका मानस व्योम सूना सा है। शोक-संताप से उसका जागृत नारीत्व सिहर उठा है। यों उसकी वस्त्र-सज्जा और शारीरिक शृंगार समयानुकूल है। प्रिय की स्मृति में उसके मन-प्राण इतने क्लान्त हैं कि वह सुध-बुध खो बैठी है, उसकी वाह्य चेतना लुप्त सी हो गई है। चहुँ ओर के वातावरण से भी वह अनजान है। किन्तु इसके बावजूद उसके आसपास बिखरी चीज़ें खुशी और आह्लाद प्रकट कर रही है, वे भी जैसे धैर्यपूर्वक चिर-प्रतीक्षा में योग दे रही है। कोने में नन्हा सा फूल खिला पड़ा है। सारा वातावरण शिथिल है, पर साथ ही उसमें आशा की खुशनुमा चहक भी है।

इनके प्रणय और शृंगार के चित्रों में बड़ी ही मोहक तल्लीनता है। रंग और रेखाओं की द्रुत लय में भाव ओतप्रोत होकर तदाकार हुए से प्रतीत होते हैं। उनकी एक ड्राइंग होली खेलने के रंगीन वातावरण को लेकर चित्रित हुई है। इसमें दो प्रेमकातर विह्वल प्रेमियों की मादक उत्तेजना उस गरिमा को व्यंजित करती है जहाँ आत्मा का आत्मा से अभिन्न सम्बन्ध जुड़ जाता है। 'जंगल में लैला' कलाकृति में भी यही प्रेम की बाँकी पीर और आँखों में मूक व्यथा उमड़ी

पड़ती है। स्नेहशील हरिणों के बीच लैला की झुकी हुई रूपाकृति निरीह विवश प्रेम की करुण गाथा है। 'सहारा की शाहज़ादी' में रेतीला मैदान, पृष्ठभूमि में ऊँट का चित्रण तथा धूप के भीषण ताप की तपन और अलसाई श्रांति उसकी आँखों में समाई हुई है और 'बहनों' में स्वरूप विधान की सार्थकता तथा उनके वस्त्रों का अभास केवल कुछ रेखाओं में व्यंजित हुआ है। 'ज़िन्दगी', 'बुझी लौ,' 'कवि-ज़िन्दगी का ताना-बना', 'गीत-दान', 'अहंकार', 'प्रणयी का सान्ध्यगीत', 'एकाकी उपत्यका', 'सन्यासी' आदि उनके चित्रों में वातावरण, परिस्थिति और पूंजीभूत रूपकत्व है। मात्र रूपकत्व ही नहीं', काव्यत्व भी है। ऐसा प्रतीत होता है मानो वे जीवन के रहस्यमय क्षणों के प्रसंग हैं और यह अकल्पनीय रहस्य ही उनका वाह्य स्वरूप उभारता है, पात्रों की सृष्टि करता है और अभिभूत कर लेने वाला व्यंजक प्रभाव छोड़ जाता है। वे हमारे अंतर को स्वप्न की सी थपकियों से गुदगुदा देते हैं। वे हमें ऐसे छायालोक के झुरमुट में ले जाते हैं, जहाँ कल्पना-कानन में सौन्दर्य के फूल खिलते हैं और चमकते कूल-कगारों से रूपहली आभा रिसती है। इनकी कलाकृति 'जहाँ लताएँ उगती हैं' में सतत परिवर्त्तनशील दिवस का झरता आलोक जो लता के इर्दगिर्द छितरी पत्तियों को अपने स्वर्णिम प्रकाश से रंजित कर रहा है और समस्त पृष्ठभूमि को धीमी मंद रोशनी की बुझती-मिटती प्रकाशमय छायाओं से समाच्छन्न किये हैं बड़ी ही कुशलता से दर्शाया गया है। एक छोटी टहनी पर दो प्रेमी परिन्दे बैठे हैं जिन पर प्रकाश-छटा छिटकी हुई है।

'एकाकी उपत्यका' में गीत की सी लयमयता है। वहाँ का सुरम्य वातावरण, घुमावदार पहाड़ियाँ, वृक्षों से सघन चरागाहें, प्रवाहित नाले, पर सामने बिखरे गाँव सभी मानों चुनौती-से देते हैं कि बड़े-बड़े महलों अ्ौर उच्च अट्टालिकाओं की रुद्ध हवा और चहारदीवारी से निकलकर बहार की खुली हवा में साँस लो, उन्मुक्त जीवन के आनन्द का आस्वादन करो। संन्यासी में एक सूफी सत की आध्यात्मिक भंगिमा के दर्शन होते हैं। काले घुँघराले बाल, सौम्य चेष्टा शान्त दृष्टि, पतली सीधी नाक, छोटा भावपूर्ण मुँह, आजानु भुजाएँ, सिर पर नुकीली टोपी और शरीर पर ढीला चोगा—इस प्रकार बड़ी ही अकृत्रिम सरलता किन्तु सुसंयत पद्धति से इस चित्र को आँका गया है। संन्यासी तरुण है और कुलीन मालूम पड़ता है। वह सुख-वैभव में पला है, किन्तु सत्य की खोज में उसने दुनिया के सुख से मुँह मोड़ लिया है। विरक्ति, विलगाव और दूरी का-सा भाव उसकी नजरों में समाया है। लगता है कि किन्हीं स्वप्नों में खोया वह पूर्णत्व को

पाने की चेष्टा कर रहा है ।

सन् १९२७ में 'दिवान-ए-ग़ालिब' छपने के बाद चुग़तई के दृष्टिकोण में पर्याप्त अन्तर आ गया था। वे अपनी प्राथमिक कला कृतियों से असन्तुष्ट हो गये। उन्होंने बाद में बताया कि इस पुस्तक के छपने में यदि चन्द महीनों की भी देर होती, तो शायद वह कभी न छप सकती। भीतर ही भीतर उन्होंने महसूस किया कि उनके चित्रों का वातावरण बड़ा ही मनहूस और जीवन से दूर जा पड़ा है। उनके चित्रों की औरतें और मर्द, उनकी पोशाकें और वाह्य सज्जा मध्य एशियाई अथवा मुग़लों की जमाने के सी लगती है। आगामी तीन-चार वर्षों तक वे यूरोप का भ्रमण करते रहे। इस दौरान में उन्हें कला की नई-नई टेकनीक, अभिव्यक्ति के अभिनव माध्यम और नये-नये प्रयोगों का बोध हुआ। देशी विषयों में उनकी रुचि बढ़ती गई। उनका अत्यधिक शृंगारिक दृष्टिकोण संयत हो गया। उसमें 'यथार्थवाद' की पुट आती गई। यूरोप में उन्होंने कितनी ही आर्ट-गैलरियों और कला-संस्थाओं को देखा था। पुनरुत्थान-युग की कला और

प्रणय मिलन

आधुनिक यूरोपीय कलाधाराओं ने उन्हें बहुत अधिक प्रभावित किया था। किन्तु यूरोपीय प्रभावों को आत्मसात् करके भी उनकी एशियाई कला टेकनीक पर छिछला अनुकरणात्मक यथार्थवाद हावी नहीं हुआ। अपने व्यापक और विवेचनात्मक ज्ञान से उन्हें ऐसे अर्थगर्भित तत्त्वों की उपलब्धि हुई, जिनकी मदद से उन्होंने अपनी शैली को सुसंगठित और संयत किया, आज की आवश्यकताओं के अनुकूल ढाला। उन्होंने रंगों को शुद्ध रूप में ग्रहण किया, रेखाओं पर अधिक ध्यान न देकर चित्र के समवेत स्वरूप पर आ टिके। विदेशी कलाकारों से भी

वे प्रभावित हुए थे, किन्तु यह नहीं कि उनकी अंकन-पद्धति और रंगों के सम्मिश्रण के ढंग को ज्यों का त्यों अपनाया हो, बल्कि अपनी कला के आधारभूत स्वरूप में बिना किसी परिवर्तन-संशोधन के ऐसे सर्वोत्तम पुष्ट कला रूपों की सृष्टि की, जो उनके महान् कृतित्व को शाश्वत गति का संजीवन दे सके। उन्होंने यदा कदा 'पोर्ट्रेट चित्र' भी बनाए, पर उनके निर्माण में किसी भी मॉडल से सहायता नही ली। 'पोर्ट्रेट चित्रों' को आँकते हुए किसी अनुकृति या सादृश्य ढूँढ़ने का प्रयास उन्होंने कभी नही किया, वरन् किसी के मुख के उड़ते भाव या अंतरंग चेष्टाएँ, जो उन्हें कही दीख पड़ी थी और उनकी स्मृति में संचित रह गई थी, वे ही उन्होंने अपने चित्रों में ढालकर दर्शायी।

यूरोप की यात्रा के दौरान चुग़तई ने 'इचिंग' (धातु पर खुदाई) के महत्त्व को और अधिक समझा। भारत लौट कर उन्होंने अत्यन्त उत्साह के साथ अभिव्यक्ति के इस नवीन माध्यम को अपनाया और अत्युत्कृष्ट इचिंग-कृतियों को तैयार किया। यूरोपीय प्रभाव ने नग्न चित्रों के प्रति भी उनमें दिलचस्पी पैदा कर दी थी और इस दिशा में उन्होंने कार्य भी किया। अभी तक किसी भी रूढ़िवादी एशियाई कलाकार द्वारा नग्न चित्रों का सृजन पहले न हुआ था।

अपनी बाद की कलाकृतियों को उन्होंने अधिक गहरा, अधिक भव्य रूप प्रदान किया। पहले का उथलापन अन्तर्मन की सूक्ष्मता को अधिकाधिक उभारने के प्रयास में खो गया। रेखाओं और विवरण पर वाह्य रूप-विधान तथा स्थूल सज्जा को ही उन्होंने अपने चित्रों में प्रश्रय नही दिया, प्रत्युत् रंग और रेखाएँ—दूध और पानी की तरह—एक-दूसरे में लय हो गई। उनकी पहली दृष्टि की भ्रान्ति क्रमशः साधक की गम्भीर अनुभूति में रम गई। प्राथमिक चित्रों में कीमती पोशाकों की झलमलाहट, सलवटें, उनका लहराता सौंदर्य आदि दर्शाने के लिए वे दर्जनों रेखाएँ खींचते थे, पर बाद में कुछ लीकों से ही काम चलने लगा। अमंलग्न रेखाएँ, यत्र-तत्र छिटके रंग और फारसी नफ़ासत उस अर्थ, भाव, गहराई को व्यंजित करने लगी जिसमें भारतीय सूफी आध्यात्मिकता भी ओतप्रोत थी।

चुगतई के चित्रों में अनजाने ही प्रतिरूपक उभरे हैं। किसी अत्यन्त दरिद्र फटेहाल भिखारी की बग़ल में ताज़ा खिला हुआ फूलों का गुच्छा पड़ा है। विरह-कातर दुखी नारी के समीप नन्ही सी चिड़िया चहचहा रही है। पूर्ण स्वस्थ, सुन्दर और यौवन से मदमत्त राजकुमार के पैरों के पास नितान्त ठूँठ वक्ष की छिन्नभिन्न शाखाएँ बिखरी हुई चित्रित की गई हैं। जाने में या अन-

जाने में किये गए ये लाक्षणिक प्रयोग भारतीय जीवन की उस बद्धमूल धारणा के प्रतीक हैं, जो हर सृजन में ज़िन्दगी के साथ नाश की छाया ढूँढ़ती है। प्रत्येक जीव और ईश्वर द्वारा सृष्ट वस्तु—मनुष्य, पक्षी, फूल, पौधा, वृक्ष—जीवन के चक्र के साथ सतत घूमते हैं। जन्म, विकास, परिपक्वावस्था, क्षय, मृत्यु—बस यहीं चरम स्थिति पर आकर जीवन का पटाक्षेप हो जाता है। चुग़तई की दार्शनिक दृष्टि जीवन की गहराइयों को स्पर्श करती हुई हर पहलू पर टिकती है। उनके चित्रों में आसक्ति से अधिक अनासक्ति का भाव प्रबल है। यौवन के उन्माद में वे वृद्धावस्था और विनाश को नहीं भूलते, हर्ष में वे दुःख और पीड़ाओं को नज़रन्दाज़ नहीं कर जाते, निर्धनता के थपेड़े उन्हें यह याद रखने को बाध्य करते हैं कि ईश्वर की सृष्टि, प्रत्येक प्रत्यक्ष वस्तु अमीर-गरीब दोनों के लिए समान है। फूल खिलते हैं, पक्षी चहचहाते हैं, यहाँ तक कि प्रकृति की हर हरक़त, हर क्रिया किसी एक के लिए नहीं, बल्कि निर्धन-धनी, बालक-वृद्ध, स्त्री-पुरुष और छोटे-बड़े में बिना भेदभाव किये सबके लिये समान है।

चुग़तई के चित्रों में कलात्मक संस्पर्श, निश्छल तन्मयता और बड़ी ही अनूठी व्यंजकता है। उनकी मर्मभेदी दृष्टि कहीं से भी विषयों को बटोर कर उनका कलागत, भावगत चित्रण करने में सफल हुई है। राधा और कृष्ण के पारस्परिक आमोद-प्रमोद का अल्हड़ आह्लाद उन्होंने काँगड़ा चित्र-पद्धति में आँका है। सौंदर्य का आत्मविभोर मादक चित्रण करने में वे इटालियन कलाकार बोत्ती चेल्ली के निकट हैं, यद्यपि फारसी प्रभाव ने उसे और भी सम्मोहक बना दिया है। आकृति-चित्रों के निर्माण में कहीं-कहीं बिहज़द का प्रभाव भी दृष्टिगत होता है।

चुग़तई के जीवन की महत्त्वाकांक्षा रही कि वे अपने दो प्रिय प्रशंसित कवियों—ग़ालिब और उमर खय्याम—के कृतित्व को अपनी रंग एवं रेखाओं में बाँधकर अभिनव आकर्षक रूप प्रदान कर सके। उन्होंने ग़ालिब की पुस्तक को स्वनिर्मित चित्रों से सुसज्जित कर 'मुरक्क़-ए-चुग़तई' के नाम से प्रकाशित किया। चित्रों के रंग इतने सुकोमल ओर नफ़ीस थे कि उनको सुन्दर ढंग से छपाई के लिए पेरिस भेजना पड़ा। रोगर फ्राई और ई० बी० हेवेल ने इसकी प्रशंसा करते हुए इसे एक सर्वथा निर्दोष असाधारण कृति घोषित किया। 'नक़ीश-ए-चुग़तई' नाम की इनकी एक अन्य छोटी चित्र-पुस्तक निकली, जिसमें काले और सफ़ेद—केवल दो रंगों को उपयोग में लाया गया था। तत्पश्चात् इनकी लगभग चालीस ड्राइंग और पेंटिंग का एक संकलन प्रकाशित हुआ,

जिसमें भारत और फ़ारसी कला का सम्मिलित प्रभाव अनेक स्थलों पर अपने चरम रूप मे व्यक्त हुआ है ।

चुग़लई जीवन में गहरे पैठे हैं। उन्होंने कला को प्राणों से अनुभव किया है। एक स्थल पर वे लिखते हैं—"कला का रसास्वाद प्रत्येक के लिए नहीं है...कला और धर्म के द्वारा मनुष्य उस चरमता को हासिल कर सकता है, जो जीवन की अंतर्भूत सत्यता की चिरद्योतक है। किन्तु वे व्यक्ति, जो बिना समझे-बूझे कला के पीछे दौड़ पड़ते हैं, उन्हें लाभ से अधिक हानि ही उठानी पड़ती है।"

चुग़तई के दृश्यमान हरे, पीले, नीले, भूरे, नारंगी रंगों के साथ विराट् का संगम है, जो उनके दृश्य की करुणार्द्र तरलता के साथ एकाकार हो उठा है। उनका उन्मुक्त भाव रंग एवं रेखाओं का बन्धन स्वीकार नहीं करता, वे उनकी कला के लिए अनिवार्य भी नहीं हैं। उनके चित्रों में उनका अपना 'स्व' झंकृत हुआ है, जो उनके सृजन की महानता को तो सिद्ध करता ही है, उनकी अथाह् गरिमा की अमिट छाप भी छोड़ जाता है।

रवींद्रनाथ ठाकुर

बासन्ती सुषमा एवं मकरंद से भरेपूरे सदा चिरनवीन और जल-थल-आकाश——सभी इस चिरनवीन की जयध्वनि से मुखरित जीवन के उन्मुक्त वातावरण में गुहानीड़ से झाँक कर तरु-शिखरों पर मधुर कल्पनाओं के रंगीन परों से फुदकने वाले कवि-विहग की उत्सुक दृष्टि नाना रंगों की लीलाचंचल लहरीमाला में क्या खोज रही थी, किस अपरूप रहस्य-लीला का भेद पाने के लिए वह आतुर थी, किस निर्वाक् वाणी की अस्पष्ट गुंजन में उसका अंतर सिहर-सिहर उठता था। कवि अपनी कविताओं में ही समूचा नहीं अँट सकता। न जाने कितने आयामों वाले, अनेक अप्रतिम अदृष्ट अलिखित भावावेग, अनगाया गीत, मधुर मुखरता से मचलता, पूर्णता पाने के लिए आकुल, निर्माणोन्मुख, अनन्त अक्षत संभावनाओं का सृजक, अनादि अनन्त-काल से छन्दोबद्ध, मन की शून्य रिक्तता में नित्य-नवीन की चैतन्य ऊष्मा से ऊर्जस्वित, तरुओं की शाख-शाख में, जीर्ण पत्तियों के रूप में सूखकर गिरने से पहले कोमल किसलयों के वक्ष पर अमरत्व का रस पीने के लिए उनकी शाश्वत पिपासा अमिट रेखाओं से कुछ कोरना चाहती थी। जीवन के अपराह्न में रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने स्वयं कहा था——"अब तक मैं अपनी भावनाओं को साहित्य तथा संगीत में व्यक्त करने का अभ्यस्त रहा हूँ, पर मेरी आत्म अभिव्यक्ति के तरीके अपूर्ण रहे, अतएव मैं भावनाओं के प्रकटीकरण के लिए चित्रित रेखाओं का सहारा लेने की दिशा में आगे बढ़ रहा हूँ।"

अपनी इसी शाश्वत पिपासा की पुनर्व्याख्या करते हुए एक अन्य स्थल पर उन्होंने कहा था——"शरीर की प्यास के अलावा एक और भी प्यास मनुष्य को लगती है। संगीत और साहित्य की भाँति चित्र भी मनुष्य के दृश्य के सम्बन्ध से उस प्यास का ही ज्ञान कराता है। उस अंतरवासी 'एक' की वेदना कहती है——मुझे बाहर प्रकाशित करो, रूप में, रंग में, सुर में, वाणी में, नृत्य में। तुममें से जो जैसे कर सकता है वैसे ही मेरी अव्यक्त व्यथा को व्यक्त कर दो।"

यूँ——इस महाकवि ने अपनी सतरंगी कल्पनाओं की कूची के वैभव से अपने

जीवन-काल में सैकड़ों-हज़ारों चित्र सिरजे। उन्होंने बचपन में ड्राइंग या किसी चित्रण टेकनीक का प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया था, बल्कि वे तो अपनी अतंर्नुभूतियों को रेखाओं में उभारकर अपने मन को एक भोले बालक की भाँति बहलाते थे। चित्रों में उनका जीवन-दर्शन क्या है! निश्चय ही, कलाकार की वह अंतरंग प्रेरणा, जो वाह्य औपचारिकता अथवा सीमाबंधनों से प्रभावित नहीं, वरन् भीतर ही भीतर उद्‌बुद्ध प्राणधारा की अक्षुण्णता ही जिसकी सबसे बड़ी पूंजी है, अतएव प्रवाह-सामयिकता में डूब-उतरा कर नहीं, वरन् उनकी अपनी व्यापक भावधारा से पुष्ट होकर जो रंग एवं रेखाएँ उभरीं वे चित्र बन गईं। प्रकृति के अनन्त अभिसार, बासन्तिक उन्माद की आँख-मिचौनी और अपरूप सृष्टि की प्रकाश-छाया के इंगित, व्यंजना और क्षणिक स्पर्श से उनमें स्वयंमेय सुप्त कलाकार जागा जिसने बालक के से चापल्य और भीतरी कौतुक को आत्म-बद्ध आवेगों और भावातिशयता में उँड़ेल दिया। इन चित्रों का कोई रूप-विधान न था, न नियमों की जकड़बन्दी और न कोई लाक्षणिक आधार। हाँ—दृष्टि-पथ की वाह्य सीमा छूते ही वे अपने स्नेहल स्पर्श से मधुर मरमता की राशि बिखेर देते, उनसे कवि के हृदय का निगूढ़तम परिचय न छिप पाता और उनकी रहस्य-मय मुखरता किसी को कृत्रिम बंधनों से नहीं घेरती। रन्ध्रहीन शिलाओं के बीच से फूट निकलने वाले नैसर्गिक निर्झर की आर्द्रता से भरकर वे दर्शक के भावों को छू-छू कर उसमें औत्सुक्य जगाते कि अतर्क्य चेतना से उद्‌भूत मात्र विन्यास नहीं, वरन् चिरन्तन रंग-राग की रूपमय ऊष्मा उनमें बिखरी है।

एक चेहरा

संकेत, इशारे या कूची के झपाटों से जो चित्र बरबस अंकित हो जाते वे कवि के व्यंजना-प्रधान चित्र होते थे। उनका सृष्टा मन किसी वस्तु को अंशतः या न्यून करके देखता था, किसी वस्तु को अतिकृत करके देखता था, इस प्रकार व्यंजना प्रधान ऐसे चित्रों का अपना वैशिष्ट्य है। उनकी आकृति, भंगिमा और रूप-रेखा निराली है, उनकी सौन्दर्य-चेतना के पैमाने पृथक् हैं। रवीन्द्रनाथ ठाकुर में यह सौंदर्य-चेतना उनकी अपनी प्रेरणा का प्रतिफल था। उनमें यह शिल्प-दृष्टि उनकी अपनी साहित्य-दृष्टि से उद्‌बुद्ध हुई थी।

किसी तथ्य या उद्देश्य को सामने रखकर उन्होंने चित्र कभी नहीं बनाये, बल्कि वे तो अजीबोग़रीब ढंग से उनकी रचनाओं के उन अस्वीकार्य अंशों से प्रेरित हुए जिन पर कवि अपनी कलम की क्रूर नोंक चला दिया करते थे। लेख लिखते समय जो काटकूट होती, उससे सौंदर्य-चेता कवि का मन सामंजस्य न कर सका। आड़ी-तिरछी या सर्प की तरह लहराती अथवा बिच्छू के उभरे जहरीले डंक की शक्ल की तरह ये भौंडी रेखाएँ अन्ततः पुकार-पुकारकर याचना करने लगीं—हमें यूँ मत काटो, इस बदसूरती से हमारी हत्या मत करो, तभी बस कवि के भीतर से कसमसाता कलाकार का जन्म हुआ। "मेरी पांडुलिपियों पर बनी काट-छाँट की रेखाएँ जब किसी पापी के समान मुक्ति के लिए पुकार उठतीं और अपनी कुरूपता से मेरी आँखों को प्रताड़ित करतीं तो अनेक बार मेरा अधिकांश समय अपने प्रत्यक्ष कार्य के बजाय उन रेखाओं को लयबद्ध गति की सदय वास्तविकता प्रदान करने में व्यतीत हो जाता।" उन्होंने उन घिनौनी टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं को समानुपात और चित्राकृतियों में बदल दिया। जो कुछ अपना लिखा उन्हें पसन्द न होता वे इस ढंग से उसे काटते कि चित्रकारी बन जाती। एक दिन इन्हीं काल्पनिक आकृतियों को देखकर उन्हें आभास हुआ कि भला क्या वे चित्र नहीं बना सकते? बस—उनका संवेदनशील हृदय अपनी इसी अछूती कलम से रंगों में ऊब-डूब करने लगा। न केवल नुकीली नोंक, बल्कि कलम के दोनों पार्श्व और पिछला सिरा तरह-तरह की स्याहियों में डुबाकर वे चित्र-सृजन करने लगे। मन के सूक्ष्म भाव, भीतर की लय, प्राणों का संगीत रेखाओं में उभरने लगा। अनजाने ही वे आकृति बनने लगीं। यद्यपि उनमें कलाकार की ओर से कोई सायास चेष्टा या निश्चित उपक्रम न होता, किन्तु एक नैसर्गिक स्वयंजात प्रेरणावश वे उदात्त भावनाओं को वहन करने वाली सिद्ध होतीं। स्वयं कवि ने अपनी चित्रशैली के सम्बन्ध में एक स्थल पर लिखा है—

प्रेमी युगल

"मुझे कला के किसी सिद्धान्त की स्थापना नहीं करनी है। मुझे तो केवल यह कहकर संतोष कर लेना है कि जहाँ तक मेरा अपना सम्बन्ध है, मेरे चित्रों के मूल में कोई सीखी हुई दक्षता नहीं है, वे किसी जानबूझ कर किये हुए

प्रयत्नों के प्रतिफल नहीं हैं। उनका जन्म तो हुआ है अनुपात की सहजात प्रवृत्ति मे, रेखाओं और रंगों के सामंजस्यपूर्ण संघात में मेरी रुचि और प्रसन्नता के कारण।"

सन् '३० के बाद जब सबसे पहले भारत में यह खबर पहुँची कि रवीन्द्र नाथ ठाकुर के चित्रों की प्रदर्शनी पेरिस की मशहूर सैलून में आयोजित की गई है और वहाँ के कला रसिक उसकी भूरि-भूरि सराहना कर रहे हैं, साथ ही यूरोप और अमेरिका की आर्ट-गेलरियाँ उन्हें ऊँचे मूल्यों पर खरीद रहीं हैं तो सभी आश्चर्याभिभूत रह गए और उन्होंने शायद इसे मजाक समझा। पर बाद में लन्दन, बर्लिन, न्यूयार्क और मास्को में भी इनके चित्रों की प्रदर्शनी की गई। विश्व की प्रमुख आर्ट-गैलरियों में इस विश्व-कवि के इस मानसी सृजन का स्वागत करने के लिए जैसे होड़ सी मच गई। मौजूदा युग के कला-इतिहास में सचमुच यह एक बड़ा ही अचम्भा था।

फूल

पर सन् १९३३ में रवीन्द्र बाबू के चित्रों की प्रदर्शनी जब बम्बई में की गई तो भारतीय जनता हैरान रह गई। दर्शक गण आते और मुस्कराते हुए बाहर निकलते। इन बचकानी चित्र कृतियों से वे चिढ़ जाते, "भला यह भी कोई कला है", "भई, हमें तो कुछ भी समझ में नही आता", "ये तो हमारी समझ मे बिल्कुल परे है", इस प्रकार के उद्‌गार व्यक्त करते हुए वे लोग तरह-तरह के व्यंग्य कसते। हाँ—कुछ कला-अध्येताओं में यह प्रवृत्ति अवश्य दीख पड़ी कि वे कवि के मनोलोक में झाँककर उनकी अद्‌भुत सृजन-प्रक्रिया से सिरजी इन रूपाकृतियों का ग़ौर से अध्ययन करते और उनमें कुछ विशेष अर्थ एवं गांभीर्य खोजने की चेष्टा करते।

पर इन आलोचना-प्रत्यालोचनाओं की कवि को कोई चिन्ता न थी। वे इन सबसे ऊपर थे। वे अपने आप को चित्रकार मानते ही कहाँ थे। रंग, कूची कैन्वास, ब्रुश, स्टूडियो आदि की भी उन्हें चिन्ता नही थी। इससे उनके भावबोध, रूपायित रूप अथवा आशय या उद्देश्य पर कोई असर नहीं पड़ता था। उनके चित्र तो स्वान्तः सुखाय थे, उनके अवचेतन को अभिसृष्टि, उनकी अनियोजिका बुद्धि का कौशल। एक स्थल पर उन्होंने लिखा—"लोग मुझसे मेरे चित्रों का अर्थ पूछते हैं, उद्देश्य पूछते हैं, उत्तर मैं अपने चित्रों की भाँति ही मौन से दे

देता हूँ, क्योंकि उन्हें समझाना मेरा काम नहीं, क्योंकि वे यदि अपने भीतर अपने स्वतंत्र अस्तित्व की पूर्णता समाहित किये हुए हैं तो वे बने रहेंगे, अन्यथा किसी वैज्ञानिक सत्य अथवा नैतिक औचित्य के बावजूद नष्ट हो जाएँगे। मेरे चित्रों की गाथा अनन्त विस्तृत मौन-जगत् का बिन्दुमात्र है। विश्व की अमर वाणी इंगितों-प्रतीकों द्वारा ही व्यक्त होती है।"

छोटे-वड़े, सादे-रंगीन उन्होंने सैकड़ों चित्र बना डाले। फूल, पत्ती, पौधे, पशु-और मानवाकृतियाँ उनकी अपने मन की स्फूर्त्ति से स्फुरित होकर स्वतंत्र सत्ता बन कर प्रकट हुए। जब वे लिखते-लिखते थक जाते तो अपनी थकान मिटाने के लिए रंगों से खिलवाड़ करने लगते। जो कोई व्यक्ति सामने आता या कोई वस्तु उन्हें नज़र पड़ जाती वे उसे रेखाओं में बाँधने की चेष्टा करने लगते और अनायास एक आकृति बन जाती जो उनका अपना मनोरंजन तो करती ही, दूसरों के आश्चर्य और मनोरंजन का भी साधन बनती। निर्माण-पद्धति और रंग-नियोजन में उन्हें विशेष प्रेरणा मिली। तरह-तरह की फूल-पत्तियों के आकार, पेड़-पौधों की बनावट अपने समानान्तर उन्हें चित्र आँकने का ढंग सिखातीं। असित हाल्दार, जिन्होंने उन्हें काम करते देखा था, अपना अभिमत प्रकट करते हुए एक स्थल पर यों लिखते हैं—"जहाँ तक चित्र-निर्माण-पद्धति का प्रश्न है, हमारे महाकवि चित्रकार को बिस्मयकारी दक्षता हासिल है। ज्यों ही उनके मन में किसी चित्र का विषय कौंध जाता है, उसकी रूपरेखा और अनुपात तत्क्षण उनकी उंगलियों में जैसे थिरकने लगता है। किंचित् सा कम्पन या अनिश्चय की लड़खड़ाहट उनमें नहीं होती। छुटपुट हरकतों में चित्र उभर आता है, सधे हाथ से रेखाएँ गहरी होती जाती हैं और चित्रगत परिस्थिति या विधान इस प्रकार रूपांतरित होता चलता है जो किसी अनुभवी कलाकार के कौशल से ही संभव है।"

पानी भरने चली

कदाचित् उस समय लोगों को यह एहसास न था कि इस महाकवि के हाथों अनायास आधुनिक कला का प्रवर्त्तन हुआ था जो आज की अनुपातहीन नव्य चित्राकृतियों की परम्परा का अगुआ कही जा सकती है। पिकासो तब अल्हड़ किशोर था और उसकी कलाकृतियों का क़रिश्मा अभी दुनिया के सामने उजागर न हुआ था। कान्दिस्की और नोल्डे, मोदिग्लिआनी और पाल क्ली बहुत दूर थे। कला में नये-नये वादों की ऐंचातानी तब न थी, पर यदि ध्यान

से देखा जाय तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कला में शायद आधुनिक वैचित्र्यवादी तत्त्वों के बीज निहित थे। नन्दलाल बसु ने इनकी कला की अभ्यर्थना में कहा था—

पक्षी

"जितना अधिक मैं रवीन्द्रनाथ के चित्रों को देखता हूँ उतना ही यह विश्वास दृढ़ होता जाता है कि रवीन्द्रनाथ के भीतर एक महान् प्रतिभासम्पन्न कलाकार है। उनकी चित्रकला में व्यंजना की नई प्रणाली है।
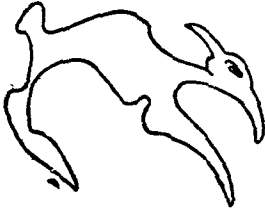
रवीन्द्रनाथ की कला में हम उन रूपगुणों को देख सकते हैं—जो महान् कला के लिए आवश्यक हैं—विशेष रूप से उनमें शक्ति और ताज़गी का वह महान् गुण है जो पुरातन को नूतन बनाता है। उनके चित्रांकन को हमें एक प्रतिभाशाली की तरंग या झक नहीं कहना चाहिए।"

प्रार्थना-रत

यामिनी राय

आधुनिक भारतीय कलाकारों में यामिनी राय का नाम इसलिए अग्रगण्य है, क्योंकि उन्होंने अपनी कला में आदिम भारतीय संस्कृति और देशी पद्धति को अपनाया है।

यूरोप अथवा अमेरिका में यदि किसी कला-मर्मज्ञ से यह प्रश्न किया जाय कि क्या वह किसी भारतीय कलाकार का नाम जानता है, तो वह अपनी अनभिज्ञता दर्शाएगा (क्योंकि उन्नीसवीं शताब्दी में अंग्रेजी प्रणाली पर आर्ट स्कूलों के खुल जाने से भारतीय चित्रकला को जो एक भीषण धक्का पहुँचा था उस की क्षति-पूर्ति अभी तक भी संभव नहीं हो सकी है) अथवा वह यदि किसी भारतीय कलाकार का नाम बताएगा भी तो निर्विवाद रूप से यामिनी राय का ही, क्यों कि वे ही एक ऐसे कलाकार हैं, जिन की कला में पश्चिमी प्रणालियों का अन्धानुकरण न हो कर मौलिक कला-तत्त्वों एवं भारतीय संस्कृति का समावेश मिलता है।

लगभग पचीस वर्षों से बंगाल में जो उन्होंने ख्याति प्राप्त की है, वह बेजोड़ है। कलकत्ता यूनिवर्सिटी के फाइन आर्ट्स के प्रोफेसर शहीद सुहरावर्दी—जैसे कला-पारखी और प्रख्यात कवि एवं निबन्धकार श्री सुधीन्द्रनाथ दत्त ने उनकी प्रशंसा में बहुत कुछ लिखा है। कवि विष्णु दे और जान इर्विन ने, जो विक्टोरिया एण्ड एलबर्ट म्यूज़ियम, लन्दन में भारतीय विभाग के क्यूरेटर रहे हैं, सन् १९४४ में इण्डियन सोसाइटी आफ ओरियंटल आर्ट्स के लिए उनके कार्य का गहरा अध्ययन एवं खोज की थी। उनके विचार अब पुस्तक रूप में प्रकाशित हो चुके हैं। यूनेस्को में अड़तीस देशों के चित्र गए थे। 'न्यूयार्क टाइम्स' और 'लन्दन टाइम्स' ने इनके चित्रों पर अपना अभिमत व्यक्त करते हुए लिखा

था—"केवल यामिनी में पेरिस का अनुकरण नही है। उनकी कला का निःजस्व है और वह किसी का उच्छिष्ट नहीं ।"

युद्ध के दिनों में तो इन्होंने अत्यधिक प्रसिद्धि प्राप्त की थी। अंग्रेज और अमरीकी सैनिक, जो कलकत्ते में नियुक्त किये जाते थे, दल के दल बना कर इन के स्टूडियो में आते थे और इन के बनाये चित्रों को खरीदने में दिल खोल कर व्यय करते थे। आजकल भारत के बड़े-बड़े शहरों की कला-प्रदर्शनियाँ और प्राइवेट घरों की सुसज्जा में इनके चित्र टंगे रहते हैं। अंग्रेजी के सुप्रसिद्ध साहित्यिक और कलात्मक पत्र 'होराइज़न' और अन्य भारतीय एवं विदेशी पत्रों में इनकी कला पर समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हुए हैं।

माँ और पुत्र

यामिनी राय का जीवन घटना-पूर्ण न हो कर अत्यन्त सरल और सुरुचिपूर्ण है। कलकत्ता की एक शान्त, निर्जन गली में अपने स्टूडियो के भीतर वे चुपचाप कार्य-व्यस्त रहते हैं। उन्हें स्टूडियो में बैठने, कार्य करने और कला सम्बन्धी बातचीत करने में अत्यन्त सुख का अनुभव होता है। जिस प्रकार समुद्र के गर्भ में पैठ कर गोताखोर न जाने क्या-क्या खोजने का प्रयत्न करता है, उसी प्रकार यामिनी राय भी कला की गहराई में घुस कर सूक्ष्म कला-तत्त्वों का अन्वेषण करना चाहते हैं।

उनकी कलाकृतियाँ आदर्श चिरंतन अनुभूतियों की सच्ची गाथा हैं, सरल व्यक्त सत्य हैं। वे मानवता की सिहरन, स्पन्दन एवं कम्पन से आविर्भूत हुई-सी ज्ञात होती हैं। देखने में जीवन के साधारण चित्र होते हुए भी उन में कितना चमत्कार, कितनी गति और कितनी सजीवता है! जैसे बालक का मन चंचल
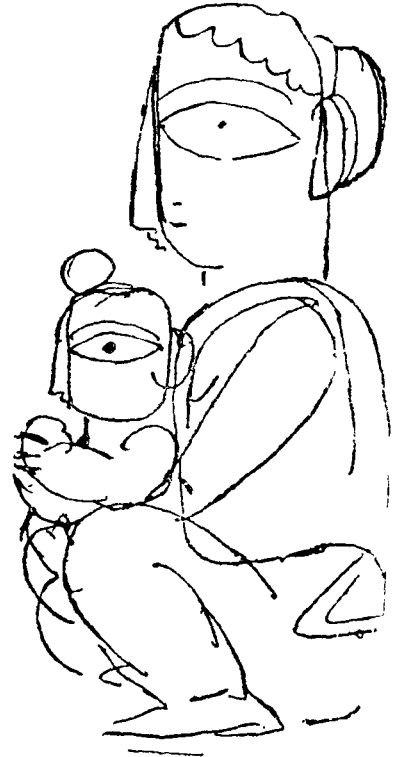
होता है, वह खिलौनों को देख कर और खेल कर नहीं अघाता, ठीक वसा ही भोलापन और बाल-सुलभ चपलता यामिनी राय में है। लगता है मानो खिलौनों में रम कर उन की कला अल्हड़ और अभिव्यक्ति सरल हो गई है। उन्होंने स्वयं कहा है—"जैसे बच्चा हो, उसे सब कोई गोदी में ले लेते हैं, ऐसे ही मेरी कला है। मैं तो लिखना-पढ़ना नहीं जानता। बच्चे मेरे गुरु हैं। जब मुझे रास्ता नहीं मिला, तब बाल-स्वभाव और सहज रुचियों में से ही मैंने रास्ता पकड़ लिया। जब आदमी मार्ग भूल जाता है, चारों तरफ अँधियारा होता है, तब बालक से मदद मिलती है। सब के भीतर जो असल आत्मा है, वह बालक है। उसके साथ सब का मेल और सहज सामीप्य भाव है।"

सन् १८८७ में पश्चिमी बंगाल के बाँकुरा ज़िले में एक जमींदार के घर याम्निनी राय ने जन्म लिया था। एक अत्यन्त प्रतिष्ठित और सम्पन्न कुल में जन्म लेकर भी उनके पिता ने कभी भी इस बात की रोक-टोक नहीं की कि उनका पुत्र गरीबों और छोटी जातियों के लोगों से न मिले। बचपन से ही उन्होने बंगाल के छोटे-छोटे गाँवों में भ्रमण करके और अधिकतर नीच जाति के कारीग़रों और मिट्टी की तरह-तरह की चीज़ें बनाने वालों के सम्पर्क में रह कर बहुत कुछ सीखा-समझा। मिट्टी की गुड़ियाँ, बर्तन, काठ के चित्रित खिलौने, पुराने जमाने की तस्वीर और नमूने इन्हीं सब को सीखना, अनुकरण करना और विकसित करना ही उन्होंने अपना नित्यप्रति का कार्यक्रम बना लिया था। एक स्थल पर वह लिखते हैं—
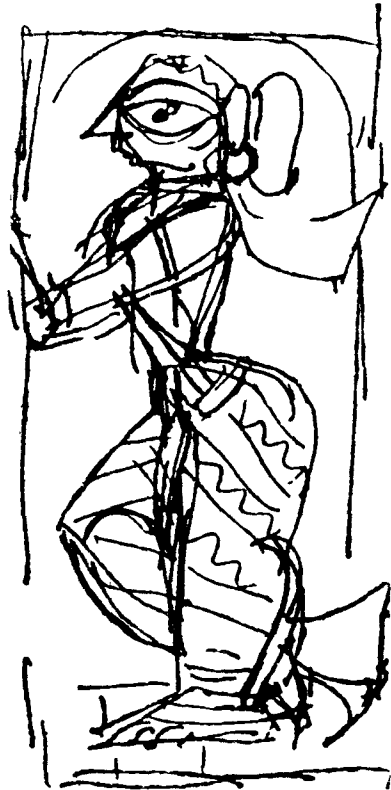
एक नारी भंगिम।

"रंगों का शौक़ मुझे बचपन से ही रहा है। खिलौनों को रँग-रँग कर उनका रूप बिगाड़ देने के लिए मैने न जाने कितनी बार डाँट सुनी होगी। रंगों के प्रति मेरी आसक्ति इतनी तीव्र थी कि जब भी किसी काम से बाज़ार की ओर भेजा जाता, तो मेरे पाँव सबसे पहले मुझे रंगसाज़ की दूकान पर ले जाते और मैं घण्टों सुध-बुध खोए रंगों के साथ उनका उलझना देखता रहता। मनुष्य जैसा है, उसे चित्रित किया जा चुका है, मनुष्य कैसा होगा, उसे भी लोगों ने चित्रित करने से नहीं छोड़ा है, लेकिन मनुष्य की रंगमयता किसी ने नहीं देखी। मनुष्य जैसा है, वैसा ही क्यों बनाया जाए, भविष्य में वह जो होगा, वह भी उस पर क्यों लादा जाए--उसे रंगमय क्यों न बनाया जाए? इस आशय के विचार शुरू से ही मेरे मन में घर किये हुए थे। शायद इसी से, जब रासलीला वालों की टोली आती, तो मैं सब कुछ भूल कर उनके पीछे दीवानों-सा घूमता

ढोलक बजाने वाले

उनका रंगबिरंगा वेश-परिधान, रंगों के प्रति उनका मोह—यह सब मुझे बड़ा प्रिय था। मैं मुग्ध हो उन्हें निहारता ही रहता।

"ऐसा ही लगाव मुझे पटुओं की ओर भी था। जब भी मौका मिलता, मैं आँख बचा कर पटुओं की बस्ती में पहुँच जाता। अपने चारों ओर नाना प्रकार के रंग बिखेरे, जिस तन्मयता से वे निर्जीव चीज़ों को भी अपनी कला से सजीव बनाने में जुटे रहते थे, वह मेरे मन से अपने बड़ों की डाँट भी भुला देता था। मैं जो टकटकी बाँध कर देखता, तो बस, देखता ही रह जाता। किन्तु कभी-कभी एक शंका मन को झंझोड़ डालती। कई बार सोचा, कई बार टाल दिया। पर अन्ततः एक दिन उस बूढ़े पटुए से, जिसके पास रोज जाकर बैठता था,

मैंने पूछ ही लिया—'बाबा ! इतने ढेर-से रंगों के बीच तुम कभी ऊबते नहीं ?' वह मुस्कराया– बड़ी स्नेह-तरल मुस्कान– 'रंगों से भी कभी कोई ऊबा है क्या, बेटे ? रंगों की प्यास, तो बस, समुद्र की प्यास है जो कभी बुझती नहीं ।'

"प्यास की यह बात मेरे मन को छू गई और तब से ही मैंने इसे अपना जीवन-दर्शन मान लिया । जानता हूँ, मेरा यह प्रयास एक टिटहरी की तरह ही है; पर मनुष्य की इस रंगमयता को अपनी तूलिका का स्पर्श देने से मैं हिचकूँ क्यों ?"

काला घोड़ा

सोलह वर्ष की अवस्था में उनके पिता ने यह सोच कर कि राय चित्रकार बनने की आकांक्षा रखता है और उसमें चित्र-निर्माण के विशेष गुण विद्यमान हैं कलकत्ता के 'गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट' में इन्हें दाखिल कर दिया । स्कूल में जो कुछ इन्हें सीखना था वह शीघ्र ही इन्होंने सीख लिया और शिक्षा समाप्त करके चित्रकारी करने लगे । वे शबीह चित्र (पोर्ट्रेट) और प्रतिचित्रों का अनुकरण करने में बड़े ही दक्ष थे । अब भी वे ऐसे चित्रों को बड़े उत्साह से बनाते है ।

सन् १९२१ में उन्हें एक नवीन प्रेरणा मिली । जिस प्रकार अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का जापानी कला की ओर अकस्मात् झुकाव हुआ तथा नन्दलाल वसु ने अजन्ता की चित्रकारी का अनुकरण किया, उसी प्रकार यामिनी राय भी एक विशेष दिशा की ओर उन्मुख हुए । उन्होंने विदेशी कला का अनुकरण करने की अपेक्षा भारतीय कला-पद्धति को अपनाना ही श्रेयस्कर समझा । उन्होंने भारत के उन हिस्सों में कला का अन्वेषण किया जहाँ कि विदेशी सत्ता ने प्राचीन भारतीय कला को नष्ट-भ्रष्ट नही किया था । वह बंगाल के अपने पुराने घर में लौट आए और उन्ही मिट्टी के बर्तन, नक्काशी और काष्ठकला के अनुकरण पर अपनी एक व्यक्तिगत विशिष्ट शैली का आविष्कार किया ।

दरअसल, जो रूप और आकार आज सब के सामने है उन्हें इस स्थिति में आने के लिए वर्षों निरन्तर परिवर्त्तन की प्रक्रिया से गुज़रना पड़ा है। पर बहु-रूपी जीव-जगत् के विकासवाद के परे जीवन के इस विपुल वैविध्य में कैसी भव्यता और विचित्र कौतूहल भरी रंगमयता है ! अनगिनत सुन्दर और अद्भुत विस्मयकारी छलकते रंग—शनैः शनैः उनके मस्तिष्क में यह बात उतर रही थी कि नाना रूपों में जो जीवन प्रस्फुटित है वह मूल में एक ही अविच्छिन्न प्रवाह से जुड़ा है—अर्थात् जीवन की विभिन्न संयोजना में एकरूपता है तो उसकी अति मोहक रंगमयता में निस्सीमता की महत्त्वपूर्ण इकाई।

अतएव यामिनी राय की इस विचित्र कला-शैली ने उत्तरोत्तर विकास का पथ प्रशस्त किया। उनकी चित्रकारी देखने में बहुत ही मनोरंजक, आकर्षक, चमकीली, विविध रंगों से युक्त और एक निश्चित प्रणाली को लिये हुए होती है। उनके चित्रों के सौंदर्य और विचित्रता पर पाश्चात्य कलाकार भी मुग्ध हुए बिना नहीं रह सके। कला-पारखी विष्णु दे ने लिखा था– "चित्र में उभार प्रदर्शित करने के प्रश्न को मूर्त्तिमत्ता के प्रश्न से यामिनी राय ने कभी नहीं उलझाया, न उन्होंने यही भूल की कि लघु चित्रपटों के अंकन की भारतीय परम्परा को एकमात्र शैली के रूप में स्वीकार कर लें। मूल आकारों की खोज और रंगों के सम-वितरण के प्रयोग उन्हें बंगाल की देहाती गुड़ियों की ओर खींच ले गए। उन्होंने बच्चों की विशुद्ध आकार कला के दृष्टिकोण का अनुकरण किया और आदिवासियों के गहरे रंग-विधान को अपनाया। इसी प्रकार उन्होंने सरलीकरण के प्रयोगों को यहाँ तक बढ़ाया कि धूसर रंग की (अर्थात् ग्रे कलर) जो विस्तृत शून्य का रंग है तथा रंगों में सबसे कम औरों पर निर्भर हैं, पृष्ठभूमि पर काजल की रेखाओं से काम लिया और इन्हीं से पैनी दृष्टि और कुशल कलाभिरुचि के सहारे वस्तु के उभार का अंकन किया–विषय चाहे 'युवती', 'माँ–शिशु' अथवा 'वृद्ध' कोई भी क्यों न हो। उभार का यह चित्रण तलों के उपयोग से नहीं वरन् प्रवहमान रेखा के चाक्षुष प्रयोग के सहारे ही किया गया। उनकी चित्रकारी में भारतीयता, देशीपन और यत्र-तत्र पाश्चात्य प्रभाव बड़े ही अजीबो-गरीब रूप में मिलता है। पौराणिक गाथाओं और धार्मिक चित्रों में उन्होंने सच्ची, निष्कपट और शुद्ध हृदय की भावना की कलात्मक झाँकी प्रस्तुत की है।

सभी बड़े-बड़े कलाकारों की भाँति यामिनी राय ने भी बड़ी गरीबी और कष्ट से अपना समय गुज़ारा है। एक अच्छा-सा उपयोगी व्यवसाय छोड़ कर

वे कला की उपासना की ओर प्रवृत्त हुए और उसके लिए उन्हें कठोर साधना करनी पड़ी। कभी-कभी तो उन्हें और उनके परिवार को भूखे रहने तक की नौबत आई। उन्हीं मित्रों और हितैषियों ने उनकी उपेक्षा की, जिनकी ओर वे आशाभरी टकटकी लगाए थे। निःसन्देह, बहुत कम लोगों ने उन्हें समझा और पहचाना।

इसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने भूख और गरीबी की मार से त्रस्त बंगाल के करुण दृश्यों, भिखारियों, अनाथों, आवाराओं और निराश्रित व्यक्तियों का चित्रण करने में एक प्रकार के ढाढ़स और आंतरिक सुख का अनुभव किया। चित्रों में सृजित चारुता और मार्दव ने उनके घावों पर बहुत कुछ मरहम का-सा काम किया। यौवन के वात्यावेग में उनकी भीतरी हलचल, बेचैनी और अशान्त मनःस्थिति ने चूंकि उनमें तूफ़ानी ढंग से काम करने की ख़्वाहिश जगा

रेखाओं द्वारा अंकित दो लोकचित्र

दी थी, अतएव वे संघर्षों में अधिकाधिक श्रम करने, विविध कलारूपों को पकड़ने और अविरत प्रयोगों में दत्तचित्त रहने लगे जो उनके परवर्त्ती जीवन की चारित्रिक खूबी बन गई। उनके काम करने का ढंग भी बेरोकटोक तरीकों को अख़्तियार करते हुए किसी भी कला-स्कूल अथवा ग्रुप, शैली और पूर्वापर परम्पराओं की पर्वाह किये बग़ैर कला की उन्मुक्त साधना करने का था। फलतः उन्हें जो रुचा उसी तरीके से उन्होंने कार्य किया। उन्होंने तैल रंगों एवं जल-रंगों का उसी साहसिक ढंग से प्रयोग किया जिससे वे 'टेम्परा' का प्रयोग करते हैं। अपने उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने वैज्ञानिक संयोजना और यथार्थ

चित्रण की प्रत्यक्ष स्थिति का भी आश्रय लिया। जब-जब रूढ़ परम्पराओं की सहज अवहेलना कर उन्होंने अपनी सृजक कल्पना को निर्बन्ध छोड़ दिया तब-तब मतवादों की चौहद्दी से निकल कर वे सामान्य विषयों को सहजात सौंदर्य से आँक सके।

यामिनी राय की कला के विकास-क्रम पर दृष्टिपात करते हैं तो अनेक अजीब और उलझी हुई समस्याएँ सामने आती हैं। वे न तो अधिक शिक्षित हैं और न ही देश-विदेशों में भ्रमण करके दूसरे कलारूपों से प्रभावित हुए हैं। उनकी मूल प्रेरणा है कि बहुत छुटपन से ही गुड़िया बनाने की कला उनके अन्तर में समा गई थी। जब-जब भी तरह-तरह की झंझटें या चिन्ताएँ उनके जीवन में आईं, आज के नवोन्मेष के विविध कला-रूप और नित-नई मूल्य-मान्यताओं के झमेले में उनका मन उलझा, तब-तब गुड़ियों के आकर्षक रूप और डिज़ाइनों ने उनके भीतर के उल्लास को सजग बनाए रखा। बाल्यावस्था की इस चाह में उन्हें अपूर्व सुख एवं शान्ति मिलती थी। संघर्षों से जूझ कर बंगाल की ग्राम्य कला और उसके नए-नए नमूनों और ताज़े मोहक रंगों में उनकी जिज्ञासा जगी रही और उनकी असलियत परखने की अधिक व्यावहारिक कसौटियाँ उन्होंने प्रस्तुत कीं। इनके प्राथमिक पटचित्रों में यही रंगों का वैभव द्रष्टव्य है और परवर्त्ती कृतियाँ भी प्रभाववादी चित्रण की भाँति ही व्यापकता से भर गई हैं।

मेडोना और सेंट जोन

यामिनी राय के चित्रों में एक प्रकार की अनौपचारिकता है जो कला की लीक से हट कर एक नई दिशा की ओर उत्प्रेरित करती है। कला सम्बन्धी उनकी मान्यताओं के अन्तर्गत उनकी निसर्ग प्रणाली कला की प्रस्थापित मूल्य-मान्यताओं के लिए एक मौलिक चुनौती के रूप में आई है, फिर भी आलोचकों ने उनकी चित्र-सामर्थ्य को सेज़ाँ से, उनकी दृष्टि की व्यापकता एवं गहराई को वैंगाफ से, रेखांकन को पिकासो से, रंग-सज्जा को मोने से तथा व्यापक प्रभाव में देराँ और राउले से तुलना की है। किसी के पीछे भागने की या दूसरे के कला-रूपों के अनुकरण की इनकी आदत नहीं है, पर नए तौर-तरीकों और अभिनव तत्वों को ग्रहण करने के वे

इतने जिज्ञासु रहे हैं कि स्वयं सारे प्रभाव अनजाने ही उनकी कला में समाहित हो गए हैं।

कुछ लोगों का कहना है कि इनके विषय बहुत ही साधारण और प्रायः एक ही ढंग के होते हैं। कुछ की यह भी शिकायत है कि इनकी कला का विकास न होकर क्रमशः ह्रास हो रहा है और वह ठप्प पड़ गई है। लेकिन इसके विपरीत कुछ का अभिमत है कि बीसवीं सदी की कला के नवोदय में जो इन्होंने योगदान दिया है वह नव्यतम कलारूपों के मूल्यांकन की दिशा में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। इस सबके बावजूद यदि इनकी कला का अत्यन्त सूक्ष्मता से अध्ययन किया जाए तो इनकी लाइनों की सफाई, रंग-बिरंगी विचित्र शोभा, रंगों की सामान्य चमक, निर्माण की सुष्ठु भावना, इस चपटी और ग्रामीण शैली में भी जीवन और गति ढाल देना एक अपनी विशेषता रखता है।

इनके चित्रों में विचित्र अनुभूतियाँ और हृदय की कोमल भावनाएँ खेल कर रही हैं। इनकी भावों की गहराई और कल्पना की अद्‌भुत क्षमता में पैठना कठिन है। जिसका अन्तर सरल है वह ही इनकी कला की सरलता को भाँप सकता है। अपने अन्तर की इसी सरलता को उँड़ेल कर एक बार इन्होंने किसी मित्र से कहा था—"तस्वीर का पैसा जब कोई मुझे देने लगता है तो मैं समझता हूँ कि यह मेरी सज़ा है, मेरी नसीब में कुछ गड़बड़ है।" अपनी इस वृद्धावस्था में भी वे निरंतर कार्य-व्यस्त रहते हैं और चित्रकला की बारीकियों एवं विविधताओं को अध्ययन करने की इच्छा रखते हैं। अभी हाल की बनी हुई उनकी चित्र-कृतियों में कला का उत्तरोत्तर विकास, प्रौढ़ता, सौन्दर्य-कौशल एवं परिपक्वता स्पष्ट परिलक्षित होती है। कौन जाने आगामी वर्षों में वे भारतीय पुरातन कला और आधुनिक पाश्चात्य कला का समन्वय करके एक ऐसी अद्‌भुत कला-शैली का आविष्कार करें जो विश्व के कलाकारों के लिए एक नया पथ-निर्देश कर सकने में समर्थ हो सके।

अमृत शेरगिल

चित्रकला चित्रकार के गूढ़ भावों की अभिव्यंजना है, उसके अन्तर्मन की सजीव झाँकी है। सच्चा कलाकार वह है जो न केवल एक रुकी हुई परम्परा का पुनरुद्धार करता है, प्रत्युत् उस उदात्त कला का दिग्दर्शन कराता है जो 'सत्यं शिवं सुन्दरम्' की समष्टि है, व्यष्टि नहीं, जो झिलमिल नीलाकाश के रजत प्रांगण में सौन्दर्य के समस्त प्रसाधन बिखेरती है, जो श्रेय, प्रेय व प्रेरणा की लहर

अनाज पीसते हुए

है और जिसमें मानव जीवन की बड़ी से बड़ी और लघु से लघु रंगीनियाँ क्रीड़ा

करती हैं। भारतीय नारी-कलाकारों में श्रीमती अमृत शेरगिल का नाम विशेष महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उन्होंने अल्पकाल में ही आधुनिक कलाकारों में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया था। कला-क्षेत्र में नारियों का सदैव से अभाव रहा है। एक पाश्चात्य विद्वान् ने तो यहाँ तक कहा है कि विश्व में जितने भी बड़े-बड़े चित्रकार या मूर्तिकार हुए हैं, वे सब पुरुष ही हैं। यह कथन आंशिक रूप से सत्य होते हुए भी श्रीमती अमृत शेरगिल के दृष्टान्त से इस बात की प्रत्यक्ष पुष्टि करता है कि यदि सुविधाएँ दी जाएँ तो नारी पुरुष से बहुत आगे बढ़ सकती है।

३० जनवरी, सन् १९१३ को बुडापेस्ट में बालिका अमृत ने जन्म लिया था। उनके पिता खास पंजाब के रहने वाले थे, किन्तु माता हंगेरियन थीं। बाल्यावस्था से चित्रकला की ओर उनकी विशेष अभिरुचि थी। "मुझे ऐसा लगता है मानो मैंने किसी एक घड़ी में चित्रांकन का श्रीगणेश न किया हो, बल्कि मैं सदा से ही चित्र आँकती रही हूँ, और यह विचित्र विश्वास भी मेरे हृदय में बद्धमूल रहा है कि मेरे जीवन का ध्येय केवल चित्रकार बनना ही था, और कुछ नहीं। मैंने सदैव—सभी बातों में—अपना मार्ग स्वयं खोजा है।" जब ये पाँच वर्ष की हुईं तो अपने बाग़ के पेड़-पौधों के चित्र कागज़ पर बनाया

नव बधू का शृंगार

करती और उनमें रंग भरा करती थीं। पहले तो किसी का भी ध्यान उनकी चित्रकारी पर नहीं गया, किन्तु शनैः शनैः उनकी माँ अपनी पुत्री की चित्रकारी से प्रभावित हुई और भारत आने पर उन्होंने अमृत के लिए एक अंग्रेज चित्रकार नियुक्त कर दिया। तीन वर्ष तक उस अंग्रेज शिक्षक के तत्त्वावधान में वे चित्रकला का अध्ययन करती रहीं और अपनी विलक्षण प्रतिभा, सच्ची लगन,

कठोर श्रम और दृढ़ इच्छा-शक्ति से बहुत कम आयु में ही कुशल चित्रकार बन गईं। अमृत की योग्यता और बुद्धिमत्ता पर वह अंग्रेज चित्रकार भी दंग रह गया और उसने शेरगिल दम्पति को बाहर विदेशों में अपनी पुत्री को चित्रकारी की उच्चकोटि की शिक्षा देने की सम्मति दी। सन् १९२४ में शेरगिल

तीन बहनें

परिवार इटली चला गया।

वहाँ जाकर अमृत आर्ट-स्कूल में दाखिल हो गई, किन्तु उन्हें पूर्ण संतुष्टि नहीं हुई। भारत लौटने पर उन्होंने घर पर अभ्यास करना प्रारम्भ किया और सामने किसी को बैठाकर अथवा तैल.रंगों में चित्र बनाने लगीं। १५ वर्ष की अवस्था में ही वह इतनी सुन्दर चित्रकारी करने लगीं कि जो कोई भी उनके बनाए चित्रों को देखता सहसा विश्वास न करता। अन्त में अपने माता-पिता के साथ वे पेरिस गईं और विश्वविश्रुत कलाकार पीरे बेनाँ की शिष्या हो गई।

प्रोफेसर ल्यूरियन साइमन भी इनकी कृतियों की ओर आकर्षित हुए और उन्होंने 'इकोल डि बो आर्टस्' नामक अपनी चित्रशाला में इन्हें भरती कर लिया। तब के अनुभव लेखनीबद्ध करती हुई वे लिखती हैं—"मेरी उन दिनों की कृतियाँ धारणा और निर्माण में पूर्णतः पाश्चात्य थीं, यद्यपि वे कभी भी पूर्णतः रूढ़िवादी और पृष्ठपोषक नहीं रहीं। तब तक मैं यह नहीं सीख सकी थी कि पूर्णत्व का सार सादगी है। जब हम आयु के आरम्भिक वर्षों में होते हैं तो हमारा उत्साह कुछ ऐसा बढ़ा-चढ़ा और विवेचक दृष्टि से रहित होता है कि हम उन अनावश्यक विवरणों के लिए जो हमारी आंखों को अच्छे लगें कलात्मक सम्पूर्णता की ओर से आँख मूँद लेते हैं। उस विवेक-बुद्धि से हम काम नहीं ले पाते जो सच्ची कला के सृजन के लिए अत्यन्त आवश्यक है।" पाँच वर्ष तक निरन्तर पेरिस में रहकर इन्होंने चित्रकला का परिमार्जित ज्ञान प्राप्त किया और शनैः शनैः पाश्चात्य पद्धति पर तैल रंगों में, बड़े-बड़े कैन्वसों पर, चित्र बनाने की अभ्यस्त हो गई। इनके चित्र विशिष्ट कला-प्रदर्शनियों द्वारा प्रदर्शित किए जाने लगे और पत्रों में भी छापे गये। तत्पश्चात् वे 'ग्रेंड संलों' की सदस्या बना ली गई जो कि एक भारतीय युवती के लिए बहुत ही सम्मान और गौरव का पद था।

भारत आने पर उन्होंने भारतीय चित्रकला का गहरा अध्ययन किया और उसकी विशेषताओं और बारीकियों को समझा। एक ओर पेरिस का विलास-मय वातावरण, दूसरी ओर भारत की दयनीय दशा, एक ओर वैभव की चमक दमक, दूसरी ओर मूक वेदना का करुण चीत्कार। अमृत दुविधा में पड़ गई, किसे छोड़े, किसे अपनाये। अन्त में उन्होंने अनुभव किया कि वे एक ऐसी स्थिति में पहुँच गई हैं कि जहाँ वे स्वतन्त्र हैं, उन्हें कोई बन्धन नहीं, वे अपनी इच्छानुसार अपनी कला का मुख मोड़ सकती हैं। उन्नीसवीं शताब्दी के प्रारम्भिक चरण में भारतीय चित्रकला पर इण्डो-ग्रीक और बौद्ध कला का विशेष प्रभाव था। शनैः शनैः गुप्तकालीन कला पर भी लोगों का ध्यान आकृष्ट हुआ और भारतीय कलाकारों ने गुप्तकालीन चित्रकला की सूक्ष्मांकन प्रणाली को अपनाया। ब्रिटिश साम्राज्य की स्थापना के पश्चात् तो रही-सही भारतीय कला भी नष्ट हो गई। किन्तु अकस्मात् बंगाल में कला की पुनर्जागृति हुई और अवीन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल वसु, वेंकटप्पा और यामिनी राय जैसे कला विदों का प्राकट्य हुआ। उनकी चित्रकला में बाहरी चमक-दमक और आकर्षक रंगों का तो बहुलता से प्रयोग किया गया, किन्तु मौलिक कला-तत्त्वों का

प्रस्फुरण न हो सका। अमृत शेरगिल की कला ने इस क्षेत्र में एक नवीन प्रतिक्रिया पैदा की और आधुनिक भारतीय कला को विकसित और संवर्द्धित करने के लिए एक नया कदम उठाया। उन्होंने अन्य कलाकारों की भाँति अजंता और राजपूत कला का अंधानुकरण न करके अपनी कला में पाश्चात्य और पूर्वीय कला के आवश्यक तत्त्वों को लेकर उनका सफल समन्वय किया। उनकी प्रारम्भिक भारतीय पद्धति की चित्रकृतियों में तो राजपूत कला का कुछ प्रभाव झलकना है, किन्तु बाद में तो उन्होंने कला-क्षेत्र में आश्चर्यजनक प्रगति की और दो सर्वथा स्वतंत्र एवं भिन्न देशों के प्रमुख कला-तत्त्वों को लेकर एक मौलिक रूप दिया और सर्वथा नवीन शैली का प्रवर्त्तन किया। "एक विचित्र, अवर्ण्य ढंग से यह भावना मुझ में जगी कि चित्रकार के रूप में मेरा यथार्थ कार्यक्षेत्र भारत ही है।...मेरे प्रोफेसर प्रायः कहा करते थे कि रंगों के वैभव को देखते हुए पश्चिम की चित्रशालाओं में मैं अपनी प्रकृत प्रतिभा का विकास नहीं कर पा रही हूँ और यह कि पूर्व के रंगों और प्रकाश में ही मेरे कलात्मक व्यक्तित्व के उपयुक्त यथार्थ वातावरण मिलेगा। उनका सोचना सही था, लेकिन पूर्व से मैंने जो प्रभाव ग्रहण करने की आशा की थी, उससे यह इतना भिन्न था और इतना गम्भीर कि आज तक उसकी छाप मेरे मन पर है।"

अमृत शेरगिल ने अपने चित्रों में पहाड़ी दृश्यों का बहुत सुन्दर चित्रण किया है। साधारण जीवन-दशा, आशा-निराशा, सुख-दुःख के आकुल-विह्वल भावों को उन्होंने अपने आकर्षक रंगों और रेखाओं द्वारा अत्यन्त खूबी से व्यक्त किया है। 'नव-युवतियाँ', 'कहानी-वक्ता' 'नारी' आदि चित्रों में भारतीय और पाश्चात्य संस्कृति के सफल समन्वय की अद्वितीय झाँकी मिलती है। अमृत शेरगिल ने पाश्चात्य कला-तत्त्वों का अन्वेषण कर, साथ ही भारतीय चित्रकला पर दृष्टिपात कर अपनी तन्मयता में एक नवीन प्रेरणा पाई। उन्होंने कला के मर्मस्थल में पैठकर जीवन के निगूढ़ सत्य के सम्मिश्रण का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप प्रस्तुत किया और इस प्रकार उनके चित्रों में अन्तर का चिंतन साकार हो उठा। "मैं व्यक्तिवादिनी हूँ और अपनी नई टेकनीक का विकास कर रही हूँ जो रूढ़िवादी दृष्टि से देखने पर अनिवार्यतः भारतीय शैली तो नहीं है, लेकिन उसकी आत्मा बुनियादी तौर पर भारतीय है। रूप और रंगों की अनन्त लाक्षणिकता द्वारा मैं भारत को, विशेषतः भारत के गरीब मानव को, इस स्तर पर चित्रित करने में संलग्न हूँ जो केवल भावुकतापूर्ण रुचि से कहीं ऊँचा स्तर है।" यों उनके अन्तस्तल का बोझिल भार कला का आलोक बनकर छा गया।

इसके अतिरिक्त उनकी कला में ऐसी निर्भीकता, शक्ति-सामर्थ्य और यथार्थता थी कि वे अपनी तूलिका के सूक्ष्म रेखांकनों एवं पूर्व और पश्चिम के मिश्रित अलौकिक कला-समन्वय से दर्शकों को मुग्ध कर लेती थी। 'तीन बहिनें, 'पनिहारिन' 'बधू-शृंगार' आदि उनके चित्रों में जीवन का निगूढ़ सौन्दर्य सन्निहित है। उनका 'प्रोफेशनल मॉडेल' एक अमर चित्र है, जिसमें मार्मिक भावों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। अमृत शेरगिल की कला पर गॉगिन और अजंता की चित्रकला का विशेष प्रभाव है।

बूढ़ा-कहानी वक्ता

कलात्मक सजगता के साथ-साथ वे एक संवेदनशील नारी और आदर्श पत्नी भी थीं। सन् १९३२ में उनका विवाह विक्टर एगन से सम्पन्न हुआ। उनका दाम्पत्य जीवन बहुत ही सुख और आनन्द से बीता। वे अत्यन्त स्नेहशील, मिलनसार और मधुर स्वभाव वाली थीं। जो कोई भी उनसे एक बार मिल लेता वह उनसे प्रभावित हुए बिना नहीं रह सकता था। उन्हें निर्धन, निर्दम्भ, निःस्पृह लोगों से बातचीत करने में बहुत सुख होता था। यदि कोई साधारण गरीब व्यक्ति, जिसे चित्रकारी का कुछ भी ज्ञान नहीं होता था उनके चित्रों को पसन्द करता और उनकी प्रशंसा करता था, तो वे फूली न समाती थीं। उन्हें ऐसे व्यक्तियों से सख्त नफ़रत थी, जो कला की पूर्ण जानकारी का दावा तो करते थे, किन्तु कला परखना और समझना नहीं जानते थे। ऐसे ही एक अवसर पर उन्होंने शिमला कला-प्रदर्शनी से पुरस्कार लेना अस्वीकार कर दिया था, क्योंकि प्रदर्शनी ने अमृत शेरगिल के उन चित्रों को वापिस कर दिया था जो उनकी दृष्टि में उच्चकोटि के कलात्मक चित्र थे और जिन पर पेरिस कला-प्रदर्शनी से स्वर्ण पदक मिल चुके थे। उन्होंने ऐसी संस्था से पारितोषिक लेने में अपनी हेठी समझी, जिसे चित्र परखने तक की योग्यता नहीं थी।

५ दिसम्बर, १९४१ में लाहौर में अमृत शेरगिल का देहावसान हुआ। अपनी २९ वर्ष की अल्पायु में ही उन्होंने इतनी ख्याति प्राप्त कर ली थी कि वे विश्व-प्रख्यात कलाकार मानी जाने लगी थीं। निःसन्देह, यदि वे कुछ वर्ष और जीवित रहतीं तो कला-क्षेत्र में एक असाधारण क्रान्ति मचा देतीं और भारतीय कलाकारों के लिए एक नई कला-साधना का मार्ग प्रशस्त कर जातीं। किन्तु विधि की विडम्बना ! वे एक ऐसी अविकसित कली थीं जो अपनी सुगन्ध बिखेर कर असमय ही आँखों से ओझल हो गई।

शान्तिनिकेतन के कलाकार

बम्बई को छोड़ कर बंगाल स्कूल की विशिष्ट कला-प्रवृत्तियों का व्यापक रूप से प्रभाव पड़ा था। उक्त कला-आंदोलन ने गहरी कला-चेतना जगाकर और अपनी विचार-पद्धति को रूपान्तरित कर कला के रूपतंत्र में सम्पूर्ण रूप से क्रान्ति ला दी थी, पर उसका ऐतिहासिक उद्देश्य समाप्त होते ही कालान्तर में उसके बहुमुखी विकास में गतिरोध उत्पन्न हो गया।

यद्यपि बंगाल स्कूल से ही प्रेरित है—शांतिनिकेतन शैली, तथापि दोनों में पर्याप्त अन्तर है। सन् १८९७ में बंगाल स्कूल की स्थापना उस समय हुई थी जब कि अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के तत्त्वावधान में नन्दलाल वसु और उनका सम-सामयिक सहयोगी दल प्राच्य और पाश्चात्य प्रणालियों में समन्वय स्थापित करने में जुटा था। यूरोपीय, जापानी और मुग़ल कला के समन्वित प्रभाव ने आलं-कारिकता और चटक रंगों को प्रश्रय तो दिया, परन्तु इन सब प्रभावों को पचाने के लिए उनमें सूक्ष्म अंकन-विधान, ड्राइंग की परिक्वता और सृजन-दक्षता न थी, फलतः परवर्त्ती पीढ़ी के कलाकारों में वाश पद्धति, वातावरण का आभास (स्पेस) और दृश्य-चित्रण एक निष्प्राण रूढ़ि बनकर रह गई जिसके बाद में आकृष्ट करने वाले तत्त्व क्रमशः क्षीण होते गए। कुछ अर्से तक ऐसा लगा जैसे कला के सहज विकास में गत्यवरोध उत्पन्न हो गया हो। इस बहु-मुखी विकासमान और भिन्न चित्रण परम्परा की ओर उन्मुख करने में कुछ नव्यता का पुट आवश्यक था। फलतः गुरुदेव की साधना-भूमि शांतिनिकेतन स्थित कलाभवन की क्रोड़ में तात्कालिक सृजन-प्रक्रिया को अनुकूल भूमि एवं दिशा प्राप्त हुई। प्रकृति का निकट साहचर्य, उन्मुक्त वातावरण और उसकी हरी भरी क्रीड़ास्थली में कला के महोत्थान का बिम्ब अधिक प्रखर एवं सुस्पष्ट होकर उभरा। आचार्य नन्दलाल बसु के सहयोग और प्रयत्नों ने कला-क्षितिज को अधिक विस्तृत बनाया। यद्यपि उन्होंने समय की माँग और अनुकूलता की दृष्टि से बंगाल की प्रवृत्तियों को अंगीकार किया था, फिर भी नवीन संघर्ष के प्रतिनिधित्व के साथ-साथ परम्परागत आदि-मध्य और वर्त्तमान की रीति-नीति का निर्वाह करते हुए उनकी प्रखर रूप-चेतना जीवन के विविधमुखी अनुभवों

को समोये बड़ी स्फूर्ति और सचेष्टता के साथ एक निर्णयात्मक गन्तव्य का संधान करती रही। चित्रकला और मूर्त्तिशिल्प के अलावा बातिक, वुडकट, ईचिंग, ग्राफिक, शिल्पकला के नये-नये डिज़ाइन, हस्तकला, मांगलिक सज्जा (अल्पना) और लोककला की कितनी ही शैलियों की खोज की गई। एक निपुण शिल्पी की भाँति नन्द बाबू ने अपनी सहज संवेदनशील संग्राहक बुद्धि से कला के क्षेत्र को अधिक व्यापक और विस्तीर्ण बनाने का प्रयास किया जिसका अनिवार्य परिणाम यह हुआ कि उनकी उत्तराधिकारी कलाकार-परम्परा में ऐसे प्रबुद्ध व्यक्ति सम्पर्क में आए जो उत्तरोत्तर प्रगति के मार्ग पर आरूढ़ हैं और कला के रूप-तंत्र में नित-नये प्रयोग कर रहे हैं।

धीरेन्द्रकुमार देव वर्मन

कला-क्षितिज पर अकस्मात् एक नया सितारा चमका और वह थे धीरेन्द्र कुमार देव वर्मन । उन्होंने कला की उभरती हुई शक्तियों को पहचाना और आचार्य वसु के शैली-शिल्प और भाव-सम्पदा को अपनी कला में आत्मसात् किया । असित कुमार हाल्दार से भी उन्हें अपने कलारूपों को सुस्थिर करने की प्रेरणा मिली थी। बड़े ही संयत, सुकोमल और संयोजक रंगों में क्रमशः उनके चित्र उभरे । कल्पना की विचित्र संस्थिति का रूपांकन भी बड़े ही मार्मिक ढंग से हुआ । 'बुद्ध और सुजाता' में निर्माण-संतुलन और सीधी-सादी आस्था व्यक्त होती है, पर 'राधा' में भावपूर्ण सूक्ष्म व्यजना और रूप-रंग का अधिक आकर्षण और चारु वातावरण प्रस्तुत किया गया है । उनके नैसर्गिक भावावेग ने एक विशेष प्रकार की रंगीनी एवं शृंगारिकता जगाई, यद्यपि जापानी कला टेकनीक की सुहानी छाप भी इनकी चित्रकृतियों में दीख पड़ती है। सर विलियम रोथेंस्टाइन के तत्त्वावधान में एल्डविच, लंदन में इंडिया हाउस के एक कक्ष में भित्ति-चित्र सज्जा का कार्य इन्होंने सम्पन्न किया। कलकत्ता यूनिवर्सिटी की लाइब्रेरी महायती सदन और गांधी स्मारक संग्रहालय मदुराई में इन्होंने भित्ति-चित्र निर्मित किये। रवीन्द्र नाथ ठाकुर के साथ इन्होंने यूरोप और सुदूर पूर्वी देशों—जैसे जावा, बाली द्वीप का बड़े पैमाने पर भ्रमण किया । सन् १६५४ में टोकियो की आर्ट एंड क्राफ्ट्स में सामान्य शिक्षण प्रणाली पर हुए सेमिनार में भारतीय प्रतिनिधि के रूप में भेजे गए । १९५५ में चीन सरकार द्वारा इन्हें आमंत्रित किया गया। तुनहांग में इन्होंने सहस्र बौद्ध गुफाओं के भित्तिचित्रों की अनुकृतियाँ प्रस्तुत की। कलकत्ता, बम्बई और भारत के अनेक प्रमुख नगरों में इनके चित्रों की प्रदर्शिनियाँ आयोजित हुईं, साथ ही इन्होंने अनेक भारतव्यापी और अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शिनियों में सहयोग दिया। इनकी रंग नियोजन पद्धति बड़ी ही संयत और गम्भीरता लिये है। किन्तु शनैः शनैः इनकी रूप-साधना निराधार सन्धान की शून्यता में बिखर सी गई। 'कला में देवालय' जैसी चित्रकृति बड़ी ही नीरस, तत्त्वहीन और ज्यामितिक पद्धति पर निर्मित हुई। उसमें सम्रकोण, चतुष्कोण आकार के द्वार से पुजारिन औरतों

को निकलता दर्शाया गया है जिसमें वातावरण एकदम प्राणहीन सा लगता है। इनकी रचनात्मक क्रियाशीलता ज्यों-ज्यों शिथिल पड़ती गई, आच्छादित प्रच्छन्न प्रकृति में संयुक्त हो इनकी कला के विकास में भी गत्यवरोध उत्पन्न होता गया।

मनीन्द्रभूषण गुप्ता

प्रारम्भ में बंगाल स्कूल की कला-प्रवृत्तियों से मनीन्द्र भूषण गुप्ता की कला आक्रान्त रही, पर बाद में उक्त आंदोलन के आस्थावादी दृष्टिकोण की रूढ़िवादिता, सीमित और संकीर्ण विचारधारा तथा श्रमसाध्य, रूढ़ एवं एकांगी भावात्मकता से वे ऊब उठे। युग की प्रगति, वस्तून्मुखी परिस्थितियाँ और नये-पुराने आदर्शों के द्वन्द्व ने उनमें कार्य करने की नई प्रेरणा जगाई। शनैः-शनैः वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे कि सच्चे अर्थों में प्रभावशाली भावसृष्टिजी वन की वास्तविक गतिविधि के निरीक्षण पर निर्भर है, अतएव अपने आगामी चित्रों में घिसे-पिटे परम्परागत कलारूपों के स्थान पर नवीन परिस्थिति, जन्य सामयिक प्रश्नों के प्रस्थापन में वे प्रयत्नशील रहे। बंगाली अंतर्भाग का चित्रण कर उन्होंने सामान्य जन-जीवन का निरूपण और उद्घोष किया, मानो घर के खुले दरवाजे से स्वच्छन्द वायु प्रवहमान हो रही हो। 'बदरीनाथ' में कलाकार की स्वप्नाच्छन्न दृष्टि धूमिल सी हो उठी है, विशाल हिमालय पर्वत श्वेत झाग के बुल्ले सा लटका है। 'केदारनाथ के यात्री' में रचना-कौशल अधिक सफल बन पड़ा है, पर 'वनवासी यक्ष' इसकी पुनरावृत्ति सा लगता है और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने भी 'बनवासी यक्ष' विषयक चित्र का निर्माण किया था, अतः उसकी तुलना में यह कृति निरी निष्प्राण सी जँचती है। 'ऋषिकन्या' में कोमल व्यंजना और शिथिल भावात्मकता है, ऐसा प्रतीत होता है मानो बंगाली कलादर्शों का प्रभाव उतार पर आ गया है।

शकुन्तला

'जयदेव मेला' में दृश्य-चित्रण बड़ा ही खुशनुमा नजर आता है । वृक्षों की हरीतिमा और यात्री-समूह सब पर पहाड़ी चित्र-शैली की छाप दृष्टिगत होती है, लेकिन वैमा नैसर्गिक सौन्दर्य और भाव- गत साम्य नहीं दीख पड़ता। इनकी कला के सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण तत्त्व बंगाल कला आन्दोलन की ही उपज है, तथापि सामयिक वात्याचक्र से टकराती इन-की कला-चेतना विकसित होती गई । ये कोलम्बो तक अपनी टेकनीक और कला-प्रवृत्तियों को ले गए जहाँ भारत की कला-परम्पराओं की प्रतिष्ठापना में ये संलग्न रहे । साम्प्रदायिक दंगों से इन्हें ठेस पहुँची और इन्होंने प्रतीक पद्धति पर 'घृणा की विजय' और 'शांति के अधिनायक' चित्रों की सर्जना की, पर नई शैली और स्थूल आग्रह ने इनकी कला के सौन्दर्य का हनन किया । वाह्य वैषम्य ने आंतरिक संतुलन भंग कर दिया जिसके परिणाम स्वरूप इनकी परि-कल्पना कहीं-कहीं भौंडी और अस्वाभाविक सी हो गई है ।

रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती

कवि और नृत्य

यह सम्पूर्ण सृष्टि, यह समस्त दृश्य-जगत्, उन कलाकारों को, जो कि चित्रण पद्धति में विभिन्न साधनों का प्रयोग करके रेखाओं और लकीरों की सहायता से अपनी कल्पना एवं अन्तरंग भावनाओं को साकार करते हैं, सर्वथा उन्हें अपनी पृथक् दृष्टिभंगी से एक रेखामय जीती-जागती तस्वीर-सा ज्ञात होता है। उन्हें संसार की प्रत्येक वस्तु में वास्तविकता की प्रतीति होती है, उसके रहस्यमय अन्तर में उस शाश्वत सत्य का आभास होता है, जो कि दृष्टि-शक्ति की सजगता एवं कर्मशक्ति की सहायता से प्रकृति की रंजित शोभा और उसकी कलामय मधुर रंगीनियों में खो-सा जाता है। उनकी कल्पना कभी थकना नहीं जानती, उनकी अभिव्यंजना का आवेग कभी कम नहीं होता, उनकी कलात्मक सृजन-शक्ति कभी परिश्रांत होकर विश्राम नहीं करती। जो निरन्तर बिना थके, अविचल भाव से, विस्मय भरे विमुग्ध नेत्रों से इस सृष्टि की आश्चर्यजनक वस्तुओं को निहारा करते हैं और जिनकी उत्सुकता कभी नष्ट नहीं होती, जो जगत् के मर्म में पैठना चाहते हैं, जो अखिल विश्व ब्रह्माण्ड की प्रत्येक कौतुक क्रीड़ा में ओतप्रोत हो जाना चाहते हैं, वे ही वस्तुतः चिरन्तन कला की सूक्ष्मताओं को रेखाओं द्वारा पकड़ पाने में सक्षम हैं। रेखा-चित्रकारी में वृक्ष, पाषाण, मानव-आकृति अथवा किसी गाँव या नगर की गली बहुत अस्पष्ट और धुंधली हो जाती है तथा वुड-कट अर्थात् लकड़ी पर की गई चित्रकारी या खुदाई में तो वह और भी छायामय हो जाती है, किन्तु सूक्ष्मद्रष्टा कलाकार, जो कि रेखा-चित्रकारी में पूर्ण पारंगत है, अलंकरणमयी स्फुट रेखाओं से सजीवता लाने का प्रयास ही नहीं करता, प्रत्युत् एक सीधी गहरी रेखा से चित्र और आकृति का

आश्रम का कुआँ

निर्माण भी सम्पन्न कर देता है। यह प्रमुख रेखा एक बार अच्छी प्रकार उभर आने पर चित्रित विषय को सजीव और वास्तविक बना देती है। सुप्रसिद्ध बंगाली रेखा-चित्रकार श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती इस प्रकार की रेखा-चित्रकारी में अपना एक विशिष्ट स्थान रखते हैं। उन्होंने रेखाओं की मोड़-तोड़, लकीरों की विविधता, बनावट तथा लकड़ी में गहराई से चित्रण करने की पद्धति को निजी ढंग से विकसित किया था। एक सीधी-गहरी रेखा द्वारा चित्र बनाने की कला में भी वे पूर्ण दक्ष थे। अतएव सीधी अथवा आयताकार रेखा से ही बहुत शीघ्र सरलतापूर्वक बत्तख, कबूतर, वृक्ष आदि चित्र बना डालते थे।

संथाल नृत्य

प्रारम्भ से ही कला-शिक्षण इनका महत्त्व-पूर्ण ढंग का रहा। स्वयं कलागुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने प्रारम्भ में इन्हें कला की दिशा में अग्रसर किया था। कलकत्ते में दो वर्ष तक शिक्षण प्राप्त कर ये बाद में शांति-निकेतन की उस अन्तर्राष्ट्रीय शिक्षण संस्था में आ गए जिसे कुछ वर्ष पूर्व विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने अपने हाथों जन्म दिया था। वहाँ नन्दलाल वसु के चरणों में बैठकर ये कला की साधना में प्रवृत्त हुए। नन्द बाबू ने कला-टेकनीक और रेखांकन के उन गोपनीय रहस्यों से इन्हें अवगत कराया जो अनेक सम्मिश्रित कला-शैलियों को वहन करने में इन्हें समर्थ कर सका। चक्रवर्ती की कला पर प्राचीन भारतीय, फारसी और चीनी चित्रण पद्धति की गहरी छाप पड़ी। 'शिव-विवाह,' भगवान तथागत की जीवन-घटनाओं को लेकर आँके गए चित्र तथा और कितने ही पौराणिक एवं धार्मिक विषयों के चित्रण में यही पद्धति अपनाई गई। इनकी कला यहीं तक सीमित नहीं रही, इन्होंने 'टेम्परा' में अजन्ता की रेखांकन-शैली पर रोज़मर्रा के दृश्यों का चित्रण किया। चूँकि नये-नये विषयों के लिए नये-नये तौर-तरीके ईजाद करने थे, इन्होंने रंग-मिश्रण की अपनी विशिष्ट प्रणाली और अति

अंडे सेती मुर्गी

प्रचलित एवं रूढ़ कला-सिद्धान्तों को एक दूसरे ही रूप में अख्तियार किया। छः वर्ष तक शांतिनिकेतन में रह कर इनकी सृजन-बुद्धि का इतना व्यापक प्रसार हुआ कि ये कला में विरोधाभासों और असंगतियों का भी समुचित सामंजस्य दर्शा सके।

इन्होंने समयानुसार भारत और लंका का भ्रमण करके अजन्ता, सिगिरिया और भारत की प्राचीन कला-परम्पराओं को हृदयंगम किया। हिमालय पर्वत, बदरीनाथ के हिमाच्छादित शृंग और केदारनाथ की पैदल यात्रा करके इन्होंने वुडकट पर चित्रावली तैयार की जो 'हिमालय की पुकार' के नाम से प्रख्यात है। नन्दलाल वसु के प्रोत्साहन से ग्राफिक कलाओं की ओर भी इनका झुकाव हो गया। सुचित्रित वुडकट पद्धति पर इनके चित्रों की एक पुस्तक प्रकाशित हुई है जिसमें स्वयं रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने भूमिका लिखी है।

घर का आँगन

धातुओं पर 'इचिंग' का अभ्यास करने पर इस शिल्प के पाश्चात्य कलाचार्यों के विशिष्ट तरीकों को सीखने की इनमें आकांक्षा जगी। सन् १९३७ में इन्होंने यूरोप के लिए प्रस्थान किया। लन्दन के 'सेण्ट्रल स्कूल ऑफ आर्ट्‌स एण्ड क्राफ्ट्स' में डब्ल्यू० पो० राबिन्स के तत्त्वावधान में 'इचिंग,' 'एक्वेटिंट' और प्रिंटिंग की टेकनीक का इन्होंने विशेष अध्ययन किया। इरिक गिल और सर मूरहेड बोन ने लकड़ी की खुदाई और ड्राइ-प्वाइंट की कला में इन्हें दक्ष कर दिया। शुरू में जब ये भारतीय कला-पद्धतियों को हृदयंगम करने में लगे थे, तब लाइफ-ड्राइंग और लैण्डस्केप-पेंटिंग का दायरा बड़ा ही सीमित था। यूरोप में रह कर मानव-जीवन और प्रकृति का व्यापक रूप से अध्ययन करने का इन्हें सुअवसर मिला और इन्होंने कितने ही सुन्दर तैल-चित्रों का निर्माण किया। पेरिस जाकर एन्द्रे ल्होत, किसलिंग एन्द्रे कार्पलीज़ और अन्यान्य कलाकारों से इन्होंने मैत्री स्थापित को और उनके साथ मिलकर कार्य किया। दक्षिणी

बत्तखों की विभिन्न मुद्राएँ

फ्रांस में इन्होंने गर्मियाँ बिताईं और हालैण्ड, स्विट्ज़रलैण्ड, इटली आदि देशों में भ्रमण किया, तत्पश्चात् लन्दन और पेरिस में अपने चित्रों की प्रदर्शनी की।

चक्रवर्ती में रेखा-अनुभूति स्वतः स्फुरित थी, यही कारण है कि उनकी रेखा-चित्रकृतियों में इतनी गति एवं सजीवता है। साधारण आड़ी-तिरछी रेखाएँ कलात्मक-सृजन करने में समर्थ हो सकी है। मामूली लकीरों द्वारा हृदय का आवेग और संचित स्वप्न साकार हो उठे हैं। लकड़ी एवं काष्ठ की पट्टी पर रेखाएँ आविर्भूत होकर एक नई दुनिया का निर्माण करती हैं, चिरसंचित कलाकार के भावों को एक नये रूप में प्रदर्शित करती हैं, छिपा हुआ खज़ाना नज़रों के समक्ष खोल देती हैं, नवीन दृष्टिकोण और नवीन अभिरुचि जाग्रत करती हैं तथा जगत् की वस्तुओं को नये सिरे से गढ़ने और नवीन से नवीनतर का आविष्कार करने में सहायक होती हैं।

टोकरी पर बैठे कबूतरों की जोड़ी

श्री चक्रवर्ती के कई वुड-कट चित्र अत्यन्त उच्च कोटि के बन पड़े हैं। उनकी रेखा-शैली इतनी मँजी हुई और स्पष्ट चित्रण की क्षमता रखती है कि कलाकार की विलक्षण प्रतिभा की दाद देनी पड़ती है। उनकी रेखाएँ अत्यन्त कोमलता, स्पष्टता और गहराई से उभार कर दर्शायी गई, कोई भी लकीर एवं लाइन व्यर्थ नहीं होती, रेखाएँ खींचने में उनके हाथ इतने सधे हुए थे कि वे प्रत्येक विषय के मर्मस्थल में घुस कर उसका तत्त्व निचोड़ लाते थे। चाहे हिमालय का सुन्दर, आकर्षक चित्रण हो अथवा गोधूलि-बेला में पशुओं के लौटने का आकर्षक दृश्य, चाहे निर्झर का संगीतमय स्वर हो अथवा बहती हुई इठलाती, मचलती नदी का मनोरम दृश्य—श्री चक्रवर्ती ने अपने रेखा-नैपुण्य से चित्रों में जान-सी डाल दी है। बर्दवान की पोखर के वृक्षों की छाया से आच्छादित जल का दृश्य, आम्र वृक्षों का सुन्दर चित्रण, अर्जुन और चित्रांगदा का प्रेमाभिनय, मदन का चित्रांगदा को वरदान, कलकत्ता की बरसाती रात,

पनघट

ग्रामीण घर, स्नान के पश्चात् लौटती हुई संथाल नारी, कलकत्ते की गली, आश्रम का कुआँ, लखनऊ की बस्ती और संथाल नृत्य आदि चित्र रेखाओं और लकीरों की सहायता से ही मर्म को स्पर्श करते हुए से प्रतीत होते हैं। गली में दुकानों की श्रेणीबद्ध कतार, बाली पुल का आयताकार घुमाव ऐसी स्वाभाविक स्पष्टता से चित्रित किया गया है जैसा कि झोंपड़ी के समक्ष खड़ी हुई बैलगाड़ी का सजीव चित्रण है। एक अन्य चित्र में प्रकाश-स्तम्भ के समीप गली का मुख्य द्वार प्रकाशित पथों की ओर निर्देश कर रहा है और द्वार के पास ही एक आधुनिक ढंग का नया मकान है, जो कि बहुत ही परिश्रम पूर्वक सूक्ष्मता से चित्रित किया गया है। बंगाल के ग्राम्य दृश्यों को इन्होंने बड़ी ही प्रेरणामय भव्य झाँकी प्रस्तुत की है। इनके बहुत से वुड-कट चित्र रंगमय हैं और 'श्यामली' के सुप्रसिद्ध चित्र की भाँति अत्यन्त आकर्षक और हृदयस्पर्शी हैं।
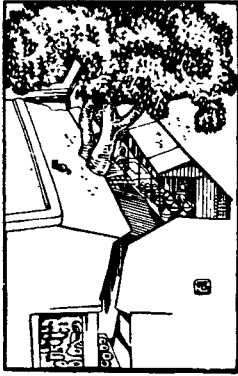
पुराने लखनऊ की गली

वुडकट कला-शैली में अत्यन्त सूक्ष्मता एवं संतुलन अपेक्षित है। रेखाओं का निर्वाह हर व्यक्ति के बल-बूते का काम नहीं। एक कला-समीक्षक के मत से—

"रंगीन कठ-खुदाई का काम सरल और नौसिखिए का नहीं है, क्योंकि उसमें न केवल रेखा पर बहुत अधिकार आवश्यक होता है, परन्तु उसमें एक समूचे प्रभाव को समन्वित रूप में प्रस्तुत करने की शक्ति आवश्यक होती है। विशेषत: यह कला इस लिए और भी कठिन है कि इसमें रंगों की सीमाएँ स्पष्ट हैं, जिनके बाद भी एक आकर्षक कलात्मक पूर्णता अपेक्षित है।"

काष्ठशिल्प में चक्रवर्ती की कलात्मक बुद्धि बहुत ही प्रखर एवं सजग रूप में व्यंजित हुई है। इन्होंने विदेशों और भारत के विभिन्न हिस्सों में भ्रमण करके जो अपने ज्ञान की अभिवृद्धि की थी उससे कला-सम्बन्धी इनकी जानकारी बड़ी ही व्यापक और बहुमुखी होकर प्रकट हुई। इन्होंने

एक ग्रामीण घर

कला की विभिन्न प्रणालियों का अध्ययन कर रेखा-चित्रकारी, वुडकट, लकड़ी पर इस प्रकार की खुदाई और चित्रण की कला में विशेष दक्षता प्राप्त की। सर मूरहेड बोन, जो कि आधुनिक युग के सम्भवतः सबसे बड़े रेखा-चित्रकार और इनके गुरु रहे हैं, अपने पत्र में श्री चक्रवर्ती को लिखते हैं, "यह कलात्मक सृजन शक्ति, जो तुम में और मुझ में समान रूप से अन्तर्निहित है, बहुत ही अपूर्व एवं विलक्षण वस्तु ज्ञात होती है। कला में एक विचित्र रागात्मक शक्ति है, जिसके कारण यह अन्तर्राष्ट्रीय जगत् में गौरव प्राप्त करती है और समस्त विश्व के सम्मान एवं समादर की वस्तु है। काष्ठ कला देश, भाषा और जाति के भेदभाव से रहित है, वरन् वह भिन्न देश एवं जातियों के पारस्परिक गूढ़ भावों को समझने की मूक भाषा है।"
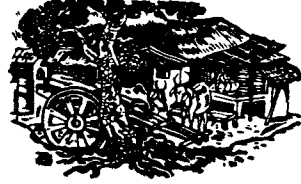
खपरैल के नीचे

उनके मत में सच्ची रेखा-चित्रकारी समूचे विश्व को एकता के सूत्र में जोड़ती है। वह ऐक्य और पारस्परिक स्नेह भावना की संदेश-वाहिका है। केवल कुछ रेखाओं का आकर्षक नर्तन सच्चे सृष्टा कलाकार की प्रतिभा का प्रदीप विश्वव्यापी अन्धकार को भेद कर अपनी प्रभा का विस्तार कोने-कोने में पहुँचा देता है और संसार उससे आनन्द और सुख का वरदान पाकर तादात्म्य का अनुभव करता है।

कलकत्ता की एक घनी बस्ती

रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती ने यथार्थ रूपान्तरण की क्षमता और ठोस रेखा-सामंजस्य के वर्त्तमान भारतीय कलातत्त्वों में प्राचीन-नवीन की एक गहरी दरार को पाट दिया है। विभिन्न प्रणालियों और असंलग्न प्रभावों को आत्मसात् करके भी इनकी कला में कहीं विसंगति दृष्टिगोचर नहीं होती। पाश्चात्य और प्राच्य के नये-पुराने, एशियाई और यूरोपीय कला-तत्त्वों का गठन करके वे जीवन-पर्यन्त उस सौंदर्य के सन्धान में लगे रहे जो भीतर से उभर कर व्यापक मानवीय संवेदना को उद्बुद्ध कर सकने की क्षमता रखता है।

विनोद बिहारी मुखर्जी

नेपाली दृश्यांकन

"कलाकार और कवि समाज के प्रति गम्भीर दायित्व रखते हैं। यही कारण है कि प्रत्येक युग में कलाकार समाज का एक सदस्य माना जाता रहा है और समाज का उसे आश्रय भी प्राप्त रहा है। उसके दायित्त्व की सरल व्याख्या यह है कि शब्द, ध्वनि, रंग आदि द्वारा विशिष्ट प्रकार का आनन्द उत्पन्न करने का उसका दायित्त्व है। आनन्द के किसी अद्‌भुत रूप को जन्म देना कलाकार का प्राथमिक कर्तव्य है। जब कोई ताश के पत्तों की करामात, घुड़दौड़ आदि खेल देखता है तो वह अपनी चिन्ताओं को भुला सकता है, किन्तु वह किमी प्रकार का सुनिश्चित् आनन्द प्राप्त नहीं करता, जब कि कला द्वारा हम किसी विशिष्ट प्रकार का आनन्द प्राप्त करते हैं।

कला से हमें विशिष्ट प्रकार के आनन्द प्राप्त होने का कारण यह नहीं कि कला हमें किसी महान् सत्य का ज्ञान कराती है अथवा किसी सामाजिक या राजनैतिक स्थिति सम्बन्धी हमें कोई जानकारी देती है, प्रत्युत् सभी प्रकार के कलात्मक आनन्द का मूल, जीवन और समाज के किसी नूतन मूल्य का रहस्योद्‌घाटन करने की शक्ति रखती है। कला किसी वस्तु के आन्तरिक मूल्य के प्रति हमे जागरूक करती है।"

उपर्युक्त उद्धरण में वह तथ्य निहित है जो कलाकार को समयोचित जागरूकता, उसकी भावात्मक एवं बौद्धिक चेतनाजन्य सृजनोन्मुखी वृत्ति और कला के प्रति गम्भीर दायित्त्वों की ओर अभिमुख करता है। विनोद बिहारी मुखर्जी बुज़ुर्ग पीढ़ी के उन सचेत कलाकारों में से हैं जो आज नई पीढ़ी के साथ कदम

से कदम मिलाकर अविरत गति से आगे बढ़ रहे हैं। यद्यपि उनकी कला पर बुजुर्गी की छाप है, पर उन्होंने अत्यधिक भाव-प्रवणता या पुरानेपन की झोंक की मदहोशी में नवीन मान्यताओं की अवहेलना नहीं की है। समयानुकूल कला को ढालते हुए अपने उद्देश्य की सिद्धि के लिए वे एकनिष्ठ होकर विघ्नों को रौंदते-चीरते कला-साधना में लीन हैं और उनकी तूलिका आज भी श्रान्त नहीं हुई है। पौराणिक आख्यान, कल्पित कहानी-किस्से, प्राचीन शास्त्रीय चित्र-शिल्प और अतीत युग की कष्टसाध्य मृत कला-सज्जा में उनकी सृजन-चेतना भ्रान्त नहीं हुई, बल्कि सशक्त रेखांकनों में कितने ही चित्र-विचित्र रूप उनके सामने उभरे है और उन्होंने उन्हें मूर्त्त रूप दिया है। इसका यह अर्थ नहीं कि उन्हें अपनी प्राचीन कला-थाती पर गर्व नहीं, इसके विपरीत वे तो सबसे बढ़-कर उसमें रुचि लेते हैं। अजंता और एलोरा की कला के प्रति उनकी गहरी निष्ठा है—उन कलाकारों से कहीं बढ़कर—जो वहाँ की वास्तविक कला को आत्मसात् न कर केवल ऊपर ही ऊपर से लीपा-पोती सी करते हैं और उसके महत् शस्त्रीय रूप को समझने में अक्षम रह कर केवल वाह्य चारुता पर मुग्ध होकर ही रह जाते हैं। किन्तु कला के संवर्द्धन और महत्तर मानवीय मूल्यों को अधिकाधिक प्रश्रय देने के लिए विनोद बाबू मुक्तता के क़ायल हैं। उनके मत से—"सभी प्रकार का कलात्मक आनन्द अमूर्त्त होता है, अत-एव कलात्मक आनन्द का मूल्य है मुक्तता। और मुक्तता में पलायन होता है। संक्षेप में कहा जा सकता है कि कला का अर्थ ही पलायन है। पलायन का अवसर प्राप्त करने के लिए सामान्य मानवीय अनुभवों के क्षेत्र से पलायन करके महत्तर मानवीय अनुभवों के जगत में पहुँचना होता है।" सामाजिक व्यवस्थाओं के बन्धन की एक बन्दीगृह से तुलना करते हुए वे लिखते हैं—"आदर्श के नाम पर व्यक्ति इस प्रकार बन्दी कब तक बना रह सकेगा ? व्यक्ति को इस सामाजिक व्यवस्था के बन्धन से बचाने के लिए ही मनुष्य ने चिन्तन के मूल्य अथवा महत्त्व को स्वीकार किया है। मनुष्य एक सामाजिक प्राणी होते हुए भी चिन्तन द्वारा अपनी मुक्तता के आनन्द का अनु-भव करता है। दार्शनिक चिन्तन द्वारा उसने मुक्ततापूर्वक सोचना सीखा है,

केश विन्यास

विज्ञान द्वारा उसने मुक्ततापूर्वक आचरण करना सीखा है और कला द्वारा उसने भावात्मक मुक्तता का आनन्द लेना सीखा है।"

विनोद बाबू की कला-प्रतिभा उन दिनों विकसित हुई थी जब कि विदेशी सत्ता के विरुद्ध राष्ट्रीय आन्दोलन का बोलबाला था। पाश्चात्य प्रभाव से बचने के के लिए पौरस्त्य कलादर्शों—चीनी, जापानी, फारसी—और पूर्वकालीन विस्मृत शास्त्रीय कला-तत्त्वों तथा जैन एवं राजपूत चित्रण शैलियों का आश्रय लिया जा रहा था। ऐसे अनिश्चित् वातावरण में विनोद बाबू एक निश्चित् दिशा खोज रहे थे। समस्त विदेशी कला-पद्धतियों को वर्जनीय बता कर जिन-जिन देशी स्रोतों से सृजन की प्रेरणा का आग्रह किया जा रहा था वे राष्ट्रीय दृष्टिकोण से तो अवश्य उपादेय हो सकते थे, पर नियंत्रण एवं अपनी सीमाबद्धता के कारण कला को नया बल या किसी नवीन पथ पर उत्प्रेरित करने में असमर्थ थे। विनोद बाबू ऐसी आत्मविश्वासहीन भौंडी सनक में न बहना चाहते थे जो उन्नति के मार्ग में अवरोधक या प्रतिगामी सिद्ध होती। कितने ही नौसिखिए अन्धाधुंध अनुकरण का प्रयास तो कर रहे थे, पर कोई भी देश के गौरव के अनुरूप कला की सुविचारित कलाशैली प्रस्तुत करने के काबिल न था। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर ने इस मौके पर शास्त्रीय, किन्तु अधिक मानवीय भावनाओं को, जिनमें कवि के अन्तर का स्पन्दन मुखरित था, व्यंजित किया, मानो उनकी कोमलता और पुलक कला में साकार हो उठी थी। दूसरी ओर नन्दलाल वसु देशी ढंग से चित्र बनाने में संलग्न थे। उनकी कला में अभी कोई सुनिश्चित् विराम न आ पाया था, फिर भी लोक-रुचि में पैठ कर सादा जीवन और दिव्य एवं उदात्त भावनाओं को प्रश्रय देकर वे नये कलारूपों को प्रस्तुत कर रहे थे। उनके प्लास्टिक प्रतिरूपों में गांधी और टैगोर का मिश्रित प्रभाव द्रष्टव्य था। विश्व कवि के विस्मय भरे कलासत्य एवं सौन्दर्य-सम्बन्धी नूतन तत्त्वबोध से विनोद बाबू को प्रोत्साहन मिला और नन्दलाल वसु के देशी प्रभावों को उन्होंने

बाग में चहलकदमी

श्रद्धानत हो ग्रहण किया। किन्तु उनमें और भी अधिक पाने व जानने की जिज्ञासा थी। भारतीय कलारूपों की मौलिकता अथवा उसका मूल्यांकन करने के लिए समसामयिक निर्धारित मानदण्डों तक ही सीमित रहना उनकी दृष्टि में आवश्यक न था, अपितु परम्परा के प्रभाव से मुक्त होकर उनका सृजनशील मन तात्कालिक गत्यवरोध को मिटाना भी था।

चीन और जापान की सुदूर यात्रा ने प्राच्य शिल्प के प्रति इनमें और भी गहरी दिलचस्पी पैदा कर दी। अब तक भारतीय शिल्पियों की असाधारण उद्भावना-शक्ति एवं रूप-वैशिष्ट्य को देखने, समझने और उसके ऐश्वर्य को स्वायत्त करने की बलवती आकांक्षा तो इनमें थी ही, चीन-जापान की चित्रकला, मिस्र एवं नीग्रो कलाकृतियाँ, यहाँ तक कि एशियाई देशों की तथाकथित अलभ्य शिल्प-संस्कृति के प्रति इनमें बड़ा तीव्र आग्रह जगा। यह आग्रह ऐसा न था जो केवल दुविधापूर्ण मनःस्थिति से छुटकारा पाने के लिए हो, बल्कि एक नये कलात्मक धरातल पर पाश्चात्य और प्राच्य निरूपित कलारूपों में जो अन्तर्निहित है वह कहाँ तक उच्चतम अभिव्यक्ति में सफल हुआ है—इसे परखने की प्रेरणा उत्पन्न हुई। एक भावुक की सी अनुशीलन दृष्टि उनमें न थी जो स्वभावतः अपनी वैयक्तिकताजन्य सीमाओं तक टकरा कर रह जाती है, वरन् एक तटस्थ मनीषी द्रष्टा की भाँति विविध कलापक्षों का विश्लेषणात्मक अनुसंधान करके वे उसमें बहुत कुछ पाने की चेष्टा करने लगे। हर रेखा को उन्होंने बारीकी से तौला, हर रिक्त स्थान को निर्माण से पूरने का प्रयत्न किया तथा रंगों व रेखाओं में कैसे संतुलन बैठे आदि बातें उन्होंने गणितज्ञ की सी पैनी दृष्टि से भाँपने की चेष्टा की। सौंदर्याविष्ट क्षणों और रसोपलब्धि तथा शिल्प और कला-सौंदर्य की मीमांसा करते हुए विनोद बाबू एक स्थल पर लिखते हैं—"जिस समय हम सोच-समझ कर कलाकृति का आनन्द ले रहे होते हैं, उस समय हम उस समूची कलाकृति का आनन्द नहीं ले रहे होते बल्कि विभागशः, खण्डशः, क्रमशः उसका आनन्द ले रहे होते हैं। जब हम तल्लीन नहीं हैं, भावना में विभोर नहीं हैं—तो हमारी चेतनबुद्धि कलाकृति के विश्लेषण में लगी है। हम उसके विषय में जितना अधिक कह चलते हैं हम बौद्धिक स्तरों के उतना ही समीप पहुँचने लगते हैं, मन समग्र-दर्शन, खण्ड-दर्शन में उतरने लगता है और यों पृथक्करण करते-करते रसानन्द के बजाय एक जिज्ञासा के पीछे चलने लगता है। किन्तु कला की महान् कृतियों में यह गुण होता है कि वे मन को कोरे औत्सुक्य या जिज्ञासा में भी बहुत देर तक बिलमने को मौका

नहीं देतीं। सौंदर्याविष्ट आत्म-विस्मृत क्षण—जिज्ञासा की ओर, जिज्ञासा—विश्लेषण की ओर, विश्लेषण—आश्चर्य की ओर, आश्चर्य फिर भावना की ओर, अन्त में भावना मन को पुनः रसविभोरता की ओर खींच ले जाती है। किसी महान् कलाकृति के सौंदर्य का बोध जैसे एक आविष्कार ही होता है। रसानुभव कर सकने वाली हमारी भीतरी शक्तियाँ हमें विभिन्न लोकों और विभिन्न स्तरों में घुमाती हैं। किन्तु इस भ्रमण की गति इतनी तीव्र और इसके मोड़ इतने आकस्मिक होते हैं कि हम इस पथ को पकड़ नहीं पाते।"

विनोद बाबू के कला-सृजन का ढंग भी बड़ा ही निराला है। शतरंज के खिलाड़ी की सी बेख़बरी, जो अपनी मुहरों को इतमिनान से खूब सोच-विचार कर चलता है—ये भी नीले, पीले, हरे, काले—मिश्रित रंगों के ठप्पे से मारते हैं और क्रमशः इन्हीं बिखरे रंगों से मनुष्य, पेड़, जानवरों की आकृतियाँ साकार हो जाती हैं जो अत्यन्त सजीवता लिये होती हैं। इनकी चित्रकृतियाँ प्रायः भावात्मक होती हैं, रेखांकन जटिल—ज्यामितिक क्लिष्टता और प्राचीन जैन-चित्रण की सी दुरूहता के साथ ही इनके रंग भरने का तरीका और आकृति-निर्माण की पद्धति गत्यात्मक, पर अमूर्त्त होती है।

काली घाट की पट-शैली और ग्राम्य खेल-खिलौनों ने इन्हें अत्यधिक प्रभावित किया है। उन्हीं से प्रेरित काम करने का एक ख़ास अन्दाज़ इन्हें मिल गया। भारत के अनेक कलातीर्थों का भ्रमण करने के कारण इनकी कला अधिकाधिक जीवन के निकट आती गई। ये उपयोगिता के क़ायल हैं। इन्हें ऐसी कला से नफ़रत है जिसका सृजन सिर्फ़ श्रृंगार और सज्जा के लिए होता है। इन्होंने अपने चित्रों के प्रसंग जन-जीवन से सँजोये हैं। वे कहते हैं, "अरे! कला का स्वाद क्या लफ्ज़ी शीशों में बन्द करके दुनिया को पहुंचाया जा सकता है। कला को जानने के लिए तो उसके ही दर की कुंडी खटखटानी पड़ती है।" मानव-चरित्र की गुत्थियाँ और मनोभावों में झाँकने के लिए जीवन-सम्पर्क अपेक्षित है। विनोद बाबू ने अपने चित्रों में संवेदना और सहानुभूति का रंग भरा है। दैनन्दिन जीवन-प्रसंगों को लेकर आसपास का वातावरण चित्रित करते हुए—जिसे गली में चलते-फिरते सामान्य व्यक्ति, औरतें, बालक, वृद्ध तक समझ सकें—उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति का दायरा बड़ा ही फैला दिया है। बंगाल की जन-कला में उनका तन रमा है और उनके चित्र उसी सजीवता, उसी सक्रियता तथा उसी मूर्तिमत्ता के साथ रूपायित हुए हैं। विनोद बाबू प्रयोगी हैं और उनका हर चित्र प्रयोग के रूप में सिरजा गया है, किन्तु वे ऐसे

थोथे रूपवादी नहीं जिनके रूपाकारों में निर्जीव शिल्पाभास और केवल ऊपरी कौशल तो हो, पर महत्त्व का कुछ न हो। आधुनिक कलाकार के सम्बन्ध में अपना मन्तव्य व्यक्त करते हुए वे लिखते हैं—"आधुनिक कलाकार आगे क़दम बढ़ाने के लिए उतावला रहता है। नई घटनाओं और नये तथ्यों की टोह में रहने के कारण उसे अपने जीवन की गहराई में उतरने का अवकाश नहीं। मानव इतिहास के प्रत्येक युग में सामाजिक जीवन में कुछ न कुछ मूर्खतापूर्ण मान्यताएँ स्थान पाती चली आई हैं। अतः हमारा आधुनिक युग भी मूर्खता-पूर्ण मान्यताओं से मुक्त नहीं है। आधुनिक कला का प्रशंसक दम्भी, बुद्धिवादी जागरूकता कहलाने वाली मूर्खतापूर्ण मान्यता का दास बना हुआ है। उसकी कलाई की घड़ी और उसके घर के पास का घण्टाघर उसके जीवन को प्रेरणा देने वाले और समाचार पत्र उसके लिए दैवी सन्देश हो गए हैं। मान लीजिए किसी दिन, प्रातःकाल सभी घड़ियाँ और समाचार पत्र दोनों बन्द हो जाएँ तो हमारी जागरूकता का क्या हाल होगा। मुझे तो लगता है कि इस पीड़ा से हम सभी का दम घुट जाएगा। अधिकांश में हमारी आधुनिक कला इन्द्रिय जनित ज्ञानवाद का मूर्त्त रूप है।" यूरोपियन कलाकारों में वे कदाचित् द्यूफी के सबसे अधिक निकट हैं, किन्तु इनके कृतित्त्व में अपेक्षाकृत सार्थक, नूतन व सशक्त मानवीय कल्पना के दर्शन होते हैं। इनके चित्र सक्रिय तो हैं ही, प्रेरणास्वरूप भी हैं, उनमें मांसल व्यक्तित्त्व प्रदर्शित होता है। उनकी रेखा बड़ी सुष्ठु और सुसंयत है, उनमें सुलिपि सी सहज एकरूपता और सस्थिति-सौष्ठव है।

शांतिनिकेतन में नन्दलाल वसु की सन्निधि में वर्षों रह कर इन्होंने कला की साधना की है। वहाँ ऐसे विमोहक भित्ति-चित्रों का निर्माण इन्होंने किया है जिनमें वैविध्य, प्रौढ़ता, कला का ओज और सामान्य भावनाओं का संस्कार हुआ है। भित्ति-चित्रों में ऐसे-ऐसे विषय और प्रसंग हैं जिनमें जीवन के अनुभव और परिस्थितियाँ बिखरी हुई हैं। विनोद बाबू काष्ठ-खुदाई, बर्तनों की गढ़ाई और डोरों की बुनाई में भी रुचि लेते हैं और जब कभी समय मिलता है तो नये प्रयोग करते रहते है।

•

कुछ व्यक्तियों को विनोद बाबू के चित्र अस्पष्ट और दुर्बोध जँचे हैं, कुछ को चीनी टेकनीक से प्रभावित अथवा निरे शुष्क और पलायनोन्मुखी उदासीनता से ग्रस्त। अपरिचित आँखों को कदाचित् इनके चित्र अजीब से लगते हैं, पर थोड़े से संस्कार और अभ्यास से इनकी कला के मर्म में पैठा जा सकता है।

वस्तुतः इनकी ग्राह्य चेतना इतनी विशद है कि विभिन्न कला-शैलियों से अनुप्राणित करने वाले गुणों से सुसम्पन्न करने का प्रयास करते हुए वे अपनी कला को सामान्य स्तर से ऊपर ले जाते हैं जिसके समझने में भ्रान्ति भी हो जाती है। यह इनका अपना ढंग है जो मौलिक और जनाभिमुख है। शुरू से ही ये किसी भी वाद, सम्प्रदाय या गुटबन्दी में शरीक नहीं हुए, फलतः इनकी कला भी एकांगी एवं एकदेशीय नहीं हो पाई। इन्होंने कला के नवोत्थान के लिए सदैव प्रयत्नशील रह कर निर्माण की भावभूमि तैयार करने में सतत योग दिया है जो कला-जिज्ञासुओं को आगे बढ़ने की सद्प्रेरणा देता रहेगा।

विनायक मासोजी

बंगाल कला ग्रान्दोलन के पुनरुत्थान के दौरान जिन कलाकारों के हाथों शांतिनिकेतन शैली का प्रवर्त्तन हुआ उनमें विनायक मासोजी का ग्रन्यतम स्थान है। जब कला-शैलियाँ रूढ़ होने लगती हैं तो मौलिक प्रतिभा के धनी कलाकार निजी ग्रनुभव की विविधता ग्रौर उस ग्रनुभव को रूपायित करने के लिए शिल्प ग्रौर ग्राकार को विविध रूपों में प्रस्तुत करने की सामर्थ्य लेकर ग्रागे ग्राते हैं। बंगाल स्कूल की रूढ़ शैली के समानान्तर शांतिनिकेतन शैली में जो सजीव तत्त्व उभरे वे मासोजी जैसे कतिपय कला-साधकों की ग्रनवरत चेष्टाग्रों का परिणाम है जो विघटनकारी शोषक तत्त्वों से पोषक तत्त्वों की ग्रोर उन्मुख हुए, उसे गति प्रदान कर सके ग्रौर ग्रपनी समाधानकारी पूर्णता की उपलब्धि के लिए रचनात्मक पथ पर ग्रग्रसर कर उसके क्षेत्र को व्यापक बना सके।

मासोजी की कला की विशेषता है—उनकी कला में ग्रात्मरस की सहज ग्रविरल व्याप्ति ग्रौर ग्रभिव्यंजना पद्धति में लालित्यमयी तरलता। प्रारम्भ से ही ग्रपने दृष्टिकोण में वे वस्तून्मुखी, जीवनोन्मुखी रहे हैं, पर इसका यह ग्रर्थ नहीं कि उनका वस्तुवाद ग्रध्यात्म सत्ता में विश्वास नहीं करता। मासोजी बेहद ग्रास्तिक प्रकृति के व्यक्ति हैं। इन्होंने ईसाई पादरी परिवार में जन्म लिया। इनके पिता ग्रपने बच्चे को भी उसी पथ का ग्रनुगामी बनाना चाहते थे, किन्तु इनकी ग्रभिरुचि तो कला की ग्रोर थी। ये ग्रधिकांश समय चित्र बनाने में ही लगाते। इसके लिए विरोध-वैषम्य ग्रौर कड़ी भर्त्सनाग्रों का शिकार भी इन्हें बनना पड़ा। किन्तु ग्रपनी कला-साधना के पथ से ये विरत न हुए। इन्होंने जीवन की चुनौती को दृढ़ता पूर्वक स्वीकार कर उससे टक्कर लेने की ठान ली ग्रौर ग्रनवरत श्रम, संघर्ष ग्रौर प्रयास से ध्येय की पूर्ति में जुटे रहे। विश्वास की नींव पर इन्होंने ग्रपने भावी सपनों की इमारत खड़ी की ग्रौर उस समय इन्हें लगा कि ये घरेलू वातावरण ग्रौर परिस्थितियों से पराङ्मुख सबसे भिन्न रुचि के हैं। जिस विश्वास को साथ लिये इन्होंने ग्रपने परिवार का मोह छोड़ा वह कभी खंडित नहीं हो पाया। यद्यपि इनके पास पैसों का ग्रभाव था, फिर भी ये बम्बई रवाना होगए ग्रौर सर जे० जे०

स्कूल आफ आर्ट्स में दाखिला ले लिया। कई वर्षों तक ये वहीं चित्रकला का प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे। अपने सीमित साधनों से इन्होंने कला की असीमित शक्तियों को उजागर किया, उसे गहराई से समझा और

शारदीया

अनेक संभावित शैलियों का पता लगाया। महती प्रेरणाओं के कारण ही ये सब कुछ सहन कर सकते थे, वह इनके अभावग्रस्त बीहड़ जीवन पथ पर आलोक की किरण बनकर छा गई। कला ने ही दरअसल इन्हें कष्ट और मुसीबतों को झेलने का बल प्रदान किया और उसी के सहारे इन्होंने अपने जीवन का दायरा कभी संकुचित न होने दिया।

बम्बई में अपने चित्रों द्वारा इन्होंने पर्याप्त प्रसिद्धि पाई। किन्तु वहाँ की नित-नई कला-प्रणालियाँ और देशी-विदेशी प्रभावों की धकापेल से भारतीय आदर्शों में ढली कला की काल्पनिक मूर्त्ति के इस एकान्त उपासक का आसन डोल गया। वे गुरुदेव द्वारा स्थापित शांतिनिकेतन जैसी साधना-भूमि में रह कर अपनी सृजनात्मक प्रतिभा को विकसित करना चाहते थे। धुन के पक्के मासोजी ने शीघ्र ही वहाँ पहुँचने का माध्यम खोज लिया। वे अपने पिता के एक हितैषी मित्र द्वारा दीनबन्धु एण्ड्रूज़ के नाम परिचय पत्र लेकर शांति-निकेतन पहुँच गए और नन्दलाल वसु का शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। कला की सूक्ष्मताओं में पैठकर ये अपनी निजी मौलिक प्रणालियों को लेकर अग्रसर हुए। पहले इन्हें शांतिनिकेतन के क्राफ्ट्स सेक्शन का डायरेक्टर नियुक्त कर दिया गया, तत्पश्चात् फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स डिपार्टमेंट के वाइस प्रिंसिपल का पद-भार इन्हें सौंपा गया। शांतिनिकेतन के कला-भवन और चीन-भवन में अजंता के चित्रों की प्रतिकृति अंकित करते हुए इन्होंने अनेक भित्ति चित्रों का निर्माण किया। सन् १९५६ में जबलपुर में शहीद स्मारक के लिए 'राष्ट्र-ध्वज का जन्म' दिग्दर्शक एक विशाल भित्ति चित्र को बनाने के लिए इन्हें आमंत्रित किया गया जो बड़ी ही प्रसिद्ध कृति है। अपने प्रकृति-प्रेम और याया-वर वृत्ति से प्रेरित होकर इन्होंने हिमालय, तिब्बत और लंका आदि देशों का भ्रमण किया। फलतः इनके दृश्य-चित्रों में आँखों देखी यथार्थ व्यंजना है। हिमालय के प्राकृतिक नज़ारे, उच्च शृंगों की हिमानी शोभा, कैलाश और मानसरोवर के आकषक दृश्य-चित्र, राजगिरि का आत्मविभोर करने वाला दृश्यांकन तथा विभिन्न दृश्यों पर आधारित इन्होंने कितने ही लैण्डस्केप बनाये। 'भगवान मेरे संरक्षक' में एक निरीह मृगछौने को किसी व्यक्ति ने अनायास अपनी गोद में उठाकर आश्रय दिया है। 'शांति-निकेतन में सूर्यास्त का दृश्य चित्र' बड़ी ही सजीवता लिये है, एक चित्र में बैलगाड़ी में बैठकर एक ग्रामीण परिवार यात्रा के लिए प्रस्थान कर रहा है, मानो यह बैलगाड़ी उन्हें अभिप्रेत मंज़िल तक पहुँचाएगी, फिर भी यह निश्चित

नहीं कि उनकी मंज़िल आखिर है कहाँ ? पनघट पर गागर के साथ नारी भंगिमा की हूबहू झाँकी प्रस्तुत करता है, इसी प्रकार 'कैलाश के पथ पर' 'मंज़िल के निकट', 'बलिदान' आदि चित्रों में इनकी परिपक्व प्रतिभा और उत्कृष्ट कला-नैपुण्य का आभास मिलता है। 'बापू का महाप्रयाण' चित्र में प्राणों की एकतानता है जो मन को छूती है। महात्मा ईसा और ईसाई संतों के जीवन-प्रसंगों को लेकर इन्होंने कितने ही मर्मस्पर्शी चित्र बनाये हैं। आस्तिक-प्रकृति और धर्म में निष्ठा होने के कारण ऐसे चित्र बड़ी ही अछूती और आंतरिक भक्ति-भावना का दिग्दर्शन कराने वाले हैं।

मासोजी विशुद्ध देशी पद्धति के क़ायल हैं, अधिकतर टेम्परा, वाश, जलरंग, तैलरंग आदि के प्रयोग द्वारा इन्होंने बड़े ही सधे-संयत रंगों को उभारा है। कृत्रिमता और दूसरों के अनुकरण पर आँके गए, साथ ही अनेक वादों के पाश में जकड़ी कला से इन्हें सख्त नफ़रत है। आधुनिक शैली की अनाकर्षक अवतारणा और भौंडे आकार-प्रकार उन्हें क़तई पसन्द नहीं। जिस तूफ़ानी वेग से कला आगे बढ़ रही है और बाहरी प्रभावों ने भारतीय कलादर्शों में जो गहरी क्रान्ति उपस्थित कर दी है इनकी राय में उसकी अभी कोई सुनिश्चित दिशा नहीं है। वादों के बवण्डर में उसकी जड़ें हिल गई हैं। न वह भारतीय कलादर्शों को अपना रही है और न ही बाहरी तत्त्वों को आत्मसात् कर उन्हें अपना बना पा रही है। इस शंकाकुल परिस्थिति में बड़ी ही ऊहापोहभरी अस्तव्यस्तता दीख पड़ती है। अपनी सन्तुलित आदर्शवादी दृष्टि के कारण इन्होंने ऐसे कलारूपों की प्रताड़ना की है जो अत्याधुनिक की झोंक में कुत्सा और कुरुचि को प्रश्रय देते हैं। अपने अन्तर में वेदना लिये कुछ चित्रों में इन्होंने संवेदना का स्वर गुंजरित किया है तो कुछ में सौंदर्यबोध की व्यापक चेतना के साथ उत्तरोत्तर कला की मूल महती भावनाओं का केन्द्रीकरण। उन में भावुकता जन्य उत्तेजना नहीं है, वरन् ऊर्जस्वी भावबोध के पैमाने पर समग्र दिशाव्यापी सौंदर्य को पकड़ने का प्रयास है। इनके कितने ही चित्रों में मनुष्य के गहन अन्तर्द्वन्द्व और गूढ़ मर्म का सजीव अंकन है। कलात्मक अभिव्यंजना और सरलतम देशी पद्धति से इन्होंने 'टेम्परा' और 'वाश' में अधिकांश चित्रों का निर्माण किया है। सन् १९३३ में नागपुर, १९३४ में करांची और १९४८ में शान्तिनिकेतन में इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की गईं। देश-विदेशों की अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भी इन्होंने भाग लिया।

मासोजी साधु प्रकृति के अत्यन्त विनम्र और शीलवान व्यक्ति हैं। नागपुर की घनी बस्ती से दूर एक निर्जन कोने में एक बहुत छोटे से कुटियानुमा घर में वे रहते हैं जहाँ इनके चित्रों को रखने तक का स्थान नहीं है। लकड़ी के सामान्य बक्सों में इनकी अमूल्य कलानिधियाँ छिपी पड़ी हैं जहाँ सदैव दीमकों और कीड़े-मकोड़ों का भय बना रहता है।

कला के इस मूक साधक के अभावग्रस्त जीवन का ये चित्र ही सम्बल है। मन जब दर्द या व्यथा की ठोकर खाता है तो कला की प्रशान्त क्रोड़ में इनकी उत्प्रेरक चेष्टाएँ विश्रान्ति पा जाती हैं। इनके मत में कर्त्तव्य और निष्ठा की सीढ़ी पर ही हम फिसल पड़े तो हमारी प्रगति की दिशागामी प्रवृत्तियों का अन्त बड़ा ही मार्मिक और हृदयवेधी होगा। अतएव कला के परिपोषक बीजांकुर जिस भारत की मिट्टी की खाद पर सदा पल्लवित होते रहे हैं वह पच्छिमी खाद के आयात से फीकी न पड़ जाय—इसी चिन्ता को लेकर यह वृद्ध कलायोगी आज भी कला के सर्वदेशीय तत्त्वों को सजाने-सँवारने में आश्वस्त है।

सुधीर खास्तगीर

पूजा नृत्य

कलाकार बन्धनों से मुक्त है, उसकी उन्मुक्ति ही कला की सत्यता की कसौटी है। सुधीर खास्तगीर का विशिष्ट गुण है कि उनका सृजन किसी एक दिशा में बद्ध नहीं है। उनके व्यंजना-कौशल ने प्रेरणा के इतने भिन्न बहुमुखी छोरों को छुआ है कि इनकी कला बड़ी ही प्राणवान सिद्ध हुई है। चित्रण, मूर्त्ति-कला, लाइनोकट, चारकोल-चित्रण, कैन्वास-पेंटिंग, तैल-चित्र, पेंसिल-स्केच तथा कोई भी रंग, रेखा, शैली नहीं जो इनकी तूली से अछूती हो। इनके सर्वोत्तम चित्रों में बड़ी ही तन्मय, प्रेरक निष्ठा और अंतस्तल को आन्दोलित करने वाली व्यंजना है। चित्रों में एक नई रूह फूंक दी गई है और कूची के सहज संस्पर्श से वे गतिमय हो उठे हैं।

खास्तगीर के लिए कला चिन्तनीय और रचनात्मक दोनों है। रेखाओं अथवा मिट्टी को आकार देने के पूर्व वे अपने चिन्तन को बौद्धिक रूप से नहीं बल्कि अन्तर्भाव से ग्रहण करते हैं। अन्तर्नुभूत सौंदर्य को प्रकट करने में वे सदैव सचेष्ट रहे हैं और चिन्त्य वस्तु के साथ उनकी भावनाओं का तादात्म्य सा हो जाता है। कल्पना की रंगीन रेखाएँ कागज़, कैन्वास अथवा मिट्टी में उतरने से पूर्व उनके मन के क्षितिज पर उद्भासित हो उठती हैं और भीतर विलय होकर उनकी कल्पना को मूर्त्त करती हैं। द्रष्टा को लगभग वही अनुभव होता है जो स्रष्टा ने सृजन करते हुए महसूस किया होगा।

राबर्ट ब्रिजेज़ के शब्दों में 'कला आत्मा की तस्वीर एवं जीवन की अभि-व्यंजना है।' वस्तुतः जीवन के सुख-दुःख, आशा-निराशा, हास्य-रुदन और

अति सूक्ष्म क्रिया-कम्पन कलाकार के हृदय में पुलक और प्राणों में स्पन्दन भर देते हैं और इन सूक्ष्म साधनों की दिव्य अनुभूति ही सच्ची कला का आधार बनती है। प्रकृति की विराट् क्रोड़ में अंकित अगणित चित्र कलाकार की सूक्ष्म कल्पना के साथ समन्वित होकर एकाकार हो जाते हैं और उसकी सारग्राहिणी सूक्ष्म कल्पना आंतर अनुभूति में पैठकर जीवन से सम्पर्क रखने वाली वस्तुओं पर दृष्टिपात करती है और उनमें भावना और औत्सुक्य जाग्रत करती है। प्रकृति की विभूतियों को देख कर कलाकार उन पर मुग्ध हो जाता है और फिर वह सौन्दर्य के सृजन में क्या कुछ नहीं लुटाता? कभी तो ज्योतिर्पथ में बिखरे अगणित तारे उसे अपनी ओर आकर्षित कर लेते है, कभी शरद्कालीन चन्द्रिका, प्रभात की प्रथम रश्मि के संस्पर्श से विहंगिनी के कलकंठ से फूटे गान, गंगा की चपल लहरों पर आकाश का प्रतिबिम्ब, शुभ्र चट्टानों के वक्ष पर मचलते झरने, प्रकृति की क्रीड़ाक्रोड़ के अनगिनत रंगों का जादू भरा आकर्षण, हरीभरी यौवन से इठलाती लतिकाएँ, लहलहाते खेत, झूमते हुए वृक्ष, धीमे-धीमे अविरल गति से बहते हुए वायु के झोंके उसकी प्रेरणा के उत्स बनते हैं और कभी उसका भावुक और कोमल हृदय मानव-पीड़ा से क्षुब्ध होकर उसी में रम जाने को मचल उठता है। प्रकृति की प्रत्येक वस्तु मानो मौन निमंत्रण द्वारा उसे अपने पास बुलाती है और दृश्य-जगत् के नाना रूप और व्यापार उसे विस्मय-विभोर कर लेते हैं।

दो बहनें

सुधीर खास्तगीर की कला में भिन्न-भिन्न मनःस्थितियों के अगणित चित्र भरे पड़े है। इस महान् कलाकार की सूक्ष्म अन्तर्भेदिनी दृष्टि जीवन-रहस्यों के अनुसंधान में, शाश्वत शक्ति के समष्टि-चिंतन में, जग के क्रन्दन, उत्पीड़न, आशा-आकांक्षाओं की सहज उद्भूति में—उसके प्राणों को चीर कर, उसकी चेतना-परिधि को तोड़ कर दूर, बहुत दूर तक फैल गई है।

उसका दृष्टिकोण सार्वजनीन है, वह चारों ओर देखता है, अपने हृद्गत भावों का चित्र उतारने में वह सफल हुआ है। उसकी कला में सौंदर्य की रंगीनियाँ मखरित हैं, स्वप्निल मादकता है, कल्पना का रंजक विस्तार है,। वह अपने अन्तरतम की सिहरन, स्पन्दन और कम्पन को रंगों एवं तूलिका की सहायता से कागज़ पर उतारने में समर्थ हुआ है। लगता है—उसकी चित्रकृतियाँ चिरंतन अनुभूतियों की अमर गाथाएँ हैं, अनुभावित सत्य हैं जो कल्पनामय छायालोक से पृथ्वी पर उतर कर अस्पष्ट धुँधलके में सिमट जाती हैं। एक चतुर चितेरे की भाँति अपनी तूलिका से वह असंख्य चित्र बनाता और बिगाड़ता है। उसकी एक-एक रेखा में नूतन से नूतन अनुभव और सरस भाव अन्तर्निहित है। उसकी चेतना ने जीवन का तल स्पर्श किया है। इन चित्रों को देख कर दर्शक अनुभव करता है कि इस दुनिया के पीछे छिपी हुई एक और भी दुनिया है जो भावोन्माद, सृजनात्मक शिल्प-शक्ति और सौंदर्य-बोध की भित्तियों पर स्थित है।

बासन्तिक नृत्य

सुधीर खास्तगीर की कला में पूर्व और पश्चिम दोनों का समन्वय है—अन्तर है व्यवहार-रीतियों में। एक स्थल पर वे लिखते हैं—"आधुनिकतावादी प्रयोगों ने कला के जगत में उथल पुथल मचा दी है। यह नहीं कि वहाँ की उथल पुथल का धक्का हमारे समुद्र तट तक पहुंचा ही नहीं, यहाँ जो लोग नरम शिथिल रूप से खड़े थे और जिनकी जड़ें कमज़ोर थीं और जो अपने मुँह से अपने को प्रगतिशील, सार्वदेशिक और न जाने क्या-क्या बताते थे, उखड़ कर ढह गए, पर जो लोग इस तूफ़ान में थमे रहे, वे तो वे ही थे जो परम्परा के अनुयायी थे। इस तूफ़ान से कुछ बिगड़ा नहीं, बल्कि अपनी अभिज्ञता से उन्होंने कुछ सीखा ही। उन्हीं के लिये पाश्चात्य कला तथा संस्कृति का अन्ध अनुकरण संभव है जिनमें व्यक्तित्व का कुछ बोध नहीं है, और

जिन्होंने कभी भारतीय कला तथा संस्कृति के ऐश्वर्य का अनुभव नहीं किया। वे मूर्खतावश अपने को दीवालिया समझते हैं, और जो भी कूड़ा-कर्कट मिल गया उसे अपने झोले में डाल लेते हैं।

कुछ साल पहले तक—और यदि युद्ध न छिड़ जाता तो अब भी ऐसा ही रहता—यह एक फैशन सा हो रहा था कि भारत से कला के छात्र अपने देश की कला का अध्ययन समाप्त किये बग़ैर ही विदेशों को विशेषकर यूरोप की यात्रा इसलिए करते थे कि पाश्चात्य कला तथा कला की टेकनीक का अध्ययन करें। मुझे पूर्ण विश्वास है कि इस प्रकार की शिक्षा-प्रणाली ही ग़लत है। इस प्रकार से अपनी संस्कृति में अपनी कला की जड़ों को गहराई तक जाने दिये बग़ैर ही विदेशी कलाकारों की टेकनीक तथा शैली का अनुकरण करने से भारतीय कला का ह्रास होगा।

वंशी विभोर

अवश्य ही पारस्परिक लेनदेन की भावना से जो विनिमय होता है, वह वांछनीय है, पर इस सम्वन्ध में यह स्मरण रखना चाहिए कि जिनके पास आवश्यकता से अधिक है, वे ही इस प्रकार के खटराग से फायदा उठा सकते हैं। ह्विसलर ने चीनी ढंग पर आँके गए आलेख्यों का चित्रण किया। उन्होंने बहुत कुछ लिया, पर वे भिखारी नहीं थे। वे ग्रहण की कला से इस क़दर परिचित थे कि उनकी महत्ता ऐसी थी जिस पर दो रायें नहीं हो सकतीं।

जो लोग भारतीय कला के इस पुनरुज्जीवन से अपरिचित हैं, वे ही यह शिकायत करते पाये जाते हैं कि भारतीय कला में न तो आग है, न कोई स्नायु है, वह तो अभी तक अजन्ता युग में पड़ी हुई है और उसमें अभी तक वही लम्बी-पतली उँगलियाँ और आकर्षक विस्तृत आँखें चल रही हैं। प्रत्येक कलाकार के लिए यह सम्भव नहीं कि वह एक नई शैली चलावे, और

सौंदर्य की नई-नई झलक देखे, इस कारण जिस समय उसका पुनरुद्धार हुआ उस समय उसमें जो परम्परा चल पड़ी, लोग उसी की लकीर की फकीरी करने लगे। इसलिए कला के क्षेत्र में आज जो नेता हैं, उन पर भारी जिम्मेदारी है। लकीर की फकीरी से बचने के लिए विपुल प्रयास की आवश्यकता है। मानसिक तथा आत्मिक स्वास्थ्य को क़ायम रक्खा जाय, तो शरीर में अन्तर्निहित आलस्य को दूर करना पड़ेगा। केवल आँखों से ही नहीं, वरन् सारी इन्द्रियों से अनुभूति करें, तभी हमारी रचनाओं में जान आएगी। बिना समझे-बूझे आधुनिक यूरोपीय कला के उफनते सागर में कूद पड़ना आत्महत्या से कम न होगा।

आज की भारतीय कला को विश्व की कला को एक विशेष दान देना है, और इसके वर्त्तमान तथा भविष्य के रूप के आधार तथा बीज को इसके अपने कलात्मक इतिहास में ढूंढ़ना पड़ेगा, और ऐसा तभी हो सकेगा जब हम इसके सांस्कृतिक उत्तराधिकार के मूल्य को समझें और अपनाएँ, और न कि इससे घृणा करें या इसके स्थान पर विदेशी वस्तुओं को ग्रहण करें।"

माँ

इन्होंने जो कुछ जहाँ से पाया, समझा-बूझा वही अपनी विशिष्ट शैली में व्यक्त कर दिया। भारतीय कला के साथ यूरोपीय कला का स्वस्थ मिश्रण उनकी कला की सफलता का द्योतक है। सुधीर खास्तगीर की सबसे बड़ी विशेषता है कि वे वस्तु को चित्रित करने से पूर्व उसकी आत्मा में झाँक कर देख लेते हैं। उनके हाथ काम करते जाते हैं, किन्तु बुद्धि गहन चिंतन-रत होती है। चाहे काग़ज़ हो, चाहे कैन्वास या मिट्टी के लोंदे पर ही मूर्त्ति-निर्माण क्यों न करना हो, वे पहले से ही दृश्य-वस्तु की कल्पना कर लेते हैं और वाह्य प्रसाधनों की सहायता से अन्तस्थ की गुह्यतम स्थिति का यथार्थ अवलोकन करा देते हैं।

'भिक्षुणी', 'माँ', 'गरीब की दुनिया', 'विधवा', 'दुःख', 'तूफ़ान'—सभी में मर्मस्थल को स्पर्श करने वाली सूक्ष्मता से भावों की सृष्टि हुई है। 'बाँसुरी बजाने वाले में', जिसे अविराम गति से बाँसुरी का स्वर लहराता ज्ञात होता है उतनी ही त्वरा से राधा-कृष्ण की भंगिमाएँ अंकित हुई हैं। स्वर, लय, ताल एकाकार होकर रंग, रेखाओं और आकर्षक चित्र-सज्जा के साथ समाहित हुए से लगते हैं। 'ढोलिए' में भी यही त्वरा और प्रभावोत्पादक सौंदर्य है। कतिपय चित्रों में कमनीय कोमलता और करुणा से आप्लावित राग है जो रंगों के मिश्रण से भीतर की नीरव विह्वलता में रम गया है। 'नववधू', 'बसन्त', 'स्रोत' सभी में जीवन का निगूढ़ सत्य व्यंजित हुआ सा लगता है। कभी-कभी सांसारिक थपेड़े कलाकार के मन को विचलित कर देते हैं और एक क्लांत उदासी उसे आच्छन्न कर लेती है। पत्नी के असमय निधन ने उसके अन्तर को झकझोरा था, जिसकी व्यथा कितने ही चित्रों में साकार होकर उभरी। 'विधवा', 'दुःख', 'गरीब की दुनिया' 'आधुनिक शिक्षा के भार से विपन्न कन्याएँ' निराश और भग्न हृदय की झाँकियाँ हैं। मूर्त्ति के रूप में निर्मित 'महाकवि' और 'विचारक' में

झाँकती चन्द्रमुखी

कलाकार का अन्तर का चिंतन फूट पड़ा है। जो सूझबूझ और कौशल उनके चित्रों में द्रष्टव्य है वही सजीवता और सच्चाई उनकी मूर्त्तियों में भी फलित हुई है। उनके लाइन-चित्र चाहे काले या सफेद अथवा इकरंगे हों बहुत ही स्पष्टता एवं सुनिश्चितता लिये होते हैं। 'पछवाई हवा' में तरुणी बाला के लहराते बाल और निरावरण शरीर की अस्तव्यस्त स्थिति इकरंगी रेखाओं द्वारा इतनी सजीवता से आँकी गई है कि कलाकार की उदात्त अनुभूति इस विस्मयकारी निर्माण में आत्मसात् हुई सी प्रतीत होती है। चारकोल पेंटिंग, ब्रुश-ड्राइंग तथा पत्थर चित्रकारी सभी में सुन्दर सजीव चित्रण है। प्रत्येक दृश्य-चित्र

कलाकार की आँखों के द्वार से सीधा मानस तक पहुँच जाता है। उसकी कल्पना-शक्ति इतनी विकसित हो गई है कि प्रत्येक छोटे से छोटे, सूक्ष्म से सूक्ष्म पदार्थ भी मूर्त्त रूप में उसके समक्ष खिंच जाते हैं और वह अपनी स्वर्णाकांक्षा का प्रदीप लिये उस प्रकाश को खोजता है, जो लोकोत्तर और दिव्य है।

सुधीर खास्तगीर का जीवन, आचार-विचार, कल्पना और चिंतन-शक्ति जीवन के प्रति, जगत् के प्रति, प्रकृति के रहस्यलोक के प्रति इतनी सजग और उद्बुद्ध है कि आनन्दोल्लास की भव्यता में उनका मन चित्रकला की मूक भाषा से तादात्म्य स्थापित कर लेता है। वातावरण की उल्लासपूर्ण रूपच्छटा ने उनके उत्फुल्ल हृदय को गुदगुदाया है तो जीवन की कशमकश और संघर्षों ने भी उन्हें प्रेरणा प्रदान की है। उच्च अट्टालिकाओं और महलों में उनकी वृत्ति रमी है तो झोपड़ियों में बसे श्रमिकों ने भी उनका ध्यान आकर्षित किया है।

देहरादून के सुप्रसिद्ध दून स्कूल में कलाविभाग के अध्यक्ष के रूप में खास्तगीर वर्षों कला की अविरत साधना में रत रहे हैं। आजकल लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल हैं। भारत की सभी प्रमुख कला-प्रदर्शिनियों में इन्होंने भाग लिया है और इनके चित्रों ने आकर्षक भंगिमाओं और मोहक रंगच्छटाओं से दर्शकों के मन को अभिभूत किया है। स्टडी टूर पर इन्होंने समूचे भारत और विदेशों की यात्रा की है। लन्दन में दो बार और अमरीका में एक बार इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी भी की है। ये ललित कला अकादमी की जनरल कौंसिल के सदस्य हैं, 'पद्श्री' की उपाधि से विभूषित हैं और उत्तर प्रदेशीय कलाकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय हैं। कला के प्रति सहज लगाव ने इन्हें विविध कला-पद्धतियों के अध्ययन की प्रेरणा दी है और बहुतों को अपना अनुयायी बना इन्होंने कला के प्रगति-पथ पर उन्हें अग्रसर किया है।

मनीषी दे

भक्त महिला

मुकुल चन्द्र दे के लघु बन्धु मनीषी दे की प्रकृति अपने भाई से सर्वथा भिन्न है। किसी एक कला-शैली, निश्चित् टेकनीक या रूढ़िवादिता को इन्होंने प्रश्रय नहीं दिया, अपितु गोचर जगत् के अभिव्यंजक तत्त्व इतने अस्थिर और विशृंखल रूप में प्रकट हुए कि उनकी कला का उभार अपनी सीमाओं के भीतर किसी एक सामान्य परिस्थिति पर कभी न टिका। अपनी प्रारम्भिक शृंगारिक कोमल वृत्ति से कठोर यथार्थवाद तक आते-आते उनके चित्रों में कितनी ही डाँवाडोल मनःस्थितियों का दिग्दर्शन हुआ। 'पनघट की ओर', 'वंशीरव', 'मयूर', 'पुल', और 'नारी' की विविध भंगिमाओं व दृश्य-चित्रणों में जहाँ उनकी सृजन-चेतना अतिशय कोमल और आर्द्र हो उठी है, वहाँ 'बंगाली शरणार्थी' आदि जीवन की विभीषिकाओं से प्रेरित चित्रों में उतनी ही कठोर एवं विद्रूपमयी। अपने चतुर्दिक् वातावरण से प्रभावित होते हुए भी अपने जीवन को वे एक-दूसरे ढंग से ही बिताते थे। परिवार से कटकर कुछ भूले-भटके से किसी दूसरी दुनिया की कल्पना में वे सदा डूबे रहते। सभी कला-मर्मज्ञों के वे प्रशंसक और प्रेमी थे, किन्तु एक व्यक्ति और कलाकार के नाते उनका जीवन उन सबसे भिन्न था, उन्होंने अपने में एक विशिष्ट व्यक्तित्व का निर्माण किया था। एक स्थल पर वे लिखते हैं :

"मेरी माँ ने मुझे अपना दुग्धपान कराया, किन्तु मैंने कभी भी अपनी माँ के सदृश बनने की चेष्टा नहीं की, मेरे भ्राता ने मुझे चित्रकारी सिखाई, किन्तु कभी भी मैंने उनकी समानता का गुमान नहीं किया।"

मस्त, मनमौजी, अल्हड़, दुनिया से बेखबर, जब-जब मनीषी दे को उनकी असावधानी और प्रमाद के लिये सचेत किया जाता, तब-तब वे अत्यन्त भोलेपन और प्रमत्तता से मुस्कराकर कहते, 'मुझे तो गुरुदेव भी सुपथ पर लाने में असफल रहे, फिर अन्य व्यक्तियों की तो गणना ही क्या है।'

•

बाल्यावस्था में माता-पिता को उनकी ओर से निराशा ही रही, क्योंकि वे अत्यन्त स्वच्छन्द एवं अन्तर्मुखी पलायन मनोवृत्ति के व्यक्ति थे। उनका जीवन संतुलन कभी सम न हो सका। अभी तक, आयु की प्रौढ़ता में भी उनमें बालकों जैसी हठ और स्वेच्छाचारिता है। वे सदैव जीवन में विद्रोही ही बने रहे।

किन्तु इस सब के बावजूद वे भारतीय कलाकारों की दृष्टि में अत्यन्त सम्मानित एवं श्रद्धा के पात्र हैं। यद्यपि इनकी शिक्षा-दीक्षा शांतिनिकेतन में हुई और अवनीन्द्रनाथ ठाकुर उनके प्रथम शिक्षक थे, फिर भी वे बंगाली कलाकार क्षितीन्द्र मजूमदार और सुरेनकार की भाँति उनके प्रथम अनुयायी होने का गौरव प्राप्त न कर सके।

उनकी प्रारम्भिक कृतियों में तो उनके शिक्षक के प्रभाव की झलक मिलती है, किन्तु शीघ्र ही वे एक विभिन्न दिशा की ओर अग्रसर हुए, उन्होंने अपने लिए एक-दूसरा ही मार्ग चुना, जिसमें कि चित्रकला की बहुविध सम्मिश्रित प्रवृत्तियों का आभास मिलता है। वास्तविक बात यह है कि मनीषी दे ने चित्रकला का अध्ययन कभी भी गम्भीरता पूर्वक नहीं किया, चित्रकला तो उनके लिये 'हाबी' थी, मनोरंजन की वस्तु, वे इससे खेलते, मन बहलाते और आमोद-प्रमोद करते थे, इसमें उनकी अन्तर्वृत्तियाँ विश्राम पाती थीं, लय हो जाती थीं।

मयूर

जन्मजात विलक्षण प्रतिभा सम्पन्न व्यक्तियों की भाँति उनमें चित्र बनाने की कभी-कभी बलवती आकांक्षा जाग्रत होती और इस धुन में वे विभिन्न शैलियों एवं विभिन्न विधाओं पर दर्जनों चित्र बना डालते। मस्तिष्क की बौखलाहट में किसी एक पद्धति का अनुसरण उन्होंने कभी नहीं किया। प्राय: उन्हें यह भी ज्ञात नहीं होता था कि वे किस विषय को चित्रित करेंगें। अपने इच्छित विषय एवं अभिप्रेत वस्तु की कल्पना वे कभी-कभी ही कर पाते थे। उन्होंने व्यर्थ सोचने में कभी अपना दिमाग़ नहीं खपाया।
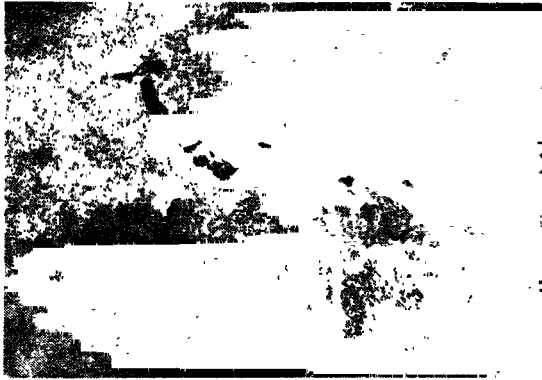
अपनी तूलिका और रंगों से वे तब असंख्य चित्र बनाते और बिगाड़ते थे। कभी-कभी रंगों को इस खूबी से फैलाते कि किसी मनोरम वनस्थली को एक सुन्दरी, संकोचशीला नारी के रूप में परिणत कर देते अथवा नारी के सौंदर्य के परिप्रेक्ष्य में वहाँ के वातावरण को आँकते और उसमें कमनीय सौंदर्य सुमनों की सुगंध बिखेर देते। उनके जीवन में एक ऐसा भी समय था जबकि वे इन खेल-चित्रों के अतिरिक्त और कुछ भी पसन्द नहीं करते थे।

उनके अस्थिर और उच्छृंखल जीवन की भाँति उनका चित्रकारी करने का तरीका भी बहुत ही विचित्र और अस्थिर होता था। प्रायः वे किसी-किसी चित्र पर घण्टों परिश्रम करते, किन्तु अपनी अस्थिर चित्तवृत्ति के कारण वे उसे बिना सोचे-समझे ही फाड़ डालते अथवा क्षणिक आवेश में अपनी अन्तरंग सहजात परोपकार वृत्ति से प्रेरित होकर मन की प्रसन्नता के लिए वे अपनी सर्वोत्कृष्ट चित्रकारी को भी किसी को देने में न हिचकते थे।

वे अत्यन्त भावुक और चंचल प्रकृति के थे। उनका न तो कोई निश्चित ठिकाना ही था और न कोई निश्चित पता ही। वे खुश मिजाज, निश्चिन्त और मनमौजी थे। आज यहाँ तो कल वहाँ—यही उनका सदैव जीवन-क्रम रहा। वे जिससे भी मिलते—दिल खोल कर, वह उनके सौजन्य से मुग्ध हुए बिना नहीं रहता।

मित्रता में वे सदैव खुश किस्मत रहे। कभी किसी ने उन्हें धोखा नहीं दिया। उनके सर्वाधिक हितैषी टाटाओं के स्वर्गीय जाल नौरोजी थे जिन्होंने सदैव उन्हें अपने पाँवों पर खड़े होने की सीख दी। उन्होंने मनीषी दे को व्यावसायिक कलाकार होने का प्रोत्साहन दिया, जिसका परिणाम यह हुआ कि उन्होंने विज्ञापन के नमूनों का एक नया तरीका खोज निकाला और उनकी पोस्टर-तस्वीरें समस्त देश में चित्रकला का आदर्श प्रस्तुत करने में समर्थ हुईं। भारतीय नारी की विविध भंगिमाओं एवं मुद्राओं का इन्हें इतना सुन्दर और गहरा अध्ययन है कि लोगों ने ऐसे चित्रों को बहुत अधिक पसन्द किया और उनकी खूब माँग की। वे केवल टाटाओं के लिए ही आकर्षक पोस्टर तैयार नहीं करते थे वरन् बी० बी० एण्ड सी० आई० रेलवे, टेक्सटाइल मिल्स और कारखानों के लिए भी विज्ञापन तैयार करते थे।

उनके जीवन की यह भी एक विचित्र घटना है। यह ही समय ऐसा था, जब कि उन्हें खूब आर्थिक लाभ हुआ। किन्तु इन सब बातों से उनका चित्त अशान्त रहता था। उन्हें अपनी आत्मा से भीषण संघर्ष करना पड़ रहा था।

और अपनी विद्रोही प्रकृति को दूसरी दिशा में बरबस मोड़ना पड़ रहा था, किन्तु तत्काल ही उन्होंने जीविकोपार्जन का मोह छोड़ दिया और इस प्रकार धन कमाने के लिए अपनी आत्मा का हनन नहीं किया। गलियों में भटकते हुए, भूख-प्यासे रह कर और रात्रि में बिजली के खम्भों के सहारे बैठ कर वे अपनी कला का विकास करने में अधिक गौरव एवं सुख का अनुभव करते।

व्यावसायिक कला उनका उद्देश्य नहीं था। उन्हें इस व्यापार से घृणा थी, यद्यपि उन्हें इस दिशा में पर्याप्त सफलता मिली। उनकी सर्वोत्कृष्ट कृतियाँ उस समय की हैं, जब कि वे दक्षिण भारत अर्थात् बम्बई और ग्वालियर में रहा करते थे। उस समय उन्होंने मानव-जीवन और प्रकृति का सूक्ष्म चित्रण किया और भारतीय नारियों की विविध भावभंगी एवं मुद्राओं को प्रदर्शित किया।

उनके बम्बई के प्रवास का समय अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि उनकी विलक्षण प्रतिभा एवं कला की गहराई का लोगों को उसी समय परिज्ञान हुआ। इस अवधि में उन्होंने अत्यधिक चित्रकारी की, विविध विषयों एवं विभिन्न शीर्षकों को लेकर उन्होंने छोटे-बड़े सभी प्रकार के चित्र बनाए। कुछ तो समाप्त भी नहीं होने पाते थे कि लोग उन्हें उठा ले जाते। आजकल उनके बनाये अनेक चित्र मि० नौराजी, मि० जे० एन० दानी और 'टाइम्स आफ सीलोन' के सम्पादक मि० एफ० आर० मुरेज के चित्र-संग्रह में मिलते हैं। इस समय सम-रंगों का प्रयोग उन्हें अधिक रुचता था। 'शृंगार' इस प्रकार की चित्रकारी का सुन्दर उदाहरण है। किसी भी कला भवन को सजाने में यह पूर्ण समर्थ है। इनके अनेक चित्रों में संवेदनशील मन की महिमान्वित गरिमा एवं आत्मा की करुण चीत्कार है।

अपने ग्वालियर के प्रवास में इन्होंने प्राचीन रूढ़ियों को तोड़ कर एक नवीन मार्ग का अनुसरण किया और अपनी सर्वोत्तम कृतियों से सभी को चकित कर दिया। अनेक चित्रों में इनकी परिपक्व कार्य पद्धति, सशक्त रेखाओं एवं रंगों को प्रयोग करने की उनकी अद्भुत क्षमता और चित्रण में बड़ी ही मोहक संयत संस्थिति दृष्टिगत होती है, आधुनिक कलाकारों की भाँति उनमें विरूपता एवं भौंडापन नहीं मिलता। साठ वर्ष की ढलती आयु में मनीषी दे आज भी स्वस्थ एवं समर्थ हैं। उनमें जोश है, उत्साह है, कार्य करने की क्षमता है। अपने हृदय की मूक अनुभूतियों को, जीवन के क्लान्त उल्लास और तरंगित संगीत को अपनी तूलिका एवं रंगों द्वारा व्यक्त करने में वे आज और भी सजग एवं सचेष्ट हैं।

●

अपने जीवन के बहुमुखी पहलुओं पर दृष्टिपात करते हुए इन्होंने निम्न शब्दों में अपने उद्गार व्यक्त किये हैं—

"जब मेरा जन्म हुआ था तो भयंकर पानी और तूफ़ानी हवा के झोंके समस्त वातावरण को चंचल कर रहे थे, वही तूफ़ान मेरे लिए जन्मघूटी का कार्य कर गया। समूचा जीवन इसी प्रकार तूफ़ानवत् चला आ रहा है और संभवतः इसी प्रकार अन्त तक रहेगा।

पनघट से

कला का शौक़ तो बचपन से ही मेरे खिलवाड़ के रूप में रहा। लकड़ी या मिट्टी के खिलौने बड़े प्यार से सजाना और काग़ज़ या भूमि पर खड़िया, मिट्टी, कोयला आदि की सहायता से तरह-तरह की आकृतियाँ बनाना ही मेरा खेल था। इसी प्रकार धीरे-धीरे शौक़ बढ़ा। पहले-पहल शान्तिनिकेतन के ब्रह्मचर्य आश्रम में शिक्षा

पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ। लेकिन पाठ्य-पुस्तकों में दूरन्त शिशु का मनोनिवेश किसी भी प्रकार सम्भव नहीं हुआ। इसीलिए फेल होकर कठिनाई से किसी प्रकार मैट्रिक तक पहुँचे। परीक्षा के बाद रिज़ल्ट लिस्ट में भी अपने को नहीं पाया। मन ने कहा अब स्कूल की पढ़ाई क्या काम की, चलो निकल चलें और बस चल पड़ा। उसी जन्म-जात झंझा के प्रभाव ने खींच कर आदर्श-मूर्त्ति शिल्पाचार्य श्री अव-नीन्द्रनाथ टैगोर की शरण में छोड़ दिया। उन्हीं के आशीर्वाद और पथ-प्रदर्शन ने मुझे आज इस योग्य बनाया कि कुछ कर सकूं। ऐसे गुरुदेव का सम्मिलन भी सौभाग्य की बात थी। गुरु का दान-भण्डार पूर्ण था, दाता भी महान् था, मगर लेने वाले पात्र की ही कमज़ोरी थी।

दर्पण मुद्रा

वे जितना देना चाहते थे वह मेरी शक्ति के बाहर था। मैं न ले पाया, जो कुछ थोड़ा सा पाया उसी में आनन्द विभोर हो गया। कहीं अधिक पाया होता तो शायद पागल हो जाता। जो कुछ भी प्राप्त किया उसी सम्बल को लेकर मैं वहाँ से निकल पड़ा और आज २७ साल के भ्रमण की अनुभूतियों तथा निरन्तर कार्य में ही मुझे पूर्णता की सार्थकता का अनुभव हुआ।"

विदाई

अपने भ्रमणकाल की अनुभू-

तियों का आकलन करते हुए उन्होंने कहा है :

"भ्रमण का मुख्य उद्देश्य था शतधार जीवन को एकमुखी करना। यह एकमुखी जीवन ही मेरे लिए आदर्श रूप चित्रमुखी जीवन है। इस २७ साल में बहुत से देश, विदेश, ज़िले, नगर-ग्राम, पंडित-मूर्ख, नशा-पेशा, मन्दिर-मठ-अखाड़ा, धनी-गरीब, महल-झोपड़ी, गली-सड़क, बगीचा-जंगल, भूख-प्यास, नाना प्रकार के सुख-दुःख सभी देखे। किसी भी अवस्था का निरादर नहीं किया। सभी परिस्थितियों में घुस कर जीवन का नाना रूप देखा। प्रखर ग्रीष्म, आँधी, वर्षा, शीत, न जाने कितनी ही बार आये और चले गये। मगर मेरे कार्य क्षेत्र पर विशेष प्रभाव न जमा सके। कितने ही रोड़े आये और चले गए। संघर्षपूर्ण रात्रि का जन्म, संघर्षमय जीवन के रूप में आज तक संघर्ष ही करता चला आया। इस समस्त गत समय की अनुभूतियाँ मानव ही नहीं जीव मात्र के साथ एक विचित्र उदार प्रीति के रूप में परिणत हुईं। इस कोलाहलमय संसार में भी

अनुराग के पथ पर

एक विचित्र शान्ति, विचित्र रस है। उस रस को मैंने जीव मात्र की उदार प्रीति के रूप में अनुभव किया। उसी उदार प्रेम से मेरा जो सम्बन्ध है उसी सम्बन्ध को व्यक्त करने के लिए मेरे चित्र हैं। प्रीति के अनेक रूपान्तरों को

प्रकट करने के लिए विभिन्न रीतियों से अंकित हर प्रकार के चित्र हैं। यों तो सभी चित्रमात्र समान हैं, मगर मेरे विचार से उन्हीं चित्रों को मैं सबसे बड़े चित्र कहूँगा, जिन्हें हृदय स्वीकार करे, जिनसे बुद्धि का विकास हो, चित्त को शान्ति मिले, दृष्टि का प्रसार हो। इधर देखने में आता है कि कुछ आधुनिक प्रगतिशील कलाकार माडर्न आर्ट के रूप में जो भी अंकित करते हैं उसमें उक्त चारों गुणों का अभाव ही दृष्टगोचर होता है। भयावह यन्त्र-दानव को देखकर मनुष्य आज उद्भ्रान्त हो गया है। साथ ही हमारे मित्र चित्रकार-मण्डल की मति भी भ्रान्त हो रही है। उस उद्भ्रान्त मति-भ्रम का स्पष्ट निदर्शन ही माडर्न आर्ट है।" कला के सम्बन्ध में इनका दृष्टिकोण है—

रूपगर्विता

"कला सत्य पर प्रतिष्ठित है। उस सत्य के मार्ग पर भाव का प्रकाश डालना ही सचमुच कलाकार का उद्देश्य है। सभ्यता मनुष्य का अन्तर्हित अधिकार है। मनुष्य की सभ्यता देश का अलंकार है और शान्ति का अग्रदूत सौन्दर्य है। इसी बहुरूपी सौन्दर्य का खेल ही सृष्टि है। इसी सृष्टि को कला की विशेष दृष्टिभंगी से रंग-रेखा द्वारा अपरूप-रूपेण प्रदर्शित कर मानव समाज के हितार्थ प्रस्तुत करना कलाकार का धर्म है और उस धर्म की रक्षा ही कलाकार की कला-साधना है।"

कला की एकाग्र साधना ही आगे बढ़ाने की एकमात्र कसौटी है। यह किसी शिक्षक से नहीं अंतरंग प्रेरणा द्वारा ग्राह्य होती है, शिक्षक तो मात्र दिशा-निर्देश कर सकता है। उन्हीं के शब्दों में—

"किसी भी शिक्षार्थी को कोई शिक्षक इस साधना की पूर्ण शिक्षा नहीं दे सकता। भाग्यवान शिक्षार्थी भाग्य-गुण से गुरु द्वारा इस साधना का पथ मात्र देख सकता है। गुरु-कृपा, श्रद्धा और एकाग्रता ही एकमात्र पथ-सम्बल है। इसी प्रकार गुरु द्वारा प्रदर्शित पथ पर निरन्तर चलते हुए जो कुछ देखे, जो कुछ अनुभव करे, जो कुछ स्पर्श करे, जो कुछ सुने, पग-पग पर, साधना-पथ पर चलते-चलते मन की झोली में उस अनुभूति का संग्रह करना उचित है। इसी संग्रहकरण को 'स्केच करना' कहते हैं। स्केच की यही स्वच्छ परिभाषा है। इसी प्रकार निरन्तर भ्रमण के बाद मार्ग के किसी भी वृक्ष की शीतल छाया में जब कलाकार विश्राम करेगा तो उसी समय याद करेगा, सोचेगा और मन की झोली में देखेगा कि इस मार्ग में मैंने क्या पाया और क्या देखा, तो मन का पाया हुआ वही संचित रूप मन की भाषा में कागज़ पर रंग-रेखा से स्वतः खिल उठेगा।

इस पथ का कोई अन्त नहीं है। इस आनन्द की कोई सीमा भी नहीं है। देखने की अनेक वस्तुओं में से जिसे भी तुम सत्य रूप से देखोगे उसी में तुम चिरन्तन सत्य को उपलब्ध करोगे। मन-प्राण, निरहंकार, गम्भीर आनन्द से पूर्ण हो उठेगा। तभी यह जीवन शान्तिमय हो सकेगा।"

रामकिंकर बैज

कला के विकासशील रूप तथा उसके विकास की ग्रानुक्रमिकता के तथ्य का पूर्ण ग्राकलन करने के लिए रामकिंकर बैज ने चित्रण ग्रौर मूर्त्ति-निर्माण—इन दोनों की समान महत्ता स्वीकार की है, यद्यपि मूर्त्तिकला के व्यक्त, मूर्त्त विकास में उनकी ग्रपनी मूल ग्रात्मिक एवं भौतिक तदाकारता, संतुलन ग्रौर संस्थिति का ग्रधिक पर्यवसान हुग्रा है। शांतिनिकेतन के कलाभवन में जहाँ इन्होंने कला की शिक्षा पाई है ग्राजकल ये मूर्त्तिकला विभाग के ग्रध्यक्ष-पद पर सुशोभित हैं। इनके द्वारा निर्मित कतिपय रूपाकार यत्र-तत्र शांतिनिकेतन को सुसज्जित कर रहे हैं ग्रौर इन मूर्त्तियों में इस गम्भीर साधक के ग्रपूर्व कला-ग्रनुष्ठान की सहज ही झाँकी देखने को मिलती है।

चित्र हों ग्रथवा मूर्तियाँ—उनमें सर्वत्र पलायन, ग्रन्तर्मुखता ग्रौर रहस्यात्मक ग्रात्मतुष्टि का ग्राभास मिलता है, मानो कला के इन दोनों पक्षों की संयुक्त क्रियाशीलता में स्वरूप विधान की ग्रपेक्षा इनकी ग्रर्द्धजागृत भावनाएँ भीतर की सूक्ष्म चेतना में भावात्मक ग्रौर ग्रनुभूतिमूलक विश्रांति खोजने का ग्रधिक प्रयास कर रही हैं। कान्दिस्की ग्रौर मार्क्स क्ली की भाँति इनकी शिल्प दृष्टि ग्रत्यधिक ग्रन्तर्दर्शी है। कुछ के मत में इनकी कुंठित ग्रात्माभिव्यक्ति में ग्रसमय प्रौढ़ का सा दुराग्रह ग्रौर रूढ़िवादिता है, फलतः इनकी कलाकृतियाँ कभी-कभी भावशून्य ग्रौर ग्रग्राह्य सी हो जाती हैं। रूप-व्यापार-विधान में इनका प्रत्यक्ष बोध न होकर ग्रात्मगत भाव है, ग्रपनी ग्रन्तस्सत्ता को विस्मृत कर ये वस्तु की भावात्मक सत्ता में खो जाते हैं। 'शीतकालीन मैदान', 'मेघाच्छन्न संध्या' ग्रौर 'निर्माण' (कम्पोज़ीशन) ग्रादि चित्रों का ज्यामितिक रेखांकन ग्रजीबोग़रीब हैं जिनमें इनकी सौंदर्य-मान्यता का व्यंजक विश्लेषण तार्किक पद्धति पर साध्य हुग्रा है। 'माँ-बेटा' ग्रौर 'कृष्ण जन्म' ग्रादि चित्रों में रामकिंकर ने 'घनाकृति-वाद' (क्यूबिज़्म) का प्रश्रय लिया है। ग्रसामान्य चिंतक के सचेत प्रमाद में डूबी इनकी निष्प्रभ, खोयी-खोयी सी ग्राँखें ग्रौर कार्यव्यस्त उंगलियाँ भावना, ग्रनुभूति ग्रौर संवेदना से प्रचालित होकर यों सौंदर्य का ग्रन्वेषण करती प्रतीत होती हैं कि ग्रंतःरूपों का उलझाव बाहरी वैविध्य में ग्रात्मसात् हुग्रा सा लगता है।

पर यही सचमुच इनके चित्रों का आकर्षण और मार्मिक कचोट है।

कहना न होगा—रामकिंकर की प्राथमिक उत्फुल्लता क्रमशः ह्रास को प्राप्त होकर इतिवृत्तिमयी गति से समाच्छन्न नीरसता में परिणत होती गई है। इनकी पहले की चित्रकृति 'कुत्ता और बालिका' में जो आकर्षण और सादगी है तथा 'पिकनिक डे' में जो ताज़गी और स्निग्ध चिंतनशीलता है वह इधर की नई कलाकृतियों में वर्ज्य सी हो गई है, लगता है जैसे नैराश्योन्मुख सघनता और अंतर की कुण्ठा के कारण कलाकार की कोमलता पर मुर्दनी छा गई है। उनकी सौन्दर्य-वृत्तियों में भी तनाव आ गया है, भय है कि चित्रण को परिप्लावित करने वाला इनकी आर्द्र भावनाओं का स्रोत सूख कर सर्वथा बंजर मरुभूमि न हो जाय और इनकी उत्तरोत्तर बढ़ती अंतर्मुखता एवं गम्भीर अभिव्यक्ति इनके चित्रों को नितान्त शून्य और अर्थहीन न बना दे।

पिकनिक

लेकिन जहाँ श्रमिकों और मेहनतक़श किसानों का चित्रण इन्होंने प्रस्तुत किया है, वहाँ इनके कृतित्व में सजीव यथार्थता के दर्शन होते हैं। 'संथाल परिवार' और 'फसल के बाद दोपहर की विश्रांति' में शोषण-दैन्य के मानव प्रतिरूपों की सुन्दर अभिव्यंजना हुई है। इनकी यथार्थ की पकड़ खरी उतरी है और सामान्य जन-जीवन का इन्होंने बड़ा ही स्वस्थ चित्रण किया है।

पर निःसन्देह चित्रों की अपेक्षा मूर्त्तियों में अपने संकल्प और ज्वलंत चिंतन को ये अधिक सफलता से प्रतिफलित कर सके हैं। मिट्टी, बालू, प्रस्तर, कंकरीट, मसाले आदि पर टाँकी और छेनी से जो विभिन्न आकृतियाँ उत्कीर्ण की हैं वे इनकी सच्ची लगन, अध्यवसाय और तन्मयता की द्योतक हैं। मूर्त्ति-निर्माण की ओर इनका स्वाभाविक झुकाव है और यह इन्होंने अपने प्रयत्न से साधा है। प्रतिमाओं की गढ़न, शरीर-रचना, अनुपात, अंग-प्रत्यंग के उभार, सुस्पष्ट

गठन और उनकी स्थितिजन्य लघुता एवं दीर्घता में एक सुविचारित योजना है, फिर भी रामकिंकर की रेखाओं की वक्रता में कुछ ऐसा ढंग अख्तियार किया गया है जो कुतूहल जगाता है। व्यक्तियों के रूपाकारों के अनुचित्रण भले ही वास्तविकता की कसौटी पर मूर्त्तिकला के प्रतिपादित लक्षणों के अनुरूप न उतरे हों, पर यह तो निर्विवाद है कि यथातथ्य के संश्लिष्ट साम्य में वे बाहरी समता नहीं खोजते। भाव और व्यंजना में रामकिंकर एकदम मौलिक हैं और मौलिकता की झोंक में कितने ही बालू के आकार बनाते और मिटाते रहते हैं। कुछ आलोचकों की राय में उन पर 'सर्रियलिज़्म' (अतिवस्तुवाद) का प्रभाव है, लेकिन यही संगत शब्दों में कलाकार का निष्पक्ष, निर्मम बुद्धिवादी दृष्टिकोण कहा जा सकता है। किसी भी वस्तु का मूल्य क्या है, आधार क्या है—इसकी इन्होंने कभी भी पर्वाह नहीं की। प्रस्तुत साधनों व उपकरणों में प्रत्यक्ष रूप-विधान को वे उतना महत्त्व नहीं देते जितना कि अनुभूत रूपों को कल्पना द्वारा प्रत्यक्ष से कुछ भिन्न अथवा अभिनव रूप में व्यंजित करने में।

भावात्मक प्रयास

जब टैगोर का पोर्ट्रेट इन्होंने तैयार किया था तो स्वयं टैगोर ने इनसे कहा था—"रामकिंकर, अब पीछे पलट कर मत देखो, आगे बढ़ जाओ।" और सचमुच बिना पीछे मुड़े ये आगे बढ़ गए थे। वे कहते हैं मूर्त्तिकार बनने के लिए जब तक खुद मिट्टी तैयार न करो, खुद बनाओ-बिगाड़ो, जब तक तसल्ली न हो खुद साँचे को ढालो, पत्थर काटो, लकड़ी काटो, लोहे के तारों से कुश्ती करो तब तक इस कला में निष्णात होना

कठिन है। एक अन्य स्थल पर इन्होंने कहा है—"देवी-देवताओं की मूर्त्ति बनाने में पूर्व देवी-देवताओं को मन में आसन दो, वरना बनाते हैं—सरस्वती और मन में है राक्षस।" वे वस्तु का सम्बन्ध बाह्य से नहीं अभ्यन्तर से मानते हैं, अतएव जब तक वे विषय को आत्मसात् नहीं कर लेते, उसमें रम नहीं जाते तब तक उन्हें कार्य करना नहीं रुचता। किसी भी कला की प्रचलित परिपाटी के संकुचित दायरे से बाहर वे नूतनता की सृष्टि में प्रयत्नशील रहते हैं। उन्हें कला की बँधी लीक से नफ़रत है। प्रतीकों के प्रयोग और उनकी व्यंजना में वे अतिशय स्वच्छन्द हैं, पर जब तक इनकी कृति में अन्तर्नुभूतियों की पूर्ण परिणति नहीं हो जाती तब तक इन्हें कला का आस्वाद और आत्मतोष नहीं हो पाता। जैसे इनका अन्तर निश्छल है, ठीक वैसे ही इनके रूपाकार भी बनाव-शृंगार के बिना अदम्य शिल्प-सौंदर्य से युक्त हैं। कतिपय 'वाद' और कट्टरपंथी परम्पराओं को चुनौती देते हुए इनके कृतित्त्व में वह विराट् अंतर्गूढ़ जीवन-दर्शन है जो इनके अटूट आत्मबल और आत्मविश्वास से प्रेरित होकर मौजूदा युग की पगध्वनि से अधिक बुलन्द हो उठा है।

किरण सिन्हा

किरण सिन्हा ने शान्तिनिकेतन की कला-परम्परा को अपने ढंग से आगे बढ़ाया है। चित्रकार, मूर्त्तिकार, व्यावसायिक कलाकार जिन्होंने भित्ति-चित्रों और स्मारक प्रतिमाओं के निर्माण में दक्षता हासिल की है, लगभग २५ वर्षों से इस दिशा में अग्रसर हैं। सन् १९३६ में इन्हें साइनो-इण्डियन कल्चरल सोसाइटी की ओर से छात्रवृत्ति प्रदान कर चीन की क्लासिकल पेंटिंग के गम्भीर अध्ययन के लिए वहाँ भेजा गया था। तभी से इन्हें चित्रण की सूक्ष्मताओं और उसके गहरे विश्लेषण में दिलचस्पी है। लोककला की ओर भी इनकी गहरी अभिरुचि है जिसका श्रेय इनकी माता को है जो कि स्वयं एक दक्ष लोक चित्रकार थीं। भारत सरकार ने इनके कतिपय चित्रों को रूस, इण्डोनेशिया और यूगोस्लाविया की सरकार को भेंट रूप में दिया है।

संथाल औरतें

इनके चित्रण की खूबी सर्वसामान्य और रोजमर्रा की ज़िन्दगी में नित्य नज़रों के सामने से गुज़रने वाले वे नज़ारे हैं जिन्हें स्मृति पटल से मिटा नहीं सकते, जो बरबस प्राणों को कचोटते हैं, आत्मा में अविभाज्य रूप से धँस जाते हैं और जिनसे सहसा पलायन करके कहीं दूर नहीं भागा जा सकता। काल की अराजकता ने भले ही भारत की मूल संस्कृति को झकझोर दिया हो, किन्तु जीवन का सत्य हर युग में विभिन्न प्रकार से मानव ने स्वीकार किया गया है। मनुष्य जब विषम परिस्थितियों से घबरा

जाता है तो उसकी आत्मा ऐसे स्वप्न संसार को खोजने निकलती है जहाँ उसकी क्लान्त मनः स्थितियों को विश्राम मिले। जन-जन की आत्मा से तादात्म्य स्थापित कर कला उच्च धरातल को छूती हुई जीवन तथ्यों का मार्मिक उद्घाटन करती है।

यही सामान्यता किरण सिन्हा की असामान्यता है। इनके कृतित्व में सर्वत्र मानवीय रूप बिखरा मिलता है। आधुनिक जीवन की अनेक समस्याओं से सम्बन्धित बौद्धिक कशमकश आज के अनुभवों का अंग है जिसने कला को बुरी तरह आक्रान्त किया है। उसका उपयोग तो बौद्धिक उड़ान वाले तर्कशील कलाकारों के लिए ही है। निरी बौद्धिकता के बदले अनुभूतिजन्य बोधवृत्ति को लोकर सृजन के रसास्वाद से हम वंचित होते जा रहे हैं जिसने कलात्मक रुचियों को असंतुलित कर दिया है। इसका उपाय क्या है? एकान्त साधना द्वारा इस युग में भी इस खोई दुई क्षमता को प्राप्त करना। थोड़ी सी श्रम-साधना द्वारा कला के इस चरम निष्कर्ष तक पहुँचा जा सकता है जिससे यह प्रत्यक्ष प्रमाणित हो सकता है कि कला हृदय को प्रभावित करती है, न कि मस्तिष्क को। राजस्थान में जब कुछ समय के लिए इनका वहाँ प्रवास था तो वहाँ के जन-जीवन में आनन्द की विविध और बहुमुखी धाराएँ इन्हें प्रवाहित होती हुई मिलीं। राजस्थानी महिलाओं की सक्रिय चेष्टाओं का उल्लेख करते हुए इन्होंने लिखा—"उनमें से अधिकतर अपने सिरों पर तरबूज़ रखकर नगर के बाज़ार में बेचने के लिए ले जाती हैं। यह उनके जीवन का एक पक्ष है। उनमें से अधिकतर सुन्दर और स्वस्थ चेहरे वाली हैं। वहाँ भी उन पर सूर्य चमकता है और मैं आनन्दविभोर होकर उनके चित्रों का निर्माण करता हूँ। मैं उनके घाघरों, चोलियों और यौवनोन्मत्त सुडौल अंगों पर धूप दिखाता हूँ।"

हावड़ा पुल के नीचे

किरण सिन्हा ने राजस्थानी और संथाल जीवन की अछूती भंगिमाओं को आँका है। 'तीसरे

दर्जे में यात्रा', 'नहर खोदने वालों का परिवार', 'वर्षा ऋतु में संथालिनें', 'बूढ़ा माली', 'रेत निकालने वाले', 'स्वर्णिम प्रकाश' और कितने ही पेंसिल स्केचों एवं काष्ठशिल्प के माध्यम से गढ़े गए आकारों तथा भित्ति-चित्रणों में इन्होंने रूप-बहुलता और उन्मुक्त चेतना का परिचय दिया है। 'दो फलवती स्त्रियाँ' नामक इनका एक चित्र आस्ट्रेलिया की कला प्रदर्शनी में बहुप्रशंसित हुआ।

इन्होंने कलम-स्याही और ब्रुश के प्रयोग भी किये है। राजस्थान में इन्होंने रंगीन मिट्टी और अनेक मिश्रणों के माध्यम से सूक्ष्मताओं को उभार कर दर्शाने में दक्षता प्राप्त की। फ्रांसीसी कला धारा की 'बिन्दुवाद' पद्धति को इन्होंने देशी ढंग से विकसित करने का प्रयास किया है। टेम्परा के अतिरिक्त मिट्टी और तेल के मिश्रण से इन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं, रंगों में वैविध्य और परिपक्वता को प्रश्रय दिया है, साथ ही अपनी अभिव्यक्ति का क्षेत्र विस्तृत बनाया है।

कला का उद्देश्य मानवीय संवेदनाओं को जगाना है, पर दयनीय, क्लान्त, आर्त्त अथवा संत्रस्त करने वाली चेष्टाएँ उनकी सहज संवेदना पाने के लिए अभीष्ट नहीं हैं, वरन् उसमें कुछ ऐसे चमत्कारिक तत्त्व होने चाहिए जो दर्शक के अन्तर को द्रवित कर दें। कला की प्रवंचना में फँस कर चौंकाने की प्रवृत्ति गर्हित हैं, क्योंकि सच्चा पारखी सहज मानवीयता से प्रभावित होता है, कौतूहल से नहीं, अतएव अतिरंजित तत्त्वों को कभी शह नहीं देनी चाहिए। उन्हीं के शब्दों में—"जब कोई कलाकार चाहे जिस युग का वह क्यों न हो, ईमानदारी के साथ चित्र बनाता, आँकता या ढालता है तो उसका चित्र कभी पुराना नहीं पड़ता। उसकी कृति आने वाले सभी युगों में नई बनी रहेगी, क्योंकि उसकी कला में शाश्वत की शक्ति विद्यमान है।"

चीन से लौट आने के पश्चात् मद्रास के बेसेंट थियोसाफिकल कला-प्रशिक्षणालय में जब ये कला शिक्षक का कार्य कर रहे थे तो इनका परिचय एक वियना युवती से हुआ जो क्रमशः प्रणय और अन्त में सुखद परिणय में परिणत हो गया। दोनों ने श्रमसाध्य यात्रा-पथ पर दृढ़ कदमों और परस्पर सहयोग से कला-साधना के पथ को प्रशस्त किया है। एक दूसरे के प्रेरक और पूरक बन कर शांतिनिकेतन के समीप 'बुलबुल स्टूडियो' की स्थापना कर आज भी यह कलाकार-दम्पति कला-साधना में अनवरत रत है।

कलकत्ता ग्रुप

बंगाल स्कूल द्वारा प्रतिपादित कलादर्शों और परवर्त्ती शांतिनिकेतन शैली का एक लम्बे अर्से तक यथोचित निर्वाह होता रहा, किन्तु कालान्तर में उसके कुछ समर्थकों के दुराग्रह ने तथाकथित सृजन-प्रक्रिया को इतना रूढ़ और अनुल्लंघनीय बना दिया कि उसमें क्रमशः उस वैविध्य का अभाव होता गया जो पूर्ववर्त्ती कलाचार्यों की विशेषता थी, साथ ही जिन्होंने उसे अपने देश की लोक संस्कृति के तत्त्वों से संश्लिष्ट किया था। ज्यों-ज्यों वे निर्जीव शिल्पाभास के छोर पर पहुँचते गए, उधर स्वभावतः ही अत्याधुनिक कला-प्रवृत्तियाँ इस रूढ़ मनोवृत्ति से परे पाश्चात्य परम्पराओं के प्रश्रय में एक सर्वथा नये ढंग से विकसित होती रहीं।

रूढ़ि विरोधी और युगीन विचारों की प्रतिक्रिया ने कला की आधारभूत कल्पना में एक अभिनव क्रान्तिकारी परिवर्त्तन उपस्थित कर दिया था। पहले के समूचे प्रतिबन्ध अमान्य सिद्ध हुए और कल्पना की उन्मुक्ति का तर्क ही सर्वोपरि माना गया। फलतः 'कलकत्ता ग्रुप' के कलाकारों ने नया रूप-विधान, नये रागात्मक सम्बन्धों के कारण नवीन परिस्थितियों के परिप्रेक्ष्य में निजी कलारूपों को स्वच्छन्द रूप से निरूपित किया। एक तो बँधी बँधाई परिपाटी के विरुद्ध नये कलादर्शों का आग्रह था, दूसरे कला की सृजनात्मक दिशा में अवरोध उत्पन्न हो गया था, इसके अतिरिक्त नव्य विचारधारा के लोगों ने बुजुर्ग पीढ़ी के कलाकारों के आचार्यत्व का दबाव भी महसूस किया था। कदाचित् इसी दबाव के फलस्वरूप नये कलाकार कला के क्षेत्र में एक नई चुनौती के साथ आगे आए। इन उत्साही कलाकारों ने कला-स्वातन्त्र्य और कल्पना के विविध बोध ग्रहण किये और यों मौजूदा जीवन के कितने ही अनुभव अपनी बहुरूपता में अत्यधिक सफलता पूर्वक आँके गए।

इस 'कलाकार ग्रुप' द्वारा मौलिकता की समस्या जो उठाई गई वह वस्तुतः आधुनिक कलाबोध की एक बहुत बड़ी समस्या थी अर्थात् किसी कला-सर्जना की श्रेष्ठता का निर्णय किन मानदण्डों से किया जाय? सूझ की मौलिकता अथवा अर्जित शिल्प-कौशल के आधार पर? नये कलाकारों के तर्क अपेक्षाकृत

पुष्ट थे। कला के समूचे आदर्शों, प्रचलित मान्यताओं और परम्पराओं को चकनाचूर कर वे सर्वथा नये तौर-तरीकों से मुँह तोड़ जबाब देना चाहते थे, अतएव उन्होंने अपने सृजन द्वारा चौंकाने वाले आयाम उपस्थित किये। ये उत्साही कलाकार इस बात से भली भाँति परिचित थे कि उनकी नई कला की कसौटियों में अभी उतनी सामर्थ्य न थी जो जन-मन को बदलने और पुरातन रूढ़ियों को आमूल उखाड़ फेंकने में संभव हो सकती, बल्कि अन्तर को छूने वाले तत्त्वों के समावेश द्वारा वे जनता के मन पर शासन करना चाहते थे जिसमें वे कुछ हद तक सफल हुए। इन कलाकारों ने अपने ढंग से यह सिद्ध किया कि उनकी भावनाएँ कुंठित नहीं हैं और न ही उनकी रचनात्मक शक्तियाँ घिसी-पिटी प्रणालियों में पिसकर निःशेष रह गई हैं, अपितु वे खुली आंख और खुले दिल से दूसरे देशों से बहुत कुछ ग्रहण करने की क्षमता रखते हैं जो समान रूप से आनन्ददायक, रोमांचकारी और स्फूर्तिप्रद है। अतएव स्वतन्त्र मान्यताओं और निजी कलाभिरुचियों को विकसित कर वे रोमांचक विधाओं के साथ आगे बढ़े।

रतिन मित्रा

रतिन मित्रा ने कला के उक्त नवीन स्वरूप की संभावना पर सबसे पहले दृष्टिपात किया। अंतर्मन की प्रेरक शक्ति के कारण उनमें जागरूक सतर्कता और स्वाधीन मतवाद स्थापित करने की सहज जिज्ञासा थी। उन्होंने सामयिक वातावरण की टटोल की, किन्तु इसके ये मानी नहीं कि महज़ बौद्धिकता से सामंजस्य स्थापित कर उनमें निरी रिक्तता अथवा ऐसी नीरसता आ गई हो जो हृदय में न घुले। इसके विपरीत युगीन समस्याओं के नये पहलू, नये संकेत, नये तकाज़े लेकर भी उनमें कलाकार की सहज सरलता, घनीभूत भावुकता और रस से ओतप्रोत भावप्रवणता थी। गंभीर मौलिक चिन्तन लिये उनके रंग-शिल्प में राजपूत कला का सौष्ठव और भाव-निरूपण में बंगाल लोक कला का प्रभाव द्रष्टव्य है। रेखांकन में जितना ही सरल, मुक्त चातुर्य है, रंगों में हल्की सी सिहरन लिये उतनी ही समृद्ध चारुता। अधिक गहरे रंगों से इन्होंने अभिप्रेत वातावरण की सृष्टि की है और मानव-मन की अंतरंग भावनाओं का दिग्दर्शन कराया है। 'संथाल नृत्य', 'बंगाल का नौका दौड़ उत्सव,' 'काश्मीर की मुसीबतें', 'गुलदस्ता लिये लड़की', 'पुर्नमिलन' आदि चित्रों में श्रमशील संयोजन, साथ ही अभिप्रेत वस्तु का गहन उद्देश्य और उसकी मूल भावना में निहित उच्चस्तरीय कलात्मकता भी दृष्टिगोचर होती है।

मित्रा ने युग की समस्याओं और परिवर्त्तित कोणों पर भी दृष्टिपात किया है। परिणामस्वरूप द्वन्द्वात्मक भौतिकवाद के क्रांतिकारी सिद्धान्तों की छाप इनकी कला पर पड़ी है। शोषित वर्ग की नकारात्मक स्थिति, उनकी परमुखापेक्षिता और सामाजिक बंधनों एवं परम्परागत संस्कारों में जकड़ी अवश परिस्थितियों का चित्रण, यथा—कठिन श्रम से थक कर चूर हुआ रिक्शा-चालक या बैल गाड़ीवान, अथवा मिल-कारखानों में काम करने वाले मज़दूर, खेत-खलिहानों में खून-पसीना बहाने वाले किसान—या तो ऐसे लोग जिनके चेहरे पर मायूसी झलकती है या मजबूरी की छाप है। ऐसे भी चित्र हैं, जिनमें कितने ही संघर्षों, आघातों और दायित्यों से गुज़र कर एक विराट् अन्तहीन भागदौड़ दिन-रात चल रही है, कहीं बेगार खट रही है तो कहीं असह्य उद्भ्रान्ति है, फिर भी उनके चित्रण में निरा संत्रस्त अवसाद न होकर एक विशिष्ट गतिशीलता विद्यमान है जिससे स्पष्ट है कि आज का कलाकार जीवन और उससे सम्बन्धित सत्यों को पहले की अपेक्षा अधिक आत्मस्थ करता है, साथ ही यथार्थ की व्याप्त स्वीकृति ने उसमें दायित्त्वों को वहन करने की अटूट आस्था और क्षमता प्रदान की है।

नौका दौड़

लंदन, काबुल और आस्ट्रेलिया में मित्रा कितने ही चित्र प्रशंसित हुए हैं, किन्तु आजकल तो ये विचित्र प्रयोगों में लगे हैं, प्रकृति की क्रोड़ में इन्हें जो कुछ ऊबड़-खाबड़, टेढ़ा मेढ़ा या बेढंगा मिलता है उसे रूप प्रदान कर ये बिल्कुल सजीव बना देते हैं और बहुविध रंगों से उनमें प्राप्त

निर्माण प्रक्रिया

डाल देते हैं। उदाहरणार्थ--पेड़ों की ठूँठों, सूखी बेलों, उपेक्षित तिनकों, टूटी टहनियों और बेकार पड़ी लकड़ियों को तराश कर इन्होंने कितने ही रूपाकारों की सृष्टि की है जो आश्चर्य में डाल देती हैं। थोड़े से परिश्रम से उनमें अभूत पूर्व भावाभिव्यक्ति हुई है। प्रकृति की हरीतिमा और नेत्ररंजक दृश्यों से इन्होंने रंग-विन्यास और रूप-चमत्कार की प्रेरणा प्राप्त की अर्थात् रंगों के नैसर्गिक सौन्दर्य में पैठने की विशिष्ट क्षमता इन्होंने अपने घुमक्कड़ स्वभाव के कारण ही अर्जित की। आज एक प्रमुख रंगशिल्पी के रूप में इनकी तूलिका ने यथार्थ चित्रण में कमाल हासिल किया है। इसका कारण है--इनकी उन्मुक्त जिज्ञासा जो बहुत कुछ समेटकर भी सदैव किसी टोह में रहती है और भीतर के उन्मेष से बाहर की दृश्यमान वस्तुओं का सामंजस्य खोजती रहती है। ये नित-नये प्रयोग ही इनकी कला के संबल हैं जो अटूट साधना और निष्ठा से अहर्निश कला में रत रह कर अपने स्वप्नों को बड़े ही मोहक और आकर्षक ढंग से ये साकार कर रहे हैं।

नारी और नागफनी

गोपाल घोष

कलकत्ता ग्रुप के दूसरे सुप्रसिद्ध कलाकार गोपाल घोष एक नये प्रयोगी हैं जिन पर सामयिक कला प्रवृत्तियों और अनेक कलागुरुओं की क्रियाशील प्रेरणा एवं अनुभूति की छाप है। सर्वप्रथम इन्होंने जयपुर में शैलेन्द्रनाथ दे के तत्त्वावधान में कार्य किया, तत्पश्चात् शाँतिनिकेतन में अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और नंदलाल वसु से ये अत्यधिक प्रभावित हुए। वहाँ से निकल कर देवी प्रसाद राय चौधरी के शिष्यत्व में मद्रास स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए और परीक्षा में विशेषता हासिल की। बहुत दिनों तक इतस्ततः भ्रमण कर तथा अनेक अनुभवों को बटोर ये कलकत्ता जा बसे और अपनी प्रगति व सीमाओं के अनुरूप जागरूक रहकर उसके द्वारा विकसित आत्मविश्वास के आयामों में नये भावबोध और आज की नई चेतना के साथ सौंदर्य और कला की समृद्धि में प्रवृत्त हुए।

घाटी

यद्यपि ये किसी ख़ास कला परम्परा या रीति-नीति से परिचालित नहीं हुए, तथापि इनकी कला में एक विशिष्ट गौरवमयी क्रियाशीलता विद्यमान है। अभिनव कलाधारा के प्रति जहाँ बहुत सी विपरीत धारणाएँ प्रस्तुत की जाती रहीं वहाँ इस विरोध और वैषम्य के बावजूद सार्थक पक्ष के सर्वांगीण तत्त्वों की सहजता को ग्राह्य करना इनका लक्ष्य रहा है।

गोपाल घोष ब्रुश-ड्राइंग में सिद्धहस्त हैं, पर रेखांकन कमाल का होता है। समुचित और आनुपातिक रेखाएँ जिनकी गत्यात्मक लय, सहज सौष्ठव और विलक्षण सजीवता से प्रतीत होता है मानो वे विशृंखलता में व्यवस्था उत्पन्न कर निर्द्वन्द्व निर्बंध लहरियों-सी मुक्त हैं। आनन्द या विषाद, हल्की भावभंगी अथवा गहरी अनुभूति, स्फूर्त्त चैतन्य या अप्रतिम तदाकार चिन्तना सभी इनकी रेखाओं के

विषय हैं। उत्फुल्लता में उनकी रेखाएँ थिरक उठती हैं और शोक में कसमसा-

कर सिहरती सी प्रतीत होती हैं। प्राकृतिक दृश्यों या नेत्ररंजक नज़ारों का चित्रण करते हुए इनकी रेखाओं में वैसा ही वातावरण उत्पन्न करने की गत्यात्मक स्फुरणा है। उनसे कुछ ऐसा बन जाता है जिसमें शास्त्रीय मर्यादा का उतना परिपालन भले ही न हो, परन्तु हर संवेदना एवं हर भाव-भंगी के साथ तादात्म्य स्थापित करने वाली ऐसी स्वाभाविक लय और रागात्मकता है जिन्हें देश काल की परिस्थितियों से ग्रहण करके तथा स्वानभूति और स्वविवेक से आत्मसात् करके मूर्त्त किया गया है। यही कारण है कि गोपाल घोष ने न सिर्फ़ देवालयों और विभिन्न दृश्यों के

चाँदनी रात

पेंसिल स्केच आँके हैं, अपितु जानवरों और पक्षियों की छोटी-छोटी बारीकियों, मानव-मस्तिष्क की विचित्र खामख़ालियों और 'मूड', यहाँ तक कि प्रकृति के समय-असमय व्यक्त रूप-चित्र उनकी ब्रुश-ड्राइंग से उभरे हैं।

इनकी ड्राइंग की सबसे बड़ी खूबी है—सहज प्राकृतिक निरूपण की प्रासंगिकता। रेखाओं के संकुचन, स्थान की विशदता और ब्रुश के कौशलपूर्ण कौतुक को देख कर हमें चीन-जापान की क्लासिकल पद्धति का बरबस स्मरण हो आता है, साथ ही आधुनिक गाजिअर-ब्रज़स्का जैसा रेखांकन-चापल्य दृष्टिगत होता है। महज़ लाइनों के ढाँचे के सहारे इन्होंने रंग भरना नही सीखा, बल्कि दृश्यवस्तु में पैठकर सीधे रंगों को ग्रहण किया। लगता है इनकी आड़ी-तिरछी रेखाएँ जैसे बोलती हैं। आकृतियाँ या दृश्य जो इन रेखाओं में बड़े सहज ढंग से उभर आते हैं वे मानो कलाकार के प्राणरस से एकतान हो उसके अंतरंग भाव को नितान्त जीवंत एवं सुष्ठु रूप में मुखरित करते है। रेखाओं में इन्होंने पशु-पक्षियों को कल्पित संसार की औपचारिक प्रक्रिया से नहीं वरन् हृदय की सहजता से आँका है। इनकी रेखाओं में जो सादगी और ऋजुता है वे वस्तु के संदर्भ में एक विशेष अर्थ रखती है। लोकजीवन में रमकर इन्होंने नैकट्य का जो अनुभव किया इससे रेखाओं की यथार्थता मन को छूती है, दूसरे शब्दों में उनकी अर्थवत्ता कलाकार के जीवन-दर्शन की प्रतीक है, उसके अंतर्वैयक्तिक स्वरों का इतिहास उनमें समाया है। उदाहरणार्थ—जिस चित्र में पछोरने वाली औरतों का दृश्यचित्र हैं उसमें सफेद रंग की गत्यात्मक त्वरा, काले और भूरे रंगों का सजीव संस्पर्श तथा सूखी पीली घास के ढेर को छूते सघन सपाट रंग के झपाटे इनके रंग परिज्ञान के द्योतक हैं। जानवरों की भंगिमाएँ बड़ी ही अजीब जिन्दादिली और सच्ची सक्रियता से आँकी गई हैं। वर्षो पूर्व कलागुरु अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने जो इनको आशीर्वाद दिया था वह वस्तुतः सच्चा साबित हो रहा है। "बहुत बचपन में ही गोपाल घोष के कला-प्रेम और उनकी प्रतिभा देखकर मैंने उन्हें भारत के प्रमुख स्थानों में घूम आने और विविध दृश्यों एवं मंदिरों के पेंसिल स्केच बनाने का आदेश दिया था। मुझे यह जानकर बड़ी प्रसन्नता है कि भ्रमण के पश्चात् इन्होंने बहुत से स्केच बनाये हैं। ड्राइंग की उनमें असाधारण प्रतिभा है और

लैण्डस्केप

यदि वे किसी पाश्चात्य देश में पैदा होते तो उन्हें कला-जगत् में अपूर्व मान्यता मिलती। मेरी हार्दिक सदिच्छा उनके साथ है।"

माखनदत्त गुप्ता

माखन दत्त गुप्ता भी कलकत्ता आर्ट स्कूल की ही उपज हैं, पर उनकी अभिरुचि व्यावसायिक कला की ओर अधिक है। बंगाल के वीरभूम और कौमिला में कुछ समय तक अध्यापक रहने के पश्चात् वे एक अर्से तक एक विज्ञापन एजेंसी में कार्य करते रहे हैं। कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के कॉमर्शल आर्ट डिपार्टमेंट के अध्यक्ष के रूप में भी ये कुछ वर्ष कार्य करते रहे। आजकल दिल्ली पोलिटेकनीक के आर्ट डिपार्टमेंट के अध्यक्ष हैं। यद्यपि इनके दृष्टान्त चित्रों के वस्तुवादी दृष्टि-कोण में एकांगिता रहती है, फिर भी इस सामान्य प्रत्यक्षीकरण में भी द्रष्टा की ग्राहकता अपेक्षित है। माखन दत्त गुप्ता ने विषयगत सौन्दर्य का महत्त्वांकन किया है, पर उसके समन्वयात्मक दृष्टिकोण को व्यापक रूप से समझा है। अपनी हार्दिक ग्राहकता को जब वे उकसाहट भरी अवसन्न मनः प्रेरणा से प्रस्तुत करते हैं तो उसकी द्रुत प्रभावकता इतनी हावी हो जाती है कि उतावली में कौंधते से छितराए ब्रुश के झपाटे गतिमान से प्रतीत होते हैं। उनमें लय के से प्रवहमान वेग के बावजूद डिज़ाइन और रेखांकन में पूर्व कल्पित निर्णीत स्थायिता दृष्टि-गत होती है, साथ ही सुव्यवस्थित क्रमबद्धता के कारण उसके आभास और आकार अनुपात से कहीं बढ़ने नहीं पाते।
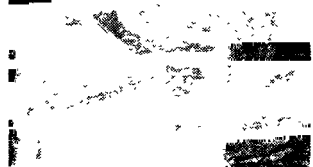
माँ और शिशु

फ्रेंच कलाकार देगाज़ का इनकी कला पर गंभीर प्रभाव पड़ा है, किन्तु मात्र बाहरी हरक़तों में बिजली की सी कौंध पैदा करके ही वे सन्तुष्ट नहीं होते, अपितु अंतरंग सौन्दर्य की सापेक्ष पूर्ति के क़ायल है। जहाँ कहीं इनके रूपाकारों और निर्मिति में गत्यात्मक संयोजन है, वहाँ चुस्त गतिशीलता के साथ ठहराव भी है, पर उनकी जिन कलाकृतियों में इसका अभाव

है वे नितांत अस्पष्ट और रंगों के धब्बों में डूबी सी लगती हैं। उनके प्रतिरूपों में बंगाल की ग्राम्य कला-परम्परा का भी प्रभाव है। कलाकार की कल्पना और अनुभवों के सारतत्त्व के रूप में इन्होंने जनसाधारण की उन भावनाओं का भी उपयोग किया जो बंगाल के अनेक अनगढ़ प्रतीकों और प्रतिमाओं में व्यक्त हुई थी।

रेलवे स्टेशन

इसके अतिरिक्त व्यावसायिक कला ने इनकी आर्थिक परिस्थितियों को सुधारने में मदद की जिससे उनके मन में कोई द्विविधा या छिपा संघर्ष न रहा। अभावग्रस्त कलाकारों की भाँति उनका व्यक्तित्व विश्रृंखल और हीनत्व में न पड़कर अपने क्षेत्र में सर्वथा स्वतन्त्र एवं सम्पूर्ण इकाई के रूप में विकसित हुआ।

परितोष सेन

परितोष सेन ने जिन भावभूमियों पर अपनी वैयक्तिक चेतना को नये माध्यमों से प्रस्तुत किया वह भारतीय क्लासिकल पद्धति, मिस्री, चीनी टेकनीक का प्रभाव और फ्रांस की उत्तर प्रभाववादी शैली से प्रेरित विभिन्न प्रयोगों के रूप में हुआ था। उनके लैंडस्केप चित्रों में अधिकतर वैंगाफ का सा रंग-नियोजन है, पर उनके भित्तिचित्रों में गॉगिन की सी समृद्ध रंगमयता दृष्टिगत होती है।

मालवा की महिलाएँ

इनकी कला पर बाहरी प्रभावों के बावजूद सबसे ज़्यादा बंगाल की ग्राम्य कला का विशेष प्रभाव पड़ा है। अपने अनेक लैंड-स्केप चित्रों में इन्होंने ग्राम्य भावना, रुचि, संस्कृति और मान्यताओं का दिग्दर्शन कराया है। लहराती प्रकाश-छाया, झिलमिल आलोक और चमकीले

रंगों में सहज आकर्षण और स्वस्थ ग्राम्य परम्परा की झलक है। इनके कुछ चित्रों में बंगाली लोककला के अनुरूप सादगी के बजाय अनावश्यक तड़क-भड़क और आधुनिकता का पुट लिये चलचित्रात्मक प्रदर्शन भी द्रष्टव्य है। फिर भी इनकी मौलिक प्रेरणा और शोधक वृत्ति ने दक़ियानूसी, रूढ़ तौर-तरीकों की उपेक्षा की है। 'तुलसी को सींचते हुए', 'अनाज पछोरते हुए', 'चौपाटी की रोशनी' अथवा 'पिकनिक पार्टी' आदि कितने ही चित्रों में आकर्षक सुसज्जा और यथार्थवादी दृष्टिकोण है। इनकी मानवीय संवेदना और दृष्टि का प्रसार जीवन के विस्तार के साथ जुड़ा हुआ है।
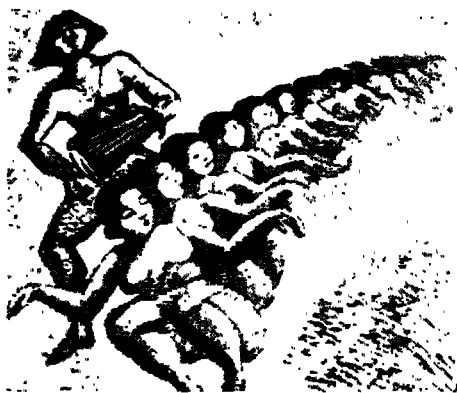
संथाल नृत्य

सेन कलकत्ता ग्रुप के एक होनहार कलाकार हैं। मद्रास आर्ट स्कूल में सुप्रसिद्ध कलाकार देवी प्रसाद राय चौधरी के तत्त्वावधान में ये कला की शिक्षा पाते रहे। इन्दौर के डेली कालेज के फाइन आर्ट्स विभाग के ये अध्यक्ष रहे, पर इन्होंने सर्विस छोड़कर यूरोप का भ्रमण करना श्रेयस्कर समझा। सन् १६४६ से १६५८ तक ये पेरिस में एक स्वतन्त्र चेता कलाकार के रूप में साधना करते रहे। कलकत्ता, लाहौर, बम्बई, देहली, ब्रूसल्स और पेरिस में इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं। कलकत्ता ग्रुप के ये संस्थापक सदस्य हैं और इन्होंने १६५६ में नई

महुआ के बीज पीसती हुई संथाल लड़की

दिल्ली की बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में भी भाग लिया है। इनका अर्थबोध प्राचीन कलादर्शों के साथ नवीनता का भी क़ायल है। परम्परानुमोदित मूल्य मर्यादाओं की निर्णीत परिधि किसी भी सृजन धारा को स्वाभाविक गति से बहने की अनुमति नहीं देती। उसकी सीमा रेखाओं में बँधकर अजनबी कला उपजती है, पर जो मन से निकला है वह सदा ही हवा के पखों पर उड़ता रहेगा, उसकी लय जानी पहचानी होती है, अतएव आज की वस्तुस्थिति की उपेक्षा ये नहीं कर सके हैं, पर सत्य के अन्वेषण में ये अधिक तत्पर और जागरूक हैं।

प्राणकृष्ण पाल

प्राणकृष्ण पाल भी कलकत्ता ग्रुप के सदस्य हैं और आज जिन कलाकारों के हाथों नई कला के प्रमुख अंश का नेतृत्व हो रहा है उसमें इनका भी सक्रिय

नृत्य मंडली

सहयोग है। इंडियन सोसाइटी आफ ओरियण्टल आर्ट में इनका शिक्षण हुआ और सोसाइटी का नोर्मन ब्लाउंट मेमोरियल मैडल इन्हें प्रदान किया गया। भारत की विभिन्न कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया।

इनकी कला कुछ सकुचीली और अभिभूत सी लगती है। अत्यल्प रेखाएँ दमित रंग और सूक्ष्म प्रतिरूपक भावना कलाकार के मन का निरोध व्यक्त करता है जो उनकी पेंटिंग पर छाया हुआ-सा प्रतीत होता है। ये ब्राक से प्रभावित हैं, पर उतनी मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि या गहरी पैठ नहीं है। अतएव वस्तु को चित्रण का निरपेक्ष विषय मानकर दृश्य की विश्लेषणात्मक प्रक्रिया से विच्छिन्न करके दर्शाना निरोध उपस्थित करना है।

माँ-शिशु

प्राणकृष्ण पाल की कुछ कलाकृतियों के दृश्यांकन अस्पष्ट और मनहूसियत भी लिये होते हैं, किन्तु यकसाँ, एकलय गति के वे अच्छे डिज़ाइनर है। 'मन्दिर की ओर' इनकी सुप्रसिद्ध कलाकृति में उपासिका नारियों की भावभंगी और जलूस के रूप में साथ गुज़रने की पद्धति स्वाभाविक और एकरूपता लिये हैं।

सन् १९४० से ये कलकत्ता विश्वविद्यालय की आशुतोष म्यूज़ियम में सर्विस कर रहे हैं और अथक रूप में कला-साधना में जुटे हैं।

कल्याण सेन

कल्याण सेन प्रारम्भ में पटना यूनीवर्सिटी में पढ़े, किन्तु बाद में कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ़ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में दाखिल हो गए जहाँ प्रिंसिपल श्री रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती के तत्त्वावधान में अपनी सृजन-प्रतिभा का परिचय दिया। जब वे सिर्फ़ चौदह वर्ष के थे तभी उन्हें व्यंग्यचित्र बनाने का बेहद शौक़ था और वे इन चित्रों के विषय भी ऐसे ही चुनते थे जो बच्चों से सम्बन्धित अथवा उन्हें मनोरंजन प्रदान करने वाले होते थे। बाद में इन्होंने अनेक कहानियों के दृष्टान्त-चित्र बना कर ख्याति प्राप्त की। ज्यों-ज्यों बड़े होते गए इनका अभ्यास भी परिपक्व होता गया और इनके

कितने ही गंभीर चित्र प्रदर्शनियों और ख्याति-प्राप्त पत्र-पत्रिकाओं में छपने के कारण बंगाल भर में प्रसिद्ध हो गए।

दूर की पुकार

सेन मध्यवर्गीय परिवार में उत्पन्न हुए थे। उन्हें प्रारम्भ से ही ऐसी सुविधा या वातावरण न मिला जो निश्चिन्तता पूर्वक कलासाधना में अग्रसर होने को प्रेरणा देता। पिता की असामयिक मृत्यु ने तो और भी रहा-सहा आधार छीन लिया। सारे परिवार के पालन-पोषण का भार इन्हीं पर आ पड़ा। अतएव अनेक कठिनाइयों और जीवन-संघर्षों में विचलित हुए बगैर ये व्यावसायिक कलाकार के रूप में आजीविका के अर्जन में जुट गए और तब इन्होंने कलकत्ता तथा बाहर की अनेक विदेशी विज्ञापन एजेंसियों में कार्य किया।

१६४७ में सेन सरकारी छात्रवृत्ति लेकर इंगलैण्ड में कला की उच्च शिक्षा प्राप्त करने के लिए रवाना हो गए। लंदन की रायल सोसाइटी मेन्चे-स्टर और लीड्स के कला-समारोहों के अवसरों पर तथा कितने ही विशिष्ट स्थानों पर इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ की गई।

कल्याण सेन ने स्पष्टत: दो कला-पद्धतियों को अपनाया है जो परस्पर पृथक् और असम्बद्ध सी प्रतीत होती हैं। एक ओर बंगाल स्कूल के चटकीले रंग और आलंकारिक निर्माण-प्रक्रिया तथा दूसरी ओर पेरिस स्कूल से प्रभावित पाश्चात्य टेकनीक को पूर्वी कलादर्शो से संश्लिष्ट करना—इस प्रकार सामान्य धरातल पर दो विभिन्न शैलियों को दृष्टि साम्य से एकता के सूत्र में पिरो दिया। 'टेम्स पर रविवार की सुबह' में पाश्चात्य पद्धति अख्तियार की गई है और 'अभिसारिका' में बंगाल स्कूल का प्रभाव है, इसी प्रकार 'सौन्दर्य' में पिकासो और यामिनी राय दोनों की सम्मिलित छाप है। इनकी खूबी है कि इन्होंने शनै:शनै: लगन और परिश्रम शीलता से भारतीय लोक जीवन का पाश्चात्य संस्कारों से सामंजस्य कर एक मनोगत समत्व की स्थिति

प्राप्त की और उसमें ये काफ़ी हद तक सफल हुए।

मुखर सौन्दर्य

साधारण वाटरप्रूफ स्याही, टम्परा और पोस्टर रंगों में अपनी निजी विशिष्ट पद्धति द्वारा इन्होंने सूक्ष्म से सूक्ष्म व्यौरों पर ग़ौर किया है। रूपाकारों और डिज़ाइनों में सौन्दर्यपूर्ण जीवन्त रंग-परिणति की भावना और परिवेश के समीकरण से एक ऐसी आलोक-आभा की सृष्टि की है जो अनिवार्यतः मन पर प्रभाव छोड़ जातीहै। सेन ने ग्राम्य विषयों में अधिक रुचि ली है, परन्तु व्यावसायिक कलाकार के रूप में भी इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है। व्यावसायिक कलाकृतियों की प्रदर्शनी में इन्हें 'विज़िट इंडिया' चित्र पर प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ था तथा १९४६ में 'आर्ट इन इण्डस्ट्री' प्रदर्शनी में कतिपय चित्रों पर पुरस्कार मिला, यहाँ तक कि इन्हें 'ओवरसी स्कालरशिप' से सम्मानित किया गया।

व्यावसायिक कला को अपनाने में प्रायः कला के प्रचार की भावना नीचे दबकर रह जाती है यानी प्रचार मुख्य हो जाता है और कला गौण। परन्तु सेन ने जो बहुत कुछ देखा और अनुभव किया है उसके सूक्ष्म विश्लेषण में वे सिद्धहस्त हैं तथा सामयिक परिस्थितियों के द्वारा दूसरों पर होने वाली प्रतिक्रियाओं के परखने और प्रदर्शित करने में भी विशेष निपुण हैं।

सुनील माधव सेन

सुनील माधव सेन भी कलकत्ता ग्रुप के निर्वाचित सदस्य हैं। पहले इनका इरादा वकील वनने का था और इसी अभिप्राय से १९३७ में इन्होंने वकालत पास की, किन्तु शनैः शनैः इनका झुकाव चित्रकला की तरफ होता गया। सन् १९५० में प्रथम बार इनके चित्रों की प्रदर्शनी हुई, तत्पश्चात् भारत में आयोजित अनेक कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया।

ये भी अपने अन्य सहयोगी कलाकारों के सदृश आधुनिक दृष्टिकोण वाले हैं। ये प्रकृतवादी और यथावत् चित्रण से परे आत्यंतिक अभिव्यक्ति के हामी

हैं और यूरोप की उत्तर प्रभाववादी धारा के क़ायल। इनकी दृष्टि में कला की आधारभूत अभिव्यंजना वे रंग और रेखाएँ हैं जो अन्तरंग अनुभूति को सीधा अभिव्यक्त न कर एक नव्य रूप में प्रस्तुत करती हैं। नये युग के साथ नई विधाओं का जन्म अवश्यम्भावी है, कला की नई संभावनाओं को विकसित करने के लिए नये साधन चाहिए, नई शक्तियाँ मुखर होनी चाहिए। आज जब कि चेतनाकाश की वितृष्णा की उस बेला में देशी-विदेशी कलापद्धतियों की कशमक़श में एक विचित्र अनुभूति और ज्ञान का अरुणादय फूटा है तो इस विषय में कौतूहल, जिज्ञासा, पर साथ ही नई-नई आशाएँ भी उत्पन्न हो उठी हैं। सुनील सेन इसी दृष्टिभंगी से विसंगतियों में संतुलन स्थापित करने के लिए चेष्टाशील हैं।
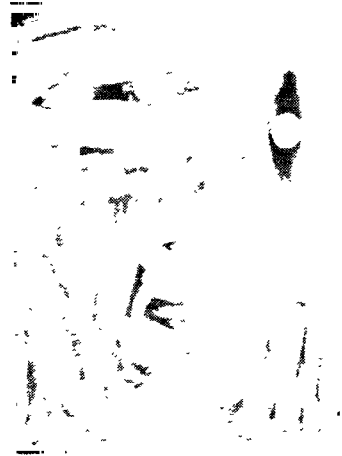
गोवर्द्धन आशु

ये भी कलकत्ता ग्रुप के सदस्य हैं और सन् १९३२ से कला में नये-नये प्रयोग कर रहे हैं। पहले कलकत्ता की व्यावसायिक कलासंस्था में प्रमुख कलाकार के रूप में ये कार्य करते रहे, आजकल इंडियन आर्ट स्कूल, कलकत्ता में कला प्रशिक्षक हैं।

कला जब किसी संकुचित और कल्पना विहीन आदर्शवादी परम्पराओं और रूढ़ प्रणालियों में जकड़ी होती है और उस दिशा में कोई विचारोत्तेजक कार्य नहीं होता तो प्रायोगिक पद्धति पर कला के शैली मूल्यों का कोई नया रूप विकसित होना ही चाहिए। इस प्रकार इनके मत में कला गतिरोध से घिरी नहीं रह सकती, उसे आगे बढ़ना ही है। प्रयोग की दृष्टि से वह सृजन-चेतना महान् है जो परम्परा के सूत्रों से कटकर कुछ नये एकीकृत रूपबंध को स्वीकार कर चलती है। इसी लक्ष्य की ओर उन्मुख होकर ये कला में नित नये प्रयोग कर रहे हैं। भारत के कई नगरों में इनके चित्रों की प्रदर्शिनियाँ हो चुकी हैं। ये मिश्रित रंगों के चतुर चितेरे के रूप में सिद्धहस्त हैं।

निरोद मजूमदार

इन्होंने भी विभिन्न वैदेशिक प्रभावों को आत्मस्थ करके कला के क्षेत्र में अपने श्रेष्ठ निजत्व की स्थापना की है। बचपन से ही इंडियन सोसाइटी आफ ओरियंटल आर्ट में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की और सन् १९३५ में इसी सोसाइटी की ओर से इन्हें नार्मन ब्लाउंट मेमोरियल मैडल प्रदान किया गया। इन्होंने यूरोप का भ्रमण किया, खासकर पेरिस में 'आतेलियेर आफ आन्द्रे लोहते' में कला का प्रशिक्षण लिया, फ्रांसीसी सरकार की छात्रवृत्ति से रिसर्च स्कालर के रूप में ये वर्षों कार्य करते रहे। बारबिज़ोन गैलरी में इन्होंने तीन वर्ष बाद अपने चित्रों की प्रदर्शनी की। सन् १९५० से इनका लन्दन में प्रवास है और वहाँ अपनी चित्रण-सामर्थ्य और नव्य प्रयोगों को इन्होंने कई प्रदर्शनों में प्रस्तुत किया है।

मजूमदार न तो पश्चिमी कला के अन्धानुयायी हैं और न ही किसी कठ-मुल्ला रूढ़ियों से चिपटे रहने वाले परम्परावादी। यदि वे प्राचीन कलादर्शों की प्रशंसा में कुछ कहते हैं तो उसके ये मानी नहीं कि वे पुरातनपंथी हैं, वरन् बुनियादी कला-तत्त्वों में उनकी गहरी पैठ है और भारतीय एवं पाश्चात्य कला के गहरे अध्ययन द्वारा वे इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि मूलतः हर कला प्रतीकात्मक है जो परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न होकर अपने सहज रूप में विकसित नहीं

हो सकती। हमारी सांस्कृतिक कशमकश का प्राणवान सूत्र कला में मूर्त्तिमान है, किन्तु आधुनिक परिप्रेक्ष्य में वह भारतीय परम्परा से किस हद तक भिन्न-अभिन्न रहकर पनप सकती है ? उसका पैमाना क्या होगा ? आधुनिक होना तो अनिवार्य है, पर आधुनिकीकरण का अर्थ पश्चिमीकरण तो हर्गिज़ नहीं। किसी गढ़े-गढ़ाये आधुनिकीकरण के साँचे में कला को ढालना श्रेयस्कर न होगा। अतएव आज के कलाकार को अधिक 'कॉन्शस' होने की आवश्यकता है, उसका सृजन तीखा और मार्मिक होना चाहिए।

निरोद मजूमदार ने पेरिस स्कूल की रेखांकन पद्धति को भारतीय साँचे में ढाला है, मंत्र और यंत्र के आदर्श प्रतीक को अपनाया है, ताण्डवलास्य की भंगिमाओं को अख्तियार किया है। ब्राक़ की भाँति मानसिक प्रखरता और गहरी अंतर्दृष्टि यदि हो तो निर्विवाद रूप से नकली पुनरावृत्तियों से बचा जा सकता है। इनकी 'स्वर्ग' चित्रकृति को देखकर प्रोफेसर ए० एल० बैशम ने कहा था कि भारत में पिछले सौ वर्षों के दौरान इतना सुन्दर चित्र कभी निर्मित नहीं हुआ।

इनकी रेखाएँ लास्य पद्धति पर मुड़तुड़ कर अपेक्षित आकारों में बड़े सुन्दर ढंग से रूपायित होती हैं। यत्रतत्र रंगों के प्रयोग केन्द्र स्थान से उभरते हैं और किसी भी पैटर्न का अनुपात ऐसी गणित या ज्यामितिक पद्धति पर होता है कि हर कैन्वास पर वे 'फिट' हो जाते हैं।

निरोद मजूमदार आजकल इंडिया हाउस आर्ट गैलरी के इन्चार्ज हैं। भारत और विदेशों में आयोजित अनेक कला-प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं। सन् १९४४ में कलकत्ता में और १९५१ में पेरिस में इनके चित्रों की प्रदर्शनी हो चुकी है।

हेमन्त मिश्र

ये भी कलकत्ता ग्रुप के सदस्य हैं। इनकी शिक्षा आसाम के काटन कालेज और एडमंड कालेज में हुई। इन्होंने स्वेच्छया कला को अपनाया और अपनी एकान्त श्रम-साधना द्वारा इस दिशा में प्रगति की। सेना में स्टाफ आर्टिस्ट के रूप में कुछ अर्से तक ये कार्य करते रहे, तत्पश्चात् आसाम सरकार के सूचना और प्रचार विभाग में इनकी नियुक्ति हो गई। इन्होंने कलकत्ता में अपने चित्रों की प्रदर्शनी की और भारत भर में आयोजित कितने ही ग्रुप प्रदर्शनों में भाग लिया।

बहुप्रवृत्तियों के कलाकार

इस विशिष्ट ग्रुप के उपर्युक्त कलाकार सदस्यों के अतिरिक्त कलकत्ते की वर्त्तमान् जीवनधारा में और भी कितने ही उत्साही कला साधक हैं जो कला की मूल प्रेरणा खोजने के प्रयास में नित-नई संभावनाओ को अधिकाधिक जागरूक और सशक्त बनाने के लिए चेष्टाशील हैं। स्वातन्त्र्योत्तर भारत का बुद्धिजीवी कलाकार आगे-पीछे को नकारता हुआ भी किसी आकस्मिक विघटन के लिए तैयार नहीं है, किन्तु इतना वह बखूबी समझता है कि बहुविध परिस्थितियों के आतंक ने परस्पर विरोधी विचार धाराओं में गहरी कशमकश पैदा कर दी है अर्थात् कला की मूल मान्यताओं में खुली टक्कर है जिसमें प्राचीन आदर्श और रूढ़ परम्पराएँ चकनाचूर हुई हैं। नयेपन के औचित्य की आड़ में आधुनिक कलाकार की हठधर्मी अथवा कलामूल्यों की स्तरहीनता ने कला को कुठाओं के कटघरे में क़ैद किया है अर्थात् अपनी व्यक्तिगत रुचियों को प्रश्रय देने के दुराग्रह में मौजूदा कलाकार राष्ट्रीय हितों की उपेक्षा कर बैठा है।

सत्येन्द्र नाथ घोषाल

इन्होंने गवर्नमेंट कालेज आफ आर्टस एंड क्राफ्ट्स, कलकत्ता से डिप्लोमा प्राप्त किया। तत्पश्चात् स्लेड स्कूल आफ आर्ट और गोल्डस्मिथ कालेज आफ आर्ट, लंदन में कला का प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे। यद्यपि ये व्यावसायिक कलाकार हैं, तथापि कला की वारीकियों को इन्होंने हृदयंगम किया है, सीधी सादी फड़कती हुई रेखाओं में सीधेसादे रंगों द्वारा चित्रों में सजीवता लाने की चेष्टा की है। उनके चित्रों में कोमलता उतनी नहीं है जितना कि सुस्पष्ट उभार। चित्रों की अंतरात्मा बोलती हुई भी प्रतीत होती है और सभी आकृतियाँ सक्रिय और मनमोहक दीख पड़ती हैं।

केदारनाथ के मार्ग में यात्री विश्रामस्थल

दिल्ली पालीटेकनीक में कुछ दिन लेक्चरार के पद पर कार्य करने के

पश्चात् कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के फाइन आर्ट और इंडियन पेंटिंग डिपार्टमेंट के अध्यक्ष पद पर इनकी नियुक्ति हुई और तब से वहीं कार्य कर रहे हैं। १९५६ में ललित कला अकादमी की कला शिक्षा संगोष्ठी के संयोजित सदस्य के रूप में ये चुने गए। नई दिल्ली स्थित राष्ट्रपति भवन में एक विशाल भित्तिचित्र 'शक्ति का स्थानान्तरण' बनाने के लिए इन्हें आमंत्रित किया गया। इन्होंने समूचे भारत का दौरा किया। यूरोप और वृहत्तर ब्रिटिश देशों में भ्रमण किया। आर्ट एग्ज़ीविशन ब्यूरो से प्रेरित यूनाइटेड किंगडम में एक चलती-फिरती कला प्रदर्शनी की व्यवस्था की। इम्पीरियल इंस्टीट्यूट गैलरी, लंदन में इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की, दिल्ली और कलकत्ता में भी इनके चित्रों की प्रदर्शिनियाँ आयोजित की गईं। भारत तथा विदेशों के कतिपय महत्त्वपूर्ण कला-संग्रहालयों में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं।

तिब्बत के मार्ग पर चाय की दुकान

इन्द्र डुग्गर

इन्द्र डुग्गर भी कलकत्ता के एक लोकप्रिय कलाकार हैं और स्वतन्त्र रूप से कला की साधना में जुटे हैं। इन्होंने आचार्य नन्दलाल वसु और हीराचन्द डुग्गर की अध्यक्षता मे कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन्हें रामगढ़ और अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशनों के पंडाल को सुसज्जित करने का दायित्व सौंप गया था। सन् १९३९ में कलकत्ता यूनीवर्सिटी इंस्टीट्यूट आफ आर्ट की ओर से स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। यूनेस्को, पेरिस और लंदन में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शिनियों में तो इन्होंने भाग लिया ही, कलकत्ता, दिल्ली, उदयपुर और राजगिरि में अपनी प्रदर्शिनियों के अलावा भारत और विदेशों की कला-प्रदर्शिनियों में भी भाग लिया। इनकी अनेक चित्रकृतियाँ सार्वजनिक और निजी संग्रहालयों यथा—दलाई लामा, राजभवन (पश्चिमी बंगाल), शिल्पी

कला परिषद आर्ट गैलरी और नये जापानी आर्ट एसोसियेशन, टोकियो में तथा अन्य कई प्रमुख कला-संग्रहालयों में सुरक्षित हैं।

राजपूत कुलबधू

हरेन दास

काष्ठ-शिल्प और ग्राफिक कला में ये सिद्धहस्त हैं और विभिन्न शैलियों में बड़ी दक्षता के साथ प्रयोग करने में रुचि रखते हैं। कठखुदाई पर निर्मित नमूने अन्य चित्रों के समान आकर्षक होते हैं। अर्थात् अन्यत्र निर्मित कलाकृतियों के समकक्ष इन्हें रखा जा सकता है। 'दो बहनें', 'एकाकी पहरेदार', 'मेले की ओर', 'बाज़ार की ओर', 'घर की ओर', 'पश्चगामी नेता', 'विजय' आदि विषयों पर काष्ठशिल्प के नमूनों की इनकी एक सुन्दर पुस्तक प्रकाशित हो चुकी है। उसकी हर कृति में मुखर व्यंजना और सुस्पष्ट उभार है। इनकी कला इतनी बोधगम्य और सामान्य धरातल पर है कि जिसका अपना सृष्ट निजी वाता-

वरण है और उसी वातावरण के संदर्भ में आकृतियाँ निर्मित हुई हैं।

इन्होंने कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट में डिप्लोमा प्राप्त किया, तत्पश्चात् ग्राफिक आर्ट में टीचर्स कोर्स पास किया, आजकल उसी कालेज में ग्राफिक आर्ट के ये लेक्चरार हैं। इनके

घर की ओर

बड़े भाई जो इनके संरक्षक थे इन्हें इंजीनियर बनाना चाहते थे। किन्तु अपनी नैसर्गिक प्रेरणा से कला की ओर इनकी रुचि जगी। काष्ठ शिल्प में दक्षता के बावजूद लिथोग्राफ, इचिंग और भित्ति-चित्रण का भी इन्हें परिपक्व अभ्यास है। और ये अपने विद्यार्थियों को वुड-इन्ग्रेविंग और लिथोग्राफी का प्रशिक्षण देने के उत्तरदायी हैं। सन् १९४९ में हैदराबाद कला प्रदर्शनी में

मछली पकड़ते हुए

सर्वोत्तम कलाकृति के लिए स्वर्णपदक, १९५० में पटना की शिल्पकला परिषद द्वारा स्वर्णपदक, फाइन आर्ट्स एकेडेमी द्वारा स्वर्णपदक, दिल्ली प्रदर्शनी में नक़द पुरस्कार और अमृतसर को इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स द्वारा

इन्हें पुरस्कार की नकद राशि प्रदान की गई। इनके मत में–कला जीवन और

बाजार की ओर

जगत् की अभिव्यंजना है अर्थात् कला के माध्यम से ही अनुभूतियों का आदान-प्रदान हो सकता हैं। लोककला और जनता की कला में इनका विश्वास है। जैसे कवि अपनी कविता द्वारा, संगीतज्ञ अपने संगीत द्वारा भीतरी अनुभवों को मुखर करता है उसी प्रकार कलाकार भी अपनी कूची द्वारा अपनी

पश्चगामी नेता

अनुभूतियों को व्यक्त करना है। कलाकार का सच्चा आदर्श अपने रंग, रेखाएँ, रूपाकार, गति और लय में जनता के सुख-दुःखों का, उनकी दैनन्दिन घटनाओं का निदर्शन करना है। इन्होंने राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में तो भाग लिया ही, भारत और दूसरे देशों में समय-समय पर आयोजित कला-प्रदर्शिनियों में भी अपने चित्र प्रेषित किये। नई दिल्ली के नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं।

अतुल बोस

कलकत्ता के य व्यावसायिक कलाकार है, किन्तु तैल, जलरंग और पेस्टल स्केच में इन्होंने विशेषता हासिल की है। इनका प्रमुख विषय शबीह (पोर्ट्रेट) चित्रों का निर्माण है। बड़ी ही सजीव हूबहू छवियाँ इनके द्वारा अंकित होती हैं, इस प्रकार इन्होंने प्रचुर मात्रा में पोर्ट्रेट बनाये हैं। सरकार द्वारा इन्हें शाही पोर्ट्रेट बनाने के लिए नियुक्त किया गया। राजनीतिक नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों और अपने हितैषी मित्रों के पोर्ट्रेट भी इन्होंने बड़ी ही यथार्थ दक्षता से अंकित किये है।

कलाकार की पत्नी

कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से डिप्लोमा प्राप्त कर ये उच्च शिक्षा के लिए रायल एकेडेमी आफ़ आर्ट्स, लंदन भेज दिये गए जहाँ विश्वविद्यालय की ओर से छात्र-वृत्ति लेकर ये कई वर्ष तक अनुसंधान कार्य करते रहे। अनेक महत्त्वपूर्ण एवं मशहूर कला-संस्थाओं से तो ये सम्बद्ध हैं ही, इन्होंने अनेक स्थानीय वार्षिक कला प्रदर्शिनियों के आयोजन की व्यवस्था

उत्फुल्ल बालक (तिब्बती)

भी की है। कलकत्ता की फाइन आर्ट्स एकेडेमी के ये संस्थापक सचिव हैं। गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के कुछ अर्से तक ये प्रिंसिपल भी रहे हैं और इंडियन आर्ट स्कूल के डायरेक्टर भी। कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल हाल और नई दिल्ली स्थित राष्ट्रपति भवन में इन्होंने अनेक प्रमुख राष्ट्रीय नेताओं के प्रतिकृति चित्र अंकित किये है जिनके कारण ये कला-जगत् में अत्यन्त लोकप्रिय है।

दीपेन बोस

तरुण कलाकारों में ये भी पर्याप्त ख्याति अर्जित कर चुके हैं। रोज़-मर्रा के सामान्य विषयों को लेकर दीपेन बोस ने मार्मिक और हृदय को छूने वाले चित्रों का निर्माण किया है। 'नई फसल', 'नगर कीर्त्तन', 'ईद की नमाज़', 'मन-मोहक वंशी', 'गेहूँ पछोरते', 'जीवन की खुमारी', 'नौ का ली ला', 'ओ मा रे र सपना आदि चित्र आधुनिकता के संदर्भ में बहुत कुछ व्यंजित करते हैं। ऐसी घटनाओं को उरेहा गया है और इस प्रकार के कोमल रंग भरे गए हैं जो कला जगत् की

शराब और साकी
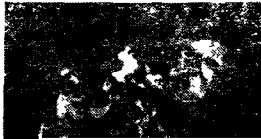
नौका नृत्य

ओमारेर सपना

ईद की नमाज़

एक विशिष्ट उपलब्धि हैं। सामाजिक यथार्थ को, ग्रामीण परिवेश को, अछूते अंचलों की मानवीय संवेदनाओं को अपने चित्रों में अत्यन्त सजीवता से उभार कर दर्शाने में भी ये सिद्धहस्त हैं।
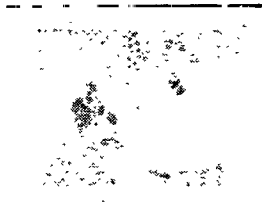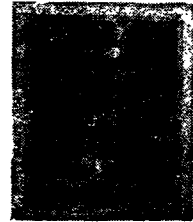
इन्होंने भारतीय परम्परागत प्रणाली को अपनाया है। बचपन से ही कला की ओर इनकी सहज रुचि थी, ये स्वांत:सुखाय इस ओर प्रवृत्त हुए, पर सन् १६४६ से व्यावसायिक कलाकार के रूप में इनका कार्य चलता रहा। आल इंडिया फाइन आर्ट्‌स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, पटना की आर्ट्‌स एकेडेमी द्वारा आयोजित विभिन्न कला प्रदर्शिनियों और भारत सरकार से प्रेरित विदेशी कला प्रदर्शिनियों में इन्होंने भाग लिया। भारत के कई मुख्य नगरों में ये अपने चित्रों की प्रदर्शनी कर चुके हैं।

धीरेन्द्र ब्रह्म

पूर्वी पाकिस्तान स्थित बंगाल के बारासाल जिले के एक छोटे से गाँव में

चतुर्वर्ण

चारों आश्रम

इनका जन्म हुआ। इनकी माँ मानदा सुन्दरी ग्राम्य कला के लिए मशहूर थीं और उनके प्रभाव व प्रेरणा से समूचे परिवार में कला का शौक़ पैदा हो गया था। बालक धीरेन पर भी प्रारम्भ से ही ऐसे वातावरण का असर पड़ा। कुछ बड़े होने पर माता के पास बैठकर इन्होंने चित्र बनाना सीखा। प्राइमरी शिक्षा समाप्त कर गवर्नमेंट आर्ट स्कूल के इंडियन आर्ट डिपार्टमेंट से इन्होंने डिप्लोमा प्राप्त किया। साथ ही टीचर्स कोर्स में प्रशिक्षण पूर्ण किया। इस दौरान इन्हें अनेक छोटे-बड़े पुरस्कार प्रदान किये गए।
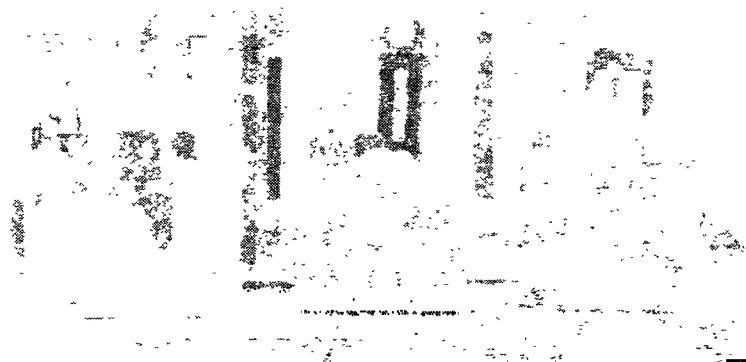
सम्राट् अशोक

सन् १९४९ में बंगाल गवर्नमेंट से छात्रवृत्ति लेकर शांतिनिकेतन में चित्रकारी और शिल्प की ट्रेनिंग ली। तत्पश्चात् भारत सरकार से ढाई हज़ार के स्कालरशिप पर देश की ग्राम्यकला और भवन-निर्माण-शिल्प का अध्ययन करने के लिए इन्हें बाहर घूमने की अनुमति प्रदान की गई। अपनी यात्रा के दौरान इन्होंने अनेक गाँवों, कस्बों, मंदिरों, मठों में घूम-घूम कर ग्राम्य कला के अनेक सूक्ष्म पहलुओं पर प्रकाश डाला और १९५१ में भारत सरकार को विस्तृत रिपोर्ट पेश की। 'चतुर् आश्रम', 'चतुर्वर्ण', 'महात्मा गांधी के जीवन के तीन अध्याय', 'ऋतु-उत्सव', महाराजा अशोक' आदि इनके प्रसिद्ध चित्र हैं जो बहुप्रशंसित हैं और विशिष्ट कला-संग्रहालयों की शोभाभिवृद्धि कर रहे हैं।

राबिन राय

सुप्रसिद्ध बंगाली कलाकार राबिन राय अनेक विषयों में पारंगत हैं। १९३८ मे बम्बई के एक अखबार में लाख से बनी इनकी एक अजीबोग़रीब कृति का

प्रतिकृति चित्र प्रकाशित हुआ जिससे कलाजगत् में तहलका मच गया। अत्यंत दक्ष चित्रकार और मूर्त्तिकार होने के साथ-साथ इन्होंने पत्तियों, शाखाओं, टहनियों, मुड़ी तुड़ी डंठलों आदि के विविध प्रयोग किये हैं। किसी भी मूल वृक्ष की टहनियों, शाखाओं आदि को तोड़ने के पूर्व मूर्त्तिकार की सूक्ष्म दृष्टि से उसे जाँचना-परखना चाहिए। प्रकृति स्वयं एक विराट् निर्मातृ है, उसने स्वभावतः निर्जीव-सजीव वस्तुओं में आकार ढाला है। उनमें प्राण-प्रतिष्ठा की है, कितनी ही कलानिधियाँ हमारी नज़रों से छिपी पड़ी है, केवल वे ही उन्हें देख सकते है जिनके अन्तर में कला या मूर्त्तिकला की सहजात प्रेरणा है और जो अंतर्चक्षुओं से उसे भाँप सकते हैं। 'इलस्ट्रेटड वीकली आफ इंडिया' में इन्होंने अपने लेख के साथ ऐसे लकड़ी के अनेक नमूने पेश किये जो मनुष्य के हाथों से न गढ़े जाकर प्रकृति द्वारा विभिन्न रूपाकारों में ढाले गए और मनुष्य की नजरों से अछूते निर्जन स्थान को आबाद करते रहे। इसी सिलसिले में इन्होंने पत्थर के एक दैत्य के सिर का उद्घाटन किया, सीली दीवारों, मिट्टी के ढूहों और प्राकृतिक स्थलों पर इन्होंने ऐसी ही चित्रकारी और प्रतिमाओं की ओर जनता का ध्यान आकृष्ट

एक रोज के सेब

बंगाल का अकाल

किया। अवनीन्द्र नाथ ठाकुर ने इनकी ऐसी चीजें बहुत पसंद की और प्रशंसा में कई पत्र लिखे। वे स्वयं भी ढलती वय में प्राकृतिक कला की दिशा में प्रवृत्त हो चुके थे। उन्होंने लिखा—"चूँकि तुम एक सच्चे कलाकार हो तो यह रहस्य जो मैंने किसी को आज तक नहीं बताया वह तुम्हें लिख रहा हूँ कि 'यात्रा का अन्त' नामक अपना चित्र मैंने पत्थर के टुकड़े के 'स्ट्रोक्स' से निर्मित किया था।
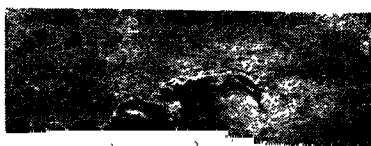
यदि इन 'ग्राटो पिक्चर्स' की कभी तुम पुस्तक प्रकाशित करो तो मुझे ही भेंट करना। मेरी सद्भावना और आशीर्वाद तुम्हारे साथ है चूंकि तुमने प्रकृति के रहस्यों को पा लिया है और प्रकृति निर्मित और मनुष्य निर्मित वस्तुओं में कितना साम्य है, कैसा साधर्म्य और एकरूपता है—इसे तुम जैसे सूक्ष्म द्रष्टा कलाकार की पैनी आँखें ही पा सकती हैं।"

राबिन राय राजपुत्र हैं। ऊँचे घराने में पैदा हुए और सुखों में पले, फिर भी कला के प्रति अपनी गहरी निष्ठा के कारण ठेठ मजदूर की भाँति श्रम-साधना में जुटे रहते हैं, इन्होंने अनेक मर्त्तियों का निर्माण किया है। बाहरी व्यक्तियों और मिलने जुलने वाली मित्रमंडली से दूर ये घंटों अपने कमरे में वंद रहकर प्रकृति प्रदत्त वस्तुओं के साथ अपनी कल्पना की पुट देकर बड़ी मेहनत-मशक्क़त करके अद्भुत रूपाकारों की सृष्टि करने में सदा व्यस्त रहते हैं।

कमल सेन

जेनेवा का एक नगर

ये ख़ासतौर से जलरंग कलाकार हैं। आदर्शवादी विचारधारा के क़ायल होते हुए भी प्रगतिशील तत्त्वों को प्रश्रय देते हैं। विदेशी टेकनीक को अपना कर जो अमर कला-सम्पद् की ओर से आँख मूंद लेते हैं वे दरअसल भाग्यहीन हैं। जल बिन्दुओं और रंगों के अद्भुत संयोग से ही अद्भुत कला-वैभव की सृष्टि होती है, इन जलबिन्दुओं के साथ यदि कलाकार की सूक्ष्म अंतर्भेदिनी दृष्टि का संयोग हो जाय तो न जाने कितने जीवन-रहस्य खुल जाते हैं, समष्टि चिंतन मुखर हो जाता है, उसकी कला में सौन्दर्य की रंगीनियाँ बिखर जाती हैं, वह अनिर्वचनीय, अकथ्य अनुभति को, अन्तर

पोलैण्ड का एक दृश्यांकन

की सिहरन व स्पन्दन को कोमल रंगों एवं रेखाओं में आत्मसात् कर एक नई दुनिया की सृष्टि कर सकता है।

कमल सेन ने देश-विदेशों का दौरा किया है। जेनेवा, पोलैण्ड आदि देशों के दृश्यांकनों को आँका है। अनेक कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। कितने ही कला संग्रहालयों में इनके चित्र मौजूद है। कला में बड़े धैर्य्य के साथ नित-नये संदर्भ लाने का प्रयास ये कर रहे हैं।

समर घोष

आधुनिक युग में कला में बहुमुखी प्रवृत्तियों का जन्म हो रहा है और देशी-विदेशी, प्राचीन-अर्वाचीन सभी पद्धतियों का समन्वय श्रेष्ठ समझा जाता है।

धान कूटते हुए

समर घोष बहुमुखी प्रवृत्ति के व्यक्ति है। इन्होंने चित्रों के निर्माण में विभिन्न पद्धतियों को अपनाया है। पाश्चात्य ढंग पर तैल एवं जल रंगों का प्रयोग, इसके अतिरिक्त भारतीय चित्रकला की विभिन्न शैलियाँ और टेकनीक जैसे-दीवार-चित्रकारी, लकड़ी पर खुदाई, धातु-नक्काशी, पत्थर-छपाई और मिट्टी की प्रतिमाएँ आदि बनाने की सभी क्रियाओं को ये उपयोग में ला चुके हैं। ये एक व्यावसायिक कलाकार हैं। जीवन - यापन की कठिनाइयों और आजीविका की दुश्चिन्ताओं ने इन्हें कभी-कभी उस कार्य को करने को भी बाध्य किया है, जिसके प्रति ये उदासीन थे और कोई विशेष दिलचस्पी नहीं रखते थे। आजकल के प्रत्येक गम्भीर कलाकार की भाँति ये भी हरबर्ट रीड के विचारों से सहमत हैं कि इस व्यावसायिक युग में कलाकार अथवा कवि होना भाग्य की विडम्बना है। कभी-कभी इन्होंने अत्यन्त कष्ट का अनुभव करके और दिल मसोस कर अपनी प्रतिभा एवं शक्ति को उन चीजों में व्यय किया, जो इनके सर्वथा अनुपयुक्त थीं, तथापि किसी भी व्यक्ति के लिए पेट भरना, चाहे वह कलाकार ही क्यों न हो, परमावश्यक एवं वांछनीय है।

किन्तु इस सबके बावजूद भी इनकी कला में मायूसी, दुराशा या अवसाद

का किंचित् भी ग्राभास नहीं मिलता। दैनिक जीवन की कशमकश ग्रौर कटु सत्यता इनको ग्राच्छन्न नहीं कर सकी। इनके विषय बहुत ही सरल एवं ग्राकर्षक होते हैं, इनके स्वप्न जीवन की मधुरिमाग्रों से ग्रोतप्रोत हैं, रंग चटकीले-भड़कीले ग्रौर कल्पना में हृदय की गुदगुदी ग्रंतर्निहित है तथा इनकी चित्रकृतियाँ भी इतनी सुन्दर ग्रौर भावपूर्ण होती हैं कि उनमें ग्रन्तर की खुशी, ग्रव्यक्त हास्य ग्रौर विनोद फूटा पड़ता है। संकट, दुःख एवं विपत्तियों में भी सदैव हँसते रहना ही इन्होंने सीखा है, क्योंकि परिस्थितियों से व्यक्तित्व महान् है। व्यक्ति उन पर विजय पाने की क्षमता रखता है। ग्रमीरी-गरीबी की खींचातानी, ग्रसंख्य झगड़े ग्रौर विफलताग्रों के मध्य भी ग्रात्म-विश्वास न खोना—यही तो मानव जीवन की विशेषता है। निरन्तर, बिना रुके कार्य-व्यस्त रहने ग्रौर निर्माण की प्रबल भावना एवं तीव्र इच्छा-शक्ति को सदैव जागरूक रखने से कभी व्यर्थ की बातें सोचने का ग्रवकाश ही नहीं मिलता। समर घोष प्रारम्भ से ही कला की उपासना में रत रहे। उन्होंने कभी परिश्रांति का ग्रनुभव नहीं किया। बाल्यावस्था में कलकत्ता के गवर्नमेण्ट स्कूल ग्राफ ग्रार्ट में कला की शिक्षा प्राप्त करके वहाँ के फाइन ग्रार्ट ग्रौर टीचिंग कोर्स को समाप्त किया तथा ग्रच्छे नम्बरों से परीक्षाएँ पास की। तत्पश्चात् इन्होंने पेंटिंग का ग्रभ्यास करना प्रारम्भ कर दिया ग्रौर कुछ ही दिनों में इतनी प्रगति की कि भारत के प्रमुख नगरों की प्रदर्शिनियों में इनके चित्र रक्खे जाने लगे ग्रौर वहाँ इन्हें पर्याप्त प्रतिष्ठा मिली ग्रौर पुरस्कार भी प्राप्त हुए। समय-समय पर इनके चित्र विदेशों की प्रदर्शिनियों में भी ले जाये गए। वहाँ भी उन्हें सम्मान एवं समादर मिला। इनके चित्रों की सबसे बड़ी विशेषता यह है कि तुलनात्मक निरूपण या विवेचन में न पड़कर जहाँ से भी इन्हें जितना मिला उतना रस उस स्रोत से ग्रहण करके इन्होंने देशी-विदेशी, प्राचीन-नवीन कला-तत्त्वों को समन्वित करके एक विचित्र सा रूप दे दिया। इनकी तल्लीनता, इनकी तन्मयता सराहनीय थी, सतह को भेदकर नीचे वस्तु की ग्रसलियत टटोलने की इनकी वृत्ति थी ग्रौर परिश्रम व ग्रध्यवसाय में भी किसी प्रकार की कमी न थी। परिणाम स्वरूप इन्होंने कला को सम्यक् रूप से विकसित करने में कुछ उठा न रक्खा ग्रौर चित्र कौशल में भिन्न-भिन्न तौर-तरीकों ग्रौर प्रणालियों को ग्रपनाया। रंगीन पेंटिंग के साथ-साथ धातु-नक्काशी, पत्थर चित्रकारी ग्रौर लकड़ी पर छपाई ग्रादि का कार्य भी इनका बेजोड़ होता है।

यह जानते हुए भी कि भारतीय कला ग्रत्युत्कृष्ट है ग्रौर उसकी कड़ी उस

छोर से जुड़ता चलो आती है जब कि वह अपने चरम विकास पर थी समर घोष कला-सृजन में केवल उसी पर आश्रित रहने के सिद्धान्त को नहीं मानते। वस्तु को अपनी परिपार्श्विक परिस्थिति से तोड़कर उसे एकदम बहुरूपिया बना देने के क़ायल तो वे नहीं हैं तथापि किन्हीं भी अच्छी बातों को सर्वथा ग्रहण ही न किया जाय—इससे वे सहमत नहीं। फलस्वरूप उनकी कला में पूर्वीय एवं पाश्चात्य कला तत्त्वों का बहुत सुन्दर सामंजस्य दृष्टिगोचर होता है। 'गोपाल कृष्ण', 'शकुंतला' आदि उनकी चित्रकृतियों में शुद्ध भारतीय सांस्कृतिक परम्परा को निबाहने के साथ ही साथ पाश्चात्य कला-शैली का भी किंचित् आभास है। अन्य कतिपय चित्रों में भी एतद्देशीय एवं बहिर्देशीय दोनों कला-प्रणालियों का अद्भुत संगम है।

माँ और शिशु

समर घोष उदार हृदय हैं, वे सभी की अच्छाइयों का स्वागत करना जानते हैं, चाहे वह अपना हो अथवा पराया; पुरानी लकीर को पीटते रहना और नई चीज़ों का जोरदार बहिष्कार उन्हें निरा खप्तीपन लगता है, तो भी उनका मार्ग निर्दिष्ट और बिलकुल साफ है। वे आवश्यकतानुसार उसमें परिवर्त्तन करते रहते है। किमी भी गंभीर कलाकार में परिस्थितियों का गुलाम न होकर उनसे लड़ने की सामर्थ्य होनी चाहिए। आधुनिक युग में ऐसा तो कोई भी कलाकार न होगा जो यह दावा कर सके कि अमुक चीज़ पूर्णरूप से उसकी अपनी ही है। कला एवं संस्कृति का कोई भी कोना ऐमा नही है जो अन्यान्य संस्कृतियों एवं सभ्यताओं से एकदम अछूता हो और उससे किंचित् भी प्रभावित न हुआ हो। विश्वव्यापी सौंदर्य बोध और विभिन्न कला-शैलियों के समन्वय से निखरा हुआ कला का रूप तथा असीमित कल्पनालोक के अनूठे, रंगीन चित्र कितने उत्कृष्ट और लोकरंजक होते हैं कहने की आवश्यकता नहीं।

समर घोष पाश्चात्य कला-शैली से उपकृत हैं, आक्रान्त नहीं। उनकी विशेषता यही है कि कला को विकसित करने के लिए जिन-जिन बातों को

उन्होंने जहाँ-जहाँ पाया-वहाँ से लाकर एक जीवित और मभ्भ्रांत कला परम्परा में मिला दिया, जहाँ-जहाँ उन्हें अच्छाइयाँ मिली और सौन्दर्य-दर्शन हुआ वहाँ वहाँ उन्होंने उनकी ओर इंगित किया और कला के लिए जिस विकासोन्मुख परम्परा की आवश्यकता होती है उसकी रूपरेखा स्पष्ट की ।

विमलदास गुप्ता

कला की किसी परम्परा को मानकर ये नहीं चलते, वरन् नव्य प्रवृत्तियों को अपनाने के कायल हैं । यद्यपि व्यावसायिक कलाकार हैं तथापि जल-रंगों में आधुनिक पद्धति पर चित्र-निर्माण में दक्ष हैं । कला किसी बुर्जुआ समझौते की प्रतीक नहीं है, न वह कोई काल्पनिक जायज मान्यता है । कोई भी महान् कला पाबन्दी नहीं मानती, न ही कोई जीनियस कलाकार सलाखों में क़ैद हो सकता है । उसकी चेतना को निर्बाध चित्रण की छूट होनी चाहिए । हर कलाकार किन्हीं उद्देश्यों को लेकर चलता है । किसी के तो दूरागत उद्देश्य होते हैं । इनकी प्रवृत्तिधर्मा चेतना सलाखों को तोड़कर आगे बढ़ना चाहती है। फलतः कला में ये नित-नये प्रयोग कर रहे हैं । सघन रंगों की पृष्ठभूमि पर ये बड़ी खूबी से आकृतियाँ उभारते हैं ।

निर्जन कुआँ

घर की ओर

गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, कलकत्ता से इन्होंने डिप्लोमा प्राप्त किया । लगभग सन् १९४२ से ये गंभीर कला-साधना में लगे हुए हैं । इन्होंने समय-समय पर अपनी उत्कृष्ट कलाकृतियों के लिए स्वर्ण पदक, रजत पदक और नक़द राशि प्राप्त की है । सन् १९५६ में आयोजित राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इन्होंने अपनी उत्कृष्ट कलाकृति के लिए अकादमी पुरस्कार प्राप्त

किया। समय-समय पर भारत और दूसरे देशों की खास-खास कला-प्रदर्शिनियों में इन्होंने भाग लिया। 'आश्रम' नामक इनका एक चित्र लेनिनग्राद में है और कितने ही महत्त्वपूर्ण चित्र सरकारी और निजी संग्रहालयों में सुरक्षित हैं। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की प्रशासनिक परिषद के सदस्य हैं और आजकल दिल्ली में रह रहे हैं।

दिलीपकुमार दासगुप्ता

लगभग बीस वर्षों से कला-साधना में जुटे हैं। कलकत्ता से डिप्लोमा प्राप्त कर इन्होंने लंदन और पेरिस में कला का प्रशिक्षण लिया। आजकल ड्राइंग और पेंटिंग में तरह-तरह के प्रयोग कर रहे हैं। सन् १९४९ में एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से इन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। मैसूर में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित दशहरा कला प्रदर्शनी, पटना की शिल्पकला परिषद में भाग लेने के अतिरिक्त पेरिस व यूनेस्को की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भी इन्होंने भाग लिया। लगभग आठ बार कलकत्ता में इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की।

सन् १९५५ में स्नातकोत्तर छात्रों को पेंटिंग और ड्राइंग का प्रशिक्षण देने के उद्देश्य से कलकत्ता में इन्होंने एक स्टूडियो क़ायम किया जो समय-समय पर सामूहिक कला प्रदर्शनियाँ आयोजित करता रहता है और कला की नव्य बहुविध प्रवृत्तियों के विकास में सतत योगदान देता आ रहा है। स्टडी टूर पर ये चार बार यूरोप की यात्रा कर चुके हैं, खासकर यूनाइटेड किंगडम दक्षिण पूर्व और सुदूरपूर्व एशिया का इन्होंने काफी भ्रमण किया है।

*** ***

पोस्टर चित्रों में **विश्वरंजन चक्रवर्त्ती** का नाम विशेष उल्लेखनीय है। आजकल ये जे० वाल्टर थाम्पसन कम्पनी लिमिटेड मद्रास में नियुक्त हैं और पोस्टर चित्रों में अनेक पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। **प्रफुल्लचन्द्र बैनर्जी** पुस्तक सज्जाकार के रूप में ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। मध्य प्रदेश सरकार ने खास तौर पर इन्हें पाठ्य पुस्तकों की सुसज्जा के लिए आमन्त्रित किया था। साहित्य और दर्शन में इनकी रुचि है और बच्चों के लिए अनेक कहानियाँ लिखी हैं। **मृत्युंजय चक्रवर्त्ती** पेंटिंग और ग्राफिक कला में दक्ष हैं। मैसूर की दशहरा कला प्रदर्शनी में 'इचिंग' कलाकृति पर इन्होंने पुरस्कार प्राप्त किया। भारत

की अनेक राष्ट्रीय कला प्रदर्शनियों के अलावा रूस और स्विट्ज़रलैण्ड में भी इनके चित्रों को स्थान मिला। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके कई चित्र सुरक्षित हैं। **उषारंजन दत्त गुप्ता** ने शांतिनिकेतन से डिप्लोमा प्राप्त किया है। व्यावसायिक कलाकार के रूप में ग्राफिक आर्ट में इन्होंने विशषता हासिल की है। आजकल प्रेस सिंडीकेट, कलकत्ता में नियुक्त हैं। **कार्त्तिकचन्द्र पिने** चित्रकार और मूर्त्तिकार दोनों हैं। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और शिल्पकला परिषद द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। **सुनीलचन्द्र सरकार** लगभग १९५३ से कला की साधना कर रहे हैं। व्यावसायिक कलाकार के रूप में आर्ट एंड क्राफ्ट्स के शिक्षक हैं और कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स द्वारा समय-समय पर आयोजित प्रदर्शनियों में नियमित रूप से भाग लेते हैं। **नीलरतन चैटर्जी** कलकत्ता के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार और चित्रकार हैं, खासकर पोर्ट्रेट निर्माण में दिलचस्पी लेते हैं। इन्होंने देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है और अनेक बार उत्कृष्ट कलाकृतियों पर स्वर्ण पदक, रजत पदक और नक़द पुरस्कार राशि इन्हें मिल चुकी है।

कलाकार

धीरेन्द्र ब्रह्म

चिन्मय मूल

बम्बई के कलाकार

यद्यपि बम्बई में सर जे.जे स्कूल ग्राफ ग्रार्ट की स्थापना सन् १८५७ में हो गई थी, तथापि बंगाल-कला के पुनरुत्थान ग्रांदोलन की हवा यहाँ प्रविष्ट न हुई थी। यहाँ कला का ग्राविर्भाव ग्राकस्मिक था ग्रौर उसकी मुख्य प्रेरणा कतिपय ग्रंग्रेज शिक्षकों से मिली थी। एक नई, किन्तु ग्रस्पष्ट कला-चेतना तत्कालीन मध्यवर्गीय शिक्षित कला-जिज्ञासुग्रों में जग गई थी, पर ग्रभी उन्हें यह बोध न था कि उनकी यह चेतना किस दिशा में ग्रौर किस स्तर तक विकसित हुई है तथा उन्हें किस राह जाना है। पूर्वगामियों ने उनका मार्ग-निर्देशन किया था सही, पर पाश्चात्य कलारूपों से संस्पर्श में ग्राने के कारण यह विदेशी मानसिक खाद्य उनके परिपाक के योग्य वस्तु नहीं थी। ग्रपनी कला-निधि से वे नितान्त ग्रनभिज्ञ थे, ग्रपितु इस संधि-स्थल पर या यों कहें कि इस महान् विभाजन बिन्दु के नाजुक दौर के साथ उनका चित्त डाँवाडोल ग्रौर ग्रस्थिर सा था। पोर्ट्रेट-चित्रण, लैंडस्केप चित्रण, तैल-चित्रण ग्रौर ग्रन्य जीवन-सम्बन्धी सृजनशील तत्त्वों को सँजोने में वे बुरी तरह यूरोपीय पद्धति से ग्राक्रान्त हो रहे थे।

कला की नव्य प्रवृत्ति का स्फुरण चूँकि पाश्चात्य शिक्षा से हुग्रा था, ग्रत: यह स्वाभाविक ही था कि यूरोपीय मनोभाव ग्रौर रीति-नीति उन्हें बहुत ग्रधिक ग्राकृष्ट कर रही थी, किन्तु इस नई ग्रनुभूति ने उन्हें ग्रपने ग्रतीत की महान् गौरवमयी कला-परम्परा से भी परिचित किया था, हालाँकि यह परिचय बहुत मंथर था ग्रौर इसकी प्रगति की सम्भावनाएँ ग्रत्यल्प थीं। पैस्टन जी बोमन जी नामक कलाकार ग्रजंता में रहकर वहाँ के ग्रद्भुत भित्ति-चित्रों की ग्रनुकृति ग्रौर लगभग वैसे ही हूबहू चित्रों की निर्माण-साधना में एक लम्बे ग्रर्से तक जुटे रहे, तथापि पाश्चात्य प्रभाव उन्हें भी ग्रपनी पकड़ से मुक्त न रख सका ग्रौर उन्होंने विदेशी पद्धति पर तैल-चित्र ग्राँके। एक ग्रन्य सुप्रसिद्ध कलाकार एम.वी. धुरंधर, जो पौराणिक विषयों ग्रौर ऐतिहासिक ग्राख्यानों के चित्रकार थे, राजा रविवर्मा की भाँति ही पाश्चात्य कलादर्शों से ग्रनुप्रेरित हुए ग्रौर जीवनदायी, ग्रौपदानिक तत्त्वों से रहित पश्चिमी यथार्थवाद की भौंडी नकल में

प्रवृत्त हुए। कहना न होगा कि यह रुझान नए कलाकारों के दिलोदिमाग़ में इस क़दर रच-बस गया था और पाश्चात्य प्रणालियाँ इतनी हावी थीं कि 'बाम्बे आर्ट सोसाइटी' के कतिपय सम्मानित मौलिक कलाकारों तक ने वहाँ की पद्धति और टेकनीक को ही अपनाया था। कुछ कलाकार, जो यथार्थवादी कला-परम्परा के समर्थक थे, कुछ स्मरणीय पोर्ट्रेट-चित्रों को सृष्ट करने में सफल हुए। उनके कृतित्व पर होगार्थ की छाप है, पर महज़ अन्धानुकरण नहीं वरन् इसके विपरीत चारित्रिक सूक्ष्मताओं का मनोवैज्ञानिक उभार और गहरी पैठ का दिग्दर्शन उनकी कृतियों में होता है। वी. एम. गुर्जर ने तैलरंगों में वैसी ही क्षमता दिखाई और वी. ए. माली ने सघन रंगों और ब्रुश के झपाटों से अपने चित्रों को आकर्षक बनाया। राष्ट्रीय क्रान्ति की ज्वलंत शिखाओं के साथ ज्यों-ज्यों कला-चेतना अदम्य रूप से उजागर होती गई, उसके विविध रूपों में संयोजन और एकतानता लाने के प्रयास में सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट के डायरेक्टर ग्लैडस्टन सोलोमन ने समय के रुख़ पर ग़ौर करते हुए स्वयं ही इस बात को अनुभव किया कि केवल पाश्चात्य कलादर्शों से काम नहीं चल सकता। उन्होंने पाश्चात्य एवं प्राच्य कला-टेकनीक के समन्वय पर बल दिया। उदाहरणार्थ—इस तरह के भित्ति-चित्र तैयार कराये जिनमें प्रतीक और चेष्टाएँ तो भारतीय थीं, परन्तु कार्य करने की पद्धति सर्वथा विदेशी होती थी। कालान्तर में इसका परिणाम यह हुआ कि नये विचार और रूपशिल्प से प्रभावित होते हुए भी कुछ उत्साही कलाकारों ने भारत की लम्बी ऐतिहासिक कला-परम्परा से प्रेरणा ग्रहण की। इसमें सन्देह नहीं व्युत्पन्न मति कलाकार तक सामयिक वातावरण से जाने या अनजाने प्रभावित होता है, पर उसकी ख़ूबी यही है कि वह ऐसे वातावरण से ऊपर उठकर उन जीवित कला-परम्पराओं को अपनाने के लिए सचेष्ट रहता है जो 'आज' या 'कल' में ही सीमित न हो कर आने वाले समय के थपेड़ों के कशाघात में भी टिका रह सकता है।

जगन्नाथ मुरलीधर अहिवासी

जगन्नाथ मुरलीधर अहिवासी आध्यात्मिक रहस्यकार की गरिमा से ओत-प्रोत भारतीय जीवन-दर्शन और विचार-तत्त्व को निजी कला में ढाल कर राजपूत कला की रंगीनी और उसके महत्त्वपूर्ण कला रूपों से अधिक प्रेरित हुए। इन्होंने टेकनीक और विषय वस्तु में बंगाल कला की रूढ़िवादिता को अस्वीकार करके उन संकेत-बिन्दुओं को चुना जो सीमाहीन दिशा में अविराम जीवन-गति से सामंजस्य स्थापित करने में सर्वथा उन्मुक्ति बरत सकें। इन्हें दीवारों की श्वेतिमा में रंग-बिरंगे चित्र बनाना अथवा भवनों और इमारतों में मीनाकारी पद्धति पर पेंट करने में विशेषता हासिल है। इनकी प्राथमिक भित्ति-चित्र सज्जा लाक्षणिक अथवा प्रतिरूपक पद्धति पर होती थी। दिल्ली के सचिवालय भवन की भीतरी छत पर पेंट किये हुए चन्द्राकार स्थल जो हालाँकि इतने दूर के समय की मार से धूमिल और निष्प्रभ होते जा रहे हैं तथापि उनमें भी वही प्रतिरूपक पद्धति अख्तियार की गई है। इनके परवर्ती कृतित्व पर यथार्थवाद की छाप पड़ी है, लेकिन किसी भी मतवाद की जड़ता अथवा किन्हीं भी सीमित दायरों में इन्होंने अपनी सशक्त चेतना को कभी बन्दी नहीं बनाया। पूर्वी और पश्चिमी विचारधारा इनकी कला का सम्बल बनी और उससे इनका मौलिक चिंतन एवं सिद्धान्त मुखर हुए। कला की विशिष्ट उपलब्धियों और

प्रेम-सन्देश

समन्वयात्मक समुत्थान के लिए वांछित वातावरण और साधन-संभार प्रवर्द्धन-शील हो तो प्रबोधन एवं विकास के सबल आधार मिल सकते हैं। यही ध्यान में रख कर इनकी दृष्टि व्यापक होती गई, किन्तु नारी की पैनल-पेंटिंग में राजपूत शैली अपनाकर भी ये यथार्थवाद से आक्रान्त हो उठे हैं।

अहिवासी की जीवन-दृष्टि न सिर्फ गहरी और संवेदनशील, बल्कि संयत मार्मिकता की भी व्यंजक है। अंतिम रूप से वे किसी विश्वास तक नहीं पहुँचे हैं, परन्तु अपने अन्तर्नुभूत विश्वासों की उपलब्धि के लिए वे प्रयत्नशील अवश्य हैं। अपनी कला-साधना के प्रति विश्वास और निष्ठा के फलस्वरूप उन्होंने अपनी अंतरात्मा में गहरी डुबकी लगाई, लेकिन एक विशिष्ट शिल्प-विधान अपना कर भी उनके विचार और निर्माण में विरूपता या बेढंगापन नहीं आ पाया है। 'प्रेम संदेश' में विशदता और फैलाव के बावजूद समस्त कार्य-पद्धति में परिपक्वता दृष्टिगोचर होती है। प्रेम की बेधक धारा दो प्रेमियों में अन्त में समान रूप से संचरित हो मादक और लयमय वातावरण सृष्ट करती हुई प्रभावान्विति में अत्यन्त सघन रूप से अनुशासित है। नाटकीय वस्तुविन्यास और गत्यात्मक व्याप्ति में 'श्रीकृष्ण का नामकरण' चित्र अधिक सफल बन पड़ा है, इस निर्माण में बौद्ध आख्यानों और उनके चित्रण करने के तौर-तरीकों का प्रभाव लक्षित होता है। इस तरह के चित्र-विचित्र और रंग-बिरंगे डिज़ाइनों में सौंदर्य एवं सूक्ष्मता की इकाई के साथ-साथ सशक्त अवतारणा हुई है, किन्तु 'मीरा के प्रयाण' में उतनी सफल व्यंजना और रसवत्ता नहीं है। फिर भी वह चित्र इतना लोकप्रिय हुआ कि लंदन, यूनेस्को, फ्रांस और थाइलैंड की प्रदर्शिनियों में सम्मानित हुआ और तत्पश्चात् चीन सरकार ने इसे संरक्षण प्रदान किया।

सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के अनेक होनहार कलाकारों में ये प्रमुख हैं, वरन् इन्होंने अपने अनवरत परिश्रम और अध्यवसाय से कला का पुनर्निर्माण कर आचार्य-पद प्राप्त किया। १९३२ में जब भारतीय चित्रकला के स्वतन्त्र विभाग के रूप में 'इंडियन डिज़ाइनिंग क्लास' की स्थापना हुई तो इन्हीं को उसके संरक्षण, शिक्षण एवं संचालन का भार सौंपा गया। भूतपूर्व प्रिंसिपल सर ग्लैडस्टोन सोलोमन ने इनकी सर्जनात्मक शक्तियों को शुरू में ही पहिचान लिया था और अवकाश ग्रहण करते हुए उन्होंने इनके कार्यों की भूरि-भूरि प्रशंसा की थी तथा इन्हें ही एक ऐसा उपयुक्त व्यक्ति समझा जिसे वे समूचा कार्यभार सौंप गए। भित्ति-चित्रण इनका प्रमुख विषय है।

●

विगत २४ वर्षों की अटूट और अथक कला-साधना के दौरान कितने ही युवक कलाकार इनके सम्पर्क में अपनी नैसर्गिक कलाभिरुचियों को उचित दिशाओं में यत्नशील करते रहे हैं। कितनों का ही इन्होंने पथ-प्रदर्शन किया है और कितने ही कला-अभ्यासी इनसे प्रेरणा प्राप्त कर यशस्वी और सफल चित्रकार बने हैं।

लैण्डस्केप, प्रतिरूपक चित्र, स्केच, रेखांकन और पोर्ट्रेट-चित्रों—सभी में सुकुमार भावाभिव्यंजना के साथ भारतीय वातावरण सजीव हो उठा है। अतीत भारत, बौद्धकालीन और कांगड़ा चित्रशैली का प्रभाव भी इनकी कला पर द्रष्टव्य है। इनकी रेखाएँ बहुत ही सुकुमार, कोमल व्यंजना लिये होती है। ये रेखाएँ न केवल सौंदर्यबोध की द्योतक, अपितु भाव-सम्पन्नता और मन में उठने वाली हर उद्दाम अनुभूति की दिग्दर्शक भी है–मानो कलाकार की अंतरंग प्राणवत्ता उनमें लय होकर विभिन्न रूपाकारों में ढल कर उभरी हो। विभोर करने वाली मादकता, नई उमंग, नया उत्साह व जोश, नई इच्छा-आकांक्षाओं के साथ-साथ कितनी ही ग़मग़ीन चेष्टाएँ जो हर रंग की सीमा-रेखा और हर रेखा की रंगमयता, तिस पर जीवनतत्त्वों से संश्लिष्ट होकर अपने आप में पूर्ण व एक दूसरे में घुलमिल कर आकार धारण करती हैं, वे ही कलाकार की महत्तर चेतना की परिचायक हैं। यही कारण है कि अहिवासी हमेशा साथ में स्केचबुक रखने के हामी हैं। स्केचबुक में कलाकार का बंधन-हीन मन विचारगत भेद-प्रभेदों के आधार पर किसी भी कल्पनालोक को सिरजने से पहले उसकी रूपरेखा प्रस्तुत करता है और फिर उसी में रंग ढाल-कर प्राणों का संचार करता है। इंगलैण्ड, फ्रान्स, चीन, थाइलैण्ड आदि कतिपय देशों के कला-संग्रहालय में इनके चित्र सुरक्षित है और भारत में तथा अन्यत्र इन्हें अनेक पारितोषिक प्रदान किये गए हैं। अपनी वर्षों की कला-साधना द्वारा पाश्चात्य कला की विशेषताओं को अपनी भारतीय कला से संयुक्त कर कलात्मक परम्पराओं को पुनरुज्जीवित करने का प्रयास किया है।

नारायण श्रीधर बेन्द्रे

"जीवन के उतार-चढ़ाव और संघर्षों के दौरान जिस तरह जीवन के प्रति दृष्टिकोणों में क्रमश: अन्तर पड़ता जाता है, उसी प्रकार कार्य करते हुए कलाकार की सृजन-टेकनीक में भी अनेक मोड़ आते हैं। बचपन में उनके लिए जो कला महज़ एक खिलवाड़ है अथवा उसकी चपल वृत्ति या व्यग्र मनोभावों को व्यक्त करने का माध्यम मात्र है अथवा युवावस्था में उसके लिए कठिन चुनौती है, वही प्रौढ़ावस्था में एक परिपक्व अनुभूति के रूप में उसकी भावप्रवण और बौद्धिक जिज्ञासाओं की अभिव्यक्ति की साधना बनकर आती है।"

नारायण श्रीधर बेन्द्रे के उपर्युक्त कथन में उनके अपने जीवन की सच्ची अनुभूति निहित है। कला साधना करते हुए एक प्रकार का भावात्मक द्वन्द्व और विरोधाभास उनके कृतित्व में दीख पड़ता है। विचित्र टेंकनीक और कितनी ही कार्य-शैलियों को अपना कर भी किसी एक निश्चित स्थिति अथवा स्तर पर आ टिकना इन्हें कभी स्वीकार्य नहीं हुआ, अतएव उन्होंने नित-नए प्रयोगों द्वारा प्रत्यक्ष अनुभूत और यथार्थ जीवन के ज्वलंत संघर्ष और कठिन समस्याओं का निदर्शन गहन कलात्मक साधनों द्वारा सम्पन्न किया। इन्हें स्वयं जीवन में कितने ही तीखे अनुभव और घात-प्रतिघातों से टक्कर लेनी पड़ी थी, सबसे पहले जीवन की कठोर वास्तविकता से इन्हें तब सामना करना पड़ा जबकि ये इन्दौर में देवलालीकर के तत्त्वावधान में पेंटिंग बनाना सीख रहे थे। साथियों ने इनकी उपेक्षा की और घोषित किया कि ये कभी भी एक सफल कलाकार नहीं हो सकते। बचपन में इन्हें चेचक हुई थी और ये इसमें एक आँख खो बैठे थे। अतएव इन्हें एकाकीपन, गरीबी, सामाजिक विलगाव और प्रांतीयता की ओछी भावनाओं का भी शिकार होना पड़ा। इनके चित्रों की पहले पूछ न थी। यदा-कदा भोजन और नींद भी मयस्सर न होती थी। किन्तु अपने चारों ओर की परिस्थितियों, दमन और विपत्तियों के बावजूद भी उनका विश्वास अडिग रहा। कभी-कभी अतिरेक में यथार्थ की निर्ममता से टकराकर भावना के तार छिन्नभिन्न हो जाते, शिल्पी की तूली टूट जाती और रंगीन कल्पनाएँ विशृंखल हो जातीं, लेकिन जैसे इनके जीवन में कला की निःस्पृह

चाह सुख-दुःख की भावना से कहीं अधिक बढ़कर थी। सच्चा साधक सफलता असफलता से परे होता है। कला को कसौटी मानकर वह जीवन की गहराई को नापता है और अगम्य, अतल, असीम में पैठकर उसे पा लेता है।

अतएव मायूसी, क्लांति व पीड़ाओं से गुज़रकर तथा जीवन व्यापी गहन और मर्मस्पर्शी अनुभवों को लेकर अन्त में जब वे कला के प्रांगण में उतरे तो एक नई चेतना की लहर इनकी रगों में दौड़ गई। एकांत या उपेक्षा एक प्रकार की आत्मगत उदासीनता को प्रश्रय देती है, पर बेन्द्रे उनकी धनिष्ठ आत्मीयता में पैठकर कला के अंतरंग, चित्रमय भाव को अधिक पा सके। कला की भाव-सम्पदा ने इनके अन्तर्मन की छटपटाहट को शांत किया–जैसे रिसते घाव पर मरहम। कला में इनके प्राणों का स्पन्दन जागा। साथ ही कला में खोकर इन्हे धैर्य मिला, सन्तोष मिला और तृप्ति भी मिली। वे लिखते हैं—"कला मूक संभाषण है। बल्कि कहें कि वह इससे भी अधिक है। कला स्वानुभवों को व्यक्त करने का साधन है, हालाँकि बिल्कुल अपने ढंग का निराला, जो भाषा की गड़बड़ी भरे अर्थों की उलझन से परे है। मैं इन दो ध्येयों को लक्ष्य कर पेंट करता हूँ—एक तो यह कि दूसरों से संभाषण कर सकूँ और दूसरे कला के माध्यम से अपने आप को व्यक्त कर सकूँ।" एक अन्य स्थल पर उन्होंने लिखा है—"मैं महसूस करता हूँ कि किसी भी कलाकार के प्रयत्नों की समीक्षात्मक प्रशंसा उसके लिए भोजन से भी अधिक महत्त्व रखती है।" बेन्द्रे इन्दौर में एक सामान्य मध्यवर्गीय परिवार में उत्पन हुए थे। इन्दौर के कला स्कूल में इन्होंने शिक्षा पाई और आगरा यूनीवर्सिटी से बी० ए० उत्तीर्ण किया। आर्थिक कठिनाइयों के कारण आगे अपना अध्ययन जारी रखने के लिए काश्मीर गवर्नमेंट के विज़िटर्स ब्यूरो में इन्होंने एक नौकरी स्वीकार कर ली। वेतन कम था, पर इस प्रकार अवकाश के समय वे अपनी कला-साधना में जुटे
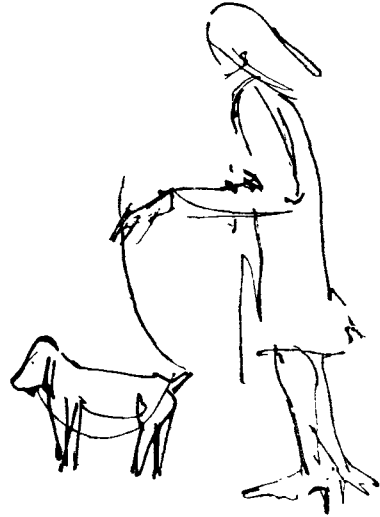
कुत्ता प्रेमी (पश्चिमी बर्लिन में)

रहते थे। काश्मीर के प्राकृतिक दृश्यों और चारु वातावरण में इन्होंने अपने चित्रों को और भी जीवन्त एवं आकर्षक रूप से प्रस्तुत करने का प्रयास किया।

लकड़हारिन

आकाश और भूप्रांतर के चिर परिवर्तनशील कटिबन्ध में बहुरंगी प्रभा और सौंदर्य की विस्मय विमुग्धकारी कौंधती हिमानी रेखाएँ, शनैः शनैः क्षितिज के आर-पार गहरे नीले रंग की जाज्वल्यमान झूमती-इठलाती आलोक रश्मियाँ या चन्द्र तारों का चाँदी सा चमकता प्रकाश-पुंज, धूल की सलेटी चादर का-सा विशाल चँदोबा, कभी बरसात, धुन्ध, बर्फ, कोहरा और वार्तालाप करती मचलती-इठलाती वायु लहरियों के अगणित थपेड़ों में अक्षुण्ण अछूती अथवा कही गहराइयों में दबी पड़ी उभरती सघन छायाएँ या नीचे जाल के वृत्त में जड़े पुष्प कीमती नगों से झलमलाते इन्हें नजर आते और वृक्षों, पहाड़ों और झीलों की क्रोड़ में बिखरी हरीतिमा मन को मोह लेतो अथवा काश्मीरी लोगों का भोला निरीह सोंदर्य इन्हें आकर्षित करता तो एक नया आह्लाद और आशा का आलोक इनके कृतित्व पर छा जाता। काश्मीर के प्रवास

में इन्होंने बहुत कुछ समझा बूझा। इन्हें लगा कि जैसे प्रकृति का समूचा अणु-अणु सजग है, जैसे उसका मूक मौन सौंदर्य भी साँसें लेता है, अतः वहाँ के मनोरम दृश्यों को निरख-परख उनमें नई स्फूर्त्ति और ताज़गी आई, उनका मनोमय कोष मानो अभूतपूर्व रस से आप्लावित हो उठा। फिर ये शांति निकेतन चले आए। विभिन्न दिशाओं में इनकी क्रियाशीलता बराबर द्रुत होती जा रही थी, अतएव उनमें एक अनासक्त दृढ़ता और समन्वयात्मक स्वयं-सिद्धता प्रश्रय पाती जा रही थी। यहाँ इन्होंने प्रकाश के परिणाम और प्रयोजन, वातावरण का प्रभाव और विविध मनोभावों, आनन्द-विषाद, आश्चर्य-उत्सुकता, आशा-निराशा आदि को अभिव्यक्ति की कला सीखी हालाँकि अभी इनमें उतनी परिपक्वता न थी। छोटी-छोटी घटनाओं में पैठकर किसी भी समकालीन संघर्ष से इन्हें सदैव नूतन प्रेरणा मिली। प्रतिकूल परिस्थितियों में भी अपने 'स्व' को विस्मृत नहीं किया। वे लिखते हैं—"आपकी सफलताओं के लिए खुशकिस्मती से यदि आप पर विजित पदकों और पुरस्कारों की बौछार होने लगती है तो आप गुब्बारे की तरह फूल कर कुप्पा हो जाते हैं और आपकी आकाशचारी वृत्ति इस क़दर कुलाचें भरती है कि आप जमीन को सर्वथा भूल जाते हैं। लेकिन मेरी अपनी स्थिति में यदि कभी गुब्बारा बनने की नौबत भी आई तो शीघ्र ही जमीन पर उतरना पड़ा। मेरी घूमने की ख्वाहिश और ज्ञान की बुभुक्षा ने मुझे खानाबदोश और किताबी कीड़ा बना दिया।" सचमुच, उन्हें अपनी दृष्टि कल्पना-लोक की ऊँचाइयों से हटाकर ठोस वास्तविकता की ओर लानी पड़ी और वस्तु-स्थिति के धरातल पर टिक कर वे अधिक संतुलित हो उठे।

बेन्द्रे अधिक दिन तक शान्तिनिकेतन में न ठहर सके। वे बम्बई चले आए जहाँ बाद में स्थायी रूप से बस गए।

बम्बई में जब सर्वप्रथम इनके चित्रों की प्रदर्शनी हुई तो इनकी कला-कुशलता की दाद दी गई। कई कला-कृतियों पर पुरस्कार मिला और उन्हें क्रय कर लिया गया। ये एक सफल कलाकार सिद्ध हुए, जो भारतीय एवं पाश्चात्य कला-टेकनीक से पूर्णतया अवगत थे और परिस्थितियों के अनुकूल विषय, विषयानुकूल पात्र और पात्रानुकूल पृष्ठभूमि एवं रंग-रेखांकन की समस्त विशेषताओं के सहज साक्ष्य की निष्ठा के क़ायल। पूर्ण प्रतिष्ठा की कसौटी हेतु पग-पग पर अड़चन डालने वाली जटिल परिस्थितियों ने एक लम्बी अवधि तक गत्यवरोध किया, पर कला के प्रति इनकी जिज्ञासा अधिकाधिक

तीव्र होती गई। इन्होंने अमेरिका, इंग्लैण्ड तथा यूरोप एवं सुदूरपूर्व के कितने ही प्रमुख देशों का दौरा किया। देश की कला प्रणालियों और उसके मेल-मिश्रण से प्राप्त अनुभवों तथा व्यापक ज्ञान से इन्हें भावी जीवन में अग्रसर होने की अत्यधिक प्रेरणा मिली। इन्होंने पाया कि यूरोप की कलाधारा में बहुत सी परम्पराभुक्त कलात्मक रूढ़ियाँ अपने आप बह गई हैं और वहाँ की कला जितनी समृद्ध एवं सुगठित है उतनी ही वैविध्यपूर्ण भी है। उनके अनेक अंग एवं पक्ष हैं, भाव-प्रकाशन के तरीकों में इतरदेशीय प्रभावों को साक्षात् कर स्वतन्त्र विचारणा एवं क्रियात्मक शिल्प-विधान को वहाँ प्रश्रय मिलता है। कहना न होगा यूरोप की यात्रा से इनकी कला को अभिनव गति और रस मिला। इनके चित्र-निर्माण में अपेक्षाकृत सार्वभौमिकता, रचना कौशल में सुसंयोजना तथा रंग-रेखांकन में अधिक आस्था और संतुलन दीख पड़ा।

बर्लिन का एक दृश्यांकन

चाहे जलरंग हों या पेस्टल या तैल रग अथवा काले-श्वेत रंगों के मिश्रण से या अन्य किसी मी माध्यम से उनके आत्म विश्वास के ये ज्वलत प्रतीक वनकर प्रकट हुए हैं। कलाकार की अन्तर्लीन सृजनेच्छा जब सूक्ष्म बोध से सम्पृक्त हो कला में मूर्त्त होती है तो उसका उन्नयन होता है। सौदर्य-बोध की श्रेष्ठतम कला, व्यापक अनुभूति और भीतर की गहरी पैठ के कारण इनकी अतीन्द्रिय भावना अत्यन्त सादे, पर आकर्षक रंगों में व्यक्त हुई है। जहाँ इनके कृतित्व में यथार्थ, सजीव एवं मार्मिक चित्र दिखाई पड़ते हैं वहाँ तत्सम्बन्धी तथ्यों एवं स्थितियों का अनुसंधान और गम्भीर विश्लेषण रहता है। दृढ़ व्यक्तित्व और औपचारिक टेकनीक को एकदम अस्वीकार कर देने के कारण इनकी कला में कहीं भी विशृंखल क्रमबद्धता नज़र नहीं आती। प्रारम्भ से अन्त तक उनमें नियोजित अवतारणा और समन्वित सुसम्बद्धता है, लगता है—जैसे रूप-सृजन की सहज माँग ने स्रष्टा को भीतर से उत्प्रेरित किया है।

बेन्द्रे की कला पर मुख्यत: राजपूत और मुग़ल कला का प्रभाव है। बंगाल

कला-स्कूल, चीनी और जापानी चित्रण पद्धति की भी गहरी छाप पड़ी है। फ्रेंच कलाकारों में गौंगै और मातीस की छितराई द्रुत विकीर्णता और सेज़ाँ से गहरा आभास और भेदक दृष्टिगोचरता प्राप्त की है। विश्व के अधिकांश प्रमुख देशों का भ्रमण करने के कारण वहाँ के विविध विषय, कला-टेकनीक, स्थितिजन्य नियोजना, पृथक्-पृथक् सौंदर्यशास्त्रीय रूढ़ियाँ एवं कलागत वैशिष्ट्य का समावेश और मिश्रण होने से उनकी साकांक्षता की क्षमता में अनुपाततः वृद्धि हुई है और निजी अन्तःप्रेरणाओं और सहज आग्रह को इस अर्जित ज्ञान और अनुभूति से इन्होंने बिखरी धाराओं को नये अनुक्रम से सफल बनाया है।

इनकी संग्राहक बुद्धि का अनुमान तो इस बात से हो सकता है कि वे जहाँ कहीं भी जाते थे अपने अनुभवों, निरीक्षण और व्यापक अनुशीलन को नोट करते जाते थे। उनकी स्केच-बुक ऐसे कितने ही रोचक प्रसंगों, विवरणों और रेखाचित्रों से भर जाती थी जिसका बाद में यथावसर वे अपने ढंग से उपयोग करते थे। अमेरिका में कई महीने रहकर इन्होंने अमरीकी कला, तद्देशीय कला-प्रवृत्तियाँ और तज्जनित प्रभावों का गम्भीर अध्ययन किया था। 'ग्राफिक' आर्ट में इन्होंने विशेषता प्राप्त की और उसकी बारीकियों में पैठ कर अंग्रेजी, फ्रेंच, डच, स्पेनिश, रेड इंडियन, अफ्रीकी, प्राच्य एवं पाश्चात्य प्रभावों की सम्मिलित और संश्लिष्ट परंपरा को वहन करती हुई जिस प्रकार अमरीकी कला अपने कलारूपों को सुस्थिर करने में लगी है, इसका एक नया अनुभव इन्हें वहाँ हुआ। वहीं इन्हें अमूल्य कलानिधियों, प्रदर्शनियों और संग्रहालयों की स्थापना की महत्ता समझ में आई। फ्रांस में इन्होंने पाया कि कला-चेतना और भी अधिक जागरूक है। वहाँ का सामान्य से सामान्य व्यक्ति भी कला के महत्त्व को समझता और आँकता है। फ्रांसीसी कला तमाम पाश्चात्य देशों की कला का पथ-निर्देशन सा कर रही है। नित्य ही वाद-विवादों का आविष्कार हो रहा है और जब तक वहाँ कोई कलाकार कुछ मौलिक या अनूठी चीज़ नहीं दे पाता तब तक उसकी कोई भी प्रतिष्ठा अथवा मान्यता नहीं होती। इंगलैण्ड में कला को विशेष महत्त्व दिया जाता है। पुराने लोग प्राचीन कला परम्पराओं से अभी तक लिपटे-चिपटे हैं। किन्तु कलाकारों की तरुण पीढ़ी पर 'पोस्ट इम्प्रेशनिज़्म' (उत्तर प्रभाववाद) विशेष रूप से हावी है। मैक्सिको की कला को भी इन्होंने पर्याप्त उन्नत पाया। यद्यपि फ्रांसीसी कला से इन्हें प्रेरणा मिली, तथापि स्थानीय कला भी उनके मत से बड़ी ही विकसित और सम्पुष्ट होती जा रही है। बेन्द्रे को विदेशी कला के अध्ययन से कुछ ऐसे नुक्ते हासिल हुए जिसके निकट निरी-

क्षण व परीक्षण में, युग की पृष्ठभूमि के संदर्भ में तथा अपने देश की विशिष्टताओं से सुसम्पन्न करने में उन्हें एक दूसरे से बल मिला।

इनके चित्रों में नारी-पुरुष और बच्चों की प्रतिच्छवियों में केवल साम्यता अथवा सादृश्य पर ही जोर नहीं दिया गया, अपितु अन्तर्भावों की व्यंजकता-यथा दुःख, उदासी, निराशा और जीवन की निगूढ़ अनुभूतियों के आत्यंतिक अर्थों को भी दर्शाया गया है। इसके अलावा ये केवल वैयक्तिक अनुभूति अथवा कला की रंगीनी में तथ्य का बोध खोकर महज़ भावों के आरोपण से बोझिल अर्थहीन छायाएँ मात्र ही नहीं उभारते, इसके विपरीत उनमें व्यक्त होने वाली अनुभूति की तीव्रता मन को छूती है और व्यावहारिक धरातल पर भी वे वास्तविकता से संश्लिष्ट प्रतीत होती हैं। बम्बई के गली-कूचों और बाज़ारों में घूमने वाले व्यक्ति इनके माडल बने हैं। उनकी भावभंगियों, आचार-विचारों और कार्य-व्यापारों का इन्होंने बड़ी ही सजीव बारीकी से चित्रांकन किया है। टालस्टाय की भाँति इनका भी दृढ़ विश्वास है कि कला में सार्वजनीनता होनी चाहिए। सर्वसाधारण के जीवन को कलामय रंग-रेखाओं से जीवन्त रूप दिया जा सकता है। इनके चित्रों में चेहरे की एक-एक रेखा जीवन की बेबसी की कहानी सुनाती है। बेन्द्रे अपने रंगों और तूलिका के सहारे परिस्थितियों से लड़ रहे हैं। वे सामाजिक न्याय के प्रति जागरूक हैं और उनकी कला में मानवीय तत्त्व अधिकाधिक उभर रहे हैं। कलाकार का वैयक्तिक स्वातन्त्र्य और उसका सामाजिक दायित्व-दोनों एक-सा महत्त्व लिये है। अतएव वे जीवन के यथादृष्ट चितेरे हैं और परिस्थितियों के यथार्थ प्रत्यक्षीकरण का प्रयास कर रहे हैं। वे लिखते हैं, "कुछ यशस्वी कलागुरुओं की कृपा से आज कला द्वारा विचारों, भावनाओं अनुभवों की व्यंजना की जा सकती है। नये-नये कलारूप और विविध दृष्टि भंगियाँ ईज़ाद हुई है। कला में एक ऐसी सर्वव्यापकता, महनीयता और मूक शांति हैं जो बुद्धि और तर्क की सीमाओं से परे भावनागम्य है, फलतः लाभ-हानि, भूख-प्यास, आशा-निराशा, राष्ट्रीयता के मिथ्या सम्भ्रम के झमेले से दूर वह सत्य है, साथ ही सुन्दर एवं शिव भी है।"

•

कार्टिंगरी कृष्ण हेब्बर

करुण याचना

कृष्ण हेब्बर की कला मुख्यय: प्रगतिशील और प्रायोगिक है। बीसवीं शताब्दी में विश्व के प्रमुख देशों की कला में सबसे अधिक क्रांतिकारी पेरिस की कला सिद्ध हुई है। कितनी ही नई-नई धाराएँ और कला-टेकनीक वहाँ विकसित हुई और रंगों के वैविध्य में घुल-मिल गई। चूंकि कला के रूप-तत्त्व आंतरिक अभिव्यक्ति का प्रकार भी हैं, अतएव युग की कतिपय प्रतिष्ठित धारणाओं के साथ सृजन-सौंदर्य की व्यक्तिमूलक एवं अनुभूतिमूलक व्याख्याएँ नित्य बदलती रहती हैं। हेब्बर सौंदर्य-चेतना को पूर्णत: सृजनात्मक एवं क्रियात्मक मानते हैं, आत्मा और अनुभूति का सम्मिश्रित व्यक्त रूप, जिसे सर्वात्मभाव कह सकते हैं और जिसमें भाव-गरिमा की सत्यमयना का सन्निधान है।

काम की धुन

कहना न होगा—सहज जिज्ञासु प्रवृत्ति के होने के कारण हेब्बर को पेरिस स्कूल की कला अधिक रुची। वस्तुत: युवा पीढ़ी पर जितना गहरा प्रभाव उक्त कला का पड़ा है, उतना कदाचित् ही किसी अन्य विदेशी कला का। युगीन परिस्थितियों से प्रभावित होकर यहाँ की कला ने नवीन मान्यताओं का सृजन किया और नित्य-नया संकेत करती हुई उसने कई मंजिलें तय की हैं। अपनी संश्लेषक सहज प्रेरणा और विवेक के कारण विवादी पक्षों से भी हेब्बर ने बौद्धिक प्रशिक्षण प्राप्त किया और संघर्ष की क्रांतिमयी आत्मा को पहचान कर अपनी निष्ठा को कभी खंडित न होने दिया। टेकनीक और शिल्प की दृष्टि से इनके अभिनव कलारूप नये प्रयोगों के अच्छे उदाहरण हैं।

सन् १६१२ में हेब्बर का जन्म मद्रास के दक्षिणी कनारा जिले के एक सुदूर गांव में हुआ था। बाल्यावस्था में इन्हें अनेक कठिनाइयों और प्रतिकूल परिस्थितियों से जूझना पड़ा जिससे नित्य वर्द्धमान भाव और कल्पना के साथ इनकी आस्था, इन के विचारदर्शन और निष्कर्ष-निर्णयों ने परिपक्वता पाई। जीवन की बाहरी विरोधी विविधता में सृजन के भीतरी एकांत चिंतन को समेटते चलना इनका स्वभाव सा बन गया। शिक्षा हासिल करने के लिए भी इन्हें अपने तईं ही भरोसा रखना पड़ा। बड़े भाई से यदा-कदा जो सहायता अथवा प्रोत्साहन मिला वह भी नाममात्र को ही। हाई स्कूल पास करके सन् १६३३ में ये बम्बई चले आए। १६३८ में सर जे.जे. आर्ट स्कूल का शिक्षण समाप्त करके ये वहीं कला-शिक्षक नियुक्त हो गए। प्रिंसिपल जेरार्ड का इनके निर्माणात्मक विकासशील जीवन पर अमिट प्रभाव पड़ा था, अतएव १६४६ में

नारीत्व की देहरी पर

बाली देश की नर्तकी

तन्मय

भारत से उनके प्रस्थान करने पर इनमें अधिक सतर्कता एवं स्वाश्रय की भावना आ गई। पहले इनकी रस-संवेदना उतनी विकसित न थी, पर शनैःशनैः इनकी दृष्टि अधिकाधिक स्वावलम्बी और व्यापक होती गई। सन् १६४५ और १६४६ से इन्होंने बम्बई में अपनी विशिष्ट कला-प्रदर्शनियों से काफ़ी पैसा संचय किया जिसके फलस्वरूप इन्हें विदेश यात्रा की सुविधा प्राप्त हो गई।

यूरोप की यात्रा के दौरान पेरिस, बर्न और लन्दन में इन्होंने कला-प्रदर्शिनियाँ आयोजित की और ख्याति पाई। आधुनिक कला का प्रतिनिधित्व करने वाले पेरिस के कला-संग्रहालय में इन्होंने 'माश्रु' नामक अपनी कलाकृति को प्रदर्शित किया, जिससे वहाँ के कला आलोचक अत्यन्त प्रभावित हुए, यहाँ तक कि कुछ लोगों ने एशिया की महान् कला-परम्परा का संवाहक और उत्तराधिकारी इन्हें घोषित किया। सन् १९५१ में पेरिस में एक और खास कला-प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया जहाँ पिकासो, राउल और लेजेर आदि महान् कलाकारों से इनकी भेंट हुई। यूरोप के अन्य देशों में भी इनकी कलाकृतियाँ अत्यंत प्रशंसित हुई।

भिखारी
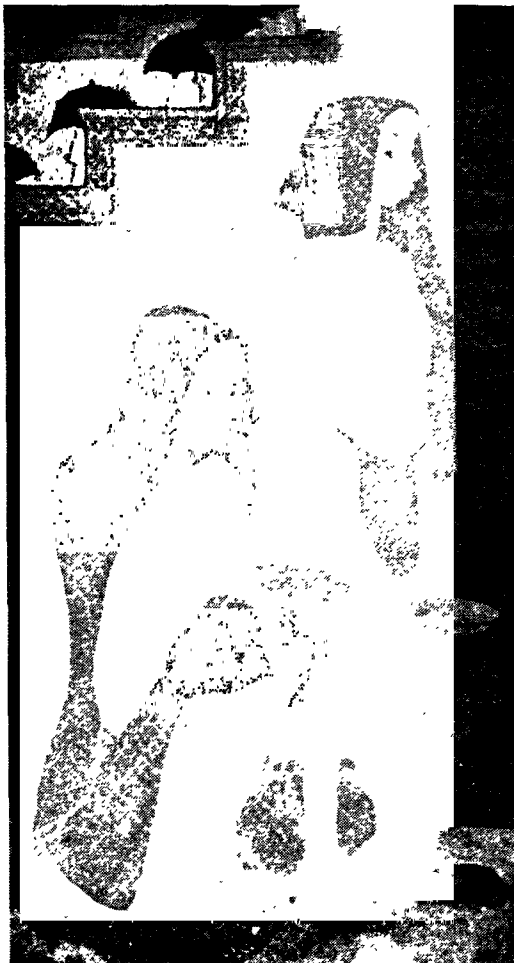
हेब्बर की शैली की अभिनवता, नूतन प्रतीक-विधान, रूमानी नियोजन और रेखाओं की आर्त्त भाव-विभोरता में एक नये सृजन और कल्पना का निराला ढंग अपनाने का असंदिग्ध आग्रह दीख पड़ता है। कुछ लोगों ने आक्षेप किया है कि इनकी कला अमृत शेरगिल से

बहुत अधिक आक्रान्त है। किसी हद तक यह सही होते हुए भी जिस भाव-भूमि पर कला टिकी है वह निश्चय ही अपनी विशिष्टिता के कारण ग्राह्य है। कला एवं टेकनीक की प्रकृति और उसके प्रयोजन एवं मूल्यांकन के परिमाप में अपेक्षाकृत पर्याप्त अन्तर है। हेब्बर ने चरित्रांकन में उतनी दिलचस्पी नहीं ली जितनी कि तरंग एवं रेखांकनों की परिपूर्त्ति में। अमृत शेरगिल की अपेक्षा इनके रंगों में कुतूहल भरी खुशनुमा झलक है, साथ ही इनकी मानवाकृतियाँ भी निर्दिष्ट और स्थिर पद्धति से आँकी गई हैं। जब कोई कलाकार अपनी कृति प्रस्तुत करता है तो उसकी कल्पना एवं सौंदर्य की सृजनात्मक प्रक्रिया उसके वाह्य रूप में नहीं, अपितु आंतरिक मूर्त्तकरण की प्रक्रिया में निहित होती है। हेब्बर की कला की महत्ता उपयोगिता की कसौटी अथवा प्रायोगिक विशिष्टता के निर्धारण में या यों कहें कि अभिव्यंजित मूर्त्त की तार्किक एवं बौद्धिक आधारभित्ति पर अवलम्बित है। कुछ विशिष्ट सिद्धांत उन्होंने विरासत रूप में पाये हैं, तथापि एक सजग प्रेक्षक की नाई कला के उद्देश्यात्मक पक्ष की मौलिक धारणा से पृथक् उसकी भावगत सत्ता को मूर्त्तवाद में अन्तर्भाव करके उन्होंने अपने युग की सामूहिक चेतना और सार्वजनिक धारणा का भी प्रतिनिधित्व किया है। फ्रांस या अन्य नई-नई यूरोपीय कलाधाराओं का प्रभाव इन पर पड़ा है, उदाहरणार्थ फ्रेंच कलाकार गौगैं और पाल सेज़ाँ से ये अत्यधिक प्रभावित हैं, फिर भी इन्होंने भारतीय विषय अपनाये हैं और यहीं के वातावरण का चित्रण किया है। अमृत शेरगिल की भाँति ये मोदिग्लियानी से प्रभावित नहीं। दक्षिण भारत के हाट बाज़ार के चहल-पहल भरे दृश्यांकनों में सुकुमार संयत रंगों का निखार और परिधि की रेखाएँ आँकने में कमाल बरता गया है। 'नारीत्व की देहरी पर' चित्र में एक छोटा-सा जलूस श्वेत रंगों में हल्की नीली पृष्ठभूमि के साथ एकाकार सा लगता है। 'कन्याकुमारी' की प्रतीक योजना और रंग-चयन में परस्पर अनुरूपता है जिसमें समरस लय और स्फूर्तिदायक उन्मद सौंदर्य की भीनी मादकता उभरती सी लगती है। 'उत्सव-नृत्य' में घनीभूत एकप्राणता और सरलता से अन्वित न होनेवाला दृश्यालेखन है।

प्रयोग की दृष्टि से हेब्बर ने कितनी ही कला-शैलियों को माँजा है। अपने रूपाकारों को वे शनैः शनैः अतिसूक्ष्म रेखांकनों में आँक रहे हैं। ऐसे चित्रों में उनकी विशिष्ट प्रतिभा उजागर हुई है जिससे वे अधिक मार्मिक और प्रभावकारी बन पड़े हैं। 'भिखारी', 'भारतीय नृत्य' में ये रेखाएँ अत्यन्त सजीव होकर उभरी हैं। कोरी गत्यात्मक रेखाएँ ही वे नहीं हैं, अपितु उनमें हरे, लाल, पीले, काले,

श्वेत रंगों की छटा भी दर्शनीय है। ज्यों-ज्यों इनकी कला अग्रसर हो रही है, त्यों-त्यों इनकी रंग और रेखांकन पद्धति में अत्यन्त सुहावनी सरलता आती जा रही है। प्रयोग इनके लिए साधन है, साध्य नहीं। प्रत्येक प्रचलित 'वाद' के ये समर्थक और प्रतिपादक हैं, बशर्ते कि आज का जीवित सत्य उसमें अभिव्यक्ति खोज रहा हो।

हेब्बर अपनी कला द्वारा किसी पर हावी नहीं होना चाहते, इसके विपरीत अपनी नितांत नई, निराली संवेदना को आज आस्थाहीन, संदेहजटिल युग के समक्ष व्यंजित कर सशक्त कलाविधान द्वारा उसे दूसरों तक पहुँचाना भर चाहते हैं।

याग्नेश शुक्ल

केश-विन्यास

याग्नेश शुक्ल की कला पर तीन तरह के प्रभाव द्रष्टव्य हैं—एक तो भारतीय भित्ति-चित्रण-परम्परा की छाप जो कि बम्बई कला स्कूल की विशेषता रही है, दूसरे इटालियन भित्ति-चित्रण, इचिंग ग्रौर काष्ठ खुदाई के तौर-तरीकों पर काय करने की प्रवृत्ति ग्रौर तीसरे हिसि-पि पद्धति पर चीनी दृश्य-चित्रण की ग्रनुकृतियाँ जिन पर ये इधर कुछ वर्षों से कार्य कर रहे हैं। इटली की सरकार ने इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की थी जिसमें ये रोम की रायल एकेडेमी

आफ फाइन आर्ट में रहकर वहाँ की विशिष्ट भित्ति-चित्रण-सज्जा, इचिंग और काष्ठ खुदाई की कला का अध्ययन कर सकें। तत्पश्चात् सन् १९०७ में भारत सरकार द्वारा पीपिंग की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ फाइन आर्ट में चीनी चित्र-कला को सीखने के उद्देश्य से इन्हें नियुक्त किया गया।

पीपिंग की नेशनल इन्स्टीट्यूट आफ फाइन आर्ट्स से इन्होंने चीनी पेंटिंग में डिप्लोमा तो हासिल किया ही, इसके अतिरिक्त वे इस प्राचीन देश की कला-निधियों में झाँककर जो बेशकीमती तजुर्बे बटोर लाये उससे इनकी कला में नई प्राणवत्ता और स्फूर्ति जगी। इससे पूर्व रोम में रहकर भी इन्होंने वहाँ की भित्ति चित्रकला, इचिंग और भीतरी सुसज्जा पद्धति का गंभीर अध्ययन किया था। अतएव ये कुछ ही इने-गिने भारतीय कलाकारों में से एक हैं जिन्होंने प्राच्य और पाश्चात्य कलातत्त्वों को एक साथ अपनी कला में समेटने का दावा किया है।

चीनी पेंटिंग में दो प्रकार की कला-टेकनीक बरती गई है, एक तो परम्परागत 'हिसि-पि' टेकनीक जिसके अर्थ हैं किसी भी खास दृष्टिकोण को व्यंजित करना और दूसरा 'कुंग-पि' जिसमें सविस्तार किसी विषय पर प्रकाश डालना। 'कुंग-पि' कला टेकनीक भारतीय मुग़ल कला की भाँति ही राजकीय प्रासादों, शाही महलों और राजदरबारों की भीतरी सुसज्जा और शान-शौक़त बनी रही, जब कि 'हिसि-पि' तमाम चीनी प्रदेश में बड़े व्यापक रूप से विकसित हुई।

चीनी कला से प्रेरित इनकी कलाधारा एक रोचक वक्रता और निराली गतिभंगिमा को लेकर अग्रसर हुई। वहाँ की क्लासिकल परम्परा और विशिष्ट लाक्षणिक पद्धतियों को न सिर्फ़ इन्होंने समझा-बूझा, वरन् एक सच्चे सत्यान्वेषी की भाँति वहाँ के 'सत्य-शिवं-सुन्दरम्' को अपनी कला-साधना मे बाँध दिया। सचेत मस्तिष्क और इसी आश्चर्यजनक शक्ति के जादू से इन्होंने अपने ब्रुश के प्रयोगों में भी एक सरल ऋजुता और सशक्त प्रभावकता भर दी, क्योंकि चीनी कला की भावात्मक शून्यता जिसमें स्वाभाविक रूप में और एक खास अंदाज़ के साथ रंगों को फैलाने का प्रयास तो रहता ही है, पर 'फिनिशिंग टच' नहीं होता। चूँकि रंगों का उभार कूची की नोक पर थिरकता है, अतएव रंगों को लय पर भी संयम करना पड़ता है। यूरोपियन टेकनीक के हिमायती इसे काले और श्वेत रंगों की एकतानता या ग्राफिक कला की एक खास स्थिति कह सकते हैं, पर इन्होंने चीनी रंगों की तमाम विशेषताओं का भारतीयकरण कर उनमें संगति और एकीकरण की प्रेरक शक्ति भरी।

पीपिंग और नानकिंग में इनके चित्रों की सफल प्रदर्शनियाँ हुईं। परम्परागत भारतीय चित्रशैली, इटालियन इंचिग और चीनी पद्धति पर आँके गए लामाओं, पुजारियों, पगोडों, दीपोत्सवों, चाय स्टालों, छविचित्रों और दृश्य चित्रों को काली स्याही और जलरंगों में दर्शाया गया था। प्राकृतिक दृश्यों की अनुपम छटा और नयनाभिराम सौन्दर्य की झाँकी, एक से एक सुन्दर गुलाबी, लाल, नीले, पीले, श्वेत, बैंगनी पुष्प और चारों ओर फैली हरियाली–यों मानव जीवन और प्रकृति में जो नैसर्गिक सम्बन्ध अथवा प्राकृतिक सुषमा से जो मानव की सहज वृत्तियों का तादात्म्य है वही वस्तुतः मूलाधार है इनकी कला का। पतझड़ या वर्षा ऋतु में किसी वृक्ष की सूक्ष्मताओं में पैठकर उसके हर ब्यौरों पर प्रकाश डालना या उसकी हर खूबी को आँकना इनके जीवन की विशेषता रही है। हिसिपि कला शैली पर बौद्ध मठ की पृष्ठभूमि में वृक्षों की शाखाओं, पत्तियों और हरीतिमा के भव्य विस्तार और उसकी चरम परिणति को भव्य रंगों में बड़ी ही कुशलता से ढाला गया है।

१९३४ और ३९ में लंदन में, १९३९ में रोम और पेरुजिआ में तथा १९४८ में पीकिंग में इनके चित्रों की प्रदर्शिनियाँ की गईं और वे अत्यन्त प्रशंसित हुईं। विभिन्न कलाशैलियों एवं नई-नई धाराओं की अमिट छाप इनकी कला पर पड़ी है। वे बहुत कुछ यकसाँ कलाभिरुचियाँ, किसी कट्टर संकीर्ण दर्शन तथा एक ही मुर्दा मतवाद की चौहद्दी में कला को बन्दी नहीं बनाना चाहते, क्योंकि उनके मत से वह कछुए के अंगों की भाँति सिकुड़ कर रहने वाली चीज़ नहीं है। उसमें अगणित रहस्य छिपे हैं–अतएव बहिरंग से अंतरंग की ओर वे प्रेरित हैं। इसके विपरीत उनमें अधिकाधिक समन्वय की भावना है। कला की सृजनात्मक प्रेरणा इतनी विकासशील और बहुमुखी हैं कि उसके तत्त्वों को उनके विभिन्न रूपों में ठीक-ठीक देख या पकड़ पाना किसी भी अजिज्ञासु या एक ही ढर्रे के कलाकार के लिए कठिन है। कला में नित-नये प्राण-संचार की आवश्यकता है। किसी भी देश के कलादर्शों किंवा दावों और पक्षपातों से ऊपर उठकर हर अच्छी बात को ग्रहण करने और सृजनात्मक प्रेरणा देने की चेष्टा ही आज का तकाज़ा है जो उसके चहुँमुखी विकास का आवश्यक अंग है। याग्नेश शुक्ल बहिर्देशीय कलातत्त्वों को निजी कला में आत्मसात् कर नई पीढ़ी की अनवरत बढ़ती विश्वबन्धुत्व की भावना को प्रश्रय दे रहे हैं। वे कला-क्षितिज को व्यापक बनाने के साथ-साथ उसके प्रायोगिक उपाङ्गों एवं रुख को अग्रसर करने में भी प्रयत्नशील हैं।

प्रारम्भ में इन्होंने प्राचीन भारतीय क्लासिकल पद्धति को अपनाया। 'दानलीला' इसी शैली की भित्तिचित्र सज्जा का डिज़ाइन है, किन्तु वे उसमें उतने सफल नहीं हुए जितने कि बाद में इटालियन पद्धति पर निर्मित्त भित्ति-चित्रों में। इनकी केश-विन्यास कलाकृति लाइनों में उभारी गई। गतिमय एक प्राणता लिये है और जिसमें इनकी शैली मँजी हुई प्रतीत होती है।चीनी पद्धतिके चित्रों में इनकी कल्पना की प्रगल्भता और भी साकार हो उठी है। उसी तरह की रंग-योजना जो खास चीनी स्याही में ब्रुश की ठोंक से प्रभाववादी पद्धति में अन्वित हुई है और वैसा ही रूपाकारों का भावन जिसमें रेखाओं का सम्पुंजन घना या छितराया हुआ, कहीं दुर्ज्ञेय या अचेत चेष्टा लिये और कहीं असंलक्ष्य क्रम अथवा दूरान्वय भरा—तथा कहीं गहरी कालिमा से फिसलती, निरन्तर धूमिल होती स्निग्धता। 'बाँसों के झुरमुट में पक्षी, 'वैंग फैंग चिग का पोर्ट्रेट' तथा अन्य घोड़ों की भावभंगी और उनकी विभिन्न स्थितियाँ आदि बड़ी ही कमाल की बन पड़ी हैं। इसमें किंचित भी सन्देह नही है कि चीनी दृश्य-चित्रण के सौन्दर्य और प्रकृति के वैभव को इन्होंने हूबहू हृदयंगम किया है। चीनी कलाकारों की भाँति ही इनकी कला-चेतना प्राकृतिक सौन्दर्य-अनुभूति की चित्रशैली है जो अन्य देशीय कला शैलियों के योग से विभिन्न प्रकार से समृद्ध हो आधुनिक सभ्यता के दमघोंटू वातावरण में भी सरल, सच्चे हृदय के सौन्दर्यपूर्ण उद्वेगों की दिग्दर्शक और नई दृष्टि प्रदान करने वाली है। इनके ऐसे कितने ही चित्रों में मुग्ध करने वाला भाव है जो हृदय को अभिभूत कर लेता है। प्रिंस आफ वेल्स म्यूज़ियम, बम्बई, बड़ौदा म्यूज़ियम के चित्र-कक्ष और सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट बम्बई के कला संग्रहालय बड़ौदा की पिक्चर गैलरी और नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट दिल्ली में इनकी उत्कृष्ट कला-कृतियों का वृहद् संकलन है। इटली सरकार की छात्रवृत्ति पर ये इटली गए और वहाँ भित्तिचित्रण का विशेष अध्ययन व अनुसंधान किया। ब्रिटेन, नानकिंग, टोकियो, (जापान), यूनेस्को, पेरिस की अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया और कई देशी-विदेशी कला संस्थाओं से इन्हें पुरस्कार और पदक प्रदान किये। आजकल ये सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट, बम्बई के आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स डिपार्टमेंट के अधीक्षक हैं।

शैवेक्स चावड़ा

'डिज़ाइनर' के रूप में शैवेक्स चावड़ा अपना सानी नहीं रखते। विभिन्न शैलियों और विभिन्न शिल्पविधियों में चित्रांकन करने के बावजूद अपनी विशिष्ट शैली में डिज़ाइन बनाने में ये निजी आकर्षण रखते हैं। रेखाओं, रूपाकारों और रंगों का चयन तथा संयत सुसंयोजना उनकी ध्येयपूर्त्ति में सहायक होती है। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी कला में जो स्फूर्त्ति है, जो प्रेरणा है या कहें कि अभिभूत कर लेने वाली शक्ति है वह उनके सशक्त सौंदर्य-विधान के अगणित रूपों में मूर्त्तिमान होकर प्रकट हुई है। सर्वप्रथम तो उनकी दृष्टि केन्द्रस्थ भाव पर टिक जाती है, फिर वे रूपाकारों

तीन बैलगाड़ियाँ

को उसी के अनुरूप ढालते हैं, उनकी हर हरकत और गति में सजीवता भरते हैं, अपितु प्रतिपाद्य विषय को शक्तिसम्पन्न बनाने के लिए यदाकदा उसे बढ़ा-चढ़ा कर दर्शाते हैं। रूप को सुरूप बनाना, प्रत्येक कलात्मक रचना में सौन्दर्य एवं श्री ढालना तथा सांकेतिक चित्र-रेखाओं में अभिव्यंजनामूलक कौशल इस त्वरा से दर्शाया गया है कि इनके चित्रों का व्यक्तित्त्व पृथक् ही उभर आता है। कहीं-कहीं इनकी
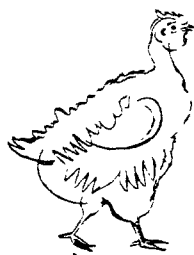
शानभरी चाल

कला इतनी यथार्थ, इतनी जीवित और ऐसी मर्मस्पर्शी बन पड़ी है कि साधा-

रण से साधारण वस्तु भी उनकी सरल, सीधी, तर्कहीन आस्था और निःशंक आत्मविश्वास से दीप्त हो उठी है। थोड़े से प्रयास से ही ये सुन्दर, सुसज्जित डिज़ाइन बनाने में सफल हो जाते हैं।

दक्षिणी बहंगी वाले

दक्षिणी गुजरात के नवसारी ग्राम में शैवेक्स चावड़ा का जन्म हुआ। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट, लन्दन के स्लेड स्कूल आफ आर्ट और पेरिस की 'अकादमी देला ग्रांदे शामीएर' (Academic de la Grande Chammievre) नामक कला-शिक्षण-संस्था में ये कला का अध्ययन करते रहे। पोट्रेट-चित्रण, भूरी चट्टान पर उत्कीर्ण अंकन, काष्ठ-खुदाई, लिथोग्राफी और धुमिल अथवा नष्टप्राय चित्रों को पुनर्जीवन प्रदान करने की कला में इन्होंने विशेष सिद्धहस्तता प्राप्त की। प्रो० रेण्डोल्फ श्वेवे की देखरेख में इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा प्राप्त किया और व्लादिमिर पोल्यूनिन के तत्त्वावधान में भित्ति-चित्रण की टेकनीक को हृदयगम किया। सन् १६३६ में भारत लौटकर इन्होंने अधिकतर व्यावसायिक कला, पोर्ट्रेट और भित्ति-सुसज्जा में समय

एक किसान

लगाया। कुछ अर्से तक ये एक सुप्रसिद्ध फिल्म यूनिट में आर्ट-डायरेक्टर का कार्य करते रहे।

अपने चित्रों के विषय के लिए इन्होंने कभी पौराणिक आख्यानों अथवा मनगढ़न्त किस्से-कहानियों का तब तक सहारा नहीं लिया जब तक कि इन्होंने उनकी आत्यन्तिक आवश्यकता न समझी हो। उदाहरणार्थ—एयरलाइन की सुसज्जा के लिए इन्होंने एक विशाल भित्ति-चित्र का निर्माण किया जिसमें इस तरह का आधार लिया गया था। घोड़े की विभिन्न भंगिमाओं को लेकर पैनल पेंटिंग के रूप में भी इन्होंने एक भित्ति-चित्र का डिज़ाइन प्रस्तुत किया। प्रगति, व्यवसाय, कृषि एवं उद्योग-धंधों की दिग्दर्शक अनेक महत्त्वपूर्ण उत्कीर्ण मूर्तियाँ इन्होंने बम्बई में फिरोजशाह मेहता रोड की इमारतों के लिए निर्मित कीं। किन्तु दूरगामी समय की अबाध गति के साथ इनमें यथार्थोन्मुखी प्रवृत्तियाँ ही अधिक उभरीं। 'संघर्ष', 'गाड़ियाँ', 'मृदंग-वादक', 'बकरियाँ', 'माँ की ममता', 'कुलू में पूजा-आराधना' आदि कितनी ही कलाकृतियाँ जो देहली और बम्बई की प्रदर्शिनियों में प्रशंसित हो चुकी हैं, वास्तविक जीवन की परिस्थितियों से प्रेरित हुई हैं। 'रांगोली', 'टोडी-विक्रेता', 'बरामदे में हाथी' आदि में

भंगिनें

दैनिक कार्य में व्यस्त

उनकी रूपांकनप्रिय प्रवृत्ति के दर्शन होते हैं। चावड़ा औपचारिक शिल्प-विधि को उतनी दक्षता से सम्पन्न नहीं करते जितना कि चित्रात्मक पद्धति पर सांकेतिक रेखाओं के त्वरित अंकन की कला में वे प्रवीण हैं। यही कारण है कि इनकी समूची कला-कृतियों की अपेक्षा इनकी स्केच-बुक में अत्यन्त त्वरा में आँके गए रेखांकन चित्रों का विशष महत्त्व है। इनकी कला-साधना, इनकी पकड़ और इनकी सामाजिक जागरूकता सभी का क्षेत्र इतना व्यापक है कि उनकी पैनी दृष्टि नये विषयों, नई अनुभूतियों, नये नमूनों तथा नित-नये रूप-रंगों की खोज में व्यस्त रहती है, यहाँ तक कि जीवन के कितने ही पहलुओं पर नये ढंग व नये दृष्टिकोण से इन्होंने दृष्टिपात किया है। भारत की यात्रा करते हुए इन्होंने कितने ही स्थलों, दृश्यों, महत्त्वपूर्ण स्मारकों का रेखांकन किया है और कितनी ही बार नये नये वातावरण से गुज़र कर इनकी कल्पना एवं संवेदना शक्ति ने नया मोड़ लिया है।
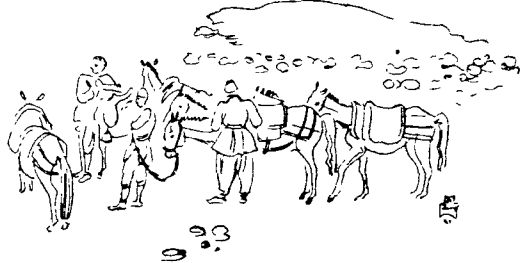
सोनमर्ग में खच्चर वाले

पेपरमाशी का कुशल कारीगर

चावड़ा की सबसे बड़ी खूबी है कि वे आवेगभरे, भावप्रवण और कारुणिक विषयों के प्रति बड़ी ही सूक्ष्म कोमल भावाभिव्यंजना का सहारा लेते हैं। उनके कृतित्व का प्रमुख तत्त्व है कि उनकी रेखाएँ बड़ी ही तरल, रंजित और लचकीली कोमलता लिये होती है जो खजुराहो, एलोरा और साँची की क्लासिकल भारतीय मूर्त्तियों की अनुकृति से सजीव हो उठी है। समन्वित रेखाओं के अनुपात से विभिन्न आकृतियों, उनके अंग-विन्यास तथा जीवन

वैशिष्ट्य का बोध होता है। कितने ही वाह्यांकनों में इनका व्यक्तित्त्व और मनःप्राण लय होकर असामान्य रूप में अनुप्राणित हुआ है और कितनी ही भारतीय नृत्य-भंगिमाओं में देशकालानुरूप भव्यता एवं अन्तर्वृत्तिनिरूपक स्थितियों का समन्वय है। साज-सज्जा, रूमानियत एवं रंजित कल्पना को इन्होंने क्रमशः यथार्थता में रूपान्तरित कर दर्शाया है।

इन्हें बहुत अधिक चित्रण का शौक़ है। प्रायः एक दिन में ही ये चित्र पूर्ण कर लेते हैं अथवा एक बैठक में ही उसे समाप्त कर देते हैं। जलरंग, तैलरंग, टेम्परा, पेस्टल, कागज़ सिल्क एवं लकड़ी सभी माध्यमों का इन्होंने उपयोग किया है, किन्तु टेम्परा में इन्हें विशेष रुचि है और उसमें ये अधिक सफल हुए हैं। फाउन्टेनपेन की स्याही से निर्मित इनके अनेक रेखांकन पुस्तकों में छपे हैं, विशेषकर स्याही से अंकित सुप्रसिद्ध चिदम्बरम् मन्दिर की नृत्य-भंगिमाएँ जो बड़ी ही आकर्षक और दर्शनीय बन पड़ी हैं। काश्मीर और कुलू के दृश्य-चित्र तथा स्याही और पतले रंगों के संयोग से बने चित्रों में सहज स्निग्धता और ताजगी है। कभी-कभी रंगों और आकृतियों की चेष्टा में एकरूपता प्रतीत होती है, परन्तु उनकी तीव्र प्रभावान्विति में पर्याप्त विभिन्नता भी है। खड़ी हुई आकृतियों में सीधी उत्तिष्ठ रेखाएँ गौरव की व्यंजक हैं तो समतल बिछी रेखाएँ विश्राम और शांति का सहज वातावरण उत्पन्न करती हैं। रेखाओं में मानो होड़-सी लगी है। कहीं एक रेखा दूसरी रेखा की अनुवर्त्ती है तो कहीं उनके दुहरे-तिहरे प्रयोग किये गए हैं, कहीं वे एक दूसरे की पूरक हैं तो कहीं सामंजस्य या अनुरूपता का सर्जन करती हैं। समग्रता अथवा ठोस घनता लाने के लिए चावड़ा की एक ख़ास पद्धति है कि ये अपनी आकृतियों की रेखा-परिधि का हाफ टोन में चौड़ी समकक्ष रेखाओं द्वारा संकुचन करते हैं, यहाँ तक कि कई बार यह उपकरण कृत्रिम सा लगता है। रंगों में ये अत्यन्त मुक्तता बरतते हैं। प्रकृत रंगों की अवहेलना कर इन्होंने रंग-बिरंगी

शरणार्थी

साज-सज्जा को अपनाया है जिससे रंगों का बाहुल्य इनकी कला पर यदा-कदा हावी हो उठता है ।

बम्बई के ये बड़े ही लोकप्रिय और ख्यातिलब्ध चित्रकार हैं । बम्बई, अहमदाबाद, दिल्ली, लंदन, पेरिस, ज्यूरिच में इनकी कलाप्रदर्शिनियाँ आयोजित की गईं जिन्हें जनता ने सम्मान दिया और सराहा । स्टडी टूर पर जावा, मलाया, बाली आदि देशों में और दो बार इन्होंने यूरोप का दौरा किया। बड़ौदा विश्व-विद्यालय और अन्य कला संस्थाओं के ये परीक्षक रहे हैं, नेशनल एग्जीबिशन आफ़ आर्ट की चुनाव और जाँच समिति के सदस्य हैं और ललित कला अकादमी की कार्यकारिणी बोर्ड से सम्बद्ध हैं। चावड़ा का कला-प्रशिक्षण पेरिस में हुआ था, किन्तु इन्होंने भारतीय जनजीवन के चित्रों से प्रायः प्रेरणा ली, उन्हें ही अपने कृतित्व का विषय बनाया। इनके चित्र छोटी-मोटी घटनाएँ और प्रसंगों का चित्रांकन करते हैं जो सर्वसामान्य के दिलों को छूते हैं और यही एक ऐसा गुण है जिससे इनकी कला से बरबस तादात्म्य हो जाता है ।

जार्ज कीट

जार्ज कीट सिंहली हैं, पर उनकी कला-निष्ठा और विश्वासों की जड़ें इसी धरती की मिट्टी और खास कर बम्बई की संस्कृति से पोषित हुई हैं। उनकी चित्रांकन-पद्धति और मुख्यतः डिज़ाइनों के रूपान्तर पर यूरोपीय कला-शैलियों का प्रभाव है, पर उनकी हर कृति अपने रूप और अभिव्यक्ति में अनिवार्यतः भारतीय होती हैं और यहीं के वातावरण से अपनी शक्ति और अस्तित्व ग्रहण करती है।

जार्ज कीट की निर्माण-पद्धति में एक अद्भुत वैचित्र्य और रंगमयता है जो सधे हाथ की सफाई और शैली की गहराई से युक्त उनकी कल्पना को ऐसे ऊँचे अनन्त में उड़ा ले जाती है जहाँ चमकीले रंगों की एकतानता अर्थात् इनके अपने जन्मस्थल कैंडी के खलिहानों की हरीतिमा, संध्याकालीन सूर्यास्त की स्वर्णाभा, दोपहर की चिलकती तेज़ी और मंद, सुखद, गंभीर बासंती सौम्यता जिनमें सिंहल द्वीप (सीलोन) के थिरकते-मचलते रंगों का मोहक सम्मिश्रण है-एक अजीब मस्ती या ऊँघ की सी व्यंजना करती हैं। ये रंग ही इनकी सृजन-प्रतिभा को शह देते हैं, पर ये रंग यत्र-तत्र छिटके हुए नहीं अपितु सुसज्जित आकारों में तरतीब से संश्लिष्ट हैं जिसमें हर रेखा के साथ दूसरी अनुवर्त्ती रेखाओं का रंगों से समन्वय कर चित्र की पृष्ठभूमि में सुरुचिपूर्ण पद्धति और कल्पना की सशक्तता के साथ उन्हें सयुक्त कर दिया गया है।

देवयानी और ययाती

रेखाएँ इनकी कला में विशेष महत्त्व रखती हैं। ज्यामितिक ढाँचों में त्रिकोण चतुष्कोण, समकोण, दीर्घ वृत्ताकार, चक्राकार, घुमावदार, पेंचदार अथवा यदा कदा सीधी-सपाट रेखाओं को गूँथकर तथा एक संदर्भ से दूसरे का मिलान कर इन्होंने विभिन्न 'मूडों' का या कहें कि स्वभावगत चारित्रिक विशेषताओं का बड़ा ही अपूर्व दिग्दर्शन कराया है। आकार के अनुरूप ढाले हुए इनके कोमल तरल रंग आवेगमय, भावात्मक स्थितियों तथा प्रेम, भय, उदासी, उत्फुल्लता आदि की अभिव्यंजना करते हैं। इस प्रकार इन्होंने अपनी संवेदनाओं आदि को इन ज्यामितिक बिम्बों में सजीव और सप्राण बनाने की चेष्टा की है। इनकी कुछ प्राथमिक कृतियाँ-'गट्ठर उठाए औरतें', 'सारंगीवादिनी बालिका' आदि कतिपय कला कृतियो में कोण युक्त वक्रता होते हुए भी गेय भावमयता है जो विभोर कर लेती है, परन्तु इनकी परवर्ती कृतियों में दुरूह गूढ़ता और अव्यंजकता अधिकाधिक बढ़ती जा रही है जिनमें संश्लिष्ट विषय प्रमुख और व्यंजक भाव गौण हो गए हैं।

प्रणय रागिनी

जार्ज कीट के चित्रों में बौद्धिक विवरणात्मकता के बावजूद कोमलता का संस्पर्श भी है जिसमें व्यक्ति की स्नायविक आकृति की निर्माण-प्रक्रिया को सूक्ष्मता से आँका गया है। यद्यपि इनका कला-विधान निराला और विचार-स्वातंत्र्य का द्योतक है तथापि इस प्रकार इन्हें एक नई दृष्टि मिली है। यह शैली इनके कृतित्व में मानो अपने आप रूप ग्रहण करती गई है।

कहना न होगा कि यह अजीबोग़रीब शैली इनकी अपनी है, सर्वथा मौलिक और स्वतःप्रेरित, किन्तु जहाँ तक भावमय रूपाकारों के अन्वेषण का प्रश्न है इनकी कला पर फ्रांसीसी चित्रकला—मुख्यतः पिकासो, सेज़ाँ और ब्राक़ का प्रभाव पड़ा है। भारत और लंका की कला-परम्पराएँ, आधुनिक युग की कितनी ही

कला-धाराएँ, महाभारत के आख्यान और प्रसंग, पौराणिक कथा-उपकथाएँ,

काँगड़ी रागिनी

गौतम बुद्ध सम्बन्धी जातक और जैन-गाथाएँ, दक्षिणी भारत के मंदिरों की गोपुरम् पर अंकित मूर्त्तियाँ, अजंता और सिगिरिया के भित्ति-चित्र, भरतनाट्यम् की विविध नृत्य-भंगिमाएँ, वाद्य संगीत और राग-रागिनियों ने इन्हें बेहद प्रभावित किया है। अपनी अभिनव जीवन-दृष्टियों और नित-नई सामंजस्यशील कला-टेकनीक द्वारा इन्होंने पूर्व और पश्चिम के छोरों को छुआ है।

इस प्रकार इन्होंने कला-परम्परा में क्रान्तिकारी परि-वर्त्तन किये हैं। फ्रान्स का घनवाद(cubism), अतिवस्तु-वाद (surrealism) और नव्यरूपवाद (neo-constr-uctionalism) का विचित्र रूप-विधान सर्वथा नये ढंग से इनकी कला में उजागर हुआ है, पर इस नवीनता के आग्रह में वह बहुतों को दुरारूढ़ और अविश्वसनीय प्रतीत होता है। कुछ लोगों के मत में पिकासो की सी बेमेल पद्धति इनकी कला की भी विशेषता है। इन्होंने अपने तरीके से सेज़ाँ का

गंगा और शांतनु

ठोस घनत्व, ब्राक् की सतही सतर्कता, शिरिको का भीड़ से भय, द्यफी का

रेखांकन-वैलक्षण्य, मातीस के पैटर्न और डिज़ाइन, फाव्ज़ की रंग-नियोजना, यहाँ

द्रविड़ शैली
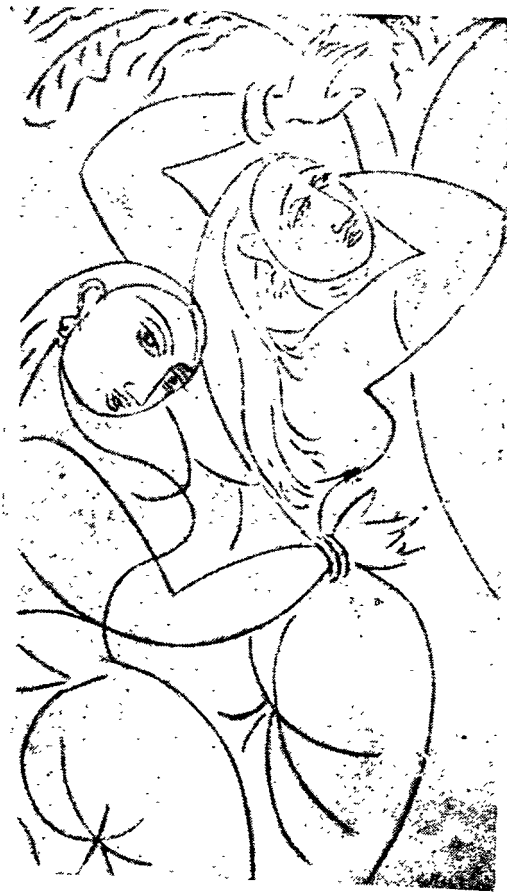
तक कि हेनरी मूर का अंतर्मनोविज्ञान प्रच्छन्न रूप से निजी कला पर विघटित किया है, पर इसका यह अर्थ नहीं है कि इनकी कला एक अनर्गल रूपान्तरण अथवा आयासपूर्ण अनुकृति मात्र है। बौद्धिक रागात्मक उन्नयन के स्तर पर बिना किसी की सहायता लिये, किन्तु निरन्तर क्रियाशील रहकर इन्होंने अन्य कलाकारों के प्रभावों को प्रशंसात्मक रूप में आत्मसात् किया और कला के सूक्ष्म अंत सूत्रों और कल्पों में रेखाओं और रंगों को कुछ अपने ही खास निराले ढंग मे गूंथ दिया है। इन्हें सर्वाधिक प्रेरणा भारतीय मूर्त्तिकला और लोक कला से मिली है। नारियों के आकार द्रावड़ी पद्धति पर भारतीय और लंका की संस्कृति के सजीव उदाहरण हैं जैसे अंग-प्रत्यंगों के अनुपात, केश-विन्यास, त्वचा के रंग, शरीर गठन और आँख-नाक की बनावट और कितनी ही रुचियों, सूक्ष्म प्रक्रियाओं और व्यवहृत रूपों और सूक्ष्म से सूक्ष्म ब्यौरों में मानव सम्बन्धों की विविधता और बहुरूपता है। किन्तु कई बार इन मानवी आकृतियों में अनेक तरह के अजीब मोड़-तोड़ और विपर्यय नज़र आते हैं जो इस कलाकार

इन्द्र और अहिल्या

के अपने अंतर्द्वन्द्व के द्योतक हैं। इनकी संवेदनाओं की वक्र अभिव्यक्ति, जो एक प्रकार का वैचित्र्य लिये है, हरेक की समझ के बूते की चीज़ नहीं है। वह ऐसी सीधीसादी नहीं जो चुपचाप हृदय को छू ले, बल्कि अपने खास नाज़-अन्दाज़ में नये युग की उलझन और वैषम्य को समेटे अजीब आकर्षक रखती है और कला के मर्मज्ञ को विमुग्ध कर लेती है। यही कारण है कि अपनी इस विशिष्टता से ही इनकी कला इतनी लोकप्रिय और हृदयस्पर्शी बन सकी है।

कावेरी और अगस्त्य

जार्ज कीट बौद्ध धर्मानुयायी हैं। लंका के सरल ग्राम्य जीवन के स्वच्छन्द वातावरण में रहकर इनकी कला-चेतना अधिकाधिक मुक्त होती गई है। कोलम्बो, बम्बई और नई दिल्ली में इनके चित्रों की कई प्रदर्शिनियाँ हुई हैं। सीलोन में लायनेल वेनडेट मेमोरियल और एच. पेयरिस और भारत में मार्टिन रसेल और मुल्कराज आनन्द के कला-संग्रह में इनकी अनेक महत्त्वपूर्ण कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं। इनकी एक विशेषता जिसने कला की दिशा में नई लीक कायम की है वह यह कि इनकी अपनी भिन्न शैली का एक मौलिक और नितान्त निजी ढंग है। उसी के सहारे ये आगे बढ़े हैं। अपने नये-नये प्रयोगों और एस्थेटिक अनुभूति को जगाने वाली निर्माण प्रक्रिया द्वारा वे अपना सामूहिक प्रभाव छोड जाते हैं जो मन और प्राणों को छूता है।

माधव सातवलेकर

माधव सातवलेकर ने रंगों के प्रयोग में नितान्त नई शैली को जन्म दिया है, क्योंकि उनके विषय और अभिव्यक्ति फ्रेंच कलाकार गौंगैं और मातीस से प्रभावित हैं। किसी भी तरह के व्यवधानों एवं बाधाओं की परवाह किये बग़ैर वे कला में मुक्तता के क़ायल हैं। सुष्ठु रंगों के साथ मोटी गूढ़ रेखाएँ जो समतल भूमि को एक विशिष्ट आधार में ढाल देती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो लहराती-उमड़ती ये रेखाएँ क्षितिज की लय में रमकर ठोस रंगों की घनता में डूब गई हैं। सातवलेकर की कला-चेतना पर्याप्त ग्रहणशील है, पर वे ऐसे क्षणिक प्रभावों से अभिभूत नहीं होते जिनमें बौद्धिक ईमानदारी अथवा स्थायिता की गुंजायश नही है।

गूजरी

जीवन के प्रति इनका अपना भौतिक दृष्टिकोण है। कभी रंग एवं रेखाएँ सर्वथा नया ही व्यक्तित्व उभारती है और किसी-किसी कलाकार के कुछ ऐसे अपने ख़ास तौर-तरीके होते हैं जो व्यक्ति व्यक्ति में अन्तर उत्पन्न करके उसी अनुपात में पौरुष, सौन्दर्य और कलात्मकता का सृजन करते हैं। किन्तु कलाकार में वस्तु के आन्तरिक गुणों को पहचानने की दिव्य दृष्टि भी होनी चाहिए। रंग और कार्यपद्धति चाहे कैसी ही हो अपनी प्रखर दृष्टि के कारण कलाकार एक अलग दुनिया में पहुँच जाता है और निजी भावभंगिमा एवं अनुभूति को तूलिका कौशल से स्पन्दित कर देता है। किसी वस्तु का सादृश्य प्रस्तुत करना उतना महत्त्वपूर्ण नहीं जितना कि आन्तरिक स्वरूप को चिरंतन तत्त्वों से संश्लिष्ट करना।

सातवलेकर की सबसे बड़ी खूबी यही है कि इन्होंने चित्रकला में जिन आदर्शों को अपनाया उन्हें सचाई और ईमानदारी से प्रस्तुत किया। उनकी सौन्दर्यानुभूति जाग्रत है और उन्होंने कलात्मक संस्कारों को क्रमशः विकसित किया है। इनकी अपनी विशिष्ट रूपसृष्टि जीवन-जगत् की सफल उद्गाता है। अफ्रीकी पद्धति की छाप होने के कारण इनके चित्रों में सपाट स्थल की मुक्तता द्रष्टव्य है अर्थात् गहरे डबडबाये रंग स्वतन्त्र होकर अनन्त विस्तृत आकाश में उड़ते से नज़र आते हैं। चित्र और उसके इर्दगिर्द का वातावरण एकरस में डूबा सा लगता है और दर्शक अपने को उनमें घुलते-मिलते देखता है। जीवन के वैविध्य ने अनुभूतियों का अक्षय भंडार जो कलाकार को दिया है वह उसकी अपनी नव्य जीवन दृष्टि और मौलिक रंग-नियोजना से सहज और मुक्त सा प्रतीत होता है, क्योंकि किसी भी चित्रण की गरिमा उसकी मुक्त सहजता में ही है।

किसनेयी बाजार (अफ्रीका) का एक दृश्य

सातवलेकर के चित्र इसीलिए लोकप्रिय हैं क्योंकि उनमें कोई अतिरंजना या ऊपर से थोपी गई अलंकरण या सज्जा नहीं है। इसके विपरीत बिखरे एवं निस्संग कलातत्त्व भी परस्पर गुँथे हुए लगते हैं जिससे कलाकार की संवेदना और आत्मीयता का बोध उसकी

घर की ओर

अविभाज्यता से संश्लिष्ट होकर एकमेक हो गया है।

औंध स्टेट में इनका जन्म हुआ था, किन्तु अन्य साथियों की भाँति इन्होंने भी सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा पाई और एक मेघावी छात्र होने के नाते लार्ड मेयो पदक प्राप्त किया। १६३७ में यूरोप की यात्रा पर इन्होंने प्रस्थान किया। लंदन के सुप्रसिद्ध स्लेड स्कूल आफ आर्ट में ये एक वर्ष तक अध्ययन करते रहे। इनके हल्के-गहरे इकरंगे चित्र वहाँ अत्यन्त प्रशंसित हुए। लंदन में अपना अध्ययन पूर्ण कर वे म्यूनिक की 'म्यूनिक आर्ट गैलरी' में कला सम्बन्धी प्रशिक्षण और उसकी बारीकियों को हृदयंगम करने के उद्देश्य से चले गए। इस प्रकार कला-सम्बन्धी इनका अनुभव और ज्ञान उत्तरोत्तर बढ़ता गया। नये रास्तों की खोज ने इन्हें आशावादी बना दिया था और इसी आशा से ये बाद में फ्लोरेंस चले गये। यहाँ स्थानीय एकेडेमी आफ आर्ट संस्था में कला का निरीक्षण-परीक्षण और अनवरत प्रयोग करते रहे। सुप्रसिद्ध कलाविद् प्रो० वेस्टिआनिनी के तत्त्वावधान में इन्होंने निजी तौर पर कला का खूब अभ्यास किया।

तत्पश्चात् ये १६४० में पेरिस चले गए और चार मास वहीं बिताये। महायुद्ध उस समय जोरों पर था। फ्रेंच एकेडेमी और म्यूज़ियम में इन्हें काफ़ी समय देना पड़ता था। किन्तु युद्ध की सरगर्मी और कठिन समय की कशमकश ने इन्हें बहुत कुछ सिखा-समझा दिया। संघर्षों से गुज़रकर ये काफ़ी अनुभव सम्पन्न हो गए थे। भारत लौट आने के दौरान में भी इन्हें अनेकानेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा।

पाँच वर्ष की अनवरत साधना के पश्चात् इन्होंने १६४५ और १६४७ में बम्बई में अपने चित्रों की प्रदर्शनियाँ की जिनके द्वारा ये आगे बढ़ते और परिवर्त्तित होते तरह-तरह के अपूर्व-कल्पित तरीकों के सहारे नव्य कलादर्शों का संकेत देते रहे। इनकी पूर्व कल्पित योजना कैसी ही हो, पर यह निश्चित था कि कार्य करते-करते उसमें परिवर्त्तन अवश्यंभावी है। यूरोप और पूर्व अफ्रीका की वृहद् यात्रा पर इन्हें बौद्धिक प्रशिक्षण मिला। अफ्रीकी जीवन सहज प्रेरणा बनकर इनकी संवेदनाओं को परिष्कृत, वरन् यही नहीं मानव मात्र के प्रति स्नेह-सम्बन्ध की चेतना को पुष्ट करता गया। इनके अफ्रीकी चित्र सुन्दर बन पड़े हैं। अफ्रीकी वेषभूषा में रूमानी भाव लिये भाँति-भाँति की रग-विरंगी साज-सज्जा से इनकी शृंगारप्रियता प्रकट होती है। 'यूगाण्डा की औरतें' और 'रास्ते में नारी-मिलन' चित्रों में चटकीले रंगों की छटा दर्शनीय है। बाज़ार की

चहल-पहल और विक्रेताओं एवं खरीदारों के मन में विभिन्न परिस्थितियों में उठने वाले भिन्न-भिन्न भावों का दिग्दर्शन भी इन्होंने अपने कतिपय चित्रों में कराया है। 'मौशी बाजार,' 'किकुय मार्केट', 'किसेनयी मार्केट', 'बेल्जियन कांगो की औरतें' और 'टोकरी वालियाँ' आदि चित्रों में बाज़ार की बड़ी ही सुन्दर सजीव झाँकी प्रस्तुत की गई है।

इनके अधिकांश चित्र तैलरंगों में निर्मित हुए है। दृश्य-चित्रों में जंज़ीबार, माउण्ट केन्या, माउण्ट किलिमन्जारी और राइपन प्रपात बड़े ही मोहक और प्रभावशाली बन पड़े हैं। विशाल कैन्वास पर काम करने का भी इन्हें बेहद शौक़ हैं। मिश्रित रंगों के प्रयोग और ठोस रेखांकनों में इन्हें काफ़ी सफलता मिली है। अपने परवर्त्ती जीवन में ये बैंगाफ़, देगाज़, हेनरीमूर और स्टैनले स्पेसर आदि कलाकारों से भी प्रभावित हुए, पर समकालिक यूरोपीय शैलियों को अपनाने के बावजूद भी इनमें एक प्रकार की रूढ़िवादिता है, जिसमें शिल्प-सौन्दर्य की व्यंजना में आस्था अथवा मानव-प्रकृति और वाह्य प्रकृति का सूक्ष्म पर्यवेक्षण करके उसकी यथातथ्यता में पैठने की क्षमता का अभाव खटकता है। इनके चित्र दर्शक को उत्फुल्ल तो करते हैं, पर कोई स्थायी प्रभाव नहीं छोड़ जाते। ब्रिटिश ईस्ट अफ्रीका के सरकारी संग्रहालय और बड़ौदा म्युज़ियम की पिक्चर गैलरी तथा देशी-विदेशी संग्रहालयों में इनके अनेक चित्र अब भी सुरक्षित हैं।

प्रगतिशील कलाकार

कला शाश्वत सत्य है, किन्तु इस सत्य की अनुभूति को अधिक से अधिक व्यापक रूप में अपने भीतर मूर्त्त कर सकने के प्रयास में कलाकार के रागबोध के अनेक नये पहलू नित्य प्रकट होते रहते हैं। उसकी यह नई विकसित दृष्टि सौन्दर्यबोध को नये परिवेश और नये सन्दर्भ में देखने की प्रेरणा ही नहीं देती, अपितु यथार्थ से ओतप्रोत जीवन की व्यापकता और मान्यताओं को स्वीकार कर वाह्य प्रभावों को ग्रहण और आत्मसात् भी करती है। निश्चय ही काल क्रम से कलाकार की केन्द्रीय प्रेरणा के तत्त्व कला के भविष्य में उन्मुक्त विकास का पथ प्रशस्त करते रहते हैं।

बम्बई के अनेक समसामयिक प्रगतिशील कलाकारों ने कला की सामान्य प्रवृत्तियों को नई अर्थवत्ता में ग्रहण किया है जिसे हम निष्क्रिय रूपात्मक अंर्तानिष्ठता से ज्वलन्त तद्गत रूप एवं सामाजिक चेतना की अनिवार्य परिणति कह सकते हैं और जो 'नव्यता' के दुराग्रह के बावजूद आज की कला-परम्परा का अविच्छिन्न अंग बन गई है। यूरोपीय कला-टेकनीक और आधुनिक फ्रांसीसी चित्रकला की नूतन धाराएँ उक्त कलाकारों की जीवनानुभूति की अधिक सक्रिय अभिरुचि के साथ परिपक्व होकर उन्हें एक पूर्णतर जीवन-दर्शन की प्रतिष्ठा के लिए नितान्त नव्य कल्पना द्वारा यथेच्छ नये रूपों में संगठित और सतर्क करने की चेष्टा कर रही है। चूँकि आज के उभरते जन-मानस से तादात्म्य स्थापित करके ही कोई अनुभूति टिकाऊ और आलोड़नकारी बन सकती है, अतएव कला को जीवन्त सत्ता के रूप में उभारकर नई भावभूमियों और नये कलात्मक उत्कर्ष के साथ रंग और रूपाकारों के नित-नूतन प्रयोग और सृजन की ग्रहणशीलता की अनोखी सूझ बरतते हुए ये प्रगतिशील कलाकार सौन्दर्य-चेतना की क्रियात्मकता के हामी हैं। परम्परा से कटकर और अभिजात्य संस्कारों का बहिष्कार कर ये सर्व-सामान्य की अनुभूतियों में डूबकर अपनी संवेदनाओं को अधिकाधिक तीखी और गहरी बनाना चाहते हैं, फलस्वरूप इस तिलमिलाहट में असह्य रूप से कुंठित और वक्र अभिव्यक्ति को प्रश्रय मिल रहा है। प्रारम्भ में पी. टी. रेड्डी, क्लीमेंट बेप्टिस्टा और ए. ए. मजीद के कृतित्व में इस परिवर्त्तन के आसार प्रकट हुए

थे। समयानुकूल और देशीय विषयों में आस्था रखते हुए भी उन्होंने गौंगे, मातीस और पिकासो से प्रेरणा प्राप्त की, यद्यपि उक्त प्रभाव वाह्यारोपण मात्र न हो कर इन कलाकारों की कला के परिष्कार एवं उदात्तीकरण में सहायक हुआ। कालांतर में ये प्रगतिशील तत्त्व ही अन्य कतिपय उल्लेखनीय कलाकारों के कृतित्व में प्रमुख होकर उभरे।

प्रगति की दिशा में अग्रसर होने के उनके कुछ ख़ास नुक़्ते हैं—

● यथार्थवादी धरातल पर शोषण, दमन, उत्पीड़न का दिग्दर्शन।

● सूक्ष्म सौन्दर्य और अन्तर्नुभूति के प्रेक्षण को कला का मानदण्ड न मानकर वस्तुसत्य और व्यक्ति-हितों की खोज।

● कायिक रूपकारिता अर्थात् शारीरिक सादृश्य की अपेक्षा मनोविकृतियों का निदर्शन और तदनुरूप चेष्टाओं एवं भावभंगी का सायास उभार।

● मनुष्य की इच्छा-आकांक्षाएँ और चरित्र के सतत परिवर्तित रूप को चित्रित करने के लिए अमूर्त्त चित्रण (एबस्ट्रैक्ट आर्ट) की ओर अधिकाधिक झुकाव।

प्रगतिवादियों का दावा है कि भारत की पुरातन और सभी गौरवमयी परम्पराओं का पुनराख्यान यदि नई दृष्टि, नये बोध और नई शैली में किया जाय अर्थात् अलौकिकता के स्थान पर लौकिकता, अतिरंजित के स्थान पर सहजता, दिव्यता के स्थान पर मानवीयता, चमत्कार के स्थान पर औदात्य की प्रतिष्ठा मौजूदा युग के परिवेश में की जाय तो कटी हुई पतंग की भाँति युग-धर्म की हवा में बहुत ऊँचाई पर उड़ती परम्परा व रूढ़ियों की डोरी से विच्छिन्न होकर उन्मुक्ति और प्रगति पथ पर अग्रसर हुआ जा सकता है। उनका विश्वास है कि आनेवाला कल ही उनके महान् दाय का बोध करा पायेगा।

मक़बूल फ़िदा हुसेन

कला के क्षेत्र में अभिनव प्रवृत्तियों एवं मान्यताओं को लेकर एक बहुत बड़ा प्रगतिशील ग्रुप कार्य कर रहा है जिसमें मक़बूल फ़िदा हुसेन सर्वोपरि हैं और समूची पीढ़ी का नेतृत्व कर रहे हैं। समय की चोट पर क्रियात्मक संघर्ष के बतौर जिन दृष्टिकोणों, कलात्मक अभिव्यक्ति, नई कल्पना, नई लय और नई व्यंजक शक्ति चाहिए वह सब कुछ उनमें है। उनके चित्रण की विशेषताएँ हैं—रूपाकारों का मूर्तिव्यंजक भाव, डहडहाते रंग, धारावाही सबल रेखांकन,

बनारस का एक दृश्य

कल्पना की नितान्त नूतनता, समृद्ध सामाजिक विषय, वस्तु का घनत्व और रंग की मोटी सतह देकर यत्र-तत्र खरोंचों और अतिरिक्त रंग-रेखाओं के मिश्रण से तीव्रतम व्यंजक वक्रता द्वारा रूपाकृतियों का सहज निर्माण, सबसे बढ़कर हर डिज़ाइन में न केवल उनकी दृष्टि का पैनापन है, वरन् चित्रण की सादगी और अनुभूति का प्रबल आग्रह भी है। उनमें कला की चोचलेबाज़ी या कोरा प्रदर्शन नहीं है, प्रत्युत् एक कलाकार की निष्ठा और उन्मुक्ति का भाव है। वे औपचारिकताओं अथवा परम्परा के बोझ को उतार फेंकने के लिए उत्सुक हैं—उत्सुक और उन्मुक्त एक बालक की भाँति। ज्ञात की वे भले ही अवहेलना कर दें, पर जो अज्ञात है, अनजाना है उसके प्रति एक भोली जिज्ञासा उनमें है

और वे उसे पा लेने के लिए प्रयत्नशील रहते हैं। 'काम करती औरत' में सामान्य लोगों के नित्यप्रति के कामकाज में उलझे जीवन का चित्रण है। संघर्ष के साथ जीवन में जो कुरूपता आ जाती है उससे कला का सौन्दर्य विचलित हो उठता है। हुसेन के अनेक चित्रों में मानसिक अजीर्ण की द्योतक असुन्दरता अथवा कुरुचि का कहीं-कहीं समावेश मिलता है। उनके शक्तिशाली रंगों की घनता में साहसिक और उभरी काली रेखाओं द्वारा मानवीय प्रारूप की कल्पनात्मक चेतना की सच्ची झलक मिलती है जिनमें कहीं-कहीं इनके मन का क्षोभ भी प्रकट हुआ है, किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि इनकी अपनी एक निजी शैली है जो रुढ़िवादी विचार धारा को धकेलकर नये ढंग से आगे बढ़ रही है। फ्रांस में भ्रमण करने के पश्चात् इन्हें और भी कला की सूक्ष्मताओं का बोध हुआ। इन्हें आधुनिक बनने का शौक़ न था, बल्कि आधुनिक कहलाना या आज की ऊलजलूल कला धारा में बह जाना ये अपनी तौहीन समझते हैं। इसके विपरीत इन्हें अनजानी चीज़ों को खोज निकालने का बेहद शौक़ है। उनके मत में महान् कला 'आधुनिक' या 'प्राचीन' नहीं होती, अर्थात् उसे किसी समय विशेष की सीमा में बाँधा नहीं जा सकता, वह तो चिरन्तन होती है, वह उन विशेषताओं को लेकर सदा फलती-फूलती है जो शाश्वत और उसे अमर बनाते हैं।

हुसेन की कला भावात्मक, रूपात्मक, रहस्यवादी साज-सज्जा और श्रृंगार का पुट लिये है, कितने ही स्थलों पर हरे, पीले, नीले और लाल रंगों के मिश्रण से विचित्र आकर्षण पैदा किया गया है। पशुओं के चित्रण में खेल-खिलौनों से प्रेरणा ली गई है जिनमें भारतीय लोक-कला का प्रभाव अधिक दीख पड़ता है। सबसे बड़ी खूबी जो हुसेन में हमें मिलती है वह है उनकी पेंटिंग की प्रत्येक इकाई का नितान्त सरल और नैसर्गिक रूप जो बड़ी ही सजीव पद्धति से विषय को प्रस्तुत करता है, भले ही विषय नगण्य और अति साधारण हो। यही कारण है कि अनेक बाहरी प्रभावों के बावजूद उनकी कलाशैली सर्वथा व्यक्तिगत और उनकी अपनी बन पड़ी है। न तो वे किसी अस्थिर आचार अथवा रूढ़ि के गुलाम हैं और न किसी शैलीगत वैशिष्ट्य पर अधिक देर तक टिक ही पाते है। जनवादी संस्कृति की प्रगतिशील शक्तियों का साथ देकर वे नित-नये दृष्टिकोण प्रस्तुत करते हुए मौलिक कला-सर्जना में व्यस्त हैं जिसके परिणामस्वरूप नये यथार्थवाद की पृष्ठभूमि पर जीवन-वैविध्य के विभिन्न पक्षों एवं समस्याओं को कई कोणों से आँकने में ये सम्भवतः सबसे आगे हैं।

हुसेन लगभग २०-२५ वर्षों से कला की साधना में रत हैं। बम्बई आने के

पूर्व ये देवलालीकर के तत्त्वावधान मे इन्दौर के आर्ट स्कूल में भी शिक्षा प्राप्त करते रहे हैं । उस समय जो कलादर्श इन्होंने स्थिर किये उनके परिपालन के लिए ये सदा प्रयत्नशील रहते हैं । इसी से उनकी रूपाकृतियों की निर्द्वन्द्व स्वच्छन्दता मन को अभिभूत करने वाली होती है ।

हुसेन की अत्यधिक भावुक किन्तु अन्वेषी प्रवृत्ति स्थूल प्रतीकों की किंचित्-सी शह पाकर अरूप चिंतन की ओर विशेष रूप से प्रवृत्त होती है । कहीं रूमानी भावों की व्यंजना लाक्षणिक रंगो के प्रयोग द्वारा की गई है तो कहीं उनके सान्निध्य से बरबस मन को आकृष्ट करने वाला प्रभाव उत्पन्न किया गया है । इन्होंने यथार्थता के नकारात्मक रूप को लेकर भी कुछ चित्र बनाये हैं और लोगों ने तरह तरह के विचार एवं मतभेद प्रकट किये हैं । पर ऐसी कला कृतियों में इनकी सजग चेतना और नये उभार के सदैव दर्शन होते हैं । वे इस विश्वास को लेकर आगे बढ़ रहे हैं कि कोई भी चीज़ महज़ अस्थायी या सामयिक नहीं है, वरन् वर्त्तमान् की यथार्थता को अपनाये बिना कोई भी व्यक्ति भविष्य की कसौटी पर खरा नहीं उतर सकता । इस प्रकार उनकी अजीबोग़रीब रूपाकृतियाँ गहरी अनुभूति के संस्पर्श से सामान्य जन-जीवन की आस्था लेकर गतिमय रेखांकनों में ढली हैं जो शोषक वर्ग की बर्बरता पर तीखा प्रहार करती हैं । निर्माण-प्रक्रिया में नूतनता के बावजूद उनकी पार-दर्शी दृष्टि संक्रमणकालीन व्यवस्था के नाना प्रच्छन्न स्तरों, जीवन के विविध पहलुओं तथा आधुनिक समाज की जर्जर मान्यताओं का पर्दाफ़ाश करती हुई गहरी पैठी हैं । सामाजिक परम्पराएँ, रूढ़ियाँ और आर्थिक असमानता में निहित सत्य को अपने अन्तर में इन्होंने काफ़ी अर्से तक पकाया है और फिर अपनी कलाकृतियों में उजागर किया है । एक प्रथा विशेष का चित्रण मात्र इस कलाकार का उद्देश्य नहीं है बल्कि उसके प्रभाव को तीव्रतर बनाने के लिए

भक्तिन

कलात्मक संकेतों को उभार कर व्यंजनात्मक आक्रोश या संवेदना उत्पन्न की गई है। इनकी 'आदमी' कलाकृति में सामाजिक शोषण का शिकार मानव समूची कुंठा और हताशा, जीवन की अनवरत दौड़ में थकाहारा और क्लान्त दर्शाया गया है। समसामयिक कला की आधुनिक प्रवृत्तियों के अध्ययन के लिए इन्होंने भारत और बाहरी देशों का दौरा किया और कितनी ही देशी - विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग लिया। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली जैसे महानगरों में तो इनकी कला प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं, अन्य प्रादेशिक प्रमुख नगरों में भी समय-समय पर इनके चित्रों की प्रदर्शनी हुई हैं। इन्हें अनेक महत्त्वपूर्ण चित्रों पर पुरस्कार प्रदान किये गए। प्रगतिशील कलाकारों में सर्वाधिक लोकप्रिय और कला के क्षेत्र में इन की उपलब्धियों का विशेष महत्त्व है।

मानवाकृति

अनास्था और कशमकश के इस युग में जब कि कलाकारों की मनःस्थिति डाँवाडोल और अस्थिर, कहीं बेतुकी मनःस्थितियों की द्योतक और कहीं अनबूझी, अस्पष्ट चिन्तनाओं की शिकार अथवा अनावश्यक विस्तार एवं ब्यौरों में उलझी हुई इधर-उधर भटक कर कुछ चित्रित करती है जो सामंजस्यहीन और कला की संस्कारिता से मेल नहीं खा पाता है हुसेन के विश्वास और कार्य करने के तरीके सुस्थिर और स्पष्ट हैं। उनकी निष्ठा न नवीन है, न क्षणस्थायी और न ही उन्होंने उसे मिथ्याभिमान, दुराग्रह एवं हठवादिता के बतौर ही ग्रहण किया है। वरन् व्यापक मानवीयता और चारित्रिक औदात्य को ही उन्होंने अपने जीवन का केन्द्रबिन्दु बनाया है। अपने चित्रण के अतिरंजित एवं अगम्य तत्त्वों की तर्कपूर्ण व्याख्या प्रस्तुत करके उसे ऐसा रूप प्रदान किया है जो आज के कला जिज्ञासुओं को स्वीकार्य हो सके, साथ ही आधुनिक युग के नैतिक मूल्यों के अनुरूप सिद्ध हो सके।

फ्रैंसिस न्यूटन सौज़ा

मौज़ा की कला जीवन-संघर्ष से प्रेरित हुई है। स्वयं प्रेरणावश ये चित्रकला के क्षेत्र में अग्रसर हुए और सन् १९५० से इंगलैण्ड में ही बस गए। पेरिस, लंदन और भारत की कितनी ही प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। शरीर और आत्मा का धर्म जब मेल नहीं खाता तो वही विषमता पैदा होती है। जब कोई वस्तु आत्मा की सिद्धि बन जाती है तो वह विरूपता में भी स्थूल, साकार से परे आत्मविभोर भाव प्रकट करती है जिसमें दर्शक डूब जाता है। नानाविध भ्रान्तियाँ बुद्धिवादियों के मस्तिष्क को आक्रान्त किये रहती हैं, फलतः साधन-हीन साधकों की साधना आहें भरने लगती है। उनके विद्रोह भरे अरमान ध्येय-प्राप्ति में असफल एक अंध प्रवंचना से विमूर्च्छित हो कल्पनाओं की घातक लपटों में झुलसने लगते हैं और तब उनके मस्तिष्क में भीषण विस्फोट होता है। उनकी सीधी-सादी रेखाएँ भी कुटिल बन कर सर्प का-सा जहर उगलती हैं। प्राणों का अणु-अणु आहत और उद्भ्रांत उनके घायल अंतर्तम से रश्मि-रेखाएँ आँकता तो है, किन्तु गहरे निःश्वास छोड़ती हुई एक-एक करके वे गहरी चोट करती जाती हैं, खीझ और बौखलाहट मे गुमराह हो उग्र और तूफ़ानी भावों का स्फुरण अनुभूति की सचाई और मनोदशा की उस विह्वलता का परिणाम है जो इन प्रगतिशील कहे जाने वाले कलाकारों को अन्य सामान्य कलाकारों से भिन्न करने वाला प्रधान गुण है। उनके चित्र विषम परिस्थितियों में उपजते हैं और द्वन्द्वपूर्ण स्थितियों का दिग्दर्शन कराते हुए सामाजिक आश्रय में प्रायः सर्वसाधारण की भावनाओं के संसर्ग में पनपते हैं। अतएव अपनी नूतन मान्यताओं के कारण वे कला को जीवन से अनुप्राणित करने वाले जीवन तत्त्वों से सुसम्पन्न करने के हिमायती होते हैं।

मौज़ा के जीवन में भी ऐसी ही कई घटनाएँ घटी हैं जिन्होंने उनके मन पर विपरीत प्रभाव डाला और उन्हें विद्रोही बना दिया। एक तो पारिवारिक निर्धनता, दूसरे जीवन-संग्राम में अग्रसर होने के साधनों का अभाव, तिस पर चेचक ने उन्हें बाल्यावस्था में ही ऐसा कुरूप बना दिया कि जिससे अपने अनाकर्षक व्यक्तित्व के कारण दो बार उन्हें स्कूल से निकाला गया। निरादृत और

उपेक्षित उनके विद्रोह भरे मानस की भीतरी ममता कितनी ही बार सिसक सिसक उठी । कितनी शंकाएँ और दुःस्वप्न, कितने ही अनुताप और हाहाकार समाज की स्वार्थपरता पर एक आकुल आक्रोश व्यक्त करते रहे। पूँजीवादियों के प्रचण्ड आघात भी इन्हें सहन करने पड़े जिनसे इन्हें ज्ञात हुआ कि इन धनलिप्सुओं के स्वार्थ कितने कुत्सित और हेय होते हैं,वे कितने शोषक और प्रपंच - प्रवीण हैं, उनकी क्षमता के समक्ष प्रतिभा निस्सार है और सृजन शक्तियाँ नगण्य सिद्ध होती हैं। बस, यहीं से इनके घायल अंतर के रक्त से सिंचित हो कला ने पोषण पाया । इन्होंने जीवन की विभीषिका और उत्पीड़न को मिटाने का हल सौन्दर्य में खोजा । सौज़ा की कला में दर्शक उनकी विगलित करुणा, कोमल सूक्ष्म अनुभूतियाँ और अभिशप्त, अकिंचन लोगों के प्रति मैत्रीपूर्ण भाव और गहरी संवेदना पाते हैं। उनकी मनोव्यथा की ही प्रतिक्रिया है जिसके कारण उनकी रंग-रेखाओं में समाज की पीड़ा और घुटन संग्रथित है।

आत्मचित्र

शुरू में मेक्सिको के सुप्रसिद्ध कलाकार दीगो रिवेरा और जोज़ ओरोज़को का इन पर अत्यधिक प्रभाव पड़ा, यहाँ तक कि

रिबेरा के निर्माण-कौशल और संगठन-बिधि तथा जोज़ ओरोज़को के चमकीले रंगों के वैविध्य और उन्हें ढालने के नैपुण्य से वे इतने अभिभूत हो उठे कि कुछ समय तक इनके चित्रों पर उन्हीं की छाप बलवती रही। किन्तु बाद में उनके सामाजिक चित्रों जैसे 'गोआ के अस्पृश्य' और 'पर धर्म अनुयायी' आदि में इनके दुर्बोध शिल्प और रंगों की तीव्रता ने 'शापित मानव' के अस्तित्व की मर्यादा के विपरीत असहनीय जुगुप्सा की अभिव्यंजना की जिससे इन लोगो की निराश आत्मा पर कहीं-कहीं गहरी चोट हुई और वे तिलमिला उठे। विसंगति और मानवी अपूर्णता से जो जीवन फीका, शिथिल और अर्थशून्य बल्कि कहें कि घृणास्पद होता जा रहा है उसमें कुण्ठा और त्रास, मनोदौर्बल्य और दुराशा तथा ऐसी अवर्ण्य एवं दुर्भेद्य अवतारणा है जो सहज ही त्रस्त करने वाली है। वह मनुष्य पर प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष तौर पर प्रभाव डालती है और उससे वह कभी-कभी टूट जाता है और यह टूटन, यह विशृंखलता उस पर हावी हो जाती है। बाद में सेज़ाँ, गौगैं और मार्तीस का प्रभाव भी इनकी कला पर पड़ा जो 'ब्लू लेडी' जैसे चित्रों में द्रष्टव्य है। जार्जेज़ राउले की कला से प्रेरित हो इन्होंने गोथिक पद्धति पर 'क्राइस्ट' और बाइबिल के कथा-आख्यानों जैसे 'आदम और ईव का स्वर्ग से बहिष्कार' आदि चित्रों का भी निर्माण किया, किन्तु इन कृतियों में रेखांकन और रचना पद्धति ऐसी बेढंगी और अनाकर्षक बन पड़ी, साथ ही प्रच्छन्न रूप से हिन्दू-मूर्त्ति-कल्पना की उसमें ऐसी भद्दी छाप थी कि उनकी सुसंयोजना बड़ी ही अजीबोग़रीब और असंतुलित बन पडी। प्राचीन भारतीय मूर्त्तिकला में खजुराहों की मूर्त्ति-भंगिमाओं ने इन्हें विशेष आकृष्ट किया जो 'प्रणयी' के ज्यामितिक रेखांकन में प्रतिध्वनित हुआ। तत्पश्चात् भारतीय लोक कला, नीग्रो और मायन मूर्त्तिकला की सहज पुरातनता ने भी इन्हें प्रभावित किया।

सौज़ा की विशेषता है कि इन्होंने परम्परा से सर्वथा विच्छिन्न रहकर कला का विकास किया है जो जीवन में सामंजस्य-संतुलन न होने के कारण इनकी परिवर्त्तित मनोवृत्तियों का द्योतक रहा है तथा जिसका आभास प्रतिक्रियास्वरूप इनकी प्रायः हर कृति पर देखने को मिलता है।

ये मानसिक एवं आध्यात्मिक धरातल पर अपनी चित्रकृतियाँ उभारते हैं, जैसे 'आर्कीटेक्चर' भवन का ढाँचा निर्मित करता है, चौड़ाई, लम्बाई और ऊँचाई के अनुपात को अपनी मनोरचना से ढालता है वैसे ही सौज़ा भी बड़ी खूबी से

अपने चित्रों को भवन-निर्माण-शिल्प पद्धति पर मोड़तोड़ लेते हैं, क्योंकि उनके मत में हर भौंडी शक्ल में भी कुछ आकार होता है, कुछ उसका अपना रूप और कलाकारिता होती है। वस्तुतः सौज़ा की धारणाओं ने कला जगत् में क्रान्ति पैदा कर दी है और अनेक नौसिखुओं को उनके पदचिह्नों पर चलने के लिए प्रेरित किया हैं।

सौजा की कला में भले ही शुद्ध मानवीय रूप न हो, पर वे इस दृष्टि से तर्कसंगत है, क्योंकि उनको द्रोही संत्रस्त आत्मा संवेगजन्य तीव्रता के सहारे मुक्त वृत्ति से गढ़ी जाने वाली टूटी फूटी रेखाओं को अन्विति का संस्कार प्रदान करती है। मानसिक द्वन्द्वों को प्रतिफलित करनेवाली यह भावगत खंडितावस्था या मन की शतखंड अहंता ही उनकी छिन्नमूलक वैयक्तिकता का विस्फोट अथवा अंतरंग प्रतिक्रिया है। उनमें इस कदर भावान्विति की सबल शक्ति है जिससे उनकी सघर्षमूलक इकाइयों की एकसूत्रता व संश्लेष उनके समूचे कृतित्व का प्राणद्रव्य है।

सैयद रज़ा

सैयद रज़ा मुख्यतः दृश्य-चित्रकार हैं और इन्होंने सस्ते जलरंगों को अपने कार्य करने का माध्यम चुना है। प्रकृति और उसके उन्मुक्त वैभव के बीच इनमें हार्दिक उल्लास जगता है। ये बहुत कुछ उसमें पाते हैं और उससे प्रेरणा प्राप्त करते हैं। प्राकृतिक सुषमा उनकी दृष्टि में ऐसी नहीं है जैसी कि सामान्य लोगों की दृष्टि में, अपितु वाह्य परिवेश के साक्षात्कार से उनके चेतना-स्तर को नये आयाम मिले हैं। उनकी कलाकृतियाँ भी महज़ दृश्यों अथवा आकर्षक नज़ारों का अंधानुकरण नहीं हैं, बल्कि उनकी अनुभूति अपनी ही धारणा-शक्ति मे प्रेरित होकर एक अभिनव गतिशीलता के प्रवाह में नये सन्दर्भों को जन्म देती है। यही कारण है कि उनके कृतित्व में प्रकृति का सौन्दर्य और उसका चिरविकसित परिप्रेक्ष्य यथार्थ के सम्पर्क में अधिक प्राणवान होकर व्यक्त हुआ है। प्रारम्भ में जब तक प्रोफेसर लैंघमर की(जो इनके शिक्षक रहे हैं) भावात्मक टेकनीक का इन पर प्रभाव रहा तब तक इन्होंने रंगों से बेतहाशा खिलवाड़ की। संयोजन और सजीवता में रंगों का सामंजस्य उसी अनुपात से न खप पाता था, किन्तु ज्यों-ज्यों इनकी बुद्धि परिपक्व होती गई और नित-नई अनुभूति की सारगर्भित गहराई में ये पैठते गए, पहले की भ्रान्ति मिट गई। इन्हें लगा प्रकृति निरी जड़ या चेतनाशून्य नहीं है, वरन् उसकी विशिष्टता या कहें कि नैसर्गिक सुषमा का अस्तित्व है, जो सत्य का उद्गम है और जिसमें हृदयगत भावनाओं का समावेश हो सकता है।

रज़ा मध्यप्रदेश के बबैरिया ग्राम में एक निर्धन मुस्लिम परिवार में पैदा हुए थे। हाई स्कूल पास करके ये नागपुर स्कूल आफ़ आर्ट में कला की शिक्षा प्राप्त करते रहे, किन्तु अर्थाभाव के कारण अधिक दिन तक अपनी पढ़ाई जारी न रख सके और विवश होकर एक कला-स्कूल में इन्होंने ड्राइंग मास्टर होना स्वीकार कर लिया। पर इन्हें इस काम से आत्मतोष न मिला और अगले ही वर्ष अपने पद से इस्तीफ़ा देकर ये बम्बई चले आये।

बम्बई में जीवन-यापन और भी कठिन एवं संघर्षशील बन गया। एक आर्ट-स्टूडियो में बहुत कम वेतन पर इन्हें काम करना पड़ा, पर दफ़्तर से लौटने

के बाद अथवा छुट्टियों के दिनों में मूक कला-साधना में रत रहना और भी श्रमसाध्य कार्य था। एक वर्ष तक इन्होंने पैसा संचय किया और वम्बई के सर जे.जे. स्कूल आफ आर्ट में भरती हो गए। अनेक कठिनाइयों और गरीबी से जूझते हुए इन्होंने अंत में फाइन आर्ट्स का डिप्लोमा प्राप्त कर लिया।

शनैः-शनैः रज़ा की प्रतिभा निखरती गई। बम्बई, नागपुर और दिल्ली में आयोजित चित्र-प्रदर्शनियों में इनकी भूरि-भूरि प्रशंसा हुई और कई रजत व स्वर्ण-पदक प्राप्त हुए। सरकारी छात्र-वृत्ति भी इन्हें मिली। फ्रेंच स्कालरशिप पर इकोल डी वो आर्ट्स और स्टूडियो एडमंड हेज़ पेरिस में इन्होंने कला का अध्ययन किया और १६५० से पेरिस में बस गए। इन्होंने अधिकतर बाहर अपनी कला की धाक खूब जमाई। बड़ी संख्या में चित्रों की विक्री ने इनकी आर्थिक समस्या को बहुत कुछ हल कर दिया।

यद्यपि इनके कतिपय प्रारंभिक चित्रों में प्रकृति के निकटवर्ती यथार्थ की अति-मुग्ध स्थिति या अल्हड़ जिज्ञासा के सिवा और कुछ नहीं मिलता तथापि जीवन के अनेक उतार-चढ़ावों के साथ जीवित रहने की बहुमुखी क्रियाशीलता ने उन मार्मिक सत्यों का भी बाद में उद्घाटन किया जो हर तीखी अनुभूति के साथ चेतना को क्रमशः जागरूक बना देता है। विश्रृंखल रेखाओं में विविध विषयों का वैभिन्य लिये प्रकृति की अनेक सूक्ष्मताएँ इनकी उड़ती हुई दृष्टि भाँपती गई और सौन्दर्य का विराट् एवं सम्पूर्ण बोध बौद्धिक जागरूकता की विवेकगत संगति में प्रत्यक्ष और उद्बोधन की स्पष्टता को नया अर्थ देता गया। रंग जमने लगे और पहले की चमक-दमक क्रमशः प्रकाश-छाया के सम संतुलन में स्थिर हो गई। काश्मीर की प्राकृतिक सुषमा और वहाँ के स्वस्थ, सुन्दर चेहरों को निरख इनमें अधिक उत्कट प्रेरणा जागी। 'पतझड़', 'झेलम', 'काश्मीर घाटी', 'श्रीनगर की गली' और वहाँ के जलाशयों, झीलों और जल की गोद में थिरकते जलपोत, लघु नौकाएँ और बड़े-बड़े शिकारे, साथ ही हरी भरी उपत्यकाओं, वृक्षों, पौधों, मकानों, इमारतों और पुलों की दृश्यावलियों ने विविध रंगों का वैभव उनके नेत्रों के समक्ष बिखेर दिया जिनके चित्रण में ये अध्यवसाय एवं अनुभवजन्य क्षमता के साथ महीनों जुटे रहे। रूप और दृश्यांकन की सहजता के साथ-साथ वातावरण की चतुर्दिक् चारुता को आँकने में ये अत्यन्त कुशत हो गए—उदाहरणार्थ सघन पर्वतीय हरीतिमा की पृष्ठ-भूमि लिये लाल, पीले, हरे, नीले, हल्के, भूरे, गुलाबी और जामुनी रंगों का योग इनकी काश्मीरी कलाकृतियों में बड़ा ही दर्शनीय और आकर्षक प्रतीत

होता है। बम्बई में वर्षा ऋतु में बादलों की शोभा और आकाश में क्षण-प्रतिक्षण होने वाले परिवर्त्तन, साथ ही वातावरण की आर्द्र रंगमयता इनकी तूलिका से सजीव होकर उभरी है। यत्र-तत्र सान्ध्य-सौन्दर्य की दीप्ति अथवा शुभ्र, नील, श्याम वर्ण गगन में डूबते सूर्य की किरणों की एक अखण्ड और अविच्छिन्न स्वर्ण रेखा - जैसे असीम और अनंत को स्पर्श कर रही हो गया कहें कि रक्तिम श्यामता और स्वर्णाभा साथ-साथ संचरण कर रही हो। दृश्य-चित्रों के अलावा ग्रामीण एवं नागरिक सामाजिकता की अनेक सच्ची तस्वीरें भी इनके द्वारा अंकित मिलेंगी। नये रूप के आग्रह ने सौन्दर्य के निरपेक्ष, अनवरत क्रम की भर्त्सना करते हुए ज्यामितिक अथवा अमूर्त्त की भी अनेक स्थलों पर व्यंजना की है। रज़ा एक लम्बे अर्से तक पेरिस रह आए है। आठ वर्षों के दौरान में उन्हें बहुत सी बातें समझने-बूझने और आधुनिक कला की

काश्मीर का एक दृश्यांकन

बारीकियों को हृदयंगम करने का मौका मिला। वहाँ के घनिष्ठ सम्पर्क से इन्होंने जो एक अपनी निजी शैली विकसित की वह विशिष्ट परिपक्वता लिये उन्हें उन्ही कतिपय कलाकारों की कोटि में रखती है जिनके समक्ष अपने ध्येय की ओर अग्रसर होने का मार्ग प्रशस्त पड़ा है।

चूंकि रज़ा का केन्द्रीय विषय दृश्य चित्रण है अतः उनकी कृतियाँ इसी पैटर्न के बतौर प्रसिद्ध हो चुकी हैं — जैसे दृश्यांकनों की पृष्ठभूमि में सिरजी गई विस्तीर्ण और सावकाश संयोजना, छितराया वातावरण और नित्य परिवर्त्तित या घनीभूत होती परिस्थितियों का अंकन बड़ा ही प्रभावशाली बन पड़ा है। उनकी मौजूदा कृतियाँ अधिकतर व्यंजक हैं, न केवल रंगों को रंगमयता लाने के लिए ढाला जाता है, वरन् स्वप्नद्रष्टा दार्शनिक का सा सौन्दर्य-उभार-- तिसपर भी संश्लिष्ट रूप-योजना द्वारा इस प्रकार विम्ब-ग्रहण कराया गया है कि जिससे सृष्ट मानवाकृतियाँ उद्देश्य, महत्ता और मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं को अधिकाधिक प्राणवान बना देती हैं।,नये-नये प्रयोग और संकल्प-विकल्पों के मध्य पनपने वाली इनकी कला-टेकनीक समसामयिकता के प्रश्न को जीवन का सशक्त अंश मानती है। कला की उपलब्धियाँ जीवन की समग्रता में समाई है—ऐसा ये बखूबी समझ गए हैं।

कृष्णजी हौवलजी आरा

कृष्णजी हौवलजी आरा जन्मतः हैदराबाद के है, किन्तु बम्बई के प्रगतिशील कलाकारों में अग्रगण्य गिने जाते हैं, क्योंकि मुख्यतः इन्हीं की प्रेरणा से कुछ अर्से पूर्व यहाँ के 'प्रोग्रेसिव ग्रुप' की स्थापना हुई थी, किन्तु इसके ये मानी नहीं कि एक प्रकार का मतवाद स्थापित करने के हेतु ही प्रगतिशीलता को माध्यम बनाया गया हो अथवा उस माध्यम से आतंक पैदा करने के खातिर उस खास मन्तव्य की स्थापना की गई हो। आरा इस बँधी बँधाई परिपाटी की सीमाएँ बखूबी समझते हैं। ये सीमाएँ भले ही विस्तृत हों, पर विकासशील न होने के कारण वे टूट जाती हैं और उनमें अवरोध उत्पन्न हो जाता है। अतएव जीवन की प्रगति और उसकी प्रतिक्षण विकसित प्रवृत्ति को स्वीकार करते हुए भी सीमित स्थूलत्व से परे इन्हें निर्जीव, निःस्पन्द जीवन की विराट् नीरवता में ही आकर्षण दीख पड़ा।

इनके प्रारंभिक कैन्वास-चित्रों में चमकीले तैल रंगों का सम्मिश्रित वैविध्य दृष्टिगत होता हैं। वैयक्तिक के आधार पर एक स्वस्थ दार्शनिक दृष्टिबिंदु से इन्होंने वस्तुओं को निरखा-परखा है, किन्तु अनेक स्थलों पर टेकनीक और अनुपात में अपरिपक्वता और अनुशासनहीनता दृष्टिगत होती है। कहीं-कहीं रंग एवं रेखाओं में पूर्ण तादात्म्य स्थापित नहीं हो सका है। इसका कारण है कि अल्प वय में ही गरीबी के कारण इन्हें स्कूली शिक्षा से वंचित होकर जीवन-निर्वाह के लिए एक घरेलू परिचारक और मोटर मैकेनिक के रूप में बम्बई चला जाना पड़ा।

तब ये एक सम्मानित जापानी परिवार में कार्य कर रहे थे, शनैः-शनैः उन लोगों को इनकी कलात्मक रुचि का बोध हुआ और उन्होंने इनकी इस प्रवृत्ति को विकसित करने की पूरी-पूरी छूट दे दी।

फिर भी अनेक विषम परिस्थितियों से गुज़र कर ये उन निराश व्यक्तियों में नहीं हैं जो शांति और संजीदगी की ऊपरी परतों के नीचे दिल और दिमाग का घाव तरोताज़ा रखते हैं और उसी के विषय में निरन्तर सोचते, बातें करते और कुछ घृणा-खीझ या निराश व अवसादभरी घटनाओं को याद कर एक

स्वस्थ और आज़ाद जिन्दगी के विरुद्ध निरन्तर विद्रोह करते रहते हैं। इसके विपरीत इनकी कृतियों में आशा और आस्था का स्वर अन्य प्रगतिशील कलाकारों की अपेक्षा अधिक प्रखर और व्यंजक, साथ ही गहरी कचोट करने वाला है।

गाँव का एक दृश्य

निर्जीव वस्तुओं का चित्रण करते हुए इस कलाकार का ध्यान बराबर समय, स्थान और प्रभाव पर रहा है और छोटे से छोटे विवरण को भी सुरुचिपूर्ण पद्धति से प्रस्तुत किया गया है और रंगों के संयोग ने उन्हें और भी सजीव बना दिया है। आरा की विशेषता है कि ये स्मृति और कल्पना के सहारे वस्तुओं को चित्रित करते हैं और उन में नितान्त मौलिकता होती है। ऐन आदिम रूपों को अपनाने के ढंग में ये यामिनीराय के निकट हैं, यद्यपि इनके काम करने का तरीका सर्वथा भिन्न और उनका अपना है। उनके हर चित्र में उनका निश्छल और अकृत्रिम उल्लास प्रकट हुआ है। प्रायः इनके रंगों को देख कर फ्रांसीसी कलाकार मातीस और द्यूफी की स्मृति बरबस हो आती हैं, पर ऐसा इनकी ओर से सायास नहीं अपितु सहज अन्तःप्रेरणा वश हुआ है। इनकी हर प्रक्रिया और अनुक्रम में देगाज़ का प्रभाव झलकता है, किन्तु वह भी अन्तर्जात है, अनुकृत नहीं। 'हरा सेव', 'लाल मेज़', 'चीनी बर्तन', 'टोकरे में रखे पात्र', 'प्रातःकालीन नाश्ते की मेज़,' 'सुसज्जित पात्र' आदि कलाकृतियों में हरे, पीले, काले, नीले, गुलाबी और चटक लाल रंगों का सम्मिश्रण बड़ा खुशनुमा वातावरण उत्पन्न करता है, पर सजीव वस्तुओं के चित्रण में और भी कसमसाता भावावेग है। 'उन्मत्त घोड़ों की सरपट दौड़', 'भीषण मरहठा युद्ध,' 'पनघट पर,' 'नृत्य के लिए सन्नद्ध,' 'मेले से लौटते हुए,' 'गाँव का कोना', 'लकड़हारे', 'चक्की पीसने वाले' आदि चित्रों में हड़बड़ी और उग्र क्रियाशीलता नजर आती है, यहाँ तक कि इनकी अमूर्त कलाकृतियाँ भी विषय और आधार-पद्धति के निर्वाह की दृष्टि से बड़ी ही सजीव बन पड़ी हैं।

जल-रंग इन्हें अत्यधिक प्रिय है, किन्तु इनके कार्य करने की पद्धति ऐसी अजीब है कि वे तैलरंग से जँचते हैं, ट्यूब को भींचकर वे आर्द्र जलरंगों को

धान कूटते हुए

अन्य किसी मिश्रण बिना ही प्रयोग में लाते हैं और ब्रुश के स्थान पर अपने खुद हाथ के अंगूठे से काम करते हैं। इनके अनेक चित्रित फूलों के पत्ते अंगूठे

से आँके गए है, पर चाहे जो भी इनका माध्यम अथवा काम करने का तरीका हो, उसमें ये समानुपात एवं लचकीलापन लाने की चेष्टा करते हैं।

आरा ने स्मृति, सूझ और इधर-उधर सँजोयी अनुभूति के आधार पर पोर्ट्रेट, लैण्डस्केप और नग्न चित्र भी बनाए हैं, किन्तु उन्हें प्रायोगिक रूप में ही समझना चाहिए। कितने ही साथियों को आरा से असंतोष बना रहता है। इसका कारण है कि सच्चे मानों में 'आधुनिक' बनने के लिए बौद्धिक होना आवश्यक है जो आरा जैसे अल्हड़ और मस्त व्यक्ति के लिए नितांत असंभव है। आज भी उन्हें शिक्षित या अत्यधिक शिष्ट बनने की ख़्वाहिश नही है। कला की साधना ही उनके जीवन का ध्येय है। चित्रों में सहजता और रंग एवं डिज़ाइनों को अधिकाधिक सामान्य स्तर पर लाने की वे निरन्तर चेष्टा करते रहते हैं।

पेरिस कला के प्रशंसक होने के नाते पिकासो, मातीस और राउले की कला से ये अत्यधिक प्रभावित हुए हैं। फ्रांस के कला-संग्रहालयों में भी इन्हें अनेक दर्शनीय वस्तुएँ मिली है जो इनके सौन्दर्य-ज्ञान की अभिवृद्धि में सहायक हुई है। अन्य दो भारतीय कलाकारों—सैयद रज़ा और न्यूटन सौज़ा के चित्रों के साथ एयर फ्रांस द्वारा पेरिस में आयोजित एक प्रदर्शनी में तैलरंग में निर्मित 'पक्षी के लिए नारी' चित्र पर इन्हे पुरस्कार प्रदान किया गया और अन्य कलाकृतियाँ भी प्रशसित हुई। वैसे स्विट्ज़रलैण्ड आदि देशों में भी इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ हुई है, जो भारतीय कला-पद्धति से बिभिन्नता के बावजूद यथार्थवादिता और विषय वस्तु की गहराई में क्रमशः पैठती गई है।

अकबर पद्मसी

अकबर पद्मसी की कला की मूल प्रेरणा आदिम मूर्त्तिकला से लेकर आधुनिकतम फ्रांसीसी मतवादों की टेकनीक पर आधारित है। एक बार पेरिस में इनकी आयु के सम्बन्ध में जब प्रश्न किया गया तो इन्होंने उत्तर दिया, 'मुझे अभी तक यह विदित नहीं हो सका है कि क्या मैं सचमुच पच्चीस का हूँ जैसा कि मेरे पासपोर्ट में लिखा है अथवा कि मैं २५००० वर्षों का हूँ जैसा कि कला-साधना में रत सुदूर अतीत में रमते हुए मुझे प्रतीत होता है।' वस्तुतः इनकी कला जितनी पुरानी है उतनी ही नूतन भी। इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है—'मुझे ऐसा लगता है कि कला किसी जीवित संस्कृति के साथ वर्त्तमान में निवास करती है, भले ही दस सहस्र वर्ष पूर्व वह उत्सृष्ट हुई हो। यदि मैं बीस हज़ार वर्ष पहले की निर्मित कला देखूँ तब भी मुझे किंचित् आश्चर्य न होगा, क्योंकि जिस प्रतिभाशील व्यक्ति ने उसे उस वक्त सिरजा होगा उसमें अवश्य अन्तरंग तार्किक चिन्तना रही होगी जो कोई अन्य भावी प्रतिभाशील व्यक्ति आगामी बीसवीं पीढ़ी में वैसा ही कुछ सोच सकता है।

अकबर पद्मसी के प्रतिरूपक चित्र अधिकत ज्यामितिकर अथवा समानुपातिक होते है, किन्तु ये अपनी विशिष्ट कला-शैली का प्रयोग बड़े ही मार्मिक, सूक्ष्म अन्तर्बोध द्वारा प्रस्तुत करते हैं। इनके आकारों के ऐक्य और समग्रता में लोककला की व्यंजना है, किन्तु लाक्षणिक निर्माण-पद्धति सर्वथा इनकी अपनी है। श्याम घनता लिये उनके चित्र प्रकम्पित रेखाओं में लचकीली सौम्यता, साथ ही ठोस दृढ़ता दर्शाते हुए इनकी स्वप्नशील चिन्तन-प्रक्रिया के द्योतक हैं। कला की निर्मिति के लिए अन्तरंग तार्किक ज्ञान ये अपेक्षित मानते है अर्थात् हर बद्ध क्रम में सृजनशील तार्किक शक्ति होनी चाहिए, जो जितनी ही पुष्ट होगी उतनी ही अधिक प्रभावशाली और स्थायी होगी। उनके मत से कला निरी आत्माभिव्यक्ति नहीं हो सकती अर्थात् अपने ही रसास्वादन या कुरुचि-सुरुचि को आकार व संस्कार देने वाला महज़ माध्यम नहीं बन सकती। मान लीजिए यदि ऐसा हो तो कला व्यक्तिगत पेचीदा परेशानियों और उलझनों की अनवरोध स्वेच्छाचरिता बन कर अपने चिरंतन सौन्दर्य को खो देगी और इस

प्रकार उसका विकास भी रुक जायेगा । अतः तार्किक अन्तर्ज्ञान ही प्रत्येक अंकित रेखा, प्रत्येक निर्मित आकार, प्रत्येक कल्पित रूप-रंग, मिश्रण, स्थान, अनुपात, पारस्परिक सम्बन्ध एवं अनुवर्ती अनुक्रम हेतु, यहाँ तक कि उसके समूचे अस्तित्व में रूपायित होता है । महान् कलाकार नियामक होता है । उसके सृजन के जरिए हम उसके तार्किक अन्तर्ज्ञान का अवलोकन करते हैं । शरीर-विज्ञान सम्बन्धी अत्यन्त बेहूदी खामियाँ भी महान् कला की सृष्टि कर सकती है, बशर्ते कि उनमें तार्किक अंतर्शक्ति निहित हो । उदाहरणार्थ—यदि किसी कलाकृति में एक आँख दूसरी आँख से कुछ नीचे चित्रित की गई है तो उसका यह अर्थ नहीं कि प्रकाश-विज्ञान की दृष्टि से उस पर मनन किया गया है, अपितु शक्ल, आकार और अनुपात की तार्किक दृष्टि से उसे आँका गया है । अतएव किसी 'मूड' या भावभंगिमा की अभिव्यक्ति के लिए प्रतिपाद्य विषय के उदात्तीकरण की कला में पारंगत होना चाहिए ।

अकबर पद्मसी कलावादिता के विरोधी हैं अर्थात् बाहरी पालिश से उन्हें नफ़रत है और साज-सज्जा उनकी दृष्टि में समस्त सौन्दर्य मस्तिष्क से निस्सृत होता है—अर्थात् किसी भी सृजित वस्तु का संयोजन व अनुपात बौद्धिक परि-कल्पना या अंतर्जिज्ञासा का परिणाम है । प्रत्यक्ष ही ऐसे वैज्ञानिक विवेचन और अन्तर्गूढ़ चिन्तन को विकसित करने के लिए तटस्थ और विश्लेषणात्मक दृष्टि चाहिए । कलाकार की उन्मुक्त चेतना किन्हीं मर्यादित या नियमबद्ध औपचारिकताओं में बँधकर ही नहीं चल सकती । नवीन और अनोखा ढंग क्या है, अनगढ़ पद्धति से भी बिना मानों में कला की सूक्ष्म, सुष्ठु रेखाएँ उभर सकती हैं । सजग दृष्टि से भाव और भावना, सत्य और सत्ता में प्रतिष्ठित व्यष्टि और समष्टि के सम्वन्ध कैसे निर्धारित किये जा सकते हैं, अभीष्ट क्रियात्मक विश्लेषण और अतिसूक्ष्म अवलोकन को क्योंकर किसी रूपाकार के व्यक्तित्व में ढाला जा सकता है—इस प्रकार जीवन की नई व्याख्या में प्रवृत्त होने की हर कलाकार में ख़्वाहिश होती है । अभिव्यक्ति या शिल्प-सौष्ठव विश्वास से उत्पन्न होता है जो सभी विश्वासों पर नियंत्रण पा लेता है । फलत: इनकी कला जिस भावभूमि पर अग्रसर हो रही है उसका अपना निजी एवं मौलिक आकर्षण है ।

ऐसी स्थिति में मौलिक दृष्टि जगा लेने वाला कलाकार किन्हीं वादों के चक्कर में नहीं पड़ता, यह अवश्य है कि उसमें यथार्थ व अयथार्थ की कहीं-कहीं सम्मिश्रित झलक दीख पड़ती है । वे अपनी कला में एक ऐसे बिन्दु पर

पहुँचने के लिए प्रयत्नशील हैं जहाँ वादों के प्रभुत्व में अलग से विषय और विषयगत भाव की गहराई में उतर कर वे कुछ नई चीज़ दे सकें। कभी-कभी परस्पर विरोधी बिन्दुओं में एकत्व खोजने की चाह में वे तार्किक अधिक हो गए हैं।

अकबर पद्मसी केवल भारत की कला-परम्परा तक ही सीमित नही रहना चाहते। उनकी दृष्टि व्यापक है, वे इटालियन, मिस्री अथवा मेक्सिको की आदिम कला से भी प्रभावित हैं। पेरिस की कला उन्हें सबसे अधिक भायी है। उनके मत से कला यहाँ जीवित और जाग्रत है। मिस्र, चीन, जावा आदि देशों में एक
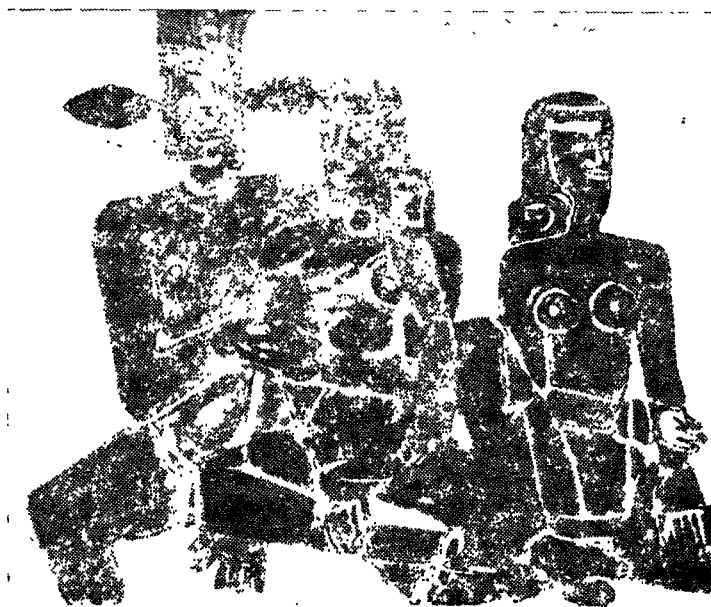
प्रेमी

से एक बढ़कर हज़ारों 'मास्टरपीस' हैं जो युग-युगान्तर तक अपनी कीर्त्ति फैलाएंगे, पर वे अतीत के जड़ स्मारक है, कला के वे म्रियमाण खण्डहर से प्रतीत होते हैं, इसके विपरीत फ्रांस में कला समय को चीरती हुई अग्रसर हो रही है। वह कल जिन्दा थी, तो आज भी, अब भी उतनी ही तरोताजा है।

हरि अम्बादास गेड
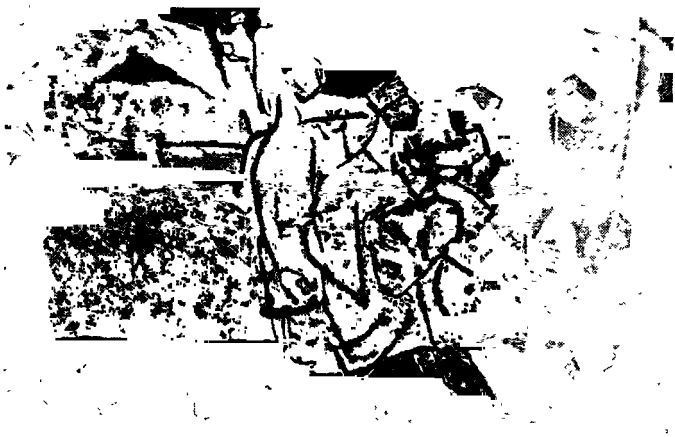
एक भाव चित्र

प्रगतिशील परम्परा के उक्त कलाकारों में पृथक् व्यक्तित्व रखकर हरि अम्बादास गेड दृश्यचित्रों की नूतन मौलिकता क़ायम करने में अपना सानी नहीं रखते। इनकी विशेषता है कि इनके द्वारा चित्रित लैण्डस्केप भीतरी गहराई में डूबे 'आत्मिक प्रतिकृति' के रूप में उद्‌भूत हुए हैं। स्थूल वास्तविकता इनकी दृष्टि में कोई महत्त्व नहीं रखती, क्योंकि प्रत्यक्ष का ज्ञान सूक्ष्म सौन्दर्य का अंश नहीं बन सकता। गेड वस्तुओं के अन्तरंग रूप को पकड़ने का सदैव प्रयत्न करते हैं। आकार, रंग और डिज़ाइन-पद्धति में ऐसी लयमयता है जो सुकुमार भावों की व्यंजना करती है। मन की चिन्तना ही साक्षात् का अग्रगामीहेतु, है वह ही सौन्दर्य की शाश्वत अनुरूपता को सिद्ध करता है, अतएव चित्रों में वही ग्रहण करना चाहिए जो अन्तर्दीप्त हो।

गेड का आग्रह निर्माण पर नहीं, संस्कार पर है। दृश्य की साक्षी दृष्टि है, किन्तु उसकी गुणात्मक सत्ता मन में ओतप्रोत और वहीं से संचालित होती है। कई बार इस प्रयास में इनका भाव-सौन्दर्य लड़खड़ा गया है, फिर भी कुछ भारतीय प्राकृतिक दृश्यचित्रों में समय और वातावरण के सहारे इन्होंने रूमानी

खुशनुमा धूप

कल्पना की अलौकिकता भर दी है ।

इनकी शिक्षा नागपुर विश्वविद्यालय और बाद में बम्बई के सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट में हुई । जबलपुर के गवर्नमेंट ट्रेनिंग कालेज में और बम्बई की विक्टोरिया जुबिली टेक्सटाइल इंस्टीट्यूट में ये लेक्चरार रहे । इस समय दिल्ली की सेन्ट्रल इंस्टीट्यूट आफ आर्ट एज्युकेशन के कला विभाग के अध्यक्ष हैं । इन्हें सर्वश्रेष्ठ चित्रों पर भारत और विदेशों से पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । बाम्बे आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, नेशनल एग्ज़ीबिशन आफ आर्ट तथा पेरिस, पूर्वी यूरोप, अमरीका, स्विटजरलैण्ड आदि देश-विदेशों की कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्र रखे गए और बहुप्रशंसित हुए । प्रगतिशील कलाग्रुप में इनके चित्रों ने अपना एक विशिष्ट स्थान बनाया है ।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

नृत्य के लिए तत्पर
वी. ए. माला

प्रगतिशील कला की समग्रत्ता में उसकी केन्द्रीय स्थापना, परिदृश्य, दृष्टिकोण, टेकनीक और अन्य कतिपय पहलुओं पर गौर करते हैं तो लगता है जैसे वस्तुस्थिति की तात्कालिकता में से प्रासंगिकता को खोजते हुए वे क्षण और शाश्वत को एक साथ अपनी कला में आबद्ध कर लेना चाहते हैं। चूंकि मौजूदा युग भावात्मकता का नहीं बौद्धिकता का है अतएव परम्पराओं से विच्छिन्न होकर जो नूतनता के अंध भक्त हैं उनमें भी मतभेद है कि नई कला के प्रतिमान क्या हों, उसका रूप कैसा हो और वह नये युग का कहाँ तक प्रतिनिधित्व कर सकती है। नवीन का सृजन किसी की वैयक्तिक स्थापना न हो, वरन् उसका प्रयोजन और अर्थ समझने के लिए, साथ ही उसका समुचित दिशा में विकास करने के लिए एक पृथक् दर्शन अर्थात् नित्य एवं सनातन तत्त्वों का सामयिक एवं परिवर्तनशील स्थितियों से समन्वय स्थापित करना नितान्त आवश्यक है। कला जीवन की जागरूक शक्ति है, अतएव कलाकार को दुनिया के सामने आने के लिए नित-नई समस्याओं के संदर्भ में अपनी सृजन शक्तियों को उजागर करने की क्षमता होनी चाहिए। सभी पुरानी आस्थाओं और मान्यताओं से एकबारगी नाता तोड़कर किस नवीन का सृजन हो और उसकी स्थापना कैसे संभव है–इसमें मतभेद है, क्योंकि केवल नये अर्जित ज्ञान से ही

काम नहीं चल सकता, पुरातन परम्पराओं के जीवनस्पर्शी प्राणदायी तत्त्वों की अवहेलना करने के मानी हैं कि जैसे वृक्ष का जड़ से कटकर अलग हो जाना।

इतना तो निर्विवाद है कि कला का सत्य नवीन भावभूमियों को अपनाता हुआ यथार्थ की ओर झुक गया है। उसमें बौद्धिकता का विशेष आग्रह है जो समय की माँग हैं। प्रगतिशील कलाकारों ने जहाँ अपनी नई सर्जना और नई रूपसृष्टि से हृदय और बुद्धि को झकझोरा है, सौन्दर्य की एक नई दृष्टि प्रदान की है, कलाशैली, रूप-विधान और अभिव्यंजना में अधिक मौलिक, वैचित्र्यपूर्ण तथा वैयक्तिक होने का दावा किया है, कुछ की राय में उनके भावचित्रों मे आधुनिक सभ्यता के खोखलेपन का दिग्दर्शन है अर्थात् अतिवैयक्तिक हो जाने के कारण उनमे कला का महत् उद्देश्य सिद्ध नहीं होता। फलत: बम्बई के कतिपय कलाकारों की कला श्रेय और प्रेय दोनों की वाहक बनी हुई है। प्राचीन भावना वैभव तो है ही, युग की सामाजिक चेतना को ग्रहण कर अभिनव सौन्दर्यबोध ने भी उन्हें आकृष्ट किया है जिससे उनकी कला का आधार बहुविध और व्यापक होगया है।

सर्वप्रथम परम्परा और युगधर्म दोनों की समन्वयशील विकासधारा के वाहक के रूप मे वी० ए० माली और वी० एस० गुर्जर के नाम उल्लेखनीय है जिन्होंने तत्कालीन कला के मरणोन्मुख शिशु को नव जीवन प्रदान किया। जहाँ चैतन्य मन का नव अर्जित ज्ञान अतीत की परम्पराओं में सुरक्षित है, वहाँ अतीत और परम्परा की अपेक्षा तात्कालिक परिस्थितियों का भी उतना ही महत्त्व है जिनमें कि वह जी रहा है। **वी.ए.माली** ने सघन रगों में सुसंयोजना द्वारा विगत की उपलब्धियों को वर्त्तमान् के नये भाव, नई प्रेरणा और नवीन मानदण्डों से प्रस्तुत किया और **वी. एस. गुर्ज्जर** ने रीति-रूढ़ि और लाक्षणिक परिपाटी से हटकर राष्ट्रीय जागरूकता का परिचय देते हुए 'दोपहर का भोजन', 'अनाथ', 'तूफान के बाद' आदि कतिपय चित्रों द्वारा निर्धन, दुर्दशाग्रस्त व उपेक्षितों के दुःख-दर्दों का दिग्दर्शन कराया। उनकी सृजन प्रक्रिया के माध्यम और प्रेरणा के स्रोत पश्चिम की प्रयोगवादी और व्यक्तिपरक धारा से ही प्रभावित नहीं हुए, बल्कि भावाभिव्यक्ति की विभिन्न विधाओं को व्यापक परिवेश में ग्रहण कर वे निजी प्रतिमानों और उपादानों के सहारे नये परिवर्त्तन के आसार लेकर आगे बढ़े, जिनके पदचिह्नों का अनुसरण कितने ही परवर्त्ती कलाकारों ने किया।

अभय खटाऊ

अभय खटाऊ आज की प्रचलित प्रगतिशीलता से उतने आक्रांत नहीं हैं जितना कि अन्ध परम्परा से मुक्त स्वतन्त्र विचारों के आलोक में कला के उन्मुक्त प्रसार को आवश्यक मानते हैं। उनके विषय भारतीय हैं, किन्तु निजी अनुभूति के आधार पर विभिन्न देशीय कला-तत्त्वों के सामंजस्य द्वारा अपनी चित्र-शैली को युगोचित और नये आदर्शों की स्थापना द्वारा पूर्णतः मौलिक बनाने की चेष्टा कर रहे हैं।

भारतीय सामूहिक नृत्य

प्रारम्भ में पुलिनबिहारी दत्त के तत्त्वावधान में इन्होंने कला की साधना की, किन्तु ओपेरा (नाट्य संगीत) में अत्यधिक रुचि इन्हें यूरोप खींच ले गई। छाया नाट्य और संगीत की मधुरिमा ने इनके मानस को एक विचित्र कौतूहल और आकर्षण से भर दिया। स्तब्ध वातावरण में एकनिष्ठ तन्मयता में बनती-मिटती छायाकृतियाँ इनके हृदय-पटल पर इस प्रकार अंकित हो गईं कि मानो उनका शांत और सौम्य प्रभाव इनकी अवसन्नता और अरुचि को सुख-शांति का अमृतपान कराने के लिए आमंत्रण देता रहा हो। दरअसल इनका स्वास्थ्य उन दिनों ऐसा न था जो मन की चितना और सौन्दर्यानुभूति को प्रमाण मान कर स्वतः परिस्थितियों और वातावरण से ये कुछ सृष्ट कर सकने में समर्थ होते, अपितु भावना की चरम तीव्रता और स्वच्छन्द नैसर्गिक प्रवाह के कारण उनकी तूलिका से वे ही रूप उभरे जो विश्रृंखल संघटन मात्र न हो कर जीवंत चेतन सत्ता के रूप में इनके मानस में उद्घाटित हो चुके थे। इनकी अनेक कलाकृतियों में छितराये रंगों का आधिक्य और उच्छ्वसित

लयमयता आकृष्ट कर लेती हैं। ऐसा प्रतीत होता है मानो कलाकार के अंतरंग संगीत का मधुर रव उनके कला-प्रतीकों की रंगमयता में तिरोहित हो गया है। प्रतीको के निर्माण में एक विशाल 'औपेरा' की उत्प्लावित तरलता और स्पर्श-मुखर आलाप में मुखरित होती अपूर्व झंकृति का आभास मिलता है। इस रहस्य का सृजन-श्रेय इन्हें ही है।

यद्यपि खटाऊ के सौदर्य-सिद्धान्त पाश्चात्य मतवादों पर आधारित हैं—विशेषकर फ्रांसीसी कला अर्थात् सेजाँ की कला का काफी प्रभाव दीख पड़ता है—तथापि ये स्वयं एक कट्टर हेतुवादी है। अनेक डिज़ाइनों में काली सुदृढ़ रेखाओ के कारण इनके रंगों के अतिशय्य पर अंकुश लग गया है। प्रत्यक्षतः 'इम्प्रेशनिज़्म' का इन पर गहरा असर है, पर बच्चे सरीखा उनका भोला कौतूहल और ग्राह्य शक्ति इनकी अपनी निजी विशेषता रखती है।

कुछ चित्रों में यूरोपीय एवं चीनी-जापानी कला की निर्माण-पद्धति का भारतीय कलातत्त्वों से बड़ा ही सुन्दर समन्वय प्रस्तुत किया गया है अर्थात् इन चित्रों की रंग-योजना, आकृतियाँ और वेषभूषा विशुद्ध भारतीय है, किन्तु रेखाओं और निर्माण-प्रक्रिया में विदेशी तत्त्व संश्लिष्ट हैं। कहीं-कहीं वे ऐसे अनिरंजित से लगते है, उदाहरणार्थ—कुछ ठेठ लोकनृत्यों में जहाँ कि ग्राम्य उत्फुल्लता मे रागरंजित वातावरण अपेक्षित था वहाँ यूरोपीय ढंग की कुंठित अवतारणा की गई है। 'वात्मल्य' चित्र मे जहाँ भारतीय माँ की अपने शिशु के प्रति छलकती भावानुभूति और ममता दर्शायी गई है उसमें देवी मरियम और बालक ईसा जैसी भावभंगी और निर्माण-प्रक्रिया किसी भी प्रकार उचित नही जंचतीं। 'रागरंग' मे शाही दरबार का दृश्य आँका गया है, पर उसमें भारतीय परम्परा व निर्माण पद्धति नही अपनाई गई है, वरन् बड़े ही विचित्र ढग मे यूरोपीय साँचे में समूचा चित्रांकन प्रस्तुत किया गया है। इसे ही हम एक सर्वथा नई कला शैली का प्रवर्त्तन भी कह सकते है। यह आवश्यक नहीं है कि कलाकार अपने पूर्ववर्त्तियों की परम्परा का ही निर्वाह करे, हर मौलिक कलाकार कुछ नई चीज़ देता है। वह स्वयं अपने पथ का निर्माण करता है। इस अर्थ मे अभय खटाऊ निश्चय ही निजी विशेषता रखते हैं।

भारतीय लोकनृत्यों का इन्हें विशेष अध्ययन है—ऐसे चित्रों में इनका भाव-सौन्दर्य चित्रण की श्रेष्ठता के साथ समन्वित हुआ है। इनके परवर्त्ती चित्रों में रंगों के बाहुल्य की अपेक्षा भावाभिव्यक्ति में उत्तरोत्तर गंभीरता आई है। आकार और गढ़न-कौशल में सादगी और स्थायित्व है, रंग-रेखाएँ भी

स्थूल रूपकारिता से सूक्ष्मसुरुचि और अनुरूपता लिये हैं। इनके पोर्ट्रेट चित्रों में भी 'इम्प्रेशनिज़म' का प्रभाव है। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि निजी भावानुभूतियों को उत्तरोत्तर सरल एवं श्रेष्ठ साँचों में ढालकर ये अपनी अद्वितीय प्रतिभा का परिचय इस ढंग से दे रहे हैं जो इनकी खास विशेषता है।

इन्होंने पोट्रट चित्र भी बनाये हैं। 'हवा की थिरकती लय के साथ' और 'शोक' आदि चित्रों में रेखाओं पर जोर दिया गया है। इनकी डिज़ाइन पद्धति में बढ़ती वय के साथ परिपक्वता आती गई हैं और उसमें विषय की सुष्ठु प्रतिपादन पद्धति के अलावा गंभीर चिन्तन मुखर हुआ है। समय की लम्बी दौड़ में ये अब तक प्रयोग करते आ रहे हैं और इनका अनथक प्रयास नित-नये रूपों में अभिव्यक्ति खोज रहा है।

रोम आदि विदेशों की कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को सम्मान मिला हैं। बम्बई में भी कई बार इनकी कला-प्रदर्शनी हुई हैं और देशी-विदेशी अनेक कला-संग्रहालयों में इनके लब्धप्रतिष्ठ चित्र सुरक्षित हैं।

ए० ए० अलमेलकर

सन् १९२० में अलमेलकर का जन्म अहमदाबाद में हुआ था, किन्तु बम्बई के नूतन कला मन्दिर और सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने कला की शिक्षा पाई और वहाँ के गण्यमान्य कलाकारों में इनकी गणना होने लगी। सिद्धान्ततः व्याख्या भेद की प्रवृत्ति का आश्रय लेकर इन्होंने समन्वय की उपादेयता समझी। इन की कला का क्षेत्र विस्तृत हुआ, दृष्टि में परिपक्वता आई, अनेक माध्यमों की संभावना का उन्हें पता चला और मुग़ल कला, राजपूत एवं मराठी चित्रशैली तथा पहाड़ी कला से वे प्रभावित हुए।

मलाया का एक दृश्य

जहां तक प्राचीन अतीत की सांस्कृतिक परम्परा के पुनरुत्थान का प्रश्न है, अलमेलकर ने किन्हीं अंशों में वही प्रज्ञा, वही कला-प्रणाली और उसी तरह की रूप-समृद्धि को जीवन की अखण्डता में रूपायित करने का प्रयत्न किया है, यही कारण है कि उनकी कला कृतियाँ आज की ख़ामख्यालियों अथवा विकृतियों से दूर आँखों को बड़ी ही आकर्षक जँचती हैं। प्राचीन आदर्शवाद और समसामयिक मान्यताएँ परस्पर प्रेरक बनी रह कर इनकी अपनी विशिष्ट शैली का निर्वाह करते हुए साथ-साथ काम कर रही हैं। १९५३ में एक महान् संकट

इन पर आया था जब कि इनका स्टूडियो और सारे चित्र अग्नि की भेंट हो गए थे। पर इस ज़बरदस्त क्षति के बावजूद भी ये अपने साधना-पथ से किंचित् विचलित न हुए। अग्नि स्फुल्लिगों की दहक में इन्होंने यूनानी किम्बदन्तियों में वर्णित उस अग्नि-पक्षी का दर्शन किया जो एक लम्बी अवधि तक जीवित रह कर जल मरता है और उसी राख से पुनरुज्जीवन प्राप्त करता है। ध्वंस और निर्माण—दोनों का अन्योन्याश्रय सम्बन्ध है, इन्हें सर्वनाश में निर्माण की ज्वाज्ज्वल्यमान प्रकाश के दर्शन हुए। इन्होंने और भी उत्साह से कार्य किया और आगामी वर्ष सन् १९५४ में ही एक प्रदर्शनी का आयोजन किया जिसमें ये पुरस्कृत हुए।

प्रारम्भ में पश्चिमी पद्धति पर लैण्डस्केप के चित्रण की ओर इनका सहज झुकाव था। वाल्टर लैंधमर से प्रभावित होकर इन्होंने जलरंगों के सघन प्रलेप से तैलरंगों का सा आभास पैदा किया। इनके विहँसते रंग अपने उन्मुक्त प्रसार में आत्मिक उत्कंठा से प्रकम्पित प्रतीत होते हैं, किन्तु इनकी आशु कृतियाँ उतनी प्रभावित नहीं करतीं। भारतीय लघुचित्रांकन (मिनियेचर पेंटिंग) और प्राचीन चित्रलिपि की ओर भी इनकी विशेष रुचि है और न्यूनाधिक रूप से इनके कृतित्व पर इसका प्रभाव भी पड़ा है, क्योंकि रेखाओं की उद्वेगपूर्ण लयात्मक संस्थिति के ये कायल हैं। फिर भी प्राचीन परम्परा का इन्होंने अन्धानुसरण नहीं किया, अपितु रेखाओं की आपेक्षिक सुकुमारता को ढालने की पद्धति में ये सर्वथा आधुनिक बने रहे। हल्के भूरे रंग की ओर इनकी रुचि पारम्परिक भी है और आधुनिक भी, पर उसके प्रस्तुत करने की पद्धति में ये नितान्त मौलिक हैं। धूमिल अर्थात्

मलाया का एक दृश्य

नितांत हल्के एवं पस्त रगो की सहज सौम्यता सुन्दर डिज़ाइन के निर्माण-कौशल से सजीव हो उठती है । प्रायः जैतून के तेल से इन्होने अपने चित्रों मे चमक पैदा की है, किन्तु उनकी कल्पनात्मक व सर्जनात्मक पृष्ठभूमि में कलाकार के अन्तस्तल में निगूढ़ संवेदना की अवस्थिति कई बार निष्प्रभ पड़ जाती है ।

भारतीय लोककला से इन्होंने यामिनीराय से सर्वथा भिन्न एक दूसरे ढंग से ही प्रेरणा पाई है और इस प्रकार बहुविध तत्त्वो, कार्य-पद्धतियों एवं अनेकार्थी साधनों का समावेश कर इन्होंने अपनी लोकरुचि को विविध दृश्यांकनों, वस्तुओं एवं व्यक्तियो का प्रतीक बनाया है ।

लोककला से प्रेरित इनके चित्रों की मंडन-शैली अपनी पृथक् विशेषता लिये है । इनके तौर-तरीके और अंकन-सौदर्य बिल्कुल निराला ही है अर्थात् लोककला की विशिष्ट साज-सज्जा से संश्लिष्ट कर इन्होंने उसमे आकर्षण और रंगीनी भर दी है । इसका कारण एक यह भी है इन्होंने असली रोजमर्रा के जीवन के साथ सदा अपनत्व स्थापित किया है । रहन-सहन की सादगी, आचार-विचार, दैनन्दिन कार्य-व्यापार और रीति-रस्मो को इन्होने ज्यो का त्यों आँकने का प्रयत्न किया है । अमर कंटक के अंचल मे विचरते हुए अपने कतिपय चित्रण-संस्मरणों को प्रस्तुत करते हुए ये लिखते है—

दिव्य प्रेम

'सवेरा होते ही एक नाले पर पहुँचे जहाँ कुछ स्त्रियाँ पानी भर रही थी । प्राकृतिक सौदर्य की अनुपम छटा के बीच पनघट का यह दृश्य हमारे चित्रांकन का विषय बन गया और पनिहारिनें हमारी कला की नायिकाएँ बन गई ।

यहाँ घर अधिकतर झोपड़ों के ही बने हुए थे जिनकी दीवारें प्रायः श्वेत मिट्टी से लिपी हुई थीं । घरों की दीवारों मे छोड़ी गई खिड़कियाँ हमें बहुत ही भली लगी । हर दीवार पर आदमी, चिड़िया, गाय, हरिण, खरगोश आदि

के चित्र रंग-बिरंगी मिट्टियों से बने थे। घर के आँगन भी बहुत ही स्वच्छ थे, मानो ये घर उनके व्यक्तित्व की सादगी के साथ ही स्वच्छता का भी परिचय दे रहे थे। हमने उन घरों को बड़ी सूक्ष्म दृष्टि से देखा तथा बहुत से घरों के स्केच बना लिये।'

बंजर प्रदेश के आदिवासियों के 'करमा नृत्य' का नजारा देखकर इनके अंतर्पट पर जो भाव मुखरित हुए वे इस प्रकार है—

'एक ढोल की आवाज़ ने पूरे ग्राम को 'करमा' की सूचना दी। तब हर ओर से मंजीरों की ध्वनि सुनाई देने लगी। पहले पुरुषों का झुंड जमा हुआ। उसके कुछ देर बाद बीस-पच्चीस युवतियाँ भी आकर शामिल हो गई तथा 'करमा नृत्य' प्रारम्भ हो गया। सभी अजीब पोशाकों में थे। एक दूसरे के गले में हाथ डाले एक अर्धगोलाकार में नृत्य हो रहा था। उनके पैर ढोलों की चमक और मंजीरों की झमक के साथ ही उठते थे तथा 'करमा गीत' समवेत कंठों से गूंज रहा था। प्राकृतिक जीवन का ऐसा तल्लीन आनन्द हमने जीवन में यही पहली बार देखा। इस समय हमने उनके 'करमा नृत्य' के कई चित्र अंकित किये।'

जैसा कि एक सच्चे कला साधक की कसौटी है हर दृश्य वस्तु को आत्मा के अनुरूप ढाल लेने की साधना और दृढ़ संकल्प को इन्होंने उजागर किया है। इनके मत्स्य नेत्र, कदली फल और पत्र छत्रक, साथ ही नूतन अंकन शैलियाँ इतनी प्रख्यात और अनुकरणीय सिद्ध हुई है कि कितने ही नवोदित कलाकारों ने इन्हीं की कला-पद्धति से प्रेरणा प्राप्त की है। ग्राम्य नरनारियों खास कर आंध्र के लोकजीवन की छाप इन पर विशेष रूप से पड़ी है। इनकी हर भावभंगी, कार्यकलाप, जीवन बिताने के रंगढंग और तौर-तरीके कला के चरमोत्कर्ष बिन्दु पर पहुँच कर आत्मा की गहराइयों में पैठने लगते है और उनका हूबहू व्यक्तित्व सामने लाकर खड़ा कर देते है। ये सदृश आकृतियाँ इनके चटख रंगों और रेखाओं में ढलकर मन को तन्मय कर देते है।

बाज़ार मे

प्रकृति के अंचल में उन्मुक्त विचरण करने वाली वन्य जातियों, श्रमिकों, निर्धन-निस्सहायों से प्रेरित इन्होंने अविस्मरणीय चित्र आँके हैं जिनमें प्रकृति की विविध

छटाओं के साथ मनुष्यों के रहन-सहन, उनकी भावभंगियों और चेष्टाओं का सुन्दर निदर्शन है। 'दरवाजे की ओट,' 'पर्वत कन्या-परवतिया', 'करमा नृत्य' 'नाविकों का श्रमसाध्य जीवन' और नारियों की चेष्टाओं और उनके सहज स्वभाव व आदतों के चित्रण में बड़ी ही तरल सजीवता और सुष्ठु सज्जा है। ये अधिकतर जलरंगों का प्रयोग बड़े ही सशक्त ठोस आधार पर करते हैं।

मलाया का एक दृश्यांकन

सन् १९५३ में बम्बई की आर्ट सोसाइटी के वार्षिक समारोह के अवसर पर इन्होंने गवर्नर का अत्यधिक सम्मानित स्वर्ण-पदक प्राप्त किया था। कलकत्ता, मद्रास, हैदराबाद आदि अनेक स्थानों पर तो इनके चित्रों की कला-प्रदर्शनियाँ हुई ही है रोम, टोकियो, न्यूयार्क, बेसिल, मेलबोर्न, हांगकांग आदि देशों में भी इनकी प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्टस ने इन्हें पुरस्कारों से सम्मानित किया है।

जहाँगीर सबावाला

एक शिल्पगत दुर्भेद्य दुरूहता–जो उद्दाम उद्वेलनों से सशक्त होकर चित्रों में उभरी है जिसे दूसरे शब्दों में घनवादी पद्धति कह सकते हैं, जहाँगीर सबावाला अपने आकांक्षित स्वप्नों को पकड़ने के लिए निहायत ही अप्रत्याशित ढंग से अपनी कल्पना और अनुभूति को दार्शनिक संचेतना में परिणत कर दर्शाते हैं। इनकी शिल्पविधाएँ और रचना प्रक्रिया पर जुआन ग्रिस का प्रभाव द्रष्टव्य है, यद्यपि इनकी रेखाओं और रंगों में उस क्यूबिस्ट मास्टर का सा आन्तरिक तनाव और रूपगत अमूर्त्तता नहीं मिलती।

सबावाला के कैन्वास चित्रों की गति, लय और रेखांकनों में विघटना के आकर्षण के बावजूद सज्जात्मक सौष्ठव मुखरित हुआ है जो स्वयंगत कल्पना और मौलिक उद्‌भावना का परिणाम है। राजस्थान के ठेठ दृश्यांकनों में इन्होंने अपनी सूक्ष्म पैठ और मर्मभेदी दृष्टि का परिचय दिया है। इनके घनवादी पद्धति पर आँके गए ऐसे चित्र अंतरंग रंगमयता और ठोस प्रतिपादन शैली के प्रतीक है। वस्तुतः इनकी पर्यवेक्षण क्षमता और अन्वेषक दृष्टि बड़ी गहरी पैठती है। वे स्थूलता के बजाय सूक्ष्मता की परोक्ष परियोजना के क़ायल हैं। उन्हीं के शब्दों में——"मैं क्यों चित्र बनाता हूँ –इस बात पर मुझे खुद ताज्जुब होता है। कदाचित् प्रकृति के रहस्यों को पा लेने के लिए, उसने जो एक अजूबा हमारे सामने बिखेर दिया है, निःसन्देह, वह हमारी समझ से परे की चीज़ है, पर जिसका जादू हमें चित्रण के लिए उत्प्रेरित करता है। अथवा नीरव ऐकान्तिक भावना जो रात-दिन के झंझट-झमेलों और हलचलभरे वातावरण से दूर हमें ऐसी दुनिया में ले जाती है जहाँ रंग और तूलिका, अलंकरण और सज्जा कैन्वास पर-–तैलरंगों के माध्यम से—सर्वथा नई सृष्टि कर डालते हैं। अथवा संभव है यह अन्तर्गूढ़ मनोवृत्ति जो सर्वाधिक अछूती आत्मसृष्टि प्रदान करती है कि हम उन लोगों से अलग और भिन्न हैं जो चित्रण के जादुई संस्पर्श से परे इस सृजनात्मक सामर्थ्य से वंचित हैं। ये ही सब तत्त्व या और सब मिलेजुले भाव, जिनकी मैं मीमांसा नहीं कर सकता, मुझे चित्रण के लिए प्रेरित करते हैं।"

•

इनके मत में किसी भी पेंटिंग का आधारभूत तत्त्व है—सौन्दर्य। पैटर्न और फार्म, रंग और रेखाएं, समानुपात और रचना प्रक्रिया—सभी में सौष्ठव और अभिभूत कर लेने वाले तत्त्व होने चाहिए। किन्तु वह खोखली सौन्दर्य सज्जा है जिसमें चित्रकार की सूक्ष्म भावनाओं की दिग्दर्शक व्यंजना का अभाव है। केवल कुछ रंग और रेखाओं की मदद से रूपाकार गढ़ देना कला नहीं है, वरन् उसके प्रतिपाद्य में विश्वव्यापी तत्त्वों का समावेश होना चाहिए जो देश और जाति की संकीर्णता को छोड़कर कुछ अद्भुत और विशिष्ट संसार को दे सकें।
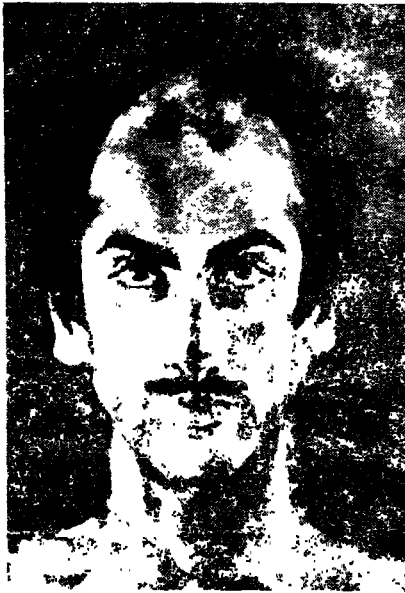
आत्मचित्र

जहाँगीर सबावाला का प्राथमिक कला-शिक्षण 'सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट बम्बई' में हुआ, तत्पश्चात् हीथरले इन्स्टीट्यूट आफ फाइन आर्ट में अध्ययन समाप्त करने के बाद चार वर्ष तक ये फ्रांस में रह कर इटली में भी कला की बारीकियों का अध्ययन करते रहे। इन्होंने मिडिल ईस्ट, सीलोन और समूचे यूरोप का दौरा किया। वेनिस, काहिरा, स्विट्जरलैण्ड, पेरिस और मोंटे कार्लो में इनके चित्रों की प्रदर्शनियां हुईं। सन् १९५१ से ये बम्बई की आर्ट सोसाइटी की हर प्रदर्शनी में भाग लेते रहे हैं। समय-समय पर आयोजित राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भी इनके चित्रों को सम्मान और पुरस्कार मिला है। यद्यपि एक व्यावसायिक कलाकार के रूप में ये स्वतन्त्र रूप से कला-साधना में प्रवृत्त रहे हैं तथापि इन्होंने विदेशी तत्त्वों को आत्मसात् कर अपने मौलिक सृजन द्वारा कला के क्षेत्र में विशिष्ट स्थान बना लिया है। प्रभाववादी पद्धति पर इनके चित्रण के विषय अति सामान्य होते हैं—घरेलू वस्तुएँ, रात-दिन उपयोग में आने वाले सामान, बच्चे, औरतें, रोजमर्रा मिल जाने वाले व्यक्ति, पर इनकी जो खास उपलब्धि है वह है

सृजनकार की सार्वभौम स्वीकृति जिसे बहुत कुछ समेटकर ये अपने द्वारा सृष्ट मूल्यांकनों को कसौटी मानकर चलते हैं।

अपनी इन्हीं कला-कसौटियों की व्याख्या करते हुए इनके निम्न उद्गार हैं—

'मैंने कई देशों में चित्रकला की पद्धतियाँ सीखी हैं। पहली दीक्षा अपने देश में अपनी कला शैलियों की ली और उसके बाद यूरोप में काफ़ी दिनों तक काम किया। बरसों तक धीरे-धीरे मैं बिभिन्न माध्यमों को जानकारी करता रहा और रेखाओं और रंगों के सही-सही इस्तेमाल का अभ्यास करता रहा। मेरा यह बराबर विश्वास रहा है कि आधुनिक कला चित्रकला के मूल सिद्धान्तों के अज्ञान से नहीं आती बल्कि वे लोग जो क्लासिकल शैली पर पूर्ण स्वामित्व प्राप्त कर लेते हैं, वही आगे चलकर अपनी प्रतिभा को नई दिशाएँ खोजने में लगा सकते हैं और उसमें सफलता पा सकते हैं। मैंने प्रारंभ से ही कामना की कि मुझे नई दिशाएँ मिलें और मेरी आशा बराबर बलवती रही। हो सकता है कि कुछ लोग चित्रकला के बुनियादी सिद्धांतों के अज्ञान को ही नई कला मानते हों, लेकिन ऐसे लोग सही अर्थों में नई कला के प्रतिनिधि नहीं होते। हर आधुनिक कलाकार को अपने माध्यम की टेकनीक पर पूरा अधिकार होना चाहिए। अगर वह अधिकार हो गया-तो समझ लीजिए कि आपने आधा मोर्चा फतह कर लिया। बाकी आप पर है--आप का निजी झुकाव किस ओर है? आप की प्रतिभा की विशिष्ट दिशा क्या है? उसे अपना काम करने दीजिए।

झील के नीलांचल में पत्रहीन वृक्ष

जहाँ तक मेरे कला व्यक्तित्व के विकास का सवाल है, मैं पहले क्यूबिज्म की द्वन्द्वात्मक प्रणाली की ओर झुका। विभिन्न पुंजों को अनुशासित करना, आकारों को सूक्ष्मता से विभाजित करना और पूरे चित्र-फलक पर मानसिक अधिकार रखना। समूचे चित्र का कम्पोजिशन मेरे लिए सबसे महत्त्वपूर्ण चीज है। चमकदार तीखे रंगों का सामंजस्य और काम्पोजिशन, यह दोनों मेरी अंकन पद्धति के अनिवार्य अंग हैं। जिसे हम अमूर्त्त चित्रण (ऐब्सट्रैक्ट आर्ट) कहते है, वह इसी का अगला क़दम हैं और शायद अनिवार्य क़दम है। क्योंकि

जो चित्रकार स्वभाव या रुझान से गतिशील हैं, वह यहाँ पर आकर रुक नही सकता। अमूर्त्त चित्रण की ओर अगला क़दम उठाना उसके लिए जरूरी हो जाता है।

अमूर्त्त चित्रण के बहुत से चित्रप्रेमी विमुख हैं। लेकिन अगर वे यहाँ तक का विकास समझ लें तो अगला कदम समझने में दिक्कत नही होगी। मेरे विकास की जो परम्परा रही उसकी यह अनिवार्य माँग थी कि इसके बाद मै अमूर्त्त चित्रण की ओर बढ़ूँ क्योंकि उसमें प्रभाववाद (इम्प्रेशनिज़्म) का गीति-तत्त्व, क्यूबिज़्म का विश्लेषक तत्त्व और क्रियात्मक उत्साह घुलमिल जाते है और बुद्धि कलाकार की आंतरिक भावनाओं को निर्बाध अभिव्यक्ति का अवसर मिलता है।'

•

लक्ष्मण पाई

लक्ष्मण पाई गोग्रानी हैं, परन्तु सर जे० जे० स्कूल ग्राफ ग्रार्ट में शिक्षा प्राप्त की ग्रौर वहीं शिक्षक भी नियुक्त हो गए। प्रारम्भ में ग्रपने रूपाकारों के निर्माण, रेखांकन के ढंग ग्रौर रंगों के चयन में इनकी खास ग्रपनी प्रेरणा ग्रौर पद्धति थी, जिसमें इनकी जन्मभूमि गोग्रा के ग्रनेक स्मरणीय दृश्य चित्र प्रस्तुत किये गए थे। शनैः शनैः यह विशिष्ट लाक्षणिक शैली द्विधापूर्ण ग्रौर दुर्गम्य भाव-संवेदनाग्रों पर ग्राधारित ठेठ रूपान्तरण ग्रौर सज्जापूर्ण ग्रौपचारिकता में परिणत होती गई। वस्तु या व्यक्ति में स्थित ग्रनेक प्रभावों ग्रौर प्रतिक्रियाग्रों के दर्शन कर मात्र वाह्याकार ही ग्राँके गए हैं, जीवन के विविध रूप, उनका भावात्मक विस्तार ग्रथवा उनकी ग्रतल गहराई में पैठने का प्रयत्न नहीं है। मिस्री उत्कीर्ण मूर्त्ति-ग्रंकन ग्रौर भारतीय लोक कला से शह पाकर इनकी चित्रकृतियाँ निरे ग्रनुकृत ग्रौर पिष्टपेषित ग्राकारों में ग्रत्यन्त साधारण ढंग से निर्मित होती थीं। यह कष्टमय दमित पद्धति कहीं-कहीं इतनी भावहीन ग्रौर निर्जीव प्रतीत होती है कि काठ की सी जड़ता उनमें समोई-सी

गीत गोविन्द

लगती है। वे ज़रा भी ग्रपील नहीं करतीं मानो कलाकार की ग्रात्मा कुंठित हो ग्रथवा कल्पना एवं ग्रनुभूति में क्षीणतर हो। पर इनके कुछ चित्रों की डिज़ाइन पद्धति ग्रौर रेखाग्रों की लहरदार मोड़-तोड़ बड़ी ही स्वाभाविक ग्रौर सूक्ष्म बन पड़ी हैं। साँचों की निर्मिति ग्रौर विषय के केन्द्रीकरण में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है, पर ग्रमूर्त्त भावाभि-

व्यंजक चित्रों में रहस्यमय अथवा अपरोक्ष होने के प्रयत्न में वे अस्पष्ट और निःसत्त्व सी कल्पना को जगाते हैं। 'भाग्य' और 'आत्मा' आदि चित्र एक दुरूह, दुर्ज्ञेय अस्पष्टता को व्यंजित करते हैं। बम्बई आर्ट सोसाइटी के वार्षिक समारोहों के अवसर पर और व्यक्तिगत कला-प्रदर्शनियों में कई बार इनके चित्र प्रदर्शित किये गए। पहले ये सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के फेलो थे, किन्तु १९५१ में यूरोप चले गए और यदाकदा वहाँ से भारत आते रहते हैं। जर्मनी, पेरिस, लंदन, म्यूनिक, डाफिन, प्रिजमीज आदि यूरोपीय देशों में इन्हें पर्याप्त ख्याति मिली। भारत की हर प्रमुख कला-प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और अमेरिका में इनकी विशिष्ट चित्रणशैली का अभिनन्दन किया गया। भारत और विदेशों की विभिन्न कला संस्थाओं और समय-समय पर आयोजित कला-प्रदर्शनियों में इन्हें विशेष पदक व पुरस्कार प्रदान किये गए हैं।

रसिक दुर्गाशंकर रावल

रावल बम्बई के तरुण कलाकार हैं जिन्होंने अपनी नव्य कल्पना और निराली शैली से थोड़े अर्से में ही लोकप्रियता हासिल की है। लोकचित्र पद्धति पर वे पशु और मानव-आकृतियों का निर्माण करते हैं जिनके रंग और रेखाओं की सुसंयोजना दर्शकों को आकृष्ट कर लेती हैं। यामिनी राय की नव्य पुरातनवादी पद्धति में इन्होंने अपने ढंग से मोड़ पैदा किया है और बाली व मेक्सिको की चित्रण पद्धति को अपने निजी ढंग से आत्ममात् किया है। इनकी रेखाओं में तनाव या जोर जबर्दस्ती नहीं है। आकारों में कृत्रिम भावभंगी या चेष्टाओं का निदर्शन नहीं है, बल्कि बड़े ही सहज सशक्त रूप में उन्हें आँका जाता है। आँखों को जो सुन्दर जँचे, जो मन को अभिभूत कर ले, रेखाओं व रंगों का न अधिक फैलाव, न अधिक संकुचन, जो चेतना में समा जाय और प्राणों को अभिभूत कर ले। दर्शक देखता रह जाता है, फिर भी उसकी लालसा, उसकी तमन्ना पूरी नहीं होती—ऐसी ही रावल की अनूठी नेत्ररंजक कला है जो प्राचीन और अर्वाचीन कला-तत्त्वों से समझौता कर अपनी निजी विशिष्ट रूप

पनघट की ओर

में उजागर हुई है।

रावल की कला शिक्षा सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट, बम्बई में हुई। सौराष्ट्र प्रान्त की मुखर चेतना से ओतप्रोत इनके कृतित्व में खुशनुमा तत्त्वों का समावेश वहीं की प्राणवत्ता और मूल संस्कार हैं, जिनसे इनकी कला चहक उठी है। अधिकतर लाल, हरे, नीले रंग, कहीं कहीं हल्के पीले और जामुनी रंगो के पुट से और भी गरिमा व संजीदगी आ गई है। मूलतः उनके काम करने का ढंग बिल्कुल देशी है, पर दकियानूमी अथवा कटमुल्लापन लिये नहीं, बल्कि सीधी-सरल, बनावट से दूर अपनी खास तर्ज और शैली में उभर कर मन को छू जाता है—यही रावल की सफलता है।

वृषभ पूजा

देश-विदेश की कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्र बहुप्रशंसित और आकर्षण का केन्द्र रहे है। बम्बई की आर्ट मोसाइटी और कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट से इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किये गए। भारत और विदेशों के अनेक कला-संग्रहालयों और व्यक्तिगत संरक्षण में इनके अनेक महत्त्वपूर्ण चित्र उपलब्ध हैं।

एस० बी० पल्सीकर

खासतौर से येभित्ति-चित्रण में दक्षता रखते हैं। जलरंगों से स्वेच्छया आँके गए इनके चित्रों में सज्जा एवं अलंकरण का प्राधान्य है जो प्रतीकवादी पद्धति पर वास्तविक तथ्यों को असम्पूर्ण प्रतिच्छाया से रहस्यमय और दुर्ज्ञेय बना देते हैं। द्विधापूर्ण और अस्पष्ट भाव-संवेदनाओं पर आधारित कोई भी चित्रकृति शाश्वत रूपरेखाओं को नही उभार पाती,अतएव व्यंजनात्मक प्रतीति या तो दुर्ग्राह्य हो जाती है या इतनी जटिल और अंतर्मुखी कि रसोद्रेक की सृष्टि नहीं कर पाती। 'उपासना','शृंगार' 'गपशप','भाग्य' आदि चित्रों में बड़ी ही निष्प्राण लाक्षणिक पद्धति पर काम हुआ है। आकृतियाँ निश्चेष्ट और ओजहीन हैं। उनमें कोई गति या प्राणवन्त्ता नहीं है, बल्कि कभी-कभी लगता हैं जैसे काष्ठ निर्मित सपाट चित्राकृतियाँ कृत्रिम व्यंजना के साथ उभारी गई हों। इनके परवर्त्ती धार्मिक चित्रों में भो वैसे ही बौद्धिक तनाव दीख पड़ता हैं अर्थात् सौन्दर्य की कसौटियाँ अनिश्चय और सन्देहास्पद स्थिति में विशृंखल सी लगती है यथा-'दिव्य पापी' (Diuine Sinners), मोक्ष(Annunciation)में सूक्ष्म कल्पना है, किन्तु अतिरंजनापूर्ण रहस्यमय रूपसज्जा सौन्दर्योन्मुखी नैतिकता को असार्थक बना देती है। लगता है कलाकार जीवन की यथार्थता से पलायन करके हर वस्तु को भ्रम एवं छलना मानता है।

सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् ये वहीं कई वर्षो तक अध्यापन कार्य करते रहे। तत्पश्चात् इन्होंने व्यावसायिक कलाकार के रूप में कार्य प्रारम्भ किया। लगभग सभी देशी-बिदेशी कला-प्रदर्शनियों,राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी आफ बाम्बे, एकडेमी आफ फाइन आर्ट्स, बाम्बे स्टेट आफ आर्ट एग्जीबिशन तथा ललित कला अकादमी द्वारा १९५६ में आयोजित पूर्वी यूरोप के लिए भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। महत्त्वपूर्ण चित्रों पर इन्हें पुरस्कार प्रदान किए गये। अनेक व्यक्तिगत और सार्वजनिक कला-संग्रहालयों में जिनमें राजधानी की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट भी सम्मिलित है, इनके चित्रों को स्थान मिला है।

•

जी० एम० हज़ार्निस

ये प्रभाववादी कलाकार हैं। इनकी शैली में स्पष्टता या साफ़गोई नहीं है, वरन् सिसले और पिस्सारो की पद्धति पर इन्होंने लैण्डस्केप प्रस्तुत किये हैं
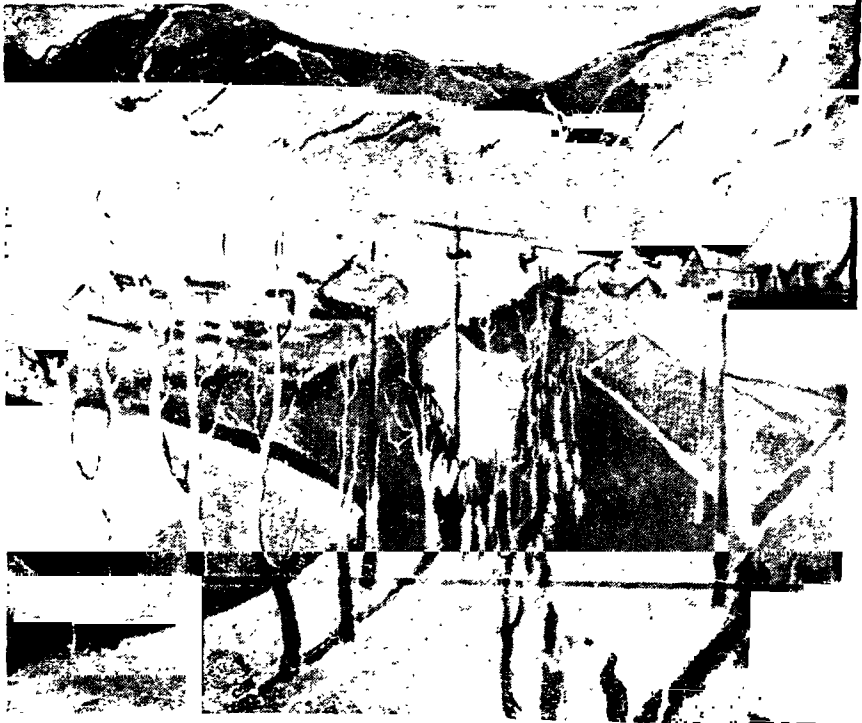
हिमपात •

जिनमें ये अपनी भावभिव्यंजना के आग्रह और निजी दृष्टिकोणों की संकीर्णता से मुक्त होकर प्राकृतिक सौन्दर्य से अभेद अर्थात् कहें कि उसमें तादात्म्य स्थापित नहीं कर सके हैं। प्रकृति-दर्शन और प्राकृतिक उपादानों में सौन्दर्य का अन्वेषण इनकी स्थायी वृत्ति नहीं है। इनके रंग छितराये और बिखरे से

लगते है जो एकनिष्ठ प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम हैं, यहाँ तक कि कभी कभी अपने पूर्वापर दृश्य-प्रकरणों में ये असंगत भी हो उठते हैं।

इस प्रकार के दृश्यांकन जो न तो तत्त्वत: भारतीय ही हैं और न पाश्चात्य अपेक्षाओं को पूरा करते हैं, उथलेपन के परिचायक हैं। दृश्य-चित्रों के एकांगी प्रतिभानों के सहारे कोई भी कलाकृति देर तक नहीं टिक सकती, फिर भी इन की कतिपय कलाकृतियों ने नेत्ररंजक दृश्य प्रस्तुत किये हैं। नैनीताल में बर्फ से आवृत्त वृक्ष, बम्बई का फ्लोरा फांउंटेन, बनारस का पुराना बाज़ार तथा हिमपात के दृश्यों में इनकी सहज रुचि के दर्शन होते हैं। रूपाकार के निर्माण में कहीं-कहीं असंगति और बिलगाव होने के बावजूद भी रेखांकन और रंग-नियोजन में सशक्तता बरती गई है।

ये समय-समय पर आयोजित कला- प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं और इनकी महत्त्वपूर्ण कलाकृतियों पर सम्मान और पुरस्कार प्रदान किये गए हैं।

एस० वी० वाघुलकर

नग्न चित्र

वाघुलकर ने प्रारम्भ में मुग़ल और राजपूत कला से प्रभावित होकर सज्जा और अलंकरण पद्धति अपना कर चित्रसृष्टि की, किन्तु बाद में स्थूल वाह्याकारों और नग्न चित्रों (nudes) में उनकी अधिकाधिक प्रवृत्ति रमती गई। इनके ऐसे चित्रों में कल्पना की आत्यन्तिकता या सूक्ष्म गम्यता नहीं, यही कारण है कि वे उतने आकर्षक और स्थायी प्रभाव उत्पन्न करने वाले नहीं होते। अपनी मूलभूत अनुभूति के दुराग्रह और अनुकरण वृत्त के कारण

सौन्दर्य के सूक्ष्म बोध से अनभिज्ञता का परिचय तो मिलता हैं,साथ ही वाह्यतः आरोपित सौन्दर्य के ऐसे पैमाने व्यवहारानुमोदित भी नहीं हैं। अनेक चित्रों में उनके विषय सहज ग्राह्य नहीं हैं और यही वजह है कि विश्लेषणात्मक व्याप्त कल्पना की गहरी पैठ भी उनमें उतनी जागरूक नही है। उनके ऐसे चित्र महज़ वाह्याकारों की स्थूलता एवं निर्मिति तक ही सीमित रह जाते हैं।

मुग़ल और राजपूत कला से जो शुरू में इन्हें प्रेरणा मिली थी उसमें भी निर्माण की चारुता या वैसा समेटने वाला उदात्त भाव नहीं हैं, फिर भी इन के कतिपय चित्रों में जैसे 'मारवाड़ी औरतें,' 'किसान,' 'फल बाज़ार' आदि में सामान्य जीवन की अत्यन्त सजीव झाँकी मिलती है। नग्न चित्र अश्लील या लज्जा का उद्रेक करने वाले नहीं हैं, उनका अपना निजी वैशिष्ट्य है जो कला में नये प्रयोग और सर्वथा नये ढंग को लेकर आँके गए हैं। इनके अनेक परवर्त्ती चित्रों में परिष्कृति और मौलिकता द्रष्टव्य है।

•

•

मोहन बी. सामन्त

पालकी में प्रेमी

व्यावसायिक कलाकार के रूप में अनेक वर्षों से ये कला-साधना में प्रवृत्त हैं। सन् १९५८ में इटालियन गवर्नमेंट द्वारा इन्हें रोम की कला प्रणालियों के विशेष अध्ययन के लिए स्कालरशिप प्रदान किया गया और सन् १९५९ में यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका में स्टडी टूर पर इन्होंने प्रस्थान किया। यूरोपीय प्रवृत्तियों को आत्मस्थ कर इनमें क्रमशः स्वस्थ सृजन-प्रक्रिया और कलातत्त्वों का निखरा रूप सामने आया। इनकी अनुभूतिजन्य विदग्धता, परिपक्व शैली और निजी सुरुचि की छाप इनके चित्रों में द्रष्टव्य है। विषय की प्रतिपादन शैली और रंग-चयन में भी नई मौलिक संभावनाओं को उजागर किया गया है।

नेशनल एग्जीबिशन आफ आर्ट में इनके एक चित्र को 'एकेडेमी अवार्ड' प्राप्त हुआ। बाम्बे आर्ट सोसाइटी और कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, सन् १९५६ में नई दिल्ली की आठ कलाकारों की प्रदर्शनी और सन् १९५९ में बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में इनके चित्रों को ससम्मान सम्मिलित किया गया। उसी वर्ष न्यूयार्क की ग्राहम गैलरी में आयोजित समसामयिक चित्रकला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और भारत के अनेक प्रमुख नगरों की कला-प्रदर्शनियों में इनके महत्त्वपूर्ण चित्रों को पुरस्कार और पदक प्राप्त हुए। बम्बई के 'आर्टिस्ट ग्रुप' के ये सदस्य हैं। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और कितने ही निजी और सार्वजनिक कला-संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

एस. वी. गायतोंदे

गायतोंदे लगभग १५-२० वर्षो से व्यावसायिक कलाकार के बतौर बम्बई में चित्र-साधना कर रहे हैं। अपनी भाव व्यंजना और माध्यम—दोनों की दृष्टि से उन्होंने अपनी कला में बिशिष्ट धारणाओं का समावेश किया हैं। रूढ़ि से विद्रोह, यथार्थ दर्शन, स्वतन्त्र मनोवृत्ति, नवीन की स्पृहा और प्रगतिशील आधुनिक संस्कारों को लेकर इनकी कला-प्रवृत्तियाँ विकसित हुई है। फ्रांसीसी कलाकार पिकासो और मातीस का प्रभाव इनके कृतित्व पर पड़ा है। इनके चित्रों का सबल रेखांकन अनेक बाहरी प्रभावों को लेकर सिरजा गया,

नृत्यकार

यही कारण है कि इनमें यदाकदा आकारों का वैचित्र्य और अजीबोगरीब रूप सृष्टि दीख पड़ती है। रेखांकनों पर मुख्यतः आधारित इनके चित्रों में सांकेतिकता का अतिशय्य है, पर वे आकर्षक लगते हैं, मन को छूते हैं और उनमें कल्पना की रंगीनी है। गायतोंडे ने अपनी चित्रसृष्टि से दर्शकों को अभिभूत किया है और अत्याधुनिक होते हुए भी उनकी कृतियाँ प्रभावकारी सिद्ध हुई हैं।

कुछ समय तक सर जे.जे. स्कूल आफ आर्ट में ये कार्य करते रहे, पर बाद में ये स्वतन्त्र रूप से कला के विकास में दीक्षित हुए। यूरोप की कला प्रदर्शनियों में इनके चित्र बहुप्रशंसित हुए और इन्होंने अनेक मौकों पर लंदन, न्यूयार्क और टोकियो आदि देशों से पुरस्कार प्राप्त किये। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, एकेडमी आफ फाइन आर्ट्स और राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा ईस्टर्न यूरोप की भारतीय कला-प्रदर्शनी और आठ कलाकारों की सुप्रसिद्ध कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। प्रगतिशील कलाग्रुप के भी ये काफी अर्से तक सदस्य रहे, पर बाद में ऐकान्तिक साधना और अत्यधिक व्यस्तता के कारण उससे सम्बन्ध तोड़ लिया। इसमें संन्देह नहीं कि गायतोंदे प्रगतिशील हैं। इनकी सूझ-बूझ और पकड़ सर्वथा निराली और नई है, पर कोई भी समर्थ कलाकार वर्ग की परिधि में बन्दी नहीं रह सकता। अतएव उनकी सौन्दर्य की कसौटियाँ महज़ जूठन नहीं वरन् अपना मौलिक वैशिष्ट्य लिये हैं।

मुलगाँवकर

आज जब कि नूतन की चाह और विदेशी तत्वों के अनुकरण में आधुनिक कलाकार अत्यधिक व्यस्त हो गए हैं और भारतीय परम्पराओं को आत्मसात् करने की भावना नगण्य हो गई है मुलगाँवकर अपनी सृजन-सामर्थ्य को दिव्य और भगवद् सत्ता में प्रतिफलित करने की चेष्टा कर रहे हैं। इन्होंने नई पद्धति, नई शैलियों का आविष्कार कर बड़े ही पावन, रंगीन और भावपूर्ण चित्र आँके हैं। प्रारम्भ में राजा रवि वर्मा ने अनेक धार्मिक चित्रों को अपने ढंग से प्रस्तुत किया था, पर उनके चित्रण में लाक्षणिक पद्धति हावी थी, किन्तु इस तरुण शिल्पी ने भगवद् चेतना में झाँका है। शिल्प और अनुभूति, परम्परा और प्रयोग, कल्पना और यथार्थ, लोकमानस और व्यक्ति चेतना, ऐहिक और पारलौकिक में सामंजस्य खोजते हुए इस कलाशिल्पी ने अनेक धार्मिक मनोवृत्ति के लोगों की आत्मा को तुष्ट किया है।

राधा-कृष्ण
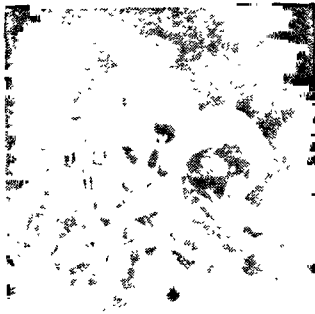
राम-सीता, राधा-कृष्ण, शिव-पार्वती आदि के अनेक छवि-अंकनों के अलावा इन्होंने पौराणिक आख्यानों पर कितने ही चित्र बनाये हैं जिन्हें सैकड़ों प्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में स्थान मिला है। ये इतने लोकप्रिय हैं कि औद्योगिक कम्पनियों, व्यापारियों, पुस्तक प्रकाशकों और चल-चित्र निर्माताओं, साथ ही सम्पादक व पत्रकारों में उनके चित्रों की होड़ सी लगी रहती है जिनकी माँग को वे अपनी लगन और अध्यवसाय से पूरा करते हैं। 'पैराडाइज़ लास्ट' और कोंकणपट्टी के माडल बनाने पर उन्हें पुरस्कार प्रदान किये गए। इन्होंने सामान्य विषयों को लेकर भी चित्र बनाये हैं जो जनता में बहुत लोकप्रिय हुए हैं। इनकी कला में श्रेय तो है ही प्रेय का भी समन्वय है जो मन के गह्वरों में गहरा उतरता है।

यशवन्त डी. देवलालीकर

ये सुप्रसिद्ध कलाचार्य दत्तात्रेय दामोदर देवलालीकर के सुपुत्र है। बचपन से ही कलामय वातावरण में इनका पालन-पोषण हुआ। पिता की कलाभिरुचियों के संस्कार इनकी लोकरंजक शैली में आविर्भूत हुए। इनकी कला पर पाश्चात्य कलाधारा का भी प्रभाव है, किन्तु उसे इन्होंने अपनी निजी मौलिक पद्धति से विकसित किया है। ये व्यावसायिक कलाकार के रूप में कार्य करते रहे। यूरोप और जापान में आयोजित कला-प्रदर्शनियों मे इन्होंने भारत की ओर से प्रतिनिधित्व किया। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और नेशनल

बाजार की ओर

एग्जीबिशन आफ आर्ट मे इनके चित्रों को सम्मान और समय-समय पर अनेक पुरस्कार प्रदान किये गए।

इनके आकृति चित्रण में निजी वैशिष्ट्य है और वे मन को आकृष्ट करती

हैं। सबल रेखांकन और रंग-नियोजन से चरित्र के सूक्ष्म पहलुओं पर प्रकाश पड़ता है। देवलालीकर दिन-ब-दिन प्रयोगों में व्यस्त रहकर कला विकास में अग्रसर हैं।

बम्बई के आल इंडिया हैंडलूम बोर्ड के डिजाइन सेंटर में अर्से तक काम करने के पश्चात् ये आजकल दिल्ली के हैंडलूम हाउस में कार्य कर रहे हैं। बम्बई की आर्ट सोसाइटी और आर्टिस्ट एड सेन्टर के ये सदस्य हैं और वैयक्तिक और सार्वजनिक कला-संग्रहालयों में इनके चित्रों को स्थान मिला है।

अपने पिता के आदर्शवादी तत्वों से सर्वथा भिन्न इनकी कला में नूतन और पुरातन का अद्भुत समन्वय द्रष्टव्य है। इनकी संवेदना और कलाकारिता युग-सत्य के आयामों में पैठकर निजी कला-प्रणालियों को विकसित करने में सचेष्ट है। प्रत्यक्ष एवं इन्द्रियगोचर तथ्यों के आधार पर अनुभूति और कल्पना के सहारे कलाकार जिस दुनिया का निर्माण करता है, उसकी सृजन-प्रक्रिया में उसका अपना भावजगत् ही अधिक क्रियाशील रहता है। इस दृष्टि से इनकी अपनी स्वच्छन्द सृष्टि है जिसमें इनकी प्रतिभा के दर्शन होते हैं।

एस० एन० गोरक्षकर

गोरक्षक ने व्यावसायिक कलाकार ने रूप में कार्य प्रारम्भ किया था, किन्तु विभिन्न कला-प्रवृत्तियों को कैसे विकसित और समृद्ध किया जाय इसके प्रति सदैव जागरूक रहे। लैंण्डस्केप, पोर्ट्रेट-पेंटिंग, तेल और जलरंगों में इन्होंने अनुसन्धानात्मक प्रयोग किए। फिर व्यंग-चित्रण की ओर इन का ध्यान आकृष्ट हुआ और इसी को इन्होंने मुख्यतः अपना लिया। टाइम्स आफ इण्डिया के साप्ताहिक अंग्रेजी पत्र 'इलस्ट्रेटेड वीकली' और टाटा पब्लिसिटी कार्पोरेशन के प्रमुख पत्र 'अनलुकर' के मुख्य पृष्ठों पर इनके व्यंग-चित्र छपते रहे जिसके कारण ये भारत और अन्य देशो में भी प्रसिद्ध हो गए। प्रो० लैथमर के सामयिक सुझावो ने व्यंग-व्यंजक चित्रों में एक विशिष्ठ पद्धति अख्तियार करने की इन्हें प्रेरणा दी। जीवन की ऊबभरी दमघोंटू व्यवस्था में हास्य की ताज़गी और उत्फुल्लता मस्त कर देने वाली होती है। इनके कतिपय चित्रों में बरबस गुदगुदा देने वाली चूटीला व्यंग फूट पड़ता है, जिसमें सूक्ष्म, पर यथार्थं भंगिमाएँ मन को मुग्ध कर लेती हैं। ऐसे-ऐसे विषय और दृश्यांकनों को इन्होंने प्रस्तुत किया है जो हृदय की संवेदन शीलता जगाते हैं और फौरन ही परिस्थितियों का आकबन करते हुए उसकी पूरी

गोपिका माधव

तस्वीरं हृदय पर अंकित कर देते हैं। दुनिया के अच्छे-बुरे व्यवहार की ज्याद-तियों से जब इनका मन बार-बार विद्रोह कर उठता है तो धारणाओं को आमूलचूल बदलने के लिए ये ऐसे-ऐसे प्रसंगों को चुनकर सामने रखते हैं, जो सीधे मर्म पर चोट करते हैं या चुपके से उसका अक्स दिल पर उतार देते हैं। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए इनके चित्रण के तौर-तरीके बहुत ही सरल और अकृत्रिम होते हैं। आज जब कि कला में नित-नई क्रांति के बीज रोपे जा रहे हैं, गोरक्षकर कला को वादों के दलदल में फँसने देने के हामी नहीं है। अर्वाचीन कला के विभेदों और विसंगतियों पर दृष्टिपात कर वे उसके विप्लवी या विरूप स्रोतों से असन्तुष्ट हैं, क्योंकि उनकी सम्मति में रूढ़ि, परम्परा और श्रद्धा के स्थान पर ऐसी कला अनास्था जगाती है और कला-रुचि की सापेक्षता को झकझोर देती है। कलाकार महज़ वहिर्सत्य पर निर्भर नहीं रहता, उसकी विश्लेषक अंतर्दृष्टि सूक्ष्म-कल्पना में पैठती है, कुरुचि या असमानताएँ नहीं खोजती। आज की कला कल्पना की उन्मुक्ति अथवा स्वच्छन्दतावाद के नाम पर ह्रासोन्मुखी भावनाओं की ओर अनुधावित हो रही है। गोरक्षकर इस तरह की प्रवृत्तियों को हेय और कला की प्रगति में बाधक मानते हैं। कला प्रत्येक साधारण से साधारण व्यक्ति की दृष्टि में किसी भी सुन्दर वस्तु की द्योतक है, अतएव चाहे कोई भी शैली, टेकनीक या रंगों का प्रयोग किया गया हो अथवा वह दृश्य वस्तु की सच्ची या कल्पित अनुकृति क्यों न हो उसे हर सूरत में सुन्दर और कवित्वपूर्ण तो होना ही चाहिए।

एकांत साथी

इसके अतिरिक्त कलाकार को कोरा नकलची नहीं होना चाहिए। आज कल प्रायः ऐसा होता है कि कुछ देशी-विदेशी चित्रों से प्रेरणा लेकर या उन्हें

सामने रखकर वैसी ही नकल या अनुकरण की चेष्टा की जाती है। इसमें कलाकारों की मौलिक सृजन प्रतिभा विकसित नहीं हो पाती और इस तरह वे एक ऐसी व्यावसायिक बुद्धि का अभ्यास जगा लेते हैं जो उन्हें महज़ मशीन या यान्त्रिक बनाकर प्रतिरूप एवं अनुकृति में दक्ष तो बना देती है, पर उसमें जीवन-प्रेरक तत्त्वों का नितांत अभाव होता है। व्यंग-चित्रण के सम्बन्ध में जैसी कि प्रायः आम लोगों की धारणा है विदेशी तत्त्वों को ही उसकी मूल प्रेरणा माना जाता है, पर भारत के प्राचीन चित्रण और मूर्त्ति-कला में ऐसे अनेक उदाहरण मिलते है जिनमें हास्य-व्यंग की पुट और दिल को बरबस गुदगुदा देने वाली मनोरंजक झलकियाँ हैं। विचित्र मुखमुद्रा, भौंडी आकृति, विकृत चेष्टाएँ और हास्यास्पद डीलडौल—जैसे पेटू या जरूरत से ज्यादा मोटे, भद्दे, कुरूप व्यक्ति या बौने, सर्वांग सुन्दरी नारी-प्रतिमा के मुकाबले स्थूल नितम्ब या ऊबड़खाबड़ अंगोंवाली नारी मूर्त्तियाँ—इस प्रकार हमारी सनातन संस्कृति में व्यंग-चित्रण-कला प्रारम्भ मे ही विद्यमान थी और आधुनिक चित्रों के निर्माण के लिए—इनके मत में—पाश्चात्य प्रणालियों का ही मुँह नहीं ताकना चाहिए। गोरक्षकर के

हवा के झपेटे में

व्यंग चित्रों में प्रायः भारतीय पद्धति अपनाई गई है अर्थात् उनके चित्रण की समूची रूपरेखा और प्रस्तुतीकरण अपनी नितांत मौलिकता लिये होता है। फलतः राजनीतिक दाँवपेंच और कूटनीतिक हथकंडों को तर्कपूर्ण अतिशयोक्ति का जामा पहनाकर प्रस्तुत करने में ही इन्होंने समूची शक्ति नहीं लगाई, अपितु सामान्य प्रसंगों, नित-नई दुरवस्थाओं और सीधे-सादे सत्यों का मार्मिक और हृदयग्राही चित्रण करने की व्यंजक शैली को ही विकसित करने में अधिक दिलचस्पी ली।

निश्चय ही इस अर्थ में इन्होंने अपने प्रतीकों को नई व्यवस्था दी कि उन की मूल्य और मान्यता सामयिक या राजनीतिक प्रतिक्रिया से प्रभावित नहीं

बल्कि अपनी रचनात्मक क्रियाशीलता द्वारा भावना की विशुद्धता ला सके हैं। अतएव उनके अब तक के व्यंग चित्र चुनौती के रूप में नहीं सिरजे गए, इसके विपरीत व्यंगात्मक कलाशैली को विकसित करने की दशा में उन्हें सर्वथा नए प्रयोग समझना चाहिए। ज़िन्दगी के हर कदम और मोड़ पर प्रश्नचिह्न खड़े मिलते हैं, साथ ही इन प्रश्नों को उलझाने वाली एक के बाद एक गाँठ मिलती है। इन गाँठों की उलझन को सुलझाते-सुलझाते आगे बढ़ना ही सबसे बड़ी विशेषता है। जैसा कि प्रायः विदेशी कार्टूनों और व्यंग चित्रों में देखा जाता है इनके चित्रों में दुरूहता या व्यंजित आशय को समझना कठिन नहीं है। ऐसी सरलता और स्पष्टीकरण है जो तत्काल दर्शक के मन को अभिभूत कर लेता है। बाहरी देशों का भ्रमण करने से ये इस निष्कर्ष पर पहुँचे हैं कि आधुनिक पाश्चात्य कला में ऐसे अनेक तत्त्व यदाकदा प्राच्य कला से आ टकराते है कि जिससे प्रतीत होता हैं कि दरअसल देशी-विदेशी और प्राचीन-अर्वाचीन कला के मूल प्रेरक सिद्धांतों में परस्पर बहुत अधिक समानता है। पश्चात्य कला के सम्पर्क से नये तत्त्व ग्रहण कर इन्होंने अनेक बार निजी कला में अनूठे मोड़ उत्पन्न किये हैं।

गोरक्षकर ने कला का नियमित या स्कूली अध्ययन नहीं किया, पर उनके व्यक्तिगत अनुभव, मौलिक चिन्तन और आदर्शवाद, साथ ही सौन्दर्यवाद के सिद्धान्त ही कला के उपादान बने। बचपन में स्वर्गीय रायबहादुर एम. वी. धुरन्धर और हाजी अहमद शिवजी से इन्हें कला की दिशा में प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन मिला, किन्तु बाद में इनके स्वप्न, इनकी आकांक्षाएँ और प्रातिभ ज्ञान यानी प्रत्यक्षानुभूति ही इनकी कला-जागरूकता और मान्यताओं का मूलाधार बनती गई। बम्बई में इनका अपना स्वतन्त्र स्टूडिओ है और कितने ही उत्कृष्ट चित्रों पर इन्हें सरकारी और ग़ैर सरकारी पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

•

मधुकर सेठ

प्रगतिशील विचारों के तरुण कलाकार हैं। वुडकट, लाइनोकट, जलरंग, तैलरंग और ग्राफिक कला—सभी में ये नये प्रयोग कर रहे हैं। दृश्य चित्रण में इनकी गहरी पैठ है और प्रकृति के सौन्दर्य अवलोकन में बड़ी ही सूक्ष्म पकड़ है। बादल, कुहरा, नीला स्वच्छ आकाश और उत्तुंग वृक्षावली से सुशोभित वन प्रान्तर अथवा वृक्षों से छितराये पहाड़ी स्थल और हल्की-हल्की धुंध से सघन बर्फीली श्वेतिमा इनकी रेखाओं से सजीव हो उठी है। केवल पशु-पक्षियों और पेड़ों को ही इन्होंने अनेक कोणों और भावभंगियों से चित्रित किया हैं। मामूली से मामूली खुदरे कागज़ हर इन्होंने सफ़ेद चाक से निर्मित पृष्ठभूमि पर कोयले से आकृतियाँ खींची हैं। चिकनी चुपड़ी, शिष्ट नागरिक कला की अपेक्षा सीधी, सच्ची, अकृत्रिम ग्राम्य कला को ये अधिक महत्त्व देते हैं।

इनका विश्वास है कि कला जीवन में ढालने की चीज़ है, अतः नगर के हुल्लड़ में नहीं गाँवों की शांत क्रोड़ में कला स्कूल खोले जाने चाहिए जहाँ कला-साधक खुले जीवन की झाँकी और प्राकृतिक उपादानों को अधिक निकट पा सकें। ये कला के भौंडेपन या आज की वादग्रस्त कलाशैलियों के भी विरुद्ध हैं। क्या भला आड़ी-तिरछी, टेढ़ी-मेढ़ी, गोल-तिकोन, शिथिल-त्वरित, अजीबोग़रीब रेखाओं में कला के 'सत्य-शिवं सुन्दरम्' को आँका जा सकता है। वर्तमान युग में कला के मानदण्ड बदल गए हैं, किन्तु इसके ये मानी नहीं कि महज़ विरूप एवं कुत्सित आकृतियों तक ही कला सिमट कर रह जाय। यदि चित्रण में प्रदर्शित लयात्मक व्यंजना के साथ दर्शक का अन्तर उद्वेलित न हो सके तो वह सत्य के निकट नहीं है। मधुकर सेठ कला को नवीन भंगिमाओं से प्रस्तुत करके उसे अधिक व्यंजक और प्रभावशाली बनाने के लिए सचेष्ट है।

*　　*　　*　　*

इस प्रकार बम्बई की मौजूदा कलाधारा ने विभिन्न प्रवृत्तियों को जन्म दिया जिसमें अधिकाधिक विकास के चिह्न दृष्टिगत होते हैं। कलाकारों की उद्बुद्ध सौन्दर्य भावना और जागरूक बौद्धिक चेतना ने कितने ही परस्पर बिरोधी छोरों को छुआ है है जिसमें कहीं निर्वैयक्तिक, तो कहीं

वस्तुगत, कहीं प्रभाववादी तो कहीं अमूर्त्त, कहीं नित-नये रूपों को समीकृत करने की चेष्टा, तो कहीं पाश्चात्त्य कलाधारा एवं मान्यताओं की मरुमरीचिका में फंस कर सायास अस्पष्टता और भावोन्मूलक वैचित्र्य और उलझाव नजर आता है। आज की कलावादिता के पीछे उदात्त सृजन की अवहेलना हुई है और कितनी ही बार गंभीर संभावनाओं से हटकर कलात्मक संयम को नजरन्दाज़ किया गया है।

फिर भी बम्बई की कला का स्तर सामान्य से ऊपर है और वहाँ के बुजुर्ग और नई पीढ़ी के कलाकारों ने न केवल अदृश्य और अगम्य का उद्घाटन किया है, अपितु मूल एवं केन्द्रीय वस्तु को भी पकड़ा है। पाश्चात्य विचारधारा से प्रभावित होकर अनेक कलाकार कलासृजन कर रहे हैं, किन्तु वे उसे अपनी परिवृत्ति में से ही ग्रहण करते हैं। इसके विपरीत कुछ ऐसे भी हैं जो नये विश्वास और नई आस्था रखते हुए भी कला की परम्परा से टूटकर अलग नहीं हो सकते। फलतः ऐसे अनेक उत्साही कलाकार वादमुक्त होकर कला साधना में जुटे हैं।

एम. आर. अछरेरकर

लगभग तीस वर्षों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर पोर्ट्रेट पेंटिंग, सज्जाकार और सिने डायरेक्टर के रूप में कार्य कर रहे हैं। लंदन के रायल कालेज आफ आर्ट्स में इन्होंने उच्च शिक्षा प्राप्त कर आर्ट डायरेक्टर के रूप में अमेरिका व रूस आदि देशों का भ्रमण किया। सन् १९३५ में जार्ज पंचम की रजत जयंती समारोह के अवसर पर अलंकरण और सज्जा के लिए इन्हें लंन्दन भेजा गया। इन्होंने अनेक देश-विदेश की कला प्रदर्शनियों में भाग लिया और फिल्मों की सज्जा के सिलसिले में इन्होंने बाहरी देशों का दौरा किया। बम्बई की सुप्रसिद्ध संस्था अछरेरकर एकडेमी आफ आर्ट के ये प्रिंसिपल हैं। इन्होंने 'रूपदर्शिनी', 'शांतिदूत' आदि अनेक महत्त्वपूर्ण पुस्तकें लिखी हैं और ये बम्बई की आर्ट सोसाइटी, नेशनल एग्जी-बिशन आफ आर्ट की निर्वाचन और निर्णायिक समिति के आजीवन सदस्य हैं।

विष्णु नामदेव आदरकर

मुख्यतः ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। इन्होंने लंदन में विशेष रूप से इस कला का अध्ययन किया। सन् १९४६ में भारतीय प्रतिनिधि मंडल के साथ ये लंदन गए और

वहाँ की सुप्रसिद्ध संस्था सेंट्रल इंस्टिट्यूट आफ आर्ट एंड डिजाइन के आनरेरी आजीवन सदस्य चुने गए। सर जे.जे.स्कूल आफ आर्ट मे भी ये लगभग आठ वर्ष तक काम करते रहे। आजकल जे.जे.इंस्टीट्यूट, बम्बई में ये प्रोफेसर और आर्ट डायरेक्टर है।

नगरकर

बम्बई के तरुण कलाकार हैं जो नई पद्धति मे बड़ी ही सुरुचि पूर्ण शैली में कला का विकास कर रहे है। उन्होंने देशी-विदेशी कला प्रदर्शिनियों में भाग लिया है और अनेक मौकों पर उन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया गया है।

लक्ष्मण राजाराम अजगाँवकर

मूर्त्तिकला, पात्रकला और अन्दरूनी अलंकरण मे दक्ष है और लगभग सन् १९५१ से कला की साधना कर रहे है। भारतीय मूर्त्तिकार एसोसिएशन और बम्बई सरकार द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनियों में इन्हें कई बार स्वर्ण-पदक और पुरस्कार प्राप्त हुए है।

बिहारी बड़ भैय्या

इन्होंने विश्वभारती, शांतिनिकेतन मे डिप्लोमा प्राप्त किया। जापानी और चीनी टेकनीक पर भित्ति-चित्रण और टेम्परा पद्धति पर चित्र-निर्माण कला में ये दक्ष है। नई दिल्ली स्थित बिड़ला भवन में महात्मा गाँधी के जीवन के दिग्दर्शक एक विशाल भित्तिचित्र के निर्माण में इन्होंने योगदान दिया था। सन् १९५९ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कृत किया गया। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, शांतिनिकेतन कला-प्रदर्शनी और मास्को की युवक समारोह प्रदर्शनी में इन्होने भाग लिया। आजकल ये बडोदा विश्वविद्यालय के आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स फैकल्टी आफ होम साइंस में लेक्चरार है।

आर. ए. बोरकर

पोर्ट्रेट पेंटिग और पुस्तक सज्जा में विशेषता रखते है। सन् १९४३ से बम्बई की इंडियन आर्ट इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर हैं। इन्होने गिरजाघरों और छविगृहों में व्यावसायिक कलाकार के रूप मे भित्तिचित्रों का निर्माण किया हैं। ये बाम्बे आर्ट सोसाइटी के सदस्य और आर्ट इंस्टीट्यूट फेडरेशन के आन-

रेरी सेक्रेटरी हैं।

के. ए. चेट्टी

बम्बई के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार हैं और जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के मूर्त्ति-कला और माडल के विभागाध्यक्ष हैं। प्राचीन भारतीय मूर्त्तिकला खासकर मैसूर राज्य और दूसरे दक्षिण प्रान्तों का इन्होंने खूब दौरा किया, मूर्त्तिकला की बारीकियों को हृदयंगम किया और वास्तुशिल्प सज्जा में भी विशेषता हासिल की। सन् १९३१ में बम्बई आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित कला-प्रदर्शनी में इन्हें कांस्य पदक प्रदान किया गया। ये भारतीय मूर्त्तिकार एसोसिएशन के सदस्य हैं और इन्होंने समय-समय पर अनेक कला-आयोजनों और प्रदर्शनियों में भाग लिया है।

दीनानाथ दामोदर दलाल

लगभग बीस वर्षों से ग्राफिक कला में साधना कर रहे हैं। इन्होंने स्टडी-टूर पर समूचे भारत का दौरा किया है। विदेशी कला-प्रदर्शनियों में इनकी महत्त्वपूर्ण कृतियों पर पुरस्कार राशियाँ और रजत एवं स्वर्णपदक प्रदान किये गए हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के ये आजीवन सदस्य हैं और उक्त संस्थाओं की ओर से आयोजित सभी देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। सन् १९४५ से 'दीपावली' नामक कला और संस्कृति पोषक इस पत्र का प्रकाशन कर रहे हैं।

एस. फर्नेंडिज़

मूर्त्तिकार और चित्रकार के रूप में सन् १९१६ से कला-साधना कर रहे हैं। इन्होंने अनेक प्रमुख व्यक्तियों के पोर्ट्रेट और प्रतिमाएँ निर्मित की। बम्बई के सरकारी सचिवालय में भित्तिचित्रण सज्जा बड़ी ही उत्कृष्ट बन पड़ी है। वेम्बले आर्ट एग्ज़ीबिशन, बाम्बे आर्ट सोसाइटी और समय-समय पर देश में आयोजित कला-प्रदर्शनियों में इनकी अनेक महत्त्वपूर्ण कृतियों पर पुरस्कार प्रदान किये गए। सन् १९३० में दिल्ली में आयोजित पोर्ट्रेट पेंटिंग की अखिल भारतवर्षीय प्रतियोगिता में इन्होंने वायसराय का विशिष्ट पुरस्कार प्राप्त किया। बाम्बे आर्ट सोसाइटी और आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया के ये आजी-वन सदस्य हैं।

बसन्त बाबूराव परब

मुख्यतः ग्राफिक आर्टिस्ट हैं, छविचित्रों और भित्तिचित्र-सज्जा में भी विशेष रुचि रखते हैं। स्विट्ज़रलैण्ड, टोकियो (जापान) और एशिया की युवक कला प्रदर्शनी में इन्होंने भारत की ओर से कला का प्रतिनिधित्व किया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया, उज्जैन की कालिदास आर्ट एग्ज़ीबिशन, बम्बई, पूना, हैदराबाद आदि की प्रमुख कला प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया और वहाँ इन्हें सम्मानित और पुरस्कृत किया गया। अनेक नेताओं के पोर्ट्रेट इन्होंने बनाये और अनेक सरकारी, ग़ैरसरकारी इमारतों को इन्होने स्वनिर्मित विशाल भित्ति-चित्रों से सुसज्जित किया।

एम. के. पारन्देकर

बुजुर्ग पीढ़ी के कलाकार हैं और लगभग ६० वर्षों से कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। अंग्रेजों के शासन काल में इन्हें ख़ास तौर से वायसराय लार्ड विलिंगडन का निजी कलाकार नियुक्त किया गया। इन्होंने लंदन की वेम्बले कला-प्रदर्शनी में भारत का प्रतिनिधित्व किया। अनेक निजी एवं सार्वजनिक कला-संग्रहालयों में इनके चित्रों को समम्मान स्थान दिया गया है।

कांतिलाल राठौर

यद्यपि इन्होंने कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में शिक्षा पाई, किन्तु अब ये बम्बई में बस गए हैं। न्यूयार्क, शिकागो, फिलाडेल्फिया तथा अन्य अनेक यूरोपीय देशों की कला प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को सम्मान मिला है। अनेक पदक और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। ये व्यंगचित्रकार है और अनेक चलचित्रों के अंतरंग अलंकरण और सज्जा को इन्होंने सम्पन्न किया है।

जनार्दन दत्तात्रय गोंढलेकर

स्लेड स्कूल आफ आर्ट, लंदन से इन्होंने डिप्लोमा प्राप्त कर कला-साधना प्रारम्भ की। 'इचिंग' और चित्र अनुकृति में इन्होंने विशेष दक्षता प्राप्त की। छात्रवृत्ति पर इन्होंने यूरोप के कई देशों का दौरा किया और फेलोशिप पर

यूनेस्को गए। बम्बई के अलावा ब्रूसेल्स, लंदन, कोलम्बो, पश्चिमी जर्मनी आदि देशों में आयोजित प्रमुख कला प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। पहले ये सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट के डीन रह चुके हैं, किन्तु आजकल टाइम्स आफ इंडिया के कला-विभाग के अध्यक्ष हैं। ललित कला अकादमी की जन-रल कौंसिल के मेम्बर तो ये हैं ही, अन्य कला संस्थाओं से भी सम्बद्ध हैं।

विष्णु सीताराम गुर्जर

ये व्यावसायिक चित्रकार हैं। बम्बई आर्ट सोसाइटी की ओर से आयोजित कला प्रदर्शनी में इन्हें तीन बार गवर्नर के पुरस्कार से सम्मानित किया गया। मैसूर की दशहरा कला-प्रदर्शनी में रजत कप, पूना आर्ट सोसाइटी द्वारा प्रथम पुरस्कार, इसके अतिरिक्त अनेक प्रमुख नगरों—बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, शिमला, अमृतसर, कोदाइकैनाल, बेलगाम, कोल्हापुर, धारवाड़ में आयोजित कला प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। भारत सरकार द्वारा विक्टोरिया क्रास विजेताओं के पोर्ट्रेट बनाने का कार्य इन्हें सौंपा गया। सन् १९३१ में नई दिल्ली की इम्पीरियल सेक्रेटरिएट में भित्तिचित्रण के लिए और प्रसिद्ध राष्ट्रीय नेताओं के लाइफ-साइज़ पोर्ट्रेट-निर्माण के लिए इन्हें नियुक्त किया गया। इटली, वाशिंगटन और भारत के कतिपय निजी और सार्वजनिक कला-संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

एस. एल. हाल्दानकार

बम्बई की फाइन आर्ट इंस्टीट्यूट के डायरेक्टर हैं। इन्होंने अनेक देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है। आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया के ये संस्थापक सदस्य हैं। नई दिल्ली स्थित नेशनल गैलरी आफ आर्ट में इनके अनेक चित्रों को सम्मानित स्थान मिला है।

मुरलीधर सदाशिव जोशी

सन् १९४० से व्यवसायिक कलाकार के रूप में कार्य कर रहे है। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और देश-विदेश में विभिन्न रूपों में आयोजित कला प्रदर्श-नियों में इन्होंने भाग लिया है। कई कला संस्थाओं के ये सदस्य हैं और माडल आर्ट इंस्टीट्यूट के संस्थापक और प्रिंसिपल हैं। वाशिंगटन के भारतीय दूतावास,

नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और राज्यों के अनेक कला-संग्रहालयों में इनके चित्र उपलब्ध है। खास तौर से स्टेज और नाट्यगृह सज्जा में ये गहरी दिलचस्पी लेते है।

राम पी. कामथ

सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में कला शिक्षण समाप्त कर लंदन मे रायल एकेडेमी आफ आर्ट मे अध्ययन करने चले गए। लगभग २५ वर्षो से व्यावसायिक मूर्तिकार और चित्रकार के रूप मे कार्य कर रहे है। अनेक उत्कृष्ट मूर्तियों पर इन्हें स्वर्ण और रजत पदक व नकद पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। रूस, ईस्ट जर्मनी और भारतीय मूर्तिकार एसोसिएशन की ओर से इन्होंने भारत का समूचा दौरा किया। मूर्तिकला विधाओ और उसकी सूक्ष्म प्रणालियों पर इन्होंने काफी लिखा और कार्य किया है।

नीलकंठ महादेव केलकर

मूर्तिकार और चित्रकार के रूप में काफ़ी अर्से से कार्य कर रहे है। पोर्ट्रेट-चित्रण और लैण्डस्केप निर्माण मे विशेष दक्षता हासिल है। पुस्तक के आवरण पृष्ठ और भीतरी सज्जा मे खास रुचि रखते है। देश-विदेशो में आयोजित सैकड़ो कला-प्रदर्शनियो में इन्होंने भाग लिया है। सरकार की ओर से यूरोपीय कला-प्रदर्शनो एव आयोजनों में इनके खास-खास पोर्ट्रेट और मूर्तियाँ भेजी गई है और बम्बई, दिल्ली, शिमला, पूना तथा अन्य प्रमुख नगरो की कला-प्रदर्शनियो मे इन्हें पुरस्कार और पदक प्रदान किये गए है। कला पर इन्होंने अनेक बार लेक्चर-टूर किये। उत्कृष्ट पोर्ट्रेट और लैडस्केप पर इन्हे वायसराय का पुरस्कार प्राप्त हुआ। महाराजा बड़ौदा की ओर से तीन बार पुरस्कृत किया गया और शिमला, पूना, बड़ौदा, हैदराबाद आदि कला प्रदर्शनियो में इनकी कला-कृतियाँ बहुप्रशंसित और सम्मानित हुई। भारतीय फिल्म उद्योग के डिज़ायनर और सज्जाकार के रूप मे भी ये प्रख्यात है।

पी. मंसाराम

ग्राफिक आर्ट और मूर्तिकला मे काफ़ी अर्से से कार्य कर रहे है। १९५६ में छात्रवृत्ति पर इन्होने काफी यात्रा की। एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, नासिक आर्ट एग्ज़ीबिशन, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया, आर्टिस्ट

एड सेटर, नेशनल एग्ज़ीबिशन आफ आर्ट, बाम्बे स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन आदि संस्थाओं से इनका घनिष्ठ सम्पर्क रहा है और ये सदस्य के रूप मे समय-समय पर आयोजित कला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। आजकल ये कलकत्ता में जा बसे है।

इस प्रकार बम्बई में अनेक उत्साही कलाकारों ने भारतीय कला को समृद्ध बनाया है। एल. वी. शेनवे, रघुवीर प्रभाकर जोशी, संभाजी सोमा कदम, एस.ए. एम. काजी, रामचन्द्र विष्णु केलकर (वर्धा), के. आर. केतकर, अशोक केरकर, हरिअनन्त मदन, मनोहर बालकृष्ण म्हात्रे, रत्नाकर नादकर्णी, श्रीकान्त गोपाल नायक सलाम, वसंत लीलाधर पाटकर, गोविंद नारायण कावले, बाबूराव साड़वेलेकर, डी. ए. शेट्टी, बो. डी. श्री गाँवकर, पी. सी. ठागे, गोदबोले, निगुद्कर, नरहरि राव, यादव, येदेकर, एस. बी. अभयंकर, पी. के. मजूमदार, एन. वी. सुवन्नवर, बसंत बी. मालवडे आदि अनेक कलाकार अपनी भावनाओं और कलाकारिता को अपने ढंग से मूर्त्त कर रहे है। उनकी अपनी रुचि और कार्य पद्धति के प्रतिमानों के अपने सीमान्त हैं और अपनी पृथक् टेकनीक और सहज ग्राह्यता से वे कला की बहुमुखी और चिर विकासमान धारा को गतिशील और वेगवान बनाने के लिए कटिबद्ध है।

दिल्ली के कलाकार

रुचि, धारणा, वैविध्य और नवीनतम मूल्यों की दृष्टि से दिल्ली की कला भी कलकत्ता और बम्बई की तरह प्रयोगात्मक परीक्षणों से गुजर रही है, यद्यपि बहुत कुछ समेटने का दावा करती हुई राजधानी का गर्व और गुमान लिये है। यहाँ के मुक्त वातारवण में रोज़ व रोज़ कला-प्रदर्शनियाँ और सरकारी व ग़ैरसरकारी आयोजन होते रहते हैं जिनके माध्यम से कला की प्राचीन-अर्वाचीन प्रणालियों को समझने का मौका मिलता है।

आधुनिक कला बोध इतना बुलन्दी पर है कि उसी से समूचे विश्व परिवेश में देखने की प्रवृत्ति शुरू हुई है। कला की नई-नई विधाओं को एकीभूत करने की स्पृहा ने अनुकरण-वृत्ति को प्रश्रय दिया है। पाश्चात्य वादों ने चित्रण के तौर-तरीके बदल दिये हैं। सृजन-प्रक्रिया में अन्तर है और कलाकार में एक विचित्र प्रतीति और प्रश्नाकुलता घर कर गई है। भीतर-बाहर की कृत्रिम सीमाएँ अब कोई मानी नहीं रखतीं। अब बड़े ही मुक्त और अकुंठित भाव से कलाकार समस्त विदेशी प्रभावों को आत्मसात् करने की ख़्वाहिश रखता है। कला के विभिन्न प्रवाहों में पश्चिम की जीवित या मृत परम्पराओं का पुनर्जन्म ही आधुनिक कलाबोध है। नया कलाकार न तो बीते हुए कल के प्रति आस्थावान है और न वह आने वाले कल के प्रति आश्वस्त। वह तो वर्तमान में ही जीना चाहता है। उसकी यह क्षणभोगी प्रवृत्ति ही कला को मुख्यतः प्रेरित कर रही है। वह अपनी अभिव्यंजना का स्वयं केन्द्रबिन्दु है और नई आस्था का अन्वेषी मात्र। वह अपने यहाँ की कलात्मक उपलब्धियों से कम, बाहरी प्रभावों से अधिक आक्रान्त है।

दिल्ली के कलाकार किसी से पीछे नहीं हैं उनमें असीम 'एडवचर' की ललक है, अजानी राहों पर जोखिम उठाने का साहस। उनकी हर निगाह एक खोज है और हर खोज ऐसी भावना से प्रेरित कि जहाँ उनके द्वारा सृष्ट कला के सौन्दर्य या सन्तुलन या सिद्धान्तों की मीमांसा का प्रश्न नहीं है, वरन् उसकी ज़रूरत पर ज़ोर दिया जाता है अर्थात् अतीत के अन्धे प्रेतों से चिपके न रहकर तार्किक तथ्यों में उनका पूर्ण विश्वास है।

सचमुच, कला को किसी कटघरे में बन्दी नहीं बनाया जा सकता । यदि कलाकार की संवेदना विदेशी प्रणालियों के अधिक निकट है तो उसे आधुनिकता से संत्रस्त नहीं होना चाहिए । सभी भ्रान्तियों से मुक्त वह सत्य की खोज करे, साथ ही सृजनात्मक 'एडवेंचर' में समस्त अंर्तविरोधों और संभावनाओं समेत अपने आस-पास की हर चीज को ऐसे अंदाज से देखे-बूझे कि अपने युग का गवाह बन सके । केवल यों देखना-बूझना ही काफी नहीं है, बल्कि उसे नये सिरे से परिस्थितियों के अनुसार आगे बढ़ाना है । इस यात्रा पथ में दिशा-निर्धारण के स्थान पर दिग्भ्रम नहीं होना चाहिए । नई कला की स्थापना और प्रतिष्ठा प्रखर यथार्थ के धरातल पर उन प्रेरणाओं की सहज परिणति हो जो मौजूदा जीवन की जीवन्त प्रतीक और जटिलतम परिस्थितियों की इकाई हो । नई ग्रहणशीलता महज 'आइडिया' अथवा 'फार्म' का भौंडा रूपगठन न हो, वरन् आज के ऊहापोहों की सर्वाधिक मूर्त्त और सशक्त विधा हो ।

जैसा कि स्वाभाविक है यहाँ की नित-नई हलचलों और परिस्थितियों ने कला में नये मोड़ पैदा किये हैं । कला का दायरा विस्तृत हुआ है और कलाकारों ने खुली आँख से बहुत कुछ खोजने का प्रयास किया है । बदलती हुई सामाजिक, सांस्कृतिक, राजनीतिक और आर्थिक व्यवस्थाओं में उनकी सृजन प्रक्रियां नवीन भावभूमिय का स्पर्श कर रही है । अनेक उलझनों और कठिनाइयों के भँवर से निकल कर वे कला को आगे ठेल रहे हैं और थोथी मर्यादाओं व रूढ़ियों को तोड़कर नये से सामंजस्य स्थापित करने में जुटे हैं । उनकी कला केवल हृदय की रसमयता को उद्घाटित करनेवाली नही, बल्कि बौद्धिक तत्वों के विशेष आग्रह को लेकर उन नवीन व्यवस्थाओं की और संकेत कर रही है जो युग की सर्वाधिक माँग है ।

अतः निर्विवाद है कि यहाँ कला एक नया रास्ता खोज रही है । कला का अर्थबोध उसके लिए नया प्रकाश स्तम्भ है जिसने नई रोशनी में कलाकार की दृष्टि को अधिक पैना बना दिया है । इस प्रकाश से आलोकित यथार्थ दृष्टि नई सुन्दर कला को उजागर करने की आशा बँधाती है । भले ही हवाओं के कितने ही रुख बदलें, किन्तु यदि उसकी रसग्राही चेतना के तंतु जाग्रत हैं तो कलाधारा का अजस्र प्रवाह कभी क्षीण नहीं होगा ।

काश ! यहाँ के कलाकार विभिन्न कला-विधाओं का कोई सर्वकालिक या सार्वभौम हल खोज सकें ।

वरदा उकील

शारदा उकील के छोटे भाई वरदा उकील अपने ज्येष्ठ भ्राता की मृत्यु के बाद से दिल्ली में रहकर कला के विकास मे पूर्ण योग दे रहे हैं। इनके हृदय मे कला के प्रति जो लगाव और संस्कार उत्तराधिकार में प्राप्त हुए थे वह बड़े भाई के पदानुसरण तक ही सीमित न रहे, अपितु युग और वातावरण के अनुरूप इन्होंने अनेक नवीन मान्यताओं को प्रश्रय दिया। इन्होंने अपनी कला का प्रकृति के साथ कलात्मक सम्पर्क स्थापित किया और उसके सौन्दर्य की झाँकी लेकर रंग और रेखाओं में साकार कर दिखाया। वसन्त, ग्रीष्म, वर्षा, शरद्, हेमन्त, शिशिर इन छ: ऋतुओं के दिग्दर्शक चित्र भावसत्ता में इतने लीन होकर आँके गए है कि रंग और रेखाएं चित्र की लय एव गति मे समाविष्ट सी लगती है। वसन्त मे फूलों से लदी वृक्ष की डालियाँ जब झूम-झूम कर मस्ती से इठलाती है तो धरती भी मानो सोना उगलने लगती है। लहलहाती हरियाली कण-कण में व्याप्त होकर प्राणों को स्पन्दित करती हुई समस्त भौतिक उपादानों में मादकता भर देती है। भ्रमर पुष्पों पर गुंजारते हैं, कोयल कूकती है, हिरण चौकड़ी भरते है और प्राकृतिक सुषमा इतस्तत: छिटक कर मनोहारी क्रीड़ा रत प्रतीत होती है। प्रेम मे मत्त और प्रतीक्षा से कुम्हलाये कपोल सहसा विवर्ण होकर प्रियतम की बाट जोहते हैं। एक ओर वन उपवन की शोभा, दूसरी ओर भूमि पर बिछी हरीतिमा और प्रकृति नटी का शृंगार नव परिणीता बधू के अलसाए नेत्रों में उल्लास बिखेर देता है। काली घुघराली अलके, मद भरे नयन और कसमसाते अंग-प्रत्यंग, रूप और अवश यौवन का मद जैसे अनुकूल वातावरण मे उफना पड़ रहा हो। किन्तु वसन्त जितना सुखद और मादक है, ग्रीष्म उतना ही दारुण और असह्य बनकर आता है। आकाश भीषण तपन के शोले बरसाता है, गर्म हवा के थपेड़े चोट करते है और गर्मी के प्रचण्ड दौर चारों ओर मँडराते से प्रतीत होते है। समस्त जीव-जन्तु घबरा जाते है और प्रतीक्षा से स्वप्निल आँखे बोझिल बन जाती है। किन्तु वर्षा शुष्क धरती मे पुन: प्राण संचार करती है, आकाश मे मेघ उमड़-घुमड़ कर

भीषण गर्जना करते हैं और उनके बक्ष में कौंधती विद्युत प्रेमिका के हृदय को सहसा दोलायमान कर देती है। वर्षा को खण्डित कर जब शरद् ऋतु आती है तो श्वेत बादलों के टुकड़े नीले नभ की क्रीड़ा में तैरते से है। वे परस्पर टकराते हुए इधर-उधर दिशाओं मे बिखर जाते है और विरहिणी एकाकी नायिका का मन चंचल हो उठता है। प्रिय के लिए उसका अंतर तड़प-तड़प उठता है। हेमन्त में प्रकृति फल-फूलों से लदी अपने जादूभरे स्पर्श से किसी बिछुड़े प्यार की सुध में बेसुध सी कर जाती है। अनगढ़ वन्य विकास जितना ही आकर्षक और मन लुभावना प्रतीत होता है, उतना ही व्याकुल छटपटाता हृदय प्रिय की सन्निधि के लिए मचल-मचल उठता है। लेकिन जब शिशिर ऋतु आती है तो अंतरंग की कोमल भावनाएँ भी कुछ समय के लिए कड़े शीत मे ठिठुर सी जाती है। प्रतीची में रात के काले साये मँडराते है। जड़-चेतन का गति क्रम तिमिर और आलोक की आँख मिचौनी की भांति शीतल थपेड़ो से आन्दोलित हो उठता है, सूर्य की किरणें भी ठिठुर को भगाने में असमर्थ सी हो जाती है, पर शिशिर जाने वाले मधुमास के सुवास,

सीता की अग्नि-परीक्षा

उल्लास और वैभव का द्योतक है। वह जीवन में आशा की किरणें छिटकाता है।

वरदा उकील ने प्रकृति के सप्राण आवेष्टनों के बीच व्यापक मानवीय संवेदना को उभाड़ा है। प्रकृति की विलक्षणता में उनका चित्त रमा है। उनकी कल्पना ने सूक्ष्म रेखाओं से आकर्षक दृश्य सृष्ट किये हैं, फिर भी केवल बाहरी रूप-रंग और रेखाओं तक ही उनकी कला सीमित नहीं रही। वे कला की व्याप्ति रंग और रेखाओं से परे मानते है। रेखाएँ कला का ढाँचा तो प्रस्तुत कर सकती हैं, पर किसी ख़ास वातावरण या आकर्षक दृश्य को सृष्ट नहीं कर सकती। कलाकार की उदात्त भावना में ही कला का सबसे बड़ा सत्य छिपा है। वरदा उकील के चित्र कालिदास के ऋतुसंहार की भाँति ऋतुओं को साकार करते हुए रहस्यमय सौन्दर्य की सृष्टि करते हैं। उनकी कला पर राजपूत और पहाड़ी चित्र कला का प्रभाव है।

वरदा उकील न सिर्फ़ एक मूक कलासाधक हैं, वरन् भारत और विदेशों में भारतीय कला के संस्थापक और संयोजक रहे हैं। इन्होंने राजधानी में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की नींव डाली और ये अर्से तक इसके जनरल सेक्रेटरी, तत्पश्चात् वाइस चेयरमैन और अब चेयरमैन के पद को सुशोभित कर रहे हैं। सन् १९५३ में भारतीय कला प्रतिनिधि मंडल के नेता के रूप में ये रूस और यूरोपीय देशों में गए। अंतर्राष्ट्रीय युवक समारोह की आर्ट जूरी के सदस्य की हैसियत से इन्होंने रूस का पुन: दौरा किया और सन् १९५९ में विला ह्यूगेल में राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी के उद्घाटन के अवसर पर पश्चिम जर्मनी सरकार की ओर से मुख्य अतिथि के रूप में इन्हें आमंत्रित किया गया। शारदा उकील आफ आर्ट के डायरेक्टर तो ये हैं ही, इन्होंने समय-समय पर अपने ज्येष्ठ भ्राता श्री शारदा उकील के चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की है। भारत सरकार और संसद द्वारा सार्वजनिक सुसज्जा के लिए संस्थापित कितनी ही समितियों के ये सदस्य हैं और यूनियन पब्लिक सर्विस कमिशन की अनेक समितियों के तकनीकी विशेषज्ञ और परामर्शदाता हैं।

माँ और पुत्र

वरदा उकील राजधानी के बुजुर्ग कलाकारों में सर्वाधिक सम्मानित और उस परिवार के सदस्य हैं जहाँ कला विरासत के रूप में प्रश्रय पाती रही। उनकी साधना स्वयं प्रेरणा की उपज है, उन्होंने किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा ग्रहण नहीं की, वरन् निजी परिश्रम और एकान्त साधना द्वारा अनूठी प्रकृति के क्रीड़ा-कौतुक और मोहक रंगों को उन्होंने प्राणों में आत्मसात् कर रंग और कूची से खिलवाड़ करते हुए ऐसे चित्रों को सिरजा जो हृदय को रंगभीनी सरलता और मादक तरलता से भर देते है। रेखाओं का अनुपात और रंगों की प्रक्रिया उनके मन से उद्भूत हुई, स्वयंजात कलाकारिता में एक निश्चित् लीक पर वे आगे बढ़े और राजधानी की नवागत पीढ़ी को सदा प्रोत्साहन एवं प्रेरणा प्रदान करते रहे। दिल्ली की कतिपय कलाधाराओं को शह देने में, तरुण बालक-बालिकाओं में कलाभिरुचि जगाने में और यहाँ के कला-प्रदर्शनों और आयोजनों में उनका अथक प्रयास और प्रेरणा सराहनीय है जिसने कला को इतना आगे बढ़ाया है। आधुनिक कला के अतिचारों से दूर वे आज भी अपने मौलिक सृजन द्वारा कला में सौष्ठव और सुरुचि को उजागर करने में दत्तचित्त हैं।

रणदा उकील

शारदा उकील के दूसरे लघु बंधु रणदा उकील भी, जिन्होंने भेलुपुरा, बनारस में अपने उद्योग से 'उकील स्कूल आफ आर्ट' की स्थापना की है, कला-क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। कला के सहज संस्कारों के साथ कलकत्ता के 'गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट' में ये १९२२ से १९२४ तक भारतीय कला का गंभीर अध्ययन करते रहे। तत्पश्चात् कलागुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के तत्त्वावधान में इण्डियन सोसाइटी आफ ओरिण्टियल आर्ट और बाद में लंदन के रायल कालेज आफ आर्ट में भी कला प्रशिक्षण प्राप्त किया। कई वर्ष तक अपने बड़े भाई शारदा उकील के साथ देहली में रहकर ये कला-साधना में प्रवृत्त रहे और उनके सम्पर्क से इन्हें प्रेरणा तो मिली ही, एक विशेष दिशा में अग्रसर होने का प्रोत्साहन भी मिला। भारत की कितनी ही कला-प्रदर्शनियों में इनकी कलाकृतियों को पुरस्कृत किया गया, विशेषकर १९२७ में उत्कृष्ट चित्रसज्जा पर इन्हें 'वायसराय पुरस्कार' भी मिला जो उस समय सबसे सम्मानित पुरस्कार समझा जाता था और प्रति वर्ष शिमला की 'फाइन आर्ट सोसाइटी' की ओर से आयोजित प्रदर्शनी में सर्वोत्कृष्ट चित्र पर प्रदान किया जाता था।

देवी सरस्वती

सन् १९३० में रणदा उकील भारत की तत्कालीन अंग्रेजी सत्ता द्वारा लंदन के 'इण्डिया हाउस' की दीवारों को चित्रित करने के लिए अन्य तीन भारतीय कलाकारों के साथ लन्दन और फिर इटली में विशेष प्रशिक्षण के लिए आमंत्रित किये गए। प्रोफेसर विलियम रोथेंस्टाइन के तत्त्वावधान में पाश्चात्य कला को

इन्होंने हृदयंगम किया। इन्हें पुनः इण्डिया हाउस की भित्ति-मज्जा के लिए बुलाया गया जहाँ इन्होंने उस विशाल ऐतिहासिक इमारत के प्रमुख प्रवेश-भवन की दीवारों और गुम्बद को सजाने में सूक्ष्म बुद्धि और अद्भुत सृजन-सामर्थ्य

पराक्रम का रहस्य

का परिचय दिया। बनारस के हिन्दू विश्वविद्यालय के महिला कालेज के कला-विभाग में ये कुछ अर्से तक अध्यापन-कार्य करते रहे और यूनीवर्सिटी फाइन आर्ट्स कालेज के पेंटिंग डिपार्टमेंट के अध्यक्ष रहे। लंदन के इंडिया हाउस, ब्लूम्सबरी आर्ट गैलरी और न्यू बर्लिंगटन गैलरी में इनके चित्रों ने भारतीय कला का प्रतिनिधित्व किया और बम्बई, मैसूर, त्रावणकोर, बंगलौर और कलकत्ता में आयोजित कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को विशेष सम्मान प्राप्त हुआ। क्वीन मेरी के निजी संग्रहालय, देशी-विदेशी शासकों के संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। १९४७ में काशी में इन्होंने शहीद स्मारक स्तम्भ की

भी सुसज्जा की है जो कला का उत्कृष्ट और दर्शनीय चिर प्रतीक है। आजकल भेलुपुरा में पृथक् कला संस्था की स्थापना कर कितनी ही छात्र-छात्राओं का ये पथ-प्रदर्शन कर रहे हैं।

शारदा उकील की भाँति रणदा उकील की कला भी भावना-प्रधान है। इनके चित्रों का सबसे बड़ा आकर्षण किन्हीं अनमोल साँचों में ढली एक विचित्र रूप-सज्जा है जो कि कलाकार की अन्तर्मुखी, बेसुध-सी कल्पना को व्यंजित करती है। 'दयार्द्र माँ', 'दुखी माँ', 'वासना की लपटें', 'वसंत', 'यौवन का ह्रास', 'ईद और दूज का चाँद', यहाँ तक कि सरस्वती, गायत्री, काली आदि धार्मिक चित्रों में भी आत्म-विस्मरण का भाव विद्यमान है जो विह्वलता और अभिव्यक्ति की अनिर्वचनीय मधुरता में खो गया सा लगता है। कहीं आकर्षण और कला की सघनता है तो कहीं दार्शनिक भाव, कहीं आत्म-तोष और ऐकान्तिक अनुभूति, कहीं प्रणय की तरलता तो कहीं परम्परागत धार्मिक रूढ़ियों से प्रेरित प्रसंग—इस प्रकार इनकी कल्पनाओं के शत-शत रंगीन रूप चित्रों में ढल कर सजीव हो उठे हैं। कलाकार की अपनी व्यष्टिगत जीवन की गहराई और समष्टिगत चेतना को विस्तार देने वाली अनुभूतियाँ, जो अपनी व्यापकता की सीमाएँ माप लेती हैं, अन्तर्जगत् को स्पर्श कर वाह्य जगत में भी अपनी स्थिति बना लेती हैं। कला का यह चिरसंवेदन रूप मानवीय भावनाओं को आलोड़ित करता है। रणदा उकील में अनेक कल्पित और अकल्पित भावों को मूर्त्तिमान कर देने की सामर्थ्य है। इनकी इस विशेषता को विदेशियों ने भी स्वीकार किया है।

हेमंत

शान्तनु उकील

शारदा उकील के पुत्र शान्तनु उकील भी एक सफल कलाकार हैं। वे 'शारदा उकील स्कूल आफ आर्ट' के स्नातक हैं और आजकल वहीं अध्यापन-कार्य कर रहे हैं। भारतीय और यूरोपीय दोनों चित्रकला अनुभागों का दायित्व इन्हें ही सौंपा गया है। इनकी तूलिका से अनेक कलात्मक चित्रों की सृष्टि हुई है। आज की संघर्षपूर्ण परिस्थितियों में जीवन की महत्ता स्वीकार कर इनकी कला यथार्थोन्मुखी हो गई है। पूर्वी जर्मनी, फ्रांस, इटली, लन्दन, स्विट्ज़रलैण्ड, ज़ेकोस्लोवाकिया आदि देशों का भ्रमण कर इन्होंने प्रचलित वादों के परिप्रेक्ष्य में कला का चित्रण किया और माडर्न आर्ट से भी प्रभावित हुए।

भावी बालक की प्रतीक्षा में
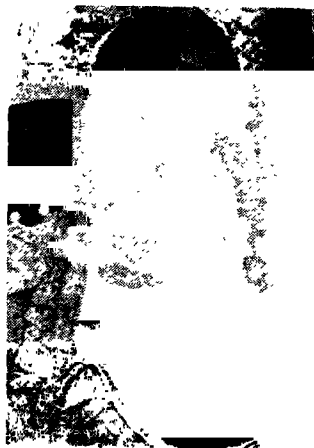
आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनियों के दौरान रूस, पूर्वी यूरोप, मिडिल ईस्ट, सुदूर पूर्व और आस्ट्रेलिया भी गए। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, मैसूर की दशहरा प्रदर्शनी, आल इन्डिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी फाइन आर्ट्स, इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स आदि की प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहें। भारत और विदेशों में कई बार इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की गई और इन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए। पर-राष्ट्र मन्त्रालय और लोक-सभा में इनके भित्तिचित्रण की झाँकी देखी जा सकती है। बुद्ध जयन्ती के अवसर पर विशेष प्रदर्शनी के लिए इन्हें बुद्ध के जीवन सम्बन्धी चित्रों के निर्माण का भार सौंपा गया और विदेशों में भारत के प्रतिनिधि के रूप में वहाँ की कलाप्रवृत्तियों के प्रचार-प्रसार और परस्पर सामंजस्य स्थापित करने के लिए बाहर भेजा गया। उकील परिवार में जो कला की स्रोतस्विनी बहती है उसकी धारा कभी क्षीण न होगी—ऐसा आभास इनके

कृतित्व में मिला। इनकी खूबी है कि इन्होंने अपने सृजन में कला के सौष्ठव को प्रतिष्ठापित तो किया ही है, कितने ही कला-जिज्ञासुओं का पथ-प्रदर्शन कर कला की प्राचीन एवं अर्वाचीन परम्पराओं को विकसित एवं समृद्ध किया है।

रूस, अमेरिका, पोलैण्ड, आस्ट्रेलिया, जापान, इटली, काहिरा और लंदन में इनके लब्धप्रतिष्ठ चित्रों को सम्मान पूर्वक स्थान मिला है। विदेशी पद्धति से प्रभावित 'माडर्न आर्ट' को इन्होने फैशन के बतौर नहीं अपनाया, बल्कि उसके हर पहलू पर ग़ौर करके, उसकी सूक्ष्मताओं में पैठकर नये ढंग से सामंजस्य स्थापित किया। उन्होंने मिली जुली शैली में अनेक चित्रों का निर्माण किया है। रंगो के मिश्रण के प्रभाव द्वारा विषय का सुष्ठु प्रतिपादन इनकी कला की विशेषता है।

आज का आधुनिक कलाकार कला का सौन्दर्य पंगु रूप में ही ग्रहण कर पाता है, समग्र रूप में नहीं। उसका सौन्दर्यबोध खंडित है, किन्तु अपने पिता की तरह ये कला-सृजन की हर स्थिति में बुनियादी सचाई के क़ायल हैं। आधुनिक कला यदि आज की उलझी हुई मनः स्थिति को दर्शा सके, जीवन और प्रकृति के बीच बढ़ते वैषम्य में सामंजस्य स्थापित कर सके तो वही उसकी आधारभूत समस्याओं की सच्ची तस्वीर पेश कर सकती है।

शैलोज मुखर्जी

राजधानी के कला क्षितिज पर एक अर्से तक भासमान रहकर शैलोज मुखर्जी ने नई पीढ़ी का नेतृत्व किया। जीवन-संघर्षों के अविश्रांत क्षणों में और नितान्त एकाकी जीवन बिताते हुए भी उनके भीतर की लौ अंत तक जलती रही और आज वह लौ बुझ चुकी है, किन्तु कलाकार की जागरूक चेतना की लौ जो अमिट लकीर खींच जाती है वह युग-युगान्त तक कभी नहीं मिटती।

शैलोज मुखर्जी कुछ औरों से भिन्न और विचित्र तबीयत के व्यक्ति थे। दुबला पतला, क्षीण शरीर, चिंतित मुखमुद्रा और गंभीर आकृति—जिससे लगता था कि उनके स्वभाव में चिड़चिड़ाहट या रूखापन है। जीवन के थपेड़ों से जूझने की अटूट उमंग उनमें भरी पड़ी थी और कितने ही उतार-चढ़ावों को लाँधकर उन्होंने अपना मार्ग स्वयं प्रशस्त किया था। आर्थिक कठिनाइयाँ उनके मार्ग में बाधक बनी, पर आगे बढ़ने वाले सेनानी जैसे पीछे मुड़ कर नहीं देखते वैसे दृढ़ संकल्पशील हो उन्होंने अपने मन को एक निश्चित राह से कभी गुमराह न होने दिया। उम्र भर उनके समूचे कार्यों और विचारों की धुरी 'कला' रही, फलतः उनकी कितनी ही कलाकृतियाँ समय के साथ धुंधली न हो कर कला की अमर थाती बन चुकी हैं।

इस घोर बुद्धिवादी और कशमकश के युग में भी उनकी वृत्ति बड़ी ही उदात्त और श्रम साधनाशील थी। मानवोचित और युगानुरूप पाश्चात्य प्रणालियों से प्रेरित वे निजी कला में एक नई ताजगी और ज़िन्दादिली के क़ायल थे, पर कठमुल्ला सरमायादारों की अहम्मन्यतापूर्ण वृत्ति अथवा छिछले प्रयोगों की आड़ में काहिल जड़ता व मनहूसियत में सिमट जाने की उन्हें आदत न थी। कला की दिशा में उनकी कला-शैलियाँ समृद्ध, बहुमुखी और वैविध्यपूर्ण होने के बावजूद उचित दिशा में अग्रसर होती रहीं—यही उनके जीवन की सबसे बड़ी विशेषता थी।

प्रारम्भ से ही शैलोज मुखर्जी की शिक्षा-दीक्षा पाश्चात्य पद्धति पर हुई। मैट्रिक में असफल होने पर कलकत्ता गवर्नमेंट आर्ट स्कूल में कला की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त कर के उन्होंने तिब्बत और सिक्किम का दौरा किया और बौद्ध-मठों की तिब्बत

भारतीय मिश्रित कला का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया। तत्तश्चात् सन् १९३७ में उन्होंने यूरोप की यात्रा की और इंगलैंड, फ्रांस, हालैण्ड, बेल्जियम, जर्मनी और इटली के कलाभवनों का निरीक्षण किया। उनकी कलात्मक बुद्धि का विकास पाश्चात्य देशों, विशेषतः विश्व के कला-केन्द्र पेरिस में चित्रकला की शिक्षा प्राप्त कर लेने के पश्चात् हुआ। पाश्चात्य चित्रकला के अध्ययन से उन्होंने चित्र-कौशल के नवीन प्रयोग सीखे और आवश्यक तत्वों को ग्रहण किया। बाद में उन्हें मध्य एवं सुदूर पूर्व के लिए संस्थापित इटालियन इन्स्टीट्यूट द्वारा इटली में कला के विशेष अध्ययन के लिये छात्रवृत्ति प्रदान की गई। यूरोप में रहकर उन पर 'प्रभाववाद' और अभिव्यंजनावाद का विशेष प्रभाव पड़ा।

सिद्धिदाता गणेश

उनकी चित्रकृतियों को देखते ही कलाविदों का ध्यान तत्काल फ्रेंच कलाकार मातीस की ओर आकर्षित होता है। स्वयं उन्होंने अपने चित्रों में मातीस के प्रभाव को स्वीकार किया है। 'स्वप्न', 'स्वातन्त्र्य गीत', 'फसल' आदि इनके कतिपय चित्रों में मातीस की सी टेकनीक को अपना कर प्रभाववादी वक्रता लाने की चेष्टा की गई है। किन्तु कला की यह मौलिकता और रेखाओं की सहज विचित्रता इनकी अपनी नैसर्गिक चेतना से उद्भूत हुई। इनकी असाधारण प्रतिभा ने चिरपोषित परम्पराओं, सर्वस्वीकृत रूढ़ियों और पूर्व स्थिर रूपों से पृथक् हटकर अपनी अभिनव सृजनशील मान्यताओं को प्रश्रय दिया।

इस प्रकार उन्होंने दो सर्वथा भिन्न स्रोतों से कला के सूक्ष्म और आवश्यक तत्त्वों को ग्रहण करके एक नवीन शैली का प्रवर्त्तन किया। अपने चित्रकार

जीवन के प्रारम्भ में उन्होंने पाश्चात्य पद्धति अपनाई। यह एक समृद्ध परम्परा का आकर्षण मात्र था, किन्तु इसमें भी कलाकार की मौलिक प्रतिभा के प्रमाण मिले हैं। पाश्चात्य कला-परम्परा में अपनी व्यक्तिगत प्रतिभा को समाविष्ट करके उन्होंने एक नई शैली की उद्‌भावना की, जो भारतीय कलाकारों को एक नवीन पथ की ओर उत्प्रेरित करती है।

उनके बाद के बनाये चित्रों में भारतीय कला का अधिक पुट है। उसमें राजपूत और मुगल कला का अंधानुकरण न होकर भारत की पुरातन पद्धतियाँ अपनाई गई हैं। इन चित्रों के विषय तो सर्वथा भारतीय हैं, किन्तु उन के अंकन-कौशल में वह मौलिकता है जो पूर्व और पश्चिम के समन्वय से सम्भव हुई है।

वन्य-शृंगार

इसके अतिरिक्त शैलोज मुखर्जी ने लोक-चित्रकला की उस परम्परा को भी निभाया था, जिससे यामिनी राय जसे आधुनिक कलाकारों को नई प्रेरणा मिली। उत्तरी भारत के ग्राम-ग्राम में भ्रमण करके और पेरिस में रह कर फ्रच कलाकार मातीस की कला के संसर्ग से उन्हें लोक कला का विशेष ज्ञान हुआ था। अपनी पुस्तक 'फाक आर्ट आफ इण्डिया' (Folk Art of India) में उन्होंने लिखा है 'भारतीय लोक-कला की सबसे बड़ी खूबी यह हैं कि वह विदेशी प्रभावों से अछूती रह कर भी अनूठी और अपने ढंग की बेजोड़ है।' उन्होंने अपने कुछ चित्रों में रेखाओं का ऐसा सफल और निर्भीक चित्रण किया है जिससे उनकी सशक्त चित्रण-शक्ति का सहज ही अनुमान लगाया जा सकता है। रेखाओं के किंचित् मोड़-तोड़ और रंगों के सम्मिश्रण से वे विविध भावों का प्रदर्शन करने में सिद्धहस्त थे। इनकी कला पर काँगड़ा कला का भी प्रभाव द्रष्टव्य है। यहाँ की लोककला से उन्होंने अकृत्रिम सरलता और सुस्थिरता ग्रहण की थी तो मातीस से पूर्वनि-

र्णीन शिष्टता और काँगड़ा कला से गीत की सी लयमयता और शृंगारिक सुसज्जा ।

सन् १९३३ और १९३६ में बम्बई और कलकत्ता की कला-प्रदर्शनियों से उन्हें ससम्मान पुरस्कार प्रदान किये गए। सन् १९४६ मे नई दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय समकालीन कला-प्रदर्शनी में इनकी 'धोबीघाट' चित्रकृति रखी गई और बहुत अधिक पसन्द की गई। 'स्टूडियो' में प्रकाशित एक लेख में विशेष रूप से इस चित्र को कला की सर्वोत्कृष्ट कृति घोषित की गई। सन् १९४७ में इण्डियन म्यूजियम, कलकत्ता के तत्त्वावधान में हुई 'एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स प्रदर्शनी' में तैल चित्रों पर उन्हें एक रजत पदक और छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इनके तैल चित्रों की हल्की स्निग्धता, किन्तु गहरी चमक उन्हें एक पृथक् व्यक्तित्व प्रदान करती है। उनके चित्रों ने विदेशों में भी पर्याप्त ख्याति प्राप्त की और सन् १९४६ में पेरिस की यूनेस्को प्रदर्शनी और 'इण्डिया हाउस' लन्दन में भी इनकी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया गया।

शैलोज मुखर्जी वर्त्तमान कला के गम्भीर एवं मननशील आलोचक भी थे। 'माडर्न रिव्यु' और अन्यान्य पत्रों में फ्रांस के समकालीन कलाकारों पर उनके अनेक समीक्षात्मक लेख प्रकाशित हुए थे। इनके विचारों की मौलिकता इन लेखों से स्पष्ट होती है।

शैलोज मुखर्जी कला के सच्चे साधक थे। उनकी कलाकृतियों में अंतः निरीक्षण और बाह्य निरीक्षण दोनों के सुन्दर उदाहरण मिलते हैं। उनकी कला टेकनीक की दृष्टि से इतनी 'आधुनिक' सिद्ध हुई है कि चित्र-निर्माण में मातीस का सा ढंग, आकृतियों की लचकदार मोड़तोड़ में मोदीग्लिआनी का सा हल्का पुट, रंग-योजना में राजपूत और मुग़ल शैली की चटक, लेकिन रेखांकन उनकी अपनी पृथक् विशेपता लिये हुए है। इनकी भावनाओं का उभार इतना मौलिक होता है कि वह विदेशी रंग में रँगकर भी बेजान सा प्रतीत नहीं होता। उनकी कलाकृतियों में व्यंजक रेखाएँ इतनी सजीव हैं कि वे भावनाओं को मूर्त्त करने में अपना सानी नही रखतीं। सम्पूर्ण रूप-विधान और वातावरण में जो मादकता और गुदगुदाने वाला आह्लाद फूटा पड़ रहा है वह चित्रांकित प्रकाश और वायु के झकोरों के साथ लहराना सा ज्ञात होता है। 'कुएं पर', 'पतझड़ की तूफ़ानी हवा,' फ़सल,' 'स्वप्न,' 'चुम्बन' आदि चित्रों में रेखाएँ फिसलती-रपटती सी और रंग अंतर्वेग से प्रवाहमान जान पड़ते हैं। भारत और विभिन्न देशों की क़ला का सम्यक् अध्ययन करके और देशी-विदेशी कलाकारों

से मिल कर शैलोज मुखर्जी ने कला की सत्यता को परखना सीखा है। समन्वय की इच्छुक लोक-कल्याण की भावना को खोजने वाली उनकी यह शैली, कला के दृष्टिकोण से अत्यन्त उपयोगी है, क्योंकि उनका लक्ष्य कला के विकास की ओर था और विकास के लिए जहाँ ऐसा समन्वय आवश्यक था वहाँ परिश्रम और अध्यवसाय से उन्होंने उसे सदैव साधने का प्रयत्न किया था।

मातीस की भाँति इनकी रेखाएँ बड़ी सशक्त हैं। ये रेखाएँ अपनी अटूट गति एवं शृंखला द्वारा अनेक दृश्यरूपों को प्रस्तुत करती हैं, कहीं संगीत समा जाता है तो कहीं रुदन, कहीं गत्यवेग तो कही हवा के झपेटों से विषय उड़ा-उड़ा सा प्रतीत होता है।

इन्हीं रेखाओं द्वारा मानव-जीवन की कितनी ही सूक्ष्म अनुभूतियाँ आँकी गई हैं जिनमें उनके अनुरूप ही स्वरूप ढाले गए हैं और ऐसा तादात्म्य स्थापित किया गया है कि समूचा वातावरण एक भाव से ही अभिभूत लगता है।

इनके समक्ष भारतीय कला संक्रमण के उस दौर से गुज़री जब कि यहाँ की प्रचलित कला प्रणालियों विदेशी कला-धाराओं का गंभीर आदान-प्रदान हो रहा था। भारत के कलाकार विदेशों में जाकर पश्चिम की गतानुगतिक धाराओं के साथ साक्षात् परिचय प्राप्त कर रहे थे। अतएव नई धाराओं की बाढ़ सी आई हुई थी जिसमें कोई सुस्थिर रूप एवं पद्धति अपनाना कठिन था। शैलोज मुखर्जी इस शंकाकुल परिस्थिति में पथ-प्रदर्शक का काम करते रहे। यह सही है कि उन्होंने कभी एकतरफ़ा प्रवाह को प्रश्रय नही दिया, वरन् इस दौर में नये विचारों, नई मान्यताओं और मूल्यों के आधार पर अपना सर्वथा नया दृष्टिकोण प्रस्तुत कर काफ़ी अर्से तक वे सही मानों में कला का प्रतिनिधित्व करते रहे।

सुशील सरकार

परम्परागत रूपविधान और कलाशिल्प के क़ायल होते हुए भी सुशील सरकार ने इधर नव्य कलारूपों को भी प्रयोग के रूप में अपनाया है। कलाकार के लिए दरअसल कुछ भी विजातीय नहीं है। वह प्राचीन एवं अर्वाचीन के विवाद में न पड़कर केवल उस आधारभूत अदम्य आस्था को लेकर चलता है जहाँ उसके सृजन का पर्यवसान रंग-रेखाओं और भावसत्यों की समरसता में होता है। यूँ अपनी निजी भावनाओं और मन के उतार-चढ़ाव की सूक्ष्म तरंगों के महत्त्व को मानते हुए भी इनकी समूची कला उस भारतीय संस्कार परम्परा की ओर उन्मुख है जहाँ सत्य-बोध और जिजीविषा का यौगिक सामंजस्य हैं, जहाँ प्राणों के संस्पर्श से चित्रण लय का तादात्म्य हुआ है, और रंग-रेखाएँ उसमें ऊब डूब कर उभरती हैं। यही कारण है कि चाहे मोटे कागज़ पर निर्मित ड्राइंग एवं डिज़ाइन हो अथवा कैन्वास पर अंकित तैलचित्र या पोर्ट्रेट या

संगीत विभोर

ग्राफ पेंटिंग या कोई ज्यामितिक आकार सभी में निःस्वता और इनकी स्वस्थ,

मौलिक अंतःप्रेरणा निहित है। केवल कुछ रेखाओं से ही नारियों की विभिन्न भंगिमाएँ आँकी गई हैं। ऐसे भी प्रयोग किये गए हैं जहाँ बहुत थोड़े प्रयास से आकृतियाँ बड़े की व्यंजक रूप में मुखर हो उठती हैं। तैलरंगों से निर्मित दृश्यांकनों में कलाकार को सूक्ष्म और गहरी पैठ का तो आभास होता ही है, पर्वतीय सुषमा एवं ऋतुराज बसंत की रूपच्छटा को भी बड़े ही कौशल से दर्शाया गया है।

आधुनिक कला के विकास के सम्बन्ध में इनकी धारणा है कि पुरातन काव्य रूढ़ियों से परे मनोवैज्ञानिक दृष्टि से कुछ नये पक्षों को स्पर्श करने का भी प्रयास करना चाहिए। चित्रण में वैचारिक परिपक्वता और रूपविधान में स्थायित्व आ गया तो यही सृजन शिल्प की बड़ी सामर्थ्य है, अन्यथा जो प्राचीन परम्परा को ढो भर रहे हैं, कुछ नया, कुछ विशेष देने को उनके पास रहा नहीं है तो लगता है—जैसे उनके भीतर कुछ चुक सा गया है, इसके विपरीत जो मौलिक हैं, जिनके प्राणों में आकुल छटपटाहट या गहरी ललक हैं वे अतीत की गहराइयों में पैठकर भी उसमें कुछ नई प्राण-चेतना खोजते हैं। इसी दृष्टि से इन्होंने अपनी कला की विषय परिधि को विस्तार दिया हैं, जिससे इनके अधिक सक्रिय होने की निश्चित परिणति यह हुई कि परम्परागत कलाशैली से अविच्छिन्न रहकर सामयिक संदर्भ में आधुनिक युग के 'क्राइसिस' को अपने अनेक चित्रों में सहज अभिव्यक्ति देने में ये सफल हुए हैं।

बाल्यावस्था से ही जिस ग्राम के प्रकृति सौन्दर्य के मध्य बालक सुशील सरकार का हृदय पला था, जिस मिट्टी में माता-पिता तथा परिचित जन हँसते बोलते, खेलते-कूदते, रोते-गाते थे, जिस गंगा माँ के निर्जन, एकान्त कछार पर बैठा रात-दिन उसकी मधुर कल्लोलों में वह खो सा जाता था, चपल लहरियों के मर्म में उस वस्तु को निहारता था जो सुन्दर है, अपूर्व है, अनवद्य है, प्रकृति की रूपच्छटा, इन्द्रधनुष की रंजित शोभा तथा विराट् सृष्टि की कौतुक भरी रंगीनियों में विभोर हो अपने अस्तित्व को भी भूल जाता था, आगे चल कर अपने कलाकार जीवन में हँसी, लोकरंजक शीलोत्कर्ष की दिव्य प्रभा को इस असाधारण प्रतिभा सम्पन्न बालक ने कितना झाँक-झाँक कर देखा था, उसके माधुर्य पर कितना मुग्ध हुआ था। प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में जीवन के तुच्छ उपकरणों से ही इस कलाकार का निर्माण हुआ। कालान्तर में ग्राम्य जीवन के अनगिनत मनोरम चित्र उसकी कला में बिखर पड़े।

पिता की मृत्यु के पश्चात् सुशील सरकार अपने भाइयों के साथ दिल्ली

में आकर रहने लगे। यहाँ अचानक इनका परिचय उकील भ्राताओं से हुआ। कला मर्मज्ञ शारदा उकील और उनके भाई रणदा उकील की इन पर विशेष कृपा थी। ये उनकी कलाशाला में चित्रकला की शिक्षा भी प्राप्त करते थे। सुशील सरकार का जीवन ड्राइंग और चित्रकारी की परिधि में ही सीमित नहीं था, वरन् इनका अधिकांश समय राजपूत, कांगड़ा, मुग़ल और अजंता की चित्र कला के अध्ययन करने में बीतता था। ये दिन इनके लिए कष्टसाध्य थे। ये पढ़ते, चित्र बनाते, आजीविका के लिए संघर्ष करते और तत्कालीन कलाकारों के साथ होड़ भी करते थे, अपने विद्यार्थी जीवन में भी सुशील सरकार ने कला-क्षेत्र में पर्याप्त सफलता प्राप्त की। इन्हें बम्बई, कलकत्ता, मैसूर, दिल्ली और शिमला की कला-प्रदर्शनियों से भी पुरस्कार प्राप्त हुए। सन् १६३८ में इन्हें 'आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी' से वाटर कलर पेंटिंग 'बसंत' पर पुरस्कार दिया गया। शीघ्र ही सन् १६३६ में शिमला फाइन आर्ट्स सोसाइटी से 'दरगाह' कलाकृति पर और सन् १६४० में मैसूर दशहरा प्रदर्शनी से 'तूफ़ान' चित्र पर ये पुरस्कृत किये गए। बनारस कला प्रदर्शनी और बम्बई कला प्रदर्शनी ने भी इनकी कला के सम्मान में कई पुरस्कार दिये। यूरोप,

← माता और बालक

सुदूरपूर्व और १९५२ में आस्ट्रेलिया में कलाकारों का नेता बनाकर इन्हें भेजा गया।

सन् १९४५ में नई दिल्ली में आयोजित 'अंतर्राष्ट्रीय समकालीन कला प्रदर्शनी' में इनकी सुन्दर चित्रकृति 'अभिमान' पर पुरस्कार प्रदान किया गया। उसी वर्ष पेरिस की 'यूनेस्को प्रदर्शनी' में इनकी पेंसिल ड्राइंग 'नर्त्तकियाँ' को प्रदर्शित किया गया, तत्पश्चात् वह इण्डिया हाउस, लंदन में रखी गई और वहाँ उसे इतना अधिक सम्मान मिला कि वह भारत सरकार द्वारा चीन सरकार को उपहार स्वरूप दे दी गई।

पेंसिल ड्राइंग में सुशील सरकार अपना सानी नही रखते। उनकी लकीरों की सफाई और आवश्यक मोड़ तोड़ अत्यन्त कला पूर्ण है। पेंसिल चित्रों में गीत है, जीवन है, वे कलाकार की सूक्ष्म अतर्भावना के परिचायक है।

नर्त्तकियाँ

सुशील सरकार ग्राम्य-जीवन से अत्यधिक प्रभावित है। जब-जब इन्हें अवकाश मिलता है, वे गांवो मे जा कर वहाँ की सादगी और सौन्दर्य का निरीक्षण करते हैं। इनकी कतिपय चित्रकृतियाँ 'यह देश मेरा है,' 'घूंघट,' 'प्रत्यावर्त्तन,' 'माँ,' 'फसल,' 'अन्न की पकी बालियाँ,' 'पिसनहारी' ग्राम्य-जीवन की सुन्दर और आकर्षक झाँकियाँ हैं। ग्रामीण जीवन की बारीकियों का चित्रण करते हुए इनकी तूलिका थिरकने लगती है।

'मयूर' चित्र में जब मोर अपने सुन्दर पंख फैलाकर मस्ती में झूमता हुआ नृत्य करता है तो उसका सौन्दर्य और गर्व फूट पड़ता है। किन्तु सुन्दरी, नव यौवना रमणी उससे भी अधिक गर्वीली होती है। वह मयूर के पंख को रौंदती हुई जब नृत्य करती है तो न जाने कितना गर्व, कितना उन्माद उसके भीतर फूट पड़ता है। 'अभिमान' चित्रकृति में कलाकार ने अभिमान की चरमता का दिग्दर्शन कराया है।

'बसंत' कलाकृति में भारतीय नारी का पुष्पों के प्रति प्रेम प्रदर्शित किया गया है। एक सुकुमारी रमणी अपने बालों को फूलों से सजा रही है।

१९५१ में भारत सरकार की ओर से आस्ट्रेलिया, चीन और जापान इन्हें कला के विशेष अध्ययन के लिए भेजा गया। इन्होंने लोकसभा में भित्ति-चित्रों का निर्माण किया। भारतीय उद्योग प्रदर्शनी के विशाल द्वारों को चित्रित किया। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की कार्यकारी समिति और सांस्कृतिक सम्पर्कों की भारतीय परिषद् के ये सदस्य रहे हैं। कितनी ही देशीय व वहिर्देशीय प्रवृत्तियों को आत्मसात् कर इनकी कलाधारा का उदात्त रूप सामने आया। इन्होंने अनेक भित्तिचित्रों का भी निर्माण किया है। देश-विदेश के सभी कला संग्रहालयों में इनके चित्रों का संग्रह मिलता है। वर्षों केन्द्रीय सरकार के प्रकाशन विभाग में प्रमुख कलाकार के पद पर ये कार्य करते रहे। राजधानी में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी को उन्नत बनाने में भी इनका हाथ था। आजकल चंडीगढ़ आर्ट्स कालेज के प्रिंसिपल और क्यूरेटर के रूप में ये कार्य कर रहे हैं। पंजाब की कलाधारा की उत्फुल्ल मस्ती और उन्मुक्त चेतना को ग्रहण कर प्राचीन एवं अर्वाचीन कलाभि रुचियों को प्रशस्त बनाने में ये प्रयत्नशील हैं।

कुमारिल स्वामी

हर कलाकार का अपना एक खास अंदाज़ होता है। अपना एक अलग ढंग, निराले तौर-तरीके जो उसके मौलिक सृजन की नई लीक कायम करते हैं। कुमारिल स्वामी कला के नवोत्थान में उन आदर्शों, उद्देश्यों और आत्मोपलब्धि के कायल हैं जिसमें जीवन का सत्य और अंतरंग भावनाओं का प्रत्यक्षीकरण है। अतएव वे सौन्दर्यबोध की एकमात्र कसौटी दर्शक पर पड़ने वाले प्रभाव को मानते हैं। सत्य एक ऐसा अनुभव है जो कालातीत है, वह समय के तंग दायरे में बंदी नहीं, जिसमें प्रतिक्षण नवीन जीवन-दर्शन हो वही दरअसल

शांतिनिकेतन अध्ययन कक्ष

सत्य है। उस सत्य की उपलब्धि के लिए, उसकी खोज के लिए मन की आँख चाहिए जिसमें सहजता नहीं, वह सत्य से दूर है, जिसमें निजी वैशिष्ट्य नहीं उससे तादात्म्य होना असम्भव है। आजकल प्राय: पाश्चात्य वादों से प्रभावित कला सृजन में कुछ ऐसे स्थूल तत्वों का समावेश हुआ है जिससे समकालिक कलाकार इस कदर प्रभावित हैं कि वे भारतीयता को भुलाकर रंगों की अजीबोगरीव कलाबाज़ी में आधुनिकता या नयेपन के चक्रव्यूह में फँस जाते हैं। विदेशी कलाकारों का मात्र अन्धानुकरण ही उनका ध्येय है जिसके आकर्षण में वे अपनापन खो बैठते हैं, सत्य की खोज से परे वाह्य प्रभाव एवं परिस्थितियाँ उन पर हावी हो जाती हैं जिन्हें अन्तर्राष्ट्रीयता की आड़ में वे जबरन आरोपित

करना चाहते हैं। कलाकारों का यह वर्ग विदेशियों की कला-शैली का तो पिठ्ठू है, किन्तु वे स्वयं विदेशियों को अपनी कला से कहाँ तक प्रभावित कर पाते हैं इसकी कोई मिसाल उनके पास नहीं है।

कुमारिल स्वामी इसके विपरीत अपनी भावसृष्टि में किसी 'वाद' या बाहरी प्रभाव से सदा मुक्त रहे हैं। फलतः वे अपनी मूल परम्पराओं में, अपने कलासिवम में, सांस्कृतिक दिगंचल के विस्तार में यहीं की मिट्टी से सिरजी उन वर्णच्छटाओं को खोज रहे हैं जो जीवन के वैचिव्यमय, मांगलिक और सुसंस्कृत तत्त्वों को नित-नया वर्द्धमान और गौरवशाली बनाने की प्रेरणा देते

लुहार कड़ी मशक्कत करता हुआ

हैं यहाँ तक कि उन्होंने उन तत्त्वों का बहिष्कार किया जो रिनाँसाँ के बाद बंगाल स्कूल में अत्यधिक भावुक शैली के रूप में उभर आए थे। आज की नई पीढ़ी की प्रश्नाकुलता उन्हें उस युग में झाँक लेने को प्रेरित करती है अवश्य, पर उनकी अन्तरंग सचाई और अनुभूति की ईमानदारी प्राचीन-अर्वाचीन की नव्य शैली के माध्यम से चित्रण करने को प्रेरित कर रही है। जब भाव और रूप दोनों का पूर्ण सामंजस्य हो जाता है तो मन का अव्यक्त मौन रंगों में मुखर हो उठता है।

यों भारतीय तत्त्वों से प्रेरित इनके प्रयोग नितान्त मौलिक और मोहक हैं। हल्के, सधे, संयत रंग, सजीव आकृतियाँ और तदनुरूप चित्रांकन जो सौंदर्याभिव्यक्ति में दुरूहता या जटिलता पैदा नहीं करता। चटख रंगों की अपेक्षा सौम्य रंगों की प्रभावोत्पादकता में इनकी अधिक निष्ठा है। कारण—भीतरी

अनुभूति की सबलता स्वयं भावों को सजीव कर देती हैं, अतएव उन्हें सीधे और सरल विषय ही अधिक प्रिय है, उन्होंने आंध्र और काश्मीरी जन-जीवन पर अनेक रेखाचित्र अंकित किये हैं जिसमें एक ही झटके में बिना किसी मोड़-तोड़ के भावों को दर्शाया है।

कुमारिल की कला जन जीवन के निकट उन उदात्त आदर्शों को उभारकर सामने लाती है जिससे सद्प्रवृत्तियों को प्रश्रय मिलता है। अत्याधुनिक कला पद्धतियों के विपरीत उनकी चित्रण शैली न अधिक प्राचीन है, न अर्वाचीन। रंग न एकदम उदास हैं न एकदम चटख। रंगों की कुहेलिका या चटकीलापन वे अपवाद मानते हैं, कला-साधना की कसौटी नहीं। समय का प्रभाव तो पड़ता है, किन्तु पिछली परम्पराओं से सर्वथा कटकर सनसनीखेज और चौंका देने वाले वादों के पैंतरे कला के माध्यम से प्रस्तुत कर कोई नई महत्त्वपूर्ण सर्जना नही कर पाते। एक ओर तो ऐसे कलाघाती तत्त्व पच नही पाते, दूसरी ओर पुरातन भावस्थिर अनुभूतियों की मूल्यवान थाती अछूती पड़ी रह जाती है।

विश्राम

सन् १९२४ में हैदराबाद राज्य के तेलंगाना क्षेत्र के एक छोटे से गाँव करीमनगर में कुमारिल स्वामी का जन्म हुआ। पिता श्री राज–लिंगम अय्या लोकसंगीत के जाने माने गायक थे। उन्हें स्मरण है कि किस प्रकार आसपास के गाँवों से उनका संगीत सुनने के लिए नित्य संध्या समय लोगों का जमघट होता और देर तक भजन होते रहते। किन्तु दुर्भाग्यवश ये जब यह छः वर्ष के हुए तभी इनके पिता की मृत्यु हो गई। संघर्षशील और निर्धन कृषक परिवार, तिसपर कई बच्चों का बोझ, इनकी माता राजम्मा को बड़ी तंगी और असहायावस्था से गुजरना पड़ा। बड़ी-बड़ी मुसीबतें उठानी पड़ीं।

निहायत गरीबी और अभावों में बच्चों का पालन-पोषण करना पड़ा। इसी कारण बचपन में कोई नियमित शिक्षा तो इन्हें न मिल सकी, फिर भी ये करीमनगर की पाठशाला में पढ़ते रहे। कला की ओर इनकी नैसर्गिक रुचि थी। जब ये बारह-तेरह साल की उम्र के थे तो संयोगवश एक लड़की कृष्ण का चित्र बना रही थी। उसके रंग भरने का ढंग और चित्र बनाने का तरीका इन्हें कतई पसंद न आया। इन्होंने उसका चित्र पूरा किया, जिस पर लड़की को पुरस्कार मिला। बस, तभी से इनमें आत्मविश्वास जाग्रत हुआ। हैदराबाद के चिन्ना स्वामी से इन्हें बड़ी प्रेरणा मिली। सन् १६३८ में ठक्कर बाप्पा के सम्पर्क में ये दिल्ली आकर बस गए और आश्रम में रहकर शिक्षा ग्रहण करने लगे। आश्रम में नियम था कि सभी विद्यार्थी ठीक साढ़े नौ बजे सो जायँ, पर ये चुपके से लानटेन के प्रकाश में बैठकर चित्र बनाया करते। ठक्कर बाप्पा को जब इनकी कलाभिरुचियों का पता चला तो उन्होंने शारदा चरण उकील के पास इन्हें चित्रकारी के प्रशिक्षण के लिए भेज दिया, जहाँ ये कई वर्षों तक उनके तत्त्वावधान में कला-साधना में रत रहे। तत्पश्चात् सन् १६४४ में इन्हें शांतिनिकेतन भेज दिया गया जहाँ पांच वर्ष रहकर इन्होंने डिप्लोमा प्राप्त किया। आचार्य नन्द लाल बसु की स्नेहस्निग्ध छाया में ये परम्परागत और आदर्शवादी कला तत्त्वों की ओर आकृष्ट हुए। वहाँ रहकर जो संस्कार इन्होंने अर्जित किये वे इनकी कला में अंततः ऊर्ध्वगामी जीवन-दर्शन की ओर उत्प्रेरित करने वाले सिद्ध हुए। इनका सर्वप्रथम चित्र 'शिव' का था। बाद में जातक कथाओं, रामायण, महाभारत पंचतन्त्र तथा अन्य कितने ही ऐतिहासिक प्रसंगों को लेकर इन्होंने चित्र बनाये।
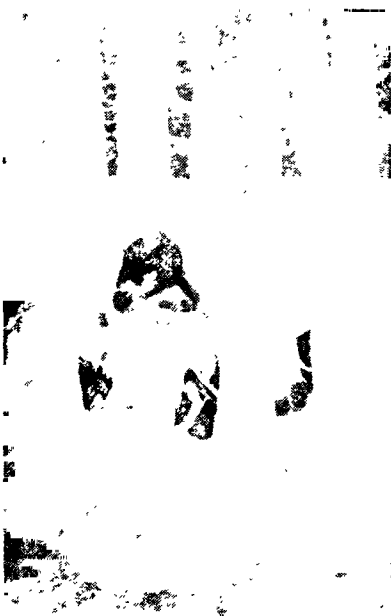
शान्तिनिकेतन में एक कक्षा

'वेणुवन में बुद्ध','चैतन्य महाप्रभु','मीरा','अजातशत्रु,''कर्ण','परशुराम','महाराणा प्रताप,'गुरुकुल पद्धति पर आँका गया शांतिनिकेतन के स्वाध्यायरत छात्रों का एक दृश्यांकन,'प्रतीक्षा','बहिनें', 'माँ और बच्चा','एक लड़की','गांधी और नेहरू' आदि इनके कुछ प्रसिद्ध चित्र शिक्षा मंत्रालय, भारत सरकार, कलाभवन, शांति निकेतन, यू०एस०एस०आर०म्यूजियम, राष्ट्रीय कला-संग्रहालय, नई दिल्ली और सालारजंग म्यूज़ियम, हैदराबाद तथा अन्य कितने ही विशिष्ट व्यक्तियों के संग्रह में सुरक्षित हैं ।

कुमारिल स्वामी की कला में उन तत्त्वों की प्रचुरता है जो विशुद्ध बौद्धिक प्रेरणा,दार्शनिक ज्ञान तथा मनोवैज्ञानिक बारीकियों को उजागर करते है । भले ही कुछ लोग उन्हें पुरानी चाल का कहें, पर इतना अवश्य है कि आत्मचेतना की कारा से परे वे कलाकार के निर्द्वन्द्व मन की रंजक छाप छोड़ जाते हैं ।

रुग्ण और जर्जर मनोविकृतियाँ, जो आधुनिक कला-प्रणाली को विरूप बना रही हैं, अपने नयेपन के औत्सुक्य से दर्शक के दिमाग़ को थोड़ी देर के लिए गुदगुदाती तो हैं, पर कोई स्थायी छाप नहीं छोड़ जातीं । जैसे जासूसी किस्से-कहानियाँ कुछ क्षण के लिए अभिभूत करने की तो क्षमता रखते हैं, किन्तु सुबह मुश्किल से ही याद रहता है कि रात क्या पढ़ा था, उसी प्रकार आधुनिक कला की दुरूह रचना प्रक्रिया में मन अथवा इंद्रियाँ पूरी तरह से डूब नही पातीं । अत्याधुनिक शैली में चमत्कार प्रदर्शन के प्रति दुर्निवार आकर्षण के कतिपय रचनात्मक पहलू तो हो सकते हैं, कारण-प्रस्तुत को अधिक गहरा रंग देने के लिए, उसे अजीबोग़रीब बनाने के लिए, उसके नाज़ुक रेशों की कतरव्योंत के लिए यह आवश्यक है कि उसे बिल्कुल दूसरे ही रूप में प्रस्तुत किया जाय । अनेक

बापू

बार तो कलाकार के 'मूड' का तकाजा होता है। कहते हैं कि सूक्ष्म संवेदनाओं की अभिव्यक्ति के लिए पहले पैमाने अब नाकाफी होते हैं। अन्तः संघर्ष को 'थीम' बनाकर चलने से टूटी-फूटी रेखाओं और मिटते-फिसलते रंगों में वह अपने प्रतिपाद्य को अर्थवत्ता देगा। कलाकार के पास जो कही-अनकही है, जो स्पष्ट या अस्पष्ट अनुभूति है अथवा जो द्वन्द्व-प्रक्रिया है उसे प्रभावशाली ढंग से व्यक्त या सम्प्रेषित करने के लिए नव्य विधाएँ चाहिए।

मौजूदा युग में जबकि मानव-मन को स्पर्श करने वाले कला-स्तर नयेपन के नक्कारखाने में डूबते जा रहे हैं और आधुनिकता के नाम पर कला-अकला का भेद मिटता जा रहा है कुमारिल स्वामी जैसे कुछ इने-गिने कलाकार ही परम्परागत परिपाटियों के प्रति आस्था को हिलने से बचाये हुए हैं। कभी भी सृजन करते हुए उन्हें ऐसा महसूस नहीं हुआ कि बाहर और भीतरी प्रेरणाओं के पहले अर्थ उन्हें फीके लगे हों और उनके स्थान पर नये आत्मविस्मृतकारी तत्त्व उभर आये हों, जैसा कि प्रायः नव्य कला के हिमायतियों का दावा है।

एक काश्मीरी दृश्यांकन

कुमारिल स्वामी की चित्रकारी में विषय-वैविध्य है। उन्होंने प्रायः आम जिन्दगी और मजदूर पेशा लोगों का विशेष चित्रण किया है। सन् १९५३ में अनुसंधान के लिए इन्हें भारत सरकार से छात्र-वृत्ति प्राप्त हुई थी जिससे इन्होंने तमाम भारत में घूम-फिर कर काश्मीर, अजंता एलोरा आदि सुप्रसिद्ध कलातीर्थों का भ्रमण किया। ये नेपाल भी गए। काश्मीरी जन-जीवन के विविध दृश्यांकनों और वहाँ आम तौर से लोगों के जीवन-यापन के तौर-तरीकों, उनके स्वभाव, रहन-सहन, बैठने-उठने, यहाँ तक कि निर्धन श्रमिकों आदि की छवियों को इन्होंने रेखांकनों में बाँधा। चित्र में

अधिकतर इन्होंने जलरंगों का प्रयोग किया है, पर एक 'कैलिग्राफिस्ट' की टेकनीक को ही इन्होंने अपनाया है। रेखांकनों के संदर्भ में सौम्य रंगों को इन्होंने बड़ी खूबी से फैलाया है। धूमिल, नीले, लाल, जामुनी और पीले, पर हल्के रंगों का प्रयोग किया गया है। टेम्परा और वाश शैली में भी चित्रों का निर्माण किया है।

कुमारिल स्वामी के मत में प्राच्य या पाश्चात्य कला-चेतना में कोई ख़ास अन्तर नहीं है। चेतना सार्वभौम है, अन्तर मात्र दृष्टिकोण का है। पाश्चात्य कला-प्रणालियों का प्रभाव अवश्यंभावी है, किन्तु उसका अनपेक्षित दबाव नहीं पड़ना चाहिए। यदि सर्जक कला का सच्चा उपासक होगा तो कभी आधार-हीन अथवा कोरा नकलची नहीं हो सकता। भविष्य नई पीढ़ी के हाथ में है, अतएव कलाकार का दायित्व रोज़ व रोज़ बढ़ता जा रहा है। यदि उसके तजुर्बे तिक्त हैं तो वे ह्रासोन्मुखी विघटित तत्त्वों को ही अधिक उभारकर सामने रखेंगे। वस्तुतः देश और काल की अवस्था-व्यवस्था के अनुरूप प्रयोग किये जायें तो वे बेहतर और स्वस्थ कला-सृष्टि में सहायक होंगे।

कुमारिल स्वामी की खूबी है कि वे आज के प्रचलित थोथे, कृत्रिम और अति की सीमा पर पहुँचे हुए छिछलेपन पर न टिककर अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा दिल की गहराइयों की राह समस्त जनमानस के साथ अछूते ढंग से गहरा सम्पर्क स्थापित करने में जुटे हुए हैं।

अवनिसेन

कलाकार में जिन दो विशिष्ट गुणों की अपेक्षा है—सहप्रतीति और भावात्मक अनुभूति अर्थात् वस्तु को प्रत्यक्ष से पृथक् करके स्वतन्त्र सत्ता प्रदान करने की क्षमता—इसमें दिल्ली के वयोवृद्ध कलाचार्य अवनि सेन अपना सानी नहीं रखते। फ्लॉबर्ट का सा यथातथ्य निरूपण और वैंगाफ़ की सी स्पर्श्य रंजकता इनके कतिपय चित्रों में द्रष्टव्य है। भावप्रवण सूक्ष्म रेखाएँ और रहस्यमय रंगों का सामंजस्य उनकी विषयगत अनुभूति को ठोस आधार प्रदान करता है। उनमें कुछ ऐसी द्वयता है जो एक ओर 'इम्प्रेशनिज़्म' को प्रश्रय देती है तो दूसरी ओर जीवन के सत्य को प्रतीकात्मक पद्धति पर उद्घाटित कर सर्वथा नई व्याख्या प्रस्तुत करती है। कितने ही स्थलों पर वे परम्परा से

एक सूक्ष्म पशु विश्लेषण

परे चले गए हैं, फिर भी उनकी कला परम्पराच्युत नहीं है, वरन् उन्होंने निजी मौलिक शैली को प्रौढ़ और परिपक्व बनाने की चेष्टा की है।

५ मार्च, १६०५ में अवनि सेन का जन्म ढाका के समीप एक गाँव में हुआ था। बचपन से ही उन्हें चित्र बनाने का शौक था और वे कुछ न कुछ कागज़-पत्रों पर बिना दूसरों की मदद के अपने आप बनाते रहते। हाईस्कूल तक शिक्षा समाप्त कर लेने के पश्चात् वे कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए। इस तरुण कलाकार की प्रतिभा ने अकस्मात् तत्कालीन प्रिंसिपल पर्सी ब्राउन का ध्यान आकृष्ट किया और उन्हें गवर्नमेंट स्कॉलरशिप प्रदान किया गया। इन्होंने यंग 'आर्टिस्ट सोसाइटी' और कुछ समय बाद आर्ट में 'रिबेल सेंटर' की स्थापना की। १६३३ ई० में कलकत्ता के फाइन आर्ट्स एकेडेमी के ये असिस्टेंट सेक्रेटरी मनोनीत हुए और यूं कई वर्ष इन्होंने लगातार कला-साधना में व्यतीत किये। तत्पश्चात् १६४८ में ये दिल्ली में आ बसे जहाँ अब भी स्थायी रूप से इन का आवास है।

जिन्दगी की दौड़ में रात-दिन इन्होंने संघर्ष किया, बड़े दुःख झेले, कितनी ही चोटें बर्दाश्त कीं, अत्यन्त कठिन राहें तय कीं, अँधेरे और उजाले के हर मोड़ पर दृढ़ कदमों से आगे बढ़े और एक अनवरत प्रयत्न, अथक चेष्टा के साथ गहराइयों में किसी चीज़ को और बाद में उस खोज में अनुभूत व्यंजना को आत्मसात् कर नया अर्थ देना इनकी खूबी है। भीतर की आस्था, हिम्मत और हौसले से जब किसी क्षेत्र में क़दम रखते हैं तो उलझे हुए जीवन के तार तरतीब पा जाते हैं और अनुभव के विभिन्न स्तरों से गुज़रकर नये मानव मूल्यों और उनके अन्वेषण की प्रतीति स्थिर हो जाती है।

कहना न होगा—ऐसी ही स्थिरधर्मी प्रतीति और गहरी स्थितप्रज्ञता अवनि सेन में है। युग की उभरती विकास-दिशा को उभारने में उन्होंने अद्भुत, योगदान दिया, यद्यपि बूढ़ी पीढ़ी से नाता तोड़ने के लिए बौद्धिक स्तर पर उन्हें विद्रोह भी करना पड़ा है। विकृतियों से आहत टूटे युग की टीस को महसूस करते हुए उन्होंने उसकी विविधता और दुरूहता के अनेक गूढ़ निष्कर्ष निकाले। यदि कोई कलाकार अपने युग की उलझन को व्यंजित करना चाहता है तो परम्परा के जीर्ण ढांचे, जो चरमराने लगते हैं, एक सर्वथा नई संरचना के रूप में उभारने पड़ते हैं, अतएव कलाकार को अधिक से अधिक व्यापक, अधिक से अधिक सूक्ष्म, अधिक से अधिक अप्रत्यक्ष होना चाहिए, ताकि वह रंग एवं रेखाओं को अपनी गंभीर सृजन प्रक्रिया के अनुरूप

ढाल सके।

फलतः इन्होंने सूक्ष्म संवेदनात्मक स्थितियों को पकड़ में लाने के लिए विविध चित्रण-भंगिमाओं को अपनाया। देश-विदेशों की नित-नई निर्माण पद्धति का भी इन पर प्रभाव पड़ा। सन् १९४८ से १९५१ के दौरान इन्होंने उत्तरी-पूर्वी भारत के गाँवों में घूम-घूमकर लोक कलाओं का अध्ययन किया था। अपनी जागरूक संचेतना से उसकी बारीकियों में पैठकर इन्होंने बिल्कुल नये ढंग से उसे सामने रखा और कितने ही बिखरे दृश्यों को नितान्त अकृत्रिम व सरल ढंग से प्रस्तुत करने की प्रेरणा भी उन्हें उसी से मिली। समय-समय पर बनाये गए उनके कतिपय भित्तिचित्रों और खिलौनों में लोककला की छाप है।

चौकड़ी भरते मृग

जलरंग, पेंसिल, क्रेयन, स्याह और तैलरंग के विविध माध्यमों में, ख़ासकर बड़े ही सक्षम गत्यवेग और द्रुतता का परिचय देते हुए इन्होंने अपनी रंग-रेखाओं को उभारा है। उनके द्वारा चित्रांकित पशु और पक्षियों की विभिन्न भंगिमाएँ बड़ी ही सजीव और प्राणस्पंदन से ओतप्रोत सी प्रतीत होती है। हरेभरे खेतों में चौकड़ी भरते चपल मृग, जल पर तैरती बत्तखें, नाचते मयूर, सफ़ेद कबूतर, कूकती कोयल, चहचहाती चिड़ियाँ, कौवे, चील आदि अपने असली हूबहू रूप में आँके गए हैं। मेंढक की टर्र-टर्र मानसून का आह्वान करती है और झूमता साँड अपने मज़बूत पुट्ठों और मांसपेशियों को हिलकोरता है। ये भोले भाले पशु-पक्षी इस पवित्र भारत-भू के अलंकार हैं। इसके अतिरिक्त प्रभाववादी पद्धति पर मुख़्तलिफ़ किस्म के चेहरे और विभिन्न भावभंगियाँ, यहाँ तक कि अंतरंग आत्मा के प्रच्छन्न, गोपन भाव उनके चित्रों में बड़ी खूबी से उभर आए हैं। झोंपड़ियों, नौकाओं और दृश्य चित्रों में उनकी दृष्टि रमी है तो गाय माँ का दूध पीता बछड़ा भी उनकी

संवेदना को उद्वेलित करने में समर्थ हुआ है। रियलिस्टिक, माडर्न, क्यूबिक और एब्सट्रैक्ट—इन विदेशी शैलियों पर इन्होंने चित्रों का निर्माण किया, पर औपचारिक रूप में नहीं, बल्कि सारतत्त्व को ग्रहण कर उसमें भारतीय प्राणों का समावेश किया। किसी भी विषय की स्थूल ग्राह्यता तो केवल मूल का ढाँचा उपस्थित कर सकती है, किन्तु गहरी बुद्धि के मानी हैं कि कल्पना प्रसूत विषयों में भी कुछ नया आशय प्रकट करे। यही कारण है कि उनके अमूर्त्त चित्रों में भी कल्पना व प्रतीति का समन्वित एकीकरण है जिनमें संगीत और नृत्य की सी थिरकती लय और ताल है। प्रत्येक वस्तु को उन्होंने अपनी दृष्टि से देखा है, प्रतिपाद्य वस्तुस्थिति की प्रभावोत्पादकता को व्यंजित किया है, अनुभवों के बल पर कला के सारभूत तत्त्वों की खोज की है। उनकी अमूर्त्त चित्रण शैली भी पेरिस का अन्धानुकरण न होकर देशीय संस्कारों में ढली है। प्रभाववादी और यथार्थवादी पोर्ट्रेट पेंटर के रूप में भी अवनि सेन ने पर्याप्त प्रसिद्धि प्राप्त की है।

उनके कुछ महत्त्वपूर्ण बड़े आकार के चित्र है जो संसद भवन के निमित्त निर्मित हुए। वृक्ष की शाखा पर बैठे हुए कौवों में सशक्त रेखांकन के साथ-साथ किन्हीं विशिष्ट क्षणों और 'मूड' की अभिव्यंजना है। एक दूसरे चित्र में बारह बत्तखें धूप में अपनी दुग्धफेनिल श्वेतिमा की आभा बिखेर रही हैं जो समूचे वातावरण में सजीवता भर देता है। 'माँ और बच्चा' में वात्सल्य और कोमल अनुभूति है तो 'रक्त शोषक' में मानव की दुर्दान्त और घृणोत्पादक प्रवृत्तियों का निदर्शन है। आज की परिस्थितियों के द्वन्द्व ने इन्सान को जो दिशाहारा बना दिया है उसमें अजनबीपन की टीस और मूल्यहीनता के बोध ने कला में संत्रास उपस्थित कर दिया है जिसने अमूर्त्त प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया। इनकी रचनात्मक ‑तिभा ने स्थापित निषेध तोड़ा है, जिसके फल-

एक नारी भंगिमा

स्वरूप इनके अमूर्त्त चित्रणों और विकृत रूपाकारों में भी आश्चर्य जनक निर्माण नैपुण्य और कलाकारिता है। अनेक स्थलों में रेखाएँ जटिल और गुम्फित हैं, फिर भी उनमें कल्पना की भौंडी अतिरंजना अथवा छिछलापन नहीं है। उनके एक चित्र में बड़े ही भारी भरकम, बेडौल,, युद्ध जर्जर जूतों को इस प्रकार दर्शाया गया है कि जिसमें देश की रक्षा में तत्पर कर्मठ सेनानी वीरों के संघर्ष की कहानी अंकित हो गई है। ऊबड़ खाबड़ धरती और बीहड़ पहाड़ी स्थलों को रौंदते हुए उन्होंने अनथक 'मार्च' किया है और कितनी ही लड़ाइयों में मोर्चा लेते हुए उन्होने अपनी नोंक की टक्कर से दुश्मनों के दिल दहला दिये है। न जाने कितनी ही मौतो और जय-पराजयों के वे गवाह हैं और धूल व कीचड़ फाँक कर इस चरम स्थिति पर पहुँचे हैं। उनका दूसरा मास्टरपीस एक भिखारिन का चित्र है जो सड़क के किनारे बैठी हुई अपने फटे चिथड़ों को सीने में व्यस्त है। 'बेकार' चित्र भी हृदयद्रावक और मन को मसोसने वाला है जिसमे बेकारी की कचोटती व्यथा की अभिव्यंजना हुई है। 'युद्ध की विभीपिका' में मानव-अस्तित्व को

माँ और बच्चा

जो ख़तरा पैदा हो गया है, इस वैज्ञानिक युग में अणुबम ने जो समूची सभ्यता और उन्नति का विनाशक है, युद्ध की भयंकरता को और भी नंगे रूप में सामने रखा है। 'पथ के साथी','गपशप', 'घुड़दौड़','बैठी स्त्री','मोची,आदि चित्रों में रंग और रेखाओं की सशक्त और सबल स्पष्टता उभर कर सामने आई है।

इन्हें अनेक कला-प्रदर्शनियों में पुरस्कार और पारितोपिक प्राप्त हुए हैं। नैनीताल आर्ट क्लब द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनी में सन् १६२८-२६ में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। कलकत्ता की फाइन आर्ट्स एकेडेमी द्वारा सन् १६३३ में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया, तत्पश्चात् १६३४

में इन्हें द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। बम्बई की फाइन आर्ट्स सोसाइटी द्वारा लगातार तीन वर्षों तक इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। १९४४ में बिहार शिल्पकला परिषद ने एक लैंडस्केप पेंटिंग पर इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया। १९४९ में दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित अठारहवीं अखिल भारतवर्षीय कला-प्रदर्शनी द्वारा गवर्नर जनरल का 'प्लेक' पारितोषिक प्रदान किया गया।

व्यस्त जीवन की भागदौड़, कृत्रिम सभ्यता की मिथ्या औपचारिकता और राजधानी की हलचल से दूर अवनि सेन चुपचाप कला-साधनारत हैं। कला उनके जीवन का आधार है, प्राणों की हिलोर जो उनके तन-मन में समाविष्ट हो गई है। उनकी साधना निर्वसन चित्रों में भी मुखर हुई है, पर वे उत्तेजक या कामोद्दीपक नहीं हैं, उनके बड़े ही गहरे अर्थ है जो मनोवैज्ञानिक बारीकियों को उद्घाटित करते हैं। अपनी परिपक्व साधना में निगूढ़ वे उत्तरोत्तर अमूर्त्त की ओर बढ़ते जा रहे हैं, पर वे निराकृतिमूलक वामपंथी नही है, न ही इस बात के क़ायल कि शून्य से परे कुछ नहीं है। उनकी विशेषता है कि सौम्य रंगमयता लिये उन्होंने बड़ी ही प्रभावशाली और मौलिक पद्धति में भारतीय कला-परम्परा को आगे बढ़ाया है।

इनके समूचे परिवार में कला जैसे प्रवहमान है। पति परायणा पत्नी और बच्चे कलामर्मज्ञ और कलाप्रेमी है, वरन् पति-पत्नी की संयुक्त साधना का प्रतीक है उनका ज्येष्ठ पुत्र **रंजनसेन** जो दो वर्ष की उम्र में ही रंग और कूँची से खेलने लगा था। बारह बर्ष के इस बालक के चित्रों में इतनी सधी अभिव्यक्ति थी कि उसे भारत का सर्वोत्तम बाल कलाकार घोषित किया गया। सन् १९६१-६२ में उसे फाइन आर्ट्स में भारत सरकार की छात्रवृत्ति प्रदान की गई और १९६३ में कला के उच्च अध्ययन के लिए वह कामनवेल्थ स्कालरशिप पर मनीटोबा यूनिवर्सिटी, कैनाडा चला गया। उसी वर्ष उक्त विश्वविद्यालय द्वारा उसे स्वर्णपदक प्रदान किया गया जो किसी फैकल्टी द्वारा एक भारतीय को सर्वप्रथम यह सम्मान प्राप्त हुआ था। अमेरिका की पेनीसिल्वानिया स्टेट यूनिवर्सिटी में सहायक प्रशिक्षक के बतौर कार्य करते हुए रंजनसेन एम. ए. के छात्र भी हैं और एक लोकप्रिय कलाकार के रूप में नई-नई कला पद्धतियों और माध्यमों के खोजी, जो कलाकारों की तरुण पीढ़ी को एक नई दिशा की ओर अग्रसर करने में प्रयत्नशील हैं।

विश्वनाथ मुखर्जी

विश्वनाथ मुखर्जी की कलात्मक उपलब्धियों के परिप्रेक्ष्य में सर्वत्र आन्त-रिकता की गहरी अनुभूति, रंग और रेखाओं का परिमार्जित निखार और आस्थापूर्ण परिणति का आवेग द्रष्टव्य है। वे कला के स्वत: स्फूर्त संस्कारों को निसर्गजात और अंत:प्रेरित मानते है, अत: उनके कतिपय चित्रों में चिन्तनप्रधान बौद्धिक आसन्नता के दर्शन होते हैं।

संयोगवश इनका जन्म सन् १६२१ में बनारस के एक ऐसे परिवार में हुआ था जहाँ इनके बड़े भाई शिवप्रसाद मुखर्जी स्वयं एक प्रसिद्ध चित्रकार थे। चित्रों के रंग बचपन में ही इनके प्राणों में धँस गए। कला की प्राथमिक शिक्षा ऐसे कलामय वातावरण में इन्होंने घर मे ही प्राप्त की। फलत: चौदह वर्ष की अल्पायु मे निर्मित इनका एक चित्र जापान में प्रदर्शित किया गया। गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, लखनऊ में इन्होंने सात वर्ष तक कला की शिक्षा प्राप्त की जहाँ असित कुमार हाल्दार, वीरेश्वर सेन, ललित मोहन सेन जैसे वरिष्ठ कलाकारों के सम्पर्क में इनकी कला विकसित हुई। तत्पश्चात् जापान में परम्परागत चित्रण-शैली का इन्होने अध्ययन किया। चित्रकार और मूर्तिकार के बतौर लगभग पच्चीस वर्षों से ये कला-साधना में प्रवृत्त हैं। काफ़ी अर्से तक हैदराबाद के गवर्नमेंट फाइन आर्ट्स कालेज के प्रिंसिपल के पद पर कार्य करते रहे। वहाँ से नई दिल्ली आकर ये भारत सरकार के सूचना और प्रसार मंत्रालय में एक वरिष्ठ पद पर कार्य करते रहे और आजकल दिल्ली आर्ट्स कालेज के प्रिंसिपल हैं।

१६३७ में टोकियो में आयोजित कला-प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। सन् १६४६ में लंदन की रायल एकेडेमी द्वारा जो वृहद् कला-प्रदर्शनी का आयोजन किया गया था उसमें 'यौवन और आयु' नामक चित्र को ससम्मान स्थान दिया गया। उसी वर्ष यूनेस्को, पेरिस में मानवीय अधिकारों की प्रदर्शनी में इनके चित्र प्रदर्शित किये गए। कलकत्ता की उद्योग प्रदर्शनी में इनके तीन चित्र रखे गए। अपनी मौलिक प्रतिभा के बल पर देश-विदेशों में इनके चित्रों

का हार्दिक स्वागत हुआ और ये एक लब्धप्रतिष्ठ कलाकार के रूप में न सिर्फ़ अपने देश में वरन् अन्तर्राष्ट्रीय कला जगत में भी अपना विशिष्ट स्थान बना चुके हैं। १९५५ में टोकियो की तृतीय अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, १९५७ में मनीला की प्रथम एशियाई कला-प्रदर्शनी, जो बाद में पूर्वी अफ्रीका, रंगून और कौला लम्पुर में भी आयोजित की गई थी, अफ़गानिस्तान, मिस्र, ईराक़, तुर्की, चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, रूस, पोलैण्ड और पश्चिमी जर्मनी और ईस्टर्न यूरोप की भारतीय कला-प्रदर्शनी में भी भाग लिया। विश्व की सुप्रसिद्ध कला संस्था रायल सोसाइटी आफ आर्ट से इन्हें 'फेलोशिप' प्रदान किया गया। इन्होंने अपने चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ मी इतस्ततः की हैं और इन्हें कितने ही पुरस्कार, पदक एवं पारितोषिक भी प्राप्त हुए हैं। पटना और त्रिवेन्द्रम की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एग्ज़ीबिशन द्वारा इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किये गए और समय-समय पर कितनी ही संस्थाओं द्वारा ये पुरस्कृत और सम्मानित भी हुए।

अध्ययन रत

इनके चित्रों में भारतीय संस्कृति का विशुद्ध स्वर मुखरित हुआ है। रेखाओं में सौष्ठव और सुरुचि है। इनकी विराट् कल्पना में न केवल उनकी अपनी अनुभूति के बिम्ब उभरे हैं, वरन् लोकरंजक दृश्यों से भी वे अनुप्रेरित हुए हैं। साथ ही प्रकृति की क्रोड़ में बिखरी सुषमा ने भी उनके मन को अभिभूत किया है। ग्राम्य अंचलों में दूर-दूर तक फैले खेत, झोपड़ियाँ और कच्चे घरों को इन्होंने अपनी कला का विषय बनाया है, सुरम्य शैल खण्डों और गाँवों के नज़ारे उनके प्राणों को उद्वेलित करते हुए बड़ी सजीव शैली में आँके गए हैं। तैलरंगों में उनकी सरल अभिव्यक्ति और प्राणवान तूलिकर्म है जो यथा-तथ्यता को एकदम सामने ला देता है। 'बंगाल का अकाल,' 'घर की ओर,' 'सीता की अग्नि-परीक्षा', 'रहस्यमयी', 'दुग्ध दोहन', 'जय बजरंग', 'प्रत्यावर्त्तन' आदि चित्रों में अंकन विधान का वैशिष्ट्य है। इसके अतिरिक्त 'माँ और

बालक', 'प्रतीक्षा', 'दिन का अंत', 'वसंत', 'विस्मृत', 'यौवन और आयु' और 'अध्ययन-रत' आदि कतिपय चित्र भावात्मक हैं जिनमें उनकी असाधारण क्षमता और सृजन-शक्तिमत्ता का परिचय मिलता है। कारण--अपने प्रतिपाद्य विषय में रंगों के समुचित संयोजन और रेखाओं की बारीकियाँ फेंककर वस्तु के आंतरिक रूप को साकार करने की कला में ये सिद्धहस्त हैं। विदेशी कला-प्रणालियाँ ख़ासकर चीन-जापान और सुदूर-पूर्वी हिस्सों का प्रभाव इनकी कला पर दीख पड़ता है—उदाहरणार्थ-'वसंत' में चीन के ब्रुश-स्ट्रोक और 'जयपुर लैंडस्केप' में 'केलिग्राफी' पद्धति पर स्थल, प्रकाश और वातावरण को सृजित किया गया है। इन्होंने निजी और सार्वजनिक उपयोग के लिए कितने ही भित्ति-चित्रों का निर्माण किया। मैसूर, त्रिवेन्द्रम, हैदराबाद, कलकत्ता और अन्य रियासतों की आर्ट गैलरी और कला-संग्रहालयों में इनके चित्रों को सम्मानित स्थान दिया गया है। लन्दन की पुरातन स्मारक सोसाइटी के ये सदस्य हैं और दिल्ली की ललित कला अकादमी की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की कार्यकारी परिषद और जनरल कौंसिल के सदस्य तथा हैदराबाद की आर्ट सोसाइटी के संयुक्त सचिव हैं।

कला का गम्भीर अध्ययन एवं क्रियात्मक ज्ञान प्राप्त करने के लिए यद्यपि इन्होंने देश-विदेश के अनेक भागों का भ्रमण किया और नई-नई कला प्रणालियों की विधाएँ हृदयंगम कीं, तथापि उनके प्रभाव को इन्होंने कभी भारतीयता पर हावी होने नहीं दिया, वरन् उनके मत में भारतीय कला और संस्कृति की जो अपनी ठोस परम्पराएँ और उदात्त शैली है उन्हें विदेशी तत्त्वों ने विरूप किया है। पाश्चात्य कला-प्रणालियों का अन्धानुकरण और नित-नई आधुनिकता की ओर बढ़ती प्रवृत्ति ने भारतीय कला के सौन्दय को ग्रस लिया है। उनकी चकाचौंध में हमारे गहन उद्देश्य और मूल मान्यताएँ भटक गई हैं, यहाँ तक कि विदेशियों ने जो प्रारम्भ में हमारी कला के

पुत्राशा में

मानदण्ड और पैमाने प्रस्तुत किये वे उसकी असलियत से परे थे। उनमें पक्षपात, विद्वेष और सहानुभूतिशून्यता है जो कला के विकास में सहायक न होकर बाधक सिद्ध हुई हैं। अतएव पुरातन भारतीय कला का मूल्यांकन करने के लिए हमें विदेशी दृष्टिभंगी का क़ायल होने की आवश्यकता नहीं, बल्कि अपनी निजी मौलिक प्रतिभा का प्रश्रय लेना चाहिए जो उसकी सचाई दर्शाती है। हमारी कला-समृद्धि और सृजन वैभव के दिग्दर्शक इन खज़ानों में हर पद्धति, हर ढंग और हर विधा का समावेश व संश्लेष है जो पश्चिम की भौंडी किस्मों में कभी उपलब्ध नहीं हो सकता। बेहतर होगा कि भारतीय कलाकार अपनी परम्पराओं को पहचान कर उसकी मूल आत्मा में प्रवेश करें और कुछ नया खोजें।

जल प्रपात

उनके विचार में सच्ची कला किसी की अनुगामिनी नहीं है। किसी भी बंधन, प्रभाव और अनुकृति से उसकी असली आत्मा नष्ट हो जाएगी। समयानुरूप प्रगति और प्रयोग कला के विशिष्ट गुण हैं, किन्तु उसे प्रभाव मुक्त रहना चाहिए। सृजन के रूप और कसौटियाँ भिन्न हैं, बशर्ते कि उसके शाश्वत और चिरंतन तत्वों को आत्मसात करने की प्राणवत्ता किसी में हो।

वीरेन दे

सर मॉरिस गाइयर

वीरेन दे मुख्यतः पोर्ट्रेट चित्रकार हैं जिस दिशा में न जाने कितनी शक्लें व चेहरे इनके प्रेरणा स्रोत रहे हैं। इनके विभिन्न मुखरित व्यक्तित्वों के निर्माण में ऐसी कला मुखर हुई है जहाँ किसी प्रकार का छिपाव-दुराव नहीं, सब कुछ स्पष्ट है। नित-नये अनुभवों और प्रयोगों पर आधारित इनके कृतित्व में बदलती परिस्थितियों की छाप है, पर वह जैसे इनकी आत्मा में घुलमिल चुकी है। भावनाओं के आंतरिक जगत् में पैठकर भीतरी प्रतिक्रियाएँ और अवचेतन मन के प्रच्छन्न रहस्यों को उद्‌घाटित करने की क्षमता पोर्ट्रेट पेंटर में होनी चाहिए अर्थात् छविकार को मनोवैज्ञानिक बारीकियों का चितेरा और विश्लेषक होना भी अनिवार्य है।

कलकत्ता का उपेक्षित, हताश और असफल कलाकार वीरेन दे जब सर्वप्रथम दिल्ली आया और काम की खोज में दिशाहीन सा भटक रहा था तो अचानक जॉन टैरी की कृपा मे उसकी भेंट तत्कालीन वाइस चांसलर सर मॉरिस गाइयर से हुई। दृढ़ और कठोर मुखमुद्रा, अपवाद रूप से अल्पभाषी, पराङ्मुख प्रवृत्ति और संयमी व सहज शासनप्रिय चेष्टाओं वाले इस व्यक्ति के समक्ष यह तरुण कलाकार एकबारगी भयग्रस्त और सशंकित हो उठा। उन्होंने रूबरू होते ही उसे हिदायत की—'मेरा खुद का पोर्ट्रेट तैयार करो।' युवक सहसा काँप उठा। यह अनधिकार चेष्टा उसे असम्भव सी लगी और लड़खड़ाती आवाज़ में गिड़गिड़ाया—'सर! इसके तो मानी होंगे मेरे कलाकार के स्वप्न की शुरूआत के साथ ही साथ ख़ात्मा।' सर मॉरिस ने दृढ़ स्वर में कहा—'नहीं, ऐसा नहीं होगा, यह तुम्हारी साधना की शुरूआत है, ख़ात्मा नहीं।' युवक ने काम शुरू कर दिया। सर मॉरिस अपने स्टेनोग्राफर को डिक्टेशन देते रहे और युवक उनकी 'पोर्ट्रेट' बनाता रहा। जब चित्र समाप्त हुआ तो मॉरिस इस तरुण कलाकार

के सबल रेखांकन और हाथ की सफाई से अत्यधिक प्रभावित हुए। उन्होंने विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह भवन की दीवारों को चित्रित करने का काम उसे सौंपा जिसमें वह तत्काल जुट गया।

जब युवक ने कुछ दिन पश्चात् सर मॉरिस को अपने भित्तिचित्रों की रूप-रेखा दिखाई तो उन्होंने छूटते ही कहा—'एक भी रेखा मेरी समझ में नहीं आ रही। मेरी राय में कम-से-कम सौ वर्षों तक उन्हें कोई नहीं समझ पाएगा। पर यदि तुम खुद उन्हें समझ रहे हो तो अपना काम करते रहो।'

किन्तु जब काम आगे बढ़ा और आकृतियाँ और रंग उभरने लगे तो उससे सर मॉरिस को बड़ा संतोष हुआ, ख़ासकर वे कृतियाँ बड़ी ही रागात्मक, व्यंजक और प्रखर होकर उभरीं। चार विशाल पैनल चित्र जिनके विषय हैं-उद्योग, विज्ञान, नृत्य और अभिनय, चित्रकला और मूर्त्तिकला—शायद सरसरी नज़र से देखनेवालों को विशेष प्रभावित नहीं करते, पर गहराई से दृष्टि डालने पर उनकी सप्राण परिकल्पना पर शनैः शनैः उनका ध्यान केन्द्रित होने लगता है और रूपाकार अपने असली रूप में, जो दैनन्दिन जीवन में हमें इर्दगिर्द घेरे रहते हैं, बहुत कुछ उसी से मिलते-जुलते अपने वैशिष्ट्य के साथ उभर कर मन को अभिभूत कर लेते हैं।

वीरेन दे कलकत्ता के एक मशहूर डाक्टर के ज्येष्ठ पुत्र हैं जिसे माता-पिता ने डाक्टर बनाने पर बड़ा ज़ोर दिया। उन्हें मेडीकल कालेज में दाख़िल करा दिया गया। किन्तु उनकी भीतरी प्ररणा तो कुछ और ही थी। सृजन की चाह, रंग और रेखाओं में ऊबडूब करने के शौक़ और अपना कुछ मौलिक दे जाने की मचलती इच्छाओं ने उन्हें द्विविधा में डाल दिया। उन्होंने गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट में भी उन्हीं दिनों प्रवेश ले लिया। १९४४ से १९४९ तक वे दोनों जगह प्रशिक्षण लेते रहे, पर यूँ दो नावों में पाँव रखकर वे सफल न हो सके। उन्होंने कोर्स समाप्त होने के कुल दो महीने पहले मेडीकल कालेज छोड़ दिया, जिससे उनके माता-पिता अत्यन्त रुष्ट हो गए। कला के क्षेत्र में सबसे अधिक अनुग्रह और सहानुभूति उन्हें अतुल बोस से मिली जो इस प्रतिभावान तरुण कलाकार में छिपी सृजन-चेतना और गहरी सूझ के क़ायल थे। दूसरे जॉन टैरी नामक दिल्ली पोलिटेकनीक के वास्तुशिल्पी से भी इन्हें उस समय बड़ी प्रेरणा और सहायता मिली। दोनों की भेंट सर्वप्रथम कलकत्ता में हुई थी और अपने युवक साथी को इस प्रकार दुरवस्था में संघर्ष करते देखकर उसमें मदद करने की प्रेरणा जगी। दिल्ली आकर उसने रेल भाड़ा

भज दिया और फौरन आने का आग्रह किया। तब से आज तक दिल्ली ही वीरेन दे की साधना भूमि है और ये कलकत्ता नहीं लौटे हैं।

अन्य पाश्चात्य वादों के अलावा इन पर 'इम्प्रेशिनेज़्म' का सर्वाधिक प्रभाव है। वे आकृतियाँ या रूपाकारों की उतनी पर्वाह नहीं करते जितनी कि मूडों या भावभंगियों की। 'पोर्ट्रेट' चित्रण में वे तैलरंगों या स्याही का प्रयोग नहीं करते, बल्कि आकारों को त्वरित और स्वेच्छानुरूप ढालने के लिए वे उन्हें प्रशस्त और प्रभावोत्पादक अन्दाज़ में आँकना पसन्द करते हैं। कला में व्यष्टि की अपेक्षा वे समष्टि के पक्षपाती हैं और प्रदर्शन व औपचारिकता के समर्थक न होकर सत्य व सुन्दर के आराधक हैं। 'पोर्ट्रेट' में सादृश्य और अनुरूपता को वे अनिवार्य मानते हैं, फिर भी उसकी अंतरंग सचाई को ग्रहण करने के लिए अनुरूपता से परे इन्द्रियहग्राह्य प्रतीति को भी वे व्यंजित करना औचित्य की सीमा के अंतर्गत समझते हैं। दर असल, कलाकार मूल की अनुकृति उस रूप में नही करता जैसा कि मूल स्वयं है, बल्कि जैसा या जिस रूप में उसकी सूक्ष्म चेतना उसे ग्रहण करती है। ऑगस्टस जॉन जैसे कुछ पाश्चात्य 'पोर्ट्रेट' चित्रकारों का प्रभाव यथा—रूपाकारों का भावन और कल्पना की प्रगल्भता—इनकी कृतियों में द्रष्टव्य है। जलरंगों में ये उच्चकोटि के प्राकृतिक दृश्य चित्रकार भी हैं।

धान कूटते हुए

राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ और नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा भी ये पुरस्कृत हुए। पेरिस तथा समय-समय पर आयोजित अन्य विदेशी कला-प्रदर्शनियों में भी इनके चित्र प्रदर्शित और पुरस्कृत हुए हैं। कलकत्ता की आर्ट एकेडेमी, नई दिल्ली की बीस कलाकारों की कला-प्रदर्शनी और भारत के प्रमुख नगरों की ख़ास-ख़ास प्रदर्शनियों

में इन्होंने हमेशा हिस्सा लिया है। कई बार अपने चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी इन्होंने की हैं।

अमूर्त्त चित्रण की ओर इनकी अधिकाधिक बढ़ती रुचि ने इनमें मनहूसियत ला दी है। इनमें भावावेग कम, बल्कि निष्क्रियता बढ़ती जा रही है जिसने अवसादजन्य शून्यता को प्रश्रय दिया है। जिन्दगी की रंगीनी और उत्फुल्लता इनके मौजूदा चित्रों में जैसे मायूसी में खो गई है। इनके परिपक्व चिंतन की परिणति 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट में अधिकाधिक प्रश्रय पाती जा रही है जहाँ कल्पना शुद्ध बुद्धि के साथ नहीं चलती, बल्कि जो कलाकार के विशेष दृष्टिकोण के अनुरूप यथार्थ से परे निष्प्रभ रूढ़ि मात्र बनकर रह जाती हैं।

आधुनिक बोध के संत्रास और कुंठाग्रस्त वर्जनाओं के कारण ही उनमें उक्त विघटन आया है। दुःख-दैन्य और संघर्षों ने उनका कला के शिवरूप को ग्रसा है। सहज मार्दव, गति और लय, स्वस्थ, सबल एवं निर्मुक्त चेतनात लशाही हो चुकी है और उसके स्थान पर संदेह, कटुता व तिक्तता उभर आई है। यही कारण है कि उनके इधर के चित्र अपनी वक्रता भंगी से आकृष्ट तो करते हैं, पर सामान्य दर्शक के मन को छू नहीं पाते।

ब्रजमोहन जिज्जा

जिज्जा राजधानी के ऐसे मूक कलासाधक हैं जो बाहरी प्रदर्शन और प्रतियोगी स्पर्द्धा से परे चुपचाप काम करना अधिक पसन्द करते हैं। अविकल धैर्य और संतोष से वे अपनी एकोन्मुख साधना में प्रवृत्त रहे हैं और अग-जग की हलचल से अलिप्त रहकर अंतः प्रेरित भावनाओं को प्रेष्य रूप प्रदान करते रहे हैं। किन्तु इसके ये मानी नहीं की ये परम्पराद्रोही या प्रगतिशीलता के विरुद्ध अथवा नित-नई प्रणालियों या आधुनिकता के प्रति निरपेक्ष हैं, बल्कि इन्होंने समय की हर प्रगति और मोड़ को अपनी कला में आत्मसात् किया है। पुरातन और नूतन, आदर्श और यथार्थ और विभिन्न देशी-विदेशी पद्धतियों का विचित्र संयोग इनके कृतित्व में मिलेगा।

विधवा युवती की आशा

इनकी जन्मभूमि बनारस है, पर इन्होंने कला की उच्च शिक्षा लखनऊ में प्राप्त की और वहीं बाद में अर्से तक काम करते रहे। उन्होंने उसी समय भारत भर का दौरा किया, जिससे विभिन्न प्रादेशिक संस्कृतियों और जन जीवन से इनका निकट सम्पर्क स्थापित हुआ। उत्तराखण्ड, राजस्थान, पर्वतीय प्रदेश, दक्षिण भारत और काश्मीरी लोक संस्कृति से ख़ासतौर पर ये प्रभावित हुए। दक्षिण के मन्दिरों की निर्माण पद्धति और चित्रण शिल्प की सूक्ष्मताओं को इन्होंने अपने कतिपय चित्रों में आंका। 'उत्तराखण्ड के पथ पर', 'डल झील के किनारे', 'दक्षिणी युवती', 'तिरुवांकूर के पथ पर,' 'किनारे', 'पद्मनाभ के मन्दिर में आरती', 'मथुरा मन्दिर के द्वार पर,' आदि दृश्यांकनों और गुलमर्ग, हरिपर्वत, रैनाबारी की चित्रावली में एक ऐसी

उपलब्धि हुई है जो वहाँ के लम्बे इतिहास और परम्परा की शृंखला से आबद्ध हैं। आलेखन की कोमलता, रूपाकारों की सुघड़ता, हल्के संयत रंगों की सुष्ठु संयोजना में बहुविध तत्वों की अवतारणा हुई है। भोट, गढ़वाली, बद्रीनारायण और कन्याकुमारी के जीवनादर्शों की झाँकी भी उनके कुछ चित्रों में दर्शनीय है।

संयत और संतुलित दृष्टि, रंग-चयन में रागोत्तेजना न होकर सहज सौष्ठव, प्रतिपाद्य विषय औचित्य की परिसीमा के अंतर्गत--यूँ जिज्जा की कला में समानुपात और साध्यवसाय संहृति है। उनके चित्रों में प्रदर्शन, कृत्रिम नाटकीयता या चौंकानेवाली प्रवृत्ति नहीं, बल्कि जैसे वे हैं उनका वैसा हो असर होता है। यदि जीवन की साधारण घटनाओं को पूरी प्राणशक्ति से ग्रहण किया जाय तो वे अपना प्रशस्त प्रसार खोजेंगी। जिज्जा वस्तु की वास्तविकता को पहचानना चाहते हैं। वे तात्कालिक स्थिति का प्रभाव अपने से इतर या उसे विषयात्मक रूप प्रदान किये बिना नहीं मानते। वे उसकी सत्ता को अपने ढंग से देखते हैं और अनेक अवसरों पर उन्हें नया आभास मिला है। विषय की खोज में वे जहाँ कहीं कुछ पाते हैं तत्काल उसकी रेखाकृति आँक लेते हैं और बाद में वे अपनी मूल प्रेरणानुसार उसमें प्राणशक्ति का रूपान्तर करते हैं।

भेंट

गम्भीर चित्रों के अलावा इन्होंने भित्तिचित्र और पोस्टर चित्र भी बनाये हैं। इधर कई वर्षों से भारत सरकार के सूचना और प्रसार मंत्रालय से सम्बद्ध पब्लिकेशन डिविज़न की सर्विस में होने के कारण इनके मौलिक सृजन को धक्का लगा है, फिर भी कला के क्षेत्र में इनका बहुमुखी अवदान है और ये

स्वतन्त्र साधना द्वारा चित्र-निर्माण करते रहे हैं।

इनके चित्रण में श्रम और संघर्ष, प्रेरक और विधायक शक्तियाँ कार्यशील रही हैं। लोक सस्कृति की सक्रिय और प्राणवन्त परम्परा ने इनकी अनुभूतियों को दृश्य रूपों में परिणत किया है तो एकाकी जीवन की गहन गम्भीर चेतना ने अन्तस् और वाह्य की रूपागत यथार्थता को नई संवेदनाएँ प्रदान की हैं। ये राजधानी में होने वाली प्रमुख कला-प्रदर्शनियों और बाहरी कला-आयोजनों में भाग लेते रहे हैं। मैसूर के राजकीय संग्रहालय में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं। इनकी विशेषता है कि आधुनिक शैली की वर्जनाओं का निराकरण करके ये कला को नई दिशाएँ ग्रहण करने का प्रयास कर रहे हैं और उसके विराट् वृत्त में जो मनोगत भाव-चित्र उभरते है उसे अपनी संवेदना से जोड़कर भारतीय भावना और परिवेश के अनुरूप उसके विकासशील सन्दर्भ के निरूपण में व्यस्त हैं।

वीरेन्द्र राही

रेखाओं का भी बड़ा ही विचित्र मनोविज्ञान है कि दो चार खरोचो से किसी वस्तु का कायाकल्प कर देती हैं, बशर्त्ते कि रेखाओं में उर्वर कल्पना और जागरूक प्रतिभा हो। तरुण शिल्पी वीरेन्द्र राही रेखाओं के माध्यम से ही मौलिक सृष्टि और नितान्त नई दृष्टि के साथ निजी कलाशैली, नव्य रूप विधान और विविध अनुभूतियों को प्रश्रय दे रहे हैं। उनमें एक ओर पुरातन भारतीय परम्पराओं के प्रति उत्कट भावना है तो दूसरी ओर वर्त्तमान कला को गहराई से जाँच-परख कर नवीन आलोक में आत्मसात् करने का आग्रह। इसका कारण है–इनकी कला पर समय की परिवर्त्तित परिस्थितियों का प्रभाव जिसमें प्राचीन का प्राणमय संस्पर्श और अर्वाचीन की चित्रण-पद्धति में पैठने की जिज्ञासा है। साथ ही दोनों के समन्वय द्वारा कला की चिर अव्यक्त झाँकी को आत्मसात् कर उसे अपने प्राणों में ढालकर व्यंजित और विकसित करने की लालसा भी है।
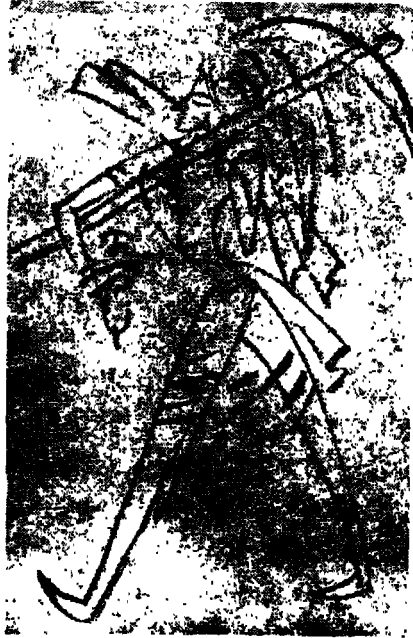
खेत की ओर

वीरेन्द्र राही का जन्म विन्ध्यप्रान्त की हरी भरी भूमि स्थित खरेला गाँव ज़िला हमीरपुर में हुआ। उनकी प्रारम्भिक शिक्षा गाँव की पाठशाला में हुई। चित्रकला का शौक़ उन्हें बचपन से ही था। खड़िया और कोयले से वह बालक

घर की दीवारों पर चित्रकारी करता रहता और उसकी माँ उसे सदा डाँटती डपटती रहती। पर वीरेन्द्र के पिता सदैव बालक की इस प्रतिभा को शह और बढ़ावा देते। वे कागज़ और रंग खरीदकर रख देते और उसकी चित्रकारी पर खुश होते। इनके पिता प्रगतिशील विचारों के थे और सभी बच्चों को उच्च शिक्षा देना चाहते थे। कारण—जब वे महोबा में अध्यापक थे तो मुंशी प्रेमचन्द स्कूल इंस्पेक्टर थे और एक ही विभाग में होने की वजह से दोनों में मैत्री और घनिष्ठता बढ़ती गई। वे प्रायः उनके घर आते और कई-कई दिन ठहरते। उन दिनों प्रेमचन्द की 'सोज़ेवतन' प्रकाशित हो चुकी थी जिसे अंग्रेजी सत्ताशाही ने ज़ब्त कर लिया था। उनकी विचारधारा का उनके पिता और सारे परिवार पर भी प्रभाव पड़ा। वे पक्के प्रेमचन्दवादी हो गए और स्वातन्त्र्य आन्दोलन में भी हिस्सा लेने लगे। अपने जेल-जीवन और राह की कठिनाइयों से जूझते हुए ही वीरेन्द्र ने अपना नाम 'राही' रख लिया था।

फसल काटते हुए

प्रतीक्षा

जयपुर में शैलेन्द्रनाथ दे और राम गोपाल विजयवर्गीय के तत्त्वावधान में उसने कला का प्रशिक्षण लिया। अपनी कक्षा में सबसे अच्छा विद्यार्थी होने के कारण जयपुर महाराज की ओर से उसे ७५ रुपये की मासिक छात्रवृत्ति

मिलने लगी और १६४८ में अखिल भारतीय राजस्थान चित्रकला प्रदर्शनी में महारानी गायत्री देवी की ओर से रजत कप प्रदान किया गया। तत्पश्चात् आवागढ़ स्टेट से सौ रुपये की छात्रवृत्ति मिली जिससे कला का विशेष अध्ययन करने के लिए यह युवक शान्ति-निकेतन चला गया और नन्दलाल वसु के तत्त्वावधान में विश्वभारती से फाइन आर्ट में डिप्लोमा लिया। कुछ अर्से तक इन्हें यू. पी. सरकार से भी छात्रवृत्ति मिलती रही जिससे अध्ययन के दौरान काम चलता रहा। डेढ़ वर्ष तक विश्वभारती के स्टाफ में इन्हें सर्विस में भी रख लिया गया।

पीसते हुए

कला की टोह में वीरेन्द्र राहा इधर-उधर सदा भटकते रहे हैं। प्राचीन ऐतिहासिक कला स्थलों में भ्रमण का शौक़ इन्हें बचपन से ही रहा है। बुन्देलखण्ड, राजस्थान, बंगाल और उत्तर भारत के लोक जीवन की झाँकी इनके चित्रों में मिलती है। भारतीय मूर्तिकला अजंता, एलोरा और बाघ गुफाओं के दृश्यांकन, राजस्थान के भित्तिचित्र, राजपूत कला, मुस्लिम कला और बौद्ध कला से भी ये अभिभूत हुए। जबलपुर के शहीद स्मारक भवन के म्यूरल पेंटिंग चित्र इन्होंने चित्रित किये और जयपुर

मछली वाली

कांग्रेस, कल्याण कांग्रेस और कोटा के हिन्दी साहित्य सम्मेलन के पंडालों की चित्र सज्जा की। इन्होंने अपनी प्रारंभिक साधना में कादम्बरी, मेघदूत, कुमारसम्भव, रामायण, महाभारत आदि के आधार पर चित्र बनाये। कोई बड़ा कलाकार होने का दावा तो ये नहीं करते, पर काल्पनिक चित्रण की अपेक्षा हूबहू दृश्यों और वस्तु-वैविध्य में पैठने के ये क़ायल हैं। किसी मज़दूर या गाँव के गरीब किसान की ज़िन्दगी में जो संघर्ष नज़र आता है, जो परिस्थितियों का द्वन्द्व और उतार-चढ़ाव दीख पड़ता है वह इन्होंने अपनी रेखाओं में ढालकर व्यंजित किया है। भारतीय कला के उत्कर्ष का इतिहास खुलता है जन-जीवन की प्रतिनिधि कला में। संघर्ष, वैषम्य और श्रम-मनुहार में व्यस्त भंगिमाओं को इन्होने बड़ी कुशलता से आँका है। दो-चार रेखाओं से उभारी गई आकृतियाँ और नारियों की मृदु-मधुर रमवन्ती छवियाँ आत्म-विभोर करने वाली हैं।

शृंगार

वाश और टेम्परा——दोनों पद्धतियों में समान रूप से ये अपनी भावनाओं को व्यक्त करने मे सिद्धहस्त हैं। रंग-बाहुल्य या रेखांकन-जटिलता इन्हें क़तई पसन्द नहीं, वरन् इनकी गतिशील आकृतियाँ

सरपट दौड़

एक ही झटके में अपना प्रभाव बिखेर जाती हैं। रेखाओं की सशक्तता के कारण कोई तीव्र मनोवेग या 'मूड' अपनी विशिष्ट सत्ता लिये अधिक नया, अधिक ताज़ा और अधिक संवेदनशील रूप में उभरता है। किन्हीं अनोखे क्षणों में एकाकार होने और पूर्ण रूप से द्वैत को मिटा देने की चेष्टा में इनके रंगों और रेखाओं के अभूतपूर्व प्रयोग उनके अपने हैं—बिना किसी बाहरी प्रभाव और अन्धानुकरण के। अत्याधुनिक चित्र शैलियों के असमंजस में इन्होंने अपनी कला में अंध अवचेतना को निरुद्देश्य अभिव्यक्ति को कभी प्रश्रय नहीं दिया और न ही ये पुरातन पंथी परम्परागत शैलियों से चिपटे रहकर अपनी द्रुतगामी रफ़्तार को मन्द करना चाहते हैं। आज की अराजकता में सही मार्ग का अनुधावन करते हुए प्रगतिशील प्रक्रियाओं के आर-पार झाँकने की प्रखर चेतना को इन्होंने गत्यात्मक रेखाओं की सबल द्रुतता में निःसन्देह सचेष्ट और जागरूक किया है।

दिल्ली शिल्पी चक्र

कला के अभ्युत्थान में 'दिल्ली शिल्पी चक्र' का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। मार्च, १९४९ में प्रगतिशील प्रवृत्ति के कतिपय कलाकारों के एक ग्रुप ने इस आर्टसर्कल की स्थापना की, जो नई अभिजात संस्कृति के संस्कारों और आधुनिक कला-प्रणालियों की प्रतिक्रिया स्वरूप मौजूदा समय और वातावरण के साथ क़दम से क़दम मिलाते हुए एक नये 'एडवेंचर' के शौक़ को लेकर आगे बढ़ा। कलाकार का दाय उसकी अपनी सीमाओं में बँधा है, पर इसमें सन्देह नहीं कि एकोन्मुख से बहुन्मुख प्रसार किसी भी विकासमान कला की कसौटी है। युग और परिवेश का जो अनिवार्य प्रभूत प्रभाव सृजनात्मक विधाओं पर पड़ता है उसे नये उभरते मूल्यों के साथ समेटते हुए इस रूप में दर्शाना चाहिए जो अपने देश की मिट्टी की उपज हो। विभिन्न विश्वजनीन मूल्य कला को झकझोर रहे है और इन भिन्न-भिन्न तत्वों के भीतर से फूटती मूल चेतना ही आत्म प्रसार की चेतना है। प्रतिभावान कलाकार उन मूल्यों और कसौटियों को निजी माध्यमों से सामने लाते हैं। किसी की अंधानुकृति द्वारा नहीं, वरन्

निज़ाम उद्दीन का मेला

भावेश सान्याल

अपने देश की प्रगति और परम्परा के अनुरूप उनकी कला युग-मन का मुकुर है अर्थात् समस्त सामाजिक और सांस्कृतिक चेतना का जीवन्त चित्र।

प्राचीन कलादर्शों के पक्षपातियों में जो एक प्रकार की सामंतवादी जड़ता और रूढ़िवादिता घर कर बैठी थी उक्त 'शिल्पी चक्र' ने उसे छिन्न-भिन्न कर दिया। नव्य जीवन-मूल्यों का स्वर मुखर करनेवाले इन अभिनव अन्वेषियों ने कला के क्षेत्र में एक नवीन दृष्टि, नवीन सौन्दर्यबोध और नवीन भंगिमा को प्रश्रय दिया। नव निर्माण के यात्रापथ पर समृद्ध शिल्पवैभव की थाती लिये उन्होंने नये-नये प्रयोग किये, उनकी भीतरी छटपटाहट न जाने कितने प्रभावों को आत्मसात् करती हुई नये-नये मानों में मुखर हुई। नवीन विचार दृष्टि की ईप्सा में सस्ती भावुकता, कल्पनाभास या अन्धाधुंधी उनमें नहीं है, न ही वे अनुकृत भावुकता की बहक में विचलित हुए हैं, बल्कि प्राचीन-अर्वाचीन में साम्य स्थापित कर वे सदा स्वस्थ मौलिक मनोवृत्ति के क़ायल रहे हैं।
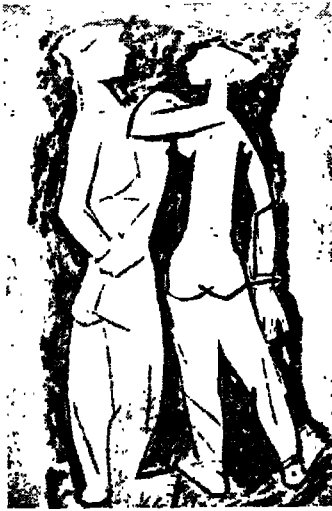
मिलन
—के. एस. कुलकर्णी

अत्याधुनिक की धकापेल में आज जबकि सही रास्ता खोज पाना दुश्वार है, अनेक परिपक्व बुद्धि के कलाकार अपनी मुख़्तलिफ़ अदाओं के साथ प्रतियोगिता के खुले मैदान में आगए हैं। इतस्ततः जो बिखरा है—कोमल-पुरुष, सुन्दर-असुन्दर—सबको अपने अखण्ड प्रवाह में समेटकर वे तरह-तरह से सृजन में लगे है। किसी दक़ियानूसी रूढ़ियों के कारागार में कला अब बन्दी नहीं, बल्कि वैयक्तिक चेतना को मुक्त कर जड़ पाषाणों को लाँघती अपनी भावनाओं के मुक्त निर्झर को वहिर्गत करने के लिए मचल रही है। अपने इस अभियान में वह कहाँ तक सफल हुई है—उसे तो आने वाला समय ही बता सकता है।

भावेश सान्याल

भावेश सान्याल की गणना 'दिल्ली शिल्पी चक्र' के प्रमुख कलाकारों में की जाती है। उन्होंने ही इसकी नींव डाली और कुछ समय तक ये उसके चेयरमैन रहे। जन्मतः ये असमी हैं, पर जीवन के संघर्षों ने उन्हें उस पथ का राही बनाया जहाँ वे किसी देशगत या जातिगत परिधि में कभी न बँधे। इनकी कला-साधना का सदैव ध्येय रहा—प्रगति और उत्थान, गो कि ध्येय पूर्ति का साधन न होने के कारण इनकी कोई कृति कभी निष्प्रयोजन नहीं हुई। सामान्य जन-रुचियों को शुरू से ही इन्होंने अपनी कला में प्रश्रय दिया। शरणार्थी, मज़दूर, भिखारी और छुटपुट काम-पेशा वाले लोग इनके पड़ौसी रहे है। दूर एकान्त स्थल, निर्जन उजड़ी बस्तियाँ और पीड़ित वर्ग व निम्न श्रेणी के लोग इनके प्रेरणा स्रोत रहे है। घटना-बाहुल्य और वस्तु-वैविध्य में वे गहराई से पैठे हैं। अपनी तूलिका और छेनी की टाँकी से अत्यन्त परिश्रम साध्य कौशल और सूक्ष्मता से उन्होंने आकृतियों को उकेरा है जिसमें विराट् कल्पना और व्यापक मनोविज्ञान का अवस्थान है।

अछूत

बचपन में ही इन्हें मिट्टी से प्रेम था और ये देवी-देवताओं के घरेलू खिलौने बनाकर उसे घर में सजाया करते थे। इस शौक़ को साकार रूप देने के लिए इन्होंने बाद में कलकत्ता का गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में दाखिला ले लिया। आर्ट ग्रेजुएट होने के बाद ये लाहौर चले गए और

लगभग सात वर्षों तक मेयो स्कूल ग्राफ ग्रार्ट के वाइस प्रिंसिपल रहे। सरकारी सर्विस छोड़कर इन्होंने फाइन ग्रार्ट स्कूल की स्थापना की। ज़ुबैदा आगा, धनराज भगत, शैला पसरीचा, दमयन्ती चावला ग्रादि ग्रनेक तरुण कलाकारों को इन्होंने प्रेरणा दी। स्टूडियो में प्राणनाथ मागो, हरकृष्ण लाल ग्रौर ग्रमर नाथ सहगल जैसे उदीयमान कलाकार उन दिनों इनके सहयोगी थे।

लाहौर जैसे नगर की प्राणवंत ऊष्मा ने इनकी सृजन-चेतना को शह दी। कार्य में ग्रनवरत रत रहकर इनके तारुण्य में वह उद्दाम उन्माद जगा जिसने इसी एक दिशा में इन्हें अग्रसर किया। जब कोई भी कला साधक साथी इन्हें मिलता उसका ये दिल खोलकर स्वागत करते ग्रौर इन्हें लगता कि दूर के दुर्वार ग्राह्वान के ग्रश्रान्त पथ पर किसी का साथ सदा प्रेरणा प्रदायक होता है। अपने प्रगतिशील सुनियोजित दृष्टिकोणों को प्रश्रय देते हुए इन्होंने नये-नये प्रयोग किये। किसी भी कलाकार के साहस का स्रोत उससे कहीं परे, उसके ग्रागे ग्रौर उससे कहीं ऊपर होता है ग्रौर उसको पा लेना ही कलाकार का संघर्ष है। इस संघर्ष को नित-नई परिस्थितियों के बीच वह स्थिर रख पाता है तो उसकी साधना साकार रूप ग्रहण करती है। इस खोज में कला के नये-नये ग्रायाम खुलते हैं ग्रौर
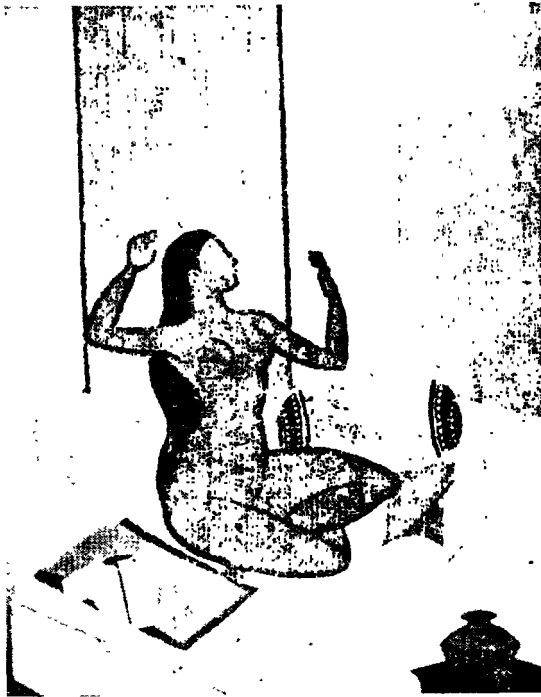
दर्पण के सामने

कला-प्रवृत्तियों की क्षमता का निर्धारण किया जा सकता है।

कला की साधना-काल के इस दौर में सान्याल को कुछ ऐसे ही अनुभूत तथ्य प्राप्त हुए जो युग विशेष के वैविध्य और व्यापकता की गरिमा में स्तर निर्धारण और नई-नई सम्भावनाओं को उजागर करने में सहायक हुए। विभाजन के समय लाहौर से इन्हें दिल्ली आना पड़ा। दिल्ली पोलिटेकनीक के कला अध्यक्ष के रूप में ये कई वर्षों तक काम करके १९६० में रिटायर हुए और तब से ललित कला अकादमी के सेक्रेटरी के रूप में कार्य कर रहे हैं। बम्बई, मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली और अन्य कई प्रमुख केन्द्रों तथा विदेशों में समय-समय पर आयोजित कला-प्रदर्शनियों में इन्होने भाग लिया है। १९५६ में पूर्वी यूरोप की भारतीय कला प्रदर्शनी में प्रतिनिधिमंडल के नेता के रूप में ये भेजे गए। भारत और भारतेतर अनेक निजी और सार्वजनिक कलासंग्रहालयों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है, ख़ासकर नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनका पर्याप्त योगदान है।

भावेश के लिए कला-साधना भावुक आधुनिकता वादियों का क्षणिक ऊफान नहीं है जो नित-नये प्रभावों से आच्छन्न रहते हैं और न ही निराश व अनास्था से ग्रस्त होकर हर तरह की प्रगति को शंका व आलोचना की दृष्टि से देखते हैं। कर्मठ उत्साह, स्थितप्रज्ञता और तत्परता का अनवरत स्रोत ही उन्नति की जड़ में गहरे, सच्चे और खरे अनुभवों को प्रश्रय देता है। अनुभूत यथार्थ तत्त्व ही किसी भी कलाकार की निजी अमूल्य धरोहर के रूप में उसकी शक्ति पुंज को कार्य प्रणाली में प्रवहमान कर देते हैं, बल्कि विरोधी प्रवृत्तियों के समावेश से तो और भी बहुमुखी दिशाएँ सम्मुख आती हैं। आधुनिक काव्यबोध ने आत्मबोध को कहाँ तक जागरूक किया, रूप-अरूप के सजग प्रहरी के रूप में कलाकार की पारदर्शी, दूरन्दाज़ नज़र किस स्तर तक पैठ सकी, कला के जो विविध रूप द्रष्टव्य हैं—कृत्रिम-यथार्थ, रूढ़ या युगानुसार बदलते हुए अर्थात् अपनी-अपनी दृष्टिभंगी से सृजनशील तत्त्वों की जो भिन्न भिन्न व्याख्या या विवेचना की जा सकती है उस सबका समन्वय करते हुए सम्यक् संयोजना व पूर्णत्व का क़ायल हो तो ऐसा ही कलाकार समय की कसौटी पर खरा उतर सकता है। उसका काम सचाई को दर्शाना है, किसी कृत्रिम या अतिवादी आयोजन द्वारा नहीं, बल्कि अपने आसपास की सामयिक परिस्थितियों के अनुरूप उनके मत में मौजूदा वक्त की पुकार, अद्यतन अनुभव, नई-नई समस्याएँ और नये-नये तत्त्व ही किसी कृतिकार के सहज माध्यम हो

सकते हैं, यह नहीं कि वह रह तो रहा है वर्त्तमान में, पर सोचता है बौद्ध या गुप्तकाल की बात, ठहरा हुआ है तो नई दिल्ली के इम्पीरियल होटल में, पर कैलाश पर्वत की ऊँचाईयों में रमनेवाले गौरी-शंकर का चित्रण कर रहा है। अतीत की परम्परा, प्राचीन कला-थाती कलाकार की सृजन चेतना की उत्प्रेरक तो है, पर यह नहीं कि उसकी चौहद्दी में अपने को क़ैद कर ले। अतः भावेश आज के पैमानों को अधिक सबल मानते हैं, वे रोज़मर्रा के परिचित उपादानों को, उन जाने-पहचाने प्रतीकों को उभारने में अधिक विश्वास करते हैं जो हमें यूँ ही चौंकने वाले नहीं, बल्कि सच्ची निष्ठा जगाने वाले हैं।

इसी सामाजिक चेतना को लेकर इनकी कला विकसित हुई। गरीबों, उपेक्षितों और मुसीबत के मारों, दर्दमंदों, जरूरत मंदों और समाज से चोट खाये व्यक्तियों का इन्होंने चित्रण किया। भिखारी, जो एक-एक टुकड़े के लिए बिलखते रहते हैं। आश्रयहीन, जिन्हें हमारा समाज दुत्कारता है, जो मुँह जोहते हैं, बेसहारा हैं, रोटी-रोटी को मुँहताज हैं—'उखड़े हुए', 'गोल-मार्केट के भिखारी', 'मेरे पड़ौसी भिखारी', 'आश्रयहीन लड़की', 'कलकत्ता की सड़क पर', 'विश्राम करता सँपेरा', 'पूर्वाभास' आदि चित्रों में दर्द की टीस और प्राणों की कचोट है। मूर्त्तिकार के रूप में भी इन्होंने बड़ी गहराई से भावनाओं को व्यंजित किया है। पोर्ट्रेट और लैंडस्केप में ये सिद्धहस्त है। जलरंग, तैलरंग और टेम्परा, ग्राफिक और भवन-निर्माण-शिल्प सभी में समान रूप से इनकी श्रम-साधना और अनवरत अभ्यास मुखर हुआ है।

इन्होंने देश-विदेशों का व्यापक रूप से दौरा किया है। क्षण-क्षण परिवर्त्तित उत्कंठा और जिज्ञासा के भावावेश और रागोत्तेजना को लेकर नहीं बल्कि एक गंभीर चितेरे और पारखी के रूप में ये अनेक माध्यमों के जरिए भिन्न-भिन्न दृष्टिकोणों के सामंजस्य द्वारा कला-प्रणालियों को विकासमान दिशा की ओर अग्रसर कर रहे हैं। परम्परा की लीक से हटकर नहीं बल्कि विशद अध्ययन और विदेश भ्रमण के द्वारा, साथ ही वे नये-नये विषयों के प्रतिपादन द्वारा रुचिकर प्रयोगों का नेतृत्व कर रहे हैं।

के० एस० कुलकर्णी

जहाँ तक कोमल कलित, भीनी भावनाओं का सान्द्र सम्बन्ध है, कुलकर्णी की कला के पैमाने किसी सौन्दर्य बोध की इयत्ता में आबद्ध नहीं, बल्कि उसकी सीमातीन सत्ता की महत्ता को स्वीकार कर उन्होंने अपनी अभिव्यक्ति में ऐसे अछूते प्रयोग किये हैं जो पूर्व और पश्चिम की नई प्रणालियों के प्रतिनिधि हैं। खासकर अमरीका में दो बार भ्रमण करके लौटने के पश्चात् कला की वाह्य विशेषताओं का प्रभाव उनके कृतित्व में द्रष्टव्य है। प्रारम्भ में वे अजन्ता और राजस्थानी कला परम्पराओं से प्रभावित थे, बाद में पेरिस के कला धरातलों में सृष्ट नित-नई प्रणालियों के अनिवार्य प्रभाव ने उन्हें कई 'इज़म' से अभिभूत किया। रंगों, रेखाओं और विषयानुरूप जीवंत भावाभिव्यंजना में इनका तात्विक भावबोध, गहन अनुभूति और विविध रेखा-विधान और रंग-योजना है। सत्यानुभूति के लिए वस्तु के अन्तर्साक्ष्यों को ग्रहण कर उसे इन्होंने अपने ढंग से प्रस्तुत किया। किसी भाव, संवेदना और आवेग-प्रवेग को विशिष्ट प्रतीकों और संकेतों में ढालकर नये अर्थबोध की व्यंजना द्वारा विशद बनाया जा सकता है। कलाकार के दृष्टिपथ में जो वस्तुएँ आती रहती हैं उन्हें ही भीतर संचित करके वह अपने सूक्ष्म तत्त्व दर्शन द्वारा रूपायित करता है, वह ही अनुपातत: रंगों और रेखाओं के सामंजस्यपूर्ण संघात द्वारा अपनी मौलिक शैली का निर्माण करता है।

हिरण

कुलकर्णी में स्वतन्त्र चिन्तन और मौलिक सूझ है। उन्होंने अभिनव प्रयोगों और मुक्त प्रवृत्तियों का प्रश्रय लेकर अपनी कलाशैलियों का स्वयं निर्माण किया। 'एक्सप्रेशनिज़्म' व 'इम्प्रेशनिज़्म' का प्रभाव विशेष रूप से उन पर हावी है, परन्तु वे उसकी सीमा में कभी बंदी नहीं हुए। उनके दृष्टिकोण बदलते रहे, उक्त वादों के चिरविकसित रूप को उन्होंने और भी आगे बढ़ाया। जर्मनी और फ्रांस में कलाधाराओं की प्रतिक्रिया का प्रभाव इनकी विचारधारा पर पड़ा। कला तो सतत प्रवहमान गतिशील धारा है, अतः वह सार्वभौम रूप में ही आगे बढ़कर रास्ता बना सकती है। कितने ही मौकों पर रचना शिल्प में भारतीय परम्पराओं से ये दूर जा पड़े हैं, किन्तु चित्रण शिल्प में ग्राम्य संस्कृति और भारतीय आंचलिक जीवन को नहीं भुला सके हैं।

पानी की तलाश में

कुलकर्णी का समूचा जीवन घोर कशमकश और संघर्षों का प्रतीक है। पूना के समीप बेलगाँव में एक मामूली से गरीब परिवार में इनका जन्म हुआ। आर्थिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी थीं

जहाँ उच्च शिक्षा का साधन तक न था। तेरह वर्ष की अल्पायु में ही इनके पिता का निधन हो गया। इस कच्ची उम्र में ही स्वजनों के जीविकोपार्जन का भार इन पर आ पड़ा। पर ये विचलित न हुए। बड़े साहस और धैर्य से बोर्ड बनाने का काम करने लगे, साथ ही उन्हें अपनी आगे शिक्षा प्राप्त करने की भी चिन्ता बनी रही। पहले पूना में और बाद में बम्बई के सर जे. जे. स्कूल आफ आर्ट्स में पढ़कर इन्होंने सम्मान पूर्वक डिप्लोमा प्राप्त किया। इनकी उदीयमान प्रतिभा के कारण इन्हें बम्बई की प्रादेशिक सरकार और टाटा से विशेष छात्रवृत्ति मिली जिससे अजंता, एलोरा, बाघ गुफाएँ, कोणार्क आदि भारत के प्रमुख कला-तीर्थों का इन्होंने भ्रमण किया। बम्बई में भित्तिचित्रण की स्नातकोत्तर परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् उन्हें यूँ गम्भीर अनुशीलन का मौका मिला और वे इस दिशा में ठोस रचनात्मक कार्य कर सके।

मदुराई के अंचल में

सन् '४४ में कुलकर्णी दिल्ली आगए थे। दिल्ली क्लाथ मिल के डिज़ाइनर की हैसियत से इन्होंने वहाँ नौकरी की, पर अपने कठिन और अनवरत अध्यवसाय के फलस्वरूप इन्होंने अपना विशिष्ट स्थान बना लिया और राजधानी के प्रमुख कलाकारों में इनकी गणना होने लगी। इन्होंने अनेक सरकारी और ग़ैर सरकारी कार्यों को सम्पन्न किया। मेरठ और नई दिल्ली में क्रमशः आयोजित कांग्रेस-अधिवेशनों के पंडाल को सुसज्जित किया। १९५३ की नई दिल्ली की रेलवे प्रदर्शनी की सुसज्जा का कार्यभार भी इन्हीं को सौंपा गया। १९५० में अमरीका में अन्तर्राष्ट्रीय कला आयोजन के अन्तर्गत भारत सरकार की ओर से इन्हें प्रतिनिधि बनाकर भेजा गया। वहाँ से ये यूरोप गए और इन्होंने अपने चित्रों की कई प्रदर्शनियाँ की। देशी-विदेशी कला-शैलियों और तत्सम्बन्धी विचारधारा के आदान-प्रदान द्वारा, रेडियो और टेलीविज़न

वार्त्ताओं द्वारा तथा विदेशी कलाकारों के सम्पर्क द्वारा इन्होंने न सिर्फ़ अपनी ज्ञान वृद्धि की, वरन् भारतीय कला की मूलभूत परम्पराओं का प्रचार-प्रसार भी दूसरे देशों में किया।

सबसे पहले इनके चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनी दिल्ली की फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के तत्त्वावधान में हुई। तत्पश्चात् इन्होंने फाइन आर्ट्स एकेडेमी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, नई दिल्ली की आठ कलाकारों और बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में सोत्साह भाग लिया। १९५५ की राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया और देश-विदेशों से न जाने कितने अवार्ड, रजत व स्वर्ण पदक, नक़द राशियाँ और प्रशस्ति-पत्र प्राप्त हो चुके हैं। 'दिल्ली शिल्पी चक्र' के प्रमुख संस्थापक सदस्यों में से ये एक हैं और दिल्ली की 'त्रिवेणी कला संगम' के डायरेक्टर भी हैं।

इतने उच्च पदासीन होते हुए भी कुलकर्णी की प्रेरणा के स्रोत नागर संस्कृति से परे ग्राम की सामासिक संस्कृति के द्योतक हैं। 'टोकरी लिये लड़की' 'पनघट पर', 'कहानी वक्ता', 'कार्यरत', 'कबाड़ी', 'खेत', 'बैल' आदि चित्रों में जनजीवन की झाँकी है। भले ही मातीस जैसे विदेशी कलाकारों का प्रभाव उनकी सूक्ष्म रेखांकन पद्धति पर पड़ा हो, किन्तु विषय चयन में वे सर्वथा भारतीय हैं। उनके चित्रों को देखकर जब कभी किसी दर्शक का मन शंकाकुल हो उठा है तो उनकी निश्छल अभिव्यक्ति से उसका मन भी अभिभूत हो उठा है।

उनके काम करने का ढंग बड़ा सरल है। सरल और रोज़मर्रा के दृश्यांकनों को ही उन्होंने चित्रांकित किया है। वे एक अच्छे पोर्ट्रेट पेंटर हैं और मिट्टी, धातु आदि पर भी काम किया है। भारत सरकार और कई प्रांतीय सरकारों ने इन्हें प्रमुख नेताओं, विशिष्ट व्यक्तियों के छविचित्र बनाने का काम सौंपा था। जलरगों, तैलरंगों, रेखांकनों, मूर्त्तिकला एवं भित्तिचित्रण में ये समान रूप से दक्ष हैं। इनमें रेखाओं ओर रंगों की गहरी पैठ है, एक झपाटे में ही वे विषय में सजीवता भर देते हैं। उनके चित्रों का आलंकारिक रूप, लाक्षणिक व्यंजना, रंगों की ताज़गी और नये-नये विषय और काम करने के तौर तरीके बिस्मयकारी रूप में समसामयिक कला-प्रणालियों को समृद्ध और उर्वर बना रहे हैं जिसने आधुनिक पुट देकर उनकी कला को नये ढंग से प्राणान्वित किया है।

कँवल कृष्ण

कँवलकृष्ण इस समय भारत के सर्वाधिक प्रमुख जलरंग कलाकार हैं। तिब्बत में वे पाँच बार गए। दलाई लामा के आमंत्रण पर ल्हासा में काफ़ी अर्से तक रहे। भूटान, सिक्किम और हिमालय के निकटवर्ती क्षेत्रों का व्यापक दौरा किया। भारतीय सैन्यदल के साथ वे काश्मीर में कुछ समय तक कार्य करते रहे, जहाँ प्रकृति के हिमानी वैभव का एक नया अध्याय उनके नेत्रों के समक्ष अनावृत्त हुआ। पर्वतीय भू-प्रान्तर के इर्दगिर्द फैला बर्फ़ का श्वेत वितान और क्षितिज से उठती जलपोत से टकराती सूर्य-रश्मियों की अविच्छिन्न स्वर्ण-रेखाएँ, विस्तीर्ण गगन की असीमता में स्वर्ण और श्वेत खण्डों का साथ-साथ संचरण, शुभ्र, लोहित, नील, श्याम वर्ण के विविध मेघों के मध्य इठलाती-मचलती इन्द्रधनुषी शोभा, दूर पर्वत मालाओं के उच्च शृंगों का मनोरम दृश्य, सान्ध्य सौन्दर्य से दीप्त अस्ताचल में भगवान भास्कर का राग रंजित अंगराग-जैसे धरती-अम्बर को अपने आप में समो लेना चाहता है—यूँ देश-प्रदेश की संस्कृति और नजारों को इन्होंने अपनी कला में दर्शाया है। दृश्य-चित्रणों ख़ासकर बर्फ़ के चित्रांकनों में ये अपना सानी नहीं रखते, बल्कि वही इनके चित्रों का प्रमुख विषय है।

दंत पीड़ा

भारत का सौन्दर्य हिमालय के अंचल में लहराता है। हिमानी सुषमा से प्रेरित इनके कतिपय चित्रों में रूप, रंग, रेखाएँ बड़ी ही प्रौढ़ हैं और वाचाल

प्रकृति की चित्रपटी पर अंकित विभिन्न भंगिमाएँ और क्षण-क्षण परिवर्तित होनेवाली आह्लादमय मुद्राएँ किसी महा आयोजन का मूक आह्वान है जो चर्तुदिक् बिखरी सर्वांग रूप-श्री से अठखेलियाँ सी करता है। उन्होंने न सिर्फ़ अपने देश की, वरन् दूसरे देशों की संस्कृति, दर्शन और परम्पराओं को भी स्वीकार किया है, यही कारण है कि उनमें शैलीगत और विषयगत वैविध्य द्रष्टव्य है। इनकी विभिन्न प्रणालियों और शिल्प विधियों में एक कुशल संगतराश की सी सूक्ष्म गढ़न, तराश और चित्रांकन की नई-नई विधाएँ और ढंग अपनाये गए हैं। जबकि ये कलिम्पोंग में थे तो इन्होंने सैकड़ों स्केच बनाये और नुकीले चाकू व ब्रुश के प्रयोग से उन्हें आकार प्रदान किया। कभी-कभी गीले रंगों की गाढ़ी सतह पर चाकू से तराशकर वे पुराने स्केचों में सजीवता भर देते हैं। पाँच या छः वर्ष पहले की बनी रेखाकृतियों व स्केचों में ये सफ़ेद रंगों से बर्फीले पहाड़, काले रंगों से बड़ी-बड़ी भयानक चट्टानें, भूरे बादामी रंगों से ढालू रास्तों और उपत्यकाओं के नजारे प्रस्तुत कर देते हैं। ऊँचे-ऊँचे मकान और विभिन्न भवन-निर्माण-पद्धति की दिग्दर्शक इमारतें चाकू और ब्रुश के 'स्ट्रोक' से हूबहू खड़ी हो जाती है। सफ़ेद इनका सबसे प्रिय रंग है जिसकी सहायता से तिब्बत के हिमाच्छादित

कश्मीरी शीत का एक नज़ारा

विशाल पर्वत, कलकल करते दुग्ध फेनिल निर्झर, बलखाती नदियाँ, पचीस हजार फुट से भी ऊँचा चितराल के पहाड़ की बर्फ़ ढकी चोटियाँ, खैबर क्षेत्र का अफ्रीदी घंटाघर, पर्वतीय प्रदेश में सूर्य की रंग-बिरंगी किरणों से ज्वाज्ज्वल्यमान नजारे आँके गए हैं। स्थल और रंग-योजना में चीनी प्रभाव है तो चित्रण-शैली पर यूरोपीय प्रभाव।

इनके काम करने की टेकनीक संगतराश की सी है। चाकू की नोंक के कुछेक झपाटे बड़ी ही स्पष्ट और प्रभावकारी दृश्यों की सर्जना करते हैं। भारत-तिब्बत सड़क पर शिपकीला दर्रे में से गुज़रता 'याकों का झुंड', 'बर्फ़ पिघलते खेतों का दृश्य', 'जाड़े के साये', उत्तरी नार्वे में 'मछली वाले गाँव का दृश्य', 'लोफोटेन की खाड़ी का अशांत जल', 'मनुष्य रहित मैगडालेन खाड़ी', 'जनाज़ा', हिमालय और काश्मीर के दृश्यांकनों आदि में जलरंगों का निर्माण-नैपुण्य और प्रत्यक्ष प्रभाव उत्पन्न करने की कुशलता का दिग्दर्शक है।

तिब्बती उपासना स्थल

पेरिस की यूनेस्को कला-प्रदर्शनी में इन्होंने अपने चित्रों को प्रदर्शित किया और लंदन की अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इनके चित्र बहुप्रशंसित हुए। चितराल के दौरे के पश्चात् सन् १६३८ में बिहार और उड़ीसा के शोध अभियान के साथ ये तिब्बत गए और तत्पश्चात् सर बेसिल गोल्ड के साथ सिक्किम गए। उत्तर-पूर्वी सीमांत प्रदेश—खैबर, चितराल, कफ़िस्तान और अफ़ग़ानिस्तान आदि देशों में रह कर वहाँ के स्थानीय प्रभावों को आत्मसात् कर एक नई टेकनीक को रूपायित किया। श्रीनगर के प्रवास में पर्वतीय सौन्दर्य ने इनमें एक रहस्यवादी प्रवृत्ति को प्रश्रय दिया। प्रायः एकान्त में, बाहरी दुनिया की हलचल से परे, जब ये अपनी गहन चिन्तन मुद्रा में एक दूसरी दुनिया और उसमें बसने वाले रूपाकारों को उभारते हैं अथवा अपने द्वारा गढ़े गए इन अजनबियों के बीच होते हैं तो रंग और रेखाएँ उनमें स्थूल और सूक्ष्म का द्वैत मिटाकर चरम अनुभूति जगाती हैं। हिमालय, स्वीडन और नार्वे के हिमाच्छादित उत्तुंग श्रृंगों से इन्हें दिव्य प्रेरणा मिली है जैसे उसके महनीय रूप में तदाकार हो इनका मन तार्किक द्वैत से परे सर्वग्राही हो उठा और कलाकार की अंतर्दृष्टि इनमें जगी। इन्होंने अनेक पुराने, जीर्ण चित्रों का

पुनरुद्धार किया है, जर्जर ढाँचों में जान डाली हैं और धूमिल, फीके और बदरंग रंगों को प्राणवान बनाया है।

कँवलकृष्ण की साधना एक संघर्षशील, महत्त्वाकांक्षी और चिर यायावर के चिर परिश्रम का प्रतीक है। वे बहुत घूमे हैं और अपने व्यापक ज्ञान को उन्होंने निजी कृतियों में ढाला है। यूरोपीय देशों में इन्होंने कई बार भ्रमण किया है। पाश्चात्य प्रणालियों का प्रभाव भी उनकी चित्रण-पद्धति पर पड़ा है, पर उन्होंने किसी एक मास्टर को अपना गुरु नहीं बनाया। एक प्रकार से उनकी कला प्राच्य व पाश्चात्य प्रणालियों के समन्वय की स्वयंप्रादुर्भूत मौलिक चिन्तन की दिग्दर्शक है। 'देवताओं का आवास' (House of Gods) उनका एक ऐसा चित्र है जिसमें सत्रह हज़ार की ऊँचाई पर तिब्बती साधुओं के पूजा-स्थल निर्मित हैं और दैवी संकटों से बचने के लिए वे पूजा-आराधना रत दीख पड़ते हैं। इनका सुप्रसिद्ध चित्र 'Man proposes, God disposes' में काश्मीर घाटी के बर्फ़ की झाँकी प्रस्तुत की गई है जिसमें चीनी निर्माण पद्धति का प्रश्रय लेकर कागज़ पर ही रंग और उसके मिश्रण का अद्भुत सामंजस्य दर्शाया गया है। 'The Holy Walk' में एक प्राचीन पूजास्थल में व्यक्तित्व उभारे गए हैं और 'Chortens' में तिब्बत के मन्दिरों और उपासनागृहों का वह स्थान है जहाँ प्रसिद्ध लामाओं की वस्तुएँ और अवशेष सुरक्षित हैं। ऐसे स्थल तिब्बतियों के लिए बड़े ही पवित्र और पूजनीय होते हैं और वहाँ के लोग नित्यप्रति उनकी उपासना परिक्रमा के लिए जाते हैं।

नार्वे की एक मछली

जलरंगों के अतिरिक्त ग्राफिक और तैलरंगों में भी इन्होंने पेंटिंग की है। इन्होंने भारत, यूरोप और अनेक बाहरी देश-प्रदेशों में अपनी चित्रकला

प्रदर्शनियाँ की हैं, साथ ही समय-समय पर आयोजित विभिन्न कला-प्रदर्शनियों में भी भाग लिया है। ब्रिटिश कौंसिल के निमंत्रण पर बदले के आधार पर इन्होंने एक ब्रिटिश स्कूल में अध्यापन कार्य किया है। आजकल नई दिल्ली के माडर्न स्कूल में कला-विभाग के अध्यक्ष पद पर ये कार्य कर रहे हैं।
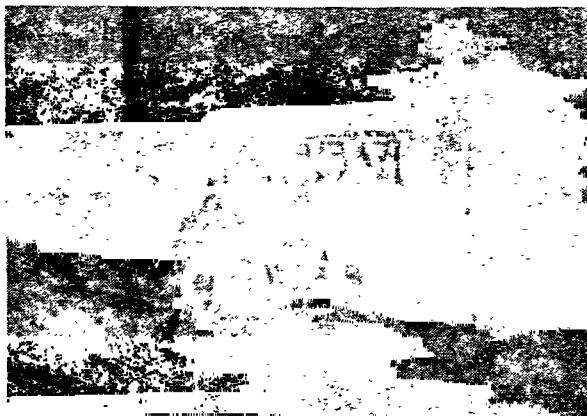
घुड़सवार बिना घुड़दौड़

इनकी अंतहीन जिज्ञासा, अदम्य कौतूहल और नई-नई कला-प्रणालियों के अन्वेषण का अनवरत आग्रह आज भी नित-नये प्रयोगों को प्रश्रय देने की दिशा में इनके उत्साह एवं अभिरुचियों को जागरूक और वर्द्धमान बनाये हैं।

सतीश गुजराल

सतीश गुजराल के कुछ आलोचकों की दृष्टि में उनके चित्रों की आकृतियाँ सहज विरूप, दर्दीली और दहशत पैदा करने वाली होती है। कचोटती व्यथा, भीतरी मसोस और विद्रोही भावनाओं के कारण उनकी दुनिया उजड़ी और सूनी है। निराशा और अवसाद ने उनकी प्रफुल्लता को ग्रस लिया है और दर्शकों को लगता है जैसे जीवन निरानन्द, नितान्त एकांगी और दुःख-क्लेशों का अनवरत मंथन है। उनके कुछ अपने व्यक्तिगत सिद्धान्त हैं—मनुष्य के मनोविज्ञान के बारे में, जो अपनी ज़बर्दस्त ईहा के कारण परिस्थितियों से नित्य जूझता रहता है। मनुष्य महान् और महत्त्वाकांक्षी हैं, कोरा निराशावादी नहीं, तभी तो सदैव संघर्षों में विश्वास करता है। मृत मानव के साथ कोई झंझट झमेला नहीं, वह उसकी चिरशांति का प्रतीक हैं, पर जीते-जी आशा-आकांक्षाओं व प्रगति की चाह ही उसकी बिगड़ी मनः स्थिति, विरूप भाव भंगी और भीतरी ऊहापोह एवं कशमकश की व्यंजक है। उन्होंने बार-बार कहा हैं—'मैं उस जीवन का चित्रण करता हूँ जहाँ कि मैं खुद रहता हूँ। भाग्य की विडम्बना के प्रति कला ही मेरा रक्षा-कवच है।'

१६२५ में गुजराल का जन्म झेलम में हुआ था जो कि अब पाकिस्तान में है। दस वर्ष की आयु में ही वे एकदम बहरे हो गए। तब से सूनी, उजाड़ गूंगी दुनिया में ये अपनी नितान्त ऐकान्तिक और निगूढ़ चिन्तनरत अवस्थिति में एकरस रहते हैं। अपने अंतरंग मूक मौन को अभिव्यक्ति देने के लिए इन्होंने तेरह वर्ष की अल्पायु में ही चित्रकारी अपना ली और लाहौर के आर्ट स्कूल में दाखिल होगए। तीन वर्षों तक लगातार प्रशिक्षण पाकर भी इनकी प्यास वहाँ पूरी नहीं हुई और ये बम्बई के सर जे.जे. स्कूल आफ आर्ट में कला के विशेष अध्ययन के लिए चले गए। एक छात्र के बतौर ये यदा-कदा मेनरोड स्थित कम्युनिस्ट पार्टी के दफ्तर में भी उन्हीं दिनों जाया करते थे। साम्यवादी प्रभाव ने इनमें मानव मुक्ति की निष्ठा जागरूक की जिसके लिए वह नियंत्रण की नियति और बंधन की कारा से मुक्त होने के लिए निरन्तर संघर्ष कर रहा है।

कुछ वर्षों तक शिमला में गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट में ये वाइस प्रिंसिपल रहे। किन्तु पंजाब के विभाजन के समय उन्होंने जो भयानक दृश्य और दर्दनाक नज़ारे देखे वे उनकी चेतना में धँस गए—"मैं निराशावादी नहीं हूँ, किन्तु इस विध्वंस और विभीषिका का भय जैसे मेरे भीतर समा गया।' जिन खौफ़नाक घटनाओं ने इन्हें त्रस्त बनाया, भयानक चीत्कारें, चीखें, मौत की मर्मांतक करुण पुकारें, शोरगुल, हाय-हत्या, कत्लेग्राम, मानव रक्त पिपासु पिशाचों के प्रतिशोध की कुत्सा, बिनाश का ताण्डव लीला, स्त्री-बच्चों का संहार, इंसान के बहशीपन का नंगा प्रदर्शन--इस प्रकार यन्त्रणा की पराकाष्ठा और व्यथाकुल कचोट के 'क्लाइमेक्स' ने इनमें उद्वेलन और उत्तेजना जगाई। इस नये ताज़े दर्द ने इनके दिल के घाव को हरा कर दिया, इनकी सुप्त आत्मा जैसे परिस्थितियों की ठोकर खाकर सिहर उठी। इन्होंने बस तभी से मनुष्य के उस दर्दनाक पहलू को अपना 'थीम' बनाया जो बदलती परिस्थितियों की चक्की में पिसते रहकर अपने आप को नित्य की टूटन में खो देता है।

भाग्य को चुनौती

एक ओर नौकरी तथा दूसरी ओर चित्र साधना के लिए अवकाश न मिलने के कारण उन्होंने वह नौकरी छोड़ दी। बग़ैर नौकरी के उन्हें और भी दुर्वह परिस्थितियों का सामना करना पड़ा। बेहद गरीबी, पैसे का अभाव, दाने-दाने को मुहताज, बड़ी ही दुरवस्था से इन्हें गुज़रना पड़ा। कही से कुछ पैसे मिल गए तो उसी से कुछ दिन काम चलता रहा। अचानक किस्मत का सितारा बुलन्द हुआ। १९५२ में मेक्सिको जाने के लिए इन्हें छात्रवृत्ति मिल गई जहाँ ये दो वर्ष तक रहकर दीगो रिबेरा जैसे विश्वविश्रुत कलाकार की देखरेख और तत्त्वावधान में कला का अध्ययन करते रहे। निर्माण पद्धति, रेखांकन और रंगों की टेकनीक पर

मेक्सिकन स्टाइल को इन्होंने विकसित किया जो इनकी मौलिक चित्रण योजना से और भी परिपुष्ट एवं परिपक्व होकर उभरा।

मेक्सिको से एडवांस पेंटिंग और म्यूरल टेकनीक में इन्होंने डिप्लोमा प्राप्त किया। वहाँ से ये अमेरिका और यूरोप ख़ासकर फ्रांस और ब्रिटेन गए जहाँ इन्होंने अपनी कला प्रदर्शनी आयोजित की। नये अजीबोग़रीब ढंग की इस चित्र प्रदर्शनी से वहाँ के लोग चकाचौंध हो उठे। मनुष्य का यह रूप, यह उलझा मनोविज्ञान-उन्हें लगा जैसे वह ख़ुद अपने विरुद्ध घोर संघर्ष कर रहा है, वह अपनी ही प्रच्छन्न रहस्यमयी पर्त्तों को भेदकर कारामुक्त होना चाहता है। वह अजब परिस्थितियों में फँसा अपने पंख फैलाने के लिए फड़फड़ा रहा है। भाग्य की अवश लहर के साथ विवश होकर वह लुढ़कने वाला जड़ पदार्थ नहीं, बल्कि उसका स्वयं चालित मन और प्राण है। अपनी जीवन नौका का नाविक वह ख़ुद है और स्वयं संचालक बनकर ही वह जान सकता है कि वह किस दिशा में अग्रसर है और कहाँ उसे जाना चाहता है।

गुजराल के चित्र मानव मन की प्रच्छन्न पर्त्तों के उद्घाटक हैं। बाह्य औपचारिकताएँ और सभ्यता की नक़ाब में मनुष्य अपनी भीतरी यातनाओं को छिपाता है। वह दुःख-वेदनाओं, बाहरी झंझट-झमेलों और आपदाओं से बचकर निकलना चाहता है। मनुष्य कूद कर कहीं भागना चाहता है। पर भाग्य की दुर्भेद्य निर्मम प्राचीरें उसके सामने आड़े आ जाती है। वह भागकर कहीं नहीं जा सकता। अतएव उसके जीवन संघर्ष के इसी राज़ को गुजराल ने पा लिया है।

इनकी पेंटिंग में चित्रित बड़ी-बड़ी कोठियाँ, भवन, इमारतें, लाल, पीले, हरे, जामुनी उभरते चमकीले रंग, पर पीड़ित व्यथाकुल आकृतियाँ एक नाटकीय प्रभाव उत्पन्न करती हैं। जीवन, इनकी सम्मति में, एक नाटक ही तो है। जो वैभव सम्पन्न, सुखी या बड़े माने जाते हैं उन्हें भी इसकी भारी कीमत चुकानी पड़ती है। किसी का बड़प्पन ही उसकी अपनी सीमाओं का विद्रूप है। इनका ध्येय प्रत्येक बड़े से बड़े और छोटे से छोटे मानव में संघर्ष बिन्दु की खोज है। संघर्ष उसके लिए अवश्यम्भावी है। बिना संघर्ष के कोई आगे नहीं बढ़ा। दरअसल, संघर्ष ही 'एडवेंचर है, अभियान है, साध्य और साधन है मानव जीवन का।

गुजराल अपने चित्रों के प्रतीक रोज़मर्रा की घटनाओं और सामान्य जन जीवन से चुनते हैं। ज़िन्दगी को निकट से पाने की अधिकाधिक प्रवृत्ति उनमें

बढ़ती जा रही है। पुल पर, किसी बिल्डिंग की ऊँची-ऊँची काली दीवारें, कोरीडोर, चौखट और दरवाजे जहाँ लगता है जैसे कोई छिपा खड़ा है, लैम्प-पोस्ट और पंजों की तरह झुकी रोशनी की बत्तियाँ मानो वे अपनी चपेट में कभी भी, किसी भी क्षण दबोच लेंगी, रहस्यमय मकबरे और समाधियाँ, टेढ़े-मेढ़े आकार, ठंडे रंग, विजड़ित वातावरण और नित नये संघर्ष को मुखर करते चेहरे—लगता है जैसे शेक्सपीयर के हेमलेट और मेकबेथ की दुर्दान्त स्थिति के व्यंजक है। इनके चित्र जो दर्शक में जुगुप्सा जगाते हैं मानो मौत की सी जड़ता लिये वे सुनने के लिए ध्यानस्थ हैं, उनकी आकृतियाँ नींद में चलती हुई सी किसी अज्ञात की ओर अग्रसर हैं, प्रेत की सी रहस्यमयता और छायाभास के कारण इनमें दुःखावेग और प्रपीड़न का प्रस्फुटन दीख पड़ता है।

इन्होंने अनेक पोर्ट्रेट भी बनाए हैं। बाटिक कला में भी ये सिद्धहस्त हैं। म्यूरल पेंटिंग में इनकी दृढ़ आस्था है और जन-जीवन से निकट सम्पर्क स्थापित करने के लिए वे इसे एक महत्त्वपूर्ण माध्यम मानते हैं। पुस्तकालयों, अजायब घरों, कैंटीनों, छवि-गृहों, सेनिटोरियम और सार्वजनिक स्थानों की दीवारों पर यदि भित्ति चित्रण हो तो जनता उससे बहुत अधिक सीख सकती हैं। म्यूरल अपनी भाषा में लोगों से बातें करेंगे, लोगों की एक बड़ी भीड़ उनका निरीक्षण करेगी और अपनी भावना के अनुरूप उसे समझे-बूझेगी। कला ड्राइंग रूम की सज्जा के लिए ही सिर्फ़ न हो बल्कि जन-जीवन में उनका उपयोग हो, साथ ही विचारों के व्यापक आदान-प्रदान का भी वह माध्यम बने।

दर्द की मसोस

गुजराल ने यूरोप और अमेरिका का खूब भ्रमण किया है। न्यूयार्क, मेक्सिको, फ्रांस, लंदन, बम्बई, दिल्ली आदि स्थानों में इनकी व्यक्तिक कला-प्रदर्शनियाँ आयोजित की गई हैं। यूरोपीया टेकनीक के कारण उन्होंने अभिव्यक्तिवादी और प्रतीकवादी पद्धति पर अपनी कृतियों को सिरजा है। मेक्सिकन प्रभाव को उन्होंने स्वयं स्वीकार किया है और वहाँ की पीड़ा को, दुःख दैन्य, निराशा और विषाद को, यहाँ तक कि उस देश के वैषम्य को यहाँ के देशी रंगों में ढाला है। विश्व भर की पीड़ा और संघर्ष उनकी कला का प्रतिपाद्य विषय है, ऊहापोह और तनाव भरी मौजूदा जिन्दगी से कोई भी संवेदन शील कलाकार पृथक् नहीं रह सकता। उसकी अभिव्यक्ति व निरूपण में वह निस्संग और अलगाव कैसे बरत सकता है, अतएव शोषक और शोषितों की दुःखमयी स्थितियों का दिग्दर्शन ही उनकी कला का ध्येय है। समूचे मानव की पीड़ा और वेदना को अपने तई समेटने, उसके संघर्ष के मूल उत्स को खोजने और समूची दिलो-दिमाग़ की उथल पुथल के साहसिक रहस्योद्घाटन का ही वे नित-नया प्रयास करते आ रहे हैं।

फिर भी वे निराश, कुंठित या पूर्वाग्रही नहीं हैं, बल्कि नियति के निर्मम हाथों रौंदी जाने वाली मानवता के प्रति मूक संवेदना और कचोट इनमें है। एक बार उन्होंने कहा था—'यदि मेरे चित्रों में करुणा है तो उसका कारण यह नहीं कि मैं दुःख का पैगम्बर हूँ या निराशा में मेरी निष्ठा है। सुख-दुःख, मुसीबतें, प्रतिहिंसा और प्रतिरोध किसके जीवन में नहीं होते। परन्तु सच्चे कलाकार का गौरव इसमें है कि उसकी आपबीती जगबीती बन जाय। फिर वास्तविकता से मुख मोड़ना तो कायरता है। कलाकार तो वह है जो दुःख को सुख में परिणत कर दे और भाग्य की लकीरों को ही मिटा दे।'

'तूफ़ान के तिनके', 'तिरस्कृता', 'आत्महत्या के पूर्व', 'निराशा', 'आँधी के अनाथ', 'स्मृतियों का जाल', 'अतीत की यादगारें', 'बलात् पतिता का प्रत्यागमन', 'भाग्य', 'कहाँ है प्रकाश', 'अश्ने आजादी', 'दोपहरी को अँधियारा', 'अन्त का आरम्भ' आदि इनकी कुछ उत्कृष्ट कृतियाँ हैं जो युग-युगों से त्रस्त मानवता की करुण कहानी के मर्मांतक दृश्य उपस्थित कर दर्शक को कचोटती करुणा से अभिभूत कर लेते हैं।

प्राणनाथ मागो

प्राणनाथ मागो के चित्र उनकी आत्मविश्वास की सरल निष्ठा से प्रसूत हुए हैं। उनकी विशेषता है जनजीवन का चित्रण अर्थात् रोज़मर्रा की घटनाओं और दृश्यों को वे बड़ी मार्मिक यथार्थता से उभारते हैं। सामान्य जिन्दगी के नज़ारे जिन्होंने उनके मन को बाँधा और ऐसे-ऐसे बिम्ब जिनसे उनकी हृदय-तंत्री झंकृत हो उठी, वे असंख्य मामूली बातें जिनकी हम उपेक्षा किया करते हैं और यूँ ही बिना देखे गुज़ार जाते हैं, वे समूचे दृश्य, सारे टुकड़े, जीवन खण्ड इनकी भावनात्मक चेतना के धरातल पर कितने सक्रिय, कितनी संवेदना से लबालब हो उठते हैं। अपने चारों ओर के वातावरण की तीखी पकड़ जो चित्रकार के जीवन के अनमोल क्षण हैं इनकी अपनी खोज, अपनी दृष्टि की गहरी पैठ का परिणाम है। 'नहाती भैंसें' जहाँ गाँव के माहौल में तालाब के भीतर भैंसों के स्नान का दृश्य तैलरंगों में सजीव कर दिया, 'मछिहारे' जिनमें जलाशय के चारों ओर मछली पकड़ने की विभिन्न

जल क्रीड़ा

भंगिमाओं के दर्शन होते हैं, 'मातम' चित्र में किसी आत्मीय की दारुण मृत्यु के अवसर पर शोक संतप्त नारियों का चित्रांकन है जो एक दूसरे से गले मिलकर अपनी वेदना और व्यथा में विभोर हैं, 'नगाड़ेवाले,' 'ढोलिए', 'चरवाहे,' 'चावल की फसल रोपनेवाले', 'मध्याह्न की कहानी' आदि कतिपय चित्रों में गाँव की पृष्ठभूमि में उभारी गई सजीव दृश्यावली है।

'नहर का पुल' और 'शिकारे' में श्रीनगर की सुन्दर झाँकियाँ हैं, 'बेकार' चित्र में आजीविका रहित लोगों की पीड़ा की मसोस, 'रिक्शे' में इस हस्त-

चालित भारवाहक सवारी की एक विशेष स्थिति दर्शायी गई है। उनकी कला केवल तार्किक या मनोवैज्ञानिक आधार पर नहीं गढ़ी गई,वरन मानव-जीवन से उसका प्रगाढ़ सम्बन्ध है। वे जनवादी कलाकार हैं, जन-जीवन में निहित सामान्य तत्त्वों को उन्होंने अपनी कला में आत्मसात् किया है। यथार्थ यदि कुरूप, अप्रिय या अवांछनीय है तो उन्होंने अंतः सौन्दर्य से उसे दीप्त किया और प्राणों की ऊष्मा का निवेश कर उसकी निष्प्राण रूढ़ि में जिन्दगी की रवानी पैदा कर दी।

पंजाब के एक हरे-भरे गाँव गुज्जर खान में मागो का जन्म हुआ। वहाँ के दुःख-दैन्य, हर्ष-विषाद और संघर्षशील जीवन के अगणित चित्र, जो इन्होंने बचपन में देखे थे, इनके प्राणों के साथ संश्लिष्ट हो गए। गाँव के भोले-भाले निरीह साथी, प्रकृति की क्रोड़ में विचरण करने वाले भोले-भाले ग्रामीण और बचपन की अल्हड़ मस्ती में देखी गई सच्ची घटनाएँ—सभी कुछ जसे बाद में इनके चित्रों का 'थीम' बन गया। इनके साधन-सम्पन्न माता-पिता इन्हें कुछ और बनाने के स्वप्न देख रहे थे, पर बचपन में इन्हें चित्रकला का बेहद शौक़ था और इनकी ड्राइंग बहुत अच्छी थी। प्रारम्भ में इनकी शिक्षा रावलपिंडी के गोर्डन कालेज में हुई, किन्तु बाद में आगे कला-अध्ययन के लिए ये बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में दाख़िल हो गए। मेयो स्कूल आफ आर्ट से सम्बद्ध रहकर ये कई वर्षों तक लाहौर में भी रहे और पंजाब के जन-जीवन से प्रभावित भावेश सान्याल के कलाग्रुप के साथ नव्य धारा के प्रवर्त्तक थे। जल-रंगों की अपेक्षा तैलरंगों में काम करना इन्हें अधिक रुचिकर है, क्योंकि अपने अनुभूत तथ्यों को गहराई से आँकने में उनमें व्यंजकता और चमक का विशेष मिश्रण हो सकता है। उनकी कला-प्रवृत्तियाँ क्रमशः विकसित होती गईं, अपने ब्रुश-प्रयोगों में वे वैंगाफ से प्रभावित हैं, पर उनके चित्रों की आत्मा एकदम

अफ़वाहें

भारतीय है। उनके रूपाकारों की निर्माण प्रक्रिया और समूचे 'पैटर्न', रंग एवं रेखाओं की अंकनबिधि मौलिक ढंग की है, उनमें भारतीय सुसज्जा और विषय को तद्नुरूप व्यंजित करने की सदाशयी दृष्टि और विशद चिंतन है, कितने ही चित्र सच्ची भावाभिव्यंजना और द्रुत शक्तिमत्ता के कारण एक रंजक प्रभाव दर्शक के मन पर छोड़ जाते हैं।

शिमला स्कूल आफ आर्ट्स और दिल्ली पोलिटेकनीक में उन्होंने अध्यापन-कार्य किया। आजकल दिल्ली के ऑल इंडिया हैंडीक्रैफ्ट बोर्ड के डिज़ाइन केन्द्र के डायरेक्टर हैं। बम्बई, दिल्ली और पंजाब में इनके चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुई हैं। समय-समय पर आयोजित देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्रों की सराहना एवं प्रशंसा हुई है, ख़ासकर पंजाब और काश्मीरी जन-जीवन के दिग्दर्शक चित्र अपनी सुष्ठु और यथार्थ अभिचेतना के कारण विशेष लोकप्रिय हैं। कतिपय चित्रों पर इन्हें पुरस्कार भी मिले हैं। अपनी अनवरत लगन, तत्परता और श्रमसाधना के फलस्वरूप सत्य की खोज का चरमोत्कर्ष ही इनका सदा ध्येय रहा है। लोकाश्रयी तत्त्वों की श्रेय-प्रेय कल्पना को उन्होंने नित-नया विकसित रूप प्रदान किया, साथ ही महनीय के साथ चिरपरिवर्त्तनीय को जोड़ने का भी इन्होंने अथक प्रयास किया।

हरेकृष्ण लाल

पंजाब की शस्य श्यामला भूमि की निसर्गजात सुषमा, स्वच्छ वायु और खुले आकाश के नीचे हरेकृष्ण लाल की अपलक निर्निमेष दृष्टि ने रंगों का खेल देखा है। वे लुधियाना में पैदा हुए। कला उनकी पैतृक परम्परा नहीं थी, फिर भी इनकी रुचि जन्मजात थी। इनके पिता, जो पंजाब के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट में काम करते थे, बच्चे की इस खब्त से परेशान थे। इस ओर न उनकी अभिरुचि थी और न इतना समय कि वे पुत्र के इस शौक़ की दाद दे सकते। इसके विपरीत उन्हें उसका भविष्य अंधकारमय दीख पड़ रहा था। १९४० में लुधियाना के गवर्नमेंट कालेज से ग्रेजुएट होने के पश्चात् हरेकृष्ण लाल ने उसी वर्ष सर जे० ज० स्कूल आफ आर्ट, बम्बई में प्रवेश ले लिया, किन्तु १९४२ में कांग्रेस द्वारा 'भारत छोड़ो' आन्दोलन के सिलसिले में इनकी पढ़ाई में कुछ समय के लिए व्यवधान उपस्थित हो गया।

जयपुर का एक दृश्य

उस समय इन्हें विषम परिस्थितियों से जूझना पड़ रहा था। घोर आर्थिक संकट आ उपस्थित हुआ। अध्ययन का क्रम टूट चुका था, किन्तु एक मित्र की मदद से इनकी पढ़ाई फिर से चालू हो गई। उस समय इन्हें बेहद तकलीफ़ों का सामना करना पड़ा। एक छोटे से तंग कमरे में अपने सात साथियों के साथ वे किसी कोने में पड़े रहते। इस भीड़भाड़ में भी इनकी चित्र-साधना जारी रही। अपने अन्तिम पाँचवें वर्ष में ठीक तैयारी करने के लिए उन्होंने अपनी तंग कोठरी की चौहद्दी से बाहर निकलकर खुली हवा में विचरण करना आवश्यक समझा। भारत के अनेक कला-स्थलों और प्रकृति की उन्मुक्त क्रोड़ में इन्होंने जगह-जगह घूमकर सृजन की प्रेरणा जगाई। १९४७ में डिप्लोमा लेने के पश्चात् इन्होंने अपनी शिक्षा को भारत तक ही सीमित नहीं रखा,

वरन् पाश्चात्य कला-प्रणालियों का भी इन्होंने गम्भीर अध्ययन किया। प्रारंभ में ही देगाज़ के ब्रुशवर्क के आदर्श को इन्होंने अपने सामने रखा। निगूढ़ रंगों का त्वरित प्रभाव, भागती सी रेखाएँ, बिजली की नीची बत्तियों के चकाचौंध करनेवाले प्रकाश में रेशमी वस्त्रों की थिरकती चमक, जैसा कि 'बैलट नर्त्तकों' में दर्शाया गया है, किन्तु ऐसे चित्रों में ठोस व्यंजना न थी, रंगों की कृत्रिम दीप्ति भी वांछित प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम थी, लगता था—जैसे आकृतियाँ किसी आडम्बरपूर्ण वातावरण में खो गई हैं। शीघ्र ही इन्हें ऐसी खामियों का बोध हो गया। वे अपनी देशी परम्परा के अनुरूप रंगों के सामंजस्य की खोज करते रहे। कालान्तर में इनकी कृतियों पर सुप्रसिद्ध फ्रेंच कलाकार वैगाफ और सेज़ाँ का प्रभाव पड़ा, साथ ही अजंता, मुगल शली और राजपूत कला टेकनीक से भी ये अभिभूत हुए। फ्रेंच मास्टरों के अनुकरण पर इनके रंग-नियोजन का ढंग बड़ा ही निराला था। 'कैन्वास' पर सीधे ट्यूब दबाकर गाढ़े रंगों का अनौपचारिक फैलाव और विभिन्न रंगों का मिश्रण, चित्रांकित सतह पर 'पैटर्न' का उभार और प्रतिपाद्य विषय का तदनुरूप समंजस तथा विभिन्न संदर्भो में 'टेक्सचर' की व्यंजक संस्थिति—इनकी विशेषता है।

जयपुर का एक दृश्य

इन्होने राजपूत चित्रण-शिल्प का गहरा अध्ययन किया। वहाँ के भित्तिचित्रण की बारीकियाँ और समूचे रूपाकारों की निर्माण-विधि को इन्होने आत्मसात् किया। कितने ही स्केच उसी प्रणाली पर इन्होंने निर्मित किये, जिसमें रेखाओं के प्रस्तुतीकरण में बड़ी ही समीचीनता और सूक्ष्मदर्शिता बरती गई। फतेहपुर सीकरी की म्यूरल पेंटिंग से ये खासतौर से प्रभावित हुए और इन्होंने वहाँ की सूक्ष्म टेकनीक का अपने कई चित्रों में अनुकरण किया यद्यपि 'मिनिचेयर' पद्धति इन्हें पसन्द न थी। अजंता भित्तिचित्रों की आकृतियों के निर्माण में जो सुसंयोजना और सौष्ठव है, रंगों में वरेण्य गरिमा है, निर्माण में लयमय संगीत का सा मार्दव है उसने इन्हें अभिभूत तो किया है, फिर भी किसी पिष्टपेषण या पुनरावृत्ति

में इनका मन नहीं रमता। ये स्वतन्त्र चिन्तन और नूतन अभिव्यंजना के क़ायल हैं। इनके अनेक लैण्डस्केप ग्राम्य दृश्यों और वहाँ की प्राकृतिक दृश्यावली को प्रस्तुत करने में सफल हुए हैं। हरे-भरे खेत, गाँव का तालाब, विशाल वृक्षों की छाया तले का माहौल, नगीने की तरह जड़ा कोई श्वेत मंदिर और यहाँ के भू-अंचल के हूबहू दृश्यांकनों की चित्ताकर्षक झाँकी हमें इनके कैन्वासों पर साकार हुई सी प्रतीत होती है। शुद्ध पीले, नीले, हरे, भूरे रंग अपने वैविध्य में और एक विचित्र मिश्रण की रंगमयता को मुखर करते हुए से लगते हैं। प्रकाश और छाया का समुचित सामंजस्य भी उनकी अपनी समूची शक्तिमत्ता का कोई सानी नहीं रखते।

गाँव का मेला

यूरोपीय कलाचार्यों में पिकासो, गोया, दॉमिए और माइकेल एंजलो का प्रभाव भी इनके चित्रों में द्रष्टव्य है। पिकासो के निर्माण को हृदयंगम कर इन्होंने उसके शरीर-विज्ञान के सिद्धान्त को समझने का प्रयास किया। गोया और दॉमिए की सामाजिक यथार्थता की तीव्र अनुभूति के ये प्रशंसक हैं, किन्तु उनके चित्रांकन की विरूपता और कुंठित तीखेपन की कुत्साओं का इन्होंने सर्वथा वहिष्कार किया। माइकेल एंजलो के चित्रों की महिमान्वित गरिमा ने इनके निर्माण शिल्प को ठोस संयोजना प्रदान की। उक्त विदेशी कला धाराओं और सिद्धान्तों से परिचय प्राप्त कर इन्हें परोक्ष लाभ हुआ है, पर इन्होने उनके प्रभाव को अपने तई कभी हावी होने नहीं दिया। भारत का शुद्ध प्रभावकारी
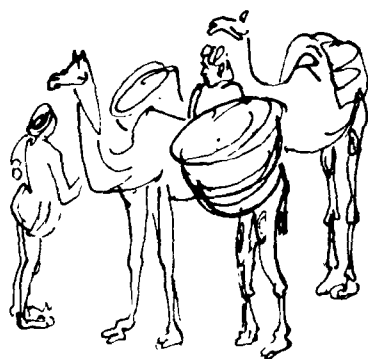
राजस्थानी दृश्य

वातावरण, स्वर्ग-नरक और पृथ्वी की परिकल्पना, आसपास के रोजमर्रा जीवन की झाँकी, खेतों में काम करते किसान या इमारतों के निर्माण में मज़दूर, गाँव के मेले, नगरों के प्रदर्शन व सामयिक समारोह, राष्ट्रीय जीवन की समस्यापूर्ण स्थितियाँ व कई प्रकार के उतार-चढ़ाव, काश्मीर के दृश्यांकनों में जल पर थिरकते शिकारे, थिरकती नौकाओं के रंग-बिरंगे झाँकते सिरे, छोटी-छोटी पहाड़ियों पर बनी झोंपड़ियाँ, खेतों के भीतर बने पूजा स्थल व मंदिर, ग्राम्य अंचल में ग्वालों का दृश्य, इक्का स्टैंड, हड़ताल आदि के कितने ही चित्रों में इनकी ठेठ भारतीयता की सर्वत्र झलक मिलती है।

इन्होंने बम्बई, दिल्ली, श्रीनगर में अपने चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। विदेशों में आयोजित कला-प्रदर्शनियों में भी ये समय-समय पर भाग लेते रहे हैं। बम्बई की फाइन आर्ट सोसाइटी और दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के वार्षिक कला-आयोजनों में इनके चित्रों को कई वर्ष तक लगातार पुरस्कार मिलते रहे हैं। दिल्ली के पालिटेकनीक में ये अध्यापन कार्य करते रहे हैं, पर इनकी जिज्ञासु वृत्ति नित्य जागरूक है और ये अपनी कला में अनवरत विकासशील एवं बहुन्मुखी दुर्लभ तत्त्वों को बटोरने में में जुटे रहते है।

दिनकर कौशिक

दिनकर कौशिक का कार्य बहुमुखो दिशाओं की ओर प्रवहमान विभिन्न परम्पराओं से संस्कारित पुरातन और नूतन में समन्वय स्थापित कर एक निजी मौलिक शैली का प्रवर्त्तन है। पाश्चात्य प्रणालियों के जीवंत सम्पर्क द्वारा इन्होंने भारतीय जीवन-दर्शन को अनेक माध्यमों और रूपों में उतारा है। कला की आत्मा को खोजने के लिए भिन्न और विरोधी तत्त्व बाधक हो सकते हैं, पर वे ही आत्मविवेक जगाते हैं। उससे जो परिणाम फलित होगा वही व्यर्थ के झाड़-झंखाड़ से मन की भूमि को साफ़ करके नये सिरे से सौन्दर्य के फूलों की खेती उगाएगा।

महत्त्वाकांक्षा ही तो किन्हीं विकासशील मान-मूल्यों का मापदण्ड है। महत्त्वाकांक्षा ही वह प्रतिस्पर्द्धा है जो आगे बढ़ाती है और आगे बढ़ने की होड़ में ही आत्मा सबल और गतिमान होती है जो उन्नति के शिखरों को छू पाती है। निजता के सत्य रूपी बीजांकुर जिस दिन वृक्ष रूप में पल्लवित होते हैं तभी एक बड़ी क्रान्ति का सूत्रपात होता है।

स्व-विवेक के प्रकाश में गति करने के लिए हल्का-फुल्का मन चाहिए जो रूढ़िमुक्त हो और सहज ही समयानुरूप ढल जाए, साथ ही ऐसा बोध होना चाहिए जो अन्य संस्कारों की गिरफ्त में बँधकर परतन्त्र न हो, बल्कि व्यक्ति की स्वतन्त्र चिन्तन धारा को आविर्भूत करने में सक्षम हो।

पुरानी पीढ़ी ही नई पीढ़ी को विरासत में बहुत कुछ दे जाती है। किन्तु उसी शृंखला में जो नये आगंतुकों को बाँधकर चलते रहने की हिमाक़त करते हैं वे अतीत के चाकर हैं और भविष्य के दुश्मन। जहाँ आगे बढ़ने की हौंस नहीं, उत्साह और उत्तेजना नहीं वहाँ जर्जर परम्पराओं से बँधकर वह गतानुगतिक बनता है अर्थात् उसके विकास का मार्ग अवरुद्ध हो जाता है। अतएव कला भविष्योन्मुख होनी चाहिए। न सिर्फ़ ज्ञात, वरन् अज्ञात को चुनौती देते हुए उसमें स्व-स्फूर्त्त गति एवं विकास की ऊष्मा होनी चाहिए।

दिनकर कौशिक नित-नये परिवर्त्तन से विलोड़ित और संक्रमण काल के वात्याचक्र में फँसी कला को एक निश्चित और सही दिशा देने के हिमायती

हैं। २५ जून, १९१८ ई० में धारवाड़ (मैसूर स्टेट) में उनका जन्म हुआ। पहले बम्बई विश्वविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की। बाद में शांतिनिकेतन से डिप्लोमा प्राप्त किया। वहाँ का स्नातक होते ही इन्हें कलाभवन के 'फेलो' के रूप में भी चुन लिया गया।

प्रारम्भ से ही इन्हें भ्रमण का शौक़ था। कला की मूल प्रेरक चेतना युगधर्म के साथ समन्वित होकर चरमोत्कर्ष पर पहुँच जाती है। इसी भावना से प्रेरित इन्होंने भारत के प्रमुख कला-स्थलों की यात्रा की। अजंता और एलोरा की कला के सम्बन्ध में एक सूक्ष्म विश्लेपक की भाँति इन्होंने लिखा—"मेरे लिए अजंता आदर की वस्तु रहा है। कहीं भी मुझे उसमें शक्ति का अभाव नहीं दिखाई दिया। प्रत्येक मूर्त्ति में, प्रत्येक डिज़ाइन में, चाहे उसे किसी कुशल कलाकार ने बनाया हो, चाहे किसी नौसिखिए ने, उसकी दृष्टि का पैनापन, चित्रण की सादगी और सबसे बढ़कर उसकी निष्ठा का स्पष्ट परिचय मिलता है। मनुष्य के साथ साम्य स्थापित करने में पशु-जगत् तथा प्रकृति दोनों ही एक दूसरे से होड़ करते दिखाई देते हैं। वहाँ आदमी विजेता के रूप में नहीं आता, बल्कि वह तो एक बड़े आश्रम का निवासी प्रतीत होता है।

भावी चिंता

यूरोपीय आलोचकों द्वारा यह भी कहा जाता रहा है कि अजंता में रचना विधान या गठन का कोई ध्यान नहीं रखा गया। दीवार के एक छोर से दूसरे

छोर तक चित्रकारी भरी पड़ी है, कहीं भी विश्लेषक बुद्धि का परिचय नही मिलता जो 'स्पेस' और 'ग्रूपिंग' का ध्यान रखे। सौन्दर्य-शास्त्र सम्बन्धी मेरी समझ के अनुसार वहाँ ऐसी कोई त्रुटि नही है। 'स्पेसिंग' के सम्बन्ध में अजंता की अपनी एक आनन्ददायी और स्वाभाविक पद्धति है। एक वर्णनात्मक कृति मे उसको विषय वस्तु पर बल देने और उसमें क्रम का निर्वाह करने की आवश्यकता होती है जिसका अप्रौढ़ साँचों मे वर्गीकरण नही होता। हाथी, वृक्ष, पुरुष, स्त्रियाँ और वास्तु—सभी एक साथ रखे हुए मिलते हैं और उसमें वस्तु निश्चित रूप में अगली विषय वस्तु से पृथकता सूचित करती है। ट्रॉपिक प्रदेशीय प्रचुरता का नियमन रंगसाज़ी और रेखाओं के मित प्रयोग द्वारा किया गया है। कोई भी वस्तु बहुत उभरी हुई नही है। देखते ही बोधि सत्व' अथवा 'वज्रपाणी' की विशाल मूर्त्ति अपनी भव्यता का आभास देती है। यूरोपीय 'मास्क' की भाँति, जहाँ दृश्यांकन 'ग्रूपिंग' का मुख्य साधन होता है, इसका गठन नहीं किया गया। यहाँ का दृश्यांकन सर्वथा बौद्धिक है। इसी लिए मै उसे व्यक्ति और समूह—दोनों रूपों में उत्कृष्ट मानता हूँ।

इसके विपरीत एलोरा मेघगर्जन के पूर्व चमकनेवाली दामिनी की भांति है। पत्थर की बड़ी-बड़ी चट्टानें हाथ के जादू मे मूर्त्तिमान हो उठी है। एलोरा का कैलाश वैसी ही विशालता और शांति का प्रभाव उत्पन्न करता है जैसा कि बर्फ जमा हुआ महासागर। एकाएक ऐसा लगता है कि किसी निष्ठावान पुरुष ने सचमुच ही हमारी सौन्दर्य-दृष्टि को चकित कर देनेवाली वस्तु निर्मित करके रख दी है। ब्राह्मणयुगीन कला के सामने जनता को बुद्ध की व्यावहारिक निष्क्रियता से मोड़ कर एक नये जागरण की दिशा मे ले जाने की समस्या थी, जिसमें देवताओं की महिमा और नरपुंगवो का शौर्य निहित था। इसके लिए कला के सभी साधनों का प्रयोग उन्हें करना पड़ा। एक प्रस्तर खण्ड में कैलाश-पर्वत की भावना आरोपित कर दी गई और पूरे वास्तु को मूर्त्ति मान लिया गया गया। स्तम्भ, दीवारें, दरवाज़ों के ऊपरी पाटे, मुहार, सीढ़ियाँ, छतें आदि सभी मूर्त्तियो में ही प्रतिमूर्त कर दिये गए। अन्यत्र किसी भी युग में भावना की ऐसी उच्चता, कल्पना की ऐसी सशक्तता और उपकरणों पर देवताओं का सा ऐसा अधिकार देखने में नही आया। पत्थर पत्थर ही रहा, किन्तु ऊसमें एक दैवी मूर्त्ति साकार हो उठी। स्वरूप की खोज सम्बन्धी माइकेल एंजलो का सिद्धान्त यहाँ सर्वत्र प्रतिफलित हुआ है।"

इटली सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्होंने रोम की एकेडेमिया बेले आर्ट्स

में अध्ययन किया। इसके अतिरिक्त वेनिस, मिलान, फ्रैंकफर्ट, ज़ागरेब, पेरिस, मैड्रिड, लंदन, टोवडो तथा अन्य कितने ही यूरोपीय देशों का ये भ्रमण कर चुके है। १९५६ में वियना और १९५९ में टोकियो में आयोजित 'माडर्न आर्ट' की कला प्रदर्शनी मे इन्होंने भाग लिया और भारत तथा भारतेतर देशों की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और अन्य प्रमुख कला प्रदर्शनियों में इन्होंने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया। पश्चिमी यूरोप के कई प्रमुख देशों में इन्होंने पेंटिग और स्केचिंग करते हुए दूर-दूर तक दौरा किया। दिल्ली के पालिटेकनीक के कला विभाग में फाइन आर्ट्स के अध्यापन का कार्य ये करते रहे। आलइंडिया कांग्रेस कमेटी के ग्राम्य पुनर्निर्माण विभाग में सलाहकार के बतौर ये
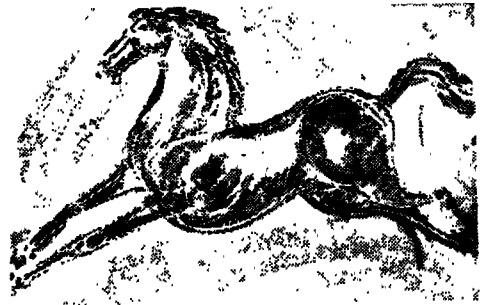
सरपट दौड़

नियुक्त थे। १९४९ में गाधी मंडप, १९५४ में यू० एन० सेमिनार हाल और अनेक औद्योगिक एवं सांस्कृतिक कला प्रदर्शनियों के स्थानों की सुसज्जा इन्होंने की। आजकल लखनऊ आर्ट्स कालेज के प्रिंसिपल है।

ये मूर्तिकार और ग्राफिक चित्रकार–दोनों हैं। प्राचीन रूढ़ ढाँचों की सी निर्माण प्रक्रिया, फिर भी बौद्धिक यथार्थवाद के कारण जीवन की स्फूर्त्ति और गतिमयता इनमें है—जैसे कि 'एड़ लगाता घोड़ा।' पशुओं के आँके गए गंभीर विश्लेषणों में प्राण स्पदन की उन्मादक परिकल्पना है, लगता है जैसे प्रागैतिहासिक प्रणालियों का नया रूपान्तर प्रस्तुत है—इनकी कला में। इनका मन कंदरा-चित्रकार की भाँति ऐकान्तिक भावनाओं की मुखरता का व्यंजक है। पुराने तौर-तरीकों को नया जामा पहनाकर ये उसमें त्वरित संयोजना और द्रुत वेग लाने का सदैव प्रयास करते हैं। सामान्य ढंग के शबीह चित्रों में सुसज्जा के साथ-साथ सूक्ष्म जीवन-दर्शन और वैयक्तिक गुणों के संदर्भ में विभिन्न चरित्रों की अवतारणा हुई है। ये न सिर्फ़ कलाकार हैं, बल्कि समय-समय पर कला की आलोचना में भी प्रवृत्त हुए हैं। आधुनिक पद्धति पर इनके कतिपय चित्रों में कुछ अतिवादिता भी है, पर सामयिक युगबोध की दूरदर्शिता ही इनमें अधिक है।

रामकुमार

नव्यवादी कलाकारों में रामकुमार का नाम एक विशिष्ट शैली को प्रतिपादित करनेवाले मौलिक शिल्पी के रूप में लिया जाता है। यूँ तो कला का कोई विधिवत् प्रशिक्षण इन्हें नहीं मिला, पर देशी-विदेशी कला-प्रणालियों के गंभीर अध्ययन द्वारा इनकी ग्रहणशील चेतना और प्रखर बुद्धि ने बहुत कुछ समेटा है। इनके प्रारम्भिक चित्रों में इनकी अपनी वैयक्तिक रचना-प्रक्रिया की छाप है, परन्तु शनैः शनैः विदेशी शिक्षा और शैलियों ने इनकी सृजन-चेतना में ऐसी नई प्राण प्रतिष्ठा कर दी जिसने कि वहाँ के बलात् संस्कारों से संश्लिष्ट एक व्यापक जन-जीवन की करुण संवेदना को उसके साथ जोड़ दिया। कुछ महत्त्वपूर्ण भारतीय कला प्रदर्शनियों के सिलसिले में इन्हें यूरोप के प्रमुख देशों का दौरा करना पड़ा था। विभिन्न कला तत्त्वों के संयोग से उनके चिन्तन की व्याप्ति बढ़ती गई और कितनी ही धाराओं का स्वैच्छिक समावेश उनमें हुआ।

इनका दृष्टिकोण बड़ा स्वस्थ और विकसित है। जिस रागोत्तेजना से यामिनीराय तथा अमृत शेरगिल ने भारतीय लोक जीवन को विदेशी संस्कारों में ढाला, वैसे ही 'स्व' और 'पर' के भेद का विलय करके एक मनोगत समत्व की स्थिति पर ये आ टिके। इनके चित्रों में एक ख़ास नाज-अन्दाज, आकृतियों को आँकने की सर्वथा निजी कसौटी, रंग-योजना और रूप सज्जा की प्रतीकात्मक पद्धति—इनकी कला पर पिकासो, मातीस और ब्राक़ जैसे कलाकारों का प्रभाव भी द्रष्टव्य है। ये पेरिस में अतेलियर आन्द्रे लॉत में फर्नेण्ड लेजर के तत्त्वावधान में पेंटिंग का अध्ययन करते रहे। १९५० में पेरिस में, १९५५ में प्रेग, १९५६ में यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका में इनके चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुईं। इन्होंने तीन बार पूर्वी यूरोप और रूस का स्टडी-टूर किया। ये ग्रीस भी गए और प्राचीन-अर्वाचीन यूनानी कला-प्रणालियों पर ग़ौर किया। इस प्रकार इनकी टेकनीक पर विभिन्न प्रभावों का मिलाजुला असर पड़ना स्वाभाविक ही था। इनके गुरु फर्नेण्ड लेजर क्यूब शैली के उस्ताद थे। उन्होंने ही इस कोणवादी कला को अपनाने की प्रेरणा

इन्हें दी। अतएव 'क्यूबिज़्म' ने इन्हें प्रभावित किया। इनकी चित्रकृतियों में कोण पद्धति पर शरीर के सौन्दर्य को भारी भरकम रूप में उभारा गया है। ये उस अभिसंधि के चितेरे है जो विज्ञान और आलंकारिक सज्जा के मध्यबिन्दु पर स्थित है। ज्यामितिक पद्धति की नीरस संरचना उदास रंगों के परिपाक से कलाकार का सत्य बनकर प्रकट हुई है। वस्तु को देखने का, बल्कि 'वस्तुत्व' को देखकर एक ख़ास ढंग से रूपायित करने का उनका अपना तरीका है। विसर्जन मे सृजन का रूप, विलय में थिरकती लय और शिल्प मे 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' का अवदान उनकी प्रखर प्रतिभा का दिग्दर्शक है जो प्रभविष्णुता पैदा करता है। एक अभूतपूर्व वातावरण में सृष्ट विभिन्न मुद्राएँ व चेष्टाएँ जो अधिकतर संसार की पीड़ा और कचोट को एक स्पर्द्धाशील चित्रशिल्पी की तूलिका से साकार करती हैं। दैनन्दिन जीवन की घटनाओं और दृश्य चित्रों से प्रेरित इन्होंने प्रतिपाद्य विषय के अनुरूप भाव सृष्टि को कलाकार की अंतर्भेदी दृष्टि से निरावगुंठित किया है। 'मज़दूर की मौत', 'विलाप करती स्त्रियां', 'बेरोज़गार', 'युद्ध का आतंक', 'एक श्रमिक परिवार', 'हवाई हमले के बाद', 'अरण्य रोदन', 'निराशा और आशा', 'परित्यक्ता दमयंती', 'सावित्री और सत्यवान', 'मधुर स्मृति', 'याचना' आदि चित्रों में राग-विराग और आंतरिक भावों की मर्मस्पर्शिता व्यंजित हुई है। इन्होंने अपने कुछ चित्रों मे लोक प्रचलित कथाओं और अनुश्रुतियों का चित्रण भी किया है।

व्यस्त सड़क

रामकुमार ने सादृश्य और फोटोवादी अनुकृति की सदा अवहेलना की है, क्योंकि कोई भी तार्किक परिधि कला के मुक्त विकास में बाधक है। देश-विदेश की कलाधाराओं के पारस्परिक आदान-प्रदान द्वारा विशदता ही कला को पुरस्सर करने का मात्र साधन है। रामकुमार न सिर्फ़ एक कुशल चित्रकार, वरन् एक प्रखर आलोचक भी हैं। निपुण शिल्पी के हाथ में तूलिका तो चाहिए

ही, उसे हर विचार, हर घटना, हर समस्या, हर मूल विषय को समझने की गहरी सूझ के साथ-साथ लेखनी भी चाहिए। उर्वर कल्पना, जागरूक मस्तिष्क और मानवीय गुणों की पहचान के साथ-साथ जीवन का तत्त्वज्ञान और सूक्ष्म मनोबुद्धि भी अपेक्षित है। इन्होंने विदेशों में समय-समय पर आयोजित प्रमुख भारतीय कला-प्रदर्शनियों में तो प्रतिनिधित्व किया ही है, दिल्ली, बम्बई जैसे प्रमुख नगरों में व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी आयोजित की हैं। बम्बई आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और १९५७-५८ की कला प्रदर्शनियों में क्रमशः इन्हें पुरस्कार प्रदान किये गए। नई दिल्ली की सुप्रसिद्ध आठ कलाकारों और बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट तथा कितने ही निजी और सार्वजनिक कला-संग्रहों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान दिया गया है। एक व्यावसायिका चित्रकार के रूप में विगत कई वर्षों से राजधानी में ये कला साधना कर रहे हैं, पर इनकी खूबी है कि किसी एक मंज़िल या ध्येय पर आकर ही ये टिक नहीं गए हैं, बल्कि नित-नये रूपों को आत्मसात् कर वे कला को कोई एकसुस्थिर रूप प्रदान करने के लिए सतत चेष्टाशील हैं।

हमले के बाद

कृष्णचन्द्र आर्यन

आर्यन लगभग २०-२५ वर्षों से कला-साधना कर रहे हैं और मुख्यतः ग्राफिक आर्टिस्ट हैं, किन्तु प्राचीन परम्पराओं, श्रुति-अनुश्रुति और लोक जीवन से उन्हें अत्यधिक प्रेरणा मिली है। जनपद की शाश्वत आत्मा और उसकी प्रवहमान परम्परा में तिरती असंख्य कथाएँ, न जाने कितने दृश्यों एवं नज़ारों ने इन्हें अभिभूत किया है। देखी वस्तुओं के सत्य को इन्होंने

वधू

अपने रंग एवं रेखाओं में सुपाच्य बनाया है, घटना-विन्यास को खूबी से उभारने में ये सिद्धहस्त है, इनके चित्रों की सरल भावाभिव्यक्ति कौतूहल और जिज्ञासा जगाती है, प्राणों को छू लेती है, मन के रसायन को रूपायित कर अपूर्व विश्रान्ति प्रदान करती है।

लोकरंजक रसज्ञता के इस परिपाक से इनकी दृष्टि जीवन में गहरे उतरकर अंतर्मुखी सौन्दर्य की सचेष्टता की प्रेरक है। कलाकार की निजी आनन्द

दर्पण के साथ

बोधक अनुभूति बिना किसी शर्त्त के प्राणों के रंग और श्वासों की लकीरों से आँकी गई है, जिससे भारतीय परम्परा की व्यापक परिधि में रेखाओं का लय पूर्ण नर्तन, रंगों का उचित सामंजस्य और अनुभूत तथ्यों को सबल रूप से सजीवता एवं पूर्णता दी गई है। लगता है जैसे कलाकार ने वर्षों जीवन की गहराई में डूबकर अंतर्मुखी जीवन्त चेतना को वाणी दी है और प्रकृति-पर्यवेक्षण की सूक्ष्म पैठ तथा ससीम में ही असीम के दर्शन कर प्रकृति के खुले प्रसार में परोक्ष रूप से प्रवहमान धारा को ला अंकित किया है। कला के प्रति सुरुचि जगाने और उसे नयनाभिराम साँचे में ढालने में भी इन्हें कमाल हासिल है।

मिलन

पर परम्परावादी पैमानों को अपनाने के अर्थ नहीं हैं कि इनकी कला-टेकनीक भी पारम्परिक या रूढ़िवादी है। इनकी रचना-प्रक्रिया सर्वथा आधुनिक है, हालाँकि कोरे आधुनिकतावादी के रूप में आज के 'इज़्म' या 'वाद' के मोह में पड़कर नयेपन के ख़ब्त में इन्होंने अपनी चित्रण-पद्धति को अतिवादी या कृत्रिम नहीं बनाया है। उनकी कला-साधना वैचित्र्य या अजीबोग़रीब प्रयोग-विधियाँ अथवा तरह-तरह की वादग्रस्त शैलियों की खानापूर्ति या भौंडी रेखांकन प्रणाली को लेकर नहीं चलती, बल्कि रंजक शिल्प के नितान्त मौलिक ढर्रे में ढली हुई सामने आती है। कलाकार अपनी भावनाओं के द्वारा जनता के मन पर शासन तो करता ही है उनकी रुचियों का परिष्कार भी करता है। उनकी कृति, चाहे किसी भी विषय की हो, मन को जगाकर किन्हीं आदर्शों एवं उद्देश्यों की निष्ठा को निःसन्देह सुदृढ़ करती है।

लगता है जैसे इन्हें राह चलते विषय मिल जाते हैं और जीवन के तथ्य को ये कला के सत्य में परिणात कर उसे हूबहू रूप देना चाहते हैं। संवेदना में व्याप्त न होकर, सृजन प्रक्रिया का अभिन्न अंग न बनकर जो

सृजनशील तत्त्व महज आरोपित हैं वे शिल्पवाद या रूपवाद तो हैं, पर सच्ची कला नहीं। आर्यन आधुनिक तो हैं, पर जीवन के परिवेश से कटे हुए या उखड़े हुए नहीं है।

सन् १९१६ में अमृतसर में इनका जन्म हुआ। पंजाब की हरी भरी धरती और उन्मुक्त वातावरण में ये पलकर बड़े हुए। इनके पिता स्वयं एक उत्कीर्ण शिल्पी थे जिन्होंने अमृतसर के स्वर्ण मंदिर के दरवाजों पर सुसज्जा की थी। कला इन्हें विरासत में मिली थी, अतएव इन्होंने किसी स्कूल या कालेज में कला का प्रशिक्षण नहीं लिया, वरन् अपने पिता के तत्त्वावधान में ही स्वतन्त्र सर्जना की। १९३६ से १९४७ तक ये लाहौर में रहे और वहीं आर्ट स्टूडिओं की स्थापना की। उन दिनों अमृतसर और लाहौर में जो भी महत्त्वपूर्ण कला-प्रदर्शनियाँ आयोजित होतीं ये उसमें भाग लेते। १९४७ में विभाजन के पश्चात् ये दिल्ली आ बसे। दिल्ली की सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में इन्होंने अपने चित्र प्रेषित किये हैं। इन्होंने बगदाद, काबुल, बैरूत में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की हैं। १९४६ में अमृतसर में इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया। अन्य कितने ही प्रदर्शनों में इनके चित्रों को पदक एवं पारितोषिक मिले हैं। पंजाब प्रदेश की लोक संस्कृति और प्राचीन कला-अवशेषों को इन्होंने खासतौर से एकत्र किया। भारत की विभिन्न चित्रण शैलियों का इन्होंने अपने व्यापक भ्रमण और यात्राओं के दौरान अध्ययन किया और इस लोक शिल्प को इन्होने अपना लिया। इन्होंने यूरोप और मध्यपूर्वी देशों का भी खूब भ्रमण किया है। ये बड़े ही लोकप्रिय व्यावसायिक चित्रकार हैं। खूब काम करते हैं, पुस्तकों की चित्र सज्जा और आवरण पृष्ठों के निर्माण में माहिर हैं। पुरातन आधुनिक, यूरोपीय-एशियाई और देशी-विदेशी कला-टेकनीक इनका प्रेरणा

मंदा बाजार

स्रोत है जिसके प्रभाव को आत्मसात् कर ये बहुमुखी चित्र सृजन में प्रवृत्त हैं।

डेल्टा
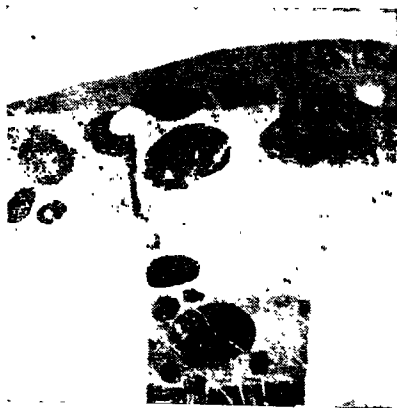
प्राचीन कला और शिल्प के व्यापक संग्रह में पंजाब और हिमाचल प्रदेश के ज़री और सलमे-सितारे का काम, कांस्य उत्कार्णन, जड़ाऊ चीज़ें, तारों के काम, लोकचित्र, मिट्टी की दीवार पर किये गए पुराने चित्रण, कालिको प्रिंटिंग डिज़ाइन और लकड़ी के चित्रांकित टुकड़े इकट्ठे करने का इन्हें बेहद शौक़ है और यूँ छिपी या नष्ट-भ्रष्ट कलावस्तुओं को इन्होंने प्रकाश में लाया है। १९६२ में एल.के.ए. में नूरपुर म्यूरल की अनुकृति करने का काम सौंपा गया। पारम्परिक चित्रण की अपनी जानकारी के कारण इन्होंने अमृतसर में कितने ही भित्तिचित्र खोजे। एल. के. ए.
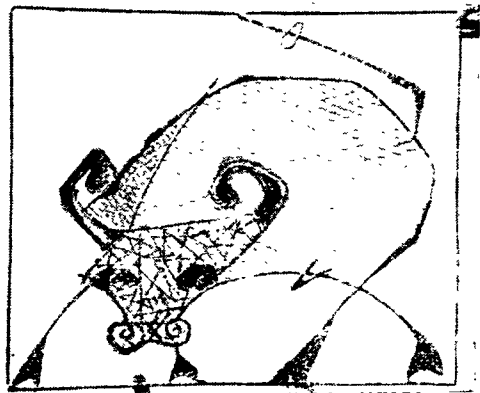
बैल

संग्रह, पंजाब म्यूज़ियम, चण्डीगढ़, पंजाब यूनिवर्सिटी म्यूज़ियम और रूस तथा अन्य कितने ही देशों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। इनका उद्गार है 'मेरा काम उन चीज़ों की सदा खोज करना है जो मेरे प्राणों के निकट हैं और मेरी अंतरंग चेतना से जुड़ गई हैं।

धनराज भगत

युगल

धनराज भगत की कला और कौशल मुख्यतः पत्थर, धातु और लकड़ी पर उत्कीर्ण मूर्त्तिशिल्प के लिए विख्यात है, पर इनकी यदा-कदा निर्मित चित्रकृतियाँ भी बड़ी सुन्दर और भव्य हैं। वस्तुतः इनकी ग्राफिक पेंटिंग में मूर्त्तियों की सी तिक्तता, ऐंठन या ऐकान्तिक द्वन्द्व नहीं है, खासकर इनके लैंडस्केप चित्र तो बड़े ही मोहक, खुशनुमा और चिर शांति के प्रतीक हैं। 'झोंपड़ी' जैसे कतिपय चित्रों में खुला वातावरण और अकृत्रिम व्यंजना है।

शुरू में चित्रों के निर्माण का जो सहज औत्सुक्य या कौतूहल इनमें था यह शनैः-शनैः मूर्त्तिशिल्प में आकर पुष्ट हुआ। वाह्य आडम्बर मुक्त यथार्थवादी पद्धति पर मूर्त्तियाँ गढ़ी गईं। इनकी कला 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' को लेकर ही उस समय चली। भाव भंगिमा, सूक्ष्म सौन्दर्य और मुद्रा आकर्षण ने अनगढ़ पत्थरों पर जो मानव आकृतियाँ उभारीं वे कितनी जीवन्त और सम्मोहक है। प्राचीन कला से इन्होंने बहुत कुछ सीखा, बहुत कुछ ग्रहण किया, वरन् उस ज्ञानार्जन में ही इन्हें कुछ नई उपलब्धि हुई जिसने अपनी विविष्ट साधना का पथ खोज लिया। पर आज के बदलते परिवेश में ज्यों-ज्यों यथार्थवाद क्रमशः आदर्शवाद पर हावी होता गया इनकी कला का रूप भी अनेक माध्यमों व उपकरणों में पृथक् होता गया और वे रूढ़िवादी या लकीर के फकीर के रूप में नहीं, बल्कि नितान्त नये रूप में मन के ऊहापोह, उद्वेलन और संघर्ष की आंत-

दमन भंगिमा
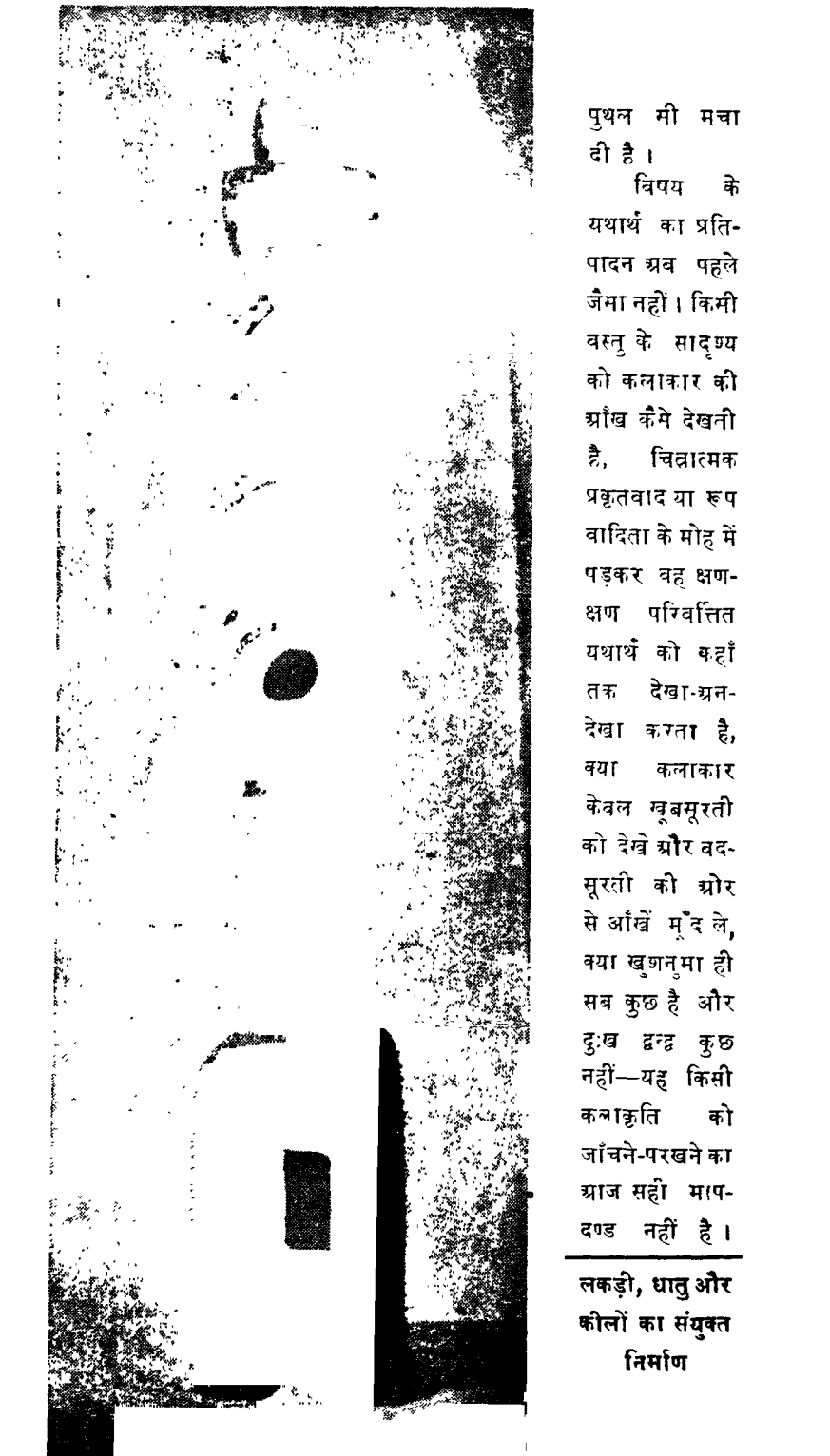
पहेली बनकर रह गई हैं। कभी-कभी थोड़े प्रयास से ही भावमयी मुद्राएं और आश्चर्य जनक प्रतीक उभर आए हैं। कहीं इनकी कला का अपना निराला ढंग है जो पुरातन के शृंगार का पुट लिये है और कहीं आधुनिकता का यथार्थ लेकर चला है। इन्होंने कला की नई क्रान्ति की ओर उत्साह और विश्वास से क़दम बढ़ाये। वे समन्वय शील शैली की ओर विशेष प्रयत्न-शील हैं जिसने दृश्यात्मक मूल्यों में बड़ी उथल-

कास्मिक नृत्य लौह छड़ और चादर पर मोड़ तोड़ व निर्माण

पुथल सी मचा दी है।

विषय के यथार्थ का प्रतिपादन अब पहले जैसा नहीं। किसी वस्तु के सादृश्य को कलाकार की आँख कैसे देखती है, चित्रात्मक प्रकृतवाद या रूप वादिता के मोह में पड़कर वह क्षण-क्षण परिवर्तित यथार्थ को कहाँ तक देखा-अनदेखा करता है, क्या कलाकार केवल खूबसूरती को देखे और बदसूरती की ओर से आँखें मूँद ले, क्या खुशनुमा ही सब कुछ है और दुःख द्वन्द्व कुछ नहीं—यह किसी कलाकृति को जाँचने-परखने का आज सही मापदण्ड नहीं है।

लकड़ी, धातु और कीलों का संयुक्त निर्माण

मानव के दुर्भेद्य, प्रच्छन्न स्तरों का उद्घाटन ही कलाकार का श्रेय-प्रेय है। भीतर की गहरी भावात्मक असन्नियत में पैठकर जब उसके सच्चे रूप से एकत्व स्थापित कर लेता है तो वही कलाकार की खूबी है। 'संगीतज्ञ', 'जीवन वृक्ष', 'सम्राट्', 'मनुष्य का भय', 'नृत्य' आदि विषयों को लेकर इन्होंने विभिन्न मुद्राओं में उसका दिग्दर्शन कराया। 'वसंत', 'माँ और बच्चा', 'तीन आकृतियाँ' आदि मूर्त्तियों में इन्होंने अपनी सूक्ष्म दर्शिता और गहरी अनुभूति का परिचय दिया है। लकड़ी, पत्थर और धातु पर इनकी मूर्त्तियाँ निर्मित हुई हैं, परन्तु लकड़ी, धातु और कीलों के संयोग से भी इन्होंने मूर्त्तियाँ गढ़ी हैं।

एक मूर्त्ति मुद्रा

लाहौर के मेयो स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने मूर्त्ति शिल्प में डिप्लोमा प्राप्त किया। इन्होंने वहीं अध्यापन कार्य शुरू किया। भारत सिरकार के पब्लिक वर्क्स डिपार्टमेंट और फील्ड पब्लिसिटी स्टूडिओ में ये कुछ समय तक कार्य करते रहे। १९३७ से ये देश-विदेश में होने वाली सभी प्रमुख कला प्रदर्शनियों में भाग ले रहे हैं। १९४७-४८ में लंदन की इंडियन आर्ट एग्ज़िबिशन, १९५९ में पूर्वी यूरोप की भारतीय कला प्रदर्शनी तथा समय-समय पर विदेशों में आयोजित कला-प्रदर्शनियों में ये हिस्सा लेते रहे हैं। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से इन्हें दो स्वर्ण पदक प्राप्त हुए। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट द्वारा आयोजित अखिल भारतीय मूर्तिकार प्रदर्शनी और पंजाब फाइन आर्ट्स सोसाइटी ने इन्हें दो बार पुरस्कृत किया। नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, बियनले आफ साओ पॉलो की ओर से इन्हें कई वर्षों तक लगातार पुरस्कार मिलते रहे। ये दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्य और ग्रुप के सेक्रेटरी हैं। अंतर्राष्ट्रीय शिक्षण योजना के अंतर्गत इन्होंने अमेरिका, यूरोप और नेपाल का स्टडी टूर किया। भारतीय मूर्त्ति शिल्प के वैशिष्ट्य की दिग्दर्शक प्रतिमाओं का व्यापक प्रचार-प्रसार इन्होंने विदेशों में किया, खासकर सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में इनकी कृतियों का आदान-प्रदान होता रहा है। धनराज भगत ने अपने अध्यवसाय, लगन और अनवरत परिश्रम से मूर्त्तिकला को बहुत समृद्ध किया है,

आंतरिक उलझन की बारीकियों के दिग्दर्शन में ये प्रवृत्त हुए। अर्वाचीन कला की बहुमुखी प्रवृत्तियों में उन्होंने कुछ नवीन संशोधन, रूप, विचार और सिद्धान्तों को अपना कर अपने मूर्त्ति शिल्प को एक नया मोड़ दिया है। प्राविधिक प्रणाली और व्यवहृत प्रयोग दोनों में ही ये शोध और नई-नई पद्धतियों के दौर से गुज़र रहे है।

भगत अपने ढंग के अनूठे कल्पक और भावुक शिल्पी हैं। उन्होने आदर्श सौन्दर्य को साकार रूप में प्रदर्शित करने वाली प्रतिमाओं का भी आविष्कार किया है जो अपने शारीरिक गठन और अंग-प्रत्यंगों के कटाव में नेत्ररंजक बन पड़ी हैं, किन्तु इनकी अनेक प्रतिमाएँ ऐसी भी हैं जो रहस्याच्छादित और गूढ़
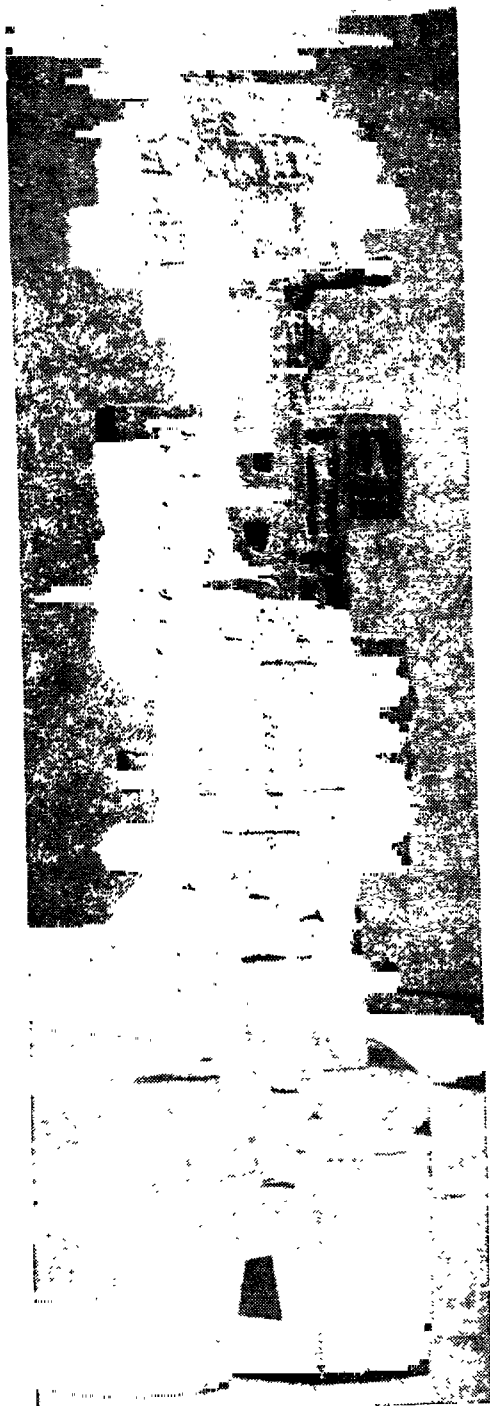
लकड़ी और धातु पर निर्माण

हैं। इन्होंने मूर्त्तिशिल्प में आधुनिक वैशिष्ट्य को प्रश्रय दिया, नाना आकारों और मोड़तोड़ों द्वारा भावाभिव्यंजना का वैलक्षण्य दर्शाया और विभिन्न भाव भंगियों और चेष्टाओं को कहीं बड़ी सहजता से कोर दिया, पर कहीं अजीब क़ोशिश और भावगुम्फन भी है। कहीं थोड़े से हेरफेर से किसी दृश्य की पुनरावृत्ति होती है तो कहीं गूढ़ लक्षणों को लेकर एक नितान्त नई कहानी सामने आजाती है। आज कल दिल्ली कालेज आफ आर्ट के मूर्त्तिविभाग के ये अध्यक्ष हैं और नित-नये मौलिक प्रयोगों द्वारा उक्तकला को काफ़ी दूर तक ले गए हैं।

अमेरिका और समूचे यूरोप का भ्रमण करने के पश्चात् धनराज में लोक पद्धति पर कुछ नुतन मान्यताओं ने प्रश्रय पाया। उनके निर्माण में बड़ी सादगी आ गई, पर साथ ही यह सादगी रूपाकार की सूक्ष्म भावाभिव्यंजकता को लेकर स्वयं प्रादुर्भूत हुई। इन्होंने अपने यहाँ की कला को एक व्यापक दृष्टिकोण दे दिया। मूर्त्तिकला ही एक ऐसा माध्यम है जिसमें कलाकार का अंतरंग चिन्तन बड़े ही सधे और सुनिश्चित् रूप में नितांत सधे और सुनिश्चित् हाथ की करामात में उभर आ सकता है। आज जबकि समय की बचत के लिए तरह-तरह के प्रयोग बरते जा रहे हैं कुछ ऐसे अछूते ढंग अख़्तियार किये जा रहे है जो यूँ तो बड़े ही सरल और शीघ्र गामी हैं, पर मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं के सूक्ष्म मनन की अपेक्षाकृत व्यंजकता दर्शाते हैं।

भगत 'शिल्पी चक्र' के प्रमुख संस्थापकों में से हैं, पर सबसे पृथक् वे ऐकान्तिक साधना पथ के पथिक के बतौर अपने आप में बेजोड़ हैं। पिछले दो दशकों में अपने नव्य प्रयोगों द्वारा इन्होंने काफ़ी ख्याति अर्जित की है और मूर्त्तिकला, जो अपेक्षित और लुप्त प्राय सी थी, उसमें नवप्राणों का संचार कर विकासशील दिशा की ओर इन्होने उसे अग्रसर किया है।

अजित गुप्ता

नये रंग और नई रेखाओं मे इस तरुण शिल्पी की प्रतिभा अपनी आंतरिक सचाई के साथ उभरकर सामने आई है। अपनी सहज और अनुपम शैली में इनके विषय अपना निजी आकर्षण रखते हैं। इनके चित्र आकाशचारी नहीं, बल्कि जीवन और जगत् के दृश्यांकन हैं, जो उसी मिट्टी से उपजे है, जो चलते-फिरते अनायास नजरों के सामने आ जाते हैं और हर दिल को छूकर अंतरंग भावनाओं को झकझोर देते हैं।

यूँ तो अजित गुप्ता जन्मत: बंगाली है, पर उनका लालन-पालन, शिक्षा-दीक्षा दिल्ली मे ही हुई। बड़े संघर्ष से वे आगे बढ़े, स्वयं साधना और परिश्रमपूर्ण लगन ने उन्हें खुला प्रशिक्षण दिया। आवश्यकता,अनुकूलता,अवसर और अवकाश के अनुरूप उन्होंने ज्ञानार्जन किया और अपनी मौलिक चित्रण शैली विकसित की। संघर्ष का वातावरण और सौन्दर्य की परिकल्पना—दोनों में कुछ ऐसा तालमेल बैठा कि इनकी अभिरुचि लोकरंजक और मानव जीवन की व्यापक व्याख्या को लेकर विकसित हुई। सामान्य परिवेश में लोकजीवन के स्पन्दन से इनकी कल्पना प्रेरित हुई।

चित्रकला में इन्होने सभी माध्यमों—जलरंग, तैलरंग, काष्ठ शिल्प और चमड़ पर चित्रांकन आदि के प्रयोग किये हैं। बंगाल के लोक जीवन का प्रभाव भी इनकी चित्रकला पर द्रष्टव्य है। प्राकृतिक दृश्यों और आंचलिक संस्कृति के दिग्दर्शक इनके चित्रों में कुछ ऐसी लय और गति है जो मन को अभिभूत कर लेने वाली है। 'बैल और मनुष्य', 'हरे भरे लहलहाते धान के खेत', 'सन्देश-कथन', 'मछियारे', 'माँझी' 'संथाल तरुणियाँ', 'खजूर', 'ताल' आदि दृश्यांकन बड़े ही सजीव और सप्राण प्रतीत होते है। इन्होंने तैलरंगों में अध्ययन और विश्लेषण भी प्रस्तुत किये हैं। गहरे, चमकीले रंग पर संतुलन और सामंजस्यपूर्ण रंग-संयोजना द्वारा इनकी रचनात्मक अभिव्यक्ति के विशिष्ट स्वरूप की झलक मिलती है। इनके द्वारा चित्रित प्रसंगों, घटनाओ और तथ्यों को विभिन्न दृश्यान्तरों में वर्गीकृत किया जा सकता है। अनेक सांस्कृतिक और धार्मिक प्रसंगों का चित्रण तो मिलता ही है, इन्होंने जन संकुल

उपेक्षिता उर्मिला

वैविध्य को अधिक आँका है। चित्रों की उर्वर भूमि तो समाज के सामूहिक मन की प्रतिनिधि है। मन की उड़ान और अतिरंजना से परे वह न केवल सर्जक शिल्पी के मन की विश्रांति हैं, वरन् उसके प्राणों में जो शाश्वत जिज्ञासा और औत्सुक्य है उसकी भावाभिव्यक्ति है।

अपने ही परिश्रम और प्रयास से इन्होंने रास्ता खुद बनाया। स्वतन्त्र-चेता प्रवृत्तियाँ व रुझान जिनमें परम्परागत विशेषताओं और समसामयिक प्रभावों को आत्मसात् कर चित्रों को सिरजा गया। इन्हें अनेक चित्रों पर पुरस्कार और पदक प्राप्त हुए हैं। स्थानीय और देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। उत्साही और तरुण युवक जो प्राणों की पुलक को प्रस्फुटित कर फिज़ाँ में बिखेर देने को आतुर हैं। आधुनिक कला-शैलियों से इन्होंने बहुत कुछ सीखा-समझा है, पर ये उनके अन्धानुकरण में विश्वास नहीं करते। भारतीय रीति-नीति, आचार-विचार और यहीं की धरती, आसमान और हवा इनकी कला के आधारभूत उत्स हैं जो इनमें सृजन की प्रेरणा और स्फूर्त्ति जगाते हैं।

मछली पकड़ते हुए

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

कला के विकास की गति आज इतनी तीव्र है कि समय की चिन्तन-प्रक्रिया पर उसकी प्रखर चेतना का व्यापक प्रभाव पड़ता जा रहा है। पुराने ढांचे चरमरा उठे हैं और नई-नई टेकनीक और प्रणालियाँ मौजूदा कलाबोध का सशक्त माध्यम बनकर सामने आती जा रही हैं। इस दिशा में जिन नये-नये आन्दोलनों का सूत्रपात होता है उनको लेकर पक्ष-विपक्ष में विवाद खड़े होते रहते हैं। सौन्दर्य आज मात्र मनोवैज्ञानिक प्रक्रिया है जिसकी परिभाषा बदल गई है। एक ही वस्तु किसी को सुन्दर और किसी को असुन्दर दीख पड़ती है। प्रयोगशील तत्त्व उभरकर सोद्देश्य उतने नहीं जितना कि उनमें कलात्मकता का स्थूल आग्रह है। उत्कर्ष के सोपान पर चढ़कर नहीं, बल्कि कला कुलांचे मारकर आगे बढ़ रही है। भावना के प्रगाढ़ क्षणों पर देर तक न टिककर 'एडवेंचर' वृत्ति ज़ोर पकड़ती जा रही है।

परम्परा के प्रति लगाव नहीं, बल्कि विद्रोह, आदर्शवादी निष्ठा के स्थान पर तज्जन्य कुंठाएँ ही कला के शाश्वत लक्षणों को आक्रान्त किये हैं।

फिर भी विभिन्न प्रादेशिक संस्कृतियों के प्रतिनिधि कलाकार राजधानी की कलाधारा को बहुमुखी और सम्पुष्ट बनाने के लिए चेष्टाशील हैं। नये और पुराने के संघर्ष बिन्दु पर आज कला दिग्भ्रान्त नहीं, वरन् अधिकाधिक समृद्ध बनती जा रही है। 'दिल्ली शिल्पी चक्र' जैसी प्रतिष्ठित संस्थाएं ही नहीं वरन् 'यंग आर्टिस्ट लीग' जैसी नवोदित संस्थाएँ भी कार्य कर रही हैं जिनकी प्रदर्शनियाँ बन्द कमरों की चौहद्दी में नहीं, फुटपाथ और खुले बाजारों में आयोजित होती हैं। इस प्रकार तथाकथित प्रयोग परिचित परिवेश में अधिक बोधगम्य होते जा रहे हैं और कलाकारों की उदीयमान परम्परा निजी प्रतिमानों और उपादानों का प्रश्रय लेकर कला के संश्लेषण में प्रवृत्त है।

ज्योतिष भट्टाचार्य

भारत सरकार के पब्लिकेशन्स डिविज़न के वरिष्ठ कलाकार ज्योतिष भट्टाचार्य की चित्रण-शैली अपनी यथार्थवादी, प्रभाववादी और अमूर्त टेकनीक

के कारण यथेष्ठ सम्मान प्राप्त कर चुकी है। पाश्चात्य वादों से ये अत्यधिक प्रभावित हुए हैं, फिर भी यहाँ की धाराएँ, स्वरूप और वर्णों के अनुरूप इन्होंने विभिन्न शैलियों को आत्मसात् किया है। इनके मत में पाश्चात्य कला और कलाकारों से हम बहुत कुछ सीख सकते हैं, पर इसके ये मानी नहीं कि हम अपनी गौरवमयी परम्परा के प्रति निरपेक्ष हो जाएँ। अंतरंग में पैठकर अवचेतन की सूक्ष्म प्रक्रियाएँ ऐसे स्वप्नों को सिरजती है जो जीवन में प्रश्नाकुलता जगाती है। अतएव वे रेखाएँ और रंग उपयुक्त हैं जो भाव की आत्मा को बन्दी बनाकर उसके असली स्वरूप को तिरोहित न कर लें।

इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कलकत्ता के स्कॉटिश चर्च स्कूल में हुई, तत्पश्चात् वहीं के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से कमर्शियल आर्ट में इन्होंने डिप्लोमा लिया। उक्त स्कूल के ये सहयोगी भी रहे और इन्होंने अध्यापक व व्यावसायिक कलाकार के बतौर कई जगह काम भी किया। कलकत्ता म्यूजियम में इन्होंने भित्तिचित्रों का निर्माण किया और दिल्ली पालिटेकनीक में भी ये कुछ अर्से तक काम करते रहे। भारत का इन्होंने व्यापक दौरा किया और भारत सरकार की ओर से इन्हें घूम-घूम कर स्केच और चित्र बनाने का काम सौंपा गया। सन् १९५७ में इन्हें इटली सरकार की ओर से पेंटिंग में और आगे प्रशिक्षण व अध्ययन के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इटली जैसे देश की समृद्ध क्लासिक परम्परा, खासकर इट्रस्कन भित्तिचित्र, प्राचीन प्रतिमाएँ एवं स्थापत्य-कला, साथ ही पुनरुत्थान काल की चित्रकारी और वहाँ के प्राचीन-अर्वाचीन कला वैशिष्ट्य का इनके कृतित्व पर विशेष प्रभाव पड़ा। भारतीय कला प्रदर्शनियाँ जो विदेशों में हुई उनमें इन्होंने उत्साह पूर्वक भाग लिया और दिल्ली-कलकत्ता में इन्होंने अपने चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित कीं। १९५९ की अट्ठाईसवीं अखिल भारतीय कला-प्रदर्शनी में इन्हें राष्ट्रपति का सिल्वर प्लेक और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्टस सोसाइटी की प्रदर्शनी में राष्ट्रपति का स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। उन्हें पंजाब के राज्यपाल

क्रिसमस की शाम

की ओर से नक़द पुरस्कार प्रदान किया गया और हैदराबाद आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनो में इनका चित्र सर्वश्रेष्ठ ठहराया गया । दिल्ली और बाहर की कितनी ही सरकारी-ग़ैरसरकारी चित्र प्रदर्शनियों में इन्होंने पैनल चित्रण और सुसज्जा का कार्य किया हैं ।

ज्योतिष भट्टाचार्य उत्साही और कर्मठ कलाकार हैं । वे स्वयंजात साधना और अंतः प्रेरित रुचियों को लेकर आगे बढ़े है । यूँ तो विभिन्न शैलियों का समन्वय उनकी कला में द्रष्टव्य है, पर अमूर्त्त चित्रण में इनकी अधिकाधिक बढ़ती रुचि इनकी विश्लेषक दृष्टि और सूक्ष्म पैठ की परिचायक है । इस शनी की विशेष शैली हैं 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट, जिसमें युगीन प्रतीक और बिम्ब बड़ी खूबी से उभरकर आते हैं ।

नगेन्द्र चन्द्र भट्टाचार्य

भारत सरकार के पब्लिकेशन डिविज़न के सीनियर आर्टिस्ट नगेन भट्टाचार्य सन् १९३३ से कला-साधना में प्रवृत्त हैं और वे न सिर्फ़ चित्रकार हैं, वरन् जाने-माने कला-आलोचक भी हैं । 'आधुनिक' की व्याख्या करते हुए उन्होंने एक स्थल पर अपना अभियत व्यक्त किया—'अधुना' शब्द से आधुनिक शब्द बना है जिसका अर्थ है हाल का नया । इसीलिए यह शब्द किसी चिरन्तन वस्तु पर लागू नहीं हो सकता । इसका सम्बन्ध काल से है और काल नदी के स्रोत की तरह हैं, बराबर बहने वाली धारा और अनुगति युक्त । समय के साथ सम्बन्धित जो कुछ भी एक मुहुर्त्त पहले भविष्य में आता था वह अगले मुहुत्त में वर्त्तमान में और उससे अगले मुहुर्त्त में भूतकाल के गर्भ में विलीन हो जाएगा । इसलिए काल के साथ सम्बन्धित कोई भी वस्तु हमेशा आधुनिक या हमेशा नवीन नहीं रह सकती ।'

कुश्ती

नगेन भट्टाचार्य कला के विकास के लिए देशी-विदेशी प्रणालियों का पारस्परिक आदान-प्रदान आवश्यक मानते हैं, पर अनुकरण के दलदल में फँसना
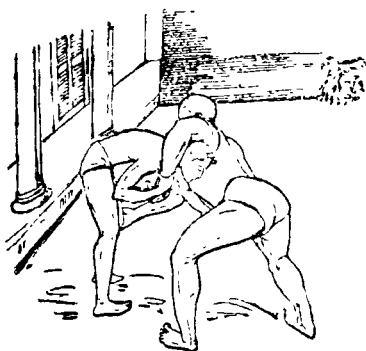
नहीं चाहते । आखिर परम्परा की उपमा एक नदी से दी जा सकती है जिसमें तरह-तरह की धाराएँ मिलकर एकमेक हो जाती हैं । इसी प्रकार युगीन कलाधारा में भी कितने ही प्रभाव आकर मिलते हैं जो कुछ दूर तक तो अलग दिखाई देते हैं, पर अन्ततः उनका समाहार ही श्रेयस्कर है ।

ये चित्रकार तो हैं ही, दृश्य चित्रणों के कुशल चितेरे भी हैं । कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने डिप्लोमा लिया । सन् १९५२ में रूस और अन्य यूरोपीय देशों में भारतीय कला प्रदर्शनी के आयोजन के लिए कलाकारों के प्रतिनिधि मंडल के साथ ये देश-विदेशों में घूमे । इसके अतिरिक्त नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की हर वार्षिक प्रदर्शनी, १९४६ की अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, १९४६ में यूनेस्को की अंतर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, १९४६ में यूनेस्को की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, १९४७ में लंदन की सम-सामयिक चित्रकार प्रदर्शनी और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा सरकार की ओर से संयुक्त रूप से आयोजित हर कला-प्रदर्शनी में ये सोत्साह भाग लेते रहे हैं । १९५५ की राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी द्वारा नई दिल्ली के संसद भवन को सुसज्जित करने का दायित्व उन्हें सौंपा गया । सन् १९४५ से ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य और उसकी कार्यकारी समिति के सदस्य है । ललित कला अकादेमी के भी ये अर्से से सदस्य रहे हैं । कला में एक गहरी मौलिक दृष्टि के साथ-साथ ध्येयदर्शी नैपुण्य भी होना चाहिए जो भिन्न भिन्न दृष्टिकोण से दिग्दर्शन, विश्लेषण तथा चित्र-चित्रण की दिशा प्रशस्त कर सके ।

सुनील कुमार भट्टाचार्य

'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट का एक नमूना

सुनील भट्टाचार्य आधुनिकतावादी हैं और चित्रकला, लिथोग्राफ और लेखन की दिशा में नव्यवाद के क़ायल । ग्लैसगो स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने शिक्षा पाई, आक्सफोर्ड यूनीवर्सिटी से एम.ए. और बी. लिट की उपाधियाँ प्राप्त
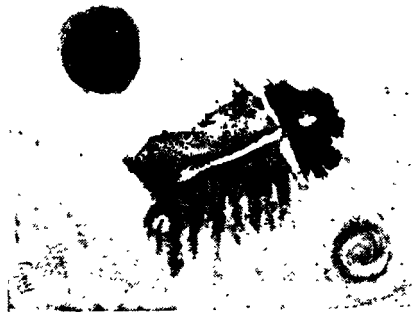
की । १९५३ से १९५८ तक इन्होंने विदेशों में स्टडी-टूर किया। भारत में संथाल परगना के ग्रामीण क्षेत्रों का दौरा किया। मलाया, रूस, ग्लैसगो और आक्सफोर्ड की भारतीय प्रदर्शनियों में भाग लिया साथ ही एक व्यक्तीय प्रदर्शनियाँ भी की। डा० विलियम कोहन के तत्वावधान में भारतीय कला में इन्होंने शोध और गंभीर गवेषणा प्रस्तुत की। ये काव्य-प्रेमी भी हैं और कविताओं की इनकी एक

मछली और चिप्स की दूकान

नग्ना की चिंतन मुद्रा
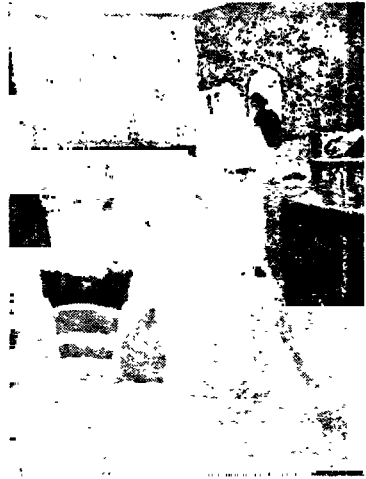
पुस्तक भी प्रकाशित हो चुकी है। भारतीय और पाश्चात्य संगीत में भी रुचि है। ये नितान्त नव्य मानों को कला की प्रगति की कसौटी मानते हैं। विदेशी मूल्यों की सहजता पकड़ में तब आती है जब कि उसमें पैठकर उसकी संभावनाओं को समझा जाय। कला की आत्मा में उतरने की कोई तकलीफ करे तभी ऊपर के ऐन्द्रजालिक पर्दे के नीचे वह सचाई नज़र आती है जिसमें दाह भी है और धुआँ भी। आज का कलाबोध इतना तीखा है कि उसे सीधी अभिव्यक्ति में बाँध सकना कठिन है।

हर कलाकार का अपना अलग-अलग ढंग और अलग-अलग तौर तरीके हैं। हर यात्रिक का एक पृथक् पथ है और पृथक-पृथक अनुभव हैं। सुनील भट्टाचार्य इस बात में बड़े कॉन्शस हैं। इसलिए उनके चित्र भी बड़े ही व्यंजक

और मार्मिक बन पड़े है, पर कहीं-कहीं नयेपन में उनके अभिप्राय को समझना कठिन हो जाता है। उनके चित्र कभी-कभी बड़े ही विचित्र आकार और रंग योजना को लिये होते हैं। सम्पुंजन की दृष्टि से आड़ी-तिरछी रेखाएँ या उनके विचित्राकृति रूपाकार सौन्दर्य तत्वों से स्खलित और आकर्षण हीन से प्रतीत होते हैं।

एक नारी भंगिमा

पाश्चात्य कलावाद इनके चित्रों पर हावी है जिससे इनकी अपनी अनुभूतियाँ जटिल और दुरूह बन पड़ी हैं, प्रयत्न की विरसता में। इनके चित्रों में छलछलाता रस अथवा अविभाज्य सौन्दर्य का अभाव है। फ्रांसीसी कला से प्रभावित इन्होंने कुछ निर्वसन चित्र भी बनाये हैं जो मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं के दिग्दर्शक न होकर नयेपन की मात्र औपचारिकता भौंडे ढंग से निभाते हैं।

सुकुमार बोस

पैनल चित्रांकन
राष्ट्रपति भवन में अंकित

सुकुमार बोस भारतीय परंपरा के चित्रकार हैं अर्थात् शंख, चक्र, गदा, पद्म की आध्यात्मिक भावना को लेकर इन्होंने राष्ट्रपति भवन की भित्तिचित्र सज्जा में अपनी प्रभूत चिन्तन राशि को बिखेर दिया है। अल्पना संयोजन शैली और समत्व प्रदर्शक प्रतीकों में इनकी

• धीमे क़दम
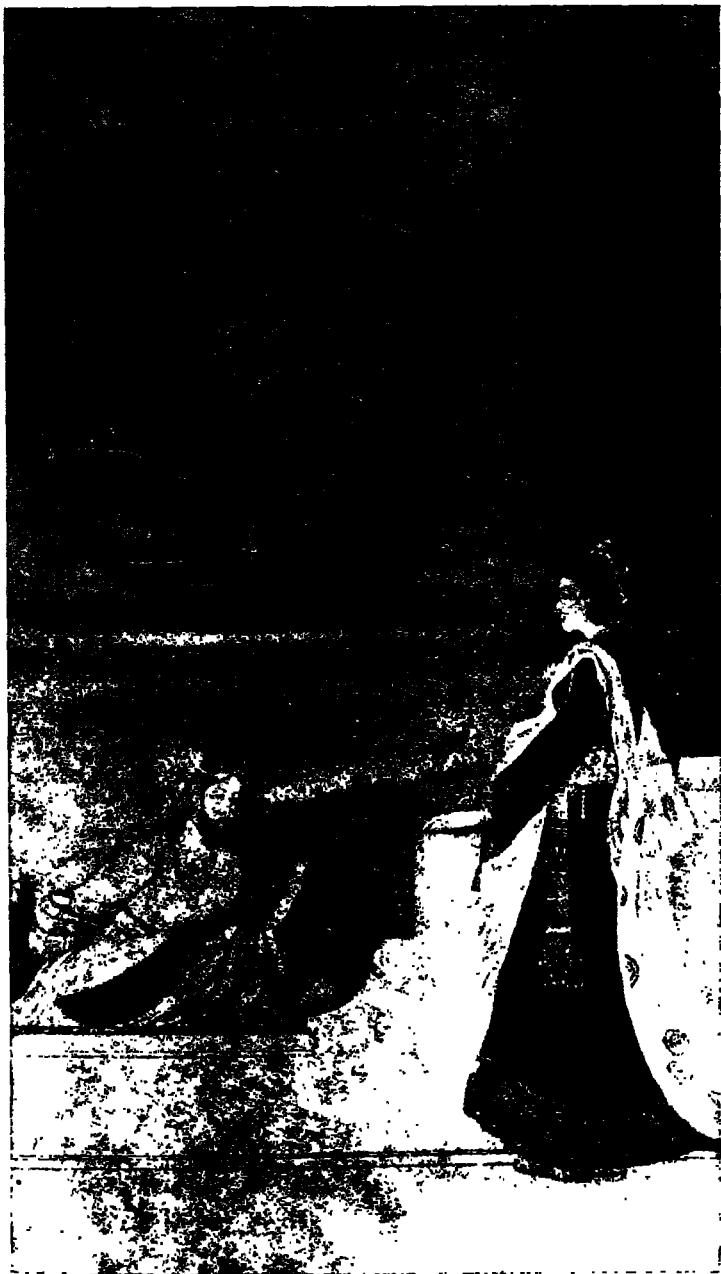
सूक्ष्म और गुम्फित चित्रांकन पद्धति वातावरण की कल्पना प्रसूत बहुरंगता

देवदासी की एक नृत्य भंगिमा

लिये हुए है। गरिमामय सौम्य रंगों और रेखाओं की मृदु परिकल्पना से अंतरंग प्रतीति, शाश्वत चेतना, आत्मा के दृढ़ आधार और ऊर्ध्वंग दिव्य शांति और पावनता तथा कल्पना की व्यापकता लेकर इनके प्रतीक रचे गए—मानो मौन क्षितिज से शुभ्र हास्य बिखेरता इनके अंतर का उन्मुक्त स्वर्णिम वातायन खुल गया हो।

भित्तिचित्रण और उसका आरक्षण-संरक्षण इनका प्रमुख विषय है। अजंता, एलोरा, बाघ गुफाओं आदि में अतीत

बादशाह शाहजहाँ

कला की मूल्यवान थाती के दर्शन होते हैं जो कलाकारों के लिए कलातीर्थ और उनकी प्रेरणा के चिरस्रोत हैं। वहाँ की सामान्य रंग-योजना, देवी-देवताओं की अभिराम मूर्त्तियों के आसपास चित्रांकित स्थल में 'मोटिफ' और 'कलर-टोन' जैसे प्राणों को छू जाती है। पशु-पक्षी, विशाल वृक्षों के पत्ते, शाखाएँ और जड़, उन पर विकीर्ण सूर्य रश्मियाँ और उन्हीं के परिवेश में आँकी गई प्रतिमाएँ या बड़ी-बड़ी आकृतियाँ, जो फैले हुए पूर्णवृत्तों का योग और सम्पुंजन हैं अथवा कहें कि शरीर-रचना में निहित व्यष्टि में समष्टि के पूर्णत्व का द्योतक, तो यूँ वर्त्तमान की समकालिकता में बिखरा यह अमूल्य, अछूता वैभव कुछ विरले ही कलाकारों की चेतना में धँस पाता है। सर्वथा प्रतिकूल दिशाओं में उन्मुख होने वाली उनकी यथार्थवादी व

विदा वेला

विषय प्रधानवादी दृष्टि उन स्थिर बिन्दुओं पर नहीं टिकती जबकि ईश्वर ही इस दृश्यमान जगत् का नियन्ता और समूची सृष्टि का सृजनहार है। समवेत और सान्द्र भावनाएं, जिनमें मिथ्या प्रतीतियों की धाँधली नहीं, बल्कि जो काल की प्रवाहशीलता और कार्य-कारण सापेक्षता की निर्धारक हैं, पर शनैः शनैः कलाकार का 'ईगो' इन अनुभूतियों से पृथक् होता जा रहा है। वक्त की धकापेल में प्राचीन कलाएँ जब विस्मृत होती जा रही हैं, सुकुमार बोस जैसे कुछ इनेगिने कलाकार ही उक्त भित्तिचित्रण की विभिन्न पुरातन शैलियों के पुनरुद्धार में लगे हैं।

•

ये अमितकुमार हाल्दार के प्रमुख शिष्यों में से हैं। लखनऊ स्कूल आफ आर्ट में सन् १९२८ में ये उस समय प्रशिक्षण पा रहे थे जब कि अवनीन्द्रनाथ ठाकुर और रवीन्द्रनाथ ठाकुर जैसे कलाकारों के सहयोग से बंगाल स्कूल की परम्पराएँ जीवित और विकासमान थीं। भारतीय आदर्शवाद की इसी भावना को लखनऊ में रहकर इन्होंने परिपक्व बनाया। १९५० में शुद्ध भारतीय पद्धति पर आँकी गई 'ईसाजन्म' की विशाल पेंटिंग रोम की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में और १९५२-५३ में आस्ट्रेलिया की भारतीय कला-प्रदर्शनी में तथा लंदन, अमेरिका और वैटिकन प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को विदेशी दर्शकों द्वारा खूब सराहा गया। श्रीमती लेडी माउंटबेटन ने इनके चित्रों को देखकर कहा था कि न सिर्फ चित्रों का अंकन कौशल और ब्यौरे आश्चर्यकारी हैं, बल्कि भारतीय कला और संस्कृति के दिग्दर्शक विषयों की व्यापकता भी सराहनीय है। इनकी एक पैनल पेंटिंग में जल देवियों की बड़ी ही आकर्षक और भव्य भंगिमा प्रस्तुत की गई है जो इस देश के अभ्युत्थान और गौरव को बढ़ाने वाले राष्ट्र प्रेमियों के प्रति अभ्यर्थना में झुकी अथाह सागर की मेखला धारण किये भारत-भू की उदात्त परम्परा की प्रतीक हैं। राष्ट्रपति भवन की छत-सज्जा और भित्तिचित्रण के रूप में आँके गए इनके चित्रांकन आंतरिक प्रेरणा और दार्शनिक चिंतन को लेकर मुखर हुए। अन्य कितने ही भित्ति-चित्रों में अजंता का प्रभाव लेकर मुग़ल व राजपूत कला के कल्पना वैभव और सामान्य जन-जीवन की छाप इनके कृतित्व पर है।
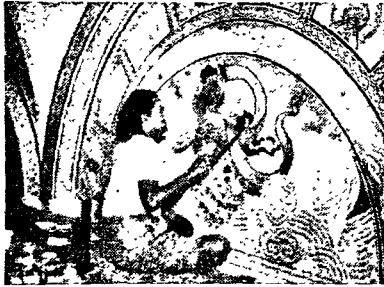
पैनल पेंटिंग करते हुए (राष्ट्रपति भवन)

सन् १९३२ से १९४७ तक इन्होंने माडर्न स्कूल में आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के विभागाध्यक्ष के बतौर अध्यापन कार्य किया। १९४७ के बाद भारत सरकार की सर्विस में क्यूरेटर के पद पर राष्ट्रपति से सम्बद्ध हो गए। पं० नेहरू की कोठी में समूची सुसज्जा का कार्य इन्हें सौंपा गया। प्रेजीडेंट एस्टेट में स्वागत कक्ष, अतिथि कक्ष, अध्ययन कक्ष, राष्ट्रपति के कार्यालय आदि की भित्ति-चित्र-सज्जा इन्होंने सम्पन्न की। परराष्ट्र मंत्रालय के प्रवेशद्वार की गुम्बद पर इन्होंने म्यूरल पेंटिंग निर्मित की। राष्ट्रपति के कोर्ट आफ आर्ट्स और कमांडर
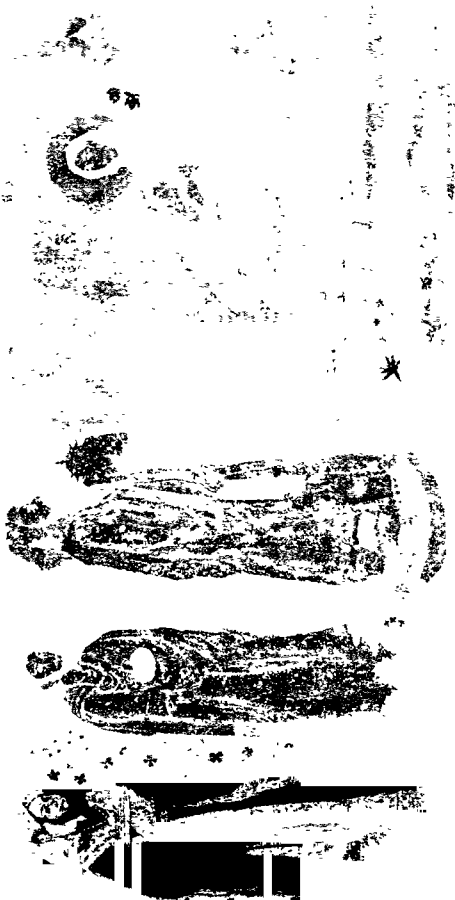
इन-चीफ के झंडे का डिजाइन इन्होंने बनाया। भगवान बुद्ध के जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करने वाली इनके द्वारा निर्मित चित्रावली राष्ट्रपति की ओर से कोलम्बो विश्वविद्यालय को उपहार स्वरूप दी गईं। खजुराहो के ऊपर किसी विदेशी लेखक द्वारा लिखी गई पुस्तक-सज्जा इन्होंने सम्पन्न की। टेम्परा, तैल और जलरंगों के माध्यम से सुनहरे, रूपहले, लाल, हरे, जामुनी, गुलाबी आदि विविध मांगलिक रंगों के मिश्रण से इन्होंने रंजक दृश्यावली प्रस्तुत की है। लकड़ी, सिल्क और भोजपत्रों पर चित्रांकन किया है। इन्होंने दो बार दिल्ली में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित कीं। १९५३ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी के सिलसिले में ये आस्ट्रेलिया गए। १९६३ में भारत सरकार की ओर से एक्सचेंज में भित्तिचित्रण के आरक्षण-संरक्षण के अध्ययन के लिए इन्हें रूस भेजा गया।

प्रचार-प्रसार से दूर सुकुमार बोस कला की एकांत साधना क हिमायती हैं। उनके मत में आधुनिक कला की ऊलजलूल रूपकारिता में सृजन का उज्ज्वल पक्ष नहीं, बरन् विद्रोह के भर्त्सनाभरे स्वर हैं जो जीवन को सुन्दर बनाने के बदले असुन्दर व बेडौल बनाने की प्रेरणा देते हैं। कला भले ही युग की विषमता से दूर न हो, पर वह दरअसल सौन्दर्य की वाहक है, मरघट का शृंगार नहीं, अन्यथा वह अपने शाश्वत चिर पथ से भटक जाएगी।

ईसा जन्म (भारतीय पद्धति पर)

'जहाँ स्वर्ग और मर्त्य मिलकर एक हो जाते हैं', 'स्वर्ग का निर्विघ्न पथ', 'जीवन का अस्तव्यस्त मार्ग', 'प्रतिशोध','अनन्त का प्रतीक', 'सदा बहार', 'हरी भरी प्यारी धरती की क्रोड़ में बिखरा ईश्वरीय वरदान', 'कुहरा आच्छादित मौसम', 'देवदासी' 'जीवन की प्रकाश-छाया', 'नगर से दूर ', 'काली पहाड़ी', 'चट्टान के पीछे','आकाश के नीचे','तूफ़ान के पहले','पगडंडी के पार', 'सीमा से परे', 'स्वयं को जान', 'एकान्त कोना', 'मेरा यौवन' 'बुभुक्षित पत्थर','प्रेमी का स्पर्श' 'अपरिमेय', 'मैं आनन्दोपभोग, और उसके अभाव का अनुभव दोनों साथ-साथ करता हूँ', 'दैवी शक्तियाँ', 'सर्वथा मृत पड़े तमसाच्छन्न जीवन को आलोक

से भर दो' आदि इनके कुछ चित्रों में सूक्ष्म सौन्दर्य चेतना और प्राकृतिक सौन्दर्य के प्रति इनकी सहज जिज्ञासु वृत्ति का आभास होता है। 'कुम्हार का घर', 'हार्दिक इच्छा का प्रतीक', 'विश्राम', 'एक उपेक्षित झोंपड़ी', 'झोंपड़ी का दरवाजा', 'छप्पर के बाहर', 'गाँव की चहल पहल', 'गाय का विश्राम स्थल' आदि इनके कुछ चित्र सरल और भोले ग्राम्य जीवन और अछूतों के रहन-सहन के दिग्दर्शक हैं। इनके लैण्डस्केप चित्रों में हिमाच्छादित पर्वत-शिखर, नदियाँ और काश्मीर के बर्फ के नज़ारे प्रस्तुत किये गए है जो संतुलन, गहराई, चित्रण शैली और सूक्ष्म कल्पना के द्योतक हैं। इन्होने बृहदाकार लाइफ-पोर्ट्रेट भी बनाये हैं। भावनगर के महाराजा के आमंत्रण पर इन्होंने काठियाबाड़ के दृश्यांकनों को आँका है जो महाराजा गैलरी में आज भी सुरक्षित हैं। इन्होने न सिर्फ़ सैंकड़ों चित्र बनाये हैं, बल्कि सैंकड़ों फुट की विस्तृत परिधि में दीवार व छत पर अपनी प्रखर अभिव्यक्ति को अमर बना दिया है।

जे० सुल्तान अली

कला के सम्बन्ध में सुलतान अली का मत है कि वर्त्तमान की सृजन कसौटियाँ अधिक सक्षम और व्यापक रूप में प्राचीन प्रवृत्तियों का प्रतिनिधित्व करें। इस दृष्टिभंगी से उनके चित्र बड़े ही कौशल से नये-पुराने के समन्वित प्रभाव को लेकर आंके गए हैं। अनोखे नाज़-अन्दाज़ में मुस्लिम संस्कृति की छाप लिये इनकी चित्रकृतियाँ अपनी ख़ासियत रखती हैं। इनकी विशिष्ट शैली किसी ख़ास मनोवृत्ति की परिचायक है, जिसकी नैसर्गिक छाप हल्के-हल्के थपकियाँ देकर दिमाग़ का बोझ हल्का कर जाती है।

अली का जन्म सन् १९२५ में बम्बई की बांदरा बस्ती में हुआ। कला की ओर इनकी जन्म जात रुचि थी। मद्रास के आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में इन्होंने देवी प्रसाद राय चौधरी के तत्त्वावधान में कला का प्रशिक्षण लिया। वहीं से पेंटिंग और फोटोग्राफी में डिप्लोमा तथा टेक्सटाइल डिज़ाइनिग में प्रमाण पत्र
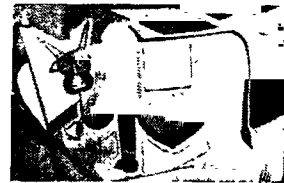
बैल

प्राप्त किया और बाद में इसी आर्ट्स और क्राफ्ट्स स्कूल में लगभग दो वर्ष तक वरिष्ठ शिक्षक के रूप सें कार्य करते रहे। १९४५ से ये एक व्यावसायिक कलाकार के बतौर कला-साधना में प्रवृत्त हैं। कुछ अर्से तक

मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल ऑफ़ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में ये अध्यापन-कार्य करते रहे। तत्पश्चात् रिशी वैली स्कूल के कला और शिल्प विभाग में डायरेक्टर भी रहे। आजकल ललित कला अकादेमी, नेशनल एकडेमी आफ आर्ट्स के प्रदर्शनी अधिकारी हैं। १९४६-४७ में सर्वप्रथम मद्रास में और १९४९ में मदन पल्ली, आन्ध्रप्रदेश में इनको व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित हुईं। बाद में तो राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी, १९५६ में ललित कला अकादेमी की भारतीय कला प्रदर्शनी, १९५७ में दक्षिणीपूर्वी एशिया की भारतीय कला प्रदर्शनी, इसके अलावा हंगरी, रूमानिया, बलगारिया, चेकोस्लोवाकिया, सोवियत रूस, फिलिप्पाइन, मिस्र, पश्चिमी जर्मनी आदि देशों में समय-समय पर आयोजित कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने अपने चित्र प्रेषित व प्रदर्शित किये।

भिखारी लड़की

अली ने भारतीय कला की मौलिक अविच्छिन्न परम्परा में अपने चित्रों को नितान्त नये रूप में उसे परम्परा की कड़ियों के रूप में जोड़ दिया है। उनके कतिपय जलरंग, टेम्परा और पेस्टल चित्रों को देखकर मध्ययुगीन मुग़ल चित्रण पद्धति और आंध्रप्रदेशीय लोक परम्परा का बरबस स्मरण हो आता है। कलकत्ता की एकेडेमी आफ आर्ट्स, अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ आर्ट्स और पटना की शिल्प कला परिषद से इन्हें अवार्ड प्राप्त हुए हैं। मद्रास की दक्षिण भारतीय चित्रकार सोसाइटी और प्रगतिशील चित्रकार एसोसिएशन के ये सदस्य हैं, साथ ही अनेक प्रादेशिक कला-संस्थाओं से सम्मानित और पुरस्कृत हो चुके हैं। इनके कितने ही चित्र पब्लिक गैलरी और निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं। बचपन से ही नृत्य और संगीत

लोकपर्व का एक दृश्यांकन

में भी इनकी रुचि रही है। भारत का इन्होंने व्यापक दौरा किया और भिन्न-भिन्न प्रादेशिक संस्कृति और लोक शैली की छाप आपने कृतित्व में रूपायित की।

अमरनाथ सहगल

ये भावेश सान्याल के साथियों में से हैं। लाहौर के मेयो स्कूल आफ आर्ट्स और फाइन आर्ट स्कूल में इन्होंने कला सम्बन्धी प्रशिक्षण प्राप्त किया। पंजाब के जन जीवन की झाँकी इन्होंने अपने चित्रों में प्रस्तुत की। वहाँ के प्राकृतिक दृश्य इनकी कला के मुख्य उपादान हैं और वहाँ के रूप-विवर्त्तन की दृश्यगत चेष्टाएँ इनके सृजन के प्राणतत्त्व हैं। भारत सरकार के सामुदायिक विकास मंत्रालय में कला परामर्शदाता के रूप में इन्होने यूनेस्को की ओर से लोक कला के पुनरुत्थान का गंभीर प्रयास किया है। यूँ भी इस दिशा में इनका कार्य सराहनीय है और इन्होने पाइलट प्रोग्राम के दायित्व को बखूबी निभाया है। १९५१ और १९५९ में न्यूयार्क और १९५८ में पेरिस तथा पूर्वी अफ्रीका में इन्होने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की। १९५३ में नई दिल्ली की मूर्त्तिकला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। १९५६-५७ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादमी पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९५८ में स्वर्णपदक मिला। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ आर्ट्स तथा अन्य कला संग्रहालयों में इन्होने प्रतिनिधित्व किया है। ये न सिर्फ़ कलाकार हैं, वरन् सर्वसामान्य की जन पदीय लोक शैली के अभ्युत्थान में इन्होने महत्वपूर्ण योगदान भी किया है, साथ ही कला और शिल्प के गंभीर अध्ययन को इन्होंने स्वैच्छिक विषय के रूप में अपना कर उसको विकसित किया है।

सूरज सदन

ये मुख्यतः पोर्ट्रेट पेंटर हैं। इन्होने महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल, डा. राधाकृष्णन, रवीन्द्र नाथ ठाकुर, प्रेमचन्द आदि मनीषियों के छविचित्र निर्मित किये। दृश्यांकनों और लोकचित्रों में भी इनकी रुचि है। एक उत्साही तरुण शिल्पी के रूप में इन्होंने नव्य कला प्रणालियों को प्रश्रय दिया। अन्तर्राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी, उत्तर भारत कला प्रदर्शनी तथा चित्र कला संगम प्रदर्शनी व अन्य प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुके हैं।

अरूपदास

कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने फाइन आर्ट में डिप्लोमा लिया। सन् १९४९ से व्यावसायिक कलाकार के बतौर ये चित्र-साधना में लगे हैं। अण्डे की टेम्परा टेकनीक में ये विशेष रूप से दक्ष हैं और इन्होंने उसके माध्यम से अनेक प्रयोग किये हैं। पाश्चात्य मास्टरों की टेकनीक का प्रभाव इनकी कला पर पड़ा है। अतएव इनके कतिपय चित्र सामान्य परिचित देशी वातावरण से दूर जान पड़ते हैं।

ईसा

सन् १९५६ में राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादेमी अवार्ड प्राप्त हुआ। १९५३, पुनः १९५५, ५६, ५९ में इन्हें आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से लगातार पुरस्कार मिलते रहे। १९५६ में ललित कला अकादेमी की ओर से पूर्वी यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। १९५४ में दिल्ली और १९५६ में कलकत्ता में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ कीं। बाहरी देशों की प्रदर्शनियों में भी ये सोत्साह भाग लेते रहे हैं। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं और नव्य शैली की चित्र-सर्जना में नई प्रणालियाँ ईजाद करते रहने में इनकी रुचि है। आजकल भारत सरकार के विज्ञापन और दृश्य प्रचार विभाग में ये कार्य कर रहे हैं।

अविनाश चन्द्र

दिल्ली पालिटेकनीक से इन्होंने पेंटिंग में डिप्लोमा प्राप्त किया और कुछ अर्से तक वहीं के कला-विभाग में कार्य किया। किन्तु बाद में व्यावसायिक कलाकार के बतौर ये स्वतन्त्र रूप से इस दिशा में अग्रसर हुए और विदेशों में

वृक्षों के झुरमुट में

रहकर इन्होंने कला को परिपक्व बनाया। १९५१ में श्रीनगर में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की, तत्पश्चात् १९५३-५४ में इन्होंने दिल्ली में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ कीं। १९५५ में राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। भारत और विदेशों के प्रायः सभी प्रदर्शनों में भाग लिया। १९५६ में और १९५७ में लंदन में और १९५८ में आयरलैण्ड में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित कीं। लंदन में ये कुछ समय तक रहे और देश-विदेशों में घूमकर आधुनिक कला-प्रवृत्तियों के अध्ययन को व्यापक बनाया। इंडोचाइना, इंडोनेशिया और लंदन स्थित भारतीय दूतावासों और नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके चित्र सुरक्षित हैं। दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्य तो ये है ही, अनेक देशी-विदेशी कला-संस्थाओं से भी सम्बद्ध हैं।

क्षितीन चक्रवर्त्ती

फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लेने के पश्चात् ये लगभग दस-पन्द्रह वर्षों से

कला-साधना कर रहे हैं। प्राच्य पद्धति पर टेम्परा में भित्तिचित्र-सज्जा में इन्होंने अभ्यास और अध्यवसाय किया। इन्होंने प्रायः सभी अखिल भारतीय कला- प्रदर्शनियों और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से विदेशों में आयोजित भारतीय कला-प्रदर्शनियों में भाग लिया। १९५४ में इन्हें स्वर्णपदक और दो बार प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुए। १९५८ में इन्हें स्वर्ण और रजत प्लेक प्रदान की गई। इसके अतिरिक्त समय-समय पर अन्य कितने ही पुरस्कार और नक़द राशियाँ इन्हें मिलती रही हैं।

एक सजीव दृश्य भंगिमा

इन्होंने प्राकृतिक दृश्यों से प्रेरणा प्राप्त की है और लैंडस्केप चित्रण इनकी विशेषता है। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की कार्यकारी समिति के सदस्य हैं और कला के विकास और अभ्युत्थान में सक्रिय भाग लेते है।

जे० के० सूर्यम

सूर्यम नूतन शैली के प्रगतिशील कलाकार हैं। इन्होंने मानव-मनोविज्ञान की सूक्ष्मताओं को नये ढंग से अपने चित्रों में प्रस्तुत किया है। इन्होंने कला की खोज में प्रायः समूचे भारत का भ्रमण किया है। कला की ओर इनकी रुचि जन्मजात है, पर उसकी साधना में इन्हें काफ़ी संघर्ष करने पड़े हैं। जीवन बेतरतीब है, उसके बिखरे पन्ने समेटते-समेटते इंसान टूट जाता है दर-दर की ठोकरें खाकर।

संघर्ष

इन्होंने मनुष्य की उद्विग्न खिन्नता और कुंठाओं का बखूबी उद्घाटन किया।

इनके कतिपय चित्रों में आधुनिक समस्याओं की सच्ची झाँकी है। इनके 'एटमबम' शीर्षक चित्र में मनुष्य को विनाश की गिरफ़्त में बन्दी दर्शाया गया है। दरअसल, आज के वैपरीत्य-वैषम्य ने उसकी बुद्धि भ्रष्ट कर दी है। वह सर्वनाश के प्रति उन्मुख है। 'संघर्ष' चित्र में मानव की दारुण विवशता का दिग्दर्शन और 'खिन्न' (डिजेक्टेड) में मन की अवसन्नता का चित्रण है। संघर्षों के कारण जीवन में कितनी ही जटिलताएँ और प्रतिकूल प्रक्रियाएँ हैं। ऊपर की आरोपित सभ्यता की ओट में वह अपनी कुत्साओं पर पर्दा डाले रहता है। किन्तु सहानुभूतिपरक पैनी नज़रों से गूढ़ मनःस्थितियाँ छिप नहीं सकतीं। स्वयं को सम्पृक्त कर ऐसा नहीं कि वह भुलावे में पड़कर उनके प्रति प्रतिबद्ध न हो।

संघर्षशील मानव मुद्रा

सूर्यम ने आज के भटके संदर्भों में अपने विषयों को चुना है। उनकी व्यंजना का स्तर साधारण तर्क से ऊपर है। 'थर्मामीटर' नामक अपनी एक पेंटिंग में मानव जीवन का इस छोटे से यन्त्र से महत्त्वपूर्ण सम्बन्ध जोड़ा गया। अनुपात में थर्मामीटर ऊपर-नीचे बढ़ा तो मनुष्य की मृत्यु अवश्यंभावी है। लोकदृश्यों से भी इनके कतिपय चित्रों के विषय लिये गए हैं। 'दूल्हा-दुल्हन' और कुछ अन्यान्य चित्र इसी शैली पर निर्मित हैं। शुरू में इनकी रुचि कहानी, कविता और नाटक, नृत्य-संगीत की ओर थी, परन्तु बाद में हैदराबाद के लोक चित्रकार ए० पैडी राजू के तत्त्वावधान में इन्होंने कला का अभ्यास किया। अनेक चित्र प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है और ये पुरस्कृत भी हुए हैं। आजकल हैदराबाद की काटेज इंडस्ट्रीज की दिल्ली शाखा के मैनेजर हैं।

मोहम्मद यसीन

मोहम्मद यसीन मुख्यतः दृश्य चित्रकार हैं। इन्होंने भारतीय पद्धति पर विदेशी तत्त्वों को आत्मसात् किया है। सन् १९२८ में मुगलगिदा, जिला महबूब नगर हैदराबाद में इनका जन्म हुआ। इनकी प्राथमिक शिक्षा दारुउलूम कालेज में हुई। बाद में स्कालरशिप लेकर १९५४ में इन्होंने गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स एंड आर्किटेक्चर में दाखिला ले लिया। १९५८ में इन्होने पेंटिंग में डिप्लोमा लिया और १९५९ में कम्पोज़ीशन के विषय पर एडवांस डिप्लोमा ऑनर्स डिविज़न में लिया। १९६२ में ईस्ट-वेस्ट सेंटर स्कालरशिप पर हवाई, होनोलुलु में तथा न्यूयार्क के प्राट ग्राफिक आर्ट्स सेंटर में कला का विशेष अध्ययन करने चले गए। यूनाइटेड स्टेट्स मेनलैण्ड में इन्होंने घूम-घूम कर कला-संग्रहालयों और आर्ट गैलरियों का निरीक्षण किया। तत्पश्चात् समूचे

होली

यूरोप—लंदन, पेरिस, फ्लोरेंस, रोम, पिसा और मार्सलेस आदि देशों का भ्रमण कर वहाँ के कला-संग्रहालयों और कला-वीथियों की विशेषताओं का निरीक्षण करके भारत लौटे।

ललित कला अकादमी से ये पुरस्कृत हुए हैं। १९५९ में नेशनल एकेडेमी आफ आर्ट द्वारा एक हज़ार राशि का गोल्ड प्लेक, १९६० में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी का स्वर्णपदक, १९६३ में होनोलुलु आर्टिस्ट के जलरंग निर्मित चित्र पर प्रथम पुरस्कार और उसी वर्ष पचासवीं स्टेट फेअर आर्ट एग्ज़ीबिशन में ग्राफिक कृति पर तृतीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। इनकी कला अनेक प्रभावों की समन्वित छाप लिये निजी रंग-वैविध्य और विभिन्न शैलियों की दिग्दर्शक है। नई दिल्ली के आर्ट कालेज में ये वरिष्ठ शिक्षक हैं।

टी० केशवराव

ये आंध्र प्रान्तीय हैं, पर आजकल दिल्ली में रहकर कला की एकांत साधनारत हैं। आन्ध्र प्रदेश स्थित एक छोटे से गाँव रामचन्द्रपुरम में एक नैष्ठिक परिवार में इनका जन्म हुआ। प्रारम्भ में आन्ध्र जातीय कलाशाला, मछलीपत्तनम में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया। १६२८ से १६३२ तक ये शांतिकेतन में नंदलाल बोस के तत्त्वावधान में कला का अध्ययन करते रहे। १६३२ से १६४० में इन्होंने मद्रास से प्रकाशित होनेवाली मासिक और साप्ताहिक आन्ध्र पत्रिका में कार्य किया। तत्पश्चात् कई वर्षों तक ये 'चन्दामामा' में काम करते रहे। १६६० से १६६६ के दौरान गृहमंत्रालय के रजिस्ट्रार जनरल के दफ्तर में भी सर्विस की।

राव मुख्यतः ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। लंदन में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इनकी एक ग्राफिक चित्रकृति बहुप्रशंसित हुई। ललित कला अकादेमी के प्रयास से पोलैण्ड और वारसा आदि देशों की ग्राफिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। मद्रास की फाइन

वात्सल्य

आर्ट्स एग्ज़ीबिशन में १६३३, १६३४, १६३५ में लगातार पुरस्कार प्राप्त होते रहे। १६३५ में कोदाई कैनाल प्रदर्शनी और १६३७ में लखनऊ कला

प्रदर्शनी में ये पुरस्कृत हुए। मद्रास और नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी

धान कूटते हुए

की वार्षिक कला प्रदर्शनियों और विदेशों की आर्ट एग्जीबिशन्स में ये हमेशा अपनी चित्रकृतियाँ प्रेषित करते रहे। भारत और भारतेतर देशों के कला-संग्रहालयों, स्वर्गीय अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चित्र-संग्रह, सर सप्रू, रामास्वामी मुदालियर, शांतिनिकेतन और मद्रास के कला संग्रहालय और आशुतोष म्यूजियम के अतिरिक्त न्यूयार्क के सायराक्यूज़ म्यूज़ियम में इनके चित्र सुरक्षित हैं। जलरंगों में निर्मित 'बकरी', 'शिकार', 'माघ पूर्णिमा', आदि चित्र और ग्राफिक निर्मित 'कबूतर', 'धान कूटते हुए' और 'साइस्ता' आदि इनके चित्र विशेष प्रसिद्ध हैं। ये लोकशैली के चित्रकार हैं, पर इनकी कला पर आधुनिक चित्र शैलियों का प्रभाव भी द्रष्टव्य है। नये के नाम पर जो कलावैभव आज प्रभूत मात्रा में उपलब्ध है उसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उसके पृथक् पथ का निर्माण हो चुका है जिस दिशा में नित-नये प्रयोगों द्वारा इनके मत में बहुत कुछ खोजा जा सकता है।

ए० कलाम

कलाम जामिया मिलिया के आर्ट एज्यूकेशन इन्स्टीट्यूट के डायरेक्टर हैं। शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट में इन्होंने डिप्लोमा लिया, तत्पश्चात् यूनाइटेड स्टेट्स अमेरिका की कोलबिम्या यूनीवर्सिटी से फाइन आर्ट्स एज्यूकेशन में एम० ए० की डिग्री प्राप्त की। ये जामिया मिलिया की छात्रवृत्ति पर अमेरिका में रहकर अध्ययन भी करते रहे। लगभग १९३६ से व्यावसायिक कलाकार के रूप में ये कला साधना में संलग्न हैं। चित्र सृजन के अलावा कला प्रशिक्षण विधि में भी इनका पर्याप्त योगदान है। १९५५ की राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से समय-समय पर आयोजित होने वाली विभिन्न प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। १९५२ में अखिल भारतीय स्तर पर इन्होंने कला प्रशिक्षकों की कान्फ्रेन्स का आयोजन किया। १९५६ में ललित कला अकादेमी की ओर से कला शिक्षा पर हुए सेमिनार में भी इन्होंने सोत्साह भाग लिया। शिक्षा के क्षेत्र में कला और शिल्प के महत्त्व पर सामूहिक विकास योजना के अन्तर्गत दूसरा सेमिनार जो हुआ उसमें भी इन्होंने पहल करने की भरसक चेष्टा की। ये राजस्थान ललित कला अकादमी के भी सदस्य हैं और न सिर्फ़ स्थानीय वरन बाहरी आयोजनों के संगठन में बेहद रुचि रखते हैं।

एस० ए० कृष्णन

ललित कला अकादेमी की समसामयिक कला पर प्रकाशित होने वाली पुस्तक माला के सहायक सम्पादक हैं। कला और साहित्य में शुरू से ही इनकी गहरी दिलचस्पी है। सामयिक कला आन्दोलन और बम्बई के प्रगतिशील कलाकार ग्रुप से ये सम्बद्ध हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी (१९४९) और नेशनल एग्ज़ीबिशन आफ आर्ट (१९५६) के आयोजन में इन्होंने सक्रिय भाग लिया। कुछ अर्से तक 'टाइम्स आफ इंडिया' में भी ये कला-आलोचक के पद पर कार्य करते रहे। अंतर विश्वविद्यालय युवक समारोह की जाँच समिति के ये तीन बार सदस्य हुए। शंकर की अंतर्राष्ट्रीय बाल कला प्रदर्शनी, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के वार्षिक समारोह, ललित कला अकादेमी की कला प्रशिक्षण संगोष्ठी और भवन-निर्माण-शिल्प सेमिनार में ये सहयोगी रहे हैं। इन्होंने ललित कला अकादेमी की 'कलाकार निर्देशिका' का संपादन किया। कला की प्रगति व उत्थान सांस्कृतिक मनोनिर्माण से ही संभव है, अतएव इनके मत में सामर्थ्य और मर्यादा के अनुरूप स्वस्थ मान-मूल्यों की स्थापना का उत्तरदायित्व संतुलित व अनुशासित कला के विकास द्वारा ही संभव हो सकता है।

यों दिल्ली के कलाकार आज किसी से पीछे नहीं है। कितने ही छोटे-बड़े साधक बहुमुखी दिशाओं की खोज कर रहे हैं जिसके परिणाम स्वरूप कितने ही व्यापक प्रश्न सामने उभर कर आए हैं। अधिकाधिक कलाकारों के योग से स्थानीय कला विषय-वैविध्य और व्यापकता की गरिमा से परिपूर्ण तो है ही, उसके विकास की संभावनाएँ भी अधिक मुखर होकर सामने आई हैं। समूचे युग विशेष की चिन्तन प्रक्रिया और वातावरण के अनुरूप रूप निर्माण, मूल्य निर्धारण और कला की कसौटियों की नित-नई टक्कर से उसमें कलागत वैविध्य तो आया ही है, उसके विकास का औसत स्तर भी अपेक्षाकृत कहीं अधिक सम्पन्न है।

स्फुट कलाकारों में चित्रकला संगम के सदस्य-सचिव **जे० ए० बल्लानी**—चित्रकार और मूर्त्तिकार हैं जो भारत सरकार के शिक्षा मंत्रालय में कार्य कर रहे हैं। **सचदेव भटनागर** जो लगभग दस-बारह वर्षों से कला-साधना में जुटे हैं तथा आर्टिस्ट व म्यूरल पेंटर हैं, साथ ही कम्बोडिया और चीन की भारतीय

कला-प्रदर्शनी में भी सोत्साह भाग लिया है। तरुण शिल्पी **कुलदीप** बहरे और गूंगे होने के बावजूद मूक कला-साधना में रत हैं। **दिलीप कुमार दासगुप्ता** जिन्होंने अखिल भारतीय कला स्तर पर आयोजित विभिन्न प्रदर्शनियों में भाग लिया है और अनेक चित्रों पर पुरस्कृत भी हुए हैं और जिन्होंने व्यावसायिक कला प्रदर्शनियों में चित्र सज्जा की है। **जितेन दे** भारत सरकार के विज्ञापन और दृश्य प्रचार निदेशालय में काम कर रहे है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं और राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, फाइनल आर्ट्स एकेडमी और इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की प्रदर्शनी में भाग ले चुके हैं। न केवल कला के प्रति वरन् संगीत में भी इनकी रुचि है।

डी. एन. धर—वास्तुशिल्पी हैं, इन्होंने लंदन से वास्तुशिल्प में डिप्लोमा लिया और समूचे यूरोप का दौरा करके भवन-निर्माण की देशी-विदेशी सूक्ष्मताओं का अध्ययन किया। ये आजकल डिफेंस हेडक्वाटर्स में वरिष्ठ वास्तुशिल्पी के पद पर कार्य कर रहे हैं। नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य तो ये हैं ही, इन्होंने समय-समय पर आयोजित देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में भी भाग लिया है। **गुनेन गांगुली** खासतौर से ग्राफिक आर्टिस्ट हैं, १९४९ से कला क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इस समय आर्म्ड फोर्सेज़ के फिल्म और फोटो डिविज़न में चीफ आर्टिस्ट हैं। इन्होंने राजघाट में महात्मा गांधी स्मारक प्रदर्शनी, यूनेस्को, पेरिस, जेनेवा, लंदन की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया। १९४६ की अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी और आर्मी आर्ट एग्ज़ीबिशन में इनके चित्रों पर पुरस्कार दिया गया। हैदराबाद की आर्ट सोसाइटी से इन्हें प्रथम पुरस्कार मिला। सन् १९५९-६० का इटालियन स्कॉलरशिप भी इन्हें दिया गया, ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं और आधुनिक कला की नेशनल गैलरी में प्रतिनिधित्व किया है। **सोमनाथ होर**—दिल्ली पालिटेकनीक में लेक्चरार हैं, ग्राफिक कलाकार हैं, १९६० की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादेमा अवार्ड प्राप्त हुआ, अपनी पत्नी श्रीमती रेबा दास गुप्ता के साथ संयुक्त रूप से ये कई बार कला प्रदर्शनियां कर चुके हैं। **मदन जैन**—मूर्तिकार हैं, नई दिल्ली के रेलवे स्टेशन और रेलवे अस्पताल के लिए इन्होंने मूर्त्ति-निर्माण किया। डाकतार की शतवार्षिकी प्रदर्शनी, बुद्ध जयंती प्रदर्शनी तथा अन्य कतिपय प्रमुख प्रदर्शनियों में इन्होंने सज्जा कार्य किया है। **मनोहर कौल**—नई दिल्ली के आल इंडिया

रेडियो की न्यूज़ सर्विस के उपसंपादक हैं। नई दिल्ली और श्रीनगर में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियां की हैं, कलाकार के अतिरिक्त ये पत्रकार और कला आलोचक भी हैं, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य तो हैं ही, आर्ट सिम्पोज़ियम के इन्चार्ज भी हैं। **खेमराज**—किसी प्राइवेट कम्पनी में विज्ञापन के इंचार्ज हैं, इन्हें १९५९ का अकादेमी अवार्ड मिल चुका है, सभी प्रमुख कला-प्रदर्शनियों में सोत्साह भाग लेते हैं। **राजेश मेहरा**—दिल्ली पालिटेकनीक के कला-विभाग में कार्य कर रहे हैं, लगभग १९५५ से कला-साधना में प्रवृत्त हैं, सभी ग्रुप प्रदर्शनों और कला प्रदर्शनियों—राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, दिल्ली शिल्पी चक्र की १९५३ की कलाकार प्रदर्शनी, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के अतिरिक्त इन्होंने अफ़गानिस्तान, दक्षिण अफ्रीका, कम्बोडिया और १९५७ में टोकियो की यंग आर्टिस्ट एग्ज़ीबिशन में भाग लिया, इन्हें इण्डियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की ओर से पुरस्कार भी मिला है। ये दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्य हैं और इन्होंने शैक्षणिक एवं औद्योगिक कला प्रदर्शनियों की सुसज्जा की है। **पी. एस. नारायणन**—दिल्ली शिल्पी चक्र के संस्थापक सदस्य हैं और चार वर्ष तक उसके सेक्रेटरी भी रह चुके हैं। इन्होंने किसी स्कूल या कालेज में कला की शिक्षा प्राप्त नहीं की, वरन् कला में रुचि अपने आप इनमें पैदा हुई और इन्होंने स्वयं साधना द्वारा उसे परिपक्व बनाया, १९५१ में दिल्ली कलाकार प्रदर्शनी, १९५३ में सिलोन की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, १९५७ में दिल्ली शिल्पी चक्र द्वारा आयोजित स्केच प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। ये कला पर लिखते भी हैं और इनकी कला आलोचनाएं छपती रहती हैं। **एम. एल. ओबराय** ने दिल्ली पालिटेकनीक से फाइन आर्ट्स में में डिप्लोमा लिया, आजकल वैज्ञानिक शोध व सांस्कृतिक मामलों के मंत्रालय में कार्य कर रहे हैं। अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स प्रदर्शनी के वार्षिक आयोजन में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। दिल्ली शिल्पी चक्र द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में ये सदैव भाग लेते रहे हैं और व्यावसायिक प्रदर्शनी के भित्तिचित्रों के निर्माण में सहयोगी कलाकार के रूप में कार्य करते रहे हैं, दिल्ली शिल्पी चक्र के भी ये सदस्य हैं।

रामनाथ पसरीचा--शारदा उकील स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया। हिमालय के दृश्य-चित्रणों और पहाड़ी लोगों के चित्रांकन में इनकी विशेष रुचि है। इन्होंने पर्वतीय भू-भाग का व्यापक दौरा किया है और बड़े ही

सजीव, यथार्थ दृश्य इन्होंने ग्राँके हैं। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, ग्राल इंडिया फाइन ग्रार्टस एंड काफ्ट्स सोसाइटी, कलकत्ता की एकेडेमी ग्राफ फाइन ग्रार्ट्स ग्रादि में तो इन्होंने यथावसर भाग लिया ही है, विदेशों की भारतीय कला प्रदर्शनी में भी प्रतिनिधित्व किया है। ग्राल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की कार्यकारिणी समिति ग्रौर प्रदर्शनी समिति तथा ग्राल इंडिया रेडियो की ट्रैकिंग सोसाइटी के ये सदस्य हैं। दिल्ली में तीन बार व्यक्तिक प्रदर्शनियों के ग्रतिरिक्त ये ग्रन्य कितनी ही समसामयिक प्रदर्शनियों में भी भाग लेते रहे हैं।

प्रताप सेन—दिल्ली पालिटेकनीक के वास्तुशिल्प विभाग में वास्तुशिल्पी ग्रौर लेक्चरार हैं। भारत की सभी प्रमुख प्रदर्शनियों के ग्रलावा अमेरिका, जापान, रूस, पोलैण्ड ग्रौर मध्य पूर्व में ग्रायोजित भारतीय प्रदर्शनियों में भी भाग ले चुके हैं। औद्योगिक प्रदर्शनियों में इन्होंने सुसज्जा का कार्य लिया है। नाट्य प्रेक्षागृहों ग्रौर रंगमंच के निर्माण शिल्प में इन्होंने ग्रपना कौशल दर्शाया है। इस कला की सूक्ष्मताओं को ग्रात्मसात् करने के लिए इन्होंने भ्रमण भी किया है ग्रौर प्राचीन-ग्रर्वाचीन वास्तुशिल्प के समन्वय द्वारा नई प्रणालियों को प्रश्रय दिया है।

शरदेन्दु सेन राय—सुप्रसिद्ध भित्ति चित्रकार हैं ग्रौर इन्होंने लोक कलाओं ग्रौर शिल्प रूपाधारों का गंभीर ग्रध्ययन किया है। लखनऊ गवर्नमेंट कालेज ग्राफ ग्रार्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। लगभग १९३७ से ये कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। पहले कुमायूँ के इंडियन वैटरिनरी रिसर्च इन्स्टीट्यूट में स्टाफ ग्रार्टिस्ट थे, तत्पश्चात सहारनपुर डाक-तार प्रशिक्षण केन्द्र में कार्य किया। नई दिल्ली के शारदा उकील स्कूल ग्राफ ग्रार्ट के इंचार्ज के बतौर सेवा की। कलकत्ता ग्रौर अन्य ग्रायोजित प्रदर्शनियों में भाग लिया। ये नई दिल्ली के समरफील्ड स्कूल में कलाकार के पद पर नियुक्त हैं। भारत ग्रौर भारतेतर सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। १९५७ में एकेडेमी आफ फाइन ग्रार्ट्स द्वारा इन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। इन्होंने बुद्ध कला प्रदर्शनी, खादी प्रदर्शनी, साउथ ब्लाक का गुम्बद, नई दिल्ली का सचिवालय भवन ग्रौर लोक सभा में भित्तिचित्र सज्जा का कार्य सम्पन्न किया। ये ग्राल इंडिया फाइन ग्रार्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं ग्रौर कला विषयक साहित्य के ग्रध्ययन एवं ग्रन्वेषण में रुचि रखते हैं।

•

ओम प्रकाश शर्मा—नई दिल्ली के गवर्नमेंट मॉडल स्कूल में ड्राइंग के सीनियर आर्ट टीचर हैं। इन्होंने दिल्ली पालिटेकनीक से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। गाफिक्स में इन्होंने विशेष प्रशिक्षण लिया। १९५८ में पटना के शिल्प कला परिषद से इन्हें स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। १९५८ में साउथ इंडियन सोसाइटी आफ पेंटर्स की वार्षिक प्रदर्शनी तथा समसामयिक प्रदर्शनियों में भाग लिया। इन्होंने नई दिल्ली तथा अन्यत्र व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की हैं।

ब्रह्मदेव शास्त्री—इन्होंने दिल्ली पालिटेकनीक से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। काशी हिन्दू विश्व विद्यालय से इन्होंने प्राच्य विद्या में प्रशिक्षण प्राप्त किया। ये मूर्तिकार और चित्रकार दोनों हैं। हिमालय और पश्चिमी तिब्बत का खूब दौरा किया है। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, नई दिल्ली, शिल्प कला परिषद, पटना औद्योगिक कला प्रदर्शनी, कलकत्ता में भाग लिया। ये संस्कृत, हिन्दी, बंगाली के विद्वान लेखक हैं। **डी० जे प्रिम**--मूर्तिकार और चित्रकार दोनों है, १९४९ में रोम की अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में भाग लिया, १९५७ में बम्बई आर्ट सोसाइटी की ओर से इन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया। इन्होंने बम्बई में दो बार व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की। ये बाम्बे आर्ट सोसाइटी के सदस्य भी हैं। **ए० पी० चार्ल्स राज**--लगभग बीस वर्षों से कला साधना में जुटे हैं। आजकल इंडियन एयर फोर्स में कार्य कर रहे हैं। कुशल चित्रकार और मूर्त्ति शिल्पी हैं, रक्षा मंत्रालय की कला-प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं।

शितांशुकुमार राय—दिल्ली पालिटेकनीक से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लेने के पश्चात् म्यूनिक की एकेडेमी आफ आर्ट्स से पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा लिया। ये ग्राफिक आर्टिस्ट और औद्योगिक डिजाइनर हैं, साथ ही मुद्रण विज्ञान और नक्शा नवीसी में भी निष्णात हैं। इन्होंने जर्मनी और अन्य यूरोपीय देशों का भ्रमण किया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, फाइन आर्ट्स एकेडेमी और बम्बई, हैदराबाद और अमृतसर की कला प्रदर्शनियों में भाग लिया। स्विट्ज़रलैंड की अंतर्राष्ट्रीय ग्राफिक कला प्रदर्शनियों में तथा विदेशों में समय-समय पर आयोजित अन्य कला प्रदर्शनियों तथा रूस, रूमानिया और लोक सभा के कलासंग्रह में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सक्रिय सदस्य हैं और शारदा उकील स्कूल आफ आर्ट में भी अपनी सेवाओं का योगदान करते रहे हैं। **आर० सारंगन**—मद्रास के गवर्नमेंट

स्कूल ग्राफ ग्रार्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने कमशियल ग्रार्ट में डिप्लोमा लिया, १६४६ से मद्रास के प्रोग्रेसिव पेंटर्स एसोसिएशन में ये नियमित रूप से योगदान करते रहे हैं। मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी में भी इन्होंने ग्रपने चित्र प्रदर्शित किये। ये भारत सरकार के पब्लिकेशन्स डिविज़न से सम्बद्ध हैं।

सरदार जसवन्त सिंह—कमशियल आर्टिस्ट के रूप में कई वर्षों से कला-साधना कर रहे है। ये ग्राधुनिकतावादी प्रयोगशील कलाकार हैं। फ्रेंच मास्टरों की प्रेरणा से नई-नई शैलियों की रूप-सृष्टि इन्होंने की है ग्रौर 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट में विशेष दिलचस्पी रखते हैं। शून्य आकारों मे भी रेखा एवं रंग-संयोजना अपने विशेष ग्राकर्षण के साथ बड़ी ही व्यंजक होकर उभरी है। ये पुस्तक सज्जाकार भी हैं और अपनी एकान्त साधना द्वारा कला ही इनका साधन और साध्य भी है। इनकी दिल्ली में व्यक्तिक प्रदर्शनी हुई। साथ ही ये सामयिक प्रदर्शनियों में भी भाग लेते रहते हैं। **टी. एस. सिन्हा**—चित्रकार और मूर्त्तिशिल्पी दोनों हैं, ख़ासतौर से शिल्प विशेषज्ञ हैं। इन्होंने १६४८ में नेपाल का स्टडी टूर किया। भारत के प्रायः सभी सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्थलों का निरीक्षण किया। ये केन्द्रीय सांख्यिकीय सगठन में कार्य कर रहे हैं और आल इंडिया फाइन ग्रार्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स की प्रदर्शनी में भाग ले चुके हैं।

केवल सोनी-व्यावसायिक मूर्त्तिकार हैं जो लगभग दस-बारह वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। दिल्ली के पालिटेकनीक से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया, पर इटली में मूर्त्तिकला के प्रशिक्षण के लिए भारत सरकार से दो वर्ष की छात्रवृत्ति पर ये वहाँ शोधकर्त्ता के रूप में कार्य करते रहे। ये दिल्ली शिल्पी चक्र के सदस्य हैं ग्रौर इटली की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा वेनिस बियनले में १६५८ की प्रदर्शनी, नई दिल्ली में ग्रायोजित अखिल भारतीय मूर्त्तिकला प्रदर्शनी तथा १६५६ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार ग्रौर पदक प्राप्त हुए हैं।

पी. सी. दिरमानी—कमशियल आर्ट में नेशनल सर्टिफिकेट लिया। दृश्यश्रव्य कोर्स भी किया है। ये लगभग बीस-पचीस वर्षों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर काम कर रहे हैं। इन्होने फाइन ग्रार्ट में निजी तौर पर श्रम व ग्रभ्यास किया है। लगभग चार-पाँच वर्षों तक व्यंग्य चित्रकला में भी ये रुचि लेते रहे और इन्होंने ऐसे चित्र भी सिरजे। दिल्ली में आयोजित ग्रनेक प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं—ख़ासतौर से नई दिल्ली की ग्राल इंडिया फाइन ग्रार्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा ग्रायोजित स्थानीय और अन्यत्र प्रदर्शनियों

में इन्होंने अपने चित्र प्रदर्शित किये हैं। इन्होंने दिल्ली में भी अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की है और अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की प्रशासकीय परिषद और अन्य समितियों के भी सदस्य हैं।

ज्ञान

सरपट दौड़

दिल्ली के प्रख्यात् तरुण शिल्पी हैं जो सोवियत दूतावास से सम्बद्ध है। ये मुख्यतः बाटिक पद्धति पर चित्रों का निर्माण करते हैं। शैलोज मुखर्जी, के० एस० कुलकर्णी और वीरेन दे से इन्हें कला की दिशा में विशेष प्रेरणा मिली। संघर्षों और मुसीबतों से ये आगे बढ़े। मामूली हैसियत का भरापूरा परिवार, पर पिता की मृत्यु बचपन में ही हो गई। कला के प्रति बेहद रुचि होने के कारण स्वेच्छया उसके अभ्यास को इन्होंने आगे बढ़ाया। सुप्रसिद्ध कलाकारों की छत्र छाया में अनेक प्रयोग किये। दिल्ली आर्ट कालेज

नव वधू

से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा प्राप्त कर दिल्ली काटन मिल में मामूली मज़दूर की हैसियत से संघर्ष करते रहे, पर इन्हें जो थोड़ा बहुत समय मिलता था उसमें इन्होंने अपनी कला-साधना न छोड़ी। रोशनारा बाग़ तथा प्रकृति के उन्मुक्त वातावरण में इन्होंने कितने ही तैलरंगों में लैंडस्केप और प्रसिद्ध नेताओं के पोर्ट्रेट बनाये।

बचपन में ही इन्हें आकृति-चित्रों व छवि अंकन का शौक़ था। ये आकृतियाँ आँकते और मिटाते थे। बाद में इन्होंने और-और पद्धतियाँ भी अख़्तियार की। बाटिक में नये-नये प्रयोग किये। इनका हस्तकौशल नैपुण्य और सधे हाथ का सूक्ष्म कौशल इनकी अनेक कृतियों में द्रष्टव्य है। दिल्ली तथा दिल्ली से बाहर की समसामयिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं। आधुनिक पाश्चात्य प्रणालियों का भी प्रभाव इनकी कला पर है और इन्होंने अमूर्त्त चित्रण पद्धति पर कतिपय चित्रों का निर्माण किया है, पर इनकी 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट की अभिरुचि मात्र पश्चिम की भौंडी नकल नहीं हैं, बल्कि वह भारतीय अर्थात् नितांत देशज है, क्योंकि इनके मत में ये पश्चिम के नही भारत की मिट्टी में जन्मे और बड़े हुए हैं।

इसके अतिरिक्त विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकारों में कुछ ऐसे मूक साधक हैं जो प्रचार-प्रसार से दूर अनवरत परिश्रम एवं अध्यवसाय द्वारा कला की ऐकान्तिक साधना में प्रवृत्त हैं और उन्होंने बहुमुखी दिशाओं में कार्य किया है। 'तूलिकी', जगदीश जोशी, वी. जोशी, जगदीश माली, योगेन्द्रकुमार 'लल्ला' सुशील वत्स, ए. मंगोले, हरपाल त्यागी, सेठी, चढ्ढा, आनन्द, उमेश वर्मा, सरन आदि कतिपय कलाकार पुस्तक चित्र सज्जा और आवरण पृष्ठ चित्रकार हैं जो कला उनके जीवन की साधना और आजीविका का साधन भी हैं। आधुनिकता के नाम पर बहुत सी तरुण प्रतिभाएँ मैदान में आई हैं जो अपनी व्यक्तिपरक अनुभूतियों एवं स्वतन्त्र मान्यताओं के आधार पर वे नई-नई वैविध्यपूर्ण उपलब्धियों द्वारा दिल्ली की कला के निर्धारण एवं स्थापना में बहुमुखी योगदान कर रही हैं।

उत्तर प्रदेश के कलाकार

बंगाल स्कूल का प्रभाव जब कला पर हावी था और उससे आगे बढ़ना कुछ कठिन सा प्रतीत हो रहा था तो असितकुमार हाल्दार और वीरेश्वर सेन ने उत्तरप्रांतीय कला को एक नया मोड़ दिया। उन्होंने नूतन और पुरातन में समन्वय स्थापित कर ऐसी सुदृढ़ नींव रखी जिसकी अपनी एक पृथक् परम्परा क़ायम हुई। वे अनुदार रूढ़िवादी या परमुखापेक्षी न थे, वरन् मौलिक प्रतिभा और सूक्ष्म संवेदना के धनी थे जिन्होंने नव्य निर्माण की दृष्टि से बड़े कौशल और संयम का परिचय दिया और जिनमें सशक्त एवं चुस्त चिंतन के सभी तत्त्व मुखर हुए।

सन् १६११ में लखनऊ में गवर्नमेंट स्कूल ऑफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स की स्थापना हुई। अतीत की परम्परा के दाय की स्वीकृति के साथ-साथ जिस आत्मीयता और रागात्मक प्रगाढ़ता से, ख़ासकर प्राच्य प्रभावों को आत्मसात् कर कला में स्वस्थ परिवर्त्तन हुए, उससे नई चेतना उभर कर सामने आई। भारतीय संस्कृति के मूल तत्त्व, जो मुग़ल साम्राज्य के पतन के पश्चात् संरक्षण के अभाव में लुप्तप्राय से होगये थे, अधिक व्यापक रूप में जनोपयोगी स्तर पर मुखर हुए। लोकरंजक व जनोपयोगी कलाओं में स्थापत्य कला, मूर्त्तिकला, काष्ठकला, लिथोग्राफी व ब्लाक बनाना, मीनाकारी, पच्चीकारी, चाँदी का काम, नक्काशी, ढलाई, गढ़ाई, मिट्टी का काम, प्रस्तर कला, कांस्य कला, पोस्टर, कवर-डिज़ाइन, शो-कार्ड और कुटीर उद्योग में छपाई, बुनाई, बेंत का काम, चीनी, मिट्टी व धातु के बर्तन आदि के मौलिक निर्माण के अलावा विभिन्न माध्यमों एवं शैलियों में चित्र-सृजन भी हुआ। १६२५ में असित कुमार हाल्दार इस आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल हो कर आए। वे नई सूझ-बूझ, नये रूप, नई पकड़ और नव-नव अभिव्यक्ति के साथ प्रयोग करते रहे। उन्होंने लगभग बीस वर्ष तक यहाँ रहकर कलात्मक चेतना के पुनर्जागरण में योगदान किया। विदेशी चित्रकारों की भौंडी नकल से कल्पना शक्ति का जो ह्रास हो रहा था, उससे पृथक् देश की प्राचीन परम्परा के प्रति उत्तरदायित्वपूर्ण दृष्टिकोण लेकर नवजागृति को अग्रसर करने में असित हाल्दार का प्रमुख

हाथ था। उनकी प्रबल निष्ठा थी कि चित्रकला को यदि पनपना है तो उसकी जड़ें भारतीय भूमि में होनी चाहिए, वरन् छिन्नमुखी प्रवृत्तियों की अपेक्षा कलात्मक शोध का रुख़ अपनाना श्रेयस्कर होगा। वीरेश्वर सेन ने भी तात्कालिक कला की मूल्य-मान्यताओं की नई प्राण-प्रतिष्ठा की थी। उन्होंने कला को प्राकृतिक वैभव से जोड़कर उसमें नव प्राणों का संचार किया। प्रकृति की चतुर्दिक् बिखरी हरीतिमा की विराट् क्रोड़ में और हिमानी वैभव की अनन्य साधना में उन्हें मानसिक तृप्ति उपलब्ध हुई। उनका प्रभाव समकालीन चित्रकारों पर पड़ा और इस मंथन से भावी रूपरेखाएँ उभर आईं।

उत्तर प्रदेशीय संस्कृति सदैव नई चुनौतियों को अपने आप में ढालती आई है। इसकी परम्पराओं में आध्यात्मिक संदेश है जो युगानुरूप कला के मानमूल्यों का विकास करती हुई इसी ठोस भूमिका पर टिकी रही हैं। प्राचीन काल से लेकर अब तक के काल-विस्तार को जिन पैमानों से वह नापती रही है उसके नैतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का ऋण कभी चुकाया नहीं जा सकता। वस्तुतः यहाँ की कला कसौटियाँ और अनेक कला-साधक प्रचार-प्रसार से दूर बिना किसी प्रश्रय या प्रोत्साहन के खुद रास्ता बनाते रहे हैं और उन्होंने कला के नित-नये परिवर्त्तनों पर दृष्टिपात किया है। बाहरी तड़क भड़क, प्रदर्शन व प्रगतिशीलता की मिथ्या विडम्बनाएँ उस पर हावी नहीं, बल्कि बड़े संयत और सुस्थिर रूप में उन्होंने उसे आगे बढ़ाया है। प्रयाग के कलाचार्य क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार की ऐकान्तिक साधना का श्रेय-प्रेय और सुधीर ख़ास्तगीर का कल्पना वैभव इसी भू- प्रान्तर की थाती है और अपने शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा में उन्होंने आध्यात्मिक चेतना एवं रहस्यात्मक भावनाओं का उन्मेष किया है। कुछ वर्ष पूर्व 'उत्तरप्रदेश कलाकार संघ' की स्थापना प्राणरंजराय, ब्रजमोहन जिज्जा, सुकुमार बोस, अम्बिकाप्रसाद दुबे, जय नारायण, तारादास सिनहा, शिवनन्दन नौटियाल, रमेशचन्द्र साथी और रणवीर सक्सेना आदि उत्साही कलाकारों के प्रयास से हुई। उक्त संघ के तत्त्वावधान में अनेक नवागन्तुकों का एक बड़ा ग्रुप सराहनीय काम कर रहा है। आधुनिक कला-आन्दोलन की नव्य मान्यताओं के प्रति उनमें उपेक्षा या अलगाव नहीं है, वरन् गहरी निष्ठा के साथ उसके ठोस रूप को वे अपने ढंग से उजागर करने में यत्नशील हैं।

ललित मोहन सेन

पर्वतीय
महिलाएँ

उत्तर प्रदेशीय कला के दिशा-निर्माण में ललित मोहन सेन का भी ठोस योगदान है, कारण—उनकी बहुमुखी शैलियाँ एक निर्धारित दिशा में अपना प्रभाव अनिवार्य रूप से उत्पन्न करती रहीं। तैल रंग, जलरंग, पेम्टल रंग, काष्ठ खुदाई, पत्थर, मिट्टी व लुकदी का काम, पोस्टर चित्र, इश्तहार, वस्त्र छाप, धोती-साड़ी की किनारियों के डिज़ाइन, लिथो, ढलाई और तमाम कला-कारीगरियों में अनवरत परिश्रम एवं अध्यवसाय द्वारा अपनी सृजन-सामर्थ्य का इन्होंने परिचय दिया। ये भित्ति चित्रकार और सज्जाकार भी थे। प्राचीन कला पद्धति और नई शैली—दोनों ही तरह की चित्रकारी करते थे। प्रकृति चित्र, दृश्य चित्र, ग्राम्य चित्र, आदिवासियों की विभिन्न भावभंगियों के चित्र, नागर और लोक संस्कृति से प्रेरित चित्र और वातावरण के हूबहूचित्रण की उनमें अद्भूत क्षमता थी। प्रकृत परिस्थितियों को कुछ ही क्षणों में आँकने की प्रकृतिप्रदत्त प्रदिभा थी। ऐसी घटनाएँ अक्सर घटतीं कि वे तड़के ही उठते और रंग-कूची लेकर चित्र बनाने निकल पड़ते। काम

करते हुए उन्हें खाने-पीने तक की सुधि न रहती। एक बार इन्हें काशी के घाटों को बनाने की धुन सवार हुई। ग्रीष्मावकाश में ये बनारस पहुँचे और वहाँ नाव किराये पर ले ली। तड़के ही बिस्तर से उठकर य नाव में जा बैठते और उसे किसी घाट के सामने खड़ा करके काम में जुटे जाते। इस प्रकार एक महीने में इन्होंने तीस तैलरंग चित्रों की सीरीज़ तैयार की, पर अत्यधिक परिश्रम और लगातार जल में रहने से ये बीमार पड़ गए और तत्पश्चात् यही स्थिति लम्बे रोग में परिणत हो जाने के कारण अन्ततः इन्हें अपने जीवन से हाथ धोना पड़ा।

किन्तु सेन अपनी प्रचुर कलाकृतियों की बहुमूल्य थाती देश को सौंप गए हैं। उन्होंने कला में अपने प्राणों की ऊष्मा बिखेर दी है। सरल, सीधो, अंतर

गांव का एक दृश्य

को अभिभूत करने वाली उनकी कला एकदम सच्ची और मार्मिक है। विभिन्न माध्यमों में श्रेय-प्रेय की अभिव्यंजना उन्होंने की है। कला के प्रति उनकी रुचि जन्मजात थी, फलतः अपने लगन, परिश्रम और अध्यवसाय के आत्म-प्रसाद को उन्होंने अपने सृजन में प्रशस्त किया।

इन्होंने कलकत्ता के समीप शांतिपुर, जिला नदिया में एक सामान्य परिवार में जन्म लिया। इनके पिता भी साड़ियों की बुनाई के एक मशहूर कारीगर थे। सात वर्ष की आयु में पिता का निधन हो गया और ये बड़े

काष्ठ पर अंकित मुग्धा नायिका

भाई के पास लखनऊ आकर क्वीन्स स्कूल में दाखिल हो गए। कला के प्रति अपनी नैसर्गिक रुचि के कारण ये कलाविद्यालय में पढ़ने लगे जो कि उस समय नया ही खुला था। चार वर्ष में ही इन्होंने पाँच वर्ष का पाठ्यक्रम पूरा कर लिया और 'वुडकट' में भी इन्हें विशेष प्रमाण पत्र मिला। रायल कालेज आफ आर्ट के अध्यक्ष तथा चित्रकला विभाग के सर्वप्रमुख शिक्षक इनकी प्रतिभा के क़ायल थे। प्रांतीय सरकार की विशेष छात्रवृत्ति पर इन्हें कला-शिल्प में विशेष शोध के लिए भेजा गया। वहाँ इन्हें भारी ख्याति मिली। ये ही कदाचित् सर्वप्रथम भारतीय कलाकार थे जिनका 'क्वीन आफ दि हिल्स' नामक जलरंग-निर्मित एक चित्र लंदन की फाइन आर्ट सोसाइटी द्वारा प्रकाशित हुआ था।

रेखा

श्रमिक बहुएँ

१६३२ में भारत लौट आने के पश्चात् लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल ग्राफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में ये विभिन्न पदों पर कार्य करते रहे। असित कुमार हाल्दार के अवकाश ग्रहण कर लेने के पश्चात् इन्हें वहाँ का प्रिंसिपल बना दिया गया। लंदन के 'इंडिया हाउस' के छत व भित्तिचित्र-सज्जा की प्रतियोगिता में सफल होने के कारण गवर्नमेंट के खर्चे पर इन्हें लंदन भेजा गया जहाँ इन्होंने भारतीय पद्धति पर सुन्दर चित्रांकन प्रस्तुत किया। इन्होंने इटली आदि अन्य देशों का भ्रमण कर भित्ति-चित्रकला का विशेष अध्ययन किया। अपने प्रवास के दौरान इन्होंने कई चित्र प्रदर्शनियाँ की जो विदेशियों द्वारा बहुप्रशंसित हुईं। उनके द्वारा इनके अनेक चित्र क्रय किये गए। ब्रिटेन की महारानी मेरी ने पचास गिनी में इनका एक चित्र खरीदा। लंदन की विक्टोरिया एंड गिलबर्ट म्यूज़ियम ने इनकी दो मूर्त्तियाँ खरीदीं जो आज भी वहाँ के संग्रहालय में सुरक्षित हैं। लंदन के फाइन आर्ट ट्रेड गिल्ड द्वारा इनके चित्रों को प्रचारित-प्रसारित किया गया और अंग्रेजों ने ऊँची कीमतों पर इनके चित्र खरीदे।

रंग-मिश्रण में इनकी सूझबूझ और गहरी पैठ थी। वर्ण समावेश की सुसंयत संयोजना के साथ आलोक व छाया का उभार इनके चित्रण की विशेषता है। तैल और पैस्टल रंगों में इन्होंने प्राकृतिक सौन्दर्य व अन्य दृश्यांकनों को सजीवता से उभारा। क्रेयन से माडल बनाने में भी ये बड़े ही दक्ष थे। रेखाओं की सूक्ष्मता को रूपायित कर इन्होंने कितनी ही आकृतियों को सजीव रूप में प्रस्तुत किया। काष्ठ-शिल्प, पत्थर पर खुदाई और मूर्त्ति-निर्माण में इन्होंने मनोवैज्ञानिक बारीकियों को उभार कर खूबी से दर्शाया। अपनी विदेश-यात्रा के दौरान इन्होंने दूसरे देशों की कलाकृतियों को बहुत बड़ी मात्रा में एकत्र किया था। प्राच्य-पाश्चात्य प्रणालियों के तुलनात्मक अध्ययन द्वारा इनमें मानसिक प्रखरता अर्थात् जीवन के प्रति एक गहरी दृष्टि विकसित हुई। शिल्प एवं कला की सभी विधाओं से परिचित होने के कारण इनमें भिन्न-भिन्न आकारों का संयोजन, नये-नये रूपों की परिकल्पना और मौलिक स्थापनाओं की निजी प्रणालियाँ प्रश्रय पाती गईं। परम्परा और सांस्कृतिक उपलब्धियों के विशिष्ट दायित्व को वहन करते हुए बाहरी प्रभावों को आकर्षक तौर-तरीकों से इन्होंने सुस्थिर व संयोजित किया।

नेपाली लड़की
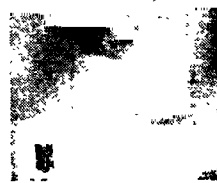
पहाड़ी महिला

सेन बड़े ही विचारशील, उदार और प्रशस्तमना व्यक्ति थे। जन-जन की सामान्य स्थितियों के दिग्दर्शन द्वारा उन्हीं की समस्याओं में रमकर वे उन्हें निकट से निरखने-परखने की चेष्टा करते थे। आस-पास के गाँवों में घूमते हुए वे किसी पेड़ के नीचे बैठ जाते और एकान्त चिन्तनरत चित्रों के सृजन में जुटे रहते। यहाँ तक कि उन्हें स्वयं की भी सुधबुध न रहती और बिना खाये-पिये वे घंटों उसी में डूबे रहते। अछूतों और मज़दूरों से भी

उनका आत्मैक्य था। वे चलते-फिरते रोज़मर्रा के हूबहू चित्रों को आँकने में रुचि रखते थे। इसी यथार्थ कला को उन्होंने अपनी कलाओं में मूर्तिमान रूप से सचेष्ट कर कल्पित-उपकल्पित रूपायनों में बाँध दिया जो जनरुचि को प्रश्रय देते हुए मानवीय संवेदना से ओतप्रोत हैं।

ए० डी० टामस

वरिष्ठ कलाकारों में ए० डी० टामस का नाम विशेष उल्लेखनीय है, क्योंकि ये ही ऐसे व्यक्ति थे जिन्होंने बंगाल स्कूल की परम्परागत रूढ़िबद्ध प्रणालियों को अपनाकर चित्र-सृजन किया और जिन पर पाश्चात्य प्रभाव भी हावी था। ये लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट के छात्र थे, पर आगे अध्ययन के लिये ये फ्लोरेंस की रायल एकडेमी आफ आर्ट में दाखिल हो गए। इन्होंने समूचे यूरोप का व्यापक दौरा किया और घूम-घूम कर वहाँ की बहुविध कलाओं के अध्ययन की विशेषताओं को हृदयंगम किया। तत्पश्चात् लंदन के इंडिया हाउस में स्टाफ आर्टिस्ट के पद पर इनकी नियुक्ति हो गई।

भारतीय कला का ज्ञान इन्हें उत्तराधिकार में मिला था। पर पाश्चात्य प्रणालियों को भी सैद्धान्तिक रूप में इन्होंने संयोजित किया। 'मेडोना एंड चाइल्ड' और 'जॉन, दि बैप्टिस्ट' जैसे चित्रों में इन्होंने अपनी मानसिक स्वच्छन्दता और एक नया दृष्टिकोण अपनाने की चेष्टा की है, पर एक परिसीमा तक ही ये अपने लक्ष्य की ओर बढ़ सके हैं। 'कुए पर हरिजन' जैसे कतिपय चित्रों में इन्होंने निर्माण कौशल और सुसंगठन का परिचय दिया है। फिर भी इनके चित्र मात्र औपचारिक रूढ़ि बनकर रह गए हैं। इन्होंने देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग लिया और पुरस्कार व पदक भी प्राप्त किये। त्रिवेन्द्रम के श्रीचित्रालयम और मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं।

प्रणय रंजन राय

इसके विपरीत प्रणय रंजन राय की कला पर मुग़ल पद्धति की छाप होने के कारण कुछ चित्र बड़े ही क्लासिक बन पड़े हैं। दृश्यात्मक संयोजन व अनुपात उतना नहीं, पर उनके व्यंजनात्मक ब्यौरों और संवेदनात्मक अभिव्यंजना में नफ़ासत और सुरुचिपूर्ण चारुता है।

बम्बई, कलकत्ता, मैसूर, नागपुर आदि प्रमुख नगरों में आयोजित प्रदर्शनियों में इनके चित्र प्रदर्शित किये जाते रहे हैं। मैसूर की जगमोहन

पैलेस पिक्चर गैलरी तथा अन्य कतिपय महत्त्वपूर्ण संग्रहालयों में इनके चित्रों को सम्मान पूर्ण स्थान मिला है।

किरण धर

ये भी लखनऊ स्कूल के वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। १९५३ में वहाँ से डिप्लोमा प्राप्त कर ये चित्र साधना में प्रवृत्त हुए। सन् १९४६ में पेरिस और १९४७ में लंदन की कला-प्रदर्शनियों में इनके चित्र प्रदर्शित किये गए। लखनऊ विश्वविद्यालय म्यूज़ियम, काशी स्थित भारत कला भवन, मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी और लाहौर की गवर्नमेंट सेंट्रल म्यूज़ियम तथा अन्य संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

यद्यपि इनकी चित्रण पद्धति पर चीनी-जापानी प्रभाव है, पर कहीं-कहीं महज़ अनुकृति में इनके चित्र अभिप्रेत प्रभाव की व्यंजना नहीं कर सके हैं। अंतर की आतुर अभीप्सा, मन: क्षितिज के पार वायवीय संस्थिति और मधुर कल्पना की अनुगुंजन लय में इनकी भावाभिव्यंजना सूक्ष्म संश्लेषण के साथ उभरी है, पर इनके प्रतीकों में निर्माण शिल्प और रंग टेकनीक कहीं-कहीं बड़े ही शिथिल और दुरारूढ़ रूप में प्रकट हुई है। परम्परागत प्राच्य पद्धति से इनकी कला आक्रान्त है और समन्वित प्रभाव की समवेत सुसंयोजना में ये भटक गए हैं। रेखांकन पद्धति के संवेग और तीखी व्यंजना का वैसे विशेष प्रभाव पड़ा है, किन्तु जलरंगों में इनकी प्रयासपूर्ण पद्धति मात्र रूढ़ि है। इनके रंग निष्प्राण और शिथिल से हैं। रेखाएँ गहरी और कोमल होते हुए भी सृष्ट वातावरण के अनुरूप ढलने में असमर्थ सी रही हैं। दृढ़ घनत्व, ज्यामितिक अरबी ढंग की सी शोख़ी जिसमें ज़बर्दस्ती मुग़ल शान-मान की कृत्रिम व्यंजना है अर्थात् चित्र के प्रतिपाद्य विषय को आडम्बर-पूर्ण गरिमा प्रदान करने की दृष्टि से कमल पुष्प भरे तालाव, इक्के दुक्के मयूर, सुसज्जित दीवारें और नीलारुण सम्मोहन व चारु वातावरण की आयासपूर्ण सर्जना की गई है, पर वे अपने तईं स्वाभाविक या सहज नहीं बन पड़े हैं।

बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, मैसूर, लाहौर और समय-समय पर आयोजित समसामयिक कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी तथा अन्य कई प्रमुख कला संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। अमूर्त चित्रण इनमें नहीं है, पर परम्परागत ओरियंटल पद्धति पर इन्होंने प्रतीकवादी व लयमय सौष्ठव की सूक्ष्म व्यंजकता को उभारा है।

'शाश्वत स्वर', 'शाही नर्तकी,' 'घाटी का लिली पुष्प' प्राच्य पद्धति पर आँके गए हैं, पर पाश्चात्य पुट ने उन्हें एक सुनियोजित आकार प्रदान किया है ।

ईश्वरदास

ईश्वरदास ने निजी तौर पर प्रणयरंजन राय के शिष्यत्व में कला का अभ्यास किया । बाद मे ये लखनऊ स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गये । इन्होंने मध्यकालीन मुगल पद्धति को ही अपनाया, पर उनमें झूठी शानशौकत, आडम्बरपूर्ण साज-सज्जा और रंगों की दिखावटी तड़क-भड़क व प्रदर्शन न था। सीधे सादे रंग, सामाजिक व घरेलू वातावरण, संयत व समाधानकारी रंग-मयता—इनके चित्र सहसा ध्यान आकृष्ट करने की क्षमता लिये हैं । इनके कुछ चित्रों में तीखी व्यंजकता का अभाव है, पर 'बादशाह शाहजहाँ और उस्ताद मंसूर का साक्षात्कार' जैसे चित्र ऐतिहासिक गरिमा और सौष्ठव के प्रतीक हैं ।

भवानी चरण ग्यू

भवानी चरण ग्यू ने सहसा अवतीर्ण होकर उत्तर प्रान्तीय कला को एक नये धरातल पर प्रतिष्ठित किया । खासकर जलरंगों में इनकी बड़ी ही कोमल व्यंजना और सूक्ष्म संतुलित 'कलरटोन' है जो लयमय प्रतीकों में उभरकर अंतर को आलोड़ित करने वाली है । बंगाल स्कूल की चित्रण शैली को अपने ढंग से अपना कर वे इस दिशा में कुछ क़दम आगे बढ़े । पर उन्हें स्वयं अपनी सीमाओं का ज्ञान था, साथ ही बंगाल स्कूल की परिसीमा में बंदी रूढ़ियों की भी इन्हें पहचान थी । फलतः सृजन संतृप्ति की खोज में आकल्पन, रूप-विधान और संरचना में इन्होंने कुछ नया पुट दिया । दृष्टि सीमा के व्यापक विस्तार में इन्होने कुछ नया खोजा । कला के श्रेय-प्रेय का सामान्य बोध, रूपालंकृति, रंग-विन्यास, शिल्प कौशल में वैविध्य लाने की चेष्टा की और बंधनमुक्त कला-प्रक्रियाओं की ओर उन्मुख हुए । अनेक माध्यमों में इन्होंने कला को प्रश्रय दिया है । जलरंग के अतिरिक्त तैल रंगों व पैस्टल द्वारा 'पोर्ट्रेट' और 'लैंडस्केप' निर्माण में भी ये समान दक्षता रखते हैं और ग्राफिक कला में भी इन्हें उतनी ही दिलचस्पी है ।

सन् १९१० में ये बनारस के मध्यम परिवार में पैदा हुए जहाँ इंजीनियरी परम्परागत पेशा था । अतएव इन्हें भी इंजीनियर बनाने के स्वप्न देखे जा रहे थे. जब कि इनमें कला के प्रति सहजात रुचि थी और ये कलाकार होने के स्वप्न देख रहे थे, पर इनका परिवार इसके लिये तैयार न था । जब

इंजीनियरी कालेज में ये पढ़ रहे थे तो अकस्मात् गंभीर रूप से बीमार पड़ गए। यह घटना अपने आप में वरदान सिद्ध हुई। ठीक होने पर इन्होंने फिर अपनी वही इच्छा व्यक्त की जो इनके बड़े भाई ने तुरन्त मान ली। इजीनियरी जैसी कठिन पढ़ाई के बदले कला का अध्ययन इनके स्वास्थ्य के अनुरूप समझा गया, पर वही इनके जीवन में क्रान्तिकारी मोड़ सिद्ध हुआ। इन्होंने अपने चिरकांक्षित कला-पथ का अनुधावन किया।

१६३२ में लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में ये दाखिल हो गए। डिप्लोमा प्राप्त करने के पूर्व ही अजमेर के मेयो कालेज

वाराणसी का एक दृश्य

में कला-प्रशिक्षक के बतौर इनकी नियुक्ति हो गई। इन्होंने कला-विभाग में अपनी सक्षम सृजन चेतना का परिचय देकर नव प्राणों का संचार किया।

भवानी चरण ग्यू की चित्रण शैली की खूबी है- रंगों की चारुता, उदात्त भावोत्कर्ष व सूक्ष्म व्यौरों का निदर्शन। यूरोप में रैफल युग पूर्व के कलाकारों की भी विशेषताओं को लिये इनमें विलक्षण शिल्प-संयोजन और काम करने का अध्यवसायपूर्ण अनूठा ढंग है। 'रासलीला' इनका एक सुप्रसिद्ध चित्र है जिसमें गेय पद की सी लय और हर निर्मित आकृति की भाव भंगिमा के दर्शन होते हैं। इन्होंने पेस्टल और तैलरंगों में भी अनेक चित्रों का निर्माण किया है। ग्राफिक कला में भी इन्होंने प्रयोग किये है। दृश्य सज्जा के कई चित्र अनूठे बन पड़े हैं और वे कलाकार की असीम चिन्तना के परिचायक हैं। आकार एवं रंगों के बीच का समन्वय अभीप्सित वातावरण की सृष्टि करता है। इनमें चित्रण आडम्बर, दिखावा या व्यर्थ की बहक नहीं है, वे जो कुछ भी हैं वास्तविक और स्पष्ट रूप से चित्रित हैं। समय के साथ ज्यों-ज्यों इनके विचार परिपक्व और प्रौढ़ होते गए, इनकी चित्रण क्षमता नई भावभूमि में पैठती गई। चित्रों के प्रचुर वैविध्य में इनकी तूलिका के स्पर्श का स्पन्दन और सहज कोमल भावनाओं का उद्रेक है। उनकी अंतरंग अनुभूति युगजीवन से गहरे सम्पृक्त है और उनके अनुभव व संवेग चित्रों में संस्कार ढालते हैं।

अपने इन्हीं गुणों के कारण कला क्षेत्र में इन्होंने शीघ्र ही अपना विशिष्ट स्थान बना लिया। लंदन के स्लेड स्कूल आफ आर्ट में ये उच्च शिक्षा के लिए गए और १९४९ में इनके चित्रों का प्रदर्शन जब इंडिया हाउस में हुआ तो विदेशी आलोचकों द्वारा इनके चित्रों की सराहना और प्रशंसा हुई। इंगलैण्ड में प्रदर्शित कुछ चित्रों पर इन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुआ। भारत, यूनाइटेड किंगडम और योरप का दौरा करते हुए इन्होने कला संग्रहालयों और गैलरियों का व्यापक निरीक्षण किया। भारत और विदेशों में होने वाली प्रायः सभी प्रमुख प्रदर्शनियों खासकर रायल एकडेमी एग्जीबिशन आफ इंडियन आर्ट, रायल इंस्टीट्यूट के जलरंग कलाकारों की प्रदर्शनी तथा अन्यान्य समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। दिल्ली, जयपुर, इलाहाबाद में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियां आयोजित की। लाहौर की फाइन आर्ट सोसाइटी द्वारा इन्हें रजत पदक प्रदान किया गया और मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी में इन्हें रजत कप प्राप्त हुआ। फाईन आर्ट्स की ओरियंटल अकादेमी में इन्हें प्रथम पुरस्कार मिला।

असितकुमार हाल्दार, वीरेश्वर सेन, ललित मोहन सेन इनके शिक्षक रह चुके थे। खासकर वीरेश्वर सेन इन्हें बालक की भाँति स्नेह करते थे। इनकी

गर्भिणी की उन्मन मुद्रा

प्रतिभा और कलात्मक सुरुचि से प्रभावित होकर एक पथप्रदर्शक के रूप में उन्होंने इनमें प्रेरणा और स्फूर्ति भरी। एक चुस्त सर्जकशिल्पी में इनके दिमाग को ढालने के लिए उन्होंने समूची ताकत लगा दी। इन्होंने स्वयं स्वीकार किया है कि 'अपने गुरु के अनवरत परिश्रम, परामर्श व प्रोत्साहन बिना मैं एक कदम भी आगे नहीं बढ़ सकता था।'

ग्यू आज के कलास्कूलों की स्थिति और काम करने के तौर-तरीकों से असंतुष्ट हैं। पाठ्यक्रम भी अनुकूल नहीं है। दरअसल, कला प्रशिक्षण का ध्येय शिक्षार्थी के हाथ की तरह उसके दिमाग को प्रशिक्षित करने का भी होना चाहिए। उसकी सौन्दर्य-रुचि को उन्नत करने के लिए कुछ ऐसी प्रणालियाँ बरती जाएँ जो उसमें सच्चा कला-प्रेम जगा सकें। कला की साधना स्वार्थ सिद्धि का माध्यम या समय गुजारने वाली ऐय्याशी नही है। परीक्षा प्रणाली भी एक परिसीमा में ही उसकी सृजनात्मक रुचियों को प्रश्रय देती है, बल्कि उसकी उन्मुक्त साधना में रोड़ा अटकाने वाली है। कलाकार बनाने की अपेक्षा कलाभिरुचियो को जागरूक करने की आवश्यकता है। कभी-कभी तो भारतीय कलाकारों की प्रतिभा की पहचान तब होती जब कि पाश्चात्य दर्शक उनकी पीठ ठोकते हैं। किताबी ज्ञान के अलावा न विद्यार्थियों को व्यावहारिक प्रशिक्षण दिया जाता है, न कला सग्रहालयों, प्रदर्शनियों और गैलरियों में घुमाया जाता है और न ही विभिन्न कला आन्दोलनों और युगीन समस्याओं पर वाद-विवाद या सुविचारित ढंग से सोचने-समझने का मौका दिया जाता है। न कला में सुन्दर पुस्तकें है और न पुस्तकालय। कलाकार का व्यवसाय करने वाले की बड़ी ही दारुण स्थिति है, उसे पेट भरने के लिए बड़ी ही दुर्वह स्थितियों से गुजरना पड़ता है, कला की गंभीर साधना छोड़कर सिनेमा पोस्टर या सस्ते डिजाइन बनाने पड़ते हैं। इसका कारण है कला-क्षेत्र में जनरुचि का अभाव। जब तक यहाँ की जनता कला के ज्ञान को विकसित और बर्द्धमान नहीं करेगी तब तक कलाकारों का भविष्य भी तमसाच्छन्न है, उन्हें कैसे आगे बढ़ने का मार्ग मिलेगा ? इसके लिये आवश्यक है कि बड़े-बड़े शहरों और ऊँचे दर्जे के लोगों तक ही सीमित न रहकर गाँवों में और जन-जन में कला का प्रचार-प्रसार होना चाहिए। भाषणों द्वारा सर्व सामान्य में कला-रुचि जाग्रत की जा सकती है। भला लंदन, पेरिस, मास्को, न्यूयार्क और यूरोप में भारतीय कला की प्रदर्शनियाँ करने से क्या हासिल होगा ? यहाँ के छोटे-छोटे कस्बे और गाँवों मे कला का प्रदर्शन

पहले होना चाहिये और जनता को उसे समझने-बूझने का सुअवसर दिया जाना चाहिए।

भारतीय कलाकारों के समक्ष बड़ी-बड़ी समस्याएँ मुँह बाए खड़ी हैं। कला शैलियों में बड़ा ऊहापोह और विक्षेप है। तरह-तरह के प्रभाव हावी हैं। बंगाल स्कूल की मान्यताएँ पीछे पड़ गई हैं तो क्या पेरिस स्कूल अनुकूल हो सकता है, पर कैसे ? बिना देखे, बिना मौलिक चित्र प्रणालियों को आत्मसात् किये वह किस तरह उनकी सूक्ष्म टेकनीक को समझ सकता है। तो क्या यामिनीराय की कला प्रणाली अपनाए, किन्तु वे समर्थ कलाकार हैं, उनका काम करने का ढंग भी उनका अपना है, किन्तु कोई नौसिखिया कलाकार यूं कैसे जनता में विश्वास और आस्था जगा सकता है ?

इस प्रकार भारतीय कलाकार दिग्भ्रान्त हैं। वे एकोन्मुखी साधना में अग्रसर न होकर ग़लत दिशाओं में भटक गए हैं। कला में जो आज बौद्धिक विस्फोट है, उससे बहुत उथल-पुथल, द्वन्द्व और क़शिश है। अति वैज्ञानिक और नितांत तार्किक जो समयोचित माँग है, आवश्यकता है कि उसके अनुरूप बड़े ही समाधानकारी ढंग से कला वैसे ही साँचे में ढल जाए। कला-उपलब्धि का आकलन करना है तो उसे समय की चुनौती का सामना करने योग्य बनाना है।

ग्यू अजमेर में मेयो कालेज के कला-अध्यक्ष के बतौर नित-नई कला-प्रणालियों के अनुसंधान और विकास में लगे हैं। कितने ही छात्र उनके तत्त्वावधान में बहुमुखी धाराओं की उपलब्धि और अभ्यास में प्रवृत्त हैं। यूरोप के प्रवास में ये विभिन्न प्रवृत्तियों के पाश्चात्य कलाकारों से मिले हैं, उनके साथ विचारों के आदान-प्रदान से इन्हें बहुत कुछ हासिल हुआ है। अनेक यूरोपीय प्रदर्शनियों और संग्रहालयों में बिखरे खज़ानों से इन्होंने रत्न बटोरे हैं और ये भारतीय कला में उन बेशक़ीमती नगों को जड़ देना चाहते हैं।

यहाँ की अनेक कला-संस्थाओं से ये सम्बद्ध हैं। सेण्ट्रल बोर्ड आफ सेकण्डरी एजुकेशन के ड्राइंग और पेंटिंग पाठ्यक्रम समितियों के संयोजक और विश्व-विद्यालय स्तर पर अनेक कला-निकायों के परीक्षक और परामर्शदाता हैं। नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी की जनरल कौंसिल के ये अर्से तक सदस्य रह चुके हैं। राजस्थान ललित कला अकादेमी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, रायल ड्राईंग सोसाइटी के सदस्य और राज्य

सोसाइटी ग्राफ ग्राट्‌स के फेलो हैं। त्रिवेन्द्रम के श्रीचित्रालयम तथा देशी-विदेशी कला संग्रहालयों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। ग्राज ये ऐसी स्थिति में पहुँच गए हैं कि प्राच्य-पाश्चात्य प्रणालियों के समन्वय द्वारा अग्रगामी पथ के दिशा-निर्धारण में स्वयं समर्थ हो सके हैं।

मदनलाल नागर

इन्होंने लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल ग्राफ ग्राट्‌स एंड क्राफ्ट्स से डिप्लोमा लिया ग्रौर सन् १९५६ से उसी कालेज में काम कर रहे है। ये लगभग बीस-पच्चीस वर्षों से कला की साधना कर रहे है। एक व्यावसायिक कलाकार के बतौर ये काफ़ी ग्रर्से तक स्वच्छन्द रूप से काम करते रहे। इन्हें संघर्षो में जूझना पड़ा, ग्राजीविका के लिए कशमकश करनी पड़ी ग्रौर पैर जमाने के लिए उन्हें ग्रगली मंजिल का क़दम-दर-क़दम रास्ता नापना पड़ा। १९४६ से १९५१ के दौरान वे उन्मुक्त पथ के पंथी थे जहाँ कोई बंधन या जिम्मेदारी उनके कंधों पर न थी ग्रर्थात् वे अपने प्रयोगों मे मुक्तहस्त थे। १९५१ से १९५३ तक कला शिक्षक के बतौर इनकी नियुक्ति हो गई ग्रौर म्युनिसिपल ग्रार्ट गैलरी के ये क्यूरेटर बना दिये गए।

नागर मुक्त मनोवृत्ति के व्यक्ति है। मगर इसके ये मानी नही कि इनकी कला बाहरी प्रभावों से ग्रछूती है, बल्कि ये तो ग्राधुनिक शैली के प्रभाववादी कलाकार हैं। इन्होने ग्रनेक बिखरे दृश्यांकनों की झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। ये ग्रपने कक्ष में बैठकर केवल कल्पना के ग्राधार पर चित्रण नही करते, वरन् इतस्ततः ग्रनायास मिल जाने वाले नजारो के करिश्मो के भीतर डुबकियाँ लेकर इन्होने उनके सूक्ष्म ब्यौरो पर दृष्टिपात किया है। इनकी कला अनुभूति सिद्ध है। वास्तविक स्वरूपों मे झाँककर इन्होंने उनकी मन में व्याख्या की ग्रौर रंग रेखाग्रों में ढालकर सजीव बना दिया। यही कारण है कि ये वाह्य स्थूलता से परे आन्तरिक प्रतीकवादी स्वरूप को ग्रपनी कला का ग्राधार मानते है।

इन्होंने जलरंगो व तैलरंगो में नव्य प्रयोग किये है। पर ग्राधुनिक कला के नाम पर ग्रजीबोग़रीब, बेसिर-पैर या भद्दे भोंडे रूप में चित्रों की सजना करने मे विश्वास नही करते, न कला के नाम पर मात्र रूप-भंजन ही इनका ध्येय है। ग्रभिनव ग्रभिव्यक्ति, नूतन ढंग ग्रौर सूक्ष्म भावचेतना के निदर्शन द्वारा कल्पना प्राचुर्य, रंगों का सुसंयोजन और विषय की सहज पकड़ इन में मिलती है। १९५६ में उत्तर प्रदेश सरकार के लिए इन्होंने ब्रज से सम्बन्धित इक्कीस

यात्री
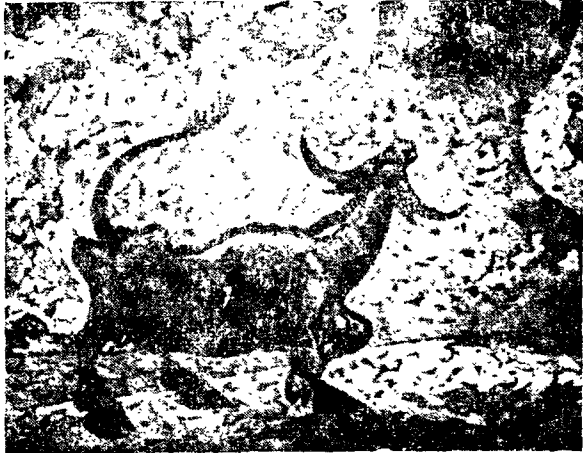
विद्रोह

आत्मचित्र

चित्रों की सीरीज़ निर्मित की। बम्बई की आर्ट सोसाइटी, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, यू० पी० आर्टिस्ट एसोसिशन, ग्वालियर की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी और नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की भारत में होने वाली कला प्रदर्शनियों और भारततेर कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। ईस्टर्न यूरोप में ललित कला अकादेमी की ओर से आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। लखनऊ, बनारस और कानपुर में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। समय-समय पर इन्हें उत्कृष्ट चित्रों पर पुरस्कार, पदक और नक़द राशियाँ भी प्राप्त होती रही हैं।

रणवीर सिंह विष्ट

नव्यवादी कलाकारों में रणवीर सिंह विष्ट लखनऊ के अग्रणी कलाकारों में से हैं। लखनऊ आर्ट स्कूल से डिप्लोमा लेने के पश्चात् इन्होंने जलरंगीय दृश्यचित्रणों में विशेषता हासिल की है। इनकी वह शैली, जो अपनी रूपकारिता के लिए विख्यात हो चुकी है, दर्शक को विमुग्ध करती है, भले ही वे उसकी बारीकियों का यकायक विश्लेषण न कर पाएं। किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि इन्होंने विचित्र आधुनिक शैलियों को संयोजना से सर्वथा निजी ढंग क़ायम किया है। ललित मोहन सेन इनके कला गुरु रहे है, पर इंग्लैण्ड के प्रख्यात जलरंग कलाकार रसेल पिलट और फ्रैंक ब्रैगाइन की प्रभाववादी पद्धति का इनकी कला पर विशेष प्रभाव है। हिमालय शिल्पी रोरिक द्वारा निर्मित लैंडस्केप इनकी प्रेरणा के स्रोत हैं।

पर्वतीय भू-प्रान्तर के कितने ही दृश्यांकनों को इन्होंने अपनी नितान्त नई शैली में प्रस्तुत किया। पहाड़ों, हिमानी दृश्यों और वहाँ के हरे-भरे बिखरे वैभव के चित्र इन्होंने आँके हैं। उनका अंकन इनकी एक अविभाज्य अनुभूति

है, क्योंकि ये स्वयं भी पहाड़ी हैं। इनके चित्रण की गत्यात्मक त्वरा इनके दृश्यालेखों की घनीभूत एकप्राणता की दिग्दर्शक है जिसमें इनके गाढ़े रंग संश्लिष्ट हुए हैं। इन्होंने गाँवों और नागरिक जन जीवन तथा थारु, संथाल आदि जन जातियों के नज़ारे भी प्रस्तुत किये हैं। 'पहाड़ी लोकनृत्य', 'पहाड़ी शीत से बचने का सहारा', 'गाँव की सुबह', 'काम की समाप्ति पर', 'श्लथ बालक', 'बाज़ार', 'गपशप' 'शहर की रोशनी', 'साँझ ढले', 'जाड़े की रात', 'पहाड़ी घसियारे', 'नीलकठ' आदि कितने ही ऐसे चित्र है जो मन को अभिभूत कर लेने वाले हैं, किन्तु 'वयःसन्धि', 'हर्षोन्माद' आदि अनेक भावात्मक चित्र भी हैं जो मनोवैज्ञानिक बारीकियों में उतरकर विश्लेषण प्रस्तुत करते हैं। अपने सैकड़ों पोर्ट्रेट और लैंडस्केपों में कम रेखाओं और निगूढ़ रंगों की संयोजना इन्होने बड़े कौशल से की है। दैनन्दिन जीवन को इन्होने बहुत नज़दीक से देखा और अनुभव किया है। मानव-जीवन में संघर्ष के नित-नये थपेड़े चोट करते रहते हैं। अकिंचनता की अंधकारमयी निशा में निराशा के बादल परस्पर टकराते रहते हैं। जलज़ले व तूफान टकराकर शांति के वातावरण में विस्फोट सा करते हैं। इन्होंने फुटपाथों और सड़कों के दारुण दृश्यों को केवल कुछ रेखाओं के माध्यम से आँक दिया है। छोटे-छोटे दृश्य कितनी मर्मवेधी करुण कथा कह जाते हैं।

पर्वतीय प्रदेश लैंसडाउन में इनका जन्म हुआ। हरेभरे अंचल में इनके थिरकते बाल मन का औत्सुक्य सृजन में सुस्थिर हो गया। शुरू से ही कला के प्रति रुचि होने के कारण इनकी तूलिका प्रकृति के सौन्दर्य को दृश्य चित्रणों में

लैंड स्केप

मुखर करती गई। किन्तु इस बात का एहसास तब हुआ जब समसामयिक कला प्रदर्शनियों में यकायक इनके चित्रों की धूम सी मच गई। जबकि ये 'राजकीय चित्र एवं शिल्पकला विद्यालय' के विद्यार्थी थे तभी से अनेक झोंपड़ियों,

नागरिक दृश्यचित्र (आधुनिक शैली)

ग्राम्य दृश्यचित्र

नगर का दृश्यांकन
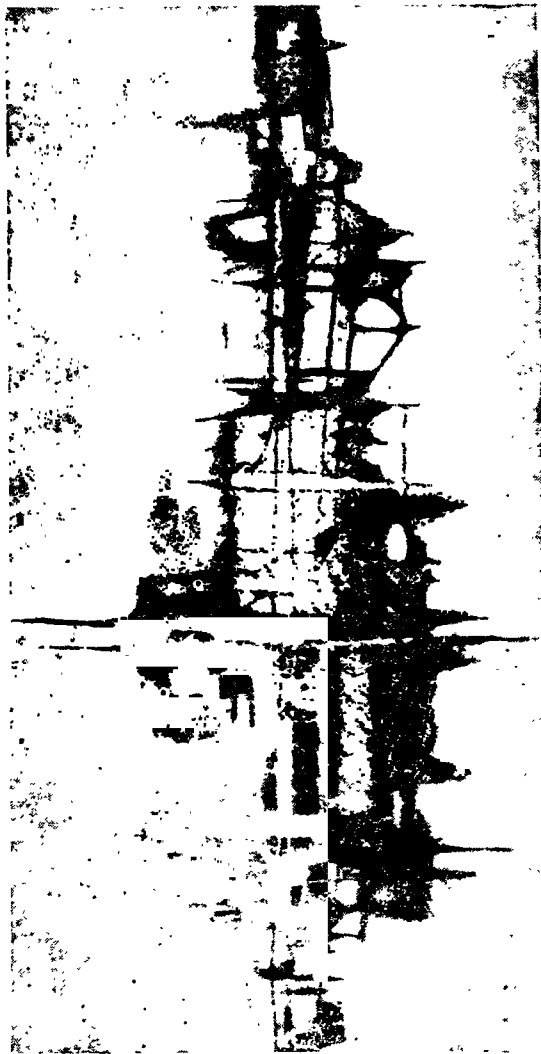
भोले भाले ग्रामीणों और रोजमर्रा के चित्र आँकते थे। इन्होंने उस समय परम्परागत प्रणालियों का भी गंभीर अध्ययन किया था, अतएव इनके कतिपय चित्र परम्परागत शैली पर भी निर्मित हुए हैं। लखनऊ विश्वविद्यालय भवन में सर्वप्रथम इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनी हुई जहाँ इनके विद्यार्थी-काल में निर्मित चित्र भी सफल और बहु प्रशंसित हुए। तत्पश्चात देश के

मोहर्रम में ताज़िए का जलूस
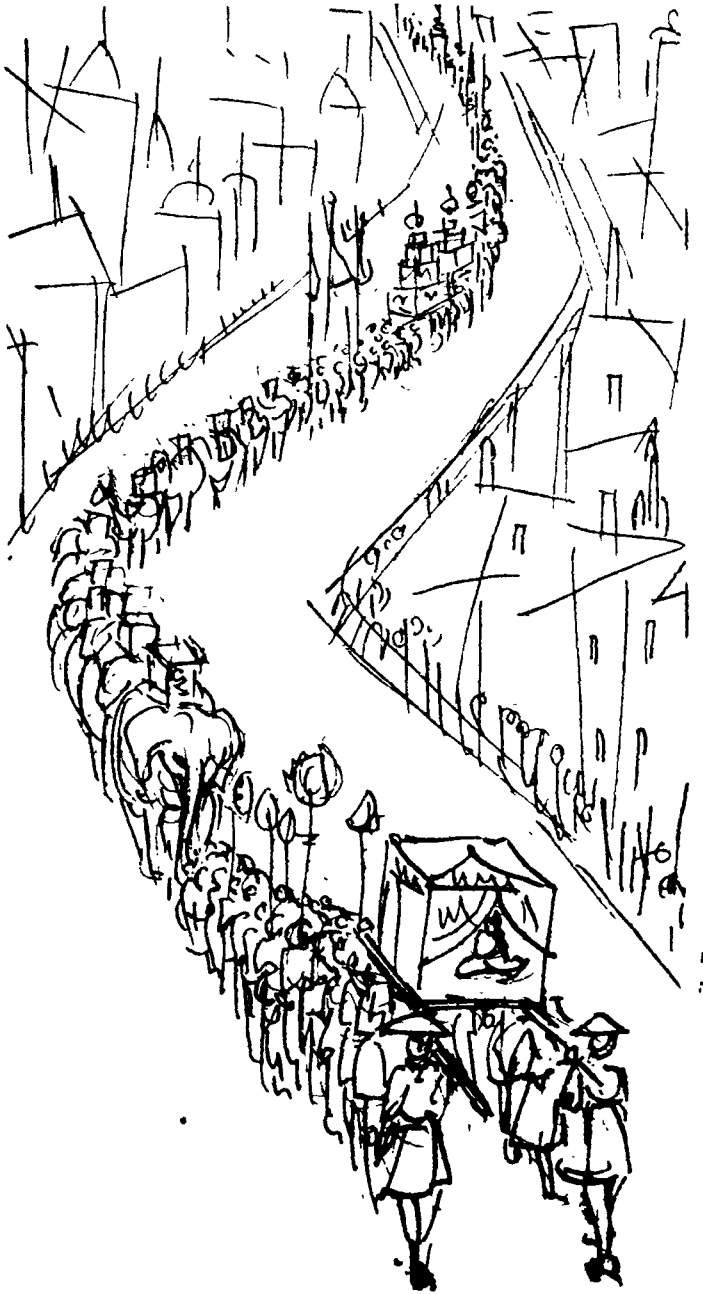
अनेक भागों में इनकी प्रदर्शनियाँ आयोजित की गईं और समय-समय पर अपने चित्रों पर इन्हें पुरस्कार और पदक भी मिलते रहे। काशी की एक चित्र प्रदर्शनी में इन्हें १९५२ में जब कि ये विद्यार्थी थे 'अंतिम यात्रा' नामक कृति पर पुरस्कार प्राप्त हुआ। पुनः १९५३ और १९५४ में काशी में ही 'मकबरा' और 'आश्रयस्थल' पर प्रथम पुरस्कार मिला। उसी वर्ष मैसूर की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में 'विक्षिप्त तरुणी' और 'मातृ रक्षा' पर

मुर्गों की लड़ाई

विशेष पुरस्कार उपलब्ध हुए। १९५५ में 'उत्तर प्रदेश के गाँव का एक दृश्यांकन' पर इन्हें पुरस्कार मिला। ललित कला अकादेमी की ओर से आयोजित कतिपय समसामायिक कला प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को न केवल ससम्मान स्थान मिला है, वरन् वे प्रशंसित और पुरस्कृत भी हुए हैं।

इसके अतिरिक्त अंतर्राष्ट्रीय रंगमंच पर भी इनके चित्रों को सम्मान मिला है। आस्ट्रेलिया, चेकोस्लोवाकिया, मिस्र, रूमानिया, हंगरी, बल्गेरिया और पोलैण्ड में इनके चित्र प्रेषित व प्रदर्शित किये गए हैं। १९५६ में रूस की भारतीय कला प्रदर्शनी में 'रहस्यमय सुबह' पर इन्हें विशेष सम्मानित किया गया और 'सोवियत भूमि' में स्थानीय कला अकादेमी संघ की ओर से इसे सर्वश्रेष्ठ चित्रों की कोटि में रखा गया।

प्राचीन भारतीय स्थापत्य और मूर्तिकला शैली पर इन्होंने नये ढंग के चित्रों का निर्माण किया है। इनके ढंग बड़े ही निराले और अजीबोग़रीब हैं जिनसे कला के क्षेत्र में विवाद उठ खड़े हुए हैं। आधुनिक प्रणालियों की मात्र अनुकृति इन्हें अभिप्रेत नहीं, बल्कि पुरानी-नई, प्राच्य-पाश्चात्य जो भी शैली हो उसमें मौलिक चिन्तन, गंभीर सर्जना और बुद्धि की पैठ होनी चाहिए। किसी भी जागरूक कलाकार की सूझबूझ किन्हीं रूढ़ियों और साँचों की गुलाम नहीं है, वह तो तमाम माध्यमों में अभिरुचि और आकांक्षाओं को उजागर कर सकता है, बशर्ते कि वह उसका प्रयोज्य एवं साध्य हो।

रवीन्द्र नाथ देव

'हरे-भरे हीरों के समान चमकते हुए धान के खेतों में कृषक स्त्रियाँ काम कर रही हैं। उजली, सुनहरी धूप उन धान की बालों को कनक परिधान पहनाती दिखाई दे रही हैं। स्त्रियाँ एक विचित्र दर्शनीय भंगिमा में कार्यरत हैं। सब की सब खड़ी होकर एक पैर आगे किये हुई झुकी खड़ी हैं। निकट ही खड़ा हुआ एक व्यक्ति ढोलक पर 'हुड़की' दे रहा है जिसकी ताल पर ही स्त्रियों के शरीरों में एकबारगी आन्दोलन होता है। ढोलक वाले का काम भी सरल नहीं है। वह बराबर गाये-बजाये जा रहा है। कभी कभी वह किसी स्त्री के एकदम पास आकर ढोलक बजाता हुआ अपने गीत की तान छेड़ता है और वह स्त्री भी उसका गीत में ही उत्तर देती है। इस प्रकार संगीत की बहती हुई लहरों में उन कर्मठ कृषक स्त्रियों का कार्य-व्यापार चलता रहता है।'

कला के मूक साधक रवीन्द्रनाथ देव ने ऐसे कितने ही दृश्यांकनों को रंगों में ढालकर सजीव बना दिया है। आसपास के वातावरण में जहाँ निगाह फेरी कि ऐसे सैकड़ों नजारे मिल जाते हैं जो मन को बाँध लेते हैं—'ऊपर की ओर दृष्टि उठाने पर हिमालय की ऊँची-ऊँची चोटियाँ आसमान से बातें करती हुई दिखाई देती हैं। सौन्दर्य एवं लावण्य से पूर्ण इस भू-भाग में जहाँ धूप की माधुरी स्पष्ट अनुभव की जा सकती है कुछ इस प्रकार की देवदारू की सुगन्धि में बहती हुई मादक एवं निर्मल वायु में आदमी का हृदय उन्मत्त सा हो उठता है। संसार में और कहां ऐसा स्वच्छ आकाश है, कहाँ यह सुनहरी उन्मादक धूप की क्रीड़ा तथा अपार सौन्दर्यमयी पर्वत श्रेणियाँ हैं ?'

ग्रामीण घर के प्रांगण का भीतरी दृश्य

देव ने पर्वतीय भू-भाग का घूम-घूम कर चित्रण किया है। पर्वतों में बिखरी अपार सौन्दर्यराशि, पर्वत-शृंग, प्रकृति के हरेभरे अंचल में लुटता खज़ाना, जीवन-डगर में चलते-चलते अनायास सामने आ जाने वाली छोटी-छोटी घटनाएँ—रंग एवं रेखाओं में उभरकर यथार्थ सी, सर्वथा सहज सी बन पड़ती है। दूसरों के सुख-दुःख की अनुभूति द्वारा जो ज्ञानवृद्धि होती है वही वस्तुतः सार्वजनिक अनुभूति बन जाती है। एक अनवरत खोज तथा दृश्यात्मक व्यंजना को आत्मसात् करने का अथक प्रयत्न अर्थात् अपनी अछूती सवेदना द्वारा गहरी बौद्धिक सहानुभूति को प्रतिपाद्य 'विषय के साथ निगूढ़ कर देने में ये दक्ष हैं। जहाँ एक ओर इनकी दृष्टि रूपभरी छवि की प्रदीप्त मुस्कानों की सतरंगी अपरूप राशि में मधुप्राणों का सम्मोहन उँड़ेल जाती है, वहाँ यथार्थ की कुरूप और अप्रिय निष्ठुरता से भी ये अनभिज्ञ नहीं हैं। इन्होंने जनजीवन के साथ संश्लिष्ट हो असहाय एवं उत्पीड़ित वर्ग के चित्रों

साधु

सीता कुंड

को उतने ही कौशल से आँका है जैसे कि प्रकृति के रसभीने चित्र। न केवल अबूझ मोंधी प्रतिध्वनियों की अनुगूँज है इनके कृतित्व में, वरन् इनके द्वारा अंकित प्रतीक रूपकों में जीवन के काफ़ी गहरे तत्वों को पकड़ने का प्रयत्न भी परिलक्षित होता है।

कलाचार्य अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, गगनेन्द्रनाथ ठाकुर, नंदलाल वसु और बंगाल स्कूल की चित्रण परम्परा का प्रभाव इनकी रेखाओं और रंगों में अनिवार्य रूप से द्रष्टव्य है। किन्तु अनेक परतन्त्र बन्धनों से रुद्ध-क्रुद्ध इन्होंने कितनी ही प्रणालियों को नकार दिया है, गोकि ये अपने ढंग के प्रयोगवादी हैं। इन्होंने जलरंग, तैलरंग, ड्रॉइंग, ड्राइ प्वाइंट आदि में नई-नई पद्धतियाँ और तौर-तरीके अख्तियार किये हैं। इन्होंने प्राचीन लयात्मक प्रवेग को नये ढंग से आधुनिक चित्रण पद्धति में प्रस्तुत किया है। अनेक चित्रों की शैली अरूपवादी है जो कहीं-कहीं रहस्यात्मक पुट लिये है। स्केच और रेखांकन निर्माण में भी ये बड़े ही कुशल हैं। पहाड़ी झरने, चट्टानें, वृक्षों एवं दृश्यावली के चित्र, माघ मेले के अखाड़ों के जुलूस, साधुओं की टोली, मोटे साधु-मन्तों के व्यंग्यात्मक चित्र, देहाती अंचल के विविध दृश्य, बहू-बेटी, औरत-मर्द और सामूहिक खेती, जो सामूहिक नृत्य भंगिमा में प्रस्तुत हुई हैं, घर के आँगन में व्यस्त जीवन की झाँकियाँ, ढोरों और मवेशियों का ग्रामीण वातावरण में प्रस्तुतीकरण, कौसानी, चित्रकूट और टांडा की दृश्यावली इन्होंने प्रस्तुत की है। खासकर पहाड़ी जन-जीवन में इनकी सर्वाधिक रुचि है और उसी में इनका मन रमा है। देव इलाहाबाद विश्वविद्यालय में अंग्रेजी के प्राध्यापक हैं। किन्तु साथ ही साथ वर्षों से प्रचार-प्रसार से दूर कला की एकान्त साधना में रत हैं। अंतराष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया है और अनेक अवसरों पर इनके चित्र प्रशंसित और पुरस्कृत भी हुए हैं। ये कृत्रिम प्रदर्शनियों या तड़क-भड़क के हामी नहीं हैं, इसलिए इनके काम करने का ढंग बड़ा सादा और संजीदा है।

रामचन्द्र शुक्ल

कला की नई टेकनीक को लेकर इन्होंने नितान्त नये व मौलिक प्रयोग किये हैं। सूक्ष्म लयात्मक भावभंगी, स्वप्निल पद्धति और दुर्भेद्य मनोविज्ञान की उलझन और रहस्यमयता लिये इनके चित्र सर्वथा निजी ढंग से आँके गए हैं। तरह-तरह के 'वाद' और पाश्चात्य प्रणालियों का मिलाजुला असर इनकी कला पर है। कई भावात्मक व संवेगजन्य चित्र परछाइयों के साये में डूबे हुए से एक

मौत की आँखें

रोग की अनुभूति

पश्चात्ताप

लयात्मक स्वप्निल वातावरण में निर्मित हुए से जान पड़ते है। अंतरंग अनुभूत आकांक्षा इनके चित्रों की अतंर्धारा में अनायास उतर आती है और रेखाओं में जैसे उन्हीं के साथ स्वयं प्रवाहित होने लगती है। इनके चित्र कुछ अजीबो-ग़रीब त्वरा और गति के साथ रूपायित होते हैं। वस्तुतः अमूर्त और शून्य-वादी सिद्धान्तों पर आधारित इनके कतिपय चित्र मन की काल्पनिक अवश उड़ान का दिग्दर्शन कराते है। इन्होंने स्वयं लिखा है—"स्वयं अपने बारे में कुछ बताना मेरे लिए कठिन है, पर इतना तो कह ही सकता हूँ कि मेरा यह रास्ता सर्वथा अपना है। मुझे किसी वस्तु या भाव का चित्र बनाना पसन्द नहीं। उसमें मेरा मन लगता ही नहीं। वास्तव में यदि दार्शनिक दृष्टि से देखा जाय तो मेरे चित्रों का मूलाधार शायद बुद्ध के शून्यवाद के नज़दीक पहुँचेगा। मैं उस जगह या कहिए उस स्थिति में पहुँचकर चित्र बनाता हूँ जहाँ शून्य के अलावा कुछ नहीं होता। जब मुझे यह स्थिति प्राप्त होती है—मनः स्थिति, तब उँगलियाँ काग़ज़ पर अपने आप चलने लग जाती हैं—जैसे उन्हें कोई अज्ञात इशारा मिला हो और वे तेजी से चल पड़ी तूलिका का सहारा लें। शून्य वाली मनःस्थिति से चित्र का प्रारम्भ होता है, पर यह स्थिति कुछ क्षणों बाद टूटती है और तब चित्र में कुछ चेतन भावों तथा रूपों का समावेश हो जाता है।"

इन्होंने यूँ सैंकड़ों प्रयोग किये हैं। रेखांकनो में थिरकती गतिभंगिमा और लय है, लगता है—जैसे नृत्य सी करती हुई रेखाएँ किन्ही आकृतियों में बरबस ढल जाती हैं। भावात्मक अर्थात् मनोवेगों के चित्रों मे 'पश्चात्ताप', 'आकांक्षा', 'प्रतिशोध', 'दुःस्वप्न', 'दया', 'मौत की आँखें,' 'श्वेत और कालिमा का द्वन्द्व', 'पराजय की पीड़ा', 'रोगी का स्वप्न,' 'शेष अग्नि', 'मायावी', 'सृष्टि और ध्वंस' आदि कतिपय चित्रों में लक्षणात्मक व्यंजना है जिसमे मन की प्रच्छन्न पर्तों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया है। धुएँ का सा आकार लिये कितने ही सूक्ष्म मनोभाव प्रगाढ़ रंगों के संयोग से भीतरी उद्वेलन को दर्शाने की चेष्टा में आँके गए हैं। आज मनुष्य का मन कुंठाग्रस्त है, उसकी इच्छा-आकांक्षाएँ विज-ड़ित हैं, प्राणों में व्यथा व कसक है, कभी ठेस लगती हैं या तरह-तरह की घट-नाओं एवं परिस्थितियों का प्रतिकूल प्रभाव मन को मसोस जाता है तो उमड़न-घुमड़न सी होती है जिसकी कचोट बड़ी तीखी होती है और जो स्पष्ट नही, अस्पष्ट सी बनकर हावी हो जाती हैं, अतएव ये 'अरूपवादी या 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट को इस युग की सबसे बड़ी देन मानते हैं। मानव संवेदना व सूक्ष्म अनुभूति को जगाने

आधुनिक नृत्य (सूक्ष्म कला शैली)

पृथ्वी के अंकुर

के लिए ऐसी कला के यथार्थ को समझने की चेष्टा करनी चाहिए। चित्रों के माध्यम से कलाकार अपने मन की बात कह सकता है, उसके अंतर का रिक्त अंतरिक्ष रेखाओं व रंगों के वृत्त में कुछ सशक्त व्यंजना कर जाता है, पर इसे पकड़ने के प्रयास होने चाहिए।

इन्होंने 'पोर्ट्रेट' और परम्परागत शैली के भी चित्र बनाये हैं—'सरस्वती', 'राधा', काशी शैली पर निर्मित 'दीपावली', 'रामलीला' आदि चित्र परम्परागत आलंकारिक शैली पर निर्मित हुए हैं और 'मेरा गांव', 'देहाती नृत्य', 'चीरहरण', 'सृष्टि का उद्यान', 'गुड़ियों का खेल', 'अप्सराएँ' आदि चित्र लोकरंजक शैली पर। कुछ ऐसे चित्र भी हैं जो यूँ तो नितान्त नई पद्धति पर निर्मित हैं, किन्तु उनमें आकृतियाँ उभर आई हैं और कलाकार का अभीष्ट दर्शक के मन को छू लेता है। कुछ चित्र बड़े गूढ़ है और रंगों की प्रगाढ़ता में खोये हुए से अस्पष्ट से लगते हैं। रेखाकृतियाँ अपेक्षाकृत अधिक सफल बन पड़ी हैं। यह तो सही है कि कलाकार अपनी कल्पना या मानसिक परिस्थिति के अनुसार चित्रण करता है, पर व्यंजित भाव के सूक्ष्म ब्यौरों में दूसरों की बुद्धि धँस सके यही उसके चित्रण की सफलता है।

बचपन से ही इन्हें कला का शौक़ था। शनैः शनैः परिपक्व आत्म चिन्तना मे इनकी मौलिक निष्पत्तियों ने प्रश्रय पाया। इनकी कृतियाँ किसी का अन्धानुकरण नहीं, बल्कि इनकी अपनी धारणाओं की प्रतीक हैं। प्रयाग विश्वविद्यालय से चित्रकला में डिप्लोमा लेने के पश्चात् ये लगभग १९४६ से कला की साधना में प्रवृत्त हैं। इन्होंने उत्तरप्रदेशीय कला-प्रदर्शनियों में भाग लिया है। पटना, बनारस और इलाहाबाद में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की है। बिहार सरकार के कला और शिल्प विभाग के ये डायरेक्टर भी रहे हैं। वाराणसी की 'रचना कला अकादमी' के सेक्रेटरी हैं और कला के आयोजनों में सोत्साह भाग लेते रहते हैं। न सिर्फ़ कलाकार, वरन् कुशल कला समीक्षक भी हैं। इन्होंने आधुनिक कला-पद्धतियों को समझने व समझाने की चेष्टा की है। 'कला-प्रसंग' और 'कला का दर्शन' पुस्तक में मौलिक मतवादों की प्रस्थापना द्वारा युग-परिवर्त्तन के साथ-साथ नई शिल्प निधि, नई भाव संयोजना और नई सृजन-शैलियों पर प्रकाश डाला है।

जगदीश गुप्त

जगदीश गुप्त ने रंग एवं रेखाओं को एक नई काव्यात्मक अभिव्यक्ति प्रदान की है। मनोरागों की सूक्ष्म व्यंजना प्रतीकवादी पद्धति पर इनके कतिपय चित्रों में मुखर हुई है। एक अवर्णनीय अवश सा भाव अर्थात् शुद्ध कल्पना प्रसूत 'फॅंटेसी' धूमिल रंगों में उभरकर सामने आई। हरे रंगों मे अधिकतर चाकलेटी मिश्रणों के प्राधान्य से जो रंगों का सम्मोहक विस्तार दीख पड़ता है उसमें रजत ज्योत्स्ना सा आकर्षण और वायवीय मुग्धता है। वस्तुत: इनके अनेक चित्रों का सम्पूर्ण वातावरण लोकातीत और स्वप्नों की लय पर थिरकता हुआ सा आकार ग्रहण करता है। इनके द्वारा अंकित दृश्य चित्रों में ऐसे नजारे द्रष्टव्य हैं जो इस स्थूल जगत् के नहीं, बल्कि किसी जादू के देश के हैं और चन्द्रलोक के कगारों से जिन की रूपहली धारा का उद्रेक हुआ है।

किसी 'इमेजरी' अर्थात् रंग एवं रेखाओं के माध्यम से तैर आईं भावच्छायाएँ किन्हीं गीतों के अनबोल छन्द से लगते हैं। ये कलाकार कवि हैं, अतएव भावोन्मेष ही इनके सृजन का प्रेरक है। इन्होंने जो नारी-पुरुष के परस्पर प्रम व्यंजक चित्र निर्मित किये हैं वे सब प्रकार के विधि-निषेधों तथा अवरोधों-प्रतिरोधों से परे सार्वभौम तथा उदात्त प्रेम के दिग्दर्शक हैं। ज्योति के प्रतीक चित्रों में सूक्ष्म कल्पना का समावेश है। दीपक का प्रज्ज्वलित प्रकाश उस महत् चेतना का प्रेरक उपादान है जो कला, ज्ञान और भावना के अंतस्तल की

माँ–बेटी

सड़क का भिखारी

शाश्वत रूपधारा में ढल कर प्रकट हुआ है। ज्योतित मन के भावलोक की स्मृतियाँ कौंधकर कल्पना की पृष्ठभूमि में धुएँ की लकीरें भी आँक देती है।

प्रदीप्त मन को स्नेह एक सम्बल के रूप में प्राप्त होता है जिसके संदर्भ में सृष्टि की मर्यादा प्रकाश को अनुशासित करती है और चेतन आत्मा सृजन करती है। सृष्टि के अंतराल में प्रदीप्त ज्योति ज्वाज्ज्वल्य इच्छाशक्ति का

दीपक की लौ

प्रतीक है और धूम्र वातावरण का प्रेरक। जीवन का यथार्थ कल्पना का परिष्कार करता है, मगर तजुर्बों की गाढ़ी लकीरें समय की झुर्रियों में खिचकर संघर्ष को मुखर करती हैं।

बचपन से ही कला की ओर इनकी अभिरुचि थी। क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार जैसे कला शिल्पी के शिष्यत्व में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया। रोरिक, अनागारिक गोविन्द, पिकासो तथा बैंगाफ जैसे महान् कलाकारों से भी इन्हें प्रेरणा मिली है, पर महज अनुकरण की दृष्टि से नहीं, वरन् रचना क्षमता और कल्पना-शक्ति को पुष्ट बनाने के लिए। 'अन्तर्दृष्टि,' 'ऊर्ध्वदृष्टि', 'तन्मयता', 'आत्मलीन', 'बिचारमग्न', 'आवर्त्त'' 'एक मनः स्थिति', 'अवकाश के क्षणों में', 'आबद्ध', 'समवेत नृत्य', 'नया अर्थ', 'अन्तर्लीन', 'स्वप्न संतरण', 'लज्जारुण,' 'खिन्नमना', 'तटस्थ' 'एकाकी' आदि इनके भावात्मक चित्र है जो कोमल भावाभिव्यंजना के परिचायक हैं। 'कोहड़े के फूल', 'चाँदनी की धार में', 'तराई की ओर', 'माँझी', 'मोड़ के साक्षी', 'चीड़ का पेड़', 'जलवलयित देवदारु,' 'घाटी के बादल', 'चीड़वन', 'स्वर्ण ज्योति और काले तृण,' 'कछार', 'प्रहरी' आदि चित्रों में सजीव दृश्यांकन और यथार्थता उभर आई है।

दीपक की छाया में

अमूर्त्त चित्रण, अतियथार्थवादी पद्धति, लैंडस्केप, आकृति चित्र, स्केच और रेखांकन चित्रों के निर्माण में इन्होंने यथार्थ बिषयों को लेकर बड़ी सूक्ष्म कुशलता से कार्य किया है। प्राच्य और पाश्चात्य टेकनीक के समन्वित प्रभाव को आत्मसात् किया है, पर इनके हर चित्र में रेखाओं की थिरकन और लय का आभास मिलता है। जलरंग, तैलरंग और टेम्परा के माध्यम को अपनाया है। 'क्लासिसिज़म' और 'रोमांटिसिज़म' का मिला-जुला असर जो दिवास्वप्न और 'फैंटेसी' में परिणत होकर अर्द्धजाग्रत अवस्था में उभरता है, ऐसे ही धरातल पर इनकी चिन्तन

मुद्रा ने आकार ग्रहण किया। कुरूप व अनगढ़ में भी ये 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के हामी हैं और प्रतीकों द्वारा उसको रूपायित करते रहते हैं। ये चित्रकार होने के साथ-साथ सुप्रसिद्ध लेखक एवं कवि भी हैं जिसके फलस्वरूप कोमल भाव-धारा और परिष्कृत रुचि इनके कृतित्व में द्रष्टव्य है। इलाहाबाद में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित की। इलाहबाद के आर्ट क्लब और उत्तर

विरहिणी

प्रदेश कलाकार संघ के ये सदस्य हैं। 'टेराकोटा' एकत्र करने में इनकी रुचि है और वर्षों के परिश्रम एवं अध्यवसाय द्वारा इन्होंने अनुलब्ध सामग्री जुटाई है।

महेन्द्र नाथ सिंह

लगभग १९५३ से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। बनारस हिन्दू विश्व-विद्यालय से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया, फिर वहीं म्यूज़िक एंड फाइन आर्ट्स कालेज में कला-शिक्षक नियुक्त हो गए। बनारस के डी०ए०वी० कालेज के ड्राइंग और पेंटिंग विभाग में भी ये लेक्चरार रहे। वाराणसी, इलाहाबाद और पटना की कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। भारतीय कला पर इनका गहरा अध्ययन है और ये उसकी बारीकियों को ग्रहण कर अपने लेखों द्वारा प्रकट करते रहते हैं।

ये परम्परागत कला-प्रणालियों के हामी हैं। आधुनिक चित्रण की कुत्सा इनकी परिष्कृत रुचियों को स्पर्श नहीं करती। इनके मत में आधुनिक चित्रकला ने जनमानस में एक क्रान्ति पैदा की है, किन्तु वह नैराश्य के पथ का ही अनुसरण कर रही है जो भारत के लालित्य और सौन्दर्योन्मुखी प्रवृत्तियों के प्रतिकूल है। 'कलाकार जो कुछ भी वस्तु-जगत में देखता है उसे उसी रूप में अंकित करना तो मात्र अनुकरण है। कला की अभिव्यक्ति उसके नये रूप-रंगों में ही होती है। इस नवीनता को लाने के लिए कलाकार को अपनी प्राप्त अनुभूति में कल्पना के योग से हर वस्तुओं के प्रति एक विश्लेषणा-त्मक अध्ययन की आवश्यकता रहती है, जिससे कि वस्तु जगत् की जटिलता सरलता में परिणत की जा सके। कला में चित्ररचना का यही मूलाधार है।'

सिंह की कला पर कांगड़ा और काशी शैली का प्रभाव है। वहीं की अलंकरण विधि और लोकरंजक पद्धति पर इनके चित्रों का निर्माण हुआ है। कला के सांस्कृतिक पहलुओं पर जो आज नये कलाकारों की दृष्टि नहीं ठहर पा रही है, उससे बड़ा खतरा है और उससे बहुत से ऐसे गर्हणीय तत्त्व कला पर हावी हो सकते हैं। इनकी तूलिका से सृजित रूप-रंगों में सरलता और सादगी है, भारत की उर्वरा कला ने इनकी चेतना को अनुप्राणित किया है, फलतः नव-निर्माण की दिशा में भटकी प्रणालियों के प्रभाव को नकार कर और समूचे बन्धनों को विच्छिन्न करके भारतीय उल्लास और प्रफुल्लता लिये उसी की ठोस भावभूमि पर इनकी कला पनपी है।

•

तुंगनाथ श्रीवास्तव

बहुमुखी प्रतिभा के धनी तुंगनाथ श्रीवास्तव भारतीय परम्परागत कला की सार्थकता के समर्थक रहे हैं। उसके सौन्दर्य में गहरे उतर कर इन्होंने अपनी जिज्ञासु दृष्टि से अंतर्मुखी वस्तुसत्ता की सम्पूर्णता को ग्रहण किया है। रेखाओं की लयमय गतिभंगिमा में रंगों का उचित संयोजन—इसी से इनकी कृतियाँ नव्य पद्धति पर निर्मित होते हुए भी आकर्षक बन पड़ी है। न तो ये प्राचीनता के कायल हैं और न ही यथार्थता के। हूबहू नकल करना तो फोटोग्राफ़र का काम है, कलाकार का नहीं। वह अपने पृथक् कोण से दृश्यवस्तु को आंकता है। उदाहरणार्थ—यदि कोई कवि आँखों की उपमा किसी खंजन से देता है तो इसके ये मानी नहीं कि आँख के स्थान पर किसी पक्षी का वह चित्र अंकित करे, बल्कि आँख में चंचलता दर्शाना ही उसके प्रतिपाद्य का लक्ष्य होना चाहिए। इनके विचार में मान लीजिए किसी विशाल भवन के दरवाजे पर भीख माँगने का कटोरा पड़ा हुआ है और उसमें एक पैसा, तो वह कुछ निर्देशन देगा अर्थात् मानवीय संवेदना को जाग्रत करने में सहायक होगा, अथवा कोई एक स्त्री और पुरुष पास-पास बैठे हैं और पुरुष बाँसुरी बजा रहा है और नारी

प्रणय चितन

मुग्धा बनी उस लय को सुन रही हैं तो दोनों की एकाकार भावना चित्रकार की कला का केन्द्र विन्दु बन सकती है। उसकी अनुभूति रेखाओं और रंगों में बाँधकर उसे अमर बना सकती है। इस प्रकार भावनाओं की एकान्त वैयक्तिक दृष्टि द्वारा वह अंतरंग सौन्दर्य की रसज्ञता में डूबकर किसी विशेष विचारधारा के प्रतिपादन में सफल हो सकता है।

कला का दायरा असीमित है, किसी देशकाल की परिधि में ही सिमटा हुआ नहीं, वरन् बहुविध देशीय व अंतरदेशीय परम्पराओं का प्रतिनिधित्व कर सकता है। ये युगानुरूप व समयानुकूल परिवर्त्तनों में विश्वास करते हैं। तत्कालीन समस्याओं, विचारधाराओं और नित-नये विकासशील तत्वों को आत्मसात् करते हुए अपने ढंग से उनका समाधान व समन्वय करना कलाकार के सृजन-कौशल की सार्थक कसौटी है।

वट पूजा

इलाहाबाद के एक नैष्ठिक परिवार में ये पैदा हुए। शुरू में ये साइंस के विद्यार्थी थे, पर कला में रुचि होने के कारण उसका अध्ययन और अभ्यास भी जारी रखा। इनके परिवार का आग्रह था कि डाक्टरी पढ़ें, किन्तु कला की साधना-भूमि शांतिनिकेतन का आकर्षण इन्हें खींच रहा था और अनेक विरोधों-अवरोधों के बावजूद वे वहाँ गए और कला का अध्ययन जारी रखा। इन्होंने बम्बई में रहकर मूर्त्तिकला, लिथोग्राफी, ब्लाक बनाना और ग्राफिक कला आदि के माध्यमों को

मांजा है। प्रतीक पद्धति पर प्रायः चित्र निर्माण करते हैं, जो भारतीय परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हुए भी समय से पीछे नहीं हैं। रंगों के मिश्रण में अनेक प्रयोग किये हैं। मूर्त्ति-निर्माण में 'वेक्स' का इस्तेमाल अधिकतर करते हैं। इनके द्वारा निर्मित स्टालिन की वेक्स प्रतिमा सोवियत रूस के प्रथम प्रतिनिधि को भेंट स्वरूप प्रदान की गई थी भारतीय मूर्त्तिकार संघ तथा अन्य उत्तरप्रदेशीय कला-प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्रदान किये गए। बम्बई की १९५५ और १९५६ की सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट प्रदर्शनियो में इन्हें पदक प्रदान किये गए।

बाम्बे आर्ट सोसाइटी, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी और अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। इलाहाबाद और बम्बई में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की है। इन्हें नृत्य और संगीत में भी रुचि है और ये कला विषयक वार्त्ताएँ रेडियो से प्रसारित करते रहते हैं। इलाहाबाद की कला-परिषद के ये सेक्रेटरी रहे हैं। आजकल बम्बई में व्यावसायिक कलाकार के रूप में विभिन्न माध्यमों के प्रयोग द्वारा बहुमुखी दिशाओं की ओर अग्रसर हैं।

तुंगनाथ श्रीवास्तव का काम करने का ढंग सीधा-सादा है। पाश्चात्य वादों के मोह में व्यर्थ की विरूपताओं (distortion) में ये विश्वास नहीं करते। बाजारू वृत्ति या छिछली भावनाएँ कलाकार की प्रखर दृष्टि को कुंठित करते हैं, अतएव रसरंजित निगूढ़ अभिव्यक्ति ही कलाकार का अभीष्ट होना चाहिए।

चित्तप्रसाद

सुप्रसिद्ध प्रगतिशील कलाकार चित्ताप्रसाद की कला जन-संघर्षों से प्रेरित हुई। जीवन की उन्मुक्त लहरों में बिखरकर वे उसके असीम, अथाह रूप में पैठना चाहते हैं। अति प्रबल झंझावातों, जीवन थपेड़ों और वेदना की आकुल छटपटाहट में उनकी कला पनपी और अपनी विशेषता में ढल गई। हताशा, अवसाद और अकिंचनता रूपी अंधकारमयी निशा को चीरकर प्रभात के चहचहाते वैतालिक पंछी के रूप में प्रतिभा-पंख फड़फड़ाकर वे उड़ चले। दर्द की कराह की गूँज उनके अंतर को मसोसती रही। अकालग्रस्त और भुखमरी के शिकार बच्चे, समाज के क्रूर दानवों द्वारा दुत्कारे जाने वाले असहाय व्यक्तियों, बड़े-बड़े शहरों के फुटपाथों पर गुजरने वाले हर तरह के दर्दनाक

और मर्मवेधी दृश्य उनकी तूलिका पर थिरके हैं। बंगाल का अकाल जब पड़ा और त्रस्त मानवता कराह उठी तो इनकी रेखाएँ उभरकर हड़कम्प सा मचाने लगीं। कितने ही नज़ारे बरबस मुखर हो उठे।

शोषक-वर्ग की बर्बरता पर इन्होंने अपनी तूलिका से भीषण प्रहार किये हैं। कहीं हृदय को अभिभूत करने वाली करुणा है तो कहीं व्यंग्यात्मक तलवार की सी घातक चोट करने वाली कार्टून शैली। जन रूपों से प्रेरित इनकी अभिव्यक्ति कहीं कराह उठी है तो कहीं विराट् रूप धारण कर गयी है। 'भिखारी बच्चे', 'इन्हें खाना, दूध, मकान, शिक्षा और शांति चाहिए, किन्तु मिलती हैं लाठी और गोलियाँ', 'इनके खाने और पढ़ने के दिन थे', 'ज़िन्दा रहने के लिए बीड़ियाँ' 'मुरझाया फूल', 'उजड़े खेत', 'नर कंकाल', 'विनाश की छाया' आदि दृश्यांकनों द्वारा बड़ी ही दर्दीली अनुभूतियाँ इन्होंने सामने रखीं। गरीबी, संघर्ष, बर्बादी की न जाने कितनी स्थितियाँ सामने पड़ती रहती हैं जिनकी उपेक्षा नहीं की जा सकती, वे प्राणों को मथने लगती हैं।

खेल कूद में रत भोले गरीब बच्चे

चित्ता कलाकार हैं और कलाकार की सौन्दर्यलुब्ध आत्मा प्रकृति की रमणीयता में रमना चाहती है। फूल के सौन्दर्य का आकर्षण और रंगीनी

उन्हें खींचती है, वे उसके सुन्दर सहज रूप को अंतर में उँड़ेलना चाहते हैं, पर चारों ओर कुत्साओं और कुरूपता का सागर हिलोरे मार रहा है, उसकी पृष्ठ-भूमि कैसे भुलाई जा सकती है। कैसे विस्मृत किये जा सकते हैं वे अनगिन वैषम्य और विसंगति भरे चित्र जो दर्द भरी दाह को उकसाते हैं और अन्त-र्व्यथा के अथाह सागर पर से उड़ाते हुए कई बार हताशा की सीमा तक ले जाते हैं। तो ऐसे दृश्यों में बिना पैठे किसी भी संवेदनशील कलाकार की आत्मा की भूख कैसे मिट सकती है।

इसके ये अर्थ नहीं कि चित्ता रूढ़ि विरोधी परम्पराओं के हामी हैं, इसके विपरीत भारत की प्राचीन कलाथाती और कौशाम्बी व मथुरा की कुषाण-कालीन कला से अत्यधिक प्रभावित हैं, किन्तु भारत की मर्मस्पर्शी कथा कहने वाले चित्र इन्हें विशेष रूप से प्रिय हैं। जलरंग, तैलरंग, क्रेयन, 'पेन एंड इंक' आदि के माध्यमों द्वारा इन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। 'म्यूरल' अर्थात् विशाल भित्तिचित्रों, स्केच और कार्टूनों के जरिए इन्होंने अपनी यथार्थ अनुभूतियों को मुखर किया। जन नाट्य संघ की ओर से इलाहाबाद में आयोजित कान्फ्रेंस के अवसर पर इन्होंने 'संघर्ष' और 'विजय' दो चित्र बनाये जो बहुप्रशंसित हुए। इन्होंने भारत-चीन मैत्री के दिग्दर्शक भित्तिचित्रों का भी निर्माण किया। भारत के गाँवों में घूम-घूम कर उन्होंने गाम्य-जीवन की कितनी ही झाँकियों को आँका और कलकत्ता-बम्बई जैसे बड़े-बड़े नगरों की विभीषिका के भीषण चेतावनी भरे दृश्यरूप प्रस्तुत किये। भोले-भाले बच्चे, झोपड़ियाँ, गाँव की सरल, निष्कपट नारियाँ, मछुए, मानसून में काले उमड़ते मेघ, नौकाएँ, टूटे टीले, चट्टान और सड़कों पर पड़े शव, कुत्ते और हड्डियों के ढेरो को इन्होंने सहानुभूति और मार्मिकता से उभारा है। इनके अन्तर में जो आग धधक रही है, प्राणों में जो मसोस है वह ओरियिंटल आर्ट की आलंकारिक शैलियों पर नहीं थिरकती, वरन् जन-मन को मुखर करने वाली राष्ट्रीयता में ये विश्वास करते हैं। बचपन में कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट में जब ये अपने पिता के साथ दाखिला खोज रहे थे तो अधिकारी यह बंधपत्र और गारन्टी लेना चाहते थे कि अपने अध्ययन काल के दौरान वे किसी कांग्रेस आंदोलन में भाग न लें। इनके स्वाभिमान ने यह प्रस्ताव ठुकरा दिया। जयपुर आर्ट स्कूल में इन्होंने प्रवेश पाने का प्रयत्न किया तो वहाँ भी कुछ ऐसी ही परिस्थितियाँ सामने आईं। इन्होंने तय कर लिया कि किसी स्कूल या कालेज की परिधि में इनकी सृजन-चेतना बन्दी होना गवारा नहीं कर सकती, वरन्

जनता की गरीबी और अज्ञान से ही इन्हें प्रेरणा प्राप्त करनी है। 'कला कला के लिए' का सिद्धान्त सम्पन्न व समृद्ध लोगों की संतृप्ति का साधन तो बन सकता है, पर सच्ची कला अमीरों की क्रीतदासी नहीं, जनता के प्राणों की पुकार है। फलतः इस जनसंकुल भीड़ में भटक-भटक कर ये अपनी कला को प्रौढ़ और परिपक्व बना रहे हैं।

१९४१ में जब बर्मा का पतन हुआ तो ये चित्तगाँग में थे। वहाँ के विभीषिका भरे नज़ारे और रौरव दृश्यों ने इन्हें मानसिक व्यथा पहुँचाई। उस समय इन्होंने पोस्टर चित्र बनाए और जनता के दुःख-दर्दों का दिग्दर्शन कराया। बंगाल का जब अकाल पड़ा तो इन्होंने जननाट्य संघ द्वारा अभिनीत 'अमर भारत' नाटक के लिए टाट को काटकर अलंकरण किया और वस्त्र के अभाव में उन्हीं पर रंग-वैभव उँड़ेल दिया। बंगाल के पट चित्रों और लोक-कला से भी इन्हें विशेष प्रेरणा मिली है। कला-क्षेत्र में जब ये अवतीर्ण हुए तो पुनरुत्थान आन्दोलन का नेतृत्व करने वाले अवनीन्द्र नाथ ठाकुर का विशेष प्रभाव था। कला के सैकड़ों-हज़ारों नमूने भारत के वैभव की कहानी कहकर किसी रंगीन वातावरण की ओर उत्प्रेरित कर रहे थे, किन्तु उससे दूर ये किसी और फ़िज़ाँ में उड़ चले, जहां जनता की पुकार किसी दूसरी दिशा की ओर इन्हें उत्प्रेरित कर रही थी।

विपिन अग्रवाल

नई शैली के कलाकार हैं जो आधुनिक भावबोध और कला संचेतना पर आधारित चित्रों की सृष्टि करते हैं। पाल क्ली, कांदिस्की, जान मिरो, जुआन ग्रिस जैसे कलाकारों का प्रभाव इनके कृतित्व पर पड़ा है। इन्होंने अधिकतर ऐसे अमूर्त्त चित्रों का निर्माण किया है जो यकायक समझ में नहीं आते, जिनके विषय गूढ़ हैं और दर्शक पर सीधा प्रभाव उत्पन्न करने में अक्षम हैं।

आस-पास की परिस्थितियों का एक अत्यन्त तीखा और कचोटता रूप इनके कृतित्व में उभरा है। अनेक चित्र व्यंग्यात्मक हैं जो कार्टून पद्धति पर निर्मित हुए हैं। ये प्रयोगी हैं और अद्भुत आकार संयोजना पर मिरजे विचित्र मूडों को रंग एवं रेखाओं में आबद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। 'एब्स्ट्रैक्ट' या अमूर्त्त चित्रण की टेकनीक को समझे बिना कभी-कभी चित्रकार का उद्देश्य भटक जाता है। मानव संवेदना को जगाने की चेष्टा में ऐसे चित्र निरीह केंचुए से रेंगने लगते हैं, उनमें विसंगतियाँ उभर आती हैं और यों वे रसानुभूति

नहीं विरसता उत्पन्न करते हैं। इसके ये मानी नहीं कि आधुनिक सन्दर्भ में सिरजी कला बेमानी हैं, पर इतना निर्विवाद है कि चित्र बनाने से पूर्व सर्जक का मस्तिष्क साफ होना चाहिए, भले ही 'सब्जैक्ट मैटर' महत्त्वपूर्ण न हो, पर 'कटेंट' अर्थात् उसके विषय-सार का प्रभाव स्पष्ट होना चाहिए।

विपिन अग्रवाल कला में अर्थ ढूंढ़ने के पक्ष में नहीं हैं। पाश्चात्य प्रभावों को प्रश्रय देकर ये निरन्तर सूक्ष्मता की ओर आगे बढ़ रहे हैं और इसी पद्धति पर इनकी अनेक सबल कृतियाँ सामने आई हैं। ये विदेश हो आए हैं और सममामयिक कला-प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। आधुनिक पैटर्नवादी कला, ख़ासकर व्यंग्यात्मक दिशा में इन्होंने पर्याप्त महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

रणवीर सक्सेना

देहरादून के तरुण शिल्पी रणवीर सक्सेना ने यथार्थ स्तर पर चित्र-सर्जना को नया मोड़ दिया है। वे परम्परावादी नहीं हैं, न ही किसी ख़ास कला-स्कूल के हिमायती, किन्तु इसके ये अर्थ नहीं कि प्राचीन परम्पराओं पर इन्हें गर्व नहीं है या उसके महत्त्व को ये नकारते हैं अथवा उन्हें सामयिक नव्य वादों का ज्ञान नहीं, वरन् उनकी कला नये-पुराने के बीच का सेतु है। वे कला के हर रुख़ को पहचानते हैं, साथ ही वे इस तथ्य से भी अवगत हैं कि कलाकार को अपनी सीमा लाँघने में कितना घोर श्रम करना पड़ता है।

कला प्रशिक्षण

निर्विवाद रूप से पुरातन पूर्वाग्रहों, पुनरावृत्तियों, मिथ्या प्रतीतियों व शंकाकुल स्थितियों से आगे क़दम भरते हुए इन्होंने कितने ही प्रभावों को

आत्मसात् कर अपनी ख़ास शैली अख़्तियार की। शुरू में बंगाल स्कूल का प्रभाव इनकी कला पर था। अजन्ता शैली, राजपूत शैली, मुग़ल शैली और भारतीय कला-परम्पराओं की रूप-श्री से इन्हें बड़ी प्रेरणा मिली, फिर भी ये किन्हीं रूढ़ियों में नहीं बँधे, बल्कि लोकरंजक और आदिम रूपों में इनकी वृत्तियाँ अधिक रमीं। गाँव और नगरों के दृश्य, कोलाहल और भीड़भरी

प्रतीक्षा

जीवन-दर्पण

सड़कें, आँखों को अच्छे लगने वाले प्रसंग व घटनाएँ, जन-जीवन में बिखरे अनगिन नज़ारे, इसके अतिरिक्त हिमाच्छादित पर्वतों, हरे-भरे मैदानों, गाते-चहकते चश्मों, इठलाते-मचलते नदी-नालों, चरागाहों, लहलहाते खेतों, ऋतु-परिवर्त्तनों और प्रकृति की उन्मुक्त क्रोड़ में, हरीतिमा के प्रचुर वैभव में इन्होंने बहुत कुछ खोजा और पाया जिसे रंग व रेखाओं में ढाल दिया। हिमालय, जौनसार बाबर, बद्रीनाथ, गंगोत्री, यमुनोत्री, मसूरी, देहरादून, चकराता, लैंसडाउन, नैनीताल, नेपाल और काश्मीर की दृश्यावली को इन्होंने अपनी तूलिका से सजीव बना दिया। भारत के प्राय: सभी भू-भागों का ख़ासकर हिमालय के किन्नर व किरात प्रदेश, गढ़वाली, रवाई, भोट जन-जीवन, नेपाली, बर्मी, काश्मीरी और जौनसार बाबर की संस्कृति से सम्बन्धित सैंकड़ों-

हज़ारों चित्र इन्होंने बनाये। पहाड़ी लोगों की विभिन्न भंगिमाएँ, उनके रहन-सहन और जीवन बिताने के तौर-तरीके, तदनुरूप वातावरण और उनकी प्रकृति के हर पक्ष का उद्घाटन हुआ है। 'किन्नर दुलहिन,' 'किन्नर बालाएँ,' 'पहाड़ी फूल', 'प्रफुल्ल दम्पति', 'ढोलवादक', 'किन्नर नर्तकी', 'माता-पुत्र' जैसे न जाने कितने चित्र प्रेक्षक को दृष्ट सौन्दर्य से अदृष्ट कल्पना लोक के सौन्दर्य तक ले जाते हैं। इनकी भावसत्ता में खोकर अनेक चित्र अन्तर्भूत सत्य और भावनात्मक तादात्म्य की सम्पूर्ति के प्रतीक हैं। चूँकि चित्र अपने लिए न

सड़क का भिखारी

होकर दूसरों के लिए अर्थात् जनता के लिए होते हैं, अतएव यदि कलाकार ऐसे चित्र बनाए जो किसी की समझ में न आएँ तो ऐसी कला निरर्थक व निरुद्देश्य है, वह जनहिताय अर्थात् कल्याणकारी नहीं हो सकती।

रणवीर अधिक से अधिक श्रम व अध्यवसाय के हामी हैं जो इनके निकट रचनात्मक क्षमता का पर्याय है। दरअसल, इसी में से तरह-तरह के काम सामने आते हैं। कार्य-तत्परता, लगन और अनवरत श्रम, जो काम के क्रम को टूटने नहीं देते, ऐसे रचनात्मक वातावरण की सृष्टि करते हैं जिससे बहुविध प्रभावों को आत्मसात् करने की क्षमता जगती है। ये कला में, चाहे वह किसी भी शैली की हो, सच्ची अनुभूति के क़ायल हैं—'आशा और विश्वास की यह किरण, जो हमारे जीवन-पथ को दीप्तिमान करती है, आज के युग के आस्था-हीन बादलों से दबती हुई प्रतीत होती है और इसी कारण ऐसा अनुभव हो रहा है मानो कला के क्षेत्र में जीवन का सच्चा प्रकाश नहीं है। यह कहने का प्रयोजन किसी प्रवृत्ति की निन्दा या आलोचना नहीं है, प्रत्युत् अनुभव की गई

आत्मानुभूति व सच्ची अभिव्यक्ति से है। कला के सच्चे समीक्षकों और मनीषियों के सामने यह एक विचारणीय प्रश्न है कि हम अपने अन्तर्तम को खोजें और देखें कि अभाव किस ओर है।

······प्रत्येक सुन्दर वस्तु निश्चित ही आनन्ददायिनी होती है और कोई भी वस्तु तब तक सुन्दर नहीं हो सकती जब तक कि उसका आधार सत्य न हो। सत्य ही सुन्दर होता है। वास्तविक आत्मानुभूति ही सत्यानुभूति है और इसी सत्यानुभूति की अभिव्यक्ति सौन्दर्यानुभूति को जन्म देती है जो आनन्ददायिनी होती है, अन्ततोगत्वा सुख और शान्ति की जन्मदाता है, जो जीवन का चरम लक्ष्य है। आदिकाल से सम्पूर्ण कलाकृतियों का निर्माण इसी आत्मानुभूति के बल पर और इसी लक्ष्य की प्राप्ति के लिए होता रहा है। जिस निर्माण में सच्ची आत्मानुभूति की अभिव्यक्ति नहीं हुई वह निर्माण कलात्मक, आनन्ददायक एवं शान्तिप्रद नहीं हो सका।'

कुणाल की भेंट

इटावा के मध्यवर्गीय परिवार में रणवीर पैदा हुए। इनके बाबा एक अच्छे वादक व संगीतज्ञ थे जो बालक की जन्मजात नैसर्गिक कलाभिरुचि को बढ़ावा और प्रोत्साहन देते थे, किन्तु शेष पारिवारिक सदस्य बड़ा विरोध कर रहे थे और इस कंटकाकीर्ण पथ पर अग्रसर न होने की चेतावनी दे चुके थे। किन्तु इनके मन की लगन सच्ची थी। हाई स्कूल परीक्षा में उत्तीर्ण होने के पश्चात् ये लखनऊ स्कूल आफ आर्ट में दाख़िल हो गए और पाँच वर्ष वहीं पढ़कर डिप्लोमा लिया। तीन वर्ष तक बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में भित्तिसज्जा का कोर्स पूरा किया और तत्पश्चात् दो वर्ष तक विश्व भारती, शान्तिनिकेतन में अध्ययन करते रहे। असित कुमार हाल्दार,

वीरेश्वर सेन, ललितमोहन सेन, अवनि सेन, सैयद हुसेन असकरी, जगन्नाथ मुरलीधर अहिवासा, वेन्द्रे, लैंगहैमर और नन्दलाल वसु आदि अनेक कलाचार्यों की स्नेहच्छाया में इन्होंने कला की साधना और ज्ञानार्जन किया। किन्तु इन मास्टरों के निकट सम्पर्क में इनकी प्यास सदा बढ़ती गई और जिज्ञासु के रूप में नये की खोज में ये सदा भटकते रहे।

किन्नरी

रोज़मर्रा की ज़िन्दगी के प्रति एक खुला निर्द्वन्द्व भाव होना चाहिए अर्थात् चित्र-रचना के दौरान चुन-चुन कर प्रभावों को आत्मसात् करने की सतर्कता होनी चाहिए। अक्सर ये खुले आकाश और उन्मुक्त वातावरण के व्यापक परिवेश को जैसे अपने तईं समेटने निकल पड़ते हैं और हूबहू परिस्थितियों का अवलोकन करते हुए प्रतिपाद्य विषयों व अभिप्रेय वस्तुओं को चुन लेते हैं। विभिन्न दृश्यों की त्वरा और कचोट इनके प्राणों को झँझोड़ जाती है। इन छुटपुट जीवन-बिम्बों में से इन्होंने आदिवासियों की चित्रमाला प्रस्तुत की है। जलरंग और तैलरंगों में इन्होंने अनेक 'पोर्ट्रेट' बनाये हैं। इनकी रेखाकृतियाँ भी बड़ी ही सबल व मुखर हैं। अपने लैंडस्केप के कारण वे न सिर्फ़ भारत वरन् लन्दन, पेरिस, न्यूयार्क, रूस और पेकिंग आदि देशों के कलाकारों के निकट सम्पर्क में आये हैं। अबनीन्द्रनाथ ठाकुर द्वारा प्रेरित चीनी-जापानी वाश-टेक-

भगवान बुद्ध का पुनरागमन

नीक के भी इन्होंने कतिपय प्रयोग किये हैं। धार्मिक व पौराणिक विषयों को लेकर भी इन्होंने अपने समर्थ सृजन शिल्प का परिचय दिया है। 'बाल लीला', 'वंशी की पुकार', 'झूला', 'भगवान बुद्ध का पुनरागमन', 'धृतराष्ट्र-गान्धारी', 'शंकर-पार्वती', 'लक्ष्मी का जन्म', 'कुणाल का उपहार', 'प्रतीक्षा', 'देवदासी' आदि इनके सुप्रसिद्ध चित्र हैं जो आर्य-संस्कृति के दिग्दर्शक हैं। 'राम का राज्याभिषेक' और 'जौनसार बावर का लोकनृत्य' विषयों पर उत्तर प्रदेश

अशोक सभा में कुणाल

विधान सभा के लिए इन्होंने दो विशाल भित्ति चित्रों का निर्माण किया। ये कला-समीक्षक भी हैं और 'कला, सौन्दर्य और जीवन', 'आकार कल्पना', 'पदार्थ चित्रण', 'व्यक्ति चित्रण'—आदि इनकी पुस्तकों में गंभीर कला-विवेचन प्रस्तुत हुआ है।

बम्बई, आगरा, बनारस, पटना, देहरादून, मसूरी में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। १९५५ की राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, नई दिल्ली की आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, अमृतसर की इण्डियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, उत्तर प्रदेश कलाकार संघ तथा लखनऊ की हैलेट युद्ध प्रदर्शनी में इनके चित्र प्रदर्शित व पुरस्कृत हुए हैं। 'लक्ष्मी-जन्म' चित्र बम्बई सरकार द्वारा चीन को भेंट दिया गया, 'पालना' शीर्षक चित्र मिस्र सरकार द्वारा खरीदा गया, कैलिफोर्निया और ला एंजेले में भी इनके चित्र सुरक्षित हैं। फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा उत्तर प्रदेश कलाकार

संघ के तो ये सदस्य हैं ही, इन्होंने देहरादून में 'दून कला चक्र' की स्थापना की है जिससे इनके शिष्य-प्रशिष्यों की पुष्ट परम्परा कला को एक निर्दिष्ट दिशा में गतिशील व अग्रगामी बनाने के लिए अथक प्रयत्नशील है।

द्विजेन सेन

देहरादून के दूसरे सुप्रसिद्ध चित्रकार द्विजेन सेन 'बंगाल स्कूल' की निष्ठा के साथ आगे बढ़े हैं। कलाकार के रागात्मक तत्त्वों के साथ शैली-शिल्प का नित्य सम्बन्ध है। उसकी अन्तरंग आत्मा जब रंग एवं रेखाओं में सामंजस्य खोजती है, तो सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण है उसकी अनुभूत सचाई का निरूपण जो कला को सशक्त एवं भास्वर बनाती है। इन्होंने न केवल रंगों, वरन् अन्य माध्यमों जैसे खपच्चियों और बेंत से भी कलाकृतियाँ सृष्ट की हैं। इनके द्वारा स्थापित 'कलाकेन्द्र' इनके सृजन-स्वप्नों का आगार है जहाँ कला जिज्ञासु अनेक छात्र तरह-तरह के प्रयोगों में लगे हैं।

बर्दवान में इनका जन्म हुआ। सामान्य मध्यवर्गीय परिवार, पिता इंजीनियर, जो लड़के को भी अपने पदचिह्नों पर चलाने का स्वप्न देख रहे थे। बच्चे में जन्मजात रुचि थी—कला के प्रति। अकस्मात् पिता की असमय मृत्यु ने एक बोझ इनके मन पर डाल दिया। आर्थिक स्थिति चरमरा उठी, आजीविका की समस्याएँ सामने आईं, इन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा। किन्तु कला की ज्ञानपिपासा बढ़ती गई, साथ ही इनमें निहित कलाकार की उदात्त भावना और साधनामय निष्ठा अधिकाधिक मुखर होकर व्यंजित हुई। यही निष्ठा व प्राणोन्मेष इन्हें शान्तिनिकेतन की ओर खींच रहा था। कला-भवन में आचार्य नन्दलाल वसु के तत्त्वावधान में ये कला-साधना में प्रवृत्त हुए। मास्टर मोशाय की आप्त, अखण्ड और उच्च मनोभूमि में प्रवाहित रसधारा में स्नात इनकी अन्वेषी दृष्टि भी अन्तर्मुखी होती गई और श्रेय-प्रेय की उपलब्धि में लग गई। कला के तपोनिष्ठ आचार्य अवनीन्द्र नाथ ठाकुर के सृजन शिल्प से भी ये अभिभूत हुए। बिनोद बिहारी मुखर्जी की लोकरंजक ग्राम्य शैली का प्रभाव भी इन पर पड़ा।

नवीनता की झोंक में युग-युगों के परिश्रम और साधना से उपलब्ध कला-कसौटियों की अवज्ञा आत्मघात है। सेन परम्परागत आदर्शों के क़ायल हैं, फिर भी नित-नई उद्भावना को प्रश्रय देकर सुन्दर की अवतारणा में इनकी

दृढ़ प्रतीति है। ये अपने दृष्टिकोणों में प्रगतिशील हैं। इनकी प्रेरणा के स्रोत देश की मिट्टी है जहाँ न जाने कितने दृश्यरूप और जीवन-प्रसंग अन्तर को उद्वेलित कर सृजन-चेतना उद्दीप्त करते हैं। जहाँ इन्होंने अनेक भावात्मक चित्र बनाये हैं वहाँ इतस्ततः बिखरे दृश्यों को भी बड़ी ही यथार्थता से उभारा है। आत्म साक्षात्कार की क्षुधा अदृष्ट के प्रति दृष्ट की पुकार है। सृजन की चिनगारी जन रूपों में संश्लिष्ट होकर पुनर्नवीकरण की शक्ति प्रदान करती है। अतीत की नींव पर भावी विकास के स्वर्ण-मन्दिर की प्रस्थापना ही सर्व-सम्मत कसौटी है जो तदाकार परिणति और तन्मयता को उजागर करती है।

द्विजेन सेन ने नव-नव रूपों को क्लासिक अभिव्यक्ति दी है। ऐसे कला-रूपों की छिछली सृष्टि जो दर्शक की हृत्तंत्री को झंकृत न कर सके, जहाँ उसकी भावनाएँ प्रतिभासित न हों और किसी खास लक्ष्य एवं उद्देश्यों की ओर एकोन्मुख न हो सकें वहाँ उसकी साधना भटक जाएगी। अतएव जन-जीवन के बिखरे रूपों को बटोरने की क्षमता द्वारा ही वह अनुभूति लहरों में दूर तक संतरण कर सकता है। मुक्त क्षणों में ही वह सर्वजन हिताय सांगो-पांग सृष्टि कर सकता है। अपनी संघर्षशील परिस्थितियों में इन्होंने देश का कोना-कोना छान मारा, काम की खोज में हर अच्छे-बुरे मौकों से गुज़रे, जन-जन की समस्याओं से इनका साबक़ा पड़ा और यूँ एक नई शिल्प दृष्टि द्वारा इन्होंने स्वयमेव अपना मार्ग खोज लिया।

शिवनंदन नौटियाल

नौटियाल लखनऊ स्कूल के उन वरिष्ठ कलाकारों में से हैं जो न सिर्फ़ चित्र-सृष्टि के विभिन्न रूपायनों में रुचि रखते हैं, वरन् कला को उन्होंने प्रेरित और पुष्ट भी बनाया है। ये उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के संस्थापकों में से हैं और स्थान-स्थान पर आर्ट स्टूडिओ की स्थापना में रुचि रखते हैं। व्याव-सायिक कलाकार के बतौर १९३७ से अनेक माध्यमों में प्रयोग करते आ रहे हैं। विभिन्न शैलियों के उपयोग पक्ष पर इनका ध्यान केन्द्रित है और अनेक प्रदर्शनों व कला-आयोजनों को प्रोत्साहन दिया है। पटना की शिल्पकला परिषद् और अन्य समसामयिक समारोहों व औद्योगिक प्रदर्शनियों में इन्होंने सोत्साह भाग लिया है।

लखनऊ, मसूरी, नैनीताल, नई दिल्ली, बम्बई और श्रीनगर में इन्होंने

व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की है। ये इस 'कला-केन्द्र' के अध्यक्ष और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की प्रशासकीय परिषद् के भूतपूर्व सदस्य रह चुके हैं। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया, ग्वालियर की मध्यप्रदेश कला परिषद, इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी, यू० पी० आर्टिस्ट एसोसिएशन द्वारा इतस्ततः आयोजित वार्षिक समारोहों में ये भाग लेते रहते हैं। आज के युग का प्रभाव कला पर हावी है जिससे नये-नये वाद और प्रणालियों का जन्म हुआ है, किन्तु ये 'सत्यं-सुन्दरम्' के क़ायल हैं। स्वर्गीय एम० एन० राय के सम्पर्क और तत्त्वावधान में इन्होंने कार्य किया है, अतएव उनके दृष्टिकोण और सिद्धान्तों का अनिवार्य प्रभाव इनकी कला पर द्रष्टव्य है।

सुरेश्वर सेन

ये भी लखनऊ के वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। इन्होंने वीरेश्वर सेन और ललित मोहन सेन के तत्त्वावधान में कार्य किया। कुछ समय तक शांतिनिकेतन में भी कला का अध्ययन करते रहे। ये चित्रकार और सुप्रसिद्ध ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। व्यावसायिक कलाकार के बतौर टैक्सटाइल डिज़ाइनों और पाटरी (चीनी मिट्टी के बर्तनों की कला) के विशेषज्ञ हैं। कला और शिल्प की बारीकियों का अध्ययन करने के लिए इन्होंने समूचे भारत का व्यापक दौरा किया है। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से आयोजित यूरोप, पूर्वी एशिया, मध्य एशिया, आस्ट्रेलिया आदि की भारतीय कला प्रदर्शनियों में इन्होंने अपनी कलाकृतियों द्वारा प्रतिनिधित्व किया। मसूरी के कला-प्रदर्शनी समारोह में इन्होंने भाग लिया। ये उत्तर प्रदेश कलाकार एसोसिएशन के संयुक्त सचिव हैं और वहाँ का इन्हें रजत पदक भी प्राप्त हुआ है। इन्होंने अनेक डिज़ाइन प्रदर्शनियों में अपने चित्रों को प्रेषित व प्रदर्शित किया है। ये लेखक और रेडियो वार्त्ताकार भी है।

नंदकिशोर शर्मा

खुर्जा के कलाकार नन्दकिशोर शर्मा लगभग बीस-पच्चीस वर्षों से कला साधना कर रहे हैं। इन्होंने परम्परागत भारतीय शैली में विभिन्न माध्यमों में

चित्र-सृष्टि की है। आलेखन और शिल्प-कारी में विशेष दक्ष हैं। प्रचार-प्रसार व प्रदर्शन से दूर एकान्त साधना ही इनका ध्येय है जहाँ ये अपने प्रयोगों की दुनिया में ही एकनिष्ठ हैं। पॉटरी और पात्र-फुलकारी में तथा तकनीनी ड्राइंग में इन्हें विशेषता हासिल है। इन्होंने नई प्रणालियों को भी अपनाया है और सूक्ष्म अलंकृति और शिल्प-विधियों के विभिन्न प्रयोग किये हैं। कालीन, ट्रे, चीनी वर्तनों के डिज़ाइन, पुस्तक आवरण, फूलदानों तथा कैलेंडरों और सम-सामयिक चित्रण-शिल्प कौशलों को इन्होंने आगे बढ़ाया है और स्थानीय कला को प्रोत्साहित एवं सम्पुष्ट किया है।

आलेखन

दाम्पत्य विहार

वीणावादिनी

विश्वनाथ मेहता

मेहता ने कला के क्षेत्र में क्रान्तिकारी प्रयोग किये हैं। प्रायः एक-दो रेखाओं और स्वल्प रंगों से ही सुन्दर आकृतियाँ ढल आती हैं और मन को मोह लेती है। बड़ा ही अद्भुत है इनका ढंग जिसमें भाव आलम्बन ही प्रमुख है और प्रतिपाद्य विषय

प्यासा ऊँट

नगण्य। आकृतियाँ उभारी गई हैं, पर उनमें नाक-मुंह, आँख-कान, चिबुक-कपोल कुछ भी नहीं हैं, हाथ-पाँवों की उंगलियाँ नदारद हैं, इनका चित्रण अतिशय्य व्यंजक भाव की सान्द्रता को कम करने वाला नहीं है, क्योंकि शारीरिक अवयवों की अपेक्षा यदि दृश्यवस्तु प्राणवान है, अन्तर को आलोड़ित करने वाली है, साथ ही कला के मूलाधारों की दिग्दर्शक है तो यह कलाकार की सफलता की कुंजी है।
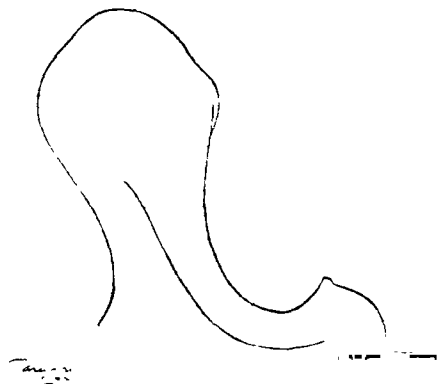
सृष्टि-आदि और चिरंतन रूप

जब सर्वप्रथम

इनके चित्र प्रदर्शनी में रखे गये तो इन नितान्त नए और निराले प्रयोगों ने दर्शकों को एकबारगी चकाचौंध कर दिया। इनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा हुई, यहाँ तक कि फ्रांस की आधुनिक चित्रकला म्यूज़ियम के क्यूरेटर जान कासु ने, जो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कलाविद हैं और कला-समीक्षकों की विश्व-कांग्रेस के प्रमुख क्यूरेटर पाल फेयरां ने इनके कतिपय चित्रों की अत्यन्त सराहना की। प्रतीकवादी पद्धति पर निर्मित 'प्यासा ऊँट', 'सोहाग बिन्दी', 'सचिन्त मंत्रणा', 'सृष्टि' आदि चित्र केवल कुछ इनी-गिनी रेखाओं से सजीव हो उठे हैं।

सन् १९२५ में करयाला (ज़िला जेहलम) में ये पैदा हुए। इनकी जन्म-जात रुचि कला में थी, किन्तु ये उसे सीखने के लिए किसी स्कूल के शिकार न हुए। उन्होंने अपने मौलिक ढंग स्वयं अख़्तियार किये, कला के अनुसंधान में 'सत्यं-सुन्दरम्' का जहाँ संयोग हुआ, जहाँ कुछ अनायास इन्हें मिल गया उसी को कला में रूपायित कर इन्होंने अपने लिए इस दिशा में विशिष्ट स्थान बना लिया है।

कृष्ण खन्ना

कानपुर के कृष्ण खन्ना नव्यवादी कलाकारों में अग्रगण्य हैं। यूरोप की आधुनिक कलाधाराओं का इन पर विशेष प्रभाव है, खासकर 'एक्सप्रेशनिज़्म' और 'एब्स्ट्रैक्ट' प्रणाली को उन्होंने अपनाया है और उसमें नित-नए प्रयोग कर रहे हैं। उनके चित्रों में रूप या आकार का प्राधान्य नहीं, बरन् प्रतीकात्मक भावाभिव्यक्ति ही महत्त्व रखती है। गाढ़े रंग जिसमें रेखाएँ निगूढ़ हैं, फिर भी अमूर्त्त या अरुपवाद की झोंक में उनके विषय ऊलजलूल नहीं बल्कि उनमें भाव की पकड़ और उचित संयोजना है। चित्रों में नितान्त वैयक्तिक निष्पत्तियों के माध्यम से विशेष विधा के दर्शन होते हैं। इनकी रचना-प्रक्रिया स्वतंत्र है किन्तु इनकी सौंदर्य-रुचियों पर यूरोपीय मतवादों का ठोस प्रभाव है।

खन्ना मूलत: पंजाबी हैं, पर वर्षों से कानपुर में रह रहे हैं। इम्पीरियल सर्विसेज़ कालेज, विंडसर, इंग्लैंड के ये रुडियार्ड किपलिंग स्कालर रहे हैं, किन्तु कला का कहीं विधिवत् अध्ययन नहीं किया। वह उनकी स्वयंजात प्रतिभा का परिणाम है। भारत का इन्होंने व्यापक दौरा किया और अनेक बार यूरोप घूम आए हैं। विदेशों की आधुनिक कलाधाराओं का इनका गंभीर

अध्ययन है । राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, १९५६ में नई दिल्ली की आठ कलाकारों की प्रदर्शनी और १९५९ में बीस कलाकारों की प्रदर्शनी तथा अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। दिल्ली, मद्रास और बम्बई में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं और नव्यवादी कलाकारों में अपने लिए एक निश्चित स्थान बना लिया है। साओ पॉलो बियनले, न्यूयार्क की ग्राहम गैलरी, लंदन की गैलरी नं० १, दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और अनेक संग्रहालयों में इनके चित्रों ने प्रतिनिधित्व किया है । लगभग १५ वर्षों से अनेक नव्य धाराओं से समन्वित कलारूपों को बड़े उत्साह और तत्परता से आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे हैं।

विश्वनाथ खन्ना

कानपुर के दूसरे सुप्रसिद्ध कलाकार विश्वनाथ खन्ना शांतिनिकेतन के छात्र रहे हैं, अतएव उनकी कला बंगाल स्कूल की आदर्शवादी परम्पराओं से प्रेरित है, खासकर नन्दलाल वसु के चरणों में बैठकर इन्होंने कला-साधना की है। बंगाल के शस्य-श्यामल वातावरण के प्रभाव ने इनमें निष्ठा जगाई, गुरु-शिष्य के प्रगाढ़ सम्बन्धों ने इनकी मुक्त चेतना को विकसित किया और वहाँ के प्रचुर कला-वैभव में झाँककर इन्होंने नई-नई शैलियों का ज्ञान प्राप्त किया । भारत के प्राचीन मूर्त्ति शिल्प से ये विशेषकर प्रभावित हैं । रूप एवं आकार उभारने की सूक्ष्म प्रक्रियाओं और शारीरिक अवयवों की गढ़न में जो 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के दर्शन होते है तथा इन प्रतिमाओं के निर्माण में आध्यत्मिक ध्येय और पवित्र धार्मिक निष्ठा निहित है, वह अनायास किसी भी कला-जिज्ञासु के समक्ष सृजन शिल्प की विधाओं का खजाना खोल सकती है । राजपूत और मुग़ल कला की रंगमयता भी इनके प्राणों को छू गई है । ये 'कलरिस्ट' के रूप में ख्यात हैं, क्योंकि रंगचयन और आकार-संयोजना में इन्होंने भारतीय परम्परा का सुन्दर निर्वाह किया है ।

खन्ना बन्धन हीन मुक्त साधना के हिमायती हैं, इन्होंने विभिन्न माध्यमों में अभिनव में प्रयोग किए हैं, ख़ासकर शिल्प, ग्राफिक और भित्तिचित्र कला में दक्ष हैं। १९४६ में मेरठ के कांग्रेस अधिवेशन पंडाल की चित्र सज्जा का काम इन्हें सौंपा गया था । लखनऊ, कानपुर, आगरा, बम्बई, कलकत्ता और १९५६ में ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित बौद्ध कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया । अनेक

स्थानों में व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की हैं। ये उत्तर प्रदेश कलाकार संघ और नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं।

भाव मुद्रा

राष्ट्रीय वरेण्य परम्पराओं के पक्षपाती होते हुए भी मृत रूढ़ियों के मोह को कला की प्रगति में बाधक मानते हैं। मानव-चिन्तन के कृत्रिम विकास के साथ-साथ कला-प्रणालियों को अग्रसर करने का काम ही कलाकार के लक्ष्य की कसौटी होनी चाहिए जो उसके स्वस्थ मानदण्डों की मास्टर कुंजी है। कुछ अर्से तक कानपुर के विद्या-मन्दिर एवं महिला इण्टर कालेज में काम करने के पश्चात् ये सन् १९५६ से श्री सुरेन्द्रनाथ सेन बालिका विद्यालय डिग्री कालेज में ड्राइंग व पेंटिंग विभाग के अध्यक्ष के बतौर कार्य कर रहे हैं। इनके नव्यतम प्रयोग लैण्डस्केप हैं जिनमें रंग एवं रेखाओं की सशक्त संयोजना द्वारा ये तदनुरूप वातावरण उत्पन्न करने के लिये चेष्टाशील हैं और यों मौलिक स्थापनाओं और निजी वैयक्तिक शैली को परिपुष्ट बनाने के साथ-साथ कला के विशिष्ट दायित्व को वहन करने को उद्यत हैं।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

विभिन्न प्रवृत्तियों की प्रगति की दृष्टि से उत्तर प्रदेश के कलाकार किसी से पीछे नहीं हैं। प्रचार-प्रसार और आत्म विज्ञापन से दूर कितने ही नये-पुराने कलाकार बहुमुखी कला-साधना में प्रवृत्त हैं।

सी० बर्त्तारिया—डी० ए० वी कालेज, कानपुर के ड्राइंग और पेंटिंग विभाग के अध्यक्ष सी० बर्त्तारिया लगभग १९४३ से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। चित्रों में इन्होंने विभिन्न प्रयोग किये हैं, किन्तु मूर्त्तिकला में भी इनकी विशेष दिलचस्पी है। स्वान्तःसुखाय इन्होंने अन्तरंग चिन्तन को प्रतिमाओं की विभिन्न भंगिमाओं में साकार किया है। न सिर्फ़ इन्होंने कला सर्जना की, वरन् कला के आयोजन एवं उत्थान में भी पर्याप्त योगदान किया है। इलाहाबाद की फाइन आर्ट्स एकेडेमी के ये डायरेक्टर रहे है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट का डौली कुर्सेतजी पुरस्कार प्राप्त किया, मेयो स्कालरशिप के विजेता थे और १९४२ में इनके द्वारा निर्मित छः चित्र इंग्लैण्ड की महारानी एलिज़ाबेथ को भेंट किये गए।

इन्होंने इलाहाबाद—कानपुर जैसे अनेक स्थानों में अपनी खुद की प्रदर्शनियाँ की है, साथ ही अन्य समसामयिक कला प्रदर्शनियों में भी भाग लेते रहे हैं। बम्बई और पूना की आर्ट सोसाइटी से सम्बद्ध हैं, उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के संयुक्त सचिव हैं, आगरा विश्व विद्यालय की विषय समिति और इलाहाबाद के चित्रकला और मूर्त्तिकला के बोर्ड आफ एज्यूकेशन के सदस्य हैं। ग्राफिक कला के विशेषज्ञ है और नित-नई पद्धतियों द्वारा इन्होंने कला-क्षेत्र में अपनी बहुमुखी सेवाएँ प्रदान की है।

केशव द्विवेदी—'पोर्ट्रेट' और 'मिनियेचर' (लघु चित्रण) में विशेष दक्षता रखते है। बम्बई में इन्हें कला प्रशिक्षण मिला, परिश्रम और अध्यवसाय से आगे बढ़े और नित-नये प्रयोगों द्वारा कला शैलियों को माँजा। व्यावसायिक कलाकार के बतौर नेपाल मे अर्से से काम कर रहे हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा ये पुरस्कृत हो चुके हैं। इसके अतिरिक्त समसामयिक भारतीय कला एवं शिल्प प्रदर्शनी, आलइंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, नेपाल की ललितपुर कला एवं शिल्प प्रदर्शनी में भी ये भाग ले चुके हैं, साथ ही बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, उत्तर प्रदेश कलाकार संघ, बनारस कलाकार संघ और नेपाल आर्ट एसोसिए-

शन के सदस्य हैं।

बद्रीनाथ आर्य—चित्रकार और मूर्त्तिकार हैं। इन्होंने लखनऊ गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया और वहीं लेक्चरार नियुक्त हो गए। लगभग १९५९ से कला-साधना कर रहे हैं। बम्बई, कलकत्ता, मैसूर, लखीमपुर, अलीगढ़, बनारस, ग्वालियर आदि की प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं। ये उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य हैं।

जगदीश स्वरूप गुप्ता—इन्होंने लखनऊ आर्ट कालेज से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया, ख़ासकर दृष्टान्त चित्रों एवं शिल्प चित्रण में कुशल हैं। पोस्टर डिज़ाइनर के रूप में मशहूर हैं और कई बार पुरस्कार प्राप्त कर चुके हैं। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से आयोजित प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी में रजत व स्वर्णपदक तथा अफ़गानिस्तान कला प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। अनेक सार्वजनिक और निजी कला-संग्रहालयों में इन्होंने प्रतिनिधित्त्व किया है। आजकल लखनऊ गवर्नमेंट प्रेस के चीफ आर्टिस्ट और डिज़ाइनर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

हरिहर लाल मेढ़—परम्परागत शैली के कलाकार हैं। रंग एवं रेखाओं के उचित संयोजन द्वारा आज के अध्यापक के सम्मुख जिम्मेदारी है जो आधुनिक वोध और नित-नये पैमानों को एक विशेष दिशा में सुस्थिर करने की सूझ-बूझ और मौलिक प्रतिभा का धनी होना चाहिए। मेढ़ भारत की महान् सांस्कृतिक उपलब्धियों को मौजूदा भौतिक सभ्यता की निर्मम चोटों से वचाना चाहते हैं। लखनऊ गवर्नमेंट कालेज से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। पैगन, बर्मा में भी प्रशिक्षण प्राप्त किया। उत्तर प्रदेश सरकार की ओर से डेपुटेशन पर शांतिनिकेतन में इन्हें आगे अध्ययन के लिए भेजा गया। सरकारी छात्रवृत्तियों का उपयोग कर इन्होंने बहुमुखी दिशाओं में कार्य किया है, ख़ास कर लैकर पेंटिंग में इन्होंने विशेष रूप से प्रशिक्षण प्राप्त किया है। १९२८ में नागपुर की अखिल भारतीय फाइन आर्ट्स प्रदर्शनी, १९२९ में नैनीताल की फाइन आर्ट प्रदर्शनी, शिमला की आल इंडिया फाइन आर्ट प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुए। १९३५ में लंदन की बर्लिंगटन हाउस भारतीय कला प्रदर्शनी में भी इन्होंने भाग लिया। काशी के भारत कला भवन, इलाहाबाद, लखनऊ, मैसूर, मद्रास, त्रावणकोर तथा अन्यान्य संग्रहालयों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। लखनऊ की गवर्नमेंट म्यूज़ियम में 'मेघदूत' के तेरह

चित्रों की सीरीज़ का सेट और लखनऊ के कौंसिल हाउस में इनके द्वारा निर्मित लोकमान्य बाल गंगाधर तिलक के विशाल 'पोर्ट्रेट' को ससम्मान स्थान मिला है। लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज में ये आजकल आर्ट्स विभाग के अध्यापक हैं।

नित्यानंद मोहपात्र—लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में लेक्चरार हैं। व्यावसायिक कलाकार के बतौर इन्होंने उड़ीसा की लोक कला की दिशा में विशेष अनुसंधान किया है। उड़ीसा आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स डिज़ाइन सेंटर में भी ये कुछ समय तक कार्य करते रहे। भारत की प्रायः सभी प्रदर्शनियों में इन्होंने स्वनिर्मित उड़ीसा की कलाकारिता के नमूने सामने रखे हैं। उत्कल शिल्पकला संघ के ये सदस्य हैं।

विजयसिंह मोहिते—बचपन से ही कला की स्वतन्त्र साधना कर रहे हैं। शुरू से ही शंकर वीकली की प्रतियोगिताओं और कलकत्ता, ग्वालियर, भोपाल तथा राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी मे भाग लिया। कला की सूक्ष्मताओं की खोज में विशेष उत्साह है और मुक्त प्रयोगों द्वारा नई दिशा की ओर उन्मुख होने की बलवती ईप्सा। उदीयमान प्रतिभा के तरुण शिल्पी हैं जिनसे भविष्य में आशाएँ हैं।

अवतार सिंह पंवार—चित्रकार और मूर्त्तिकार हैं, खासतौर से भित्तिचित्रण और म्यूरल में विशेषता हासिल की है। शांतिनिकेतन में इन्होंने शिक्षा पाई और वहीं से फाइन आर्ट में डिप्लोमा लिया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, ग्वालियर की मध्य प्रदेश कला परिषद, उत्तर प्रदेश कलाकार संघ द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में भाग लिया है, साथ ही शांतिनिकेतन, लखनऊ, दिल्ली, देहरादून में व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की है। १९५२ में कलकत्ता और १९५४ में कल्यानी के अखिल भारतीय कांग्रेस समिति के अधिवेशन पंडालों में सहयोगी कलाकार के रूप में इन्हें सुसज्जा कार्य सौंपा गया। जबलपुर के शहीद स्मारक की म्यूरल पेंटिंग और नई दिल्ली में बिड़ला हाउस की भित्तिचित्र सज्जा में भी योगदान देने के लिए इन्हें आमन्त्रित किया गया। आजकल ये लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में माडलिंग और मूर्त्तिशिल्प विभाग के सहायक प्राध्यापक हैं।

भुवन लाल शाह—व्यावसायिक कलाकार के बतौर वर्षों से कला साधना कर रहे हैं। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य हैं और इन्होंने दिल्ली,

ग्वालियर तथा उत्तर प्रदेश कलाकार संघ की ओर से आयोजित विभिन्न कला-प्रदर्शनियों में भाग लिया है। उत्तर प्रदेश, बिहार, उड़ीसा, मैसूर में कलात्मक एवं सास्कृतिक अनुसंधान की दृष्टि से व्यापक दौरा किया है और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में प्रतिनिधित्व किया है।

एम. एन. तक्रू—मूर्त्तिकार और चित्रकार हैं। इन्होने लखनऊ गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। आजकल स्थानीय बीरबल साहनी इंस्टीट्यूट में कलाकार हैं। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के अवैतनिक मंत्री और सार्वजनिक उद्देश्यों की पूर्ति के लिए कला-वस्तुओं की राज्यीय सलाहकार समिति के सदस्य हैं। मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी तथा अन्यान्य प्रान्तीय प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं।

योगेन्द्रनाथ वर्मा—लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से कमर्शियल आर्ट में इन्होने डिप्लोमा लिया। १९५२ से व्यावसायिक कलाकार के बतौर वहीं बसकर कला की स्वतन्त्र साधना में प्रवृत्त हैं। ललितमोहन सेन इनके गुरु रहे हैं और अन्य वरिष्ठ कलाकारों से भी प्रेरणा प्राप्त की है। ये उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य हैं और १९५४ में उक्त संघ की ओर से लखनऊ में आयोजित प्रदर्शनी में भाग लिया है। आजकल लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में लेक्चरार हैं।

सुखबीर संघल—चित्रकार और मूर्त्तिकार हैं। लगभग २५-३० वर्षों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर स्वतन्त्र साधना कर रहे हैं। लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने डिप्लोमा लिया, किन्तु किन्हीं ख़ास मतवादों की चौहद्दी में सीमित न रहकर इन्होंने कला-प्रणालियों की समृद्धि में योगदान किया है। चित्रकला, मूर्त्तिकला और अन्य कलाओं के प्रशिक्षण एव अभ्युत्थान की दृष्टि से इन्होंने 'कला भारती' संस्था की स्थापना की है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और १९३७, १९३९, १९४१ की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। १९४६ में एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स में स्वर्णपदक और १९४३ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के संस्थापक सदस्यों में से ये हैं और कला-प्रशिक्षण तथा हर प्रकार की कलाओं के उत्थान में बेहद रुचि रखते हैं।

मुकुन्द देव घोष—उदीयमान प्रतिभा के व्यावसायिक कलाकार हैं। इन्होंने मद्रास से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। आजकल इलाहाबाद में गवर्नमेंट इंटरमीडिएट कालेज में शिक्षक के पद पर नियुक्त हैं। भारत के सुदूर प्रदेशों का इन्होंने व्यापक दौरा किया है। अपने भ्रमण के दौरान कितने ही चित्र और स्केच तैयार किये। प्रायः सभी बड़े नगरों में इनके काम की सराहना हुई। एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की वार्षिक प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहे हैं।

श्रीराम वैश—सुप्रसिद्ध चित्रकार और मूर्त्तिकार हैं। ग्राफिक और शिल्पकला के विशेषज्ञ हैं। इन्होंने लखनऊ गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से डिप्लोमा और माडलिंग में सर्टिफिकेट लिया। उत्तर प्रदेश सरकार की छात्रवृत्ति पर ये दो वर्षों तक यूनाइटेड किंगडम अमेरिका में कला का शोध कार्य करते रहे। असित कुमार हाल्दार और देवी प्रसाद राय चौधरी के साथ इन्होंने अनेक चित्रण कार्यों को सम्पन्न किया। विभिन्न प्रणालियों के हामी और देशी-विदेशी परम्पराओं के उत्थान में अभिरुचि रखते हैं। भारत में आयोजित प्रायः सभी प्रमुख कला-प्रदर्शनियों में सोत्साह भाग लेते रहे हैं। लन्दन और अमेरिका की कला प्रदर्शनियों में भी इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के उपाध्यक्ष हैं और नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के कला-आयोजनों में सहयोग प्रदान करते रहे हैं। आजकल वाराणसी में बी० पी० के० गवर्नमेंट पालिटेकनीक के प्रिंसिपल हैं।

अज़मत शाह—अलीगढ़ के सुप्रसिद्ध नव्यवादी कलाकार हैं। परम्परागत सीमाओं का अतिक्रमण कर आधुनिकता के क़ायल हैं अर्थात् पूर्वाग्रहों को प्रश्रय न देकर नये दृष्टिकोण और गहरी मानसिक प्रखरता के साथ अभिनव रचना विधान और दृष्ट वस्तुओं को नये तौर-तरीकों से प्रस्तुत करने के हामी हैं। नई कल्पना पद्धति से नई दिशाओं की ओर अभिमुख होने से क़तराना नहीं चाहिए। इन्होंने जलरंगों एवं तैलरंगों में अरूप पद्धति पर अनेक चित्रों का निर्माण किया है, पर अरूप होते हुए भी उनमें कुछ न कुछ आकार उभर आए हैं। देशी-विदेशी कला प्रणालियों से प्रभावित इन्होंने विभिन्न प्रयोग किये है और वर्षों के परिश्रम एवं अध्यवसाय से कला क्षेत्र में अपना विशिष्ट स्थान बना लिया है। लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने डिप्लोमा लिया। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, मैसूर

की दसैरा प्रदर्शनी में इन्हें पाँच बार प्रथम पुरस्कार और १९५४ में रजत पदक, मध्य प्रदेश कला परिषद का प्रथम पुरस्कार, १९५८ में उत्तर प्रदेश कलाकार संघ से स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ। अलीगढ़ और दिल्ली में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की है। इसके अतिरिक्त आल इंडिया आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित पूर्वी एशिया और सुदूर पूर्व एशिया के मुल्कों की प्रदर्शनियों में भाग लिया है। ये उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य और कला एवं संस्कृति के उत्थान के सहायक आयोजनों में नियमित रूप से भाग लेते रहे हैं। अलीगढ़ मुस्लिम यूनीवर्सिटी के महिला कालेज में फाइन आर्ट के लेक्चरार हैं।

रघुनंदन शर्मा—मूर्त्तिकार और चित्रकार हैं। जयपुर के आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स स्कूल से पेंटिंग और मूर्त्तिकला में इन्होंने डिप्लोमा लिया। देहरादून और बनस्थली में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनी की और स्थानीय कला-आयोजनों में सोत्साह भाग लेते रहते हैं। इन्होंने 'डिस्प्ले' और सुसज्जा व प्रदर्शन की सूक्ष्मताओं का गहरा अध्ययन किया है और ऐसे अनेक कार्य सम्पन्न किये हैं। मसूरी की 'मानव भारती' संस्था के प्रशिक्षण केन्द्र से सम्बद्ध रहे हैं।

एम. नारायण—सहारनपुर के डाकतार प्रशिक्षण केन्द्र के कलाकार हैं। कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स से इन्होंने डिप्लोमा लिया। व्यावसायिक कलाकार के बतौर वर्षों तक कला-साधना करते रहे। ये नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य है और उसके अनेक सामयिक आयोजनों तथा कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और ग्वालियर की मध्य प्रदेश कला परिषद की प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं।

प्रकाशचन्द्र बरुआ—मेरठ के दिगम्बर जैन कालेज के ड्राइंग और पेंटिंग विभाग के अध्यक्ष रह चुके है। लगभग १९४८ से कला-साधना में प्रवृत्त हैं और बहुमुखी दिशाओं में कार्य किया है। ग्राम्य जनजीवन से प्रभावित यथार्थवादी कलाकार है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य है और समसामयिक प्रदर्शनियों एवं स्थानीय कला-आयोजनों में दिलचस्पी रखते हैं। आजकल सहारनपुर के जे० पी० जैन पोस्टग्रेजुएट कालेज में कला विभाग के अध्यक्ष हैं।

डी० सिल्वा र्यूडोल्फ—लखनऊ से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया, ख़ासतौर से लाक्षणिक पद्धति पर लैंडस्केप और पोर्ट्रेट पेंटिंग की दिशा

में सराहनीय कार्य किया है। मैसूर, बनारस और लखनऊ की वार्षिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य है। आजकल झांसी में व्यावसायिक कलाकार के बतौर स्वतन्त्र साधना कर रहे हैं।

पूर्णजय बैनर्जी—उत्तर प्रदेश सरकार की एकोनोमिक बोटेनिस्ट विभाग से सम्बद्ध हैं। इन्होंने सघर्षों में कला को अपनाया और दूर-दूर भटककर आगे बढ़े। कला के उत्थान में इनका अविस्मरणीय योगदान है।

डी. पी. धूलिया—अपनी कलात्मक अभिव्यक्ति में ये कुछ ऐसी प्राचीन-अर्वाचीन शैलियों के समन्वित प्रभाव को लेकर चले हैं कि इन्होंने निजी दिशा अपना ली है। परम्परागत पद्धति पर इनके प्रतीक उभरे, उनमें छाया-प्रकाश और रगों की सौम्यता ने विचित्र रहस्यमयता की व्यंजना की, कहीं-कहीं रंग-रेखाओं का अनुपात वाह्य रूपों को सार्थक करता हुआ अन्तर्सत्य का दिग्दर्शक है। इनमें एक ओर तो अतीत की असंख्य मान्यताओं और परम्पराओं की निष्ठा है तो दूसरी ओर आधुनिक कला को गहराई से जाँच-परख का नवीन आलोक में आत्मसात् करने का आग्रह। 'लैंसडाउन में बर्फ का नज़ारा' दृश्य चित्र में हिमालय के रंजक वातावरण को सिरजा गया है, किन्तु अपनी रहस्य-वादी प्रवृत्ति के कारण इन्होंने कुहरे की कुहेलिका में उसके ज्वाज्ज्वल्य प्रकाश को बाँध दिया है।

'पहाड़ियों में सान्ध्य प्रकाश' शीर्षक एक दूसरे चित्र में पर्वतीय सुषमा की वैचित्र्य व्यंजक चारुता को भी कुछ ऐसी ही रहस्यमयी गरिमा प्रदान की गई है और 'श्रीनगर में अलकनदा घाटी' चित्र में रम्य रूप-विधान और दृश्य चित्रण की सक्षमता का दर्शन हुआ है। इन्होंने अनेक पोर्ट्रेट और छवि अंकन भी किये है। अनुकृति चित्रों में 'शांति का राजकुमार' बुद्ध पर आँका गया चित्र बहुत प्रसिद्ध है। सैकड़ों चित्रों के विषयों को देखकर इनकी बहुमुखी प्रतिभा का आभास होता है, खास कर रगों की त्वरा और मौलिक प्रयोगों के कारण इन्होंने सराहनीय कार्य किया है। ये देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं और समय-समय पर आयोजित कला-प्रदर्शनों एव आयोजनों में सम्मानित एवं पुरस्कृत भी हुए हैं।

एन. एन. राय—नव्य शैली के कलाकारों में इनका विशेष स्थान है। ये 'इम्प्रेशनिस्ट' पद्धति पर चित्र-सृजन करते है। न्यून रेखाओं में बड़ी तीखी रंग-नियोजना द्वारा प्रतीकों को उभारते हैं जो इनकी गहरी पैठ और मौलिक सूझ-बूझ का परिचय देते हैं। 'समुद्र और तूफ़ान', 'गप्पबाजी', 'ईसा मसीह', 'चाँद

का कलंक', 'अनचीन्ही', 'चाँद और नगर', 'न्यूड और रानी', 'दो बहनें', 'अपराजिता', 'सूरजमुखी' आदि इनके प्रसिद्ध चित्र हैं। इन्होंने विवस्त्र स्त्रियों के 'न्यूड' और उनके नग्न सौन्दर्य की विभिन्न भावभंगियों को नई पद्धति से आँकने में विशेष दिलचस्पी ली है।

ये व्यावसायिक कलाकार के बतौर लखनऊ में कुछ समय से साधना कर रहे है, पर इधर इनके कृतित्व में नई ढंग की परिपक्वता उभर आई है। अपने अथक लगन और अध्यवसाय से अनवरत प्रयोगों की जिज्ञासा को इन्होने सुस्थिर और ठोस रूप प्रदान किया है।

विजय चक्रवर्ती—नये कलाकारों में विजय चक्रवर्ती भी अपना स्थान बना चुके है। उन्होंने नये ढंग के अनेक सुन्दर चित्रों का निर्माण किया है, ख़ासकर जलरंगों में इन्हें विशेष दक्षता प्राप्त है। इनके स्ट्रोक्स काफ़ी प्रभावशाली हैं। प्रतीक में आधुनिक पद्धति अख्तियार करने के बावजूद भी सुसंयोजना और सौष्ठव है। जन रुचि को उत्पन्न करने के लिए इन्होंने रेस्त्राँ, काफी हाउस आदि खुले स्थानों में चित्र प्रदर्शनियाँ की हैं। उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, राजस्थान और अन्यान्य समसामयिक कला-प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ के सदस्य हैं।

जयकृष्ण—ग्राफिक कला के विशेषज्ञ हैं और नवीन शैली एवं विचित्र आकार एवं रंग-संयोजना के प्रयोक्ता। शैलीगत बन्धनों और कृत्रिम पुनरावृत्तियों से परे इन्होने उन्मुक्त सर्जना को प्रश्रय दिया है और विभिन्न ग्राफिक चित्रों में आकारों के रोचक विधान प्रस्तुत किये हैं। आजकल लखनऊ कला महा विद्यालय में अध्यापक है।

इसके अतिरिक्त **हसन शहीर, सुरेन्द्र राजन**, **पी. सी. लिटिल, जगमोहन चोपड़ा, मनहर मकवाना, जयन्त पारीख, गौरीशंकर** आदि कुछ तरुण प्रतिभाएँ नव्य प्रयोगों की दिशा में उभर रही है जिन्होंने पुरातन पूर्वाग्रहों और रूढ़ साधनों पर अवलम्बित कला-व्यंजना के दायरे को व्यापक बनाने का अभियान शुरू किया है। उत्तर प्रदेशीय कला नई-नई चित्रण परिकल्पना में नये दौर से गुज़र रही है। नये उत्साही कलाकारों के कई ग्रुप लखनऊ, इलाहाबाद, बनारस में सक्रिय हैं जो कला-दुन्दुभि के उद्घोष के साथ आगे बढ़ रहे हैं।

राजस्थान के कलाकार

राजस्थानी कला ने अपनी आन्तरिक सम्पन्नता के कारण भारतीय कला-सम्पद् में जो अपार वृद्धि की, कल्पना मानस में जो अद्भुत रंगीनी भर दी और कला की आँख को जो पैनी दृष्टि प्रदान की, उससे यहाँ की एक विशिष्ट परम्परा सामने आई। कला के विकासशील तत्त्वों के मुख्यतः दो रूप यहाँ विकसित हुए। एक तो युग के सत्याभामों और अन्तर की सौन्दर्य-मधुरिमा से ओतप्रोत चित्र-सृजन, जिसमें मुगल कला और राजपूत कला की विभिन्न शैलियों का समन्वित प्रभाव, साथ ही हृदयग्राही रूप-सृष्टि, आकर्षक रंग-योजना और दृश्यों का सूक्ष्म प्रतिपादन द्रष्टव्य है। राग-रागिनियाँ, ऋतु-परिवर्त्तन, बारहमासा, नायिकाभेद, राम-कृष्ण की विविध लीलाएँ, प्रणय और श्रृंगार व्यंजक दृश्य, राजा-रानियों की विभिम्न भंगिमाएँ, ढोलामारू, मधु-मालती, पृथ्वीराज रासो, रामायण, महाभारत और पौराणिक कथाख्यान, पंचतंत्र, बिहारी सतसई, गीत गोविंद, भ्रमर गीत और रीतिकालीन लाक्षणिक पद्धतियों पर निर्मित ऐसे प्रचुर चित्र उपलब्ध हैं। जयपुर, जोधपुर, बीकानेर, जैसलमेर, अलवर, नाथद्वारा, किशन गढ़ और कोटा-बूँदी शैलियाँ यहाँ की कला के अविभाज्य अंग है।

दूसरी धारा लोक कलाओं की थी जिसमें भित्तिचित्रों का विशेष प्रचलन था। राजप्रासादों और विशाल भवनों के मुख्य कक्षों की दीवारों को चित्रांकित किया जाता था जिसमें विभिन्न माध्यमों व सृजन प्रणालियों को प्रश्रय मिला। इसके अतिरिक्त स्थापत्य कला एवं मृत्तिका शिल्प, पत्थर और धातु प्रतिमाएँ, तरह-तरह के खेल-खिलोने, दस्तावेज़, पत्र, सिक्के, शिलालेख, शस्त्र, वस्त्र, चंदन, हाथीदाँत और सींग की कारीगरी, मीनाकारी, पच्चीकारी, सोने-चाँदी पर जड़ाऊ काम, बेलबूटों और फूलों का अलंकरण, सलमे-सितारे और कलबत्तू का काम, साँचे व ठप्पे की छपाई, तरह-तरह के बंधेज की रंगाई, फूलदान, हुक्के, सुराहियाँ, तश्तरियाँ, प्याले व अन्य पेय पात्र, डिब्बे-सन्दूकचियाँ, तराशी और तारकशी आदि कतिपय माध्यमों में मुखर हुई।

चित्रण शिल्प और लोक शिल्प की यह परम्परा अत्यन्त प्राचीन है जिसका काल निर्णय कभी-कभी कठिन हो जाता है। व्यक्तित्व व्यंजक नहीं बल्कि

भाव और सौन्दर्य पक्ष का ही इनमें प्राधान्य है अर्थात् यहाँ के कलाकारों ने कभी भी अपनी प्रसिद्धि की चिन्ता नहीं की बल्कि अपने आप को कला की साधना में लय कर दिया, फलतः यहाँ की कला सदैव लोकजीवन को स्पर्श करती रही। आधुनिक यंत्र युग के दौर में इस उदात्त भावना का ह्रास तो हुआ, पर फिज़ाँ न बदली। १९६० में 'जयपुर स्कूल आफ आर्ट' की स्थापना हुई तो चित्र शिल्प और कारुशिल्प की अभिनव प्रणालियाँ सामने आईं। सुप्रसिद्ध कला-विशेषज्ञ थामस एच० हैण्डले ने जयपुर निर्मित वस्तुओं को प्राचीन मिस्र के उत्कृष्ट कला-नमूनों के समकक्ष रखा था। उस समय कुशल कलाकार विश्वेश्वर ने कला के नये-नये फार्मूलों पर प्रकाश डालते हुए उसकी बारीकियों पर सर्वप्रथम दृक्पात किया।

बंगाल के पुनरुत्थान आन्दोलन के वैशिष्ट्य को लेकर शैलेन्द्रनाथ दे का जयपुर में आगमन एक नये दौर का परिचायक है। उनके शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा विविधमुखी प्रवृत्तियों के प्रभाव से अभिभूत तो हुई, किन्तु उन्होंने राजस्थानी संस्कृति को न छोड़ा। मौजूदा कलाकार, जो आज कला-साधना में प्रवृत्त हैं, पश्चिमी चश्मे से नहीं, बल्कि अपनी दृष्टिभंगी से मौलिक कला-कसौटियों को पुष्ट एवं प्रौढ़ बनाकर कला-पथ प्रशस्त करने में चेष्टाशील हैं। आज की कुत्साओं, विसंगतियों, विषमताओं और विरोधाभासों से यहाँ की कला अछूती है, न ही यहाँ के कलाकारों का सत्य एक संप्रेषणहीन आवेग-मात्र है, वरन् वे आज भी कला के सही उपयोग के हामी हैं, यही कारण है कि वे आन्दोलनापेक्षी नहीं, वरन् स्वीकृत निषेध को नकार कर जन-जीवन से ही अधिकतर प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं।

रामगोपाल विजयवर्गीय

राजस्थानी कलाकारों में सर्वाधिक प्रसिद्ध रामगोपाल विजयवर्गीय को रंग और रेखाओं का जादूगर कहना अनुचित न होगा। कितनी ही आकृतियाँ, रूपाकार, छवियाँ और प्रतीक प्रकट हुए—जैसे उनके अन्तर का यह ज्वार बरबस फूट पड़ा और उसने एक नई दुनिया की सृष्टि कर डाली। विभिन्न भंगिमाओं में अंकित सुकुमारियाँ—जिनकी सुडौल मुखाकृति, आकर्षक रूप, लाल ओंठ, विशाल नेत्र और वस्त्रालंकारों से सुसज्जित अंग-प्रत्यंगों की लुनाई बरबस मन को मोह लेती है, वीरता और ओज भरे पुरुष पात्र जिनमें राजस्थानी वेषभूषा की दिग्दर्शक कलंगीदार पगड़ी, साफा, अंगरखा, धोती—मानो मुखर

प्राणों में विहँसता स्वर्णातप के ताने-बाने में सत न गुम्फित, आत्मगरिमा में जाग्रत ये शाश्वत अमर प्रतीक उस आनन्दलोक की सृष्टि हैं जिसे जगती का कल्मष छू नहीं पाता। लगता है—जैसे महानील की रूपहली ऊँचाई को अपने अतः प्रकाश से आलोकित करती सौंदर्य की दीपशिखाएँ ये यौवनोन्मत्त युवतियाँ अपनी पगध्वनि से दिग्दिगन्त को गुंजरित कर देंगी। कैशोर प्रणय का उन्मेष न
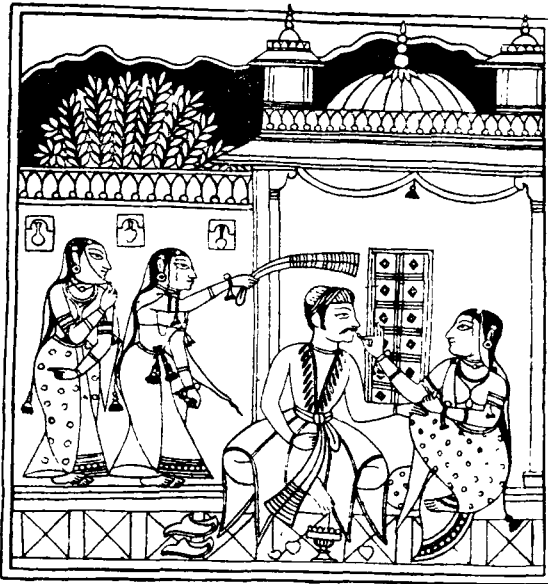
पान का बीड़ा

जाने कितनी रंग एवं रेखाओ में सिहर उठा है। ऐसी कितनी ही अनाहूत और अचिन्त्य भावभंगियों को इन्होंने अपने सृजन-शिल्प का विषय बनाया है।

इनकी कला की विशेषता है शाश्वत तथा उदात्त के प्रति एक गंभीर आकर्षण, चिरन्तन मान्यताओं के प्रति अटूट निष्ठा और सार्वलौकिकता के प्रति एक असंदिग्ध आग्रह। वस्तु जगत् और भाव जगत्, नवीन परिवेश और सुदूर अतीत में सम्बन्ध स्थापित कर इन्होंने अपनी तूली से रँग दिया है। इनके शैलीगत और व्यंजनागत प्रयोगों मे नये सत्यों का यथार्थ बोध भी है, साथ ही ऐसे प्रयोगों को वे साध्य न मानकर साधन मानते है अर्थात् कला का साध्य यथार्थताओं का साधारणीकरण करके आनन्द की सृष्टि करता है।

सामान्य परिवार में जन्मा, दर-दर की ठोकर खाकर रास्ता बनाने वाला यह कलाकार जीवन सघर्षो से जूझते हुए कला की ओर उन्मुख हुआ। उसके अपने पुत्र के निम्न उद्गार—

चंवर धारिणी

"उसके चित्रों में कालिदास के शब्दों का साकार रूप है। जयदेव के कृष्ण राधा की रति-क्रीड़ाओं का सौन्दर्य मूर्तिमान् है। बिहारी के गूढ़ दोहों की सुलझी हुई चित्रांकित अभिव्यक्ति है। रीतिकालीन कवियों की नायिकाओं के विविध भेद हैं। राग-रागिनियों के चित्रमय स्वरूप हैं। यक्ष का संदेश लेकर जाने वाले बादल के साथ-साथ उसकी तूलिका भी यक्षिणी के वियोग की कल्पना कर के चकित-सी हो जाती है और तब बाण की 'कादम्बरी' की नीलमणि के समान देह वाली चाण्डाल-कन्या के सौंदर्य को चित्रित करने में उसकी तूलिका निमग्न हो जाती है। उसकी कल्पना कभी ख़ैयाम की फ़िलासफी को ओर प्रधावित होती है, और कभी तुलसी और सूर की भक्ति का अवगाहन करती है। उसके चित्रों में वर्तमान साधारण जीवन के चक्र-व्यूह और क्षणभंगुर कल्पनाओं के विकृत स्वरूप नहीं हैं।

उसके लेखों में कला शांति की जननी है, कला जीवन के जलते मरुस्थल में अमृत वृद्धि है, कला ईश्वर का स्वरूप है, और मोक्षदायिनी है, कला सत्य, शिव ओर सुन्दर का प्रतीक है।

सावन की घटाओं को निर्झरों में फूट बहते देख कर मुग्ध होने वाला, वसन्त में शृंगार किये हुए प्रकृति का सौन्दर्य निरखने वाला, गर्मी की झुलसा देने वाली आग का रूपमय चित्र बना देने वाला, जाड़े की ठंडी रातों में वियो-

गिनियों के हृदय की पीड़ा को हृदय में साकार कर लेने वाला, सर्दी से आक्रान्त बे-घरबार ग़रीबों की आह समझने वाला, कवि-हृदय में उठने वाली समस्त कल्पनाओं को चित्रमय कर देनेवाले वेग को अँगुलियों में रोक कर शहर के एक मकान की चहारदीवारी में क़ैद, जहाँ वह प्रकृति का कोई रूप नहीं देख सकता, जीवन के दिन समाप्त कर रहा है।

राजस्थानी वधू

प्रत्येक रात का अँधेरा उसके जीवन में नित्य आनेवाले उजाले को अपने अंक में लुप्त कर लेता है और वह सब-कुछ जानता हुआ भी मौन, जीवन के अमूल्य क्षणों को उनकी भेंट कर, लापरवाही से रात को रजाई लपेट कर सो जाता है।

जीवन के विस्तृत क्षेत्र में किसी को अवकाश नहीं कि उसके विशाल हृदय को टटोल कर दुनिया के लिए उससे कुछ लें। कला के मर्म को समझने वाले किसी अज्ञात हृदय में अवश्य उस कलाकार के एक-एक जाने वाले क्षण के प्रति भय और उदासीनता का आतंक छा जाता है।'

एक और मुखच्छवि

यों जीवन के कंटकाकीर्ण पथ पर संघर्षों से जूझते हुए ये आगे बढ़े है। बालेर इनकी जन्म भूमि थी, पिता वहाँ के ठाकुर के कामदार और व्यवसायी प्रवृत्ति के व्यक्ति थे. बच्चे को वकील बनाने का स्वप्न देख रहे थे। पर बालक की रुचि प्रारम्भ से ही कला की ओर थी। खड़िया और कोयले से दीवारों पर आकृतियाँ खींचना उसे अधिक रुचिकर था। उसकी दूसरी 'हाबी' थी रंगीन तस्वीरों को इकट्ठा करना। कपड़े के थानों पर चिपकी तस्वीरें या कहीं और पड़ा कोई चित्र मिल जाता तो सँजोकर रखना। परिवार के लोग इसे निरी ख़ब्त समझते थे, पर वही आगे चलकर इनके मन की रंगीनी को मुखर करने का प्रेरक स्रोत बना। सामन्ती परम्पराओं में इनका पालन-पोषण हुआ, उर्दू, फारसी से इन शिक्षा प्रारम्भ हुई, वयस्क होने से पूर्व ही एक बड़ी ही दुखद घटना

घटी कि इनके पिता को ग़बन के आरोप में बन्दी बना लिया गया, घर बर्बाद हो गया, आर्थिक संकट का सामना करना पड़ा। कुछ समय तक काम की खोज में दर-दर भटकना पड़ा, किन्तु पिता के जेल से लौट आने पर ये जयपुर के आर्ट स्कूल में दाखिल हो गए और शैलेन्द्रनाथ दे के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। वहां से डिप्लोमा प्राप्त कर ये कला की साधना में जुट गए।

कांटा निकालते हुए

रंगों का खज़ाना जैसे इनकी नज़रों के सामने खुल पडा। पिता की मृत्यु के पश्चात् इनकी मुक्त चेता आत्मा ने किसी नौकरी का बंधन तो स्वीकार नहीं किया, पर रंगों की वह जैसे चाकर थी। बालेर के ठाकुर साहब साहित्य व कलाप्रेमी थे। आगे बढ़ने में इन्हें उनसे विशेष प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला। इनकी स्वांतः सुखाय कला साधना अनेक रूपों में सामने आई। शुरू में बंगाल स्कूल और अजन्ता से ये विशेष प्रभावित थे। इस पद्धति पर इन्होंने अनेक चित्रों का निर्माण किया। इनके कुछ चित्रों पर मालवा शैली की भी छाप है। किन्तु इनके परवर्ती चित्र राजस्थानी लोक संस्कृति से मुख्यतः प्रेरित है। यहाँ के जन-जीवन के अनगिन दृश्यचित्रों को इन्होंने बड़ी सूक्ष्मता से आँका है। ऐसे सैकड़ों चित्र इन्होंने सिरजे जिन्होंने लोक जीवन में बिखरे प्रसंगों, घटनाओं और विशेषताओं को उभार कर दर्शाया। विषयों की खोज में ये इधर-उधर भटकते और गली-कूचों, सड़कों, पनघटों, मेलों, तमाशों, अदालतों में से

अपनी वांछित वस्तु खोज लेते। इन्होंने अनेक धार्मिक एवं क्लासिक विषयों का भी चित्रांकन किया। 'मेघदूत', 'शकुन्तला', 'कुमार संभव', 'कादम्बरी', 'गीत-गोविन्द', 'रामायण', 'रघुवंश' आदि के प्रसंगों को लेकर इन्होंने अद्‌भुत चित्र सृजन किया है।

ये चित्रों में कुरुचि उत्पादक भावनाओं के विपरीत लालित्य और सौंदर्य के हामी हैं। जन-जन के लिए कला का सृजन होता है, अतः कलाकार को अपनी आन्तरिक आनन्दानभूति का सर्वत्र वितरण कर देना चाहिए। उसका यह आनन्द सीमित या आबद्ध नहीं, बल्कि वह जितना ही रस उत्पन्न करने में समर्थ होगा उतना ही उसका सृजन लोक प्रिय और मनुष्य मात्र की सम्पत्ति बन जाएगा। ललित कलाओं की अधिष्ठात्री चित्रकला जन सम्पर्क का माध्यम बन एक आत्मा से दूसरी आत्मा का बड़ी सरलता से गठबन्धन कर सकती है।

सुन्दरी

एक और छवि

इनके मत में—"ईश्वर स्वयं एक चित्रकार है जिसने यह बहुरंगी संसार रच डाला है और भगवान का स्वरूप भी हम चित्र कला की सहायता से ही अंकित करने में समर्थ हुए हैं, क्योंकि किसी वस्तु का रूप बिना चित्रकला की प्रेरणा के निर्धारित नहीं किया जा सकता। रूप ही चित्रकला का स्वरूप है और बिना रूप के वस्तुस्थिति संभव नहीं। इस प्रकार रूप की प्रधानता स्वीकार किये बिना हम नहीं रह सकते। रूप को सुन्दर बनाना, उसको विविध आकार देना, रूप के मर्म को समझना, रूप का विवेचन करना और रूप की साधना करना ही चित्रकला की साधना और चित्रकला की उपासना है।

प्रत्येक मानव चित्रकार है। अनेक चित्रों के रूप में वह प्रकृति का दर्शन

करता है और मुग्ध होता है। इस चित्रमय जगत में वह स्वयं चित्र भी है और चित्रकार भी, ये शक्तियाँ उसमें अप्रकट रूप में विद्यमान हैं। अभ्यास न होने से वह हाथों से कुछ अंकित नहीं कर पाता, किन्तु ये शक्तियाँ सुप्तावस्था में हैं, यदि हम इन्हें जाग्रत कर लें तो वे हमारी अनुगामिनी बन जायेंगी।'

पिचकारी

चित्रकला चूंकि चाक्षुश कला है, अतः आवश्यकता है कि दृश्येन्द्रिय को परिमार्जित, मार्मिक और सरस बनाया जाये और यह चित्रकला द्वारा ही संभव है। इन्होंने अपनी भावनाओं को न केवल तूलिका द्वारा वरन् लेखनी द्वारा भी प्रकट किया है। चित्र सुसज्जित अनेक पुस्तकें और लेख इनके प्रकाशित हुए हैं जिनमें इनके कलामय रूप-स्रष्टा हृदय का परिचय मिलता है। काव्य और कला के सामंजस्य ने इनमें ऐसी आनन्द धारा का उद्रेक किया जो 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' के रूप में इनकी कला में उजागर हुआ है। एक स्थल पर इन्होंने लिखा है—'जो अवस्था कवि की है कि वह चाँदनी में रजत चूर्ण, सुन्दर मुखों में कमल और लता-वृक्षों में लावण्य खोजता फिरता है, उसी प्रकार चित्रकार भी उषा, सन्ध्या, वसंत और पतझड़ में अलौकिक आनन्द की मंदाकिनी बहती हुई देखता है। वह जरा, यौवन के विकास और ह्रास के भेद प्रभेदों में, प्रकाश और अन्धकार के रूपों में, शृंगार और करुण में, वीर और वीभत्स में भगवान की विचित्र लीलाओं का आभास पाकर आनन्दविभोर हो उठता है।'

फलतः झूलों पर पेंग भरती हुई तन्वियों ने, पनघट से जल गागर लेकर आती हुई सुकुमारियों ने और लोक पर्वों के अवसर पर रंग-विरंगे रेशमी परिधानों, फूल गुच्छों से सुसज्जित जूड़ों, बाजूबन्द से लटकते फुंदनों और आभूषणों की

साज-सज्जा ने इनके मन को अभिभूत किया है और ऐसे न जाने कितने चित्र इनकी तूलिका से सिरजे गए हैं। नारियों की मोहक मुखच्छवि, केश सज्जा, अंग-प्रत्यंगों का सुडौल उभार, पतली सुन्दर उँगलियाँ, नूपुर की झनक से थिरकते कोमल पाँव तथा अनुरूप चेष्ठाएं व भाव-प्रदर्शन में बड़ी ही गहरी सूझबूझ और सृजन शिल्प का परिचय मिलता है। 'कल्पना लोक का गान', 'महाश्वेता और शुक', 'प्रकृति और पुरुष', 'राधा माधव', 'शकुन्तला और मृगी' आदि न जाने कितने ऐसे चित्र हैं जो नारी के सौन्दर्य की व्यंजना करते हैं। नारियों की सूक्ष्म भावभगियों का इन्हें मनोवैज्ञानिक अध्ययन है और उनके रूप-सौष्ठव की बारीकियों में पैठे हैं। इनके चित्र आँकने की अपनी निजी शैली है जो इन्हें दूसरों से पृथक् करती है।

सर्व प्रथम माडर्न रिव्यू में इनका चित्र निकला, फिर तो अनेक हिन्दी, उर्दू और बंगला पत्र-पत्रिकाओं में इनके चित्रों की धूम सी मच गई। विशाल भारत, चाँद, माधुरी, प्रवासी, हंस, नया समाज, लहर, माया, कल्पना, वसुमती, त्यागभूमि, धर्मयुग आदि प्रमुख पत्रों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। कलकत्ता, बम्बई, इलाहाबाद, बनारस, लाहौर, शिमला, जयपुर आदि स्थानों में इनकी चित्रप्रदर्शनियाँ हुई हैं और देश-विदेशों की कला प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। चित्र-निर्माण

•पनघट से

में जलरंग, तैलरंग और चटकीले रंग मिश्रणों का प्रयोग किया है। स्केच, रेखांकन और भित्तिचित्र सज्जा में भी ये अद्वितीय हैं। 'काम भृंगार', 'इन्द्रजित विजय' और 'अष्ट वसु' इनके विशेष प्रसिद्ध चित्र हैं। इसके अतिरिक्त बुद्ध के जीवन-चित्र, उमर खैय्याम की कविताओं पर प्रस्तुत दृश्यांकन

और अनेक प्राकृतिक ग्रामीण नज़ारे भी बड़े ही उत्कृष्ट बन पड़े हैं। मौजूदा युग में जो कला प्रणालियों में अन्तर आया है और कला की विभिन्न विधाएँ नए दौर से गुज़र रही हैं इसका प्रभाव भी इनकी कला पर पड़ा है।

'शुक और रंभा' (आधुनिक शैली)

'आज के युग में जो तूफ़ानी प्रगतियाँ हुई हैं वे इतनी प्रभावोत्पादक हैं कि मानव की मानसिक मर्यादाओं को छिन्न-भिन्न करती चली जा रही हैं। यह प्रभाव जैसे एक लम्बी अवधि तक निष्क्रिय बैठे रहने की प्रतिक्रिया स्वरूप है जो ज्वार भाटे की भाँति आगे बढ़ता चला आ रहा है। पुरानी लकीरों के प्रति उपेक्षा तथा नये मार्गों की ओर बढ़ने का उत्साह आज के मानव मन में क्रान्ति उत्पन्न कर रहा हैं। गन्तव्य पथ अच्छा है या बुरा; इतना अवकाश उसके पास नहीं है, नव निर्माण के लिए प्रयोग, निरन्तर प्रयोग उसका ध्येय है। सभी दिशाओं में यही अवस्था है तब कला तो मानव-जीवन का प्रतिबिम्ब है; उसमें क्रान्ति क्यों न आती ?

परिचारिका

आज बंगाल की कल्पनावादी माधुर्यगुण प्रधान लालित्य की चरम सीमा तक पहुँची कला जरा जीर्ण होकर लोककला के आन्दोलन के सम्मुख टुकुर-टुकुर देख रही है। विरोध पर भी उसका अवरोध सम्भव नही जान पड़ता। फ्रांस की नवीन शैली के आन्दोलन लोककला की सीमाओं को भी छोड़ कर और आगे बढ़ गये हैं। उनमें न रूप है न आकृति है। केवल रंगों का सामजस्य। रेखाओं का अव्यवस्थित ताना-बाना लोक रुचि के आगे संघर्ष कर

रहा है। जनता इस अद्भुत कौतुक के आगे यद्यपि मौन किंकर्तव्य है तब भी भारत के इस कोने से उस कोने तक यही प्रभाव छा गया है। बिना शीश के धड़, बिना टाँग के आदमी, पेट मे आँख और ललाट पर हाथ उग हुए विकृत रूप हमारे सम्मुख हैं और इनके प्रति एक विद्रोह स्वरूप आकर्षण वढ़ता जा रहा है। परिणामस्वरूप मेरे जैसे लालित्यपूर्ण-रेखाओं के समर्थक प्राचीन साधकों ने भी नये प्रभावों में बहकर अपनी अभिव्यक्तियों को नूतन माध्यम से प्रकट करना आरम्भ किया है।' आधुनिक शैली में इन्होंने यों अनेक प्रयोग किये हैं। इनकी नई रचना में आधुनिकता का पुट है, फिर भी ये कुरुचि और वीभत्स को प्रश्रय नहीं दे सके हैं। नवीनता की खोज में उनके चित्रण और अभिव्यक्ति का ढंग बदला तो है, कारण वे समय की दौड़ में पीछे नहीं रहना चाहते, पर उनकी अंतरंग आत्मा अभी भी उस सौन्दर्य के अनुसंधान में है जिससे वे दूर भटक गए हैं।

भूरेसिंह शेखावत

ग्राम्य जन-जीवन के कुशल चितेरे भूरेसिंह की चित्र-शैली मुख्यतः यथार्थ-वादी है। उन्होंने ख़ासकर ऐसी झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं जिनमें राजस्थान के कार्य-निरत और व्यस्त लोगो की हूबहू छवियाँ मुखर हो उठी हैं। चक्की पीसती, आटा गूँदती, सूत कातती, पानी भरती तथा रोज़ के धंधे में लगी विभिन्न नारियों की भंगिमाएँ, आरा चलाता ग्रामीण तरुण, कपड़ा बुनता वृद्ध बुनकर, बाज़ार-हाट व सौदा खरीदते हूए नारी-पुरुष, काम से थककर सड़क की पगडंडी पर विश्राम करते कृषक दम्पती, गणगौर पूजन, बहँगी वाला, भतृहरि के गीत गाने वाला भाट, गाड़िया लुहार, गाढ़े पसीने की कमाई खाने वाला कुली, मेहनत मजूरी में लगे व्यक्ति, जुगाली करते हुए विश्राम की मुद्रा में ऊँट, दाना-पानी खाते हुए पशु, नये पैदा हुए पिल्ले, विगत युग के कर्णधार जिसमें राजस्थान का अतीत साकार हो उठा है, 'जीवन की गोधूली' जिसमें ठेठ वेषभूषा में ग्रामीणों की परिश्रमशीलता के दर्शन होते हैं, झोंपड़ी, तालाब, कुंआ, पेड़ पौधे, 'मंगल कामना' जिसमें आस्था साकार हो उठी है, 'मोल. भाव', 'सब्ज़ी बेचती मालिन', 'कुएँ से वापस', 'दो दोस्त'—यूँ जीवन के कोने-कोने में झाँक कर कोई इन्होंने ऐसा पहलू अछूता न छोड़ा जहाँ इनकी कल्पना का सामंजस्य न हुआ हो। उन्होंने कितनी ही दशाब्दियाँ चुपचाप बिना प्रसिद्धि की चिन्ता किये कला की साधना में व्यतीत की। कला उनकी जन्मजात सहचरी थी।

मृत्यु पर्यन्त वे उसी की मूक साधना में निरन्तर रत रहे।

कला की ओर इनकी जन्मजात रुचि थी, पर इनकी शिक्षा-दीक्षा पिलानी में ही हुई। बिड़ला परिवार ने इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान कर बम्बई में कला के विशेष अध्ययन के लिए भेजा। इन्होंने चार वर्ष बाद डिप्लोमा लिया और उसके बाद पिलानी में बिड़ला की शिक्षा संस्था से सम्बद्ध रह कर ही इन्होंने शेष जीवन बिताया।

जलरंगों में इनकी गहरी पैठ थी। उनके माध्यम से ही इन्होंने अपनी अंतरंग भावनाओं का दिग्दर्शन कराया। लगता था—जैसे ये रंग उनके प्राणों

हुक्के का मजा

अवकाश के क्षण

में घुलकर मन की कहानी कह जाते हैं अर्थात् दैनन्दिन जीवन में जो भी नज़ारे सामने आते वे इन रंगों की त्वरा में अँट जाते। इन्होंने तैलरंगों का भी प्रयोग किया है, किन्तु वे उतनी स्पष्टता से नहीं उभर पाये। छविचित्र आँकने का इन्हें इतना अभ्यास था कि एक-दो मिनट में ही किसी भी व्यक्ति का पोर्ट्रेट बना देते थे। गाँधी जी के साथ कुछ दिन के सहवास में इन्होंने उनके कार्यव्यस्त जीवन की अनेक झाँकियाँ प्रस्तुत की थीं।

अत्यंत सीधे-सादे और संकोचशील स्वभाव होने के कारण वे कभी विदेश न गए, हालाँकि कई बार ऐसे अवसर आए। किन्तु प्रायः हर साल वे ग्रीष्मावकाश में पहाड़ पर जाया करते थे जहाँ की हरीतिमा एवं प्राकृतिक वैभव

में उनकी कला चेतना प्रश्रय पाती। प्रकृति दर्शन से प्रभावित इन्होंने कितने ही दृश्य चित्र प्रस्तुत किये हैं, खासकर हिमालय की चित्रावली में इसका स्पष्ट प्रभाव है। किसी भी स्थिति में उनका दृष्टिकोण एकपक्षीय न था, वे ऐसे बिखरे अनुभवों को बटोर कर कला में सँजोने के हिमायती थे जहाँ उन्मुक्त वातावरण में मन एकाकार हो सके, जहाँ विराट् जीवन की मामूली से मामूली छवि को वे अपनी अंतरंग प्राणवत्ता से आँक सके। कला के सम्बन्ध में उनका अभिमत था—'कला का कोई सीमित क्षेत्र या विषय नहीं होता। सदा श्वेत और स्वच्छन्द वातावरण में मेघ सकुल व्योम की कल्पना में उलझना उचित नहीं। हर्षातिरेक में बिताये आनन्दपूर्ण क्षण क्या जीवन के भीषण आघात की वेदना से ओतप्रोत क्षणों से कम मूल्यवान है? जहाँ हमारे नेत्र व्योम में उन्मुक्त विहार कर सकते है वहाँ वे गाँवों के दर्शन से दूर नहीं किये जा

चक्की पीसते हुए

कार्य व्यस्त

सकते। जिन विषयों का वर्णन युग-युग से होता आया है उसी में हेरफेर करने में कुछ मौलिकता नहीं। विराट् प्रकृति की विशाल पोथी के समग्र पृष्ठों को खुले नेत्रों द्वारा सम्यक् रूप से पढ़ना ही कलाकार का प्रथम और अंतिम लक्ष्य है, जहाँ ग्राम और शहर एक ही भूमि पर एक ही व्योम के तले साँस लेते रहते हैं।' फलतः इनके चित्रों में आंचलिकता और सोंधी मिट्टी की महक है। उसी की खुशबू में ये रमे हैं, वही इनका प्रेरणा स्रोत है।

इन्होंने दिल्ली, गया, पटना, प्रयाग आदि स्थानों में बने बिड़ला मन्दिर और अतिथिकक्षों की सुसज्जा में भी योगदान किया था। कलकत्ता, दिल्ली, अजमेर, इलाहाबाद आदि अनेक प्रमुख नगरों में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुई, इसके अतिरिक्त राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन

आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, जयपुर की राजस्थान ललित कला अकादेमी, इंडियन नेशनल थियेटर की कला-परिषद और अजमेर-मेरवाड़ा फाइन आर्ट्स द्वारा आयोजित कला-प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे और देशी-विदेशी कला-मर्मज्ञों ने इनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इनके अनेक उत्कृष्ट चित्रों को बिड़ला परिवार तथा देशी-विदेशी कला प्रेमियों ने समय-समय पर खरीदा है और अनेक महत्त्वपूर्ण संग्रहालयों और कला वीथियों में इनके चित्रों को स्थान मिला है। अपने जीवन काल में ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी और राजस्थान ललित कला अकादेमी के भी वर्षों सदस्य रहे हैं। निधन के पश्चात् इनके चित्रों की अमूल्य विरासत पिलानी जैसे शिक्षा एवं कलाकेन्द्र का एक महत्त्वपूर्ण अंग है, जो वहाँ के लिए गौरव और गर्व की वस्तु है।

कृपाल सिंह शेखावत

राजस्थान के प्रमुख कलाकार कृपाल सिंह शेखावत ने अंतर्राष्ट्रीय कला-मंच पर काफ़ी ख्याति पाई है और उन्होंने न सिर्फ़ राजस्थान वरन् बाहरी प्रभावों को भी अपनी कला में आत्मसात् किया है। पिलानी से उनका कला-अध्ययन प्रारम्भ हुआ, तत्पश्चात् लखनऊ के गवर्नमेंट आर्ट्स कालेज से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। वे चार वर्ष तक शांतिनिकेतन में नंदलाल वसु के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। तीन वर्ष तक जापान में रहकर इन्होंने सुदूरपूर्वी चित्र-कला टेकनीक का अध्ययन किया। भित्ति चित्र सज्जा की अनेक बारीकियों के अध्ययन के लिए ये अनेक बार विदेश गए और अन्तर्राष्ट्रीय कलाकारों के सम्पर्क में बहुत कुछ सीखा, खासकर वस्तुओं की कुराई, खुदाई की अंकन विधियों के वैविध्य और नई-नई प्रणालियों का ज्ञान इन्होंने अर्जित किया।

इनकी कला पर मुख्यतः मुग़ल कला, राजपूत कला, बंगाल स्कूल और जापानी शैली का प्रभाव द्रष्टव्य है, किन्तु ज्यों-ज्यों इनकी प्रतिभा परिपक्व होती गई इनकी अपनी एक नई समन्वित शैली का विकास हुआ। प्रतीक चित्रण, रंग विन्यास, आलेखन और शिल्पविधि में व्यापकता आती गई। अपने संस्कार, शिक्षा और अभ्यास के विभिन्न स्तरों पर इन्होंने निजी कला-शैली को माँजा। 'बापू जी राठौर का विवाह' नामक चित्रकृति के विन्यास में मुग़ल शैली, रंग-नियोजन में राजपूत शैली, पर गढ़न कौशल में जापान की यातो कलम का प्रभाव है, 'प्रतीक्षा'

चित्र एकदम जापानी पद्धति को लेकर निर्मित हुआ, किन्तु राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में प्रदर्शित 'पंचवीर' तथा पाँच संतों के चित्र तथा राजस्थानी ललित कला अकादेमी की चतुर्थ प्रतियोगिता में पुरस्कृत 'मेहोजी माँगवीर' में राजस्थानी पद्धति पर उनका अपना मौलिक प्रयास है।

रंगों के प्रयोग में इन्होंने बड़ी ही सूक्ष्म टेकनीक से काम लिया है। ब्रुश पर इनका नियंत्रण कुछ ऐसा है जो रंगों के संदर्भ में सर्वथा नई सृष्टि कर
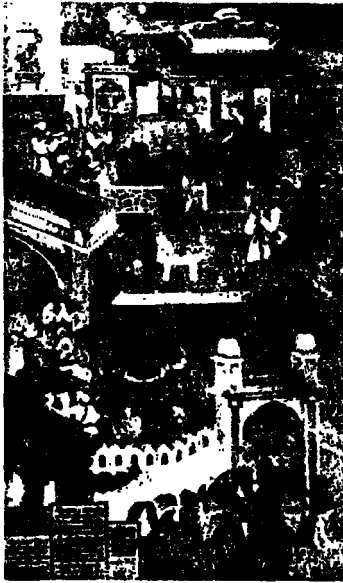
बापू जी राठौर का विवाह

डेरी का दृश्य

डालता है। इनके मन और प्राण शेखावाटी की सोंधी खुशबू से अनुप्राणित है, जो भित्ति चित्रण के व्यापक परिवेश में अपनी रंगमयता को उँड़ेल जाते है। भारत सरकार ने भारतीय संविधान की मूल प्रतिलिपि की सुसज्जा का काम सौंपा था। नई दिल्ली के बिड़ला हाउस में इन्होंने गांधी जी के जीवन की विभिन्न झाँकियाँ विशाल भित्तिचित्रों के रूप में अंकित की है। राजस्थान ललित कला अकादेमी के लिए बैराठ और आमेर के भित्तिचित्र का अनुअंकन किया, तुंगवान गुफ़ा के अठारह चित्रों की प्रतिलिपि तैयार की, जयपुर रेलवे स्टेशन पर गणगौर मेले के दिग्दर्शक भित्ति चित्र का निर्माण किया। तीन वर्ष तक इन्होंने कलाभवन शांतिनिकेतन में अध्यापन कार्य किया था, पर बाद में व्यावसायिक

कलाकार के बतौर स्वतन्त्र कला-साधना द्वारा बहुमुखी दिशाओं में कार्य किया। टोकियो, कलकत्ता, दिल्ली, लखनऊ, इलाहाबाद और जयपुर आदि में इनके चित्रों की प्रदर्शनियाँ हुई हैं और अनेक देशी-विदेशी समसामयिक प्रदर्शनियों मे ये भाग लेते रहे हैं। भित्ति चित्र कला में इनकी बचपन से ही रुचि रही है, खास कर राजस्थानी भित्त-चित्र-सज्जा की प्राचीन उपलब्धियों की सूक्ष्मताओं के गंभीर अध्ययन द्वारा उन्होंने बहुप्रणालियों को विशद बनाया है। टेम्परा में इन्होंने विशेष दक्षता हासिल की और अन्य रंगों की बारीकियों में भी पैठे। कहीं रंग तूलिका से आगे बढ़ जाते है और कहीं तूलिका रंगों को मात दे देते हैं यूँ ये रंग शिल्प में कितना आगे बढ़ गए है इसका एहसास इन्हें भी स्वयं नहीं है।

गोवर्द्धन लाल जोशी

जोशी ने अपने चित्रण में राजस्थान की लोक परम्परा को सर्वथा नया रूप प्रदान किया है। भीलों के जीवन का इन्होंने निकट से अध्ययन किया और उन्हीं को प्रमुख विषय बनाया। भीलों की वेषभूषा, अलंकार धारण करने की

पथ पर

प्रवृत्ति, उनकी विभिन्न नृत्य मुद्राओं का इन्होंने बड़ा ही आकर्षक चित्रण किया है। भीलों के अतिरिक्त इन्होंने बनजारों, डांगियों, गाड़िया लुहारों, किसानों, गडरियों और श्रमिकों की तरह-तरह की भंगिमाओं का दर्शन कराया है। ग्राम्य जीवन के दिग्दर्शक बाज़ार-हाटों, गली-कूचों और रोज़मर्रा के धंधों के भी अच्छे दृश्यचित्र

भील महिलाएं

उतारे हैं। इनके चित्रों में मानव-आकृतियाँ प्रमुख हैं और पृष्ठभूमि गौण, प्राय: प्रकाश और छाया के उचित सामंजस्य द्वारा इन्होंने दृश्यों को बड़ा ही मनोरम और प्रभावोत्पादक बना दिया है।

कला की प्रारम्भिक शिक्षा इन्हें काँकरौली में मिली जहाँ इनके पिता राज-मन्दिर से सम्बद्ध थे। मन्दिर व महल के भित्ति चित्रों ने बालक के मन में सृजन

की प्रेरणा जगाई। वह चाकू और पेंसिल के सहारे सुन्दर स्केच आँकने लगा। कांकरोली से नाथद्वारा आकर इन्होंने कुछ स्थानीय लोक चित्रकारों के सम्पर्क में वंश परम्परा प्राप्त कलम आँकने की शैली को माँजा। मंदिर पर अंकित चित्रों ने इनमें प्रतिकृति को सजीव रूप से उतारने की दक्षता सिखाई। पाटी माँडना या पर्व-त्योहारों पर सज्जा व अनुकृति करने के अनेक अवसर इन्हें वहाँ मिले, किन्तु इनका भीतर का सजग कलाकार उन निर्जीव मौलिकता विहीन चित्रण की अनुकृति में देर तक न रम सका। नाथद्वारा से उदयपुर आकर विद्या-भवन की शिक्षण संस्था का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा। यहाँ के वनशाला विभाग की ओर से इन्हें गाँवों, शहरों, प्रमुख ऐतिहासिक कला-स्थलों व स्मारकों को देखने का मौका दिया गया। ख़ास कर मेवाड़ के भीलों के निकट सम्पर्क में इन्होंने उनके जीवन और आचार- व्यवहार का गहरा अध्ययन किया। भील युवती जो जंगल में घास काटने के लिए उद्यत है, फसल काटते हुए, सिर पर सामान से भरी टोकरी ले जाते हुए, धान रोपते हुए, मृदंग बजाते हुए, घूँघट की ओट में, मज़दूरी और कड़ा श्रम करने के पश्चात्, पति और बच्चों के साथ घर लौटते हुए लज्जाशीला, साहसिक, काम से परिश्रांत, आमोद रत, विविध नृत्य मुद्राएँ और उनके जीवन के सूक्ष्म ब्यौरों को इन्होंने बड़ी खूबी से दर्शाया। इन्होंने यह सिद्ध कर दिया कि अविरत कठोर श्रम के बावजूद उनका जीवन नीरस या शुष्क नहीं हैं, बल्कि उदर पूर्ति की मेहनत मजूरी के विभिन्न उपकरणों को जुटाने के प्रयत्न में ही उनके श्रम की परिणति है। राजस्थानी भील उल्लसित, प्रसन्नबदन और हरियाली के साथी हैं।

इन्हें विद्या-भवन की ओर से शांतिनिकेतन में आगे अध्ययन के लिए भेजा गया। वहाँ इन्हें और भी अनुकूल वाता-वरण मिला और

भील विवाह समारोह

आचार्य नन्दलाल वसु के तत्त्वावधान में इन्हें विभिन्न माध्यमों के प्रयोग का अवसर प्राप्त हुआ। राजपूती कलम की सूक्ष्मताएँ, लोक परम्परा के अन्तः सौन्दर्य की विशिष्टताएँ और भित्तिचित्रण की बहुविध प्रणालियों का इन्होंने

विधिवत् प्रशिक्षण प्राप्त किया जिन्होंने इनकी चित्रण शैली को अधिकाधिक परिपक्व और पुष्ट बनाया।

ये जल रंगों या बाजार में बिकने वाले सामान्य रंगों का ही प्रयोग करते हैं। भित्तिचित्रणों में रंगों के बहुमिश्रण से इन्होंने बड़े ही जीवंत प्रयोग किये हैं। विद्याभवन की दीवारों पर निर्मित विशाल भित्ति चित्रों पर भील जीवन की विविध झाँकियों का संसार रच डाला है जिसमें इनकी साधना का तार नहीं टूटता और एकाकार संश्लिष्ट भावना की समूची लय एवं प्राणवत्ता का सुष्ठु समावेश दीख पड़ता है। सामान्य जन-जीवन के तथा कथित सत्यों को नित-नूतन माध्यमों और अनेकविध अर्थो की अभिनव व्यंजना द्वारा ये लोक चित्रण की दिशा में प्रवर्त्तक सिद्ध हुए हैं।

गौरांग चरण

लोकशैली के दूसरे सुप्रसिद्ध कलाकार गौरांग चरण काष्ठ शिल्प के कुशल शिल्पी हैं। इन्होंने राजस्थानी जन-जीवन के विविध दृश्यों को लकड़ी पर उकेरा है। कृषक घरों की स्त्रियों के दैनिक कार्य-कलाप जैसे—ओखली मे बाजरा कूटते हुए, मवेशियों के लिए घास खोद कर लाते हुए, घर के धंधों में मशगूल नारियों की विभिन्न भंगिमाएँ जिसमें उनके भारी घाघरे, बेल-बूटेदार चूनरी और काँचली की ठेठ वेषभूषा दर्शायी गई है। इसके अतिरिक्त रेगिस्तान का जहाज ऊँट जो वहाँ का सबसे उपयोगी जानवर है और सवारी के अतिरिक्त खेत-खलिहानों में हल जोतने, पानी सींचने और बोझा ढोने के काम भी आता है, राजस्थानी नट-बाजीगरों का कौशल और कृषकों, श्रमिकों और व्यस्त लोगों के जीवन की झाँकियों में इनकी आत्मा की आवाज़ सुन पड़ती है।

ओखली (काष्ठ कला)

इनका जन्म उड़ीसा के एक छोटे से गाँव महागव में हुआ, जहाँ कि

प्राकृतिक दृश्यावली, फल-फूलों से लदे हरे-भरे पेड़-पौधे, तालावों पर बिखरी सूर्यरश्मियों की सिहरन ने इनके बालऔत्सुक्य को जगाया। इन्हें कला विरासत में मिली थी। इनके मामा सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार थे, जिन्होंने निर्माण की चाह इनमें जगाई। अपने स्वप्नों को साकार करने में इन्हें कुछ संघर्ष करना पड़ा, किन्तु बाद में सरकारी छात्रवृत्ति पर ये शांतिनिकेतन में कला अध्ययन के लिए भेज दिए गए।

शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् गौरांग चरण बिड़ला पब्लिक स्कूल में कला-शिक्षक होकर आए और इन्होंने अपने प्रवास के दौरान यहाँ के जन-जीवन को आत्मसात् कर लिया। इन्होंने यहाँ के गाँवों में घूम-घूम कर चित्र बनाये हैं, उत्सव-मेलों में जाकर स्केच खींचे हैं और राजपूत कला के गहरे अध्ययन द्वारा अपनी कला को माँजा है। इनकी टेंकनीक पर उड़ीसा, बंगाल और राजस्थानी शैली का समन्वित प्रभाव है। भारतीय परम्परागत शैली के ये हामी हैं और उसी के उदात्त सौन्दर्य में पैठकर इन्होंने अधिकतर रंजक चित्रों का निर्माण किया है। सरस्वती, दुर्गा, महालक्ष्मी, रासलीला, रागमाला और विवाहोत्सव की अनेक झाँकियाँ परम्परागत आलंकारिक शैली पर निर्मित हुई हैं। इन्होंने उड़ीसा के प्राचीन मन्दिरों और अजन्ता, एलोरा, नालन्दा, राज-गृह और एलिफेंटा तथा अन्य कितने ही ऐतिहासिक स्थलों से पौराणिक और देशीय विषय-वैविध्य की प्राचीन विशेषताओं और उसके मूल स्वरूप को हृदयंगम किया है। लकड़ी, पत्थर, मिट्टी पर काम किया है। जलरंग, तैल-रंग, टेम्परा, वाश, रेखाओं और डिज़ाइनों में समान दक्षता है। इनकी रेखाएँ सूक्ष्म हैं, पर जटिल नहीं, वस्त्रभूषणों को कोरने में इन्हें बड़ी बारीकी अख्तियार करनी पड़ी है, इनकी छेनी और कूँची की सक्षमता में मनोवैज्ञानिक तत्त्वों के विश्लेषण की खूबी है। इन्होंने परिश्रम और साधना से राजस्थानी कला क्षेत्र में स्वयं अपनी दिशा निर्धारित की है। उड़ीसा की अखिल भारतीय चित्रकला प्रदर्शनी, नई दिल्ली और कलकत्ता की समसामयिक कला प्रदर्शनी तथा भारत सरकार द्वारा आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनों में इनकी म्यूरिल पेंटिंग, वुडकट और प्रस्तर कला पर पुरस्कार और पदक प्राप्त हुए हैं। इसके अतिरिक्त विदेशी कला-प्रदर्शनियों में भी इन्होंने भाग लिया है और पोलैण्ड, बुडापेस्ट, चीन और जापान तथा अन्य कतिपय निजी एवं सार्वजनिक संग्रहालयों में इनके कलाकृतियों को प्रतिनिधित्व मिला है। अमेरिका और इंग्लैण्ड की कला-वीथियों में भी इनके कुछ चित्र क्रय किये

गए हैं। आधुनिक कला की कुत्साओं और विरूपताओं से परे इन्होंने अपनी उन्हीं रुचियों को साकार किया है जिसे इनके अन्तर ने स्वीकार किया है, कारण—इनमें सच्ची निष्ठा है, द्वन्द्व या ऊहापोह नहीं।

परमानंद चोयल

कोटा के सुप्रसिद्ध चित्रकार चोयल के चित्र दैनन्दिन जीवन की समस्याओं से प्रेरित हुए हैं जिनमें कल्पना और यथार्थ का अद्भुत योग है। मनोरंजन साध्य नहीं बल्कि उनके लिए कला समाज के विकास का महत्त्वपूर्ण साधन है, इसीलिए इन्होंने अपने विषय रोज़मर्रा के प्रसंगों से चुने हैं। किसी भी दृश्य अथवा घटना से जो मन पर प्रतिक्रिया होती है या उत्पीड़न जो मन को मसोस जाता है वह ही अनायास चित्रों में घुमड़ कर बरबस बाहर फूट पड़ता है। कारण--कलाकार की मनोभूमि ही तरह-तरह की रूप सृष्टि करती है। अतीत की उपलब्धि और परम्परा प्राप्त कला वैभव में झाँककर बहुत कुछ ग्रहण किया जा सकता है, पर केवल अनुसरण करने और पुरानी मान्यताओं को चिपटाए रहने में ही ये आस्था नहीं रखते। इनके शब्दों में—

'प्रगति को मैं जीवन का आवश्यक अंग समझता हूँ। आगे बढ़ने वाला साहस पाने के लिए भले ही पीछे की ओर झाँक ले, पर वह रुकता नहीं, बढ़ता ही जाता है। बालक माँ-बाप की अंगुली पकड़ कर चलना अवश्य सीखता है, पर जैसे ही वह स्वावलम्बी होता है, वह बेसहारे ही चलना पसन्द करेगा, सहारा उसके पौरुष को चुनौती जो है। आधुनिक कलाकार का भी यही ध्येय है। वह दूसरों के मार्ग पर चलना नहीं चाहता, स्वयं ही राह खोजता है, उस पर अकेला ही चलता है। मैं उसके इस एडवेंचर को पसंद करता हूँ। अनुभूति को मैं अपने ही तौर-तरीके से अभिव्यक्त करना अधिक सरल एवं स्वाभाविक समझता हूँ। मानूँ भी क्यों नहीं ? जो बात मेरे पूर्वज लिख गए हैं—क्या वही मेरे लिए सत्य है ? मेरा भी तो अपना अस्तित्त्व है। इसका अभिप्राय यह नहीं कि जीऊँ तो दूसरे की दया व सहारे पर और मरूँ तो दूसरे के आदेश पर। 'ट्रेडीशनल' कला को अंतः में प्रेरणा का विषय तो मान सकता हूँ, पर अनुकरण का नहीं। इसका मतलब यह भी नहीं कि मैं आधुनिक कला के नाम पर विदेश के अनुकरण को कोई महत्त्व दे रहा हूँ। मेरे रग-रग में भारतीय खून बह रहा है, यह मैं कभी नहीं भूल सकता। जो भी मैं अनुभव करूँगा उसमें स्वतः ही भारतीयता झलकेगी जिससे वंचित नहीं रह सकता।'

उपर्युक्त उद्धरण से स्पष्ट है कि चोयल परम्परावाद के साथ-साथ आधुनिकतावाद के क़ायल हैं जिसका समन्वित प्रभाव इनके कृतित्व में स्पष्ट है। प्राचीन से परिष्कृत अर्वाचीन मान्यताओं को इन्होंने अपने ढंग से विकसित किया है। रंग-संयोजन, सशक्त रेखांकन और अनुपात आदि में कृतिकार की सृजन कसौटियाँ देशीय से वहिर्देशीय तत्त्वों की ओर उन्मुख हुई हैं। ये दृश्यात्मक प्रभावों को व्यापक पैमाने पर मन की अनुभूतियों से जोड़ देते हैं, यही कारण है कि समय और परिस्थिति के अनुरूप जो विचारों में परिवर्त्तन हुआ उसकी छाप इनकी कला में उजागर हुई। परम्परावादी, यथार्थवादी, प्रभाववादी, अभिव्यंजनावादी और नितान्त नव्यवादी के रूप में इन्होंने भिन्न-भिन्न प्रयोग किये हैं, किन्तु अन्तर्भेदी दृष्टि से सत्य को टटोलना इनका सदा ध्येय रहा है।

कोटा चोयल जी की जन्मभूमि है। प्रारम्भ में विभिन्न अलंकरणों और मांडनों से इनकी कला-चेतना उद्बुद्ध हुई। इनकी माँ को ऐसी चित्रकारी का शौक़ था, इन्हें भी रंगों के खिलवाड़ का चस्का लगा जो बाद में इनका ध्येय और विधेय बन गया। पहले इन्दौर स्कूल आफ आर्ट्स में ये दाखिल हुए। कुछ अर्से बाद जयपुर आर्ट स्कूल में शैलेन्द्रनाथ दे और रामगोपाल विजयवर्गीय के तत्त्वावधान में कला प्रशिक्षण लिया। वहाँ से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लेने के पश्चात् ये बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए और वहाँ से भी डिप्लोमा प्राप्त किया। सृजन की ईहा इन्हें विदेश ले गई और लन्दन के स्लेड स्कूल में इन्होंने अध्ययन किया। वाश, टेम्परा, जलरंग, तैलरंग—सभी पद्धतियों में इन्होंने प्राकृतिक दृश्यों—आकाश-पृथ्वी, पर्वत-पठार, नदी-नाले और उनके परिप्रेक्ष्य में आकृतियाँ उभारी हैं। इन्होंने पौराणिक एवं ऐतिहासिक विषयों पर भी अनुसन्धान किया है और अनेक चित्रों में यह प्रभाव द्रष्टव्य है, किन्तु बाद में विदेशी कला परम्पराओं के प्रभाव ने इन्हें यथार्थ वादी से अभिव्यंजनावादी एवं वस्तु-निरपेक्ष बना दिया।

इनके अनेक चित्र मनोवैज्ञानिक हैं जिनमें मानव संवेदनाओं का सूक्ष्म विश्लेषण दर्शाया गया है। 'भिखारी' की दयनीय स्थिति का बोधक इनका सुप्रसिद्ध चित्र ऐसे ही सूक्ष्म तथ्यों का उद्घाटन करता है। राजस्थान ललित कला अकादेमी द्वारा समय-समय पर आयोजित कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं और बोर्ड के सदस्य भी हैं। आजकल महाराणा भोपाल कालेज, उदयपुर में फाइन आर्ट्स विभाग के रीडर के पद पर कार्य कर रहे हैं।

रामनिवास वर्मा

जोधपुर के सुप्रसिद्ध कलाकार रामनिवास वर्मा 'टेम्परा' और 'वाश' पद्धति के क्षेत्र में विशेष दक्षता रखते हैं। इनका दृष्टिकोण यथार्थवादी है। किन्हीं रूढ़ मतवादों व सुस्थिर परम्पराओं को प्रश्रय देकर नहीं, वरन् दृश्यवस्तु के साक्षात् दर्शन द्वारा निर्माण के क़ायल हैं। इन्होंने प्राचीन कथा-प्रसंगों से अपने विषय चुने हैं जो दैनंदिन जीवन और लोक परम्परा का भी निर्वाह किया है। गाँव-गाँव, नगर-नगर में घूमकर इन्होंने स्केच लिये, अनेक नारियों की भंगिमाएँ और पुरुष पात्र बहुतायत में आँके, जिनमें अपेक्षाकृत स्त्रियों की सौन्दर्य-मुद्राओं को प्राधान्य दिया गया हैं।

इनका बचपन जोधपुर में बीता। इनके पिता स्टेशन मास्टर थे, अतएव कोलाहल भरे जनसंकुल वातावरण में दृश्यबहुल प्रसार में बालक की रुचि का विकास हुआ। कागज़ पर पेंसिल से रेखाएँ आँकने का शौक़ इन्हीं दृश्यों से प्रेरित हुआ। इन्हें पिलानी दाखिल करा दिया गया जहाँ भूरेसिंह शेखावत के तत्त्वावधान में इन्होंने कला-प्रशिक्षण प्राप्त किया। लोक परम्पराओं में अभिरुचि और उसके माध्यम से कला-स्तर को उन्नत बनाने की ईहा इनमें जग गई थी। उसी को विकसित करने और आगे अध्ययन के लिए ये शांति-निकेतन चले गए। नन्दलाल वसु के कुशल निर्देशन में मौलिक कला-रूपों को हृदयंगम करने में सहायता मिली। परम्परा के आधार को लेकर नवीन भावनाओं की संयोजना द्वारा कला सम्पुष्ट एवं सबल होती है। फलतः अपनी मौलिक प्रतिभा द्वारा नव्य शैलियों के प्रवर्त्तन में इनकी अधिकाधिक रुचि केन्द्रस्थ होती गई।

वर्मा ने अपने चित्रों में प्रायः मिट्टी से बने सामान्य रंगों का प्रयोग किया है। वाटर कलर और पेस्टल रंगों के मिश्रण से 'वाश' पद्धति को निखारा है। नीले, पीले, धूसर रंगों से आकृतियाँ सजीव बन पड़ी हैं। दृश्य चित्रों में अनेक रंगों के मिश्रण से पृष्ठभूमि परिपक्व बनाने का प्रयास किया गया है। ये कागज़ और सिल्क लाईनिंग भी काम में लाते हैं। भित्तिचित्रण में भी ये दक्ष हैं, आयताकार तल (surface) पर चुने प्रसंग के वैविध्य-विस्तार में आस्था रखते हैं, जहाँ कुत्सा और कुरूपता से परे 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की साधना ही इनका ध्येय और विधेय है, कारण—कलाकार की कूची कुरुचि उत्पन्न न करे, वरन् दर्शक की आँखों में एक कौंध, एक ज्वाज्ज्वल्य प्रकाश भर दे।

कृष्ण-जन्म (जन्माष्टमी पर्व महोत्सव)
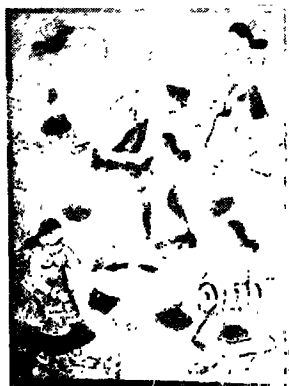
रासलीला

परम्परावादी पद्धति के चित्रों के लिए इन्होंने 'टेम्परा' का प्रयोग किया। पौराणिक प्रसंगों, लोकरंजक दृश्यों और प्राचीन कथाओं के चित्रण में इन्होंने जलरंग एवं तैलरंग इस्तेमाल किये, वैसे ग्राफिक में तो ये स्वभावतः दक्ष हैं ही। खासकर भगवान कृष्ण की लीलाओं में इन्होने राजस्थानी शैली को प्रश्रय दिया। कृष्ण जन्म, रासलीला, राधा की प्रतीक्षा में कृष्ण, कृष्ण विरहरत राधा, कृष्ण और गोपियाँ—इस प्रकार अनेक रंग-रूपों में आकर्षक चित्र सृष्टि की। इनके चित्रों की विशेषता है एक गहरी आत्मीयता और भावुक संवेदनशीलता जो देखने वाले पर सीधा प्रभाव डालती है। ये मध्ययुगीन पारम्परिक शिल्प-शैलियों के आधार पर एक निजी शैली को विकसित करने का प्रयास कर रहे हैं। ये उस जीवन में अटूट विश्वास रखते है जो दिन-प्रतिदिन सुन्दर से सुन्दरतर व सुन्दरतम होता जाए। वही वस्तुतः आनंदोपासक कलाकार की दुनिया है। ये जीवन की विभीपिका अथवा संघर्षों से नहीं घबराते, पर संघर्षों की ओट में आधुनिकता के नाम पर इन्होंने अपनी कला को कभी विरूप नहीं किया।

उस्ता हिसामुद्दीन

बीकानेर के उस्ता हिसामुद्दीन प्राचीन पारम्परिक कलाओं एवं शास्त्रीय पद्धति के जाने-माने कलाकार हैं जो पुरातन के हामी होते हुए भी आधुनिक ढंग से आगे बढ़ने का प्रयत्न कर रहे हैं। इनके परिवार में पुश्त-दर-पुश्त हस्त-

शिल्प की परम्परा चली आ रही है। ये बहुत बचपन से ही अपने इस खानदानी व्यवसाय में लग गए और अपने पिता से शिक्षा प्राप्त करते रहे। शुरू में इनके पूर्वज जैसलमेर के एक गाँव में बसते थे, किन्तु दुर्भिक्ष के कारण इन्हें एक दिन यह गाँव छोड़ना पड़ा और सभी मुलतान आकर रहने लगे। अपनी दक्ष कलाकारिता और अथक श्रम-साधना द्वारा मुग़ल दरबार से इनका सम्पर्क जुड़ा और उस्ताद कहलाए जिससे इनके खानदान में 'उस्ता' उपनाम प्रचलित हो गया। कालान्तर में ये लोग बीकानेर नरेश राजा रामसिंह के संरक्षण में लगभग १६१२ से यहीं आ बसे और राजकीय चित्रकार के रूप में सम्मान प्राप्त किया।

हिसामुद्दीन इसी परिवार के वंशज हैं जो जन्मजात संस्कार लेकर कला-क्षेत्र में अवतीर्ण हुए। भित्ति-चित्रण, प्रासंगिक दृश्यावली, कथाख्यान, नक्काशी, पात्र-अलंकरण, चित्रकारी, मूर्तिशिल्प और बारीक बेलबूटाकारी में ये स्वभावतः निष्णात हैं। इन्होंने मिट्टी, पत्थर, हाथीदाँत, लकड़ी, काँच, धातु, ऊँट की खाल पर प्रयोग किये हैं, यहाँ तक कि शुतुर्मुर्ग के अंडे जैसी नाजुक चीज़ पर इन्होंने अलंकरण किया है। भांडासार के जैन मन्दिर में अपने पिता मुरादबख्श के साथ इन्होंने जैन ग्रन्थों के कथा-प्रसंगों और धार्मिक आख्यानों को लेकर भित्ति-चित्रण में सहयोग दिया। यह प्रामाणिक और समीपी अभिज्ञता अपने अन्तर में उतारकर इन्होंने सहज बना लिया। तत्पश्चात् बीकानेर शैली, राजपूत एवं मुग़ल शैली को माँजा। बीकानेर के प्राचीन किले के चन्द्रमहल और फूलमहल की प्राचीरों, द्वारों और लकड़ी की शहतीरों पर राग-रागिनियाँ और धार्मिक प्रसंगों की अनुकृति चित्रित करने में इन्होंने सहयोग दिया। जयपुर की ख़ासा कोठी पर उमर खैय्याम की एक रुबाई और सिसोदिया रानीबाग में राधाकृष्ण की छवि को काँच पर अंकित करने में इन्होंने हाथ की सफाई का परिचय दिया। लैक़र-पेंटिंग तो इनकी ख़ास 'हाबी' है।

हिसामुद्दीन उस्ता राजकीय छात्रवृत्ति पर बड़ौदा के टेकनिकल इंस्टीट्यूट में विशेष अध्ययन करते रहे। प्रचार-प्रसार और प्रदर्शन से दूर कला की एकान्त साधना में इन्होंने बहुत कुछ सीखा-समझा है। पुस्तक-सज्जा, चित्रकारी, शिल्पकारी, नक्काशी आदि सूक्ष्म चित्रांकन को इन्होंने साधा और सफलता पूर्वक सामने रखा। इन्हें राष्ट्रपति अवार्ड भी प्राप्त हुआ। काफी अर्से से राजकीय कला संग्रहालय में ये वरिष्ठ कलाकार के बतौर कार्य कर रहे हैं।

द्वारकाप्रसाद शर्मा

ये भी बीकानेर के गण्यमान्य कलाकार हैं। इनके पिता तो संगीत कला के साधक थे, किन्तु ये अपनी ननिहाल में कुछ ऐसे वातावरण में पले जहाँ पुश्तैनी चित्रकारी का मोहल्ला था। उस्ता परिवार से इनका घनिष्ठ सम्पर्क था, वरन् उन्हीं के पास बैठकर इनकी सृजन-चेतना विकसित हुई। किसी स्कूल-कालेज की शिक्षा से नहीं बल्कि स्वयं साधना एवं अनवरत श्रम से इन्होंने अपने अभ्यास को आगे बढ़ाया। आजीविका के लिए इन्होंने मन्दिर-सज्जा एवं व्यक्ति-चित्रों पर काफ़ी समय तक काम किया। चिर संघर्ष के बाद जयपुर के सवाई मानसिंह कालेज में ये वरिष्ठ कलाकार के पद पर नियुक्त हो गए।

तैलरंगों मे पारम्परिक पद्धति पर इन्होंने कितने ही चित्रों का निर्माण किया। किन्तु बाद में ये आधुनिक चित्रण की ओर भी आकृष्ट हुए। कोई भी कलाकार अतीतजीवी या भविष्यजीवी बनकर नहीं जी सकता। समसामयिकता की ओर उसका झुकाव अवश्यंभावी है। कई बार बदला हुआ परिवेश स्वयं नये मूल्यों एवं आदर्शों की माँग करता है, नये प्रयोगों और तजुर्बों से स्वस्थ दृष्टि उपजती है, नये उन्मेष और परिवर्त्तन नये सन्दर्भ एवं आयामों की सृष्टि करते है। शर्मा जी न तो दकियानूसी हैं और न अत्याधुनिक। इनके 'माडर्न' कहे जाने वाले चित्रों में भी यथार्थवाद का पुट है। 'गौरी पूजा' जैसे परम्परावादी पद्धति के चित्र पर भी प्रशंसा व पुरस्कार प्राप्त हुआ है। दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कृषि मेले में इन्होंने राजस्थान के पंडाल की साज-सज्जा तथा भित्तिचित्रण का कार्य सम्पन्न किया। रवीन्द्र शताब्दी चित्र प्रतियोगिता में 'नौका डूबी' तथा 'युगदर्शन' पर इन्हें अकादेमी पुरस्कार मिला। दिल्ली एवं राजस्थान में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं।

ज्योतिस्वरूप

ये राजस्थान के सर्वथा आधुनिकतावादी कलाकार हैं जो 'एब्स्ट्रैक्ट' एवं 'एक्सप्रेशनिस्ट' प्रणाली पर चित्र-निर्माण करते हैं। पिकासो, वैंगाफ और पाल क्ली से प्रभावित है और पेरिस की नव्य कलाधाराओं से प्रेरित ये नित-नये प्रयोग व परीक्षण करते रहते है। आधुनिक कलाकार, जो वर्त्तमान में जीवित है, उसे स्वभावतः युग-सापेक्ष्य होना चाहिए। वास्तविकता का खुली आँखों साक्षात्कार कर अपने दृष्टिकोण बदलने, अपने 'विज़न' का परिष्कार

करने के लिए सन्नद्ध रहना चाहिए। इसी कसौटी पर इन्होंने अपनी क्रियात्मक भावना को 'कैन्वास' पर अंकित किया है।

कला के प्रति इनकी सहजात रुचि थी, वैसे इनके परिवार के लोग चाहते थे कि ये एक सफल इंजीनियर बनें। जोधपुर इंजीनियरिंग कालेज में ये दाखिल भी हो गए थे, किन्तु ऐसी यांत्रिक पढ़ाई में इनका मन नहीं लगा, फलतः चित्र-सृजन में आगे प्रगति करने के उद्देश्य से इन्होने वहाँ की पढ़ाई छोड़ दी और इसी दिशा में प्रवृत्त हुए। सुप्रसिद्ध कलाकार कँवल कृष्ण और उनकी पत्नी देवयानी कृष्णा के सम्पर्क में इन्होंने कला की गूढ़ताओं को हृदयंगम किया। उन्हीं दिनों ग्राफिक एवं सिरेमिक्स का अभ्यास किया। जलरंग, तैलरंग, पेंसिल और विभिन्न रंगों के रासायनिक मिश्रण से इन्होंने सैकड़ों आधुनिक ढंग के चित्रों का निर्माण किया है। इनके रंग व रेखाओं की अनुरूप संस्थिति अपना विशिष्ट प्रभाव लिये हैं। 'आन्तरिक जंगल' नामक सीरीज़ में सौ से भी अधिक चित्र हैं जो बहुप्रशंसित हुए हैं। इनकी 'शिवशक्ति' नामक एक दूसरी सीरीज़ है जिसमें कल्पना के माध्यम से एक नये संसार की संरचना का प्रयास है। ज्योति स्वरूप को अनेक चित्रों पर राजस्थान ललित कला अकादेमी द्वारा पुरस्कार उपलब्ध हुए हैं।

लक्ष्मणराव रामचन्द्र पेंढारकर

दृश्य कला के मर्मज्ञ पेंढारकर रियलिस्टिक (वास्तववादी) कलाकार हैं जो हूबहू चित्रण में कमाल दर्शाते हैं। खासकर ब्रुशवर्क में ये दक्ष हैं। प्रकृति के कतिपय रूपों एवं नज़ारों को आत्मस्थ करके अपनी रंग एवं कूची से इन्होंने साकार किया है। अरूपवादी अर्थात् 'एब्सट्रैक्ट' आर्ट पर भी इन्होंने प्रयोग किये हैं, पर वहाँ भी प्राकृतिक उपादानों में इनकी वृत्ति एकनिष्ठ रही है।

बम्बई के सर जे.जे. स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने शिक्षा ग्रहण की, पर कला में पैठ और संवेदनशील अनुभूति इनकी दृश्य वस्तुओं के सम्पर्क में ही प्रखर हुई। घुमक्कड़ प्रकृति के व्यक्ति हैं। सम्पूर्ण दृश्य का आस्वादन इनकी 'हाबी' है। उसी की खोज में ये इतस्ततः घूमते रहते हैं। बिखरे नज़ारों को चित्रबद्ध करने की यह लालसा कभी-कभी इतनी दुर्निवार हो उठती है कि ऐसा लगता है कि कलाकार की तूलिका वातावरण के साथ समरस हो उठी है। जहाँ भी बोध के नये क्षितिज खुले हैं इनकी वृत्ति और दृष्टि भी अधिक गतिशील और तत्पर

हो उठी है । ऐसी स्थिति में अर्थात् परिवेश से जुड़कर नये प्रयोगों के प्रति वह अधिकाधिक प्रश्नाकुल हो उठा है। यों व्यापक सन्दर्भों में कला के औचित्य और सार्थकता की तलाश के साथ पेंढारकर सदा आगे बढ़ने के लिए सचेष्ट रहे हैं।

सखालकर

अजमेर के सुप्रसिद्ध कलाकार सखालकर, जो डी० ए० वी० कालेज के कला विभाग के अध्यक्ष हैं, काफी अर्से से इस दिशा में प्रवृत्त हैं। राजस्थानी कला पर इनका गंभीर अध्ययन है। अपने चित्रों में इन्होंने वैविध्य का परिचय दिया है। एक तपे-तपाये बुजुर्ग कलाकार होने के बावजूद इन्होंने आधुनिकता को भी प्रश्रय दिया है। कारण—एक शिक्षक के नाते इन्होंने सभी प्रणालियों को माँजा है और व्यापक अनुभूति के स्तर पर प्रयोगपरक रुख अपनाया है। इन्हें अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है।

पारस भंसाली

जोधपुर अंचल के कलाकार पारस भंसाली मुख्यत: परम्परावादी कलाकार है और व्यावसायिक तौर पर इन्होंने कला-साधना की है। राजस्थानी संस्कृति ही इनका प्राण है और वैसी ही इनकी रुचि रही है, पर इधर नवीन धाराओं की ओर भी इनका ध्यान आकृष्ट हुआ है। सृजन समय को अंकित करता है और समय पलटकर उसकी धारा मोड़ता रहता है। 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' आदि पत्रों में इनके बड़े आकर्षक चित्र निकलते रहते हैं। इन्हें भी राजस्थान अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हो चुका है।

ओमदत्त उपाध्याय

नाथद्वारा के कलाकार हैं। आधुनिक टेकनीक पर पिछले कुछ वर्षों से काम कर रहे हैं, फिर भी अपनी खोजों एवं जिज्ञासाओं से सन्तुष्ट नहीं हो सके। नये की तलाश में ये हमेशा अन्वेषी बने रहे। उत्पीड़ित, 'भयाक्रांत व कुंठित की अमूर्त्त अभिव्यक्ति नहीं, वरन् रंग एवं रेखाओं के नये ढंग के प्रयोग द्वारा आकृतियाँ उभारी हैं। इनमें मात्र आक्रोश का तीखापन नहीं, अपितु मौलिक संभावनाओं की पकड़ का शौक है जिसमें इन्होंने अपना मार्ग स्वयं निर्धारित किया है।

अन्यान्य कलाकार

राजस्थान के कलाकार सदा परम्परा प्रेमी रहे हैं, पर इधर कुछ ऐसे उत्साही नवयुवक कलाकार हैं जो आधुनिकता के हामी हैं और नित-नये प्रयोगों में निष्ठा रखते हैं। यह वर्ग कला के आस्तिक मूल्यों तक ही सीमित नहीं है, वरन् विघटनकारी तत्त्वों के प्रति भी सचेत है। वे प्राचीन परिकल्पना को कला का समग्र रूप नहीं मानते, उनका तर्क है कि परम्पराबद्ध होने के कारण उनके कृतित्व में समसामयिक यथार्थबोध नही है, अतः प्रकारान्तर से वे विघटन के विश्लेषण द्वारा जीवन के संघटन की नये ढंग से व्यंजना करना चाहते हैं।

रंजन गौतम

बीकानेर के उदीयमान कलाकार हैं जो नई चेतना और मौलिक बुद्धि के धनी हैं और नई प्राणवत्ता के साथ इस दिशा में अग्रसर हुए हैं। 'चाँद की पीड़ा', 'शांतिदूत की मौत' तथा अकाल पीड़ितों के चित्रण में आज की कुंठा व संघर्ष की झाँकी है। इन्होंने लोकचित्रों और रोज़मर्रा के विषयों तथा जनजीवन के सामान्य प्रसंगों को भी आँका है और ऐसे चित्रों पर इन्हें अकादेमी पुरस्कार प्राप्त हुआ है। स्वस्तिक एवं तांत्रिक प्रतीकों पर भी इन्होंने काम किया है।

आर० बी० गौतम

'स्टिल लाइफ' में हल्के-गहरे रंगों द्वारा अपनी एक खास शैली का विकास इन्होंने किया है। ऐसे चित्रों पर राजस्थान ललित कला अकादेमी ने पुरस्कृत भी किया है। पारम्परिक प्रयोग इन्होंने किये है, पर आज की क्रमभग्न, विशृं-खल एवं ऊहापोहभरी परिस्थितियों में कला के बदले हुए पैमाने कुछ ऐसे हैं जिन्होंने कलाकार के दिमाग को झकझोरा है अर्थात् संघर्ष की पृष्ठभूमि से पनपी कला परम्परागत पूर्वाग्रहों की जटिलता में आसानी से नहीं पैठ पाती, अतः समय के रुख के साथ अनियंत्रित बहना पड़ता है।

गौतम के प्रारम्भिक चित्रों पर महाराष्ट्र व सौराष्ट्र की संस्कृति का प्रभाव है। कारण—कुछ अर्से तक इनका प्रवास बम्बई व गुजरात में रहा। 'पुजारिन', 'उल्लासनृत्य', 'सारंगीवाला', 'श्रृंगार' जैसे चित्रों में मर्यादा व गरिमा है, किन्तु ज्यों-ज्यों ये आगे बढ़े संघात और कशमकश में इन्होंने निजी मौलिकता मुखर की। आधुनिक संत्रास, कुंठा, पीड़ा, आतंक इनके इधर के

चित्रों में द्रष्टव्य है। 'एक पुरानी गुफा से' जैसे चित्रों में इनके आक्रोश की गहराई और आंतरिक अनुभूति की प्रखरता व्यंजित हुई है।

एस० कृष्ण

राजस्थान के संघर्षशील कलाकार है जो स्वयं साधना और प्रयत्नों से आगे बढ़े हैं। कला की ओर इनकी नैसर्गिक रुचि थी, किन्तु परिवार ने विरोध किया। ये बग़ैर उनकी सहमति के बाहर निकल पड़े। कला इनके जीवन की युगपथ साधना है। ये संघर्षों मे हारे नही आगे बढ़ते रहे और डिप्लोमा प्राप्त किया। रंग एवं रेखाओं की अनुगूंज में इन्हें एक मानवीय संदेश सुन पड़ा।

इनके शुरू के चित्रों पर रामगोपाल विजयवर्गीय का प्रभाव है। 'केशसज्जा', 'शुकप्रिया', 'अभिसारिका', 'शृंगार', 'गुब्बारे वाला' आदि चित्रों में राजस्थानी ढंग है। राजस्थान की ज़िन्दगी, रहन-महन, चाल-ढाल, रस्म-रिवाज को हृदयंगम करने का इन्हें उस समय मौका मिला जब कि ये कला-रूपों की खोज में दर-दर भटक रहे थे। कैसे-कैसे विचित्र लोगों से इन्हें साबक़ा पड़ा और कैसी विचित्र परिस्थितियों से ये गुज़रे। राजस्थान, बिहार, बंगाल के गाँव-गाँव, नगर-नगर मे घूम कर इन्होंने सैकड़ों स्केच बनाये। इन्होंने यहाँ के लोक-जीवन को विविध कोणों से प्रस्तुत किया है।

लाख को पिघलाकर उसके छींटों से तथा मिट्टी के मिश्र घोलों तथा दूधवाश व मोनोक्रोम वाश पर इन्होंने प्रयोग किये हैं। इन्होने आधुनिक पद्धति पर मूर्त्तियाँ भी गढ़ी हैं। अमृत शेरगिल और शैलोज मुखर्जी की शैली से प्रभावित कुछ अर्से तक ये काम करते रहे जिसमें 'मेघदूत' की आदमक़द चित्र-सीरीज़ महत्त्वपूर्ण है। इन्होंने दिल्ली में कला-मन्दिर की स्थापना की है जहाँ ये कला-साधना के साथ विभिन्न ललित कलाओं को भी प्रश्रय दे रहे हैं।

राजस्थान में इधर अनेक नये उभरते कलाकार न केवल प्राचीन संस्कृति, वरन् नई विचार-धारा के क़ायल हैं। कुछ ऐसी प्रतिक्रिया है उनमें जो विगत परम्परा का मोह त्याग कर पश्चिम के एब्स्ट्रैक्ट मैनरिज़्म के सहारे पैर जमाने की कोशिश कर रहे हैं। **रणजीत सिंह**—ऐसे ही युवक कलाकार हैं जो निजी मौलिकता को प्रश्रय न देकर पश्चिम की नकल पर आगे बढ़ने की चेष्टा कर रहे हैं। आज की जटिल मन.स्थितियों, अस्पष्ट आकारों, आकार-भ्रष्ट बिम्बों ने सृजन की असंगति और विरोधाभासों को इस क़दर रूपायित किया है कि

कलाकार के आकारों में टूटन और विशृंखलता है, पर कुछ ऐसे भी हैं जो प्राचीन-अर्वाचीन दोनों ढंग से काम कर रहे हैं। पिलानी के युवक कलाकार **जगदीश वर्मा**—जलरंग, तैलरंग, वाश, टेम्परा, चाकू से इटालियन पद्धति और हाथ से बनाये देशज रंगों का प्रयोग करते हैं। इन्होंने वनस्थली और पिलानी में भित्तिचित्रों का निर्माण किया है। 'मेघराज', 'तानसेन की स्वर लहरी', 'मज़ार पर', 'प्रेमपाती', 'हंसदूत', 'पनघट से', 'मालिन', 'ओखली का संगीत' आदि इनके द्वारा निर्मित चित्र भारतीय परम्परा और राजस्थानी जन-जीवन के चित्र हैं। बिड़ला द्वारा इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया जा चुका है। सुप्रसिद्ध कलाकार रामगोपाल विजयवर्गीय के सुपुत्र **मोहन लाल गुप्त** भी शादर्शवादी पद्धति पर रेखांकन चित्रकारी में बड़े दक्ष हैं और राजस्थानी जन-जीवन की झाँकियाँ प्रस्तुत करना इनकी 'हाबी' रही है।

इस समय ग्राफिक कला के प्रति भी विशेष लगाव है। रामनिवास वर्मा के अलावा उनके किशोर पुत्र **देवेन्द्र वर्मा** भी इस दिशा में प्रयोगशील हैं और अकादेमी द्वारा पुरस्कृत हो चुके हैं। **नारायण आचार्य** ने ग्राफिक पद्धति पर कतिपय उत्कृष्ट कृतियाँ निर्मित की हैं और **तिलकराज** भी इसी दिशा में सफलतापूर्वक अग्रसर हो रहे हैं तथा एकाधिक बार अकादेमी पुरस्कार भी प्राप्त कर चुके हैं। **गणेश वशिष्ठ, भवानी शंकर, शैल कुमार, बल्लभ, बी० के० राय** आदि तरुण उत्साही कलाकारों का ग्रुप किसी शैली से बँधकर नहीं चल रहा, वरन् उन्मुक्त पथ का राही है।

गुजरात के कलाकार

गुजरात की कला लोक-संस्कृति के रूप-परिवर्त्तनों के साथ-साथ नित-नये तत्त्वों को ग्रहण करती हुई आगे बढ़ी है। यहाँ की भव्य संस्कृति और महान् परम्पराओं में ही कला फूटी और भाव-आलोड़न पैदा हुआ। यहाँ के जनजीवन में वहुरंगी सौन्दर्य की झलकियाँ हैं तो मातृभूमि के रजकणों में प्यार की गंध। रांगोली का प्रचलन यहाँ की धरती की क्रोड़ में लोक-कला का प्राथमिक प्रयोग है जिसमें राष्ट्रीय संस्कृति की सच्ची झाँकी है।

घर की बड़ी-बूढ़ियाँ ब्राह्म मुहुर्त्त में घर एवं द्वार झाड़-पोंछकर विशेष पत्थर के चूर्ण से रंग-बिरंगी आकृतियों का निर्माण करतीं। उनकी धारणा थी कि भगवान ब्राह्म मुहूर्त्त में द्वार-द्वार विचरते हैं। जो घर साफ-सुथरा व कलात्मक होता है वहीं भगवान का वास है। गृहिणियों ने भगवान को रिझाने के लिए तरह-तरह की रंग-रेखाओं व विन्दुओं से चित्रकारी करना सीखा और तब से आज तक यह मान्यता चली आ रही है।

कला के पुनरुत्थान का सूत्रपात जब राजा रवि वर्मा से हुआ तो गुजरात भी पीछे न था। यहाँ भी समानान्तर कला-चेतना उद्‌बुद्ध हुई। राजा रवि वर्मा को आमंत्रित कर बड़ौदा महाराज के लिए कुछ पेंटिंग बनवाई गईं। तत्पश्चात् नंदलाल वसु को 'कीर्त्ति-मंदिर' में भित्ति-चित्रण के लिए और प्रमोद कुमार चटर्जी को 'कलाभवन' में चित्रकारी का प्रशिक्षण देने के लिए ससम्मान बुलाया गया। तत्कालीन बड़ौदा महाराज, जामनगर के जाम साहब तथा अन्य शासक व अमीर-उमरा कला-प्रेमी तो थे, पर विदेशी रंग में रँगे हुए थे। अपने देश की प्राचीन कला थाती और परम्पराओं से अनभिज्ञ वे पश्चिमी कलाकारों से सैकड़ों चित्र बनवाते थे। राजमहलों और धनिकों के विशाल भवनों की दीवारें प्रायः ऐसे ही चित्रों से सुसज्जित थीं।

१९०७ में अहमदाबाद के एक कला-अध्यापक **मगन लाल शर्मा** ने कुछ मौलिक कृतियाँ तैयार कीं, पर दूसरे अधिकांश कलाकार सस्ते सृजन और छिछले अनुकरण में ही दिलचस्पी लेते रहे। 'कलाभवन' के अतिरिक्त यहाँ कोई अन्य संस्था न थी। जो विद्यार्थी कला का प्रशिक्षण लेना चाहते उन्हें बम्बई के

सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में जाने के लिए विवश होना पड़ता। प्रिंसिपल सोलोमन के आने से पूर्व इस आर्ट स्कूल की स्थिति भी ठीक न थी और वांछित वातावरण न मिल पाता।

गुजरात कला की प्रस्थापना का श्रेय दो व्यक्तियों को है—एक तो **आर० वी० धुरंधर** जिन्हें सुप्रसिद्ध लक्ष्मी प्रिंटिंग प्रेस के मालिक सेठ पुरुषोत्तम मावजी ने 'स्वर्णमाला' नामक पुस्तक सीरीज़ को चित्रित करने बुलाया था—दूसरे **हाजी मोहम्मद सिवजी** जिन्होंने 'बीसवीं सदी' नामक गुजराती भाषा में यह पत्रिका चालू की। इसके माध्यम से उन्होंने अनेक तरुण कलाकारों को प्रोत्साहन दिया। लाठी के **कुमार मंगलसिंह** ने सौराष्ट्र की ठेठ शैली पर अलंकरण चित्रकारी की। **वी० भगत** और **खोदीदास परमार** ने बिना किसी नियमित कोर्स के यूनीवर्सिटी व नेशनल एकेडेमी अवार्ड प्राप्त किया।

सन् १९२५ में **जगन्नाथ अहिवासी** ने अपनी मौलिक उद्भावनाओं से कला-पथ प्रशस्त किया। उनके कितने ही शिष्य-प्रशिष्यों ने भिन्न-भिन्न दिशाओं में अपने प्रयोगों द्वारा स्थानीय कला को समृद्ध एवं बहुमुखी बनाया। पर उसी समय प्रतिनिधि के रूप में एक और सच्चा कलाकार रंगमंच पर अवतीर्ण हुआ जिसने कलाधारा को सर्वथा नई दिशा में मोड़ दिया।

रविशंकर रावल

रविशंकर रावल का जन्म सन् १८९२ में भावनगर में हुआ और प्रिंसिपल सी० एल० बर्न्स के तत्त्वावधान में बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में उन्होंने कला की शिक्षा प्राप्त की। अपना मार्ग स्वयं बनाने वाले प्रत्येक संकल्पशील व्यक्ति के मार्ग में जैसे रुकावटें आती हैं और वह धैर्य एवं दृढ़ता से उनका डटकर मुकाबला करता हुआ अग्रसर होता है, उसी प्रकार रावल को भी बाल्यावस्था में कितने ही विघ्नों एवं अवरोधों का सामना करना पड़ा। उनकी स्वभावतः सौन्दर्योन्मुख प्रवृत्ति थी और उनका बालक-मन निगूढ़ कल्पनाओं में विभोर अपने आस-पास, घर-बाहर, धरती-आकाश, ऊपर-नीचे सर्वत्र सौन्दर्य का दर्शन करना चाहता था। राजा रवि वर्मा के धार्मिक एवं पौराणिक चित्रों से प्रेरणा प्राप्त कर रंगों से खुलकर खेलने की आकांक्षा इनमें तीव्र हो उठी। गुजरात उन दिनों कला से अछूता था और लोगों की रुचि इस ओर न थी। लेकिन पत्र-पत्रिकाओं में इधर-उधर अजंता, एलोरा,

राजपूत और मुगल शैली के चित्र इन्हें देखने को मिल जाते थे। बड़ौदा के कला-संग्रहालय में यूरोपीय चित्रों और ग्रीक मूर्तियों के अध्ययन का इन्हें

यम-नचिकेता

सुअवसर मिला। शनैः शनैः इनमें सौन्दर्य बोध की क्षमता जगी। पाश्चात्य कला-टेकनीक की अपेक्षा भारतीय कला के संस्कारों और अपने यहाँ की लोक-कला, लोक-गीत एवं रागों से इन्हें अधिक तादात्म्य का अनुभव हुआ। ये उन्हीं की साधना में जुट गये। सन् १९१७ में बम्बई की आर्ट सोसाइटी से स्वर्णपदक जीतकर इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा का परिचय दिया। यह पदक इन्हें 'विल्व मंगल' चित्र पर प्रदान किया गया जो जयपुरी पद्धति पर निर्मित हुआ था। 'गुर्जर सुन्दरी, 'गरबा गुजरात' और गुजरात के प्रख्यात उपन्यास 'सरस्वतीचन्द्र' का एक प्रसंग चित्रित करने के उपलक्ष्य में सूरत में साहित्य-मंडल के साथ कला-प्रदर्शनी के आयोजन के अवसर पर एक दूसरा पदक इन्हें प्राप्त हुआ। बाद में ये अहमदाबाद में बस गये और लगातार नियमित, दृढ़ एवं कठोर परिश्रम से गुजरात में कला के पुनरुत्थान में पर्याप्त सफलता प्राप्त कर सके। गुजराती पत्रों और पुस्तकों में इन्होंने अपने कलाचित्र देकर उन्हें सुसज्जित किया और उनकी उपयोगिता बढ़ाई। श्री के० एम० मुंशी के प्रसिद्ध ऐतिहासिक नाटकों पर इनकी पेंसिल चित्रकारी बहुत सुन्दर है। कला-पुनरुत्थान आन्दोलन को सबल एवं सुदृढ़ बनाने के लिए और जनता में कला की अभिरुचि जाग्रत करने के लिए उन्होंने सन् १९२४ में श्री बचुभाई रावल के सहयोग से 'कुमार' पत्र निकालना प्रारम्भ किया। इस गुजराती

कलात्मक पत्रिका ने पश्चिमी भारत में प्राचीन भारतीय कला को समुन्नत बनाने में बहुत कुछ हाथ बँटाया और गुजरात के कई प्रसिद्ध कलाकारों को प्रकाश में लाने का श्रेय प्राप्त किया। एक और दूसरी कलात्मक पत्रिका 'बीसवीं सदी' में जिसका कि सूत्रपात हाजी मोहम्मद सिवजी के हाथों हुआ था, बहुत से चित्रों और कला-कृतियों को प्रकाशित कर इन्होंने सर्व-साधारण में कला का अभूतपूर्व प्रचार एवं प्रसार किया।

सन् १६३६ में रावल ने सुदूर-पूर्व की यात्रा की और जापान व चीन

राजा दिलीप

के प्रमुख कलाकारों से परिचय प्राप्त किया। अपनी यात्रा डायरी 'कलाकारनी संस्कार यात्रा' में इन्होंने स्वनिर्मित अनेक कला-चित्र प्रस्तुत किये है और सुदूर-पूर्व भारतीय कला की तुलनात्मक शैली की विवेचना की है। इसके अलावा उन्होंने ज्ञान-वृद्धि के लिए अनेक लेक्चर टूर किये। रावल कला की व्यापक जानकारी के लिए सदैव लालायित रहते हैं। अपने विचारों और आदर्शों को दूसरों पर लादने की अपेक्षा वे उनकी खूबियों और विशेषताओं को स्वयं ग्रहण करने में अधिक सुख का अनुभव करते हैं। उन्हीं के शब्दों में, 'मैं तो चित्र कला का उपासक हूँ और कला के आविष्कार के उपादान या साधन भले ही भिन्न प्रकार या स्वरूप धारण करें, तथापि कला के जन्म-स्थान की पृष्ठभूमि चित्त की स्वयंभू अनुभूति, अहोभाव या आश्चर्य ही बनी रहती है। इसीलिए कला विशेषतः मानव चेतना के अन्तस्तल की उपज है।

१८ वीं सदी में यूरोप की कला में क्रान्ति हुई। नये सिद्धान्तों का आविष्कार हुआ। उन सिद्धान्तों के अनुसार प्रवल कल्पना और नवीन सृष्टि के स्पष्ट दर्शन करने वाले को वाह्य जगत के अनुसर्जन या दृश्याकृतियों की अधीनता की आवश्यकता नहीं। वे रंग और रेखाओं की धूम मचाकर प्रभावित करना चाहते हैं। जन्तर-मन्तर रचना जैसी उनकी रेखाओं की आयोजना अथवा वर्तुल संरचना एवं रंग इतने गहन और क्रूर होते है कि उनसे अपेक्षित विचार, भाव या ऊर्मि को भावक ग्रहण ही नहीं कर पाता। उनमें संक्रान्त होने की तो बात ही

दूर रही। चित्र में प्रस्तुत भाव, ऊर्मि या रूप अथवा अगोचर मनोमन्थन को योग्य लयबद्ध स्वरूप में प्रकट करने में ही उसके साधनों और योजनाओं की सफलता मानना चाहिए।'

विश्व में कला का धर्म एक ही प्रकार का हो सकता हैं और वह यह कि लोकमानस की व्याकुलता को हरण करके उसे स्वस्थता और आनन्द का अनुभव कराना, कुछ समय के लिए मानव को संसार से मुक्त करके भावसृष्टि में खींच ले जाना।

कलाकार के सम्बन्ध में इनकी बड़ी ऊँची धारणा है। निष्प्राण वस्तु में कलाकार प्राणों का संचार कर देता है, शुष्क में जीवन रस ढाल देता है और असुन्दर को वह सौन्दर्य का अमूल्य अवदान दे देता है। इनका अभिमत है कि जब कलाकार की तूलिका चित्रण के व्यवहार में लाई जाती है तो एक नवीन कम्पन और लहर सी पैदा कर देती हैं। यही स्याही हवा के पंखों पर विचरती है।

फूल की सुकुमारता अथवा हवा के झकोरे में लहराते एक नन्हे से तिनके का चित्रण कलाकार को एक रसानुभूति का अनुभव कराता है। उसकी तूलिका अपनी कला में इतनी दक्ष है कि एक साधारण कीट से लेकर विशालकाय मगर की रचना भी उसी से हो सकती है। ऐसे क्षण उसकी कला की प्रतिद्वन्द्विता असंभव है। अतएव इन्होंने एक अन्य स्थल पर कहा है—

'कला का अभ्यास भले ही तुमसे उसकी उपासना में न हो सके, परन्तु जब तुम उसके उपासक की संगति में जाओगे, तब अवश्य ही तुम्हें उसके मनोवैभव का नया ही आभास मिलेगा।

यदि आप कलाकार के सान्निध्य में रहेंगे, तो आप उसके कर्म-कौशल से आकृष्ट और मुग्ध हुए बिना नहीं रह सकते कि कैसी दक्षता और एकाग्रता के साथ वह चित्र-सर्जन करता है। रंगों के लय-विलय, रेखाओं के आरोह अवरोह और कर्मनिरत अंगुलियों के नर्तन को निहारकर आप अपूर्व आल्हाद अनुभव करेंगे। चित्रकार रंगों के संवाद और विसंवाद से परिवर्तित होने वाले विविध प्रभावों की बात आपसे कह सकेगा। वह आपको बता सकेगा कि उसकी अपनी कृतियों में तथा जगत के अन्य चित्रों में आकर्षण का कौन-सा विषय छिपा हुआ है। वह आपको यह भी बता सकेगा कि वे कृतियाँ अमर क्यों

कहलाती हैं। स्वयं देखे हुए कला-तीर्थों और कलाकारों की रसपूर्ण कथाएँ वह आपको सुनायेगा। वह यदि आपकी सहृदयता, रसिकता और मातृ-भावना से अनुप्राणित आर्ट हो जाएगा तो आपके निवास-गृह में आकर उसे अपने कला के प्रसाद से प्रमुदित और पावन कर देगा। परन्तु कला का सबसे महत्त्वपूर्ण प्रयोजन तो प्राणी को प्रबुद्ध रखना है। हम लोग प्राणों के

प्रबोधन की बात प्रायः भूल जाते है। बस, उसी की कमी को पूर्ण करने के लिए संसार में कलाकार का सम्पर्क बहुत आवश्यक है। यही उसका सबसे बड़ा प्रयोजन है।'

कला के आपेक्षिक तत्त्वों की अक्षुण्णता, रंग एवं रेखाओं का अनुरूप सौष्ठव, परिष्कृत एवं प्रांजल रुचि तथा शाश्वत उपलब्धियों पर आस्था यही इनके सृजन के मूलाधार हैं। सृजन से पवित्र कुछ भी नहीं। सच्चा लगाव व निष्ठा कलाकार की नैसर्गिक क्रिया है जो तादात्म्यलब्ध ज्ञान व साक्षात् प्रतीति द्वारा वस्तु को स्वयमेव मूर्त्त एवं गोचर बना देती है। वातावरण और ऋतुओं की रंगारंग झलक विश्वात्मा की झलक है जो हमारे प्राणों में प्रतिबिम्बित है। अविचल साधना, तन्मयता और गूढ़ चिन्तन की एकाग्रता से ही सच्ची कला उजागर होती है। रावल भारत की कला-चेतना में एक नैतिक एवं मानसिक परिवर्त्तन देखना चाहते है। उनकी कला में एकीकरण की भावना है। दीर्घकालिक परम्पराओं की दिग्दर्शक जो कला रची गई उसे इन्होंने कई दृष्टिकोणों से अपने चित्रों में सजीव कर दिखाया जो इनके प्राणों से आविर्भूत हुई और कला की अमूल्य थाती है।

इनकी अन्तरात्मा में कला के प्रति जो सच्चा अनुराग और उपासना का भाव है उसकी अभिव्यक्ति समम-समय पर हुई है। वे कलाकार के लिए कला साधना की सुविधाएँ, उपयुक्त स्थान और आवश्यक साधन-सामग्री को उपादेय मानते हैं। 'कला चाहती है—अविराम उपासना। चित्त की तन्मयता के बिना भव्य कलाकृति नहीं बन सकती' इनके मत में कलाहीन जीवन थोथा और निस्सार है। सौन्दर्य ही विश्व को तरल और स्पन्दित करता है। वह संजीवनी शक्ति है जो बुझते प्राणों में जीवन की लौ जगा देता है। उनका कथन है 'कला
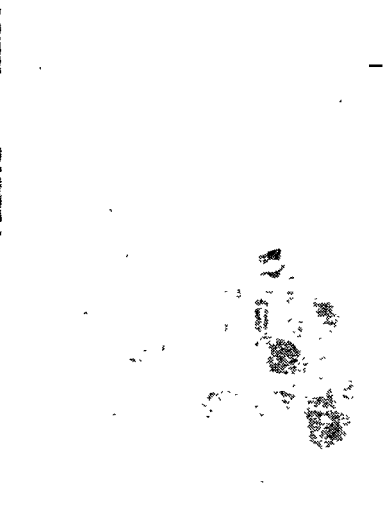
भक्त मृग गुजरात के अखा भक्त

भी कला के रसिकों की प्रतीक्षा किया करती है। वह अरण्य में, एकान्त में, खिलनेवाली जंगली कलिका नहीं, वह तो मनुष्य द्वारा प्रकट की हुई अन्तःकरण की ज्योति है, जो भक्ति और साधना की यज्ञवेदी के सामने जल रही है, अतः हमारा यह कर्त्तव्य होना चाहिए कि इस ज्योति के पावन प्रकाश और परिमल से अपने जीवन को नया प्राण और नई प्रेरणा प्रदान करें जिससे वह हमारी श्रांति, उदासीनता और निराशा को दूर करता रहे। मानव-हृदय में अनुकम्पा और बंधुता को उपजाता रहे तथा चहुँ ओर की प्रकृति में व्याप्त एवं प्रफुल्लित सौन्दर्य का अनुभव करावे, भान करावे। इस प्रकार का अनिर्व-

चनीय अनुभव प्राप्त करने के लिए हम अतिशय उत्सुक हों तभी मानस उसके प्रति अनुरक्त हो सकता है। कला की साधना प्रधानतया भक्ति का पाथेय चाहती है।

सौराष्ट्र की कृषक कन्या

महाराणा प्रताप (अजंता शैली पर निर्मित एक भित्तिचित्र)

रावल ने कलाप्रेमी युवकों और विद्यार्थियों को सदैव गले लगाया और कला के लिए उत्प्रेरित किया है। उन्होंने 'गुजरात कला सघ' की स्थापना कर कला के व्यापक प्रचार का भी प्रयास किया। उनके तत्त्वावधान में निकले हुए बहुत से विद्यार्थियों की आज के प्रमुख कलाकारों में गणना है। सुप्रसिद्ध कलाकार कनु देसाई, सोमालालशाह, जिनकी कि मिट्टी की दीवारें और ग्राम्य जीवन का सूक्ष्म अध्ययन बहुत ही रोचक और दिलचस्प है, रसिकलाल पारीख, जो कि वुड-कट चित्रकारी और लाइनकट चित्रकारी में सिद्धहस्त हैं, जे० मिस्त्री, टी० पंचोली, भिकुभाई आचार्य और कृष्णलाल भट्ट आदि इनके प्रमुख शिष्य हैं।

इसके अतिरिक्त इनके शिष्यों का दूसरा संप्रदाय छगनलाल जादव, जो कि प्रसिद्ध लैंडस्केप आर्टिस्ट हैं, बंसी, जो कि एक सफल व्यंग चित्रकार हैं और रवि शंकर पंडित जिन्होंने कि नर्सरी और बच्चों की पुस्तकें लिखी है आदि का है। सरिता नानवती, अवंतिकाबेन, भद्र देसाई, शांतिशाह, हीरालाल खत्री और

चन्द्र शंकर रावल आदि ने भी इन्हीं के द्वारा शिक्षा प्राप्त करके कला के क्षेत्र में सफलता प्राप्त की है।

अहमदाबाद में दूसरी संस्था 'ज्योति संघ' की स्थापना भी इन्हीं के तत्त्वावधान में हुई। यहाँ से शांत देसाई, रत्न प्रभा, कांताबेन और शकुंतला आदि कई कलाकार महिलाएँ निकलीं। उनके बहुत से शिष्य-शिष्याएँ आजकल स्वतन्त्र चित्रकारी कर रहे हैं और पश्चिमी भारत में भारतीय कला को नित-नया पुनर्जीवन एवं शक्ति प्रदान कर रहे हैं।

'विल्व मंगल', 'प्रेम संगीत' और 'भारत माता' रावल की प्रसिद्ध चित्रकृतियाँ हैं। इनके दो चित्र 'नरसिंह मेहता' और दार्शनिक सुनार 'अक्खो' लाइटवाश शैली में बनाए गए हैं। इसके अतिरिक्त मीरा और अन्य संतों के बहुत से चित्र भी उन्होंने बनाए हैं। सर माधवलाल चिनुभाई के यहाँ जो इनके द्वारा चित्रित अजंता कन्दराओं की चित्रकारी प्रदर्शित की गई है वह कला का अत्युत्कृष्ट उदाहरण है। अपना पूरा मकान इन्होंने कलाकृतियों से सुसज्जित कर चित्रमय आवास बना दिया है। इन्होंने अपने जीवनकाल में अनेकों कलात्मक एवं साहित्यिक गोष्ठियों का नेतृत्व किया है और अपने भाषणों, लेखों और चित्रों द्वारा भारतीय कला को व्यापक बनाया है। भारतीय कला में सत्यं, शिवं सुन्दरम् को प्राप्त करने का प्रयास है जिसकी कोई सीमा या इयत्ता नहीं है। कला के वाह्य उपादानों की उपेक्षा कल्पनातीत आभ्यन्तरिक सौन्दर्य का दिग्दर्शन ही इनकी विशेषता है। 'अजंता ना कला चित्र' नामक इनकी कृति में इसी चरम निष्पत्ति की अखण्ड साधना है। इन्होंने कन्हैयालाल माणिकलाल मुंशी के ऐतिहासिक उपन्यासों और गुजरात के प्रसिद्ध कवि 'कलापी' के पदों को चित्रित कर महत्त्वपूर्ण कार्य किया हैं। आज के अन्धानुकरण की अतिशय प्रवृत्ति और मिथ्या तत्त्वों के पाश से सर्वथा मुक्त हो इन्होंने भारतीय कला की अमर सम्पदा के भीतर से प्रगतिशील उदात्त उपादानों को अभिव्यक्ति प्रदान की है, किन्तु नवीन कलात्मक चेतना के साथ-साथ परम्परागत लाक्षणिक और शास्त्रीय कला की प्राणवाहिनी और आत्मान्वेषी भाव धारा को ही मर्यादित कगारों के मध्य प्रवाहित किया है। अपनी पुस्तक 'कला-चितन' और 'चित्र-सृष्टि' में कला और जीवन सम्बन्धी अपने अनुभवों और विचारों को उन्होंने इतने सुन्दर ढंग से व्यक्त किया है कि उनकी महानता और कार्यक्षमता का सहज ही अनुमान किया जा सकता है।

कनु देसाई

जीवन के अद्भुत क्षणों में स्मृतिजन्य भावावेश में ही कला का स्रोत है। कलाकार की अन्तर्दृष्टि जब सीमाहीन सौन्दर्य को निरख एक रहस्य बन कर

जीवन-लय

अस्पष्टता में टँगी रह जाती है तो हृदय के किसी अलक्ष्य तार में सिर से पैर तक डुबा देने वाला स्वर बज उठता है, हृदय का आकाश उज्ज्वल आलोक से भर जाता है, भावना के छाया पथ में इतने बिम्ब-प्रतिबिम्ब और इतने चित्र उभर आते है कि मन अपने को इस स्वप्न लोक में, किसी सुषमा के संधान में लीन कर देना चाहता है। गूढ़ चिन्तन-रत शान्त चित्त में उसकी प्रतिक्रिया के फलस्वरूप पूर्वानुभूत भावावेश का अभिनव स्फुरण होता है और कलाकार का

जीवन-सोपान

द्रौपदी

मानस भावापन्न हो उठता है। कनु देसाई आधुनिक गुजराती लोकरंजक कला के प्रतिनिधि शैलीकार है। इनकी कला में जीवन के गूढ़ तत्त्व सन्निहित हैं, साथ ही समूची संस्कृति के शाश्वत जीवन रूपों में तदाकार होने की प्रवृत्ति है। इन्होंने प्रतिदिन की सामान्य अनुभूतियों का कलात्मक ढंग से सुन्दर चित्रण किया है। इनकी कला उत्कृष्ट है, इनकी दृष्टि पैनी है, इनके बने चित्रों को देखने से इनकी कल्पना का चमत्कार और रंग रूप देने की कुशलता और प्रतिभा का परिचय मिलता है। विवाह से पूर्व इन्होंने प्रेम, आनन्दाभूति और विवाह-सुख एवं प्रेम-परिणाम के जो आकर्षक, काल्पनिक चित्र प्रस्तुत किये थे वे अब सच्चे दाम्पत्य और प्रेम-रस का आस्वादन कर वास्तविक आनन्दानुभति की मधुरिमा से ओतप्रोत हैं। इनके बनाये कई चित्रों में वैवाहिक जीवन की सुखद रंगीनियाँ, प्रगल्भ भरी स्मृतियाँ और सच्ची, सरल अनुभूतियाँ बिखरी पड़ी हैं।

'उपहार' नाम के चित्र में कलाकार ने एक नवयौवना पत्नी को प्रथम प्रसव के पश्चात् अपने पिता के घर से लौटा हुआ चित्रित किया है। पत्नी अपने व्यग्र, आतुर नवयुवक पति को जिसने कि हर्षातिरेक से अपनी दोनों भुजाएँ फैला दी हैं और आनन्दोल्लास में भरा हुआ अपनी प्राण-प्रिया का मुख निहार रहा है, उसे वह अपनी हृदय की अमर निधि पुत्र भेंट कर रही है। नवयुवती के मुख को देखने से ज्ञात होता है कि उसके हृदय में नवीन आशाएँ, नवीन उमगें उभर रही है। वह अपने आप ही अपने से मानो कह रही है—"यह हमारे पारस्परिक प्रेम का प्रतीक है। गुरुजनों का आशीर्वाद हम दोनों की सच्ची साधना और एकमेक आत्मा के सम्मिलन सुख के रस-स्वरूप बालक में साकार हो उठा है।"

'पालना' चित्र कृति में जीवन का मधुर संगीत प्रवाहित हो रहा है। माता पालने की डोर पकड़े हुए ख-स्वप्नों में विचरण कर रही है। पालने में से बालक का झांकता हुआ सिर बहुत ही प्यारा लगता है। 'दादी' चित्र में बृद्धा की अन्तर्हित इच्छाएँ, आकांक्षाएँ, अतीत की मधुर स्मृतियाँ अनायास ही सजग हो उठी है और प्रेम में बेसुध वह नव दम्पति को आशीर्वाद दे रही है।

कनु देसाई जीवन के कलाकार हैं। इनमें कलाकार और जीवन-समीक्षक का अद्‌भुत समन्वय है। फलतः इनकी प्रत्येक कलासृष्टि व्यावहारिक जीवन की प्रेरणा से अनुरंजित है। जीवन की विद्रूपता के बीच अपनी अनुभूतियों को निरावरण व्यक्त कर देने की कला में ये सिद्धहस्त हैं। अपनी एक कलाकृति में इन्होंने माता-पुत्र के पारस्परिक प्रेम का अनूठा चित्रण किया है। माँ आनन्द

और प्रसन्नता से भरी अपने प्यारे पुत्र की फूटती हुई हँसी का अवलोकन कर रही है। गुजराती महिला होने के कारण उसकी साड़ी भी उसी प्रकार की है। मुख पर दैवी आभा और सौजन्य दृष्टिगत होता है।

कनु देसाई का चित्र 'फेस्टीवल आफ लाइफ' अर्थात् जीवन मंगल एक भव्य कला कृति है। जीवन की विभीषिकाओं एवं विफलताओं से त्रस्त मनुष्य की कल्पना बालक की चंचलता और सरल क्रीड़ा में परित्राण पाती है। जगत् की पाण्डुर धूम्र वर्ण यवनिका की छाया में, बालक की मनोहारी छटा, आनन्द की रंगीनियों से भरा हुआ उसके अल्हड़, सरल हृदय का मधुर प्रकम्पन, उसकी उत्फुल्ल श्वाँसों की पुलक, उसके रसीले, चंचल नेत्र, उसकी प्यार में डूबी मीठी-मीठा बातें शुष्क, निर्जीव प्राणों को भी हरा कर देती हैं। बालक के अन्तर में आन्तरिक प्रसन्नता का निर्झर सदैव प्रवाहित होता रहता है। बालक ही अमीर-गरीब, छोटे-बड़े, राजा-रंक के भेद को अपने में अंतर्गूढ़ कर लेना चाहता है। बाल्यावस्था का मधुर संगीत सुन कर जो सुख का अनुभव नहीं करता, वह अभागा है, निष्प्राण और निस्पन्द है। यूं बालकों की भोली दुनिया में कनु विचरे हैं।

सुख-समृद्धि और शांति का प्रतीक

अपनी एक और कलाकृति 'फेरी टेल' अर्थात् 'परियों की कहानी' में कनु देसाई ने अपनी सूक्ष्म-दर्शिता और मौलिक प्रतिभा का परिचय दिया है। समस्त वातावरण को परिस्थिति के अनुरूप चित्रित करने में सूक्ष्म कौशल और अंतर का गुह्यतम भाव बरबस इनके चित्रों में अभिव्यक्ति पाता है। 'फेरी टेल'

में रात्रि का सुन्दर चित्रण है, जब दिन भर की अशान्ति और शोर कुछ शान्त हो गया है, लोगों के दिलों में रहस्यपूर्ण, अन्धकारमय वातावरण, विचित्र कल्पनाएँ और नवीन स्वप्नों को जगा रहा है। अनिश्चित काल से इस रात्रि की नीरवता और निर्जनता ने न जाने कितनी कहानियों और कथाओं को जन्म दिया है। रात्रि की स्नेहमयी छत्रच्छाया में बच्चे मनोरंजक कहानी सुनते हैं और उनकी माताएँ उनसे सुनाने की प्रेरणा प्राप्त करती है। इसमें किंचित् भी सन्देह नहीं कि परियों की कहानी सुनने में बच्चों को जो आनन्दानुभूति होती है, वह बड़ों को एक विशाल साम्राज्य की प्राप्ति पर भी नहीं होती।

इसी प्रकार कनु देसाई के अन्यान्य चित्रों में भी विचित्र अनुभूतियाँ और हृदय की स्निग्ध भावनाएँ क्रीड़ा कर रही हैं। सूक्ष्म भाव-चित्रण इनकी कला की विशेषता है। अपनी हृदय-पटी में प्रतिक्षण भावचित्रों को हौले-हौले आँक कर कूची और कलम के सहारे अभिव्यक्ति की आत्म-विह्वलता में न जाने कितने भाव, कितने यथार्थ चित्र, कहाँ के और कब के सँजोये अनुभव इन्होंने कागज पर उँड़ेल दिये हैं। महान् कलाकार के लिए यह आवश्यक है कि उसकी अनुभूति-सामर्थ्य विस्तृत हो। कनु देसाई का कलाकार ऐसी क्षमता रखता है। तभी तो इनके सुघड़ और कलात्मक हाथों ने इस अर्से में बहुत कुछ सजाया-सँवारा और भारतीय कला को बहुत कुछ देकर युग प्रवर्त्तक कलाकार का स्थान ग्रहण किया है।

कनु देसाई का जन्म अहमदाबाद के एक निर्धन परिवार में हुआ। इनकी माँ एक कुशल रेखाकर्त्री और घर आंगन की सुसज्जा में विशेष दक्ष थी। माँ की गोद में बैठकर, उसके चरणों में लोटकर और उसकी स्नेहच्छाया में इन्होंने भी बचपन में ही रेखाओं का कमाल सीख लिया। इनके चाचा इससे सहमत न थे, पर बच्चे की जन्मजात अभिरुचि का उपशमन न हो सका, वह अधिकाधिक रेखाओं व रंगों की दुनिया में डूबता गया। इनकी प्रतिभा को पहचान कर इन्हें शांतिनिकेतन भेज दिया गया जहाँ इन्हें कला के वैविध्य और उसकी सूक्ष्मताओं का गहरा अध्ययन करने का मौका मिला। शांतिनिकेतन से लौटकर गुजरात विद्यापीठ में ये ड्राइंग-अध्यापक नियुक्त हो गए और कुछ ही समय बाद इन्हें कला-विभाग का अध्यक्ष बना दिया गया।

इसी संस्था में कार्य करते हुए ये गांधी जी के सम्पर्क में आए और इन्होंने उनकी अनेक भाव भंगियों के चित्र बनाए। बापू ने एक बार इनसे कहा था, 'यदि तुम जनता का दिल नही छू सकते तो अपनी तूलिका को अलग उठाकर

रख दो।' बस, ये ही शब्द इनके जीवन के मूलमंत्र बन गए। यहाँ तक कि जनता के प्राण स्पंदनों को मुखरित करने के लिए ये रजतपट का सहारा लेने से भी न चूके। सर्वप्रथम प्रकाश पिक्चर्स की 'पूर्णिमा' फिल्म का कला-निर्देशन किया, तत्पश्चात् 'राधिका' 'गीत गोविन्द', 'विक्रमादित्य', 'रामराज्य', 'मीराबाई', 'बैजू बावरा', 'झनक-झनक पायल बाजे' आदि अनेक फिल्मों द्वारा सामान्य जन-जीवन के संघर्षशील मनों को अपनी रंजक छवियों और रंगों की बहार से आलोड़ित कर दिया। मांगलिक आयोजनों, लोकोत्सवों, क्रीड़ा-कौतुकों तथा व्यक्ति-व्यक्ति के भावना संकुल उद्वेलनों में इनका हृदय-स्रोत उमड़ पड़ा। धार्मिक भावना से उत्प्रेरित अंतरंग सत्य को इन्होंने न केवल रंग-वैभव में उँड़ेल दिया, अपितु अनेक प्रतिमाओं में भी इन्होंने अपनी भावाभिव्यक्ति को सजीव रूप में ढाला। गांधी जी विषयक कुछ रेखाचित्र 'भारत पुण्य प्रवास' में संग्रहीत हैं। 'सत्य को खोज में' इनका सर्वश्रेष्ठ चित्र है जिसको देशी-विदेशी दर्शकों ने भूरि-भूरि प्रशंसा की है। कनु देसाई अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति अर्जित कर चुके हैं और कितने ही देशी-विदेशी प्रदर्शनों में इन्होंने पुरस्कार एवं पदक प्राप्त किये हैं।

सोमालाल शाह

'मनुष्य का पार्थिव जीवन अनेक व्यवसायों से संकुल रहता है। उसमें साहित्य, संगीत और कला 'ऋतूनां कुसुमाकरः' की भाँति किसी विरल सौन्दर्य का अनुभव कराते हैं। इस प्रकार का जीवन वसंत क्यों आता है, कब आता है और किस प्रकार आता है—यह एक अति पुरातन प्रश्न है। परन्तु उसके आगमन के साथ ही वन-उपवन में कोकिलाएँ कूक उठती हैं, विहंग-वृंद आनन्दोन्मत्त होकर वातावरण को आल्हादमय बना देते हैं, भ्रमरावली फूल-फूल पर गूँज उठती है। ऐसे वसंत के आगमन की उपयोगिता अथवा हेतु का विचार करने के लिए कोई नहीं बैठता। इसी प्रकार कला भी जीवन का एक मधुर कूजन है। देश-देश में जैसे वसंत आता है, उसी प्रकार देश-देश की कला कलाकार के हृदय में विकसित होती है और समाज को सौन्दर्य, माधुर्य तथा संस्कारों का उत्तराधिकार प्रदान करके जीवन को उर्ध्वगामी बनाती है।'

ये शब्द हैं सुप्रसिद्ध गुर्जर शिल्पी सोमालाल शाह के जिन्होंने अपने शिल्प-सौष्ठव और सृजन सौम्यता से गुर्जर कला को समृद्ध बनाया है, अपनी सच्ची निष्ठा और अनवरत साधना द्वारा उन्होंने कला के क्षेत्र में अद्भुत सौम्यता

और शान्ति का उद्रेक किया है, उच्छृंखल मादकता से परे मनोरम एवं चारु सृष्टि की है, लोक जीवन के मधुर कोमल पक्षों का उद्‌घाटन किया है, साथ ही इनकी सौम्य चेता आत्मा ने द्विविधाग्रस्त, शंकाकुल एवं गोपन प्रवृत्तियों से परे खुली, निर्बाध भावनाओं को रंग एवं रेखाओं में बाँधा है। अपनी वर्ण-योजना और सरल एवं सुस्पष्ट प्रतिपादन-पद्धति द्वारा नई टेकनीक को गुर्जर कला एवं संस्कृति के ज्वलंत प्रतीक के रूप में उजागर किया गया है।

नाग दमन

आधुनिकता के संक्रमण को वहन करते हुए इन्होंने व्यापक मानव जीवन को अपने सृजन में रूपायित किया—यही उनकी विशेषता और जीवन का ध्येय एवं विधेय है।

सोमालाल शाह ने गुजरात के खेड़ा ज़िले में कपड़वंज नामक कस्बे में एक मध्यम वर्ग के अनाज व्यापारी के यहाँ जन्म लिया जो कला के संस्कारों से कोसों दूर था। किन्तु बालक में शुरू से हो प्रतिभा के अंकुर थे जो कुछ उच्च संस्कारशील लोगों के सम्पर्क में पल्लवित हुए। एक वरिष्ठ शिक्षक हरिलाल देसाई बड़ौड़ा से कपड़वंज में आ बसे थे और उन्होंने एक पुस्तकालय की स्थापना भी की थी। उन्हीं की प्रेरणा से इनमें कला की स्रोतस्विनी फूट पड़ी। पुस्तकालय के एकान्त, शान्त कोने में पुष्कल वाचन सामग्री और कलामय चित्रों ने इनके प्राणों में पुलक भरी और कल्पना-प्राचुर्य को प्रश्रय दिया। मैट्रिक परीक्षा उत्तीर्ण करने के पश्चात् जब गुजरात कालेज में प्रविष्ट हुए तो कला गुरु रविशंकर रावल के निकट सम्पर्क में आए। आर्थिक परिस्थितियाँ अनुकूल न होने के कारण इन्हें अनेक संघर्षों का सामना करना पड़ा, किन्तु बाद में ये बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए। वहाँ बहुमुखी कला

प्रवृत्तियों के अध्ययन द्वारा इन्हें ज्ञान-वृद्धि का अवसर मिला और गुजराती साहित्य परिषद के आठवें अधिवेशन में इनकी एक कलाकृति 'प्रभु के चरणों में' पर स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। बम्बई आर्ट स्कूल के सर ग्लैडस्टन सोलोमन के ये प्रिय शिष्यों में से थे। उनके तत्त्वावधान और स्नेहच्छाया में ये बंगाल स्कूल की सूक्ष्मताओं में पैठे, पर इन्होंने वहाँ के लक्षाणिक प्रयोगों को अपनी प्रादेशिक संस्कृति में संश्लिष्ट कर अपनाया।

बम्बई से बड़ौदा लौट आने के पश्चात् ये स्थानीय कला भवन में प्रमोद कुमार चटर्जी के निकट सम्पर्क में आए। उन्हें ही इन्होने अपना सच्चा प्रेरक कला गुरु माना। यहाँ की शिक्षा-दीक्षा समाप्त कर ये कलकत्ता के इंडियन सोसाइटी आफ ओरियिटल आर्ट्स संस्था में दाखिल हुए जहाँ इन्हें अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, नन्दलाल वसु जैसे कला-मनीषियों का साहचर्य और तत्त्वावधान प्राप्त हुआ। शिक्षा समाप्त कर ये बड़ौदा के दक्षिण मूर्त्ति विद्यालय में कला- शिक्षक नियुक्त हो गए। विद्यालय के शान्त वातावरण में इन्हें गंभीर साधना का मौका मिला। इनके चित्रों का संग्रह 'रंग-रेखा' उसी समय की देन है जिससे इनके भावी दिशा-निर्धारण में सहायता मिली।

गायें

इस विद्यालय के बन्द होने पर कुछ अर्से तक घर शाला (होम स्कूल) में काम करने के पश्चात् एल्फ्रेड हाई स्कूल में चित्रकला से सम्बद्ध हो गए। इनके विषय अधिकतर धार्मिक और सांस्कृतिक होते हैं, सौराष्ट्र के जन जीवन से प्रेरित कितने ही प्रसंग इनके चित्रों में मुखर हुए। 'राधिकानृत्य', 'देवयानी' 'अहिल्या', 'अशोक बाटिका में सीता' 'अंजनी-पवन', 'कुंती और कर्ण 'नागदमन' 'छैया, 'ग्वालिन', आदि कतिपय चित्र सांस्कृतिक भावनाओं के प्रतीक हैं, दैनन्दिन जीवन के चित्र भी इन्होंने बनाये और पक्षी-जीवन की बारीकियों पर दृष्टिपात

करते हुए तो इन्होंने तीन सौ चित्रों की चित्रावली तैयार की जो भाव नगर नरेश के छोटे भाई धर्मेन्द्र कुमार सिंह की प्रेरणा से तैयार की गई थी। रंग और आलेखन में इनकी भाव गरिमा का सर्वत्र परिचय मिला है। इनकी प्रसिद्ध कलाकृति 'ग्वालिन' विदेशी दूतावास के लिए भ:रत सरकार द्वारा क्रय की गई और इनकी अनेक सुन्दर कृतियों पर समय-समय पर देश-विदेश द्वारा पुरस्कार एवं पदक प्राप्त हुए हैं।

धीरेन गांधी

कला के क्षेत्र में अपने अन्य सहयोगियों के सदृश ही धीरेन गाँधी भी कलात्मक शैली और आदर्शों का पालन करने में प्राचीन रूढ़िवाद के समर्थक हैं और आधुनिकता में बरबस बह जाने के लोभ को संवरण करते आ रहे हैं। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा शांतिनिकेतन में हुई और नंदलाल बोस के तत्त्वावधान में इन्होंने कला की बारीकियों और गहराइयों में पैठना सीखा। धीरेन को अपने देश की शुद्ध परम्परागत कला-पद्धति के आधार पर चित्रकारी करना ही अधिक रुचिकर है। इन्हें भारतीय कला की समृद्धता पर गर्व है, अपने देश की कला के प्राचीन आदर्शों को अपनाने में इन्हें अत्यंत सुख और संतोष का अनुभव होता है, वरन् इन्हें कुछ इस प्रकार की झक सी पड़ गई है कि वे शुद्ध भारतीय शैली में ही चित्रकारी करें और इस नियम का पालन करने में वे इतने दृढ़ प्रतिज्ञ हैं कि जैसे कुछ आधुनिक कलाकार अपने आदर्शों और सिद्धान्तों से ज़रा भी पीछे हटने में अपनी हेठी समझते हैं।

धीरेन की परम्परागत कला-शैली में भी नूतन से नूतन अनुभव ओर सरस भाव झलकते मिलते हैं। धीरेन के लिए प्राचीन भारतीय कला अनंत की प्रेरणा है, जीवन का पराग-मधुर सौरभ है, आत्मा की पुकार है, चेतना की अभिव्यक्ति है, कोमल अनुभूतियों का प्रकम्पन है, उसी के द्वारा वह अपनी भाव मंजूषा को खोलकर लोगों के समक्ष रख देते हैं। अल्पायु में ही इन्होंने अपनी विलक्षण प्रतिभा से सबको चकित कर लिया है। इनकी कला में उत्कंठा, एकाग्रता, तन्मयता तीनों का सुन्दर एवं सफल सामंजस्य है।

बम्बई में 'रूपायतन' कला संस्था गांधी जी के आदर्शों और सिद्धांतों के अनुसार चल रही है, जिसका संचालन गाँधी जी के पौत्र-धीरेन और नवीन-ये दोनों भाई करते हैं। परोपकार और सेवा इस संस्था के मूलमंत्र हैं। इसका प्रबंध भार न तो जनता ही सँभालती हैं और न तो कोई उत्तरदायित्वपूर्ण

व्यक्ति ही। युवक कलाकारों की प्रेरणा, प्रोत्साहन और सेवा भावना ही अनेक वर्षों से इस संस्था का भार वहन कर रही है।

इस संस्था में वे बालक, जिनका स्वाभाविक झुकाव कला और चित्रकारी की ओर है, निःशुल्क शिक्षा प्राप्त करते हैं।

इस संस्था के संस्थापक ये दोनों भाई धीरेन और नवीन प्रारम्भ से ही गाँधी जी के सरक्षण और देखभाल में पाले गए। उनके द्वारा ही ये पहले अहमदाबाद में रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में कला की शिक्षा प्राप्त करने के लिए भेजे गए, तत्पश्चात् शांतिनिकेतन में नंदलाल बोस द्वारा चित्रकारी सीखने के लिए इन्हें भेज दिया गया। छोटे भाई धीरेन में बड़े भाई नवीन की अपेक्षा प्रारम्भ से ही कलात्मक सजगता अधिक विद्यमान थी, अतएव वे चित्रकारी में अधिक सफल हो सके, जबकि नवीन ने शिल्पकला में प्रशंसनीय प्रगति की। आजकल 'रूपायतन' में धीरेन कला के शिक्षक हैं और नवीन उसके प्रेरक और संचालक। एक और कलात्मक मनोवृत्ति की बहिन, जिन्होंने कि अपना समस्त जीवन गरीबों और असहायों की सेवा में अर्पित कर दिया है, संस्था की सराहनीय सहायता कर रही हैं।

धीरेन गाँधी द्वारा निर्मित महात्मा गाँधी की दो चित्रकृतियाँ बहुत ही उत्कृष्ट और सुन्दर बन पड़ी हैं और एक महान् आत्मा की उच्चाशयता और गहराई को व्यक्त करती हैं। धीरेन की कला अनूठी और प्राचीन रम्यता को नया स्वरूप प्रदान करने वाली है। उसमें स्पष्टता और सरलता है, साथ ही आत्म-सजगता की अभिव्यक्ति भी। इनकी पेंसिल और रेखा चित्रकारी भी अत्यत आकर्षक और अपने ढंग की बेजोड़ है। इनकी रेखाएँ बहुत ही सुनिश्चित, गहरी और सुव्यवस्थित होती हैं।

धीरेन की प्रारंभिक कृतियों में नंदलाल बोस की कला का प्रभाव झलकता है, तथापि विषय की सचारुता और शैली का ढंग उनका अपना निराला ही है, उस पर इनकी व्यक्तिगत प्रतिभा की विशिष्ट छाप है।

'परिश्रांत पथिक' और अन्यान्य चित्रों में सामान्य विषय होते हुए भी कलाकार की रहस्यमयी आकुलता को व्यक्त करते हैं।

'राजगृह में बुद्ध' और 'शकुन्तला' शांतिनिकेतन की शैली पर बनाई गई चित्रकृतियाँ हैं और उनमें हृदय की कोमल भावनाएँ अन्तर्निहित हैं। 'मृग' चित्र में प्राकृतिक दृश्यवली की शोभा का सुन्दर निदर्शन है।

कलाकार धीरेन सरल, निष्कपट, निश्छल और निर्द्वन्द्व अभिव्यक्ति के हामी हैं। उनके जीवन का मधुर-स्वप्न—एक सबसे बड़ी आशा एवं आकांक्षा बापू के आदर्शों और पदचिह्नों का अनुसरण करना है, यही नहीं वरन् वे उस

पथ के राही बनना चाहते हैं, जो चिरन्तन सत्य और कला की अमरता की ओर उन्मुख करने वाला है ।

रसिकलाल पारीख

मौजूदा परिस्थितियों की सम्पूर्ण जटिलता को इन्होंने आंतरिक तीव्रता के साथ ग्रहण किया अर्थात्, संघर्ष को वैयक्तिक परिधि से परे एक अधिक व्यापक स्तर पर पकड़ने का प्रयास किया। यही कारण है कि इनके प्रतिपाद्य विषय युग और परिवेश के भीतर से दृश्य वस्तुओं के रूपान्तरण और कालगत संभा-वनाओं के प्रतीक हैं। इनके प्रौढ़तर प्रयोगों में सृजन की कसौटियाँ उत्तरोत्तर बहुमुखी होती गई हैं, किन्तु इनके काम करने का ढंग बड़ा ही सादा है। दैनन्दिन घटनाओं, प्रसंगों और सार्वकालिक समस्याओं पर इन्होंने दृष्टिपात किया है और चिरंतन द्वन्द्वों को बड़ी सहजता से आँका है।

धान की ताजी फसल

१६ मई, १९१० में गुजरात प्रान्त के राजपीपला में इनका जन्म हुआ। कला की ओर जन्मजात रुचि थी। हर अनुकूल-प्रतिकूल वातावरण में इन्होंने अपने अभ्यास को परिपुष्ट बनाया। तत्पश्चात् आगे अध्ययन के लिए ये राजपीपला से अहमदाबाद आगए और रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में कार्य किया। १९३०-३२ के दौरान मद्रास में ये पेंटिंग के प्रशिक्षण के लिए गए और उसके बाद बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में प्रवेश लिया।

बम्बई के प्रवास में देवीप्रसाद राय चौधरी जैसे कुछ वरिष्ठ कलाकारों के सम्पर्क में इनकी प्रतिभा को अनेक माध्यमों में मुखर होने का मार्ग मिला।

सामान्य जन-जीवन की कितनी ही झाँकियाँ इन्होंने आँकी हैं। जब कभी जीवन की कोई मर्मस्पर्शी संवेदना इन्हें कुरेदती है, फौरन रंग-रेखाओं में उभर आती है। कार्यरत नारी को विभिन्न मुद्राओं में दर्शाया गया है। अपने पोर्ट्रेटों में अनेक चेहरे, दृश्यचित्रों में प्राकृतिक वैभव और छवि अंकनों में लोकोन्मुख पद्धति को अधिकतर अपनाया है। ये आधुनक प्रणालियों की जद्दोजहद में कभी नहीं पड़े, न ही व्यक्ति और समाज के परस्पर विरोध और विघटन पर इनकी कला आधारित है, बल्कि सृजन की दिशा में

गरीबों का स्वर्ग

इनकी स्वस्थ प्रतिक्रिया है, जिसमें ज्यादातर स्वीकार ही होता है, निषेध नहीं। आनुपातिक आलेखन पद्धति और रंग-संतुलन इनका विशेष गुण है। तैलरंग, जलरंग, वाश, टेम्परा, ग्राफिक—सभी पद्धतियों में इन्होंने प्रयोग किये है। परम्परागत शैली पर निर्मित इनके अनेक चित्र प्रादेशिक संस्कृति के दिग्दर्शक हैं जिसमें कहीं आदर्शवाद तो कहीं यथार्थवाद के अनेक स्तरों का उद्घाटन हुआ है।

१९३४ में इन्हें बम्बई आर्ट सोसाइटी की ओर से स्वर्णपदक प्रदान किया गया और १९४२ में गुजरात का सम्मानित रणजीतराम स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। इन्होंने अनेक बार गुजरात में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं और देशी-विदेशी समसामयिक कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है। आजकल अहमदाबाद में सी० एन० कला महा विद्यालय के प्रिंसिपल के रूप में कला की बहुमुखी विकासमान धाराओं के अभ्युत्थान में ये योगदान कर रहे हैं।

शान्ति शाह

ये 'पोर्ट्रेट' और 'लैण्डस्केप' चित्रण में विशेष दक्षता रखते हैं। पूर्व और पश्चिम के विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् कर इनका वैचारिक धरातल विशद और मानवोन्मुखी है। पोर्ट्रेट में मनोभावों का सूक्ष्म निदर्शन और दृश्य चित्रणों में प्राकृतिक सुषमा का वैभव अनुरूप रंग एवं रेखाओं की सौम्य नियोजना में व्यंजित हुआ है। तैल और जलरंगों के माध्यम से विविध दृश्यावलियों के चित्रण में इन्होंने हरी-भरी, लहलहाती धरित्री माँ का प्यार उँड़ेल दिया, प्राणों की ताज़गी भर दी और वाह्य सौन्दर्य को अन्त.सौन्दर्य से दीप्त कर दिया।

इनकी स्वाभाविक रुचि भारतीय परम्पराओं की हामी है, पर इनकी 'एप्रोच' वैविध्यपूर्ण और बहुमुखी है। कहीं 'रियलिस्टिक' तो कहीं 'एकेडेमिक', विश्वास और निष्ठा में परम्परावादी तो बौद्धिक धरातल पर उपयोगिता और स्पष्टतावादी। बाहरी प्रभावों से ये अभिभूत हुए है, पर आधुनिकता के बवंडर में ये अपनी सृजन की दुनिया को नीरस और फीकी नहीं बनाना चाहते। कलाकार का सत्य, जो रंजक व प्रफुल्लता व्यंजक है, कृत्रिम कसौटियों की जकड़बन्दी में कैद नहीं हो सकता अर्थात् किंचित् धैर्य और सृजन-विदग्धता से उसे निषेध के उस निराकरण से उबारा जा सकता है जिसे उसने स्वयं पर आरोपित कर लिया है।

१६२२ में अहमदाबाद में जन्मे, वहीं के मांहौल में इनकी रुचियाँ परिष्कृत हुईं। मद्रास से इन्होंने डिप्लोमा लिया। १६५५-५६ में भारत सरकार की ओर से इन्हें स्कालरशिप प्रदान किया गया। तत्पश्चात् पश्चिमी जर्मनी और रायल नीदरलैण्ड गवर्नमेंट से स्कालरशिप प्राप्त हुए। इन्होंने म्यूनिक आर्ट एकेडेमी और एमस्टरडम की रायल एकेडेमी में चित्रकला का अध्ययन किया। अहमदाबाद, नई दिल्ली, कलकत्ता, मद्रास में इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित तो की ही, लन्दन, पेरिस, रोम, म्यूनिक, हेग, कोलम्बो में भी इन्होंने अपने चित्रों के प्रदर्शन किये। अखिल भारतीय और विदेशी प्रदर्शनियों में इन्होंने समय-समय पर भाग लिया और उत्कृष्ट चित्रों पर इन्हें पुरस्कार एवं पदक प्राप्त हुए।

मैसूर की स्टेट आर्ट गैलरी, मद्रास की नेशनल आर्ट गैलरी, नई दिल्ली की माडर्न आर्ट म्यूजियम, गुजरात के स्टेट एसेम्बली हाल और राजभवन में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। इसके अतिरिक्त त्रावणकोर के प्रिंस, पुडुकोटा के महाराज, कोटदासंगनी के राजा, विदेशी कूटनीतिज्ञों, राजदूतावासों, श्री कस्तूरभाई लालभाई के सुप्रसिद्ध संग्रहालय और देशी-विदेशी कलावीथियों व संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। गुजरात की ललित कला अकादेमी के सदस्य तो ये हैं ही, अन्य कला-आयोजनों और प्रदर्शनों में सहयोग देकर इन्होंने कला के अभ्युत्थान में गहरी दिलचस्पी और सक्रियता का परिचय दिया है।

छगनलाल जादव

१६०३ में इनका जन्म हरिजन जाति में हुआ। बड़ी गरीबी, संघर्ष और कठिनाइयों में बचपन बीता। आर्थिक परिस्थितियाँ अनुकूल न थीं, अतः अपनी भीतरी शक्तियों को उद्‌बुद्ध करने के प्रति वह शंकित हो उठा था। रविशंकर रावल के सम्पादकत्व में 'कुमार' नामक पत्रिका द्वारा उसे बेहद प्रोत्साहन मिला। नई-नई रंग-रेखाओं के सौन्दर्य में जैसे उसकी ज़िन्दगी का एक नया पृष्ठ खुला और उसकी छिपी हुई संभावनाओं को रूप ग्रहण करने के लिए रास्ता मिल गया।

यह पत्रिका उसके खौलते खून में विचित्र स्फूर्ति भरने वाली सिद्ध हुई। गुजरात हरिजन समिति और अखिल भारतीय हरिजन संघ ने इन्हें आर्थिक सहायता दी और ये लखनऊ स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए। यहाँ के नये

वातावरण का इन पर अच्छा असर पड़ा, क्योंकि समय की धारा में बहना इन्हें पसंद था। परिवर्त्तन और उतार-चढाव ही जीवन है, उसी से बहुमुखी दिशाओं में अग्रसर होने का पथ प्रशस्त होता है।

जादव मुख्यतः दृश्य चित्रकार हैं। जलरंग, तैलरंग और 'वाश' पद्धति में इनकी रंग-नियोजना बड़ी ही रंजक और सुष्ठु है। अपनी कला-साधना में इन्हें कनु देसाई से विशेष प्रेरणा मिली। रेखानुपात और रंग-सामंजस्य की बारीकियों का आभास इन्हें कनु के सम्पर्क में ही हुआ। फलतः इनके अधिकांश लैण्डस्केप कहीं न कहीं से कुछ हरे पत्ते, कुछ नई कोंपलें और क्षितिज को छूती हरीतिमा को अपने विचित्र रंगों के चारु वातावरण द्वारा अभिभूत कर जाते हैं। प्राकृतिक सौन्दर्य की झलक ने इनके आदिम संस्कारों को झंकृत किया है और उसके अन्य संकेतों को पकड़ने और उनके विशिष्ट अर्थो को समझने का इन्होंने प्रयास किया है। इनका एक चित्र लंदन प्रदर्शनी के लिए खास तौर से चुना गया था। इसके अतिरिक्त इन्होंने कितने ही मौकों पर देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है और पुरस्कृत एवं सम्मानित हुए हैं।

भानु स्मार्त

पैंतालीस वर्ष की अल्पायु में ही इनका निधन हो गया, किन्तु कला के क्षेत्र में इन्होंने अपना स्थान बना लिया था। सूरत इनकी जन्म-भूमि थी,

शेषशायी

बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा सम्पन्न हुई। बम्बई के माडर्न हाई स्कूल में ये कला-प्रशिक्षक के बतौर कार्य करते रहे। अनवरत श्रम और अध्यवसाय से इन्होंने सुन्दर चित्रों की बहुतायत में सर्जना की।

ये परम्परागत शैली के हामी थे। प्राचीन भारतीय कला-थाती और उसकी गौरवमयी परम्परा पर इन्हें गर्व था। वही मुख्यत: इनकी प्रेरक बनी। अतएव इनके मानस पटल पर जो स्वरूप अंकित हो गए वे ही बाद में विभिन्न माध्यमों और प्रणालियों द्वारा उभरे, जैसे विराट् क्रीड़ा स्थली में सतरंगी आभा फूट पड़ी हो। अपने रंग-प्राचुर्य और उन्मुक्त रेखाओं की द्रुत गतिभंगिमा के कारण ये विशेष रूप से ख्यात हैं। खासकर बच्चों की कला के अभ्युत्थान में इन्होंने प्रवर्त्तक का कार्य किया। भोले बच्चों के प्राणों की पुकार जो प्राय: रंगों में ऊबडूब करती है और जिन्हें बड़े लोग उपेक्षा की नजरों से ऊलजलूल समझकर महत्त्व नहीं देते उनमें इन्होंने अर्थ ढूंढ़े और उसकी उपयोगिता पर प्रकाश डाला। बालक का मनोविज्ञान एक नई दुनिया की सृष्टि रच डालता है, वह अपने ढंग का अद्भुत सृजन शिल्पी है, सिर्फ़ उसे वैसे ही ढंग से समझने की सूझबूझ होनी चाहिए। इन्होंने बालकला को विकसित करने की दिशा में महत्त्वपूर्ण कार्य किया है।

भानु स्मार्त के कितने ही चित्र महत्त्वपूर्ण कला-संग्रहों में सुरक्षित हैं। अनेक देशी-विदेशी चित्र प्रदर्शनियों में भी उन्हें ससम्मान स्थान मिला है।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

गुजरात में कला की परम्परा, जो एक जमाने से चली आ रही थी, उसमें अकस्मात् उत्क्रान्ति हुई है और वैविध्यपूर्ण विषयों के अन्वेषी अविश्रान्त यात्रा पथ के पथिक बड़ी ही गंभीर श्रम-साधना के साथ आज कितनी ही नूतन-पुरातन शैलियों का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

एम०डी०त्रिवेदी

सुप्रसिद्ध वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। वर्षों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर साधना कर रहे हैं। १९४७ में ये करांची से इधर आए, वहाँ वर्षों रहकर कलाक्षेत्र में बहुमुखी कार्य किया। १९२७ में करांची की कलाप्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ, फिर तो इन्हें अनेक प्रदर्शनियों में पुरस्कार व पदक प्राप्त हुए। आजकल सौराष्ट्र चित्रशाला, राजकोट में डायरेक्टर हैं। आल-

इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के रीजनल सेक्रेटरी और १९४९ से सौराष्ट्र कला मंडल के सेक्रेटरी हैं। ये जाने माने साधक शिल्पी हैं और इनके शिष्य-प्रशिष्यों की स्वस्थ परम्परा कला के क्षेत्र में महत्त्वपूर्ण योगदान द्वारा उसकी नित-नई धाराओं को अग्रसर और बहुमुखी बना रहे हैं।

जयंत पारीख

बहुमुखी प्रतिभा के कलाकार हैं। आजकल बड़ौदा की फाइन आर्ट्स फैकल्टी में रीडर हैं। इसी फैकल्टी के ये छात्र भी रहे हैं। यहीं इन्होंने शिक्षा पाई और सम्मानपूर्वक पोस्ट डिप्लोमा लिया। १९६३-६५ के दौरान भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्हें आगे अध्ययन का मौका मिला। अल्पायु से ही ये तमाम प्रमुख कला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं। जलरंग, तैलरंग, वाश, टेम्परा, ग्राफिक--सभी माध्यमों में इन्होने चित्र-सर्जना की है। अनेक भित्तिचित्रों का निर्माण किया है। लोकप्रिय होने के कारण इनके चित्रों की बड़ी माँग रही है। कितने ही सरकारी और गैरसरकारी संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

सर्व प्रथम इन्हें महाराष्ट्र के गवर्नर का पुरस्कार और कांस्य पदक प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् १९५९ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी, १९६० में जम्मू और काश्मीर, १९७२ में इन्दौर गोल्ड मैडल १९६२, १९६५ में गुजरात की स्टेट आर्ट एग्जीबिशन, १९६२, १९६३, १९६५ में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी और १९६१, ६२, ६४, ६५ में मध्य कला परिषद की ओर से इन्हें लगातार पुरस्कार मिलते रहे। १९६५ में इन्हें नेशनल अवार्ड मिला। साओ पाओलो बियनले में इन्हें ससम्मान मैडल दिया गया और १९६४ में न्यूयार्क के कला मेले के इंडियन पैवलियन में और सैगोन की प्रथम अंतर्राष्ट्रीय प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। एयर इंडिया, नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट, ललित कला अकादेमी हैदराबाद आर्ट सोसाइटी, गवर्नमेंट म्यूज़ियम, मध्यप्रदेश कला परिषद, फोर्ड फाउंडेशन, नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी, नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट तथा मिनिस्ट्री आफ साइंटीफिक एण्ड कल्चरल अफेयर्स, टाटा इन्स्टीट्यूट और बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट तथा भारत के अन्य प्रमुख कला संग्रहालयों में इनकी पेंटिग और ग्राफिक कृतियों को स्थान मिला है।

बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स में इनके द्वारा भित्तिचित्रों का निर्माण हुआ है। इसके अतिरिक्त बड़ौदा की ज्योति इंडस्ट्रीज़ और लखनऊ के रवीन्द्रालय में भी इन्होंने म्यूरल बनाये। यूनाइटेड स्टेट्स साउथ अमेरिका में इनके चित्रों को स्थान मिला है। ये बड़े ही उत्साही, कर्मठ और परिश्रमी

व्यक्ति है। नये युग की विभिन्न कलाधाराओं की धकापेल में ये अधुनातम और परम्परागत के बीच के सेतु के निर्माण में व्यस्त और कार्यशील हैं।

बिहारी बड़भैया

ये एक दक्ष भित्ति चित्रकार हैं। म्यूरल, फ्रेस्को, टेम्परा, बाटिक, जापानी और चीनी टेकनीक पर इन्होंने चित्रण किया है। जल रंग और तैल रंगों में भी अनेक प्रयाग किये हैं। विश्व भारती, शांतिनिकेतन में इन्होंने भित्ति चित्रों का निर्माण किया, १६५५ में बिड़ला हाउस में महात्मा गांधी के जीवन पर एक विशाल फ्रेस्को पेंटिंग में संयुक्त रूप से कार्य किया। १६५६ में पार्लियामेंट हाउस को सुसज्जा के लिए इन्हें आमंत्रित किया गया और १६६० में पालनपुर में इन्होंने सुसज्जा कार्य सम्पन्न किया।

तैल रंग और बाटिक में ये अर्से से काम कर रहे है जिससे सहज ही परिपक्वता और परिष्कृति, सूक्ष्मदर्शिता और सधे हाथ की सफाई दीख पड़ती है। इन्होंने बाटिक पर मोनोग्राफ का नव्य प्रयोग किया है। भित्ति चित्रों में सूक्ष्म और मार्मिक व्यंजना है। शांतिनिकेतन की विभिन्न कला-प्रदर्शनियों, १६५७ में मास्को में आयोजित युवक समारोह, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, कालिदास समारोह, बाम्बे आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, गुजरात की प्रादेशिक कला प्रदर्शनियों में ये समय-समय पर भाग लेते रहे हैं और १६५६ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अवार्ड प्राप्त हुआ। भारत और विदेशों के चित्र-संग्रहों में इनकी कलाकृतियों को स्थान मिला है। इन्होंने पुस्तकों के लिए भी अनेक दृष्टान्त चित्रों द्वारा अपनी सूक्ष्म भावाभिव्यंजना का परिचय दिया है।

विश्व भारती, शांतिनिकेतन से इन्होंने फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में डिप्लोमा लिया। वहाँ की विभिन्न कलाधाराओं का प्रभाव इनके कृतित्व में द्रष्टव्य है जिससे इनका बहुमुखी विकास हुआ। वर्षों स्वतन्त्र रूप से कला की साधना में प्रवृत्त रहे, आजकल एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा में फैकल्टी आफ होमसाइंस में फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के लेक्चरार हैं। इनकी खूबी है कि किसी वर्ग या वाद में इनकी निष्ठा नही, बल्कि इनकी रुचि व सृजन चेतना लोकोन्मुखी और 'सत्य-शिवं-सुन्दरम्' की हामी है।

सनत ठाकुर

ये वरिष्ठ कलाकारों में से हैं जिन्होंने १६३६-३६ के दौरान कराची में एम०डी०त्रिवेदी के तत्त्वावधान में पोर्ट्रेट और लैण्डस्केप विषयक प्रशिक्षण प्राप्त

किया। दो-तीन वर्षों तक ये फारस की खाड़ी और अरब में व्यावसायिक कलाकार के बतौर काम करते रहे। १९४१-४७ के दौरान इन्होंने हैदराबाद, सिंध में ठाकुर स्कूल आफ आर्ट की स्थापना की। न केवल कला सर्जना की दिशा में सराहनीय कार्य किया वरन् कला के उत्थान में भी सहयोग दिया। देश-विदेश में भ्रमण करने के कारण इन पर अनेक शैलियों का प्रभाव पड़ा, ख़ास कर अरबी-फारसी के सृजन शिल्प का प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव इनके कृतित्व पर द्रष्टव्य है।

१९५७ मे बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। इन्होंने पारम्परिक पद्धति पर अनेक चित्रों का निर्माण किया है, किन्तु आधुनिक हवाओं के रुख को पहचान कर सामंजस्य शैली भी अपनाई है। १९४४ में श्रीनगर और १९४५ में ऊटकमंड में सबसे पहले इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनियाँ की। नई दिल्ली की नेशनल अकादेमी आफ आर्ट, आल इंडिया फाइन आर्टस एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, गुजरात स्टेट की ललित कला अकादेमी, कलकत्ता, अमृतसर और ग्वालियर की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की वार्षिक प्रदर्शनियों में ये लगभग दो दशकों से लगातार भाग लेते रहे हैं। बम्बई की जहाँगीर आर्ट गैलरी में इनकी कई ग्राफिक पेंटिंग कृतियाँ सुरक्षित हैं। १९६३ में पराम्परागत शैली पर निर्मित इनके एक चित्र पर बम्बई आर्ट सोसाइटी का किलाचन्द पारितोषिक प्राप्त हुआ।

शान्ति दवे

सुप्रसिद्ध ग्राफिक कलाकार हैं। परम्परागत कला वैभव में झाँककर आधुनिक चित्रण शैली के स्वस्थ संयोग का परिचय इन्होंने दिया। इन पर पहाड़ी, राजपूत और मुग़ल शैली का भी प्रभाव है। रेखांकन और रंगों के प्रयोग में कसीदाकारी पैटर्न पर कुछ ऐसी पद्धति अपनाई गई है जो प्रतिपाद्य विषय की रूप-प्रक्रिया में अरूप की स्वयमेव नियोजना को प्रश्रय देती है।

एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा से इन्होंने फाइन आर्ट्स में ग्रेजुएट डिग्री ली। शुरू से ही ग्रामीण वातावरण और परिस्थितियों में इनका पालन पोषण हुआ था, अतएव इनके प्रारम्भिक चित्र लोक जीवन और दैनन्दिन प्रसंगों से प्रेरित हुए। १९५७-५९ में भारत सरकार की छात्र वृत्ति पर ये अनुसंधान कार्य करते रहे और चित्रण कार्य एवं स्टडी टूर पर यूरोप का दौरा किया। इस दौरान विदेशी कला-प्रणालियों को सीखने-समझने का इन्हें पूरा-पूरा मौका मिला, खासकर 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट की ओर इनका विशेष झुकाव हुआ। नये

अनुभव और नये कलातत्त्वों की अपनी अनवरत बढ़ती अभिरुचि के कारण बिम्ब अथवा प्रतीक योजना को ये भावाभिव्यंजना में बाधक मानते हैं। इनकी हाल की अनेक कृतियाँ नितान्त नई पद्धति पर निर्मित हुई हैं।
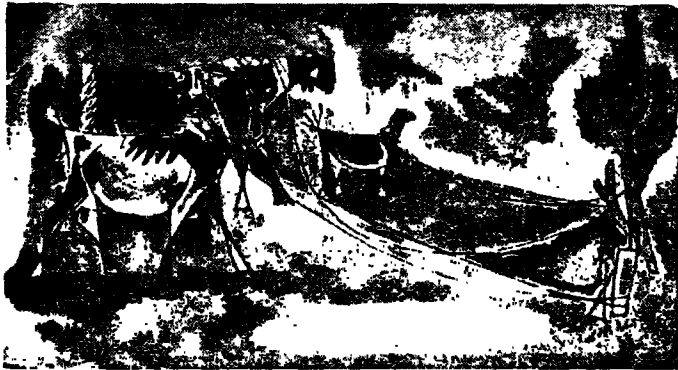
घर का आँगन

१९५६, ५७, ५८ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें लगातार अकादेमी अवार्ड मिलते रहे। बम्बई की आर्ट सोसाइटी द्वारा १९५५ और १९५७ का गवर्नर पुरस्कार प्राप्त हुआ। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, बम्बई राज्य की वार्षिक प्रदर्शनियों, १९५६, ५७, ५८ में बड़ौदा के कलाकार ग्रुप की स्विट्ज़रलैण्ड में आयोजित यात्रिक कला प्रदर्शनी, १९५४ में वेनिस बियनले और १९५७ में फिलिप्पाइन्स के आर्ट एसोसिएशन में इन्हें प्रमुख पुरस्कार प्रदान किया गया। १९५९ में बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। नये खेवे के कलाकारों में ये प्रतिष्ठा प्राप्त हैं और इन्होंने बड़ौदा में नये कलाकार ग्रुप का सगठन किया है।

प्रफुल्ल दवे

ये भी शान्ति दवे द्वारा संगठित बड़ौदा आर्टिस्ट ग्रुप के सदस्य हैं। चित्र शिल्पी और ग्राफिक कलाकार के बतौर व्यावसायिक रूप में अर्से से कला की स्वतन्त्र मौलिक साधना में प्रवृत्त हैं। लैण्डस्केप और मूर्त्तिकला में भी इनकी गहरी दिलचस्पी है।

बड़ौदा की एम० एम० यूनीवर्सिटी से पेंटिंग में इन्होंने ग्रेजुएट डिग्री ली। १९५६ और १९५७ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। बाम्बे आर्ट सोसाइटी और बड़ौदा ग्रुप के कलाकारों की ओर से समय-समय पर

आयोजित प्रदर्शनियों में भी इनके चित्रों को स्थान मिला है। इनके चित्रों में भी भारतीय और पाश्चात्य प्रभावों का समन्वित प्रभाव द्रष्टव्य है। देशी-विदेशी कलातत्त्व एक दूसरे के सम्पर्क में आकर ही समयोजित कला के निर्माण और

माँ-बेटा

प्रतिष्ठापन की दिशा में अग्रसर हो सकते हैं जो युगीन माँग की पूर्ति में विशद दृष्टिकोण के परिचायक है।

मोरारजी सम्पत

गुजरात के वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने १९३६ में पेंटिंग में डिप्लोमा लिया। ये परम्परागत शैली के चित्रकार हैं। गुजराती संस्कृति और बंगाल स्कूल की पराम्पराओं से विशेष

प्रभावित हैं। कलकत्ता, बम्बई, पूना, शिमला की कला प्रदर्शनियों में इनके चित्रों की भूरि-भूरि सराहना हुई। इन्हें ग्रिफिथ्स पुरस्कार के अतिरिक्त अनेक पदक, पारितोषिक और प्रशस्ति पत्र भी प्राप्त हो चुके हैं। प्रिंस आफ वेल्स म्यूजियम, हैदराबाद,सालारजंग म्यूजियम एम० आर जयकर, डी० बी० देसाई, चतुर्भुज गोबर्द्धनदास, कमलनयन बजाज आदि संग्रहालयों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। आजकल बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ़ आर्ट में स्टाफ आर्टिस्ट के पद पर नियुक्त हैं।

वासुदेव स्मार्त

१९४८ में बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने पेंटिंग में डिप्लोमा लिया, वहाँ की डिज़ाइनिंग के फेलो भी रहे। भारत सरकार के कल्चरल स्कालर के रूप में ये बनारस में भारतीय कला और भित्तिचित्रण टेक-नीक में अनुसंधान कार्य करते रहे। इन्होंने अनेक प्रमुख नगरों में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी और सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों, १९६१-६२ में गुजरात स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन, १९६३-६५ में कालिदास समारोह प्रदर्शनी में पुरस्कार और १९६४ में ललित कला अकादेमी से इन्हें नेशनल अवार्ड प्राप्त हुआ। दिल्ली की माडर्न आर्ट गैलरी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, बनारस के भारत कला भवन, नवाब मेहदी नवाब जंग बहादुर, उत्तर प्रदेश ललित कला अकादेमी, उज्जैन कला भवन और विदेशों की कलावीथियों और संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

सूरत के जीवन भारती स्कूल में कुछ समय तक ये काम करते रहे। आज-कल बनारस में कार्य कर रहे हैं।

जैराम पटेल

गुजरात के वरिष्ठ कलाकार हैं, जिन्होंने देश-विदेशों में घूमकर बहुमुखी कला-प्रणालियों को प्रश्रय दिया है। प्राचीन-अर्वाचीन की समंजस शैली में इन्होंने अनेक प्रयोग किये है और प्रायः सभी माध्यमों में चित्र-निर्माण किया है ख़ासकर एब्स्ट्रैक्ट आर्ट में इनकी विशेष अभिरुचि है।

ये बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में कला का अध्ययन करते रहे। १९५५-५६ के दौरान स्कूल के फेलो भी रहे। १९५८-६० के दौरान इन्होंने इंग्लैण्ड और फ्रांस में स्टडी-टूर किया। भारत लौटने पर अर्से तक व्याव-सायिक कलाकार के बतौर काम करते रहे। १९५८ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी

में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। इसके अतिरिक्त बाम्बे स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन, बाम्बे आर्ट सोसाइटी और अनेक प्रमुख कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट तथा कतिपय निजी संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। आजकल ये बड़ौदा की एम० एस० यूनीवर्सिटी की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स विभाग के अध्यक्ष हैं।

नरेन्द्र पटेल

इन्होंने बड़ौदा के कलाभवन में अध्ययन किया। बाद में एम० एस० यूनीवर्सिटी से ग्रेजुएट डिग्री विशेष सम्मान के साथ प्राप्त की। प्रारम्भ में व्यावसायिक कलाकार के रूप में साधना करते रहे, कुछ समय तक ड्राइंग टीचर भी रहे, तत्पश्चात् बड़ौदा की फैकल्टी आफ आर्ट्स में भारत सरकार के कल्चरल स्कालरशिप पर अनुसंधान कार्य करते रहे।

ये चित्रकार और मूर्त्तिकार दोनों हैं। १९६० की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादेमी अवार्ड प्राप्त हुआ। बम्बई की स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन, भारतीय मूर्त्तिकार एसोसिएशन तथा १९५९ की पेरिस बियनले प्रदर्शनी में इनके चित्र ससम्मान प्रदर्शित एवं पुरस्कृत हुए हैं।

दशरथ पटेल

दशरथ पटेल ने प्रायः ग्राम्य जीवन और प्रकृति की बिखरी दृश्यावली से प्रेरणा प्राप्त की। 'ग्राम्य चित्रशाला', 'धान के खेत में', 'गुजरात की एक झाँकी', 'गाँव की तलैया', 'पहाड़ी के अंचल में', 'अहमदाबाद का रायपुर द्वार', 'सूर्यास्त बेला', 'मालाबार हिल' आदि इनके चित्रों के विषय सामान्य जन-जीवन के प्रतीक हैं। दृश्य योजना और रेखानुपात में इन्हें कमाल हासिल है। कहीं-कहीं तो दो चार झपाटों में ही बड़े आकर्षक सुन्दर चित्र उभर आते हैं। रेखांकन चित्रों के निर्माण में इन्होने प्रायः पतली और मोटी रेखाओं का प्रयोग किया है।

कला के प्रति इनकी नैसर्गिक रुचि थी, किन्तु परिवार के लोग इनका सदैव विरोध करते रहे। वे उद्योग-व्यापारों में इन्हें लगाना चाहते थे, पर ये किसी प्रकार अपने पथ से विचलित न हुए। मद्रास आर्ट स्कूल में देवी प्रसाद राय चौधरी के तत्त्वावधान में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया, बहुविध

प्रभावों को आत्मसात् कर य अपने तईं मौलिक सर्जना की दिशा में सदा अग्रसर होते रहे हैं।

मां और शिशु

माँ-शिशु

विनोदराय पटेल

बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स से इन्होंने एम. ए. (फाइन) की डिग्री ली। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर कला और संस्कृति में विशेष अनुसंधान किया। ये अर्से से फाइन आर्ट्स विषयक सूक्ष्मताओं के अध्ययन में प्रवृत्त हैं। १९६१ में इन्हें नेशनल अवार्ड प्राप्त हुआ। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से भी इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया गया।

इसके अतिरिक्त १९५७-५८ के दौरान बाम्बे स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन, १९६० में गुजरात स्टेट एग्ज़ीबिशन, १९६३-६४ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी और १९६४ में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया। ये सभी देशी-विदेशी प्रदर्शनियों एवं आयोजनों में भाग लेते रहते हैं।

ज्योति भट्ट

१९४४ में एम. एस. यूनीवर्सिटी, बड़ौदा से इन्होंने पेंटिंग में और डिप्लोमा लिया, तत्पश्चात् १९५६ में पोस्ट डिप्लोमा में विशेषता हासिल की, बनस्थली

गली-गली घूमकर गाने वाला सारंगी वादक

विद्यापीठ में भित्तिचित्र का अध्ययन किया। १९५३ में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी और १९५५-५६ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। १९५६ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें उस वर्ष की गोल्ड प्लेक मिली। १९५९ मे नई दिल्ली में आयोजित बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में इन्होंने

भाग लिया और नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में प्रतिनिधित्व किया। बड़ौदा आर्टिस्ट ग्रुप के ये संस्थापक सदस्यों में से हैं।

मारकंड भट्ट

एम. एस. यूनीवर्सिटी, बड़ौदा में जब फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स की स्थापना हुई तो सब से पहले मारकंड भट्ट ही डीन नियुक्त हुए। इन्होंने भारत और विदेशों में कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया था, अतएव इनके आगमन से गुजरात में एक नई कला-चेतना की लहर दौड़ गई। प्राचीन-अर्वाचीन कला-प्रणालियों की दिशा में नई-नई खोज और नई-नई स्थापनाएँ इन्हीं के प्रयास का परिणाम है। कला के इतिहास और सिद्धान्तों का निरूपण, साथ ही उसके सत्य और शक्ति के आदिम स्रोत को, व्यापक सन्दर्भ में पहचान कर, भारतीय जीवन-दर्शन और उससे उद्भूत कलाकृतियों की वरेण्यता इन्होंने सिद्ध की। इनकी प्रेरणा से कितने ही अभिनव प्रयोग हुए। कुछ समय बाद ये कनाडा लौट गए, पर गुजरात कलाक्षेत्र में समृद्ध परम्पराओं की अमूल्य विरासत छोड़ गए जो इनकी चिरस्थायी देन है।

शिव पंड्या

गुजरात के प्रतिष्ठित कलाकार हैं, व्यंग्य चित्रण में भी दक्षता प्राप्त हैं, अनेक सामयिक समस्याओं पर अपनी प्रखर प्रतिभा और गहरी सूझ-बूझ से करारी चोट की है। परम्परागत शैली पर अनेक चित्रों का निर्माण किया है तो आधुनिक पद्धति भी अख्तियार की है।

रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में ये गुजरात कला संघ में कुछ अर्से तक कला का अध्ययन करते रहे। अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले 'प्रभात' दैनिक पत्र में स्टाफ आर्टिस्ट के बतौर काम करते रहे, तत्पश्चात् बम्बई के 'वन्देमातरम्' दैनिक पत्र में कार्य किया। बच्चों की एक मैगज़ीन 'रामकदुन' में वे नियमित रूप से 'चिचु काका' नाम से चित्रमय कहानी देते रहे जिससे इनकी विशेष ख्याति हुई। बम्बई से ये अहमदाबाद आए और गुजरात के दो प्रसिद्ध दैनिक 'गुजरात समाचार' और 'सन्देश' में काम किया। आजकल ये अहमदाबाद से प्रकाशित होने व.ले दैनिक 'जनसत्ता' में व्यंग्य चित्रकार के रूप में कार्य कर रहे हैं। ये सभी देशी-विदेशी, परम्परागत और आधुनिक चित्रकला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं।

रमेश पड्या

ग्राफिक और म्यूरल पेंटिंग में इनकी विशेष अभिरुचि है। पार्लियामेंट

हाउस के लिए इन्होंने महाराणा प्रताप पर एक विशाल भित्तिचित्र का निर्माण किया, साथ ही ८१ संख्या के म्यूरल पर के० जी० सुब्रह्मण्यम के साथ कार्य किया। इन्होंने जलरंग, तैलरंग और ग्राफिक पर कितने ही महत्त्वपूर्ण चित्र बनाये हैं जो वहाँ लोकप्रिय हैं।

आधुनिक पद्धति पर निर्मित

एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स से एम० ए० (फाइन) की डिग्री ली। १९५६ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९५६-५७ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, सौराष्ट्र कला प्रदर्शनी, आर्टिस्ट एंड सेंटर द्वारा स्विटज़रलैण्ड में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इनके चित्रों को सम्मान स्थान मिला है। ये सभी प्रमुख समसामयिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं। बड़ौदा आर्टिस्ट ग्रुप के सदस्य हैं, साथ ही कला के अभ्युत्थान में भी बेहद रुचि रखते हैं।

रतन परिमू

नव्यधारा के कलाकारों में विशेष स्थान रखते हैं। भारतीय लघुचित्र (मिनियेचर) और प्राचीन कला की सैद्धान्तिक सूक्ष्मताओं एवं टेकनीक में विशेष अनुसंधान किया है। ग्राफिक कला में गहरी पैठ है। बड़ौदा आर्टिस्ट

ग्रुप के ये संयुक्त सचिव हैं और कला प्रणालियों के बहुमुखी विकास में योग-दान किया है ।

एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स से एम० ए० (फाइन) डिग्री और म्यूज़िओलोजी में पोस्ट ग्रेजुएट डिप्लोमा लिया । १९५९ में भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर कल्चरल स्कॉलर के रूप में अनुसंधान कार्य किया । कामन वेल्थ योजना के अन्तगत ब्रिटिश सरकार से तीन वर्ष तक छात्रवृत्ति मिलती रही । यूरोपीय कला के इतिहास में इन्होंने विशेषता हासिल की और १९६३ में लंदन यूनीवर्सिटी से इन्होंने कला के इतिहास में बी० ए० आनर्स की डिग्री प्राप्त की । आक्सफोर्ड में दक्षिणी एशियाई कलाकार प्रदर्शनी और डर्बन में आयोजित कला प्रदर्शनी तथा लंदन में इंडिया हाउस के टैगोर कला केन्द्र के कला-आयोजन में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया । श्रीनगर तथा अन्य प्रमुख नगरों में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की । इसके अतिरिक्त आल इंडिया फाइन आर्टस एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, गुजरात स्टेट आर्ट एग्जीबिशन, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स तथा १९५७, ५८, ५९ की ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित प्रदर्शनियों में ये लगातार भाग लेते रहे ।

मनहर मकवाना

आधुनिक पद्धति के ग्राफिक कलाकार हैं । इन्होंने बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट् से ड्राइंग और पेंटिंग में डिप्लोमा लिया, फिर सात वर्ष तक सनत ठाकुर के तत्त्वावधान में कला का अध्ययन करते रहे । प्रायः सभी प्रमुख कला प्रदर्शनियों—आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, दिल्ली और अमृतसर की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, कलकत्ता की ललित अकादेमी आफ आर्ट और तमाम राज्यीय कला प्रदर्शनियों में ये लगभग पिछले दो दशकों से भाग लेते रहे है । आस्ट्रेलिया की सफरी प्रदर्शनी में भी हिस्सा लिया ।

बम्बई राज्य कला प्रदर्शनी में उत्कृष्ट चित्रकृति पर इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ । बड़ौदा में आयोजित चौथी गुजरात राज्य कला प्रदर्शनी में भी ये ग्राफिक कृति पर पुरस्कृत हुए । १९६४ में एक अन्य ग्राफिक कृति पर ललित कला अकादेमी का इन्हें नेशनल अवार्ड प्रदान किया गया । भोपाल की स्टेट आर्ट गैलरी, गुजरात सरकार का सूचना विभाग, ज्योति लिमिटेड, बड़ौदा और नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी में इनके कई चित्र सुरक्षित हैं । राज-कोट में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनी की और बम्बई की जहाँगीर आर्ट गैलरी में इनकी पेंटिंग और ग्राफिक कृतियों का संयुक्त प्रदर्शन हुआ ।

लक्ष्मण वर्मा

नव्यधारा के तरुण शिल्पी हैं। आधुनिक पद्धति पर निर्मित होते हुए भी इन्होंने अपने विषय सामान्य जीवन-प्रसंगों से चुने। कारण—वादनगर के एक छोटे से कस्बे में इनका जन्म हुआ जहाँ के सरल सीधे वातावरण का इन पर अमिट प्रभाव पड़ा। बाल्यावस्था से ही कला के प्रति इनमें नैसर्गिक रुचि थी। वादनगर में मैट्रिक करने के पश्चात् ये अहमदाबाद आ गए जहाँ इन्होंने रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में कार्य किया। इन्होंने कार्टून ड्राइंग में विशेषता हासिल की और कई समाचार-पत्रों में कार्य किया।
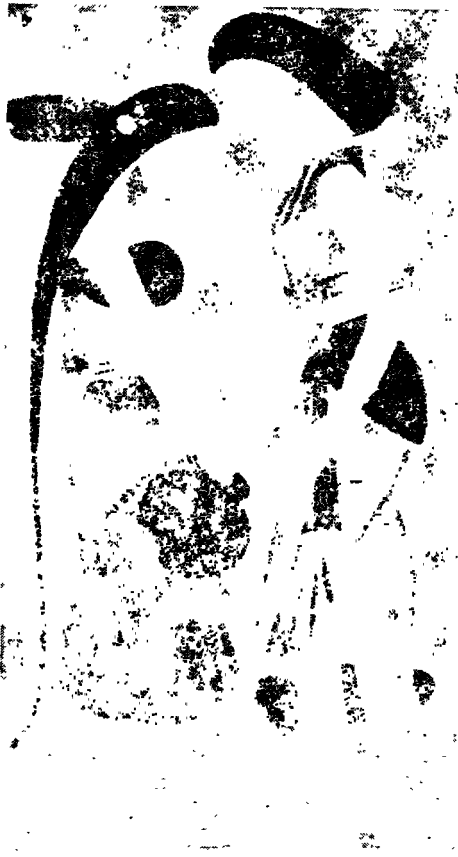
लज्जा

अहमदाबाद, बड़ौदा और बम्बई में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हो चुकी हैं। कुछेक फिल्मों में भी ये शैली में चित्रण के प्रयोग कर चुके हैं। प्रखर, तीखे और गहरी कचोट करने वाले विषय जो सामाजिक और राजनीतिक प्रसंगों पर छींटाकशी करते हैं, बरबस इनकी कूची पर थिरक उठते हैं। इसके अतिरिक्त समसामयिक प्रादेशिक कला प्रदर्शनियों में भी ये सत्साह भाग लेते रहते हैं।

प्रद्युम्न तन्ना

ये मुख्यतः भित्तिचित्रकार हैं १९५३ में बम्बई के सर जे० जे० स्कूल

आफ आर्ट से इन्होंने पेंटिंग में डिप्लोमा लिया, तत्पश्चात् १९५४ में म्यूरल पेंटिंग में पोस्टग्रेजुएट कोर्स किया। बिना किसी नौकरी के बंधन में बँधे ये कला की उन्मुक्त साधना में प्रवृत्त हुए अर्थात् भारत और विदेशों में आयोजित अनेक प्रमुख कला प्रदर्शनियों में भाग लिया। इन्होंने अनेक मैडल जीते। १९५८-६१ के दौरान बम्बई के अखिल भारतीय हैंडलूम बोर्ड के बुनाई सेवा केन्द्र में डिज़ाइनर के बतौर कार्य करते रहे। एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की ओर से पोस्ट ग्रेजुएट की शिक्षा के लिए ये इटली गए और १९६१-६२

आधुनिक पद्धति पर निर्मित एक दृश्यांकन जिसमें वृक्ष की सूखी टहनियाँ और डंठले प्राकृतिक शोभा की अभिवृद्धि कर रही हैं।

के दौरान इटली सरकार की छात्रवृत्ति पर नेपल्स गए। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट, ललित कला अकादेमी, सालारजंग म्यूजियम और भारत के कतिपय सरकारी व ग़ैर सरकारी संग्रहालयों में तो इनके चित्र सुरक्षित हैं ही, अमेरिका, इटली, जर्मनी, आस्ट्रेलिया आदि देशों की कलावीथियों और संग्रहालयों में भी इनकी कृतियों को ससम्मान स्थान मिला है।

वनराज माली

ये सोमालाल शाह के शिष्य हैं। अहमदाबाद क गुजरात कला संघ में ये अध्ययन करते रहे। शान्तिनिकेतन में भी कुछ समय तक प्रशिक्षण लिया। १९५२ में जहाँगीर आर्ट गैलरी की उद्घाटन प्रदर्शनी में इन्होंने अपने चित्र

भेजे। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा चीन, जापान, आस्ट्रेलिया, रूस आदि कई देशों में आयोजित कला प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया।

गुजरात संस्कृति और बंगाल स्कूल की परम्पराओं का प्रभाव इनके कृतित्व पर पड़ा है। आधुनिक पद्धति पर विदेशी कला धाराओं से प्रभावित

बे-लगाम

इन्होंने चित्रों का निर्माण किया है। ये फ्री-लांस आर्टिस्ट के बतौर अर्से से कला साधना में प्रवृत्त हैं।

कुमार मंगलसिंह

ये सुप्रसिद्ध राजा कवि कलापी के पौत्र हैं। कला की ओर इनकी नैसर्गिक रुचि थी, फलत: निजी तौर पर ये कला की साधना में प्रवृत्त हुए। बाद में कौटाई-कैनाल में कुछ अर्से तक कला-प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे. तत्पश्चात् देहरादून के प्रिंस आफ वेल्स रायल इंडियन मिलिटरी में अध्ययन किया। लंदन में भी सुप्रसिद्ध कलाकार एफ० पी० फ्रेवर्ग के तत्त्वावधान में कार्य किया।

चित्र-सृजन के अलावा भित्तिचित्र और फर्नीचर सज्जा के ये विशेषज्ञ हैं। लिखने में रुचि है और कला विषयक साहित्य का गंभीर अध्ययन है। बम्बई, दिल्ली, इन्दौर और रूसी प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार उपलब्ध हुए हैं। अनेक प्रमुख

शहरों में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। इसके अतिरिक्त इंगलैण्ड, फ्रांस, रूस आदि देशों की सम-सामयिक चित्र प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। ये गुजरात ललित कला अकादेमी और स्टेट हैंडीक्राफ्ट बोर्ड के सदस्य हैं।

क्रास से नीचे उतारते हुए

खोदीदास परमार

ये भी सोमालाल शाह के शिष्य हैं। गुजरात विश्वविद्यालय से बी. ए. डिग्री ली। ये लोक कला पद्धति पर चित्र-निर्माण करते हैं। भित्तिचित्रण और वस्त्र सज्जा में विशेष दक्ष हैं। बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, ग्वालियर, अहमदाबाद, श्रीनगर, हैदराबाद और राजकोट की कला प्रदर्शनियों में ही भाग नहीं लिया बल्कि रूस और फ्रांस में भी इनकी कलाकृतियों को ससम्मान स्थान मिला है। बाम्बे आर्ट सोसाइटी से दो बार, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी से पाँच बार, मध्य प्रदेश कला परिषद से दो बार और गुजरात स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन की ओर से ये दो बार पुरस्कृत हो चुके हैं। नेशनल गैलरी आफ मार्डन आर्ट तथा अन्य कई संग्रहालयों में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है। आजकल घर-शाला, भावनगर में कला शिक्षक के बतौर काम कर रहे हैं।

चन्द्र त्रिवेदी

सुप्रसिद्ध व्यंग्य चित्रकार और पुस्तक सुसज्जा, आवरण चित्र और दृष्टान्त चित्रकार हैं। रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में कला प्रशिक्षण प्राप्त किया है और सामाजिक घात-प्रत्याघातों, राजनीतिक उतार-चढ़ावों, सामयिक समस्याओं पर अपनी तीखी प्रतिक्रिया के दिग्दर्शक लगभग एक हज़ार व्यंग्य चित्र बनाये

है। सैकडो चित्रमय कहानियाँ, व्यंग्य चित्रावली और कहानियों के दृष्टान्त चित्र प्रस्तुत किये हैं। गुजरात के प्राय: सभी प्रख्यात रचनाकारों और प्रकाशकों की पुस्तकों के आवरण चित्र तैयार किये हैं। ये विभिन्न कला प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं। आजकल अहमदाबाद से प्रकाशित होने वाले दैनिक 'संदेश' में व्यंग्यचित्रकार के पद पर अर्से से कार्य कर रहे हैं।

जीवन-दीप

बंशी लाल वर्मा

बंशीलाल वर्मा भी व्यंग्य चित्रकार हैं और 'चकोर' के उप नाम से विख्यात है। इन्होंने रविशंकर रावल के तत्त्वावधान में कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। कई वर्षों तक ये अहमदाबाद से प्रकाशित अनेक समाचार पत्रों में काम करते रहे। फिर बम्बई चले गए। इन्होंने अनेक समसामयिक कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है। पूना में आयोजित कला प्रदर्शनी में इन्हें मैडल प्रदान किया गया। आजकल समाचार पत्र प्रेस ग्रुप में व्यंग्य चित्रकार के रूप में कार्य कर रहे हैं।

जसु रावल

बचपन मे ही चित्रकला की ओर इनका झुकाव था, अकस्मात् एक दिन स्वप्न सत्य हो गया। सनत ठाकुर के तत्त्वावधान में इन्होंने कला की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त की। लैण्डस्केप और ग्राफिक कला में ये विशेष दक्ष हैं। पारम्परिक और आधुनिक पद्धतियों में चित्र-सर्जना की है। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी और गुजरात राज्य की सभी कला प्रदर्शनियों मे इन्होंने भाग लिया है।
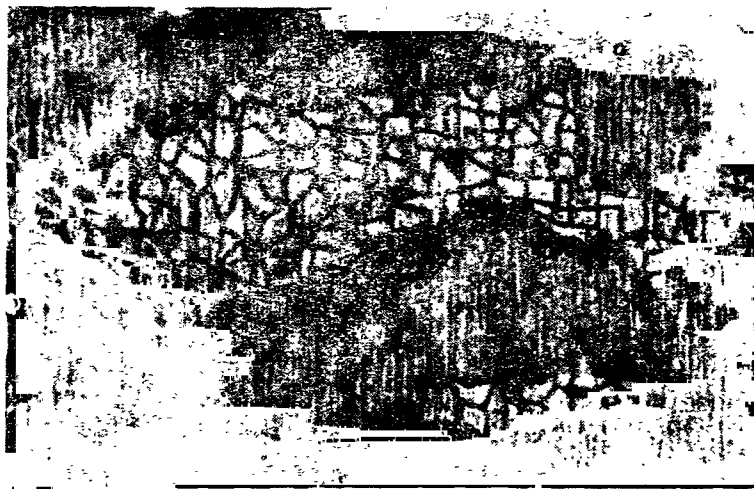
बरसात की रात

नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा परम्परागत शैली पर निर्मित इनके एक चित्र पर पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९६३,६४, ६५ में ललित कला अकादेमी की ओर से इन्हें लगातार परितोषिक प्राप्त होते रहे। कला के गम्भीर अध्ययन को आगे बढ़ाने और उसकी बहुमुखी धाराओं की बारीकियो को आत्मसात् कर उसे अपने ढंग से प्रस्तुत करने में ये सदैव चेष्टाशील रहे हैं।

जगु भाई शाह

जगु भाई शाह सामान्य जन जीवन और प्रकृति के चित्रकार हैं। भारत के हर छोटे से छोटे व्यक्ति, दैनन्दिन घटनाएँ और आँखों से गुजरने वाले हर

तरह के प्रसंगों को इन्होंने अपना प्रतिपाद्य विषय बनाया है। अनेक भागते क्षणों और फिसलती अनुभूतियों के बिम्ब इनके चित्रों में उभरे हैं। चमकीले रंग, पर गहरी संवेदनात्मक अनुभूति की सौम्यता, प्रतिदिन के अनुभव और प्रत्यक्ष की अवतारणा बड़ी खूबी से हुई है। रूपाकारों में रंग जैसे घुलमिल गये हैं, स्थल और प्रकाश का सामंजस्य है, रेखांकन और गतिभंगिमा में सहज अनुपात है। इनके दृश्य चित्र भी प्रकृति के निकट सम्पर्क का आभास कराते हुए सुघड़ मँजी शैली शिल्प के दिग्दर्शक हैं।

जगु भाई ने समूचे देश का काफ़ी भ्रमण किया है। यहाँ की दृश्य वस्तुएँ जैसे इनकी कल्पना में धँसकर उनके प्राणों की ऊष्मा लिये प्रकटी हैं। जीवन और प्रकृति की गहरी निष्ठा ने व्यंजना की सत्यता को सामने रखा है। सामान्य वातावरण और रंग-प्राचुर्य के सुन्दर संयोजन से जैसे प्राकृतिक दृश्य आविर्भूत हुए हैं।

वम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने कला की शिक्षा पाई। निर्माण शिल्प पर इन्हें लार्ड विलिंगडन का प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। बुज़ुर्ग कलाकारों में इनके कार्य को बड़ी सम्मान की दृष्टि से देखा जाता है।

हिम्मत शाह

आधुनिक शैली के कलाकारों में हिम्मत शाह की पर्याप्त ख्याति है। उनकी मानव आकृतियों की परिकल्पना बड़ी ही अजीबोग़रीब होती है। असभ्य आदिम मानव की तरह उनकी सृष्ट दुनिया में जैसे बड़े ही खौफ़नाक बदसूरत लोग बसते हैं। सभ्यता की नक़ाब में इंसान की अभद्र रुचियाँ और कुत्साएँ जो ढकी पड़ी रहती हैं उनका पर्दाफ़ाश होने पर उसका नग्न रूप बड़ा ही वीभत्स और दहशत पैदा करने वाला है। युग-युगान्तर से मनुष्य संघर्ष और समस्याओं से जूझ रहा है, मन की छद्म पर्तों में ज़िन्दगी की घनीभूत पीड़ाएँ, जगह-जगह चोट खाये घाव, आत्मा को बरबस कचोटने वाली यन्त्रणाओं में उसका मन टूट जाता है, चेष्टाएँ विकृत हो जाती हैं, वह कहाँ से कहाँ पहुँच जाता है, क्या सोचता है पर होता क्या है जिससे समस्या के तर्क जाल में फँसकर उसके खंडित अहम् का बड़ा ही भयंकर विस्फोट होता है। कला व्यक्तित्व का कृत्रिम आवरण नहीं, बल्कि उसका असली उद्‌घाटन है। हिम्मत शाह कृत्रिमता का पर्दाफ़ाश कर उसका वास्तविक रूप दिखाना चाहते हैं। मानव के इस कायाकल्प पर बाईस कैन्वास चित्रों का निर्माण किया जिसमें इनका एक चित्र 'मानव-नियति' ब्रिटिश आर्ट्स कौंसिल, लंदन में प्रदर्शन के लिए चुना गया है।

भावनगर, सौराष्ट्र इनकी जन्मभूमि है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा हुई। बेन्द्रे इनके कला गुरु हैं, उन्हीं के तत्त्वावधान में भारत सरकार के ये कल्चरल स्कॉलर के बतौर कार्य करते रहे। एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा से इन्होंने फाइन आर्ट्स में बी० ए० की डिग्री ली। १६६० की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और इन्हें अकादेमी अवार्ड प्राप्त हुआ। १६६२ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें पुनः पुरस्कार मिला। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और ललित कला अकादेमी के संग्रह में इनके कई चित्र सुरक्षित हैं। ये ग्रुप १८६० के सक्रिय सदस्य है और इनकी धारणाओं व स्थापनाओं से अनेक विवाद खड़े हुए हैं। अपने ग्रुप के निकायीकरण के सिद्धान्त के ये क़ायल हैं जिसमें मनुष्य मसीहा नहीं बल्कि थोथी सभ्यता के जंजाल में फँसा हुआ आत्मपुष्टि की क्षुधा से ग्रस्त है। उसकी आत्मश्लाघा और आरोपित सभ्यता की ईहा उसे सर्वनाश की ओर धकेल रही हैं। कला उसे बंधनमुक्त कराने वाला माध्यम है, पर कौन सी कला ? जो उसकी खुशामद करती है या वह जो उसके छद्म रहस्यों का उद्घाटन करती है ? हिम्मतशाह अपनी अभिव्यक्ति में किन्हीं औपचारिकताओं की क़ैद स्वीकार नहीं करते, बल्कि वे उन्मुक्त विचारों के प्रतिपादन में नई दिशा के अन्वेषी हैं।

सुन्दरलाल गूबाजी

ये लगभग दो दशकों से कला की साधना में प्रवृत्त हैं। इन्होंने कहीं किसी स्कूल या कालेज में कला का प्रशिक्षण नहीं लिया, पर प्रारम्भ से ही यामिनी राय के चित्रों से प्रभावित लोक कला में अपनी निष्ठा जागरूक की। स्वल्प रंगों एवं रेखाओं में इन्होंने सैकड़ों कैन्वास चित्रों का निर्माण किया है। 'माँ और शिशु', 'किशोरी बाला-शृंगार करते हुए', 'मुस्कान' आदि चित्रों में यथार्थवादी पद्धति अपनाई गई है।

बंगाल, बड़ौदा और काश्मीर के दौरे के दौरान इन्होंने बेहद चित्र बनाये और जनता में प्रदर्शन द्वारा कलाभिरुचि जागरूक की। प्रतीकात्मक चित्रों में इन्हें पर्याप्त सफलता मिली है।

पूर्णेन्दु पाल

नन्दलाल वसु के प्रतिभा सम्पन्न शिष्य पूर्णेन्दु पाल अहमदाबाद के कलाविद्यालय 'श्रेयस' में रहकर स्थानीय कला की समृद्धि में योगदान कर रहे हैं। इनके विषय में प्रसिद्ध है—पंजाब इनकी जन्म भूमि, बंगाल इनका विद्यालय और गुजरात इनकी कर्मभूमि है।

ये आदर्शवाद के क़ायल हैं। गुजराती संस्कृति और लोककलाएँ ही इनकी प्रमुख प्रेरणा का स्रोत हैं। ये जन जीवन के सम्पर्क में शक्ति सम्पन्न और प्राणवान तत्त्वों को मुखर करने की चेष्टा कर रहे हैं। 'ताल और गति' 'सुरीली घड़ियाँ', 'हम सफर', 'बस, दो में से एक' आदि इनके कतिपय चित्रों में श्रेय-प्रेय की अभिव्यंजना है। पंजाब की उन्मुक्त लोक प्रवृत्तियाँ, बगाल का भावावेग और गुजरात की सुकुमार सौम्यता का प्रभाव इन पर हैं जो इनके शिष्य-प्रशिष्यों को भी एक विशेष दिशा में प्रेरित कर रहा है।

यूनेस्को में भी इनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ है। इसके अतिरिक्त उत्साही जिज्ञासु के रूप में देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहे हैं।

लक्ष्मीचन्द मेंघाणी

गुजराती संस्कृति और जनजीवन के चित्रकार मेंघाणी किसी मंतव्य या उद्देश्यपूर्ति के लिए चित्र-सृजन नही करते, वरन् अपनी अंतरंग प्रसन्नता व आत्मतुष्टि के लिए ही वे ऐसा करते हैं। पारम्परिक, प्रवहमान शैली और रंगों की आलंकारिक सज्जा मे उन्होंने गुजरात के ग्राम दृश्यों का चित्रण किया। गुजरात, सौराष्ट्र व कच्छ के दैनन्दिन प्रसंगों, वहाँ के नारी-पुरुषों और उनके नित्य-नैमित्तिक व्यौरों का इन्होंने बड़ा ही सधा, सुन्दर चित्रण किया।

बम्बई ज़िलान्तर्गत गडग मे इनका जन्म हुआ। बारह वर्ष की आयु में ही ये बम्बई आगए थे और छुटपन से ही इन्हें कला का शौक था। इनकी शिक्षा बम्बई स्कूअ आफ आर्ट में हुई। अहिवासी और वाई० के० शुक्ला से ये अत्यधिक प्रभावित है। १६४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में भाग लेने के कारण इन्हें तत्कालीन सत्ताशाही के कोप का शिकार होना पड़ा और जेल भी जाना पड़ा। दाना बन्दर क्षेत्र में जब इनका आवास था तो १६४४ के डौक विस्फोट में ये स्वयं तो वाल-बाल बच गए, किन्तु इनका सारा समान, जिसमें इनके कितने ही चित्र और स्केच भी थे, सर्वथा नष्ट हो गए। एक सच्चा माधक कभी हार नहीं मानता, फलतः आज भी मेंवाणी बम्वई में रहकर अपनी अनवरत साधना में प्रवृत्त हैं।

के० जी० सुब्रह्मण्यम

कला भवन, विश्वभारती, शांतिनिकेतन में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया। मद्रासी होते हुए भी गुजरात में इन्होंने कला के प्रचार-प्रसार मेंयोगदान किया है। १६५२ में अमेरिका की भारतीय कला प्रदर्शन में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया। साओपाओलो, साउथ ईस्ट एशिया, बियनले, टोकियो, जापान,

लंदन के वार्षिक ग्रुप शो और राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और बाम्बे आर्ट सोसाइटी के प्रतिवर्ष के आयोजनों और समारोहों में भाग लेते रहते हैं। इन्होंने दिल्ली, बम्बई, गुजरात के प्रमुख नगरों में कई बार व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं।

जीवन अदलजा

कराची में उत्पन्न हुए। सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में प्रशिक्षण प्राप्त किया। वारसा की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से इन्होंने ग्राफिक में डिप्लोमा लिया।

१९६२ में यूनेस्को द्वारा आयोजित पोलैण्ड में भारतीयों की ग्राफिक प्रदर्शनी, टोकियो की अंतराष्ट्रीय बियनले प्रदर्शनी और स्विटज़रलैण्ड की ड्राइंग और इनग्रेविंग एग्ज़ीबिशन तथा अनेक सरकारी और ग़ैर सरकारी प्रदर्शनियों, प्राइवेट सोसाइटियों, आर्ट गैलरियों और सांस्कृतिक प्रदर्शनों में ये भाग लेते रहे हैं। १९५९ में महाराष्ट्र, १९६१-६३ में गुजरात और १९६५ में ललित कला अकादेमी का नेशनल अवार्ड इन्होंने प्राप्त किया।

मानसिंह छारा

अहमदाबाद के प्रगतिशील कलाकार ग्रुप के सदस्य हैं और वर्षों से कला साधना कर रहे हैं। बड़ौदा की एम० एस० यूनीवर्सिटी की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स से इन्होंने पेंटिंग में डिप्लोमा लिया। बम्बई, दिल्ली, अहमदाबाद में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, मद्रास और ग्वालियर की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है और पुरस्कृत भी हुए हैं। १९५० में आल इंडिया हेल्थ कान्फ्रेंस में पोस्टर चित्र प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। बनारस के भारत कला भवन और अहमदाबाद के रेनासाँ क्लब के ये सदस्य हैं। बाल मनोविज्ञान और दर्शन मे रुचि है, बहुमुखी प्रणालियों में दिलचस्पी रखने के साथ-साथ अच्छे कला समीक्षक भी है।

एच. एल. खत्री

पोर्ट्रेट पेंटर हैं। कभी किसी स्कूल या विद्यालय में कला प्रशिक्षण प्राप्त नहीं किया, वरन् जन्मजात कला अभिरुचि और संस्कारों के कारण इस ओर प्रवृत्त हुए और फ्री लांस आर्टिस्ट के रूप में वर्षों से कला साधना कर रहे हैं। भारत की प्रायः सभी कला-प्रदर्शनियों में भाग ले चुके है।

१९३६, ३९, ४० में पूना के महाराष्ट्र आर्ट एसोसिएशन, १९३७, ३९ में

कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, १६३६ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी, १६४६ में नागपुर स्कूल आफ आर्ट सोसाइटी, १६६२-६३ में गुजरात स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन, १६६३-६४ में मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, १६३८ ,१६४०, १६५२, ५८, ५६, ६४ में इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स में ये लगातार भाग लेते रहे हैं और कुछ अवसरों पर पुरस्कृत भी हुए हैं। छवि अंकनों में ये यथार्थवादी पद्धति के क़ायल हैं।

मधुकर गणेश पटकर

जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में कला प्रशिक्षक रहे हैं। लगभग दस पन्द्रह वर्षों से कला साधना कर रहे हैं। आजकल कोल्हापुर में कला निकेतन में डी० टी० सी० डिपार्टमेंट के अध्यक्ष हैं और स्थानीय छत्रपति राजाराम आर्ट सोसाइटी के सेक्रेटरी हैं। कलाकार होने के बावजूद ये कला समीक्षक भी हैं।

अमरूत गोहिल

भाव नगर इनकी जन्मभूमि है। बम्बई के सर जे० जे० स्कल आफ आर्ट में इन्होंने कला का प्रशिक्षण लिया। बम्बई में व्यावसायिक कलाकार के बतौर काफी अर्से तक काम करते रहे है। अब बड़ौदा की एम. एस. यूनीवर्सिटी की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स में अध्यापक हैं।

उज्जैन की कालिदास कला प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित अखिल भारतीय भित्ति चित्रकला और अनेक सामयिक कला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं। हैदराबाद आर्ट सोसाइटी से इन्हें स्वर्ण पदक प्राप्त हुआ हैं। ये एक अच्छे छविकार और भित्ति चित्रकार भी हैं। अनेक सार्वजनिक और निजी सग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

अनिल व्यास

भित्ति चित्रकार हैं और इन्होंने वनस्थली में भित्ति चित्र सज्जा की बारीकियों को आत्मासात् किया है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने अध्ययन किया है। नेशनल एकेडेमी एग्ज़ीबिशन जैसी अनेक प्रमुख कला-प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं। आजकल बल्लभ विद्या नगर में कला प्रशिक्षक हैं।

आश्विन व्यास

दृश्य चित्रकार हैं। बाहर घूम-घूम कर और विखरी दृश्यावली के स्केच बनाने का शौक़ रखते हैं। स्वनिर्मित लैण्डस्केप की व्यक्तिक प्रदर्शनी कर चुके

हैं और स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन तथा अन्य कतिपय कला प्रदर्शनियों में भाग ले चुके हैं ।

भँवर सिंह पवार

कई वर्षों से काम कर रहे हैं । सी० एन कला महाविद्यालय में शिक्षा प्राप्त की । कलकत्ता की फाइन आर्ट्स एकेडेमी और १९६२, १९६३ में मैसूर से इन्हें रजत पदक और पुरस्कार प्राप्त हुए हैं । आजकल अहमदाबाद के आदर्श हाई स्कूल में कलाप्रशिक्षक हैं ।

इरूच हकीम

सुप्रसिद्ध कलाकार बेन्द्रे के तत्त्वावधान में पोस्ट डिप्लोमा लिया । भारत सरकार के कल्चरल स्कॉलर के बतौर अनुसंधान कार्य करते रहे । आजकल एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स के स्टाफ में हैं । स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन में इन्होंने भाग लिया । निजी संग्रहालयों में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं ।

फिरोज कटपीटिया

सुप्रसिद्ध भित्ति चित्रकार हैं। १९५६ में पार्लियामेंट हाउस में इन्होंने म्यूरल पैनल बनाये । साहित्य अकादेमी में प्रदर्शनी अधिकारी के रूप में भी इन्होंने कार्य किया है । आजकल एम० एस यूनीवर्सिटी बड़ौदा की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स के स्टाफ में हैं ।

फरोख कन्ट्रैक्टर

नव्यवादी कलाकार हैं । एम० एस० यूनीवर्सिटी, बड़ौदा से एम०ए (फाइन) की डिग्री ली । बाम्बे आर्ट सोसाइटी, बाम्बे स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन सोवियत यूनियन की समसामयिक भारतीय कलाकारों की प्रदर्शनी तथा अनेक देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में भाग लिया। बैंकाक और कौला लम्पुर, सिंगापुर में व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की । यूनेस्को कार्यक्रम के अंतर्गत इन्हें फेलोशिप प्रदान की गई ।

किशोर वाला

अपंग होते हुए भी कला साधना में प्रवृत्त हैं । सनत ठाकुर और एम० डी० त्रिवेदी के तत्त्वावधान में इन्होंने पेंटिंग का प्रशिक्षण लिया । अखिल भारतीय स्तर के कला-आयोजनों एवं प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं । १९६४-६५ में स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन में ग्राफिक कृति पर इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ ।

विनय त्रिवेदी

रामायण विभाग मे कार्य किया है। पार्लियामेंट हाउस मे पेंटिंग की हैं। बड़ौदा यूनीवर्सिटी की फैकल्टी से सम्बद्ध है।

दिलीप

आधुनिकतावादी तरुण कलाकार हैं। एब्स्टैक्ट आर्ट में अनेक प्रयोग किये है। रेखांकन और ग्राफिक कला विशेषज्ञ हैं। आकृतिमूलक अमूर्त्तन और काले भूरे डिज़ाइनों में अधिकतर चित्र बनाते है।

यू तो गुजरात में परिवर्त्तनों के प्रति उपेक्षा बरती जाती है, पर समय की दौड़ के साथ द्रुतगामी और रचनात्मक कदम बढ़ाने के प्रयत्न हुए हैं। कुछ नये उत्साही कलाकारों ने पुरानी पीढ़ी की परम्पराओं पर पुरजोर आक्रमण किया है। नये-नये वादों की खोज में आधुनिकीकरण के हामी अनेक कलाकार बुद्धिजीवी बन गए है जो मूर्त्त से अमूर्त्त की ओर सक्रमण करने के साथ-साथ अनेक अवांछनीय तत्त्वों को कला पर आरोपित कर रहे हैं। परम्परा के प्रति अंतर्विरोध के कारण घात प्रतिघात से सघात उपजा है। आज के सभास और नये पन के शौक़ ने समूचे विचार-दर्शन और कला-टेकनीक में क्रान्ति उपस्थित कर दी है। आधुनिक कलाकारों का मन अपने देश की फिज़ाँ में नहीं, विदेशी चौखटे में क़ैद है जो अन्ध अनुकरण की प्रवृत्ति को बढ़ावा दे रहा है, फिर भी कुछ सच्चे साधक चिरन्तन भावधारा मे बहकर अभिव्यक्ति की सचाई में निष्ठा रखते है।

मध्य प्रदेश के कलाकार

उन्नीसवीं शती की भारतव्यापी जागृति के बावजूद भी यहाँ के लोगों को प्राचीन परिपाटी, रीति-रस्मों और मानसिक संस्कृति को बदल देने की जरा भी चिन्ता नहीं थी, केवल कुछ घिसे पिटे, क़दीमी कलाकार अन्धानुकरण की प्रवृत्ति के शिकार थे। युग विशेष की चिन्तन प्रक्रिया और नये वातावरण के अनुरूप कुछ थोड़ी बहुत जागरूकता थी भी तो बम्बई की सक्रिय, उद्‌बुद्ध कला चेतना के प्रभाव के कारण, फलत: इन्दौर स्कूल आफ आर्ट की स्थापना काफ़ी अर्से बाद हुई।

इस दौर में कुछ नये उत्साही कलाकारों की परम्परा सामने आई, पर वह भी प्रादेशिक सीमा में बन्दी थी। कला के प्रेरक प्राय: शिक्षाजीवी थे जो कला की मौलिक उद्‌भावनाओं के लिए चिन्तित न थे, वरन् पैर जमाने में ही समूची शक्ति व्यय कर रहे थे। अकस्मात बेन्द्रे के आगमन से स्थानीय कला में एक नई धारा प्रवर्त्तित हुई। इस उद्‌बुद्ध कलाकार के दृष्टिकोण व्यापक थे, फलत: एक नये बोध और संचेतना को प्रश्रय देकर इन्होंने कला को विशद धरातल पर प्रतिष्ठित किया। नई ताज़ी हवाओं ने मध्यप्रदेशीय कलाकारों को आज गहरी तन्द्रा से जगा दिया है। वे कला के हर रुख़ की ओर प्रतिबद्ध हैं, हर नये वाद और नित-नई प्रवर्त्तित कला धाराओं के प्रति सजग हैं। भोपाल, इन्दौर, ग्वालियर, उज्जैन आदि नगरों में कला केन्द्र स्थापित हो गये हैं और अनेक प्रतिष्ठित कलाकार कला की साधना-सेवा में एक निर्दिष्ट दिशा की ओर अग्रसर हैं।

दत्तात्रेय दामोदर देवलालीकर

मध्य प्रदेश के यशस्वी कलागुरु देवलालीकर अर्से तक इन्दौर में कला की मूक साधना में रत रहे हैं। वहाँ की कला के दिशा-निर्धारण में इनका अभूतपूर्व योगदान रहा है और बेन्द्रे, एम. एफ. हुसेन, देवकृष्ण जोशी जैसे सुप्रसिद्ध कलाकारों का इन्होंने मार्गदर्शन किया है।

व्यष्टि और समष्टि में एकात्म्य ही इनके चिन्तन की परिणति है। एक ओर तो पूत भावना और जीवन सम्बन्धी गहन गंभीर विचारों की प्रचुरता है तो दूसरी ओर सामान्य लौकिक पक्ष को भी व्यापक संदर्भ में दर्शाया गया है।

मातृ प्रेम

अशोक वन में सीता

भील ललनाओं का श्रमशील जीवन

आध्यात्मिकता से मुख्यत: प्रेरित जिन दिव्य रूपों में इन्हें तल्लीनता की अनुभुति हुई वही कलाकार के आत्मनिवेदन के रूप में मुखर हुई, फलत: इनके चित्रों में सहज ग्राह्यता और अंतर का निर्द्वन्द्व उन्मेष है।

कला के संक्रान्ति काल में इन्हें विभिन्न साधनाओं के दौर से गुज़रना पड़ा था, अतएव अनेक साधनाओं की समन्विति उनकी कला में द्रष्टव्य है। धार्मिक प्रवृत्ति और आध्यात्मिक क्षुधा के कारण इन्होंने शुरू से ही अपनी साधना प्रक्रिया में सगुण मार्ग का अवलम्बन किया। इन्हीं के शब्दों में -

'जब मैंने कला का अभ्यास करने का निश्चय किया तभी मैंने यह भी संकल्प किया कि मैं अपनी कला के द्वारा मानव जीवन में जो 'दिव्य' है उसी को

अभिसारिका

वीणा वादिनी

गृह कृत्य में व्यस्त

चित्रित करने का प्रयत्न करूंगा। 'दिव्यत्व' का बड़ा भाग मनुष्य के धर्म में निहित है। सभी महान् कलाकारों ने यथा-जापान, पुराना चीन, ग्रीस और इटली के कलाकारों ने अपनी कला के द्वारा धार्मिक भावनाओं की अभिव्यक्ति की है। शताब्दियों से भारत में भी अजंता, एलोरा जैसे महान् अवशेष यही बता रहे हैं।

हमारे प्राचीन ग्रंथों में जो दिव्य अलौकिक प्रसंग आए हैं उन्होंने मुझे अभिभूत किया, वे ही बाद में मेरे विषय बन गए।'

फलतः जो इनके प्राणों को छू गया, जो वस्तु इनके अंतरंग ने स्वीकारी अथवा भीतर गहरे में जिसने कहीं स्थान बना लिया वही निज में ढलकर बाहर प्रस्फुटित हुआ। 'सरस्वती' 'महाकाली', 'महालक्ष्मी' 'उद्धव' और गोपियाँ', 'शृंगी ऋषि', 'ऋषि पत्नियाँ', 'मैत्रेयी का पातिव्रत्य', 'सीता का रावण के घर आत्म-निग्रह से अन्न त्याग और इन्द्राणी का उन्हें अमृत भेजना' तथा शकुन्तला के प्रसंग पर निर्मित चित्रावली आदि में वे अपनी एकाग्रता, नैसर्गिक प्रेरणा और आस्था में एकनिष्ठ हैं। लखनऊ के अवध प्रेस से श्रीमद्भागवत का विशेषांक दो अंकों में प्रकाशित हुआ था तो उसमें इन्हीं की चित्र सुसज्जा थी। 'कल्याण' के कृष्णांक, भक्तांक और गीतांक के वार्षिक विशेषांकों में इनके अनेक धार्मिक और पौराणिक प्रसंगों पर निर्मित चित्र प्रकाशित हुए।

इन्होंने 'पोर्ट्रेट', 'स्टैच्यू', 'लैण्डस्केप' और सैकड़ों 'स्केच' भी बनाये हैं। अधिकतर जलरंगों और तैलरंगों का प्रयोग किया है। बड़े ही सधे, हल्के ब्रुश के 'स्ट्रोक्स' जो पृष्ठभूमि पर लहराते रंग बिखेर देते हैं दिव्य सौन्दर्य और रूपच्छवियों के उभार में बड़ी ही सूक्ष्म दर्शिता बरती गई है। अंग-प्रत्यंगों के उभार, केश-सज्जा, वस्त्राभूषण की अनुरूप संयोजना—यों इन्होंने सृष्ट आकृतियों को महान् आध्यात्मिक अर्थों से सुशोभित किया है और उदात्त अनुभव व अंतर्दृष्टि की ऊँचाइयाँ हासिल की हैं।

१८९३ में इनका जन्म मालवा धार स्टेट के बिडवाल नामक ग्राम में हुआ। छः-सात साल की अवस्था से ही इनमें चित्रण का शौक़ जगा। घर के कलामय वातावरण ने भी इन्हें प्रेरणा प्रदान की। किशोर वय में इन्दौर के महाराजा होल्कर कालेज में ये दाखिल हो गए और १९१७ में वहीं से बी. ए. की डिग्री ली। १९१७ से १९२१ के दौरान बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा प्राप्त की। अपने प्रशिक्षण काल में उक्त आर्ट स्कूल का प्रथम पदक 'मेयो मैडल' तथा अखिल भारतीय कला-प्रदर्शनी में गवर्नर का प्रथम पुरस्कार इन्हें प्राप्त हुआ। अध्ययन समाप्त कर लेने के पश्चात् इन्दौर स्टेट में कला शिक्षक के रूप में इनकी नियुक्ति हो गई। तत्पश्चात् आर्टिस्ट एमेट्योर के पद पर नियुक्त हो गए। उस समय इन्दौर में कला महाविद्यालय की स्थापना के प्रयत्न किये जा रहे थे, जिसमें इन्हीं का प्रमुख हाथ था। १९४६ में कला महा विद्यालय की स्था-

पना के पश्चात् कई वर्षों तक ये स्थानीय कला की प्रगति एवं उत्थान के प्रमुख स्तम्भ बने रहे ।

अपनी ही आत्मा की आँखों के लिए, अपने भीतर जो कुछ है उसके स्रोतों का मुख खोल कर उसकी सीधी अभिव्यक्ति में ये विश्वास करते हैं, अतएव कला के प्रति इनका दृष्टिकोण आदर्शोन्मुख है, साथ ही राष्ट्रीय भी । इनके मत में जो कला राष्ट्रोत्थान में योग देने वाली नहीं है वह वस्तुतः सच्ची कला नहीं । पारस्परिक परिधि को लाँघकर तथा सामाजिक आचार की मर्यादाओं की सर्वथा उपेक्षा करके जो कुत्सित अभिव्यक्ति को प्रश्रय देते है वे समाज को गुमराह करते हैं । कला कला के लिए या मात्र प्रदर्शन के लिए नहीं है, बल्कि कला के द्वारा देश की मूक सेवा ही सच्ची साधना है । दर्शकों को चौंकाने की गरज़ से आधुनिक पद्धति के बेडौल चित्रों का निर्माण इन्हें रुचिकर नहीं, बल्कि जो ग्रहणीय है, जो भीतर है उसे जैसा का तैसा बाहर ले आना, सँभाल कर ले आना, एेसे ले आना ज़िससे किसी को कोई आघात न पहुँचे, उसका रूप न बिगड़े तो कलाकार की ऐसी ही अनुभूतियाँ रंग एवं रेखाओं की तरंगों में गूंज कर जनता के प्राणों में स्पन्दन भरती हैं । पश्चिमी कला की अनुकृति प्रेरणा दायक नहीं है, प्रतिमाओं व मूर्त्तियों के निर्माण में ऐतिहासिक या आदर्श महापुरुषों के प्रतीक नहीं बल्कि व्यर्थ की टेढ़ी मेढ़ी, डरावनी शक्लें उभारी जाती है जिसका कोई उद्देश्य नहीं । सरकार भी ग़लत ढंग से कलाकारों की प्रतिभा का उपयोग कर रही है । कला की स्वतः प्रेरणा और सच्ची लगन पैसे के लालच में पनप नहीं पा रही बल्कि यूं कला की चिरंतन कसौटियों पर निर्मम प्रहार है, जो उसे उत्थान नहीं विनाश के पथ पर उन्मुख कर रही हैं ।

अतएव आध्यात्मिक स्तर से ऐन्द्रिय धरातल पर, आत्मदर्शन से कायिक प्रतीतियों पर टिकना निरी विडम्बना है जो चिन्तनीय है । ऐंसी लौकिक कीर्त्ति से नाम कमाने में कभी इन्होंने विश्वास नहीं किया और यही कारण है कि ये बहुत कम प्रदर्शनियों व आयोजनों में भाग लेते हैं ।

देवलालीकर १९४९ से भारत की राजधानी में बड़े संघर्षों से जीवन बिता रहे हैं । भारत सरकार से पेंशन के बतौर कुछ स्वल्प राशि मिलती है जो आज की महँगाई में अपर्याप्त है । अफ़सोस है कि सभ्यता के दावेदार, औपचारिकताओं के प्रहरी ऐसे लोगों को भूल जाते हैं जो मुक्त जनहित का पक्ष लेने के लिए अपनी जिन्दगी तलख़ कर देते हैं ।

देवकृष्ण जोशी

चित्रों में लालित्य ओर मनोरम दृश्यों की अद्‌भुत रंगीनी लिये देवकृष्ण जोशी ने मध्य प्रदेशीय कला में आंचलिकता की सोंधी खुशबू भर दी। ये नर्बदा तट पर बसे महेश्वर में उत्पन्न हुए थे। चतुर्दिक्‌ बिखरी हरीतिमा की ताज़गी में ये बड़े हुए। दूर-दूर तक फैले हल्के नीले शुभ्र क्षितिज, धरती और आकाश, लहलहाते सरसब्ज़ आग़ोश में सिमटे प्राकृतिक दृश्यों के प्रचुर रंग-वैभव ने इनमें औत्सुक्य और जिज्ञासा भर दी थी जो कालान्तर में इनकी रंग-रेखाओं में स्पन्दित हो उठी। बचपन की इसी अनुभूति से आपूरित एवं अनुप्राणित अंतश्चेतना और आत्म प्रत्यक्षीकृत सत्य के विविध पहलू इनके कृतित्त्व में उभरे। इन्होंने मध्य भारत की लोक संस्कृति के दिग्दर्शक, ख़ासकर मालवा और नर्बदा की विन्ध्य पर्वत माला, यहाँ के मन्दिर और किले, साथ ही दैनन्दिन जीवन के बिखरे दृश्यांकन प्रस्तुत किये। महेश्वर और मांडू की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत कीं।

एक दृष्यचित्र

आकार योजना, रेखाओं के अनुपात और तदनुसार रंगों के समन्वय में इनकी गहरी पैठ है। हवा और प्रकाश की लयमय भंगिमा को प्रत्यक्ष साकारता प्रदान करने में ये सिद्धहस्त हैं। मात्र रूपचित्र प्रस्तुत करने में नहीं वरन् ध्यान की सूक्ष्मदर्शिता और उसके पीछे भावसीमाओं के स्पंदित स्तरों को भी उद्घाटित करने की सूझबूझ है। 'खारगोन के गली का दृश्य', 'घड़ों का चुनाव', 'सब्ज़ी विक्रेता', 'घर की ओर' जिसमें घास से भरी गाड़ी रेंग रही है, 'पतवार खेती नाव', कुओं या नदी के किनारे नारियों की विविध भंगिमाएँ, इन्दौर शहर और प्राकृतिक दृश्यों के सजीव और प्रभावकारी चित्रण—ऐसी अंतरंग प्रेरणा की उपज है जो स्वानुभूति और स्वस्थ चिन्तन से प्रादुर्भूत तो है ही, अद्भुत सौन्दर्य, गति और लयात्मक त्वरा का भी दिग्दर्शक है।

इन्दौर स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने देवलालीकर के तत्त्वावधान में पहले प्रशिक्षण लिया, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में आगे अध्ययन के लिए चले गए। अनेक कलाधाराओं और बहुविध प्रणालियों की बारीकियों में पैठकर इनकी कल्पना और भाव-संवेग में प्रेषणीयता आगई। ये एक कुशल मूर्त्ति शिल्पी भी हैं, इनके द्वारा निर्मित एक कांस्य प्रतिमा भोपाल में स्थापित की गई हैं। १९५५ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, मद्रास की फाइन आर्ट सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, कलकत्ता, बम्बई और मद्रास की प्रदर्शनियों में इन्हें कई-कई बार पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। १९४७ में बाम्बे आर्ट सोसाइटी का गवर्नर पुरस्कार और रजत पदक, १९५० और १९५३ में इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स द्वारा दो बार स्वर्ण पदक, कालिदास समारोह प्रदर्शनी में स्वर्णपदक और १९५३ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा इन्हें रजत पदक प्रदान किया गया हैं। कलकत्ता, बम्बई दिल्ली, मद्रास, इलाहाबाद, इन्दौर, ग्वालियर, भोपाल, जबलपुर, रायपुर आदि नगरों में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं।

स्थानीय कला के दिशा-निर्धारण में इन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान दिया है। मध्य प्रान्तीय कला में जब विशद भाव का अभाव था और कलाकारों में दृष्टि वैविध्य की कमी थी तो इन्होंने ही कला को नया मोड़ दिया। इनकी हृदय निर्गत कलामय व्यंजना में कुछ ऐसी मौलिक सशक्तता और गहरी अंतर्दृष्टि थी जिसने कला-स्तर को एक नये धरातल पर प्रतिष्ठित कर दिया। मध्य प्रांत के वरिष्ठ कलाकार के रूप में इनकी बाहर भी उतनी ही प्रतिष्ठा है। ललित कला अकादेमी की सामान्य परिषद के ये सदस्य रहे हैं। मध्य प्रदेश स्टट एकेडेमी और इन्दौर के फ्राइडे ग्रुप के अलावा ये आल इंडिया फाइन

आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, बम्बई की आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया और बाम्बे आर्ट सोसाइटी के आजीवन सदस्य हैं। प्रधान मंत्री चित्र-संकलन, देश के महत्त्वपूर्ण कला-संग्रहालयों और विदेशों में भी इनकी कलाकृतियों को प्रश्रय मिला है। लक्ष्मी कला भवन, धार के ये प्राचार्य रहे हैं,। आजकल इन्दौर के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट के प्रिंसिपल हैं।

मनोहर जोशी

किसी समय ये क्रिकेट के बड़े अच्छे खिलाड़ी थे और रणजी ट्राफी टूर्नामेंट में इन्होंने मध्य भारत की ओर से शानदार प्रतिनिधित्व किया था, पर कैसे यकायक खेल से इनका झुकाव रंग और कूची की ओर हो गया—इसका विश्लेषण ये स्वयं भी कदाचित् नहीं कर पाते। कला-आचार्य देवलालीकर के तत्त्वावधान में इन्दौर स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने शुरू में प्रशिक्षण लिया, बाद में बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हुए और डिप्लोमा प्राप्त किया। कला क्षेत्र में उतरने से पहले जोशी ने विश्वविद्यालय स्तर की शैक्षणिक योग्यता हासिल करना अनिवार्य समझा, ताकि कला के माध्यम से लोगों के सामाजिक और राजनीतिक जीवन की सच्ची झाँकी प्रस्तुत करने का सूक्ष्म और समुचित ज्ञान उन्हें प्राप्त हो सके। इस दृष्टि भंगी से इन्होंने होल्कर कालेज में दाख़िला लिया और बाद में आगरा विश्वविद्यालय से ग्रेजुएट डिग्री प्राप्त की।

ये मुख्यतः दृश्य चित्रकार हैं। इनकी बौद्धिक विदग्धता और बहुमुखी क्षमता के आयामों का उद्‌घाटन उस समय ही हो गया था जबकि बम्बई में आयोजित कला प्रदर्शनी में इनके दो चित्रों ने अकस्मात् चकित कर दिया। इनकी निर्माण और संरचना पद्धति बड़ी ही अजीबोग़रीब और वैचित्र्य व्यंजक थी, ख़ासकर 'मैंने ओ' हारा' शीर्षक पेंटिंग ने दर्शकों में तहलक़ा मचा दिया, भला कौन है इस ऊटपटाँग चित्रकृति का निर्माता ! १९४७ में जब इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनी हुई तो इनकी मौलिक सूझबूझ और प्रख़र अंतर्दृष्टि का अधिकाधिक परिचय मिला। लगभग तीस से ऊपर चित्र—बड़े आकार के और विभिन्न तौर-तरीकों में निर्मित—जिनमें सामाजिक, राजनीतिक, साम्प्रदायिक पहलुओं पर प्रकाश डाला गया। काश्मीर के लड़ाई-दंगे, संघर्ष, कशमकश, लूटपाट और क़त्लेआम—जैसे नज़ारे भी प्रस्तुत किये गए थे। अभिप्रेत प्रभाव उत्पन्न करने के लिए रंगों के बड़े ही सशक्त और मुखर प्रयोग किये गए थे। ऐसे

वीभत्स दृश्यों के अलावा कुछ ऐसे चित्र भी थे जो व्यंगात्मक पुट लिये हास्य और मज़ाकिया मूड में मन को हल्का करने वाले थे। इनके चित्रों का यह प्रदर्शन बड़ा ही सफल रहा और लोगों ने इनके प्रयोगों की भूरि-भूरि प्रशंसा की। इनके कार्य की सराहना तो हुई, पर कोई चित्र बिका नहीं। नित-नये प्रयोगों में निष्ठावान इनका मन इससे हताश न हुआ। इनका कथन था—'दर असल यहाँ के जनवर्ग की मनोवृत्ति कुछ ऐसी संकीर्ण ओर अपने तईं केन्द्रित है कि वे आँखों को बहलाने वाले शौक़िया चित्र तो चाहते हैं, पर ज़िन्दगी की हूबहू यथार्थताओं से वे क़तराते हैं। मुझे जरा भी अफसोस नहीं कि दीवारों से उतार कर उन्हें फिर अपने बक्स व पेटियों में बन्द कर रहा हूँ। इनके मत में पेंटिंग या चित्र केवल ड्राइंग रूम या कक्षों की दीवारों पर महज़ सजावट के बतौर लटकाने की चीज़ नहीं है, बल्कि वे सामाजिक, साथ ही सामान्य जन-जीवन की सच्ची परिस्थितियों के दिग्दर्शक होने चाहिए।

किसी भी कलाकृति का निर्माण रागतत्व और बुद्धितत्त्व का संश्लिष्ट संयोग है। बुद्धितत्त्व के अंतर्गत विचार और चिंतन का जहाँ महत्त्व है वहाँ रागतत्त्व के समावेश से रसोद्रेक अर्थात् हृदय को छूने या द्रवीभूत करने की क्षमता जगती है अतएव कलाकार को दोनों का गंभीर ज्ञान अपेक्षित है, तभी वह मनोवैज्ञानिक सत्यों और दृश्यजगत् की हरबाहरी-भीतरी यथार्थताओं पर दक्‌पात कर सकने की सामर्थ्य जगा सकेगा।

इनकी चित्रण-पद्धति पर साल्वेडोर डाली का प्रभाव है। अतियथार्थवादी अमूर्तीकरण के प्रयास में इन्होंने झुकी हुई व अपने आप में सिकुड़ी-सिमटी और एक ख़ास नाज़-अन्दाज़ में आड़ी तिरछी और घुमावदार रेखाओं से निर्मित आकृतियों की विचित्र सृष्टि की है। कहीं-कहीं इनके ऐसे चित्र महज़ विरूप और अमूर्त्तता के व्यंजक बनकर निर्जीव और भौंडे बन पड़े हैं। किन्तु इनके वैसे अनेक चित्र जो परम्परागत शैली में निर्मित हैं बड़े ही सुन्दर और भव्य बन पड़े हैं। सामाजिक दुर्दशाओं के दिग्दर्शक 'हाउसिंग रैंकेट' जैसे इनके ग्राफिक निर्मित कुछ चित्र अतिवादिता लिये हैं, किन्तु जलरंग तथा तैलरंग बहुमिश्रणों की रंजक रम्यता लिये गोआ के प्रियोले गाँव के जैसे दृश्यांकन बड़े ही आकर्षक है जो रंगों की सुषमा नेत्रों के समक्ष बिखेर देते हैं। व्यावसायिक कलाकार के बतौर वर्षों से कला की उन्मुक्त साधना-पथ के ये राही हैं और प्राचीन-अर्वाचीन टेकनीक की प्रेरणा से इन्होंने स्वयं अपना रास्ता बनाया है।

एल० एस० राजपूत

राजपूत उन्मुक्त प्रयोगशील कलाकार हैं जो न तो परम्परापेक्षी हैं और न ही आधुनिकता की विडम्बना के शिकार। परम्परा से उनका इतना ही सम्बन्ध है कि जिससे उनके आदर्शों को गति एवं प्रेरणा मिल सके, साथ ही नव्यता की ओर भी वे उतने ही उन्मुख हैं ताकि नई पीढ़ी की भावनाओं को प्रश्रय देकर व्यवहार और आचार के मानदण्डों को एक सीमा तक अपने शिष्य-प्रशिष्यों के समक्ष रख सकें।

ये इन्दौर स्कूल आफ आर्ट के प्राचार्य हैं। बहुमुखीविधाओं में इन्होंने कतिपय प्रयोग किये हैं, रंग-रेखाओं में यथानुपात और समुचित सामंजस्य है। 'पात्र-विक्रेता,' 'वसंत,' 'प्रतीक्षा,' 'पोखर के पास,' 'राधा,' 'यक्षिणी', 'अध्ययन' आदि चित्रों में उर्वर कल्पना और निर्व्याज्य शिल्प-सौष्ठव है। कहीं भाव-प्रधान विषय हैं तो कहीं जन-जीवन से प्रेरित रोजमर्रा के नजारे। जलरंग, तैलरंग, टेम्परा, वाश आदि विभिन्न माध्यमों में इन्होंने प्रचुर चित्र सृष्टि की है। ये एक कुशल मूर्त्तिशिल्पी भी हैं। इस दिशा में भी इनकी विशिष्ट उपलब्धियाँ हैं।

६ अक्तूबर, १९१९ में इन्दौर के क्षत्रिय परिवार में इनका जन्म हुआ। बचपन से ही कला की ओर इनकी अभिरुचि थी, जो एक विशेष वातावरण में क्रमशः परिपक्व होती गई। अपने विकास का पथ खोजते हुए स्वयं प्रेरणा के बल-बूते अपनी कला में उत्तरोत्तर परिष्कृति और गहराई भरते गए। इन्दौर के कला महाविद्यालय में आचार्य देवलालीकर के तत्त्वावधान में इन्होंने कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में आगे अध्ययन के लिए चले गए। शिक्षा के दौरान बम्बई के कलामय वातावरण में इन्हें वहुविध प्रणालियों को माँजने का अवसर मिला था। शिक्षा समाप्त करने के पश्चात् ये तत्काल कला की अनवरत साधना में जुट गए और न सिर्फ़ चित्र सृजन द्वारा, बल्कि हर प्रकार के कला-आयोजनों में हिस्सा लेकर उसके वहुमुखी विकास और उत्थान में चेष्टाशील रहे। गणतन्त्र समारोह के अवसर पर आयोजित झाँकी प्रतियोगिता में इन्हीं के द्वारा झाँकियों के डिज़ाइन तैयार किये गए जिसके परिणामस्वरूप १९५९-६०-६२-६३ की झाँकियाँ सर्वोत्तम रहीं। कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी, ग्वालियर कला प्रदर्शनी, इन्दौर एवं ग्वालियर स्टेट आर्ट एग्जीबिशन तथा अन्य कितनी ही समसामयिक कला प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुके है। कालिदास कला प्रदर्शनी

समारोह में ये पुरस्कृत भी हो चुके हैं। राजकीय कला वीथिका, पंजाब म्यूज़ियम, चंडीगढ़ और लखनऊ की उत्तरप्रदेश स्टेट आर्ट गैलरी में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं।

एक दृश्यचित्र

उमेश कुमार

आकाशचारी कलाकार नहीं बल्कि धरती पर विचरने में सुख का अनुभव करते हैं। काल्पनिक उड़ानें नहीं बल्कि यथार्थ के तानेबाने सुलझाने में इनकी वृत्ति अधिक रमी है। इनके चित्रों के विषय नित्य प्रति के बिखरे दृश्यांकन हैं। रोज़-मर्रा की घटनाएँ व प्रसंग, जीवन का यथातथ्य चित्रण जो इनके मन को छूता है और अभिव्यक्ति के शिल्प-सौष्ठव में मुखर हुआ है। रंग-नियोजन मौलिक है, रूप-निर्माण में नई व्याख्याएँ और दृश्यरूपों के सूक्ष्म पहलुओं को आँकने की निष्ठा है। किसी 'वाद' की परिसीमा में कला के विराट् चिरन्तन रूप को आबद्ध नही किया जा सकता, वरन् उसमें दिल की धड़कनों और लहकती साँसों का स्पन्दन है।

इनका जन्म ग्वालियर में हुआ। इनकी शिक्षा प्रारम्भ में लखनऊ के आर्ट्स कालेज में हुई, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से डिप्लोमा लिया। बम्बई, दिल्ली, कलकत्ता, मैसूर, ग्वालियर में इनके चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुई। कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी तथा अन्यान्य प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहते हैं। मैसूर के जे० सी० मिल्स, राजमाता, ग्वालियर और राजकीय कला-वीथिका, ग्वालियर में इनके चित्रों का संग्रह है। आजकल ये ग्वालियर के कमला राजा महिला महाविद्यालय में कला-विभाग के अध्यक्ष हैं।

चन्द्रेश सक्सेना

ये मुख्यतः ग्राम्य जनजीवन के कलाकार हैं। गाँव और नगर के कितने ही दृश्यांकनों, बाज़ारों, सड़कों, गली-कूचों, निर्जन या उपेक्षित पड़े स्थानों आदि के माहौल का इन्होंने हूबहू चित्रण किया है। जिन वस्तुओं के साथ निकट का सम्पर्क है,जो मनुष्य के हर संघर्ष के साथी हैं वे जैसे रागतन्तुओं को छूकर ही वहिर्गत होते हैं। सक्सेना के ऐसे ही सर्व सामान्य दृश्यों पर, ख़ासकर ग्राम्य जीवन के सर्वश्रेष्ठ चित्रों पर भारत सरकार ने २५०० रु० की राशि पुरस्कार के बतौर प्रदान की थी। इन्होंने इस दिशा में गंभीर अनुसंधान और विभिन्न प्रयोग किये हैं। फिर भी इनका कृतित्व गाँव तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इन्होंने जीवन के बहुमुखी पहलुओं पर दृक्पात किया है।

उज्जैन इनकी जन्म भूमि है। उच्च और सम्पन्न घराना, पिता मशहूर वकील जो कलाप्रेमी थे। अतःबालक में भी शुरू से ही ऐसे संस्कार पल्लवित
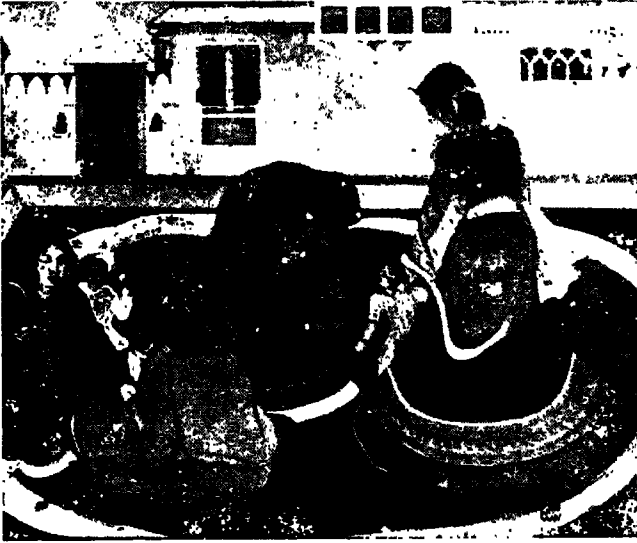
बाल क्रीड़ा

हुए। कालेज की शिक्षा के दौरान इन्होंने बम्बई सरकार द्वारा संचालित ड्राइंग की प्राथमिक और माध्यमिक परीक्षाएँ उत्तीर्ण की, तत्पश्चात् धार के कलाभवन में प्रवेश ले लिया। सुप्रसिद्ध कलाकार फडके के सम्पर्क में इनकी कला चेतना मुखरित हुई। यहाँ चार वर्ष रहकर इन्होंने मध्यप्रदेश का व्यापक दौरा किया और वहाँ के प्रसिद्ध स्थानों, दृश्यों ख़ासकर आदिम वासियों के जीवन के विविध प्रसंग और मालवा की ग्राम्य दृश्यावली में चित्र प्रस्तुत किये। गाँवों में जैसे इनकी प्राणात्मा एकलय हो उठी।

१९४७ में ये बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो गए। वहाँ अहिवासी के तत्त्वावधान में इन्होंने कला की बारीकियों और उसके बहुमुखी पक्षों का गहरा अध्ययन किया। कितने ही बाहरी प्रभावों को आत्मसात् कर इन्होंने निजी मौलिक शैली विकसित की। उन्हीं दिनों बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित कला-प्रदर्शनी में इन्हें एक चित्र पर सी० डी० देशमुख पुरस्कार प्राप्त हुआ। कुछ समय बाद ही इनके कुछ और चित्र आर्ट सोसाइटी आफ

इंडिया द्वारा प्रदर्शित किये गए जिन पर इन्हें ट्रवलिंग स्कालरशिप प्राप्त हुआ जो केवल एक ही छात्र को प्रति वर्ष मिलता है। १९४८ में डिप्लोमा कर लेने के पश्चात भारत सरकार द्वारा इन्हें विशेष अध्ययन के लिए शांतिनिकेतन भेजा गया। बम्बई के प्रवास में रोरिक, हेब्बर, रज़ा जैसे चित्रकारों के निकट सम्पर्क में और शांतिनिकेतन में देश-विदेश के कलाकार और आचार्य नन्दलाल वसु के

सरस्वती देवी पूजन

चरणों में बैठकर इन्होंने कला के रूप-वैविध्य में झांका। शांतिनिकेतन के हेवेल हाल में इनके चित्रों की प्रदर्शनी की गई जिसमें इनके द्वारा निर्मित सथालों की जीवन-झाँकियाँ और शांतिनिकेतन के विविध दृश्यांकनों को खूब सराहा गया।

अधिकतर इन्होंने जलरंग, तलरंग और टेम्परा का प्रयोग किया है। चूँकि ये प्रयोगशील हैं और नूतन-पुरातन प्रभावों के सामंजस्य द्वारा मौलिक रचना

विधान के क़ायल, अतः इन्होंने अनुरूप रंग-सामंजस्य द्वारा वातावरण का प्रभाव सृष्ट करने में कमाल दर्शाया है। कहीं यथार्थ से आदर्श की ओर उन्मुख होने का प्रयास है तो कहीं रहस्यात्मकता से दार्शनिकता को प्रश्रय दिया गया है। नन्दलाल वसु की कला का प्रभाव इनके कृतित्व पर है। इनके एक चित्र में शान्तिनिकेतन का एक ग्राम्य दृश्य प्रस्तुत किया गया है। बाँसों के झुरमुट में एक फूस की झोंपड़ी, जहाँ एक ओर बैलों की जोड़ी और झोंपड़ी की छाया में गाय की नाँद तथा इर्दगिर्द धान वग़ैरा रखने के लिए अन्य झोंपड़ियाँ बनी हुई हैं, सुख-शान्ति की दात्री यह कुटिया भारतीय संस्कृति की प्रतीक है जो कलाकार की अंतरंग वृत्तियों का सहज निरूपण कराती है। मंगलनाथ का घाट, क्षिप्रातट स्थित शिव मंदिर और वैसाख के महीने में एकत्र दर्शनार्थी भक्तों की भीड़ के दिग्दर्शक तथा 'धार का बाजार', 'चाँदनी चौक का घंटाघर', 'अवंतिका के घाटों का दृश्य', सुप्रसिद्ध ऐतिहासिक मांडव का जहाजमहल, मालवा संस्कृति और संथाल जीवन के दिग्दर्शक कितने ही चित्रों का निर्माण इन्होंने किया है। स्थानीय चित्र-संकलनों के अलावा दिल्ली, इलाहाबाद, जयपुर, अमेरिका और रूस आदि के संग्रहालयों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। ग्वालियर की मध्यप्रदेश कला परिषद के ये सहायक सचिव हैं तथा नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी की कार्यकारी परिषद के सदस्य हैं।

एस० के० शिन्दे

ग्वालियर इनकी जन्म भूमि है। इनका शिक्षण बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुआ। ये प्रगतिशील कलाकार हैं और उन्मुक्त साधना में विश्वास रखते हैं। अनेक माध्यमों में इन्होंने चित्र सर्जना की है। इन्दौर, ग्वालियर रायपुर, बम्बई, कलकत्ता, दिल्ली, हैदराबाद, जयपुर आदि स्थानों में इन्होंने अपनी कला प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। १९६०-६२ की कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी, रायपुर की राजकीय कला प्रदर्शनी, ग्वालियर कला प्रदर्शनी, बम्बई व जयपुर की कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। राजकीय कला

वक्र दृष्टि

वोथिका, राजमाता ग्वालियर, राजस्थान तथा अनेक सरकारी व ग़ैर सरकारी संग्रहों में इनके चित्रों को स्थान मिला है। शिन्दे की निर्माण-प्रक्रिया पर आधुनिक शैली का प्रभाव है, फिर भी इन्होंने नूतन-पुरातन का अद्भुत सामंजस्य दर्शाया है।

वास्तव में भारतवर्ष शहरों में नहीं गाँवों में है। उसकी असलियत वहीं छिपी पड़ी है जिसके सूक्ष्म पहलुओं का उद्घाटन इन्होंने अपने चित्रों में किया। दिल्ली, इन्दौर, ग्वालियर में आयोजित राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, कलकत्ता आर्ट एग्ज़ीबिशन, विक्रम विश्वविद्यालय तथा अन्य स्थानों में आयोजित समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। १९५९ में कालिदास कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ है। बम्बई, इन्दौर, शांतिनिकेतन, उज्जैन में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुई हैं। राजकीय कला वीथिका, राष्ट्रपति भवन, प्रधानमंत्री संग्रह और विक्रम विश्वविद्यालय में इनके अनेक उत्कृष्ट चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। आजकल ये ग्वालियर के कला महाविद्यालय में प्राध्यापक है।

विमल कुमार

ये मध्यभारत के वरिष्ठ कलाकारों में से हैं और वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त है। ये न केवल कला-सर्जना में रुचि रखते हैं, वरन् इन्होंने कला की प्रगति एवं समुत्थान की दिशा में भी पर्याप्त योगदान दिया है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा हुई। वहाँ के बहुविध प्रभावों के कारण ही विशद और वैविध्यपूर्ण दृष्टिकोणों को ले कर ये चले। ग्वालियर कला प्रदर्शनी, उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी, राजकीय कला-प्रदर्शनी तथा सुरक्षा मंत्रालय द्वारा आयोजित कला प्रतियोगिता में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। दिल्ली, जयपुर, अमृतसर, आस्ट्रेलिया में इन के चित्रों का प्रद र्शन हुआ। राष्ट्रपति भवन, भोपाल राजभवन, राजमाता ग्वालियर, महाराजा नेपाल, ग्वालियर राजकीय कला वीथिका, बंगलौर की फ्री आर्ट गैलरी, आकाश वाणी दिल्ली, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन तथा अन्य राजकीय शिक्षण संस्थाएँ, जे० सी० मिल्स तथा अखिल भारतीय कांग्रेस में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

नायिक

लक्ष्मण भाँड

ग्वालियर के सुप्रसिद्ध कलाकार लक्ष्मण भाँड बड़े ही कर्मठ और उत्साही साधक शिल्पी हैं जिन्होंने कला के बहुमुखी विकास में सराहनीय सेवा की है। बचपन में ही ये मिट्टी की मूर्तियाँ बनाया करते, रेखचित्र बनाने का भी शौक़ था, यह रुचि इन्हें माता-पिता से विरासत में मिली थी। किन्तु बेहद गरीबी, संघर्षशील जीवन और अर्थाभाव के कारण ये बाहर शिक्षा के लिए नहीं जा सकते थे और उस समय ग्वालियर में कोई ऐसी व्यवस्था न थी। अतः इन्हें एकलव्य की भूमिका लेकर कला-क्षेत्र में उतरना पड़ा और इन्होंने संकल्प किया कि जीवन भर ये कला के उत्थान में लगे रहेंगे और किसी ऐसी संस्था की स्थापना करेंगे जो कला प्रशिक्षण का केन्द्र होगी। इसी स्वप्न को लेकर इन्होंने १९१८ में 'लक्ष्मी पेंटिंग हाउस' से कार्यारम्भ किया। अपनी श्रम-साधना
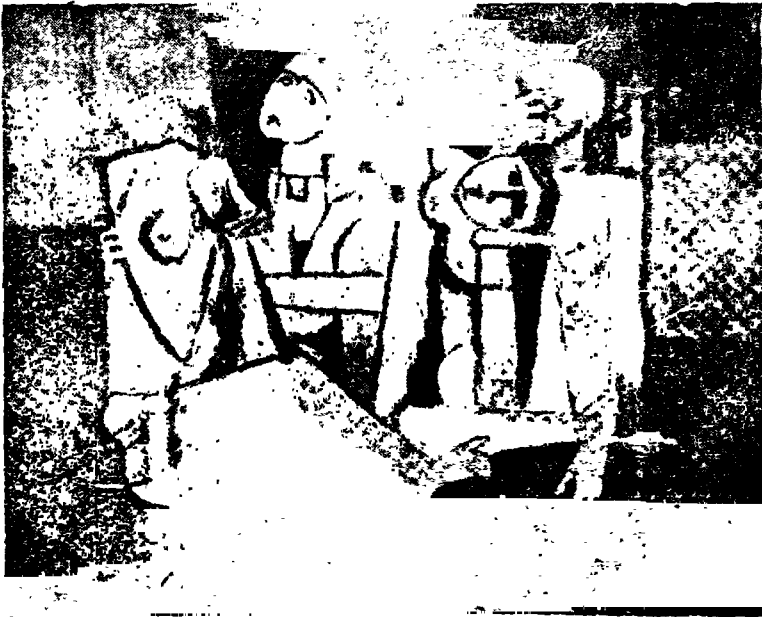
रचना

और अपने पास से पैसे लगाकर इन्होंने विद्यार्थियों को बम्बई की 'ड्राइंग ग्रेड' परीक्षा के लिए तैयार किया। १९२६ तक यही क्रम चलता रहा। इस दौरान ये उज्जैन में भी कला के संगठन-कार्य में प्रयत्नशील रहे।

१६३६ में 'एम० एस० भांड्स स्कूल आफ आर्ट्स' के रूप में इन्होंने उक्त संस्था को स्थायी रूप प्रदान किया। इस संस्था के जरिए इन्होंने कला की दिशा में व्यापक प्रयत्न किया है। बड़े ही संघर्ष व साधना से इन्होंने छात्रों की टोलियाँ तैयार की हैं और उन्हें कलाकार बनने की प्रेरणा प्रदान की है। कुछ लोगों के आग्रह से भोपाल के अधूरे कला-शिक्षण के संगठन का कार्य भी इन्हें सौंपा गया और वहाँ के राजकीय विद्यालय से ये सम्बद्ध हो गए।

अपने उद्योग से बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। वहाँ की बहुमुखी प्रवृत्तियाँ अपनाकर इन्होंने कला की दिशा में अनेक प्रयोग किये हैं। एक आदर्श कला प्रशिक्षक के बतौर विभिन्न माध्यमों में कला सृष्टि की है और चित्र एवं मूर्तिशिल्पी के रूप में सांस्कृतिक मान्यताओं को मुखर किया है। राजकीय चित्रकला प्रदर्शनी और कालिदास चित्र एवं मूर्ति कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। ग्वालियर, इन्दौर, भोपाल, पंजाब में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। ग्वालियर की राजकीय कला वीथिका तथा अन्य सरकारी एवं ग़ैर सरकारी संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं। इनकी विशेषता है कि न केवल निजी सर्जना में वरन् इन्होंने अपनी प्रतिभा और क्षमता का उपयोग कर प्रांतीय कला को सुस्थिर एवं सम्पुष्ट बनाने में भारी उद्योग किया है।

सुशील पाल

सन् १६१७ में इनका जन्म पूर्वी बंगाल में हुआ। गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स, इंडियन सोसाइटी आफ ओरियिंटल आर्ट, कलकत्ता में इनका प्रशिक्षण हुआ। बंगाल शैली का प्रभाव इनके कृतित्व पर है, किन्तु इन्होंने मध्य प्रान्त की संस्कृति में स्वयं को ढाल लिया है। बंगाल, मध्यभारत और नेपाल में इन्होंने परिभ्रमण किया है और वहाँ के अनेक दृश्यांकनों को प्रस्तुत किया है। इनकी चित्रण शैली आधुनिकता का पुट लिये हैं। अनेक लैण्डस्केप और प्राकृतिक दृश्यचित्रों को प्रस्तुत करने में इन्होंने नई विधाएँ अख़्तियार की हैं।

१६३८ की कलकत्ता कला प्रदर्शनी और १६४१ की हैदराबाद कला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। पटना, कलकत्ता, हैदराबाद और बंगाल में इन्होंने अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया। उपराष्ट्रपति संग्रह, कलकत्ता यूनीवर्सिटी, हैदराबाद के निजाम, राजकुमार बरार और भोपाल, अजमेर के शिक्षा-विभाग तथा अनेक सरकारी व ग़ैर सरकारी संग्रहों में इनके चित्रों को

प्रतिनिधित्व मिला है। इसकी विशेषता है नव्यता का पुट लिये एक अपनी मौलिक शैली का विकास जो इनके चित्रण को दूसरे की दृष्टि में महत्त्वपूर्ण

आहट

बना देता है। प्रायः इन्होंने जलरंगों का प्रयोग किया है। आजकल ये लक्ष्मी-बाई कालेज, भोपाल में लेक्चरार हैं।

मनोहर गोधने

परम्परावादी कलाकार हैं। सांस्कृतिक और धार्मिक विषयों को लेकर इन्होंने चित्र-सर्जना की है। सूक्ष्म आकृति बाहुल्य और घनीभूत, निगूढ़ रंग-योजना इनके चित्रण की विशेषता है। प्राचीन देवस्थल और मूर्त्ति शिल्प का विशेष प्रभाव इनके चित्रण कौशल की विशेषता है।
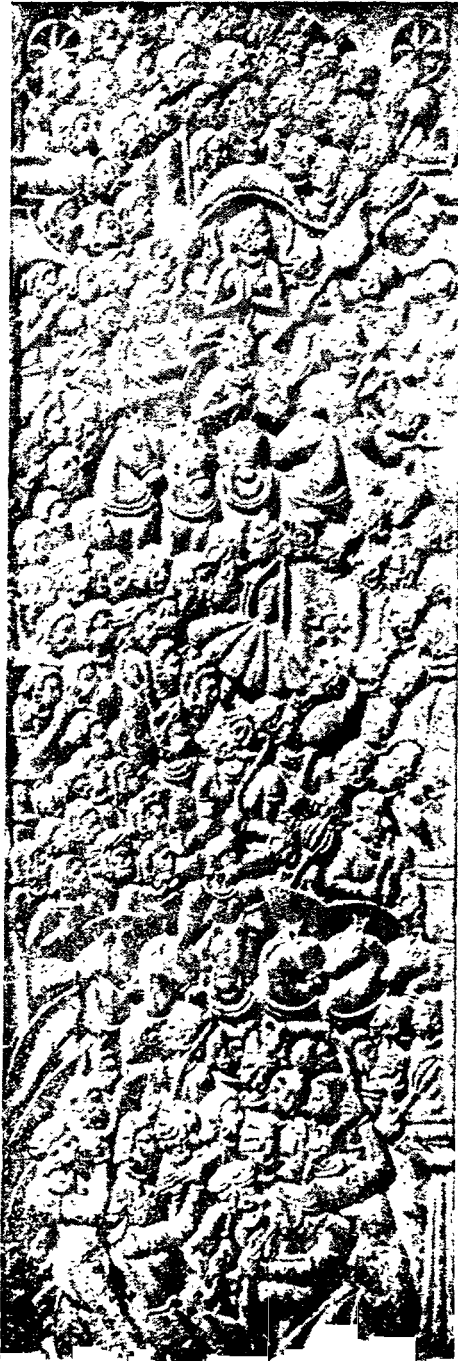
इनका जन्म इन्दौर में हुआ। प्रारम्भ से ही इनकी रुचि कला की ओर थी। कला महाविद्यालय इन्दौर में इनका शिक्षण हुआ। जलरंग, तैलरंग, टेम्परा आदि में इन्होंने विभिन्न प्रयोग किये हैं। १९५६-५७ की ग्वालियर कला प्रदर्शनी और १९५८, ६०, ६१ की कालिदास चित्रकला प्रदर्शनी में इनके उत्कृष्ट चित्रों पर पुरस्कार प्राप्त हुए। दिल्ली की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और ग्वालियर, उज्जैन, इन्दौर, भोपाल की राजकीय कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। कलकत्ता संग्रहालय, राष्ट्रपति भवन, राजभवन भोपाल, विक्रम विश्वविद्यालय, उज्जैन और अमेरिका व नाइजेरिया में इनके चित्रों का संग्रह है।

विशाल कैन्वास पर बहुरंगों मे अधिकाधिक आकृतियों को उभार कर इन्होंने सूक्ष्म कौशल और गहरी दृष्टि की पैठ का परिचय दिया है।

अयोध्या प्रवेश

वी० डी० चिंचालकर

इनकी जन्मभूमि भी इन्दौर है। प्राचीन कला थाती के प्रति गहरी निष्ठा और समादर का भाव होते हुए भी आधुनिक नव्य धारा का प्रभाव इनके कृतित्व पर हैं। इनकी सफलता का रहस्य नूतन-पुरातन का सामंजस्य तथा रंग, विषय, शैली और निर्माण-प्रक्रिया में सर्वथा निजी ढंग अख़्तियार किया गया है। इनकी रूपाकृतियाँ आकर्षक और अनूठापन लिये हैं।

इन्दौर के देवास कला-महाविद्यालय में इनका शिक्षण हुआ, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में ये आगे अध्ययन के लिए चले गए। बड़े-बड़े कलाकारों के सम्पर्क में रहकर इन्होंने विभिन्न शैलियों को प्रश्रय दिया। कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पटना, अमृतसर, इन्दौर, ग्वालियर, त्रिवेन्द्रम आदि प्रमुख स्थानों में आयोजित समसामयिक कला आयोजनों एवं प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं और इन्हें समय-समय पर पुरस्कार एवं पदक प्राप्त हुए हैं। दिल्ली और इन्दौर में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। दिल्ली, कलकत्ता, राजकीय कला वीथिका एवं विदेशों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है।

जी० के० पंडित

इन्दौर के सुप्रसिद्ध कलाकार जी० के० पंडित काफ़ी अर्से से कला की साधना में प्रवृत्त हैं। इन्होंने दृश्यांकनों और अनेकानेक विषयों को लेकर नूतन प्रयोग किये हैं। 'हरी भूमि पर नीली नजर' जैसे चित्र अभिनव दृष्टिकोण को लेकर मौलिक अंकन शैली के परिचायक हैं।

इन्दौर के देवास कला महाविद्यालय में इनका शिक्षण हुआ, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में ये पढ़ने चले गए। १९५४ में त्रिवेन्द्रम औद्योगिक कला प्रदर्शनी, १९५४ में राजकीय कला प्रदर्शनी, १९३२ में रायपुर कला प्रदर्शनी और भोपाल कला प्रदर्शनी में इनके चित्रों को पुरस्कार प्राप्त हुए। दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, उज्जैन, ग्वालियर एवं अमृतसर तथा अन्यान्य प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहते हैं। इन्होंने कई नगरों में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की हैं। ग्वालियर, इन्दौर, कलकत्ता तथा अन्य निजी संग्रह कर्त्ताओं के पास इनके चित्र सुरक्षित हैं। इनके चित्रों की खूबी है—सृजन शिल्प की रंजक चारुता जो बरबस दर्शक को आकृष्ट कर लेती है।

हरी भूमि पर नीली नज़र

राममनोहर सिन्हा

ये जबलपुर के सुप्रसिद्ध कलाकार हैं। इनका प्रशिक्षण कला भारती, शांतिनिकेतन में हुआ। सेंट्रल एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और पेंकिंग में भी इन्होंने कला का अध्ययन किया है। ये दृश्य चित्रण और भित्ति चित्रकला में विशेष दक्ष है। शांतिनिकेतन में इन्होंने दीवार चित्रकारी की और जबलपुर में शहीद स्मारक भवन के भित्ति-चित्रण का कार्य भी इन्हें सौंपा गया।

नई दिल्ली में राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, जबलपुर, रायपुर, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और पेंकिंग की चित्र प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत भी हुए। इन्होंने अनेक स्थानों पर अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की है। कुछ अर्से तक ये शांतिनिकेतन में अध्यापन कार्य करते रहे। आजकल जबलपुर के कलानिकेतन में अध्यक्ष के बतौर कार्य कर रहे हैं।
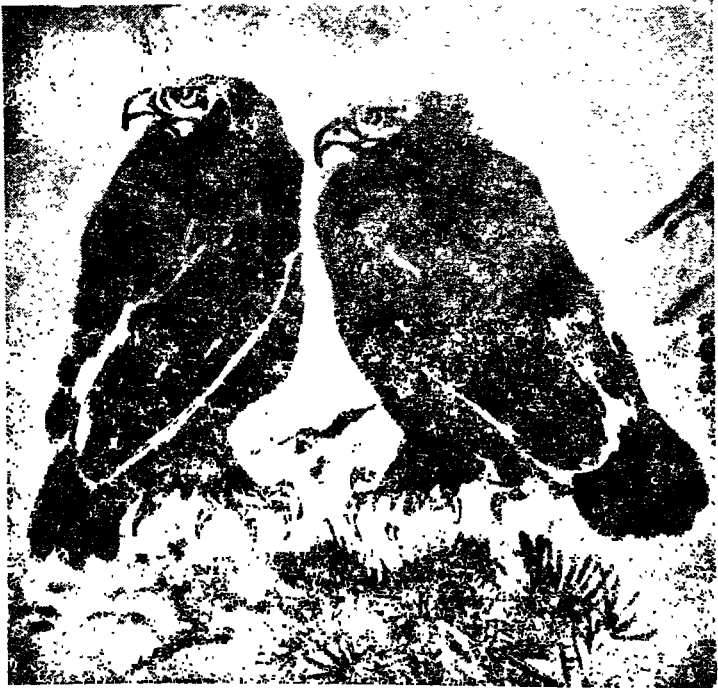
विश्राम

कल्याणप्रसाद शर्मा

रायपुर के मशहूर कलाकार कल्याण प्रसाद शर्मा का कृतित्व उनकी स्वयं-जात प्रेरणा का परिणाम है। कला उनके लिए पवित्र साधना और एकान्त आराधना का प्रतीक है। वही वर्षों से इनके जीवन का ध्येय और विधेय बन गया है।

इनका जन्म आंध्रप्रदेश स्थित गरपिड़ी में हुआ था। विजयनगर में इनकी शिक्षा सम्पन्न हुई, किन्तु स्वतः प्रेरित प्रयत्नों से इन्होंने अपना पथ प्रशस्त किया। इनकी निर्माण पद्धति दक्षिण की लोकशैली से प्रेरित है। फैशन या नये के नाम पर भौंडी विरूप आकृतियों के पक्ष में न होकर ये सत्यं-शिवं-सुन्दरम् के हामी है। इनके चित्र आकर्षक और नेत्ररंजक होते हैं। १९५६ में अमृतसर की कला प्रदर्शनी, १९५६-५७ में मैसूर कला-प्रदर्शनी, १९५८ में एर्नाकुलम कला-प्रदर्शनी, १९५९ में मद्रास कला-प्रदर्शनी और १९६० में भोपाल और रायपुर की कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार उपलब्ध हुए। मैसूर, मद्रास, हैदराबाद, ग्वालियर, दिल्ली की राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी तथा उज्जैन की कालिदास एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी में इन्हे पुरस्कार प्राप्त हुए। विजयनगरम, शृगाकुलम, रायपुर, राजनांद गाँव में इन्होंने अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया। विशाखापट्टनम, मैसूर राज्य, हैदराबाद राज्य, मुख्य न्यायाधीश के निजी संग्रह तथा अन्यान्य संग्रहालयों मे इनके चित्रों को स्थान मिला है। आजकल महाकौशल शिल्पकला महाविद्यालय रायपुर के ये प्राचार्य है।

शृंगार

बी० बाकणकर

भारती कलाभवन, उज्जैन के प्राचार्य बी० बाकणकर की जन्मभूमि नीमच है। प्रारम्भ में घर में इनका शिक्षण हुआ, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट मे अध्ययन के लिए चले गए। इन्होंने पेरिस में भी कला प्रशिक्षण लिया। अनेक देशी-विदेशी प्रणालियों को पचा कर इन्होंने मौलिक अंकन विधियों को विकसित किया है। ख़ासकर चित्र एवं स्थापत्य कला के ये विशेषज्ञ हैं। लंदन, पेरिस, आर्सो, रोम, फ्रैंकफर्ट आदि स्थानों में भ्रमण

लागार्य की चर्च

के दौरान इन्होंने अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया। बम्बई, नागपुर, दिल्ली, अन्नामलाई, उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्ति कला प्रदर्शनी और अन्य प्रमुख प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है तथा पुरस्कार एवं पदक प्राप्त किये हैं। बम्बई मध्यप्रदेश के कतिपय राजकीय कला संग्रहालयों और फ्रांस एवं जर्मनी में इनकी नव्य प्रणाली में निर्मित कलाकृतियों को सम्मानपूर्वक प्रतिनिधित्व मिला है।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

मध्यप्रदेशीय कलाकार प्रारम्भ से ही प्रान्तीयता की सीमा लाँघकर मानसिक जागरूकता के क़ायल हैं और इनकी कला-प्रणालियाँ व्यापक पैमाने पर समृद्ध एवं विकासमान हैं। बुजुर्ग कलाकार परम्परागत प्रणालियों को माँजने मे लगे हैं तो नये कलाकारों के दल नये पैटर्न पर कला के ढाँचे को बदल देना चाहते है। मध्यप्रदेश के इस दौर में उभरते अनेक नये तरुण उत्साही कलाकार

सामने आए हैं जो किसी जकड़बन्दी के क़ायल नहीं, वरन् अभिव्यक्ति के अभिनव आयामों के अनुसंधान द्वारा उत्तरोत्तर मुक्त प्रयोगों के माध्यम से मौजूदा कलाधारा को सम्पुष्ट और बहुमुखी बनाने के लिए चेष्टाशील हैं ।

वसंतराव दाभाड़े

इनकी जन्म भूमि ग्वालियर है । इनका प्रशिक्षण बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुआ, बाद में ये अमेरिका चले गए । ये आधुनिक शैली के
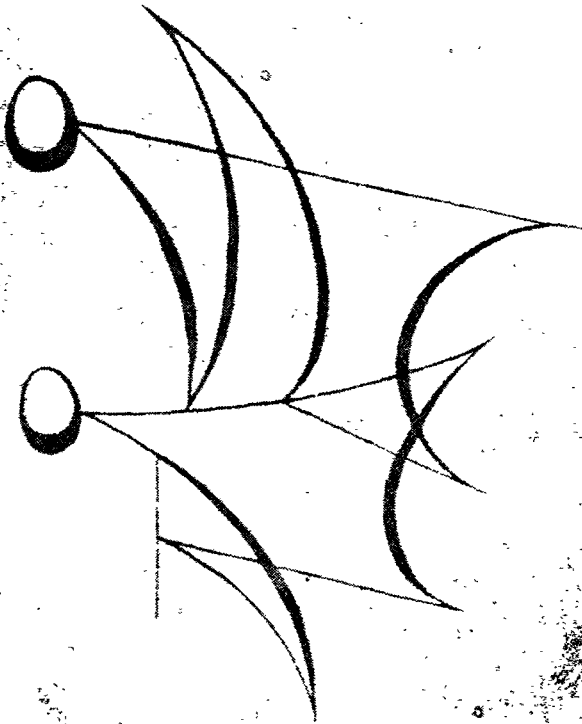
नर्तक

चित्रकार हैं । विदेशी कलाधाराओं, ख़ासकर इनकी रेखांकन और रंग-नियोजन

प्रक्रिया में रूपाकारों का अपना विचित्र एवं रोचक संयोजन है। रेखा-बाहुल्य या रंग-बाहुल्य में ये नहीं पड़ते, न किसी शिल्पाडम्बर के ये क़ायल हैं। कभी-कभी तो दो चार रेखाओं से ही ये आकृतियों में उभार ला देते हैं। ये अनेक समसामयिक कला-प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे हैं और पुरस्कृत भी हुए हैं। अमेरिका में अपने अध्ययन काल के दौरान इन्होंने अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन वहाँ किया जिसने विदेशियों को इनकी विचित्र शिल्प-भंगी ने प्रभावित कर दिया। बम्बई, आन्ध्र, देवास और अमेरिका में इनकी कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं।

मदन मोहन भटनागर

ये भी ग्वालियर के कलाकार है। आजकल ग्वालियर कला महाविद्यालय में मूर्तिकला विभाग मे लेक्चरार है।

इनका शिक्षण विश्वभारती, शांतिनिकेतन मे हुआ। चित्रकार के अलावा ये प्रसिद्ध मूर्त्ति शिल्पी है। आधुनिक पद्धति पर आकृति निर्मित करते हैं। उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी मे ये कई वर्षो तक लगातार पुरस्कार प्राप्त करते रहे हैं। १९५९ की राजकीय कला प्रदर्शनी में भी पुरस्कृत हो चुके है। कलकत्ता, हैदराबाद, श्रीनगर एवं बम्बई मे इन्होंने निजी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया जिन्हें सराहा गया।

राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा अन्यान्य प्रादेशिक प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहे है। विनोद मिल, उज्जैन और कलकत्ता कला संग्रहालय मे इनकी मूर्तियाँ रखी हैं। नये ढंग और नये डिजाइन की इनकी मूर्तियाँ बड़ी ही अजीबोगरीब बन पड़ी हैं, जो जीवन की जटिलताओं को उभारने के प्रयास मे स्वयं जटिल

और दुरारूढ़ हो गई हैं। इनके विषय भी कहीं-कहीं गूढ़ और 'एब्स्ट्रैक्ट' पद्धति पर निर्मित जान पड़ते हैं।

काली छाया
(आधुनिक पद्धति पर निर्मित रूपाकार)

विश्वामित्र वासवानी

ये भी ग्वालियर के कला महाविद्यालय म चित्रकला विभाग में लेक्चरार हैं। इनका जन्म लरकाना, सिंध में हुआ। ग्वालियर के कला महाविद्यालय में इनका प्रशिक्षण हुआ। बाद में बम्बई के सर जे० जे०स्कूल आफ आर्ट में पढ़ने चले गए। ये जिज्ञासु उदीयमान प्रतिभा के व्यक्ति हैं। कला में नित-नये प्रयोगों के हामी है। उज्जैन की चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी में इन्हें कालिदास पुरस्कार प्राप्त हुआ। ग्वालियर, धार, उज्जैन और जबलपुर की
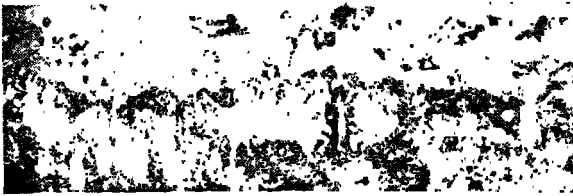
शिवजी की बारात

राजकीय कला प्रदर्शनियों में इन्होंने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया है। राष्ट्रपति भवन संग्रहालय, महाराजा धौलपुर और स्थानीय सूचना विभाग में इनके चित्र सुरक्षित है।

शभू दयाल श्रीवास्तव

ये भी ग्वालियर के कलाकार है। आजकल स्थानीय लक्ष्मीबाई शारीरिक प्रशिक्षण महाविद्यालय में लेक्चरार है। कला महाविद्यालय ग्वालियर के ये

स्वतन्त्रता के बाद

छात्र रहे है, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे०जे०स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। अधिकतर समसामयिक और राष्ट्रीय विषयों को इन्होंने चुना है, जिसे अपनी नई शैली में ये निजी भंगिमा और वैशिष्ट्य प्रदान करते है। ये सामसामयिक कला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते है। चित्रकला शिक्षा परिषद, महाराष्ट्र, महाराजा ग्वालियर और मध्यप्रदेश शिक्षा विभाग की ओर से इन्हें

पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी तथा ग्वालियर कला प्रदर्शनी में इनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ। कत्था मिल, शिवपुरी, बिनोद मिल, उज्जैन के औद्योगिक संस्थानों के अतिरिक्त अनेक शिक्षण और निजी संग्रहों में इनके चित्रों को स्थान मिला है।

बसंत स्वरूप मिश्र

ये भी ग्वालियर के कलाकार है। लोकरंजक शैलियों ने इन्हें प्रभावित किया है और इनके विषय प्रायः दैनन्दिन दृश्यांकनों एवं देशीय विषयों से प्रेरित हुए हैं।
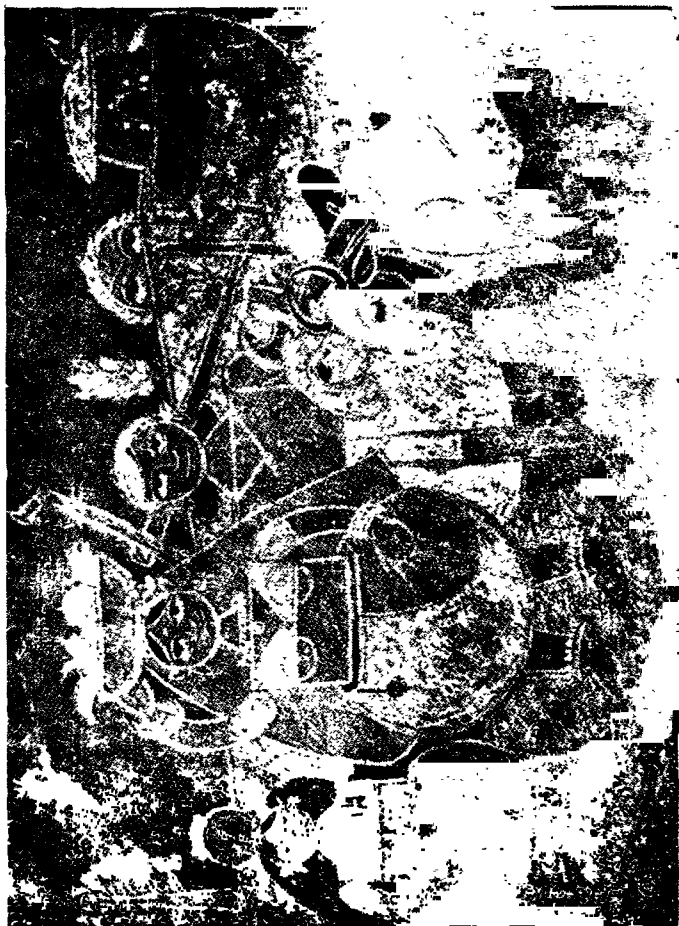
हलधर (लोक चित्र शैली पर निर्मित)

कला महाविद्यालय, ग्वालियर में इनका प्रशिक्षण हुआ, तत्पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में आगे अध्ययन के लिए चले गए। इन्दौर, ग्वालियर भोपाल, रायपुर और कलकत्ता में इनके निजी चित्रों का प्रदर्शन हुआ। ग्वालियर की कलाप्रदर्शनी तथा इन्दौर, जबलपुर, रायपुर की राजकीय कलाप्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। विक्रम विश्वविद्यालय एव राजकीय कलावीथिका में इनकी कलाकृतियों का संग्रह है।

देवेन्द्र कुमार जैन

एक दृश्यांकन

उत्साही तरुण कलाकार हैं। आधुनिक पद्धति पर चित्र-निर्माण करते है। किन्तु प्राचीन कला-थाती में भी इनकी निष्ठा है। नूतन-पुरातन की संयोजन शैली इनकी कला की विशेषता है।

इनकी जन्मभूमि मुंगावली है। प्रारम्भ मे ही प्राकृतिक दृश्यांकनों के चित्रण में रुचि है। कला-महाविद्यालय, ग्वालियर में इन्होंने प्रशिक्षण प्राप्त किया। इन्दौर एवं ग्वालियर की राजकीय कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। कलकत्ता, ग्वालियर तथा अन्यान्य प्रादेशिक प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। राज्य के पुलिस विभाग में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

हरी भटनागर

कला महाविद्यालय, ग्वालियर में लेक्चरार हैं। इसी विद्यालय के ये छात्र भी रहे हैं। ग्वालियर में ही सर्वप्रथम इन्होंने अपने चित्रों का आयोजन किया। इन्दौर, ग्वालियर और रायपुर की राजकीय कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। ग्वालियर के राज्य प्रशासन के पुलिस एवं शिक्षा विभाग तथा नगर पालिका निगम में इनकी कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं।

एम० टी० सासवडकर

इन्दौर कला महाविद्यालय में लेक्चरार हैं। धार इनकी जन्मभूमि है। प्रशिक्षण बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुआ। मालवा के जनजीवन से प्रेरित इनकी अनेक कलाकृतियाँ हैं। बम्बई कला प्रदर्शनी तथा दिल्ली व इन्दौर की राजकीय कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। बम्बई, इन्दौर ग्वालियर तथा अन्यान्य समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। दिल्ली और इन्दौर में इनकी कला कृतियों का सग्रह है। रंगों, आकारों, रूपों का अकन इनका अपना मौलिक प्रयास है। चित्रों एवं मूर्त्ति शिल्प में ये मुक्त प्रयोगों के क़ायल हैं और इस दिशा में इन्होंने विशिष्ट अनुसंधान किया है।

दुर्गा प्रसाद शर्मा

ग्वालियर कला महाविद्यालय में लेक्चरार है। इन्होने अधिकतर सर्वसामान्य विषयों को रेखाबद्ध किया है। आधुनिक धाराओं का प्रभाव भी इनकी कला पर द्रष्टव्य हैं, पर आधुनिक के नाम पर इन्होंने कभी कुरूपताओं या भौंडेपन को प्रश्रय नहीं दिया।

इनका प्रशिक्षण बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुआ। १९६३ में

रायपुर की सुरक्षा प्रदर्शनी में ये पुरस्कृत हुए। इन्दौर, ग्वालियर तथा मध्यप्रदेश

परिवार

में समय-समय पर आयोजित राजकीय एवं अन्यान्य कला प्रदर्शनियों में ये सोत्साह भाग लेते रहते है।

हेमन्त बलवंत लोढे

ग्वालियर इनकी जन्मभूमि है। इनका प्रशिक्षण स्थानीय कला महाविद्यालय में सम्पन्न हुआ। जबलपुर की राजकीय चित्रकला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। नई दिल्ली में आयोजित राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूत्तिकला प्रदर्शनी में इन्होंने अपनी कलाकृतियों का प्रदर्शन किया। ये आधुनिक पद्धति पर चित्र निर्मित करते हैं। निगूढ़ रंग जिसमें रेखाएँ और आकृतियाँ ऊबडूब सी करती है, यूँ ये उन्मुक्त प्रयोगों में निष्ठा रखते हैं। इनकी कलाकृतियों का संग्रह पुलिस विभाग में है।

बामन ठाकरे

महाराष्ट्रीय तरुण शिल्पी हैं। इनकी कला पर अपने प्रान्त की लोक

परम्पराओं का प्रभाव है । रोजमर्रा के दृश्यांकनों और सांस्कृतिक जनरूपों को इन्होंने आकर्षक व रंजक शैली में चित्रित किया हैं ।

रामटेक, जिला नागपुर इनकी जन्मभूमि है । नागपुर विश्वविद्यालय में इनकी शिक्षा हुई, पर मध्यप्रदेश इनकी साधना भूमि है । रायपुर एवं इन्दौर
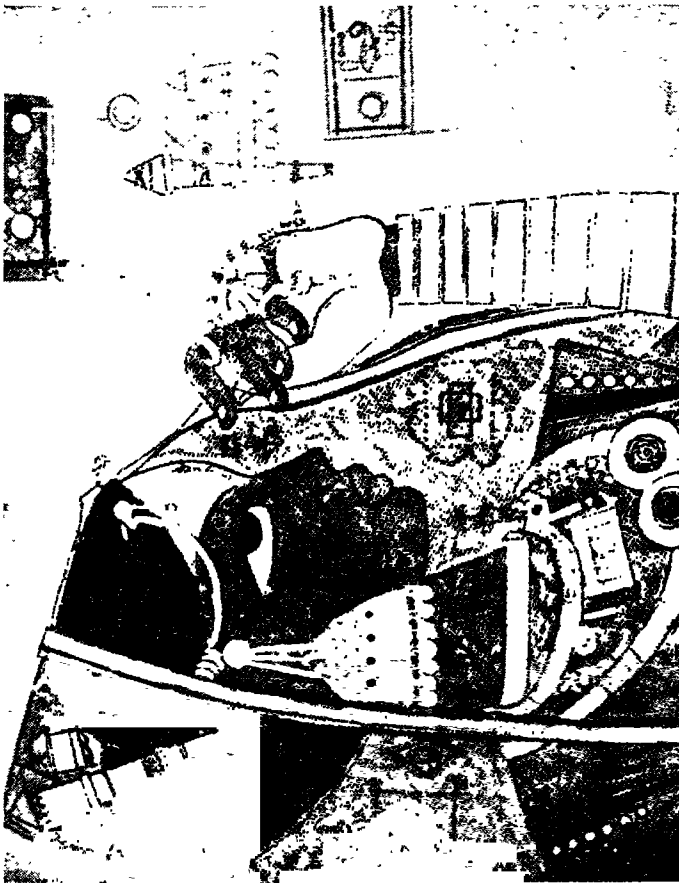
बंजारा वधू

की कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए । ग्वालियर, रायपुर, इन्दौर की राजकीय कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया । तुर्किस्तान, ग्वालियर, इन्दौर और कतिपय सरकारी एवं ग़ैर सरकारी संग्रहों में इनके चित्रों को स्थान मिला है ।

तूफ़ान रफ़ई

आधुनिक पद्धति के प्रगतिशील कलाकार हैं। नव्य धाराओं से प्रेरित नये विषयों की परिकल्पनाएँ इनके मस्तिष्क में मँडराने लगती हैं। रुढ़ एवं दक़ियानुसी कला-व्यंजनों के दायरे को ये विशद बनाने के हामी हैं, अतएव मुक्त प्रयोगों के क़ायल हैं। कला में 'कोलाज' के खिड़कीनुमा नये ढंग के मौलिक प्रयोग किये हैं।

कैदी

मौराष्ट्र स्थित अम्ब्रेली इनकी जन्मभूमि है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इनका प्रशिक्षण हुआ। वहीं आयोजित प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। कलकत्ता, बम्बई की कलाप्रदर्शनियों तथा उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्ति कला प्रदर्शनी में इन्होंने अपने चित्रों का प्रदर्शन किया। राष्ट्रीय कला अकादेमी, दिल्ली, सौराष्ट्र अम्ब्रेली म्यूज़ियम और अमेरिका में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

'तूफ़ान' की ज़िन्दगी बड़ी तूफ़ानी रही है, संघर्ष के अनगिन दौरों से गुज़री है। बचपन में अपने खानदानी पेशे भिक्षावृत्ति को इन्होंने अपना लिया था, चन्द टुकड़ों के लिए इन्हें दर-दर भटकना पड़ता, पर अचानक किसी की दुत्कार ने मर्मांतक ठेस पहुँचाई और एक लकड़ी चीरने की फैक्टरी में पाँच रुपये की नौकरी कर ली। कुछ अर्से बाद एक दूसरी फैक्टरी में दिहाड़ी पर काम किया, पर लकड़ी चीरते हुए एक दिन आरी की धार से इनके बाँये हाथ की एक उंगली और अंगूठे को क्षति पहुँची जिस कारण इन्हें अस्पताल जाना पड़ा। बस, उसी परवश परिस्थिति ने इन्हें कलाकार बना दिया। खाली वक्त गुजारने के लिए कुछ मेगज़ीन और पत्र-पत्रिकाओं में छपे चित्रों की अनुकृतियाँ तैयार की जो सचमुच प्रशंसनीय साबित हुई।

बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में तो इनका दाखिला न हो सका, पर 'रे आर्ट वर्कशाप' में इन्होंने बढ़ईगिरी और तत्पश्चात् पेंटिंग सीखी। शनैः शनैः अभ्यास और साधना ने इन्हें परिपक्व एवं अनुभवी कलाकार बना दिया। प्रारम्भ में रेखांकनों में इन्होंने जीवन की विविध झाँकियों को बाँध दिया, ख़ासकर राजस्थान के जन-जीवन की झाँकी और दैनन्दिन दृश्यों में इनका रेखांकन नैपुण्य द्रष्टव्य है। न केवल पेंसिल वरन् ब्रुश के खरौंचों में भी सजीवता है। ज्यों-ज्यों ये आगे बढ़ते गए इन्होंने कला की दिशा में अद्भुत साहसिक प्रयोग किए। खिड़कीनुमा 'कोलाज़' लगता है—जैसे इन झरोखों में से ज़िन्दगी के अबूझ रहस्यों को पकड़ा जा सकता है। बल्कि कहें कि ऐसा कुछ जिसके आरपार झाँका जा सकता है।

बलवंतसिंह कुशवाह

उज्जैन के तरुण कलाकार कुशवाह मूर्त्तिकार हैं और इन्होंने आधुनिक पद्धति पर अनेक प्रयोग किए हैं। काष्ठ इनका मुख्य माध्यम है, ख़ासकर रेखा-गत आकृतियों को लयबद्ध भंगिमा प्रदान करने में ये सिद्धहस्त हैं। भील और वनजारों तथा आदिम जातियों के देवी-देवताओं का इन्होंने दारु-अंकन किया है।

प्रारम्भ में प्राचीन मूर्त्तिकला से इन्होंने प्रेरणा प्राप्त की। इनके परिवार में पीढ़ियों से लकड़ी के ठप्पों और बेलबूटों की छपाई तथा कीमती वस्त्रों पर सोने-चाँदी के नर्म तारों से अंकन करने का धंधा चला आ रहा था। दस वर्ष की अल्पायु में ही इन्होंने अपना परम्परागत पेशा अपना लिया। पर बढ़ती वय

के साथ इनकी भीतरी चेतना नये कल्पना बिम्बों में उभरी और इन्होंने प्राचीन-अर्वाचीन के मिश्रण से नई प्रणालिलों को संवेद्य मानकर अपनी कला-कसौटियों को नया मोड़ दिया।

महावर लगाते हुए

ग्वालियर और इन्दौर की औद्योगिक प्रदर्शनियाँ, रायपुर की राजकीय कला प्रदर्शनी तथा उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। इनके द्वारा निर्मित मूर्त्तियाँ निजी संग्रहों में सुरक्षित हैं।

अमृतलाल बेगड़

जबलपुर के कलाकार हैं। इनकी शिक्षा विश्वभारती, शांतिनिकेतन में हुई। अनेक कलाचार्यों के सम्पर्क में इन्होंने कला की बहुविध प्रणालियों का अध्ययन किया है, फलतः विशिष्ट भाव-भंगिमाओं और मर्म-स्थितियों को प्रत्यक्ष करने वाली रेखाओं को ये सूक्ष्मता से पकड़ने का प्रयास करते हैं। इन्होंने रोज़मर्रा के सर्वसामान्य प्रसंगों को अधिकतर अपनी कला का प्रतिपाद्य विषय बनाया है। राजकीय कला प्रदर्शनी तथा अन्य प्रतियोगिताओं में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं।

कमलेश शर्मा

कला-क्षेत्र में कई वर्षों से काम कर रहे है और नई दिशा के अन्वेषी हैं। रायपुर के तरुण कलाकार हैं। नई शैली में ये मुक्त प्रयोगों के क़ायल है अर्थात् युगोचित संरचना प्रदान करने वाली आधुनिकता से मुँह मोड़ कर चलना निरी

दक़ियानूसी है। समय का व्यवधान नई प्रगति अथवा प्रयोगशील प्रवृत्तियों में बाधक नहीं होना चाहिए।

अनवरत प्रयोगों के कारण इनकी सौन्दर्य विवृति बड़ी ही अजीबोग़रीब सी है, पर कहीं भी रंगों की धकापेल में विषय जटिल एवं दुरारूढ़ नहीं हो पाए हैं। उनमें नये ढंग की व्यंजकता है, पर इसमें संदेह नहीं कि अन्य आधुनिकतावादियों की भाँति इनकी अधिकांश कृतियाँ भावात्मकता से, संवेग से, सौन्दर्य-चेतना से रहित दीख पड़ती है, वैसे नव्य कला क्षेत्र में इनका कृतित्व नये क्षितिज के दर्शन का परिचायक है।

नागपुर ग्रुप

नागपुर पहले महाराष्ट्र और अब मध्यप्रदेश का एक प्रमुख नगर माना जाता है। यहाँ के सांस्कृतिक वातावरण में एक मुखर चेतना है, तरोताज़ा अनुभूतियाँ हैं और नई हवाओं के झोंके यहाँ की धरती को सदा स्पर्श करते हैं। नागपुर में कतिपय उत्साही कलाकार प्राचीन-अर्वाचीन कला-प्रणालियों को अग्रसर करने में प्रयत्नशील हैं।

भाऊ समर्थ

नागपुर के तरुण कलाकारों में भाऊ सबसे अग्रणी है। जीवन के संघातों ने
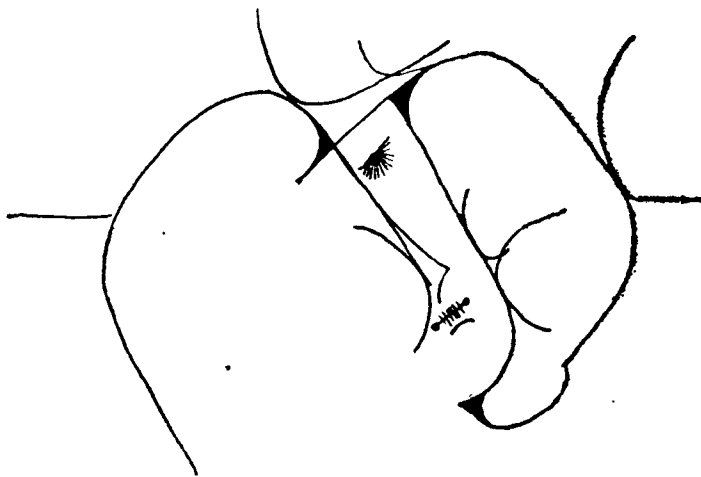
इनमें प्रखर संवेदना जगा दी है। रूढ़िग्रस्त मान्यताओं से विद्रोह, अतियथार्थ का आग्रह, नए विचारों को नए ढंग से प्रस्तुन करने की जिजीविषा, प्रगामी दृष्टि-कोण और प्रयोग की पराकाष्ठा—ये इनकी कुछ विशेषताएँ हैं। अपनी निर्बन्ध मुक्त शैली और प्रयोगाधिक्य के कारण ये इधर काफी प्रसिद्ध होते जा रहे हैं। लावारिस और ऊँघती हुई ज़िन्दगी, जिसके बीच दिन भर धूल उड़ती रहती है—

स्नान के पश्चात्

एक भग्न आकृति

ऐसी धूल जिसमें सारे अरमान, आकांक्षाएँ, आत्मा का उल्लास आच्छन्न हो जाता है, एक बड़ी मनहूस धूल, हरेक को घेरे हुए जिसके गिर्द लिपटा हुआ इन्सान लड़खड़ाता हुआ सफ़र करता है। भय और असुरक्षा की एक चिपचिपी पर्त्त जो इस युग की देन है, उसने दिल-दिमाग़ को त्रस्त बना दिया है, अतएव आज का सर्जक कलाकार भी कैसे इन भावनाओं से अछूता रह सकता है।

भाऊ का जीवन बड़ा संघर्षशील रहा है। दुनियावी उतार-चढ़ाव, आर्थिक और किस्मत की अनवरत कशमकश ने इनके अन्तर को मसोसा है। इनकी उद्बुद्ध प्राणवत्ता और स्वाभिमान ने कभी झुकना नहीं सीखा, वरन् चोट खाकर वह और भी द्रोह कर उठा। माँ की मृत्यु अल्प वय में ही हो गई थी, विमाता के आगमन ने पितृ स्नेह में भी फर्क ला दिया। शिक्षक होने के नाते कुछ संस्थाओं से बिगाड़ किया तो एक दुर्दशाग्रस्त मुसीबतजदा विधवा औरत को पत्नी रूप में अपनाने के कारण इनका परिवार से सम्बन्ध-विच्छेद हो गया। गार्हस्थिक जीवन में इन्हें संतान की निरीह मृत्यु का सदमा भी झेलना पड़ा। इन सभी परिस्थितियों ने इन्हें निजी कलारूपों में रूप-अरूप के रूपान्तरों से परे किसी अलक्ष्य रहस्य का आभास कराया। एक संक्रान्त स्थिति जब दूसरे से कतराकार निकल जाती है तो लगता है ज़िन्दगी सीधी-सादी नहीं, वरन् टेढ़ी-मेढ़ी रेखाओं का एक ढेर है। वक्र रेखाओं में तड़प होती है टूटन को जोड़ने की। वे औरों से जुड़ती हैं तो औरों को जोड़ती भी है। इसी से प्रेरित होकर इन्होंने मनोवैज्ञानिक धरातल पर 'बरामदे में गृहस्थी', 'बोझिल चिन्ता', 'टूटे हुए लोग', 'रिक्शा में दम्पति', 'लेटी हुई', 'खंडिता', 'चौके के घेरे में बन्द गृहिणी,' 'गृह-कार्य रत', 'पारिवारिक अशान्ति', 'गाँव के बेतरतीव झोंपड़े', 'छप्पर में झाँकती मुखाकृति', 'गाँव की गली', 'पनघट', 'किसान और उनकी धरती', 'कृषक महिलाएँ' आदि चित्रों में ज़िन्दगी के जद्दोजहद की झाँकियाँ आँकी हैं। माता की ममता से बचपन में वंचित होने के कारण इन्होंने 'माँ-शिशु' की अनेक भंगिमाओं के चित्रों का निर्माण किया है।

भाऊ अपनी धरती से पूरी तरह बँधे है। खासकर अपने पैदाइशी गाँव लाखनी में कुछ समय रहकर वहाँ के निवासियों, वहाँ के खेत, वहाँ के गली-कूचों और माहौल से इन्होंने विशेष प्रेरणा प्राप्त की है। उनके साथ जैसे

आत्मसात् होकर उनके सुख-दुःख, आशा-निराशा और हर्ष-विषाद केसहगामी हैं।

अंधियारा अर्थात् पराजित पक्ष, मानव-मूल्यों का घातक, जो आरोपित है, हावी है, जिससे मुक्त होना मुश्किल है, ज़िन्दगी के उजियारे पक्ष को सदा ललकारता है, फलतः दोनों का द्वन्द्व होता रहता है। ऐसे अवांछनीय पहलू, जो कुछ की दृष्टि में घिनौने हैं। इनके भावुक व संवेदनशील अन्तर को छूकर उभरे हैं। अपनी प्रखर मेधा के उन्माद में इन्होंने जो रेखाएँ आँकी उनमें बहुत कुछ कह दिया है। इनके चित्रण में अनुभूति की विधा, एक खास 'मूड', बल्कि कहें कि एक सन्दर्भहीन स्थिति की अन्विति होती है अर्थात् आस-पास के जीवन से प्रभावित जो भीतरी प्रतीति है उसे रूपान्तरित करने की व्याकुलता। उनके रूप और शिल्प ने अनुभूत को घनीभूत करके उसे अधिकाधिक जीवन्त और गहरा बनाया है।

भाऊ ने निजी कला में बड़े सादे और अनौपचारिक प्रयोग किए हैं। अर्थाभाव के कारण जब रंग एवं कूँची तक खरीदने की गुंजाइश न होती थी तब जो कुछ सामने आता उसी से ये काम चला लेते। कागज की कतरने या बचे-खुचे रंग, इन्हीं स्वरूप साधनों से इन्होंने अपनी तीखी धड़कनों को व्यक्त किया है। अधिकतर काले रंगों में ब्रुश के कुछ झपाटों से ही आकृतियाँ उभर आई हैं।

यद्यपि इनके सृजन में सुन्दर आदर्शों के स्थान पर कुरूप वर्त्तमान का उच्छृंखल स्वीकार है, कारण ज़िन्दगी के लम्बे सफर में अत्यन्त कटु अनुभवों, पीड़ा, घृणा, जुगुप्सा आदि के दौरों से इन्हें गुज़रना पड़ा, फिर भी यथार्थ दर्शन का अमूर्तीकरण, आत्मनिर्वासन या ध्वंसात्मक आग्रह नहीं है। इनकी कोई भी कलाकृति भद्दी, विरूप व भौंडी नहीं, वरन् उसमें कुत्सा का बहिष्कार, करुण का विरेचन और वीभत्स का निषेध है। इन्होंने बड़ी खूबी से नृत्य-लय का निरूपण भी अनेक चित्रों में किया है। ये चित्र विघटित मूल्यों या खंडित आस्था के नहीं, सुन्दरता के धरातल पर सिरजे गए हैं। भाऊ, जो इधर दृष्टिकोण विकसित कर रहे हैं, उनमें अस्वीकृति एवं विद्रोह के समानान्तर समाज-परिवर्त्तन एवं नव-निर्माण की प्रखर चेतना जीवंत है।

प्रभाकर माचवे

नागपुर के प्रतिभासम्पन्न लेखक माचवे कला में भी रुचि रखते हैं और इन्होंने शौक़िया रेखाचित्र बनाए हैं। अपने साहित्य की भाँति कला में भी ये

हमराही

मानव की समानता के क़ायल हैं। आज के संत्रास के वृहद् आयामों में वेदनानुभूति ही रंग एवं रेखाओं में गूंजती मुखर आवाज़ है जिसमें कलाकार को एक मानवीय संदेश सुन पड़ता है। जीवन की थकान के अलावा रात-दिन की ग़र्दिश ने दिल-दिमाग़ को खंड-खंड कर डाला है, अतः प्रताड़ित मानव इधर-

उधर घूमते नज़र आते हैं। इन्होंने ज़िन्दगी की इस थकान भरी डगर पर चलते राही, अनवरत संघर्षशील मज़दूर, कामग़ार, वक़्त के हर पहलू में बदकिस्मती से जूझने वाले गरीब, दुखियारे लोग ही अधिक चित्रित किए हैं।

रंगों की तड़क-भड़क में नहीं बल्कि बेहद सादी, अनौपचारिक पद्धति पर काली स्याही में इन्होंने अपनी अन्तरंग भावनाओं को कुछेक मोटी-पतली रेखाओं में रूपायित कर दर्शाया है।

नामदेव बालीराम दिखोले

उदीयमान प्रतिभा के कलाकार हैं और बम्बई में प्रशिक्षण लेने के पश्चात् हाल्दानकार, देवलालीकर और मासो जीजेसे सुप्रसिद्ध कलाकारों के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। इन्होंने नेपाल की यात्रा की और वहाँ के दृश्यांकनों के

स्केच और पेंटिंग बनाई । इन्होंने नागपुर में दिखोले आर्ट इंस्टीट्यूट की स्थापना की है जहाँ ये प्रिंसिपल के बतौर नई पीढ़ी में कला के संवर्द्धन में चेष्टाशील हैं। कलकत्ता, पूना और नागपुर में इन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, काशी हिन्दू विश्व-विद्यालय और साउथ इंडियन सोसाइटी आफ पेंटर्स तथा अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है।

एस. वाई. मलक

ये व्यावसायिक कलाकार के बतौर एक अर्से से नागपुर में कार्य कर रहे हैं। बम्बई से चित्रकला और मूर्त्तिकला में इन्होंने प्रशिक्षण लिया, तत्पश्चात् स्वयं साधना द्वारा 'माडलिंग' की बारीकियों में पैठे। बम्बई, हैदराबाद, मैसूर, शिमला, लाहौर, दिल्ली और नागपुर की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुके हैं। लंदन की प्रथम भारतीय कला प्रदर्शनी में भी प्रतिनिधित्व किया है। नागपुर स्कूल आफ आर्ट के प्रशासनिक निकाय के सदस्य हैं।

नगरकर

नागपुर के प्रगतिशील तरुण कलाकार हैं। बम्बई के जे० जे० स्कूल आफ आर्ट और नागपुर में इन्होंने कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया। तूलिकाघातों और रंग-संयोजनों में ये निपुण हैं। देवलालीकर जैसे निष्णात कलागुरु का वरद हस्त इन पर है और उनसे इन्हें पथ-प्रदर्शन व प्रेरणा मिली है। नागपुर में इनके चित्रों की प्रदर्शनी हो चुकी है और ये पुरस्कार प्राप्त हैं। न्यायमूर्ति, नागपुर के पास इनके कतिपय महत्त्वपूर्ण चित्रों का संग्रह है।

मध्य-प्रदेश के प्रायः सभी प्रमुख नगर एवं कस्बों में उत्साही कलाकारों का एक बड़ा ग्रुप कार्यरत है जो प्राच्य एवं पाश्चात्य टेकनीक के माध्यम से कितनी ही नव्य प्रणालियों का आविष्कार कर रहा है। ग्वालियर के तरुण कलाकार **विजय मोहिते** ने किसी स्कूल या कालेज में शिक्षा ग्रहण नहीं की, वरन् स्वयं साधना द्वारा कला पथ प्रशस्त किया। बचपन में ही शंकर वीकली कला-प्रतियोगिता में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। ये आधुनिक शैली में रुचि रखते हैं और इन्होंने अनेक मौलिक प्रयोग किए हैं। ग्वालियर के अलावा कलकत्ता, श्रीनगर, नई दिल्ली की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इनके चित्रों का

विवाह की तैयारी—किशन सागर

प्रदर्शन हुआ है और राजमाता, ग्वालियर स्टेट आर्ट गैलरी और कतिपय निजी संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित है। इसके अतिरिक्त **अजय कुमार वास्वानी,** जो सिंधी है, पर ग्वालियर साधनाभूमि रही है, **कृष्ण मुरारी लाल गुप्ता**, जो आगरा के है, पर कला की शिक्षा ग्वालियर महाविद्यालय में सम्पन्न हुई है, **लक्ष्मण आत्माराम यादव**—बम्बई में अर्से तक रहकर अब ग्वालियर में टेक्सटाइल डिज़ाइनर के रूप में काम कर रहे हैं। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी और नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। महिला कलाकारों में **प्रमिला सुर्वे, पद्मा मंडलिक, कुसुमावती**

दामाड़े, लीला मालेराव आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। जबलपुर के **कामता सागर**—स्थानीय संस्था में कार्य कर रहे हैं और कलाक्षेत्र में नव्य प्रयोग किए हैं। इनकी जन्मभूमि सागर है, किन्तु शिक्षा बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुई। राजकीय चिकित्सा प्रदर्शनी में ये भाग ले चुके हैं। **हरीकुमार श्रीवास्तव**—ये भी जबलपुर के चित्र एवं मूर्त्ति शिल्पी हैं। प्रतिमाओं के मोड़-

अन्यमनस्का—प्रणव कुमार

तोड़, शारीरिक अवयवों के गठन, भावभंगिमा एवं चेष्टाओं के निदर्शन में अभिनव कलातत्त्वों को प्रश्रय दिया है। जबलपुर के **भगवान दास गुप्ता किशन सागर**, **दिलीप राजपुत्र**, **पाटोले** एवं **प्रणवकुमार** सामाजिक प्रदर्शनियों, कला-आयोजनों और प्रतियोगिताओं में सोत्साह भाग लेते रहते हैं।

मिर्जा इस्माइल बेग—धार के सुप्रसिद्ध कलाकार हैं। धार और उज्जैन के कला महाविद्यालय के पश्चात् बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की। ये आधुनिक शैली के कलाकार है। ग्वालियर, रायपुर, मसूरी के अलावा कनाडा और मिस्र में भी इनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ है। धार के **गजेन्द्र डी० जोशी** भी इन्दौर एवं भोपाल की चित्रकला प्रदर्शनी में पुरस्कृत हो चुके हैं तथा इन्होंने उज्जैन में आयोजित कमल दास कला प्रदर्शनी में भाग लिया है। **सुभाष निम्बालकर**—इनकी जन्म भूमि भी धार है। स्वयं साधना तथा अनवरत परिश्रम द्वारा इन्होंने अपना मार्ग स्वयं निर्धारित किया है। कलकत्ता, दिल्ली, भोपाल तथा उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्तिकला प्रदर्शनी में भाग ले चुके हैं और पुरस्कृत हुए हैं। रायपुर के **ए० के० मुकर्जी** बंगाली हैं,किन्तु एक अर्से से रायपुर के सप्रे स्कूल में आर्ट लेक्चरार हैं। कलकत्ता, त्रिवेन्द्रम, अमृतसर, भोपाल, रायपुर तथा उज्जैन की कालिदास चित्र एवं मूर्त्तिकला प्रदर्शनी में भाग ले चुके हैं और पुरस्कार प्राप्त किए हैं। रायपुर के दूसरे सुप्रसिद्ध बंगाली कलाकार **पूर्णेन्दु प्रकाश बोस** स्थानीय राजकुमार कालेज के कला विभाग के इंचार्ज हैं जो चित्र एवं मूर्त्तिशिल्पी हैं। इन्होंने भारत में व्यापक रूप से भ्रमण किया है और चार वर्ष तक मदुराई में रहकर दक्षिण भारतीय कला-पद्धति का अध्ययन एवं अभ्यास किया है।

पन्ना के **मकबूल अहमद खाँ** - इस समय दिल्ली के जामिया मिलिया विश्वविद्यालय में कार्य कर रहे है और कला-क्षेत्र में ख्यातिलब्ध हैं। दिल्ली, इन्दौर, ग्वालियर, भोपाल तथा उज्जैन की कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया है।

मध्य प्रदेश का कलाग्रुप प्रगतिशील एवं साधनाशील कलाकारों का एकीभूत प्रयास है जिसने प्राचीन-अर्वाचीन कलादर्शों को अग्रसर किया है। नवल जायसवाल, सुरेश चौधरी, भावसार, सच्चिदा, वाजिदअली आदि अनेक नये एवं तरुण उत्साही नौसिखिए अब परिपक्व कलाकारों की श्रेणी के अन्तर्गत आते जा रहे हैं और सामूहिक प्रयास से अपना एक पृथक् पथ प्रशस्त करते जा रहे हैं।

पंजाब के कलाकार

स्वप्निल रंगीनियों और प्राकृतिक सौन्दर्य-श्री की मस्ती से झूमता पंजाब जहाँ के सरसब्ज, शोख वातावरण में बसी हुई खुशबू ने न जाने कितने उन्मुक्त

विश्राम — अमृत शेरगिल

स्वप्नद्रष्टा कलाकारों को अभिभूत किया। वहाँ के बिखरे नैसर्गिक सौन्दर्य ने कला का नित-नया शृंगार किया, खिलते सदाबहार फूलों के मुस्कान की ओर

यहाँ की अँगड़ाई लेती, लहर-लहर उठती स्वप्नमयी सुहागिन धरती ने कोमल कल्पना मुखरित की। इसी के अंचल में किसी समय काँगड़ा शैली का जन्म हुआ था जो कोमल भावोद्रेक, मस्ती भरी चुहल, खुली आबोहवा, रंगों व रेखाओं के नये रुझान को लेकर भारतीय कला की एक सशक्त परम्परा सिद्ध हुई थी। सुन्दर सुडौल शरीर, खूबसूरत चेहरे, मुस्कराती मादक आँखें और अंग-प्रत्यंग में नित-नई माधुरी का निखार लिये यूँ यहाँ की अल्हड़ हुस्नो-इश्क़ से बेताव रूपगर्विता नारी की सौन्दर्य-श्री का चित्रांकन करते हुए मानो धौलाधार की बर्फानी शृंखला और नील नभ को छूकर हर रंग-रूप को किसी ख़ास अन्दाज़ में ज़िन्दगी के सुरूर और किलकते-विहँसते माधुर्य में ढालकर व्यंजित किया गया। देश की तर्ज़ अदा के अनुरूप इस कला में कुछ ऐसे मन-मोहक रंग उभरे जो देखने वाले की निग़ाह की तहों में उतरते चले जाते हैं।

आधुनिक काल में पुनरुत्थान आन्दोलन के समानान्तर इसी धरती की बेटी अमृत शेरगिल ने कला में युगांतर उपस्थित किया और देश-विदेश के सम्मिश्रित रूपों को मौलिक साँचों में ढालकर चित्र-सृष्टि की। उसका आरज़ू से भरा दिल था तो तलाश से भरा दिमाग़, हर मोड़ पर उसकी आँखें खुली रहीं। यायावर के रूप में उसने खुद बहुत कुछ सीखा। उसे अपने ज्ञान का एहसास था। कैनवास पर जो जाने-अनजाने प्रतीक उभरे वे यथार्थ परिस्थि-तियों के परिप्रेक्ष्य में थे, पर अपने देश और समाज के सन्दर्भ में सिरजे गए अर्थात् अमृत शेरगिल ने प्रथम बार जीवन के आदर्श और बदलते मूल्यों के संघर्ष को समूची व्यापकता के साथ ग्रहण किया।

इस सृजन-प्रक्रिया से दो विभिन्न उपलब्धियाँ सामने आईं। एक तो अपने तजुर्बों से हासिल की हुई ज़िन्दगी में जहाँ कहीं भी और जो कुछ भी अर्थ पूर्ण है उसे उसके समूचे परिवेश के भीतर से पकड़ना, दूसरे उसका गाँव, उसकी जन्म भूमि, उसका कस्बा, उसका अंचल, वहाँ के लोग, वहाँ की सामाजिक परिस्थितियों को अभिव्यक्ति देने की चेष्टा। इसमें सन्देह नहीं कि अमृत आधु-निकता के मोह से तो अछूती नहीं रही, पर ऐसा कभी नहीं हुआ कि अपने तईं लोक-ग्राम-जीवन की संघर्षमय संकुलता में जीना उसे हेय लगा हो। यही वस्तुतः उसका निजत्व एवं व्यक्तित्व है।

समरेन्द्रनाथ गुप्त

सर्वप्रथम पंजाब में कला का औपचारिक प्रसार करने वालों में समरेन्द्र नाथ गुप्त का नाम अग्रगण्य है। ये अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के वरिष्ठ शिष्यों में से थे जो पंजाब में बंगाल स्कूल की प्रचलित प्रणालियों को प्रचारित करने आए थे। १६०६-१६१० में लेडी हेरिंघम द्वारा संगठित दल में अपने चुने हुए

सम्मोहन

प्रबुद्ध कलाकार-साथियों के साथ ये अजंता के चित्रों की अनुकृति के लिए भेजे गए थे, तत्पश्चात् लाहौर के मेयो स्कूल आफ आर्ट में ये प्रिंसिपल होकर

पंजाब में आ गए और नवोदित चित्रकार छात्रों में कला की प्रेरणा जगाई। कला केवल फैशन के लिए नहीं बल्कि सच्ची अनुभूति के स्तर पर सिरजी जानी चाहिए—आधुनिक कला के इसी मूल स्वर और आन्दोलन को लेकर ये यहाँ आए थे।

इनके चित्रण में वैसी गूढ़ता न थी, पर अभिव्यक्ति-वैचित्र्य था जो वहाँ के देश-काल के अनुसार था। उनके चित्रों में रेखा-सौन्दर्य, लयमय चारुता और रूप-सौष्ठव की सान्द्रता थी जो 'कोयल की कूक', 'सम्मोहन', 'प्रेरणा', 'दिये की बुझती लौ' 'हमाम' जैसी कृतियों में द्रष्टव्य है। नानाविध शैलियों एवं टेक-नीक में उनका सृजन-शिल्प एवं रचना-नैपुण्य है, जो काल्पनिक स्वप्न-सृष्टि का आकर्षण लिये है। पंजाब में काफी अर्से तक ये कार्य करते रहे। आज भी इनकी अनेक चित्रकृतियाँ कलकत्ता की इंडियन म्यूजियम, लाहौर म्यूजियम और मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी में सुरक्षित हैं।

सरदार ठाकुर सिंह

विश्वविश्रुत कलाकार, कवि एवं दार्शनिक निकोलस रोरिक ने एक बार लिखा था—'अमृतसर के सरदार ठाकुर सिंह भारत के विराट् सौन्दर्य के द्रष्टा कलाकार हैं। वे अपनी महान् मातृभूमि से बहुत प्यार करते हैं। अपनी यात्राओं के दौरान वे भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण करते हैं। अपने यथार्थवादी अध्ययन द्वारा वे रंगों से लबरेज़ दृश्य चित्रणों के प्रति उत्सुक हैं। ऐसे कलाकार के प्रति, जिसने हमारे समक्ष भारत की झाँकी प्रस्तुत की है, हम बहुत कृतज्ञ हैं।' टैगोर के शब्दों में—'सरदार ठाकुर सिंह द्वारा चित्रित लैंडस्केप, मंदिरों के नज़ारे और अनेक विचित्र मार्मिक दृश्यांकनों से मुझे बड़ा ही सुख प्राप्त हुआ है। समस्त सौन्दर्य प्रेमियों और जीवन जिज्ञासुओं के लिए उनकी कृतियाँ प्रेरणाप्रद हैं।' सचमुच, इनकी चित्र-कृतियाँ कल्पनामय छायालोक की अमर विभूति सी उनकी आदर्श चिरंतन अनुभूतियों की सच्ची गाथा है, सरल व्यक्त सत्य है, वरन् कहें कि द्वन्द्वात्मक तत्वों से परे स्वस्थ सौन्दर्य की दिग्दर्शक हैं। भारतीय पर्वतों, नदियों, झीलों, नगरों, मैदानों, प्राकृतिक दृश्यों, चतुर्दिक् बिखरे रूपों का इतना सुन्दर और

साथी

अभूतपूर्व चित्रण इनकी तूलिका द्वारा हुआ है कि गुरुदेव टैगोर भी कभी-कभी भावावेश में इनके चित्रों को प्रकृति-उपासकों और कला-प्रेमियों को दिखाया करते थे।

लगभग पैंतालीस वर्ष पूर्व, सन् १९०४ में एक बार दीपावली उत्सव पर जबकि इनकी अवस्था केवल १० वर्ष की थी इन्होंने सर्वप्रथम अपने वेरका ग्राम के कच्चे मकान की दीवार पर अपनी छोटी-छोटी उँगलियों से हनुमान, मोर, तोता आदि के चित्र रुई लिपटी सींक से बनाकर सबको चकित कर दिया था। इनके पिता की इच्छा थी कि ये इंजीनियर बने और इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए सोलह वर्ष की आयु में लाहौर के विक्टोरिया डायमेंड जुबिली टेकनिकल इंस्टीट्यूट में भेज दिये गए,

गणेश पूजा

कुतुब मीनार

प्रणय पत्र

किन्तु वहाँ केवल ड्राइंग की टेकनीक सीखकर अपने निवास स्थान के एक प्रसिद्ध चित्रकार मोहम्मद आलम के साथ ये बम्बई चले गए। शीघ्र ही इन्होंने ख्याति अर्जित करली और शिमला फाइन आर्ट्स सोसाइटी की प्रदर्शनी से 'समुद्र किनारे उषा काल' चित्र पर इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया।

अपने जीवन के सर्वाधिक घटनापूर्ण सत्रह वर्षों तक ठाकुर सिंह कलकत्ता में रहे और अंतिम चार वर्षों में अर्थात् सन् १९३० से ३४ तक ये मदन थियेटर्स लिमिटेड के प्रधान कलाकार के बतौर स्वर्ण, रजत, ताम्र पदक, नक़द राशि, सर्टी-

फिकेट आदि सभी सुप्रसिद्ध भारतीय आर्ट सोसाइटी जैसे—शिमला, पूना, बम्बई, नई दिल्ली, लाहौर, मद्रास आदि और अन्य विदेशी कला प्रदर्शनियों से भी प्राप्त किये । इस प्रवास में कलकत्ता आर्ट स्कूल के जे० पी० गांगुली से इनका घनिष्ठ परिचय हो गया । इनके लैण्डस्केप चित्रों पर इस कलाकार का अप्रत्यक्ष प्रभाव भी पड़ा । यहीं इनकी एच०मजूमदार से भेंट हुई । रवीन्द्रनाथ ठाकुर के तत्त्वावधान में भी ये कार्य करते रहे जिसके फलस्वरूप इनकी कला में एकदेशीयता का समावेश हुआ ।

कलकत्ते में ठाकुर सिंह ने पंजाब फाइन आर्ट्स एसोसिएशन की स्थापना की और सन् १९२४ में तत्कालीन कलकत्ता के मेयर स्वर्गीय जे० एम० सेनगुप्ता के तत्त्वावधान में प्रथम बार कला-प्रदर्शनी की गई । कला को व्यापक और सर्व-

ओंकार जी का मन्दिर

डल लेक के अंचल में

साधारण की चीज बनाने के लिए इस एसोसिएशन ने ठाकुरसिंह की चित्रकला को तीन भागों में प्रकाशित किया और ये कलात्मक पुस्तकें कला जगत में इतनी अधिक सम्मानित हुई कि इनको बार-बार प्रकाशित किया गया । नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की स्थापना में भी इन्होंने काफ़ी सहयोग दिया और कई वर्षों तक ये उसके सदस्य और कार्यकारी सलाहकार बने रहे ।

सन् १९३५ में ये अमृतसर आकर बस गए । वहाँ केवल कला के स्तर को ही समुन्नत करने की चेष्टा नहीं की, प्रत्युत् इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स को सशक्त एवं समर्थ बनाया । इस संस्था की स्थापना एक कलाकार द्वारा हुई थी और कई वर्षों तक वह कला के प्रचार एवं प्रसार में लगी रही । सरदार ठाकुर सिंह की अध्यक्षता, अथक परिश्रम और अद्भुत कार्य-क्षमता के फलस्वरूप वह और भी फली फूली और सोलह बार इसकी प्रदर्शनी हुई, जिससे

समस्त भारत में कला की एक लहर सी दौड़ गई और लोगों को अंधकार से प्रकाश में जाने का मार्ग सूझा।

ठाकुर सिंह के सुन्दर कलात्मक चित्रों से कई राजाओं के महल सुशोभित हैं। उदयपुर के जगनिवास महल में इनके द्वारा छत चित्रित कराई गई है। इन्होंने अनेक नेताओं, नरेशों और बड़े लोगों के पोर्ट्रेट भी बनाये हैं। न केवल आकृति वरन् अंतर्मन की सूक्ष्मताओं को भी दर्शाया है। बिहार के गवर्नर श्री अणे ने इनकी 'गणेश पूजा' चित्रकृति बहुत पसंद की थी और अपने साथ खरीद कर ले गए थे। स्वर्गीय तेज बहादुर सप्रू इनका बनाया 'ताज' चित्र अपने साथ रखते थे। लार्ड लिनिथगो और लार्ड इर्विन भी इनसे कुछ पेंटिंग क्रय करके अपने साथ ले गए थे।

सन् १९२४ में इनका एक चित्र 'स्नान के पश्चात्' लन्दन की ब्रिटिश एम्पायर प्रदर्शनी से पुरस्कृत हुआ और आठ सौ रुपये में खरीद लिया गया। 'निर्धनों का स्वप्न', 'विदाई-चुम्बन' 'श्री नगर का पुल', 'मीनाक्षी-मन्दिर', 'झेलम नदी पर काश्मीर', 'दिवस का अवसान', 'गुलमर्ग घाटी', 'उदयपुर राज महल पर सान्ध्य प्रकाश' आदि इनकी सुप्रसिद्ध चित्रकृतियाँ हैं। 'भारत की झाँकियाँ' चित्रावली में लोकजीवन के प्रसंग और महत्त्वपूर्ण दृश्य प्रस्तुत किये गए हैं।

प्यार की फुसफुसाहट

उदास मुद्रा में

आकृति चित्रण में ये अत्यन्त दक्ष हैं। इनके इस प्रकार के चित्र बहुत ही सजीव एवं स्वाभाविक बन पड़े हैं। उनमें इनके हृदय का स्पन्दन है। अकृत्रिम सौन्दर्य और सहज चित्रण, द्वन्द्वात्मक ऊहापोह से परे सनातन सौन्दर्य के

चित्रण का प्रयास। प्राकृतिक दृश्य और लैण्डस्केप-चित्रण भी इनका कमाल का होता है। कलाकार अपने अंतः प्रदेश की विराट् सौन्दर्य भावना को उन्मुक्त हृदय से लुटाता है। इनके इन चित्रों को देखने से ऐसा प्रतीत होता है मानो प्रकृति के रोम-रोम, कण-कण में संगीत है, लय है, आनन्द की मूर्च्छना अंतर्निहित है, प्रत्येक परमाणु के मिलन में समरूपता है, वृक्षों के प्रकम्पन में, हरे भरे प्रत्येक कोमल पल्लव में, पक्षियों की मधुर चहचहाट में रागिनी हैं, जीवन और गतिशीलता है। जब जब कलाकार ने किसी नवयौवना बाला का चित्रण किया हैं तो उसके अंग-प्रत्यंग में सुडौलता, सुचारुता और इतना सजीव उन्माद भर दिया है कि उसमें वास्तविकता का भ्रम होने लगता है। ऐसा प्रतीत होता है

एलिफेंटा गुफा का एक दृश्यांकन

मथुरा का विश्रान्त घाट

मानो सचमुच हमारे बीच कोई जानी-अनजानी आ बैठी है, लजीली आँखों की चमक और मद मुस्कान भरी। उसके नेत्र, उसका मुख, उसकी प्रत्येक भावभंगी बोलती सी प्रतीत होती है। ऐसे चित्र रेखानुपात, वर्ण-संयोजना और चरित्र-निरूपण की दृष्टि से भी अद्वितीय बन पड़े हैं। प्रकृति-चित्रण में भी ये अत्यंत कुशल हैं और इस प्रकार के चित्रों में खूब सफलता प्राप्त की है।

इनके प्रभावशाली व्यतिक्त्व ने बहुतों को प्रभावित किया। इनके शिष्यों में से एक अफ्रीका के ए० एस० ह्यूगन, पाकिस्तान के ए० बी० नजीर और यहाँ के कई व्यक्ति एम० के० बाला, गुरुबचन, हरभजन और एम० के पाल आदि कलाकार हैं, जिन्होंने इन्हीं से कला की प्रेरणा एवं प्रोत्साहन प्राप्त किया।

इन्होंने अपना समस्त जीवन कला और कलाकारों की सेवा में अर्पित कर दिया है। जेम्स एच० कज़िन ने इनके सम्बन्ध में एक बार लिखा था 'मि० सिंह के चित्रों को देख कर मेरी ऐसी इच्छा होती है कि मैं कलाकार को व्यक्तिगत रूप से देखूँ और परिचय प्राप्त करूँ। इनका असाम्प्रदायिक दृष्टिकोण, स्वतन्त्र

विचार और प्रतियोगिता की संकीर्ण परिधि से पृथकत्व भावना बहुत से देशी-विदेशी कलाकारों को अपनी ओर खींच लाई है। स्काटलैण्ड, चीन, आस्ट्रेलिया, रूस, काबुल, मिस्र, लंदन की भारतीय चित्रकला प्रदर्शनी में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। १९५० में दिल्ली और दो बार कलकत्ता तथा कितने ही प्रमुख नगरों में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। भोपाल, कपूरथला, पटियाला के महाराज, मास्को की नेशनल गैलरी और लंदन की बर्लिंगटन गैलरी तथा अन्य कतिपय प्रमुख संग्रहों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

अतीत के चिन्तन में

ये लगभग अर्द्धशताब्दी से कला-सृजन और कला के उत्थान में लगे हैं। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के संस्थापक सदस्य, ललित कला अकादेमी की सामान्य परिषद के सदस्य, पंजाब की कला वस्तुएँ क्रय करने वाली प्रादेशिक सलाहाकार समिति के सदस्य और सज्जा समिति के अध्यक्ष हैं। 'भारत की झाँकियाँ,' 'भारतीय नारीत्व चित्र-कृतियाँ', 'एस० जी० ठाकुर सिंह की कला' नामक इनकी तीन पुस्तकें प्रकाशित हुई हैं जिनमें इनकी कलाकृतियों का परिचय मिलता है। चित्रकला के सम्बन्ध में इनके स्पष्ट और सुलझे हुए विचार हैं। गहरी सूझ, परख और मर्मभेदी दृष्टि है जो नई कला के नाम पर किसी प्रवंचना में न पड़कर 'सत्यं-सुन्दरम्' के हामी हैं। निकोलस रोरिक ने लिखा था—'एस. जी. ठाकुरसिंह अपनी महान् मातृभूमि को बहुत प्यार करते हैं। अपनी यात्रा के दौरान भारतीय जीवन के विभिन्न पहलुओं पर दृष्टि-पात करते हुए अपने यथार्थवादी अध्ययन द्वारा वे रंगों से लबरेज़ दृश्य चित्रणों के प्रति उत्सुक है। ऐसे कलाकार के प्रति जिसने हमारे समक्ष भारत की झाँकी प्रस्तुत की है, हम बहुत कृतज्ञ है।

शोभा सिंह

पंजाब के सुप्रसिद्ध कलाकार सरदार शोभा सिंह नारी सौन्दर्य की भौतिक और आध्यात्मिक परिणति के कुशल चितेरे हैं। पंजाब की शस्यश्यामला, शाश्वत यौवना और रंग-बिरंगे फूलों से सुसज्जित हरित परिधान धारण किये लह-लहाती धरती और चहुँओर की लुभावनी दृश्यावली की क्रोड़ में पली यहाँ की

अलमस्त सुकुन मारियों का इन्होंने बड़ाही गहरी अनुभूतिशीलता के साथ अपनी तूलिका के संस्पर्श द्वारा सजीव बना दिया है। उनके चित्रों में एक-एक रंग चुनकर उभरा है और दर्शकों पर अपनी अमिट छाप छोड़ जाता है। 'सोहनी महिवाल' इनकी सुप्रसिद्ध कृति है जिसमें नारीत्व की निर्विकार अल्हड़ सौन्दर्यानुभूति के दर्शन होते है।

इनके सिख-गुरुओं के निर्मित पोर्ट्रेट प्रमुख सार्वजनिक स्थानों पर प्रस्थापित हैं। जिससे इन्हें जनता में काफ़ी प्रसिद्धि मिली है। लैण्डस्केप और प्राकृतिक दृश्यांकनों में रेखाओं के अनुपात द्वारा इन्होंने वातावरण को बड़ा रंजक रूप प्रदान किया है। इन चित्रों में जल रंग,तैलरंग और 'वाश' शैली का संयोजन इनकी कला का कमाल है, फिर भी दृश्यचित्र और वस्तुचित्र की अपेक्षा इनकी मानव आकृतियों के चित्रण में रंग व रेखाओं की गति अधिक मुक्त और संवेद्य है। पेंसिल स्केच भी बड़े सुन्दर बन पड़े है।

कुछ आलोचकों ने इन्हें 'फेमिनिस्ट' अर्थात् नारीवादी होने के आरोप लगाये हैं,नारी से अभिभूत होते हुए भी इनके चित्र उद्दीपक या कामोत्तेजक नहीं, अपितु नारी के चित्रण में इन्होंने अंतर्दृष्टि की नई ऊँचाइयाँ हासिल की हैं। इनका कलाकार नवोढ़ाओं के चित्रण में भी नारीत्व की गरिमा और पावनता को लेकर चलता है। स्वस्थ परम्परा पर आधारित अपने ऐसे चित्रों में इन्होंने ठोस अर्थवत्ता को एक नये रूप में ग्रहण किया है। अर्थात् नारी के अंतर को पहचाना है। उसकी मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं का उदघाटन किया है और कलात्मक रूप में उसकी विभिन्न भंगिमाओं को नैसर्गिक रूप में सामने रखा है।

काँगड़ा की एण्ड्रेटा पहाड़ियों के एकान्त स्थल में इन्होंने अपना निवास-स्थान बनवाया है। नगर के शोरगुल और कोलाहल से परे कतिपय चित्रों में प्रकृति की बैचिश्यपूर्ण रगस्थली ही पृष्ठभूमि है जहाँ लोक कला की सी रंजकता और सहज सुषमा का निदर्शन है। कहीं रूपवादी तो कही यथार्थवादी, हर कहीं सामान्य जन जीवन के विभिन्न पहलू विभिन्न माध्यमों में उभरे हैं, यही कारण है कि इनकी लोकप्रियता दिनानुदिन बढ़ती जा रही है। सम्पन्न व्यक्तियों, मिलिटरी अधिकारियों, फैशनेबुल तथा माडर्न टाइप के लोगों के ड्राइंग रूम की शोभाभिवृद्धि कर रहे हैं इनके चित्र सदरे रियासत युवराज कर्णसिंह और जम्मू व काश्मीर संग्रहालय तथा अन्यान्य कलावीथियों एवं चित्र-संग्रहों में इनकी कलाकृतियाँ सुरक्षित हैं। कितनी ही समसामयिक चित्र-प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार, पदक और नक़द राशियाँ मिली हैं।

इनके व्यक्तिगत जीवन बिताने के ढंग और तौर-तरीके बड़े ही सादे हैं। अकस्मात् प्रौढ़ावस्था तक आते-आते इन्होंने अपने सिर को पगड़ी की कारा से

काँगड़े की सुन्दरी

बंधनमुक्त कर दिया है, दाढ़ी के बाल ढीले छोड़ दिये हैं और अपने आवास के एकान्त, शान्त वातावरण के अनुरूप वैसी ही संतों की सी पोशाक धारण कर ली है। जीवन की रगीनियों की हर झलक का अक्स अब इन्होंने गंभीर आँखों में सँजो लिया है। हवाई पंखों पर उड़ानें भरती इनकी कल्पना चिन्तन की गरिमा में विभोर हैं। सामयिक समस्याओं और रात-दिन के तजुर्बों की रगड़ खाकर इनकी सृजनोन्मुखी वृत्ति अधिक जागरूक है जिसमें संवेदना को ग्रहण करने की क्षमता, अनुभूति की प्रखरता, क्षमताओं का विकास और परिस्थितियों के अनुरूप ढलने की सामर्थ्य का अधिकाधिक विकास होता जा रहा है। इनकी प्रचुर चित्र सर्जना के साथ-साथ इनकी ख्याति बढ़ती जा रही है जो आने वाली पीढ़ियों के लिए मार्ग स्तम्भ का कार्य करेगी।

सर्वजीत सिंह

पर्वतीय सुषमा के चितेरे सरदार सर्वजीत सिंह पंजाब के प्रमुख दृश्य चित्रकारों में से हैं। नगर के कोलाहल पूर्ण, अशांत और हलचल भरे वातावरण से जब-जब ये ऊब जाते है अथवा वहाँ की सर्द या गर्म हवाएँ इनके प्राणों को झकझोर जाती हैं तो इनका मन अनायास ही हिमालय की शांत, शीतल क्रोड़ में विश्राम करने के लिए ललक उठता है और इस लालसा की संतृप्ति उन्हें रंगों और कूची की सहायता से करनी पड़ती है। अंतर्लय वहीं केन्द्रित होकर इनकी कल्पना को साकार कर जाती है। हिमालय के शिखर और उन पर जमी बर्फ की परतें, सूर्य रश्मियों के रजताभ बिम्व जो क्षण-प्रतिक्षण बनते-मिटते रहते हैं, चर्तुदिक् मोहक दृश्यावली और वहाँ के भोले अल्हड़ निवासी सभी का इन्होंने खुले दिल से अनौप चारिक चित्रण किया है।

इनकी शैली भाव प्रवण है और प्रकृति की निरी अनुकृति में नहीं, वरन् उमके सच्चे रूप को आतमीय एवं एकनिष्ठ भाव से प्रस्तुत करने में इनको अधिक दिलचस्पी है। हिमालय की पावनता का स्पर्श कर इनका आत्मचिन्तन सत्य के संधान में सृष्टि के रहस्यों में पैठता है और इनकी प्रखर गहरी दृष्टि प्रकृति की सुषमा में रमकर सम्मोहित सी वहाँ के रंगों को उकेरती है।

यही कारण है कि सर्वजीत सिंह के रंग बड़े गहरे और चटक हैं। बाल्यावस्था में रंग-बिरंगी तितलियों से इन्हें प्रेरणा मिली थी जैसे उनके रंग-वैविध्य ने इनके मन को बरबस हिलोर डाला। चार वर्ष की उम्र में ही ये कलम और स्याही से रेखाएँ खींचने लगे। उनमें रंगों से आकर्षण पैदा करते और ज्यों-ज्यों ये बड़े

होते गए इनकी बाल कल्पना रंगों की चमक में लय होती गई। लगभग बीस वर्ष की अवस्था तक आते-आते इन्होंने तैलरंगों को अपना माध्यम बना लिया। बाद में पर्वतीय सौन्दर्य को आकर्षक रूप में प्रस्तुत करने के लिए इन्होंने रंगों के विभिन्न प्रयोगों को प्रश्रय दिया। ज्यों-ज्यों इनमें परिपक्वता आती जा रही है, इनके रंग भी गहरेपन से सौम्य गरिमा में परिणत होते जा रहे हैं।

सर्वजीत सिंह परम्परा के क़ायल हैं, पर रूढ़, दक़ियानूसी प्रणालियों के अंध भक्त नहीं। नये-पुराने प्रतिमानों को उन्होंने विवेक की कसौटी पर कसा है और वे आज नव्य प्रयोगों से प्रेरणा प्राप्त कर रहे हैं। जैसे जीवन और परिस्थितियाँ सहज गतिशील हैं, वैसे ही कला भी किसी एक ही वृत्त तक कैसे सिमट कर रह सकती है, अतएव कला में गतिरोध नहीं, बल्कि नित्य-नवीन प्रवहमान धारा ही उसमें नव्यता ला सकती है। भारतीय चित्रकला को पश्चिमी प्रभाव

कश्मीर के मोर्चे पर

की बाढ़ में बह जाने से रोकना इनके मत में अनिवार्य है, किन्तु समय चूंकि बदल चुका है, अतः किसी एक ही चौहद्दी में बँधे रहना कला के विकास के लिए हानिकारक है।

इन्होंने कुल्लू, चम्बा, काश्मीर और लद्दाख का कई वर्ष तक दौरा किया और वहाँ के जीवन-प्रसंगों और नज़ारों को अपनी कला का विषय बनाया, किन्तु ये वर्षों दिल्ली में रहे हैं और राजधानी के प्रवास में इनका मन और भी अधिक

पहाड़ी स्थलों की मनोरमता में रमा है। प्रकृति पर्यवेक्षण का इनका यह आकर्षण यद्यपि सहज संवेद्य और अनौपचारिक है, तथापि पूर्व-पश्चिम की शैलियों के प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष प्रभाव ने इन्हें अंततः 'इम्प्रेशनिस्ट' बना दिया है, अतएव अपनी इस प्रतिक्रिया को इन्होंने आज अनेक प्रयोगों में बांध दिया है, जो भावी प्रगति का सुखद सूचक है।

रूपचन्द

चंडीगढ़ के कलाकार रूपचंद को प्रारंभ में कला की प्रेरणा ग्राम्य दृश्यों और प्राकृतिक नजारों से मिली। कच्ची मिट्टी के बने मकान और झोंपड़ियाँ, पर उनकी पृष्ठभूमि में हरे, नीले, पीले, चटक लाल व जामुनी रंगों की पोशाक
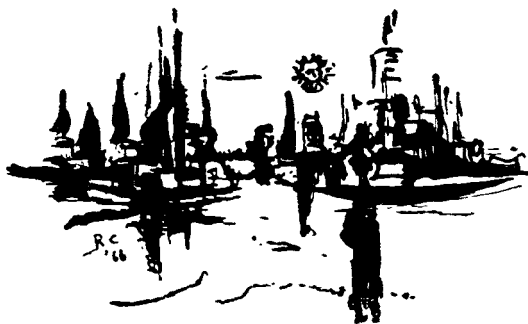
कश्मीर का एक दृश्यांकन

पहने गांव की औरतें अथवा संध्या समय आकाश के विस्तृत वक्ष पर विविध रंगों का नर्तन — बस, यहीं से इन्हें रंगों से खिलवाड़ करने की ईहा जगी। ग्राम्य वातावरण, पर्वतीय प्रदेश. चट्टानी पगडंडी, खेत-खलिहान, औद्योगिक नगर, बाज़ार-हाट, गली-कूचे — इन सब में भ्रमण करने से जो तरह-तरह की झाँकियाँ आँखों के आगे से गुज़रतीं, उन्हीं से इन्हें सृजन की प्रेरणा मिलती। इन दृश्यों में बिखरे सौन्दर्य ने इन्हें अभिभूत किया, पर कलाकार की नज़र तो कुछ दूसरे ही किस्म की होती है जिसे सामान्य दर्शक मुश्किल से ही पकड़

पाता है ।

रूपचंद भी आधुनिकतावाद के क़ायल हैं । कभी-कभी आँखों के सामने जो सफ़ेद-काले धब्बे तैर जाते हैं वही तो माडर्न आर्ट की मूल आधारभित्ति है । इन्हें विस्तृत सतह पर काम करने में मज़ा आता है । भूरे, सफेद, काले रंगों की छायाएँ, जिसमें 'पैटर्न' और 'टेक्सचर' के साथ सूक्ष्म समन्वय दर्शाया गया है और जो सशक्त व्यंजकता की छाप दर्शक पर छोड़ जाते हैं — यूँ इनके विशाल कैन्वास, मुखर रूपाकृतियाँ और थिरकते रंग अपनी ख़ासियत रखते हैं । 'दरिया के किनारे', 'चट्टानी पर्वत,' 'शहर की छाया,' 'सूनी गली,' 'समुद्री सूर्यास्त', 'नियंत्रित शक्तियाँ,' 'एकान्त आवास', 'हरियाली के बीच,' 'विश्राम मुद्रा,' 'नृत्य भंगिमा' आदि इनके चित्रों में विभिन्न 'मूड' और चेष्टाएँ दर्शायी गई हैं । प्रकृति की अनुकृतियाँ या उसका हूबहू प्रतिनिधित्व इन्हें रुचिकर नहीं, बल्कि ये प्रचलित लीक से किंचित् हटकर काम करना पसंद करते हैं । दरअसल, कला इनकी दृष्टि में महज़ एक दर्शन या गहन चिन्तन का विषय नहीं है, बल्कि अंतरंग अनुभूति की उद्भूति है । न केवल पार्थिव और आत्मिक परिणति उसमें निहित है, बल्कि मानसिक क्षुधा की परितृप्ति उससे होती है । कला द्वारा आत्म विश्लेषण के माध्यम से उल्लास की ऊष्मा का एहसास होता है ।

रूपचंद अपनी पेंटिंग के साथ एक दिन लुधियाना आए और वहाँ उन्होंने अपने चित्रों की प्रदर्शनी की । फिर ये बराबर समसामयिक कला प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे । लुधियाना, चंडीगढ़, नई दिल्ली और बम्बई में आयोजित प्रदर्शनियो में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है । चंडीगढ़ के मिलिटरी अस्पताल के बाल क्रीड़ा कक्ष का सज्जा-कार्य इन्हें सौंपा गया । चंडीगढ़ का पंजाब यूनीवर्सिटी म्यूज़ियम और होम साइंस कालेज तथा नई दिल्ली के वाइस प्रेजीडेंट हाउस और कोरिया हाउस, इसके अतिरिक्त अनेक सरकारी-ग़ैरसरकारी संग्रहों तथा विदेशों तक में इनके चित्रों को स्थान मिला है । आजकल ये चंडीगढ़ में होम-साइंस कालेज में आर्टिस्ट के बतौर काम कर रहे हैं ।

सुनील मल चटर्जी

मुख्यत: ग्राफिक कलाकार हैं जिन्होंने समूचे यूरोप का दौरा किया है और सभी आर्ट गैलरियों व आर्ट एकेडेमियों का निरीक्षण किया है । यूनाइटेड किंगडम और मिस्र में इन्होंने ग्राफिक कला की बहुविध टेकनीक का अध्ययन किया ।

यूगोस्लाविया सरकार की छात्रवृत्ति पर आर्ट एकेडेमी में कार्य किया । बेलग्रेड में पूर्वी यूरोप के सुप्रसिद्ध ग्राफिक कलाकार प्रोफेसर पेट्रौव के तत्त्वावधान में कला की सूक्ष्म प्रणालियों एवं टेकनीक का अभ्यास किया। काष्ठ लिनोलियम, तांबा और पत्थर के माध्यम से इन्होंने डिज़ाइन, रूपाकार और रंगों की सूक्ष्मताओं में पैठकर अपनी स्वयं की प्रभावशाली 'टोन' और 'टेक्सचर' को विकसित किया। किसी गुट या वाद के झमेले में न पड़कर इन्होंने अपने अनवरत परिश्रम और गंभीर अध्ययन द्वारा पिछले कई वर्षों की साधना से नई-नई कला प्रणालियों के अभिनव प्रयोगों को प्रश्रय दिया है और अपना स्वयं रास्ता बनाया है।

पटना इनकी जन्म-भूमि है। कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने एप्लाइड और कमर्शियल आर्ट में डिप्लोमा लिया। १९५४ में ये गवर्नमेंट आर्ट स्कूल के शिक्षक के रूप में पंजाब आगए थे। तब से यहीं के लोकरंजक रूपों में इनकी वृत्ति रमती गई। 'पत्थर तोड़ने वाले,' 'गपशप,' 'जंगली फूल', 'मनाली गाँव', 'शिमला में गर्मी का मौसम','कुल्लू की बैठी हुई औरतें,' 'यदि सर्दी आजाए,' 'उछल-कूद करते लंगूर' 'एकान्त चिंतन रत एक किशोरी,' 'लम्बे बालों वाली महिला,' 'मज़दूर,' 'भारी बोझा,' बुनकर,' 'वृक्ष के नीचे विश्राम', 'बाँसों का झुरमुट' 'दर्पण,' नौकाएँ,' 'अभिमानिनी', 'सीढ़ियाँ, खिड़कियाँ', 'हिमालय का लिली पुष्प,' 'दम्पति,' 'भाई-बहन' आदि दैनन्दिन दृश्यों और रोज़मर्रा के प्रसगों को इन्होंने अपने विषय बनाये। विदेशों में अपने प्रवास के दौरान जो दृश्य इन्हें दीख पड़े उनका भी इन्होंने चित्रांकन किया है। 'बेलग्रेड पार्क,' 'बेलग्रेड की संध्या,' 'एक यूगोस्लाव महिला,' 'एडियाटिक की ग्रीष्मऋतु,' 'मछियारा परिवार,' 'बादल,' 'रात्रि,' 'तीन पेड़,' 'जेली मछली,' 'समुद्र के किनारे, ''माडर्न सिटी' जैसे कतिपय मशहूर चित्रों में विदेशी जीवन के तौर-तरीकों की झाँकी मिलती है। पाश्चात्य शैलियों से भी ये प्रभावित हैं, किन्तु इनकी पद्धति एकदम देशीय और भारतीय लोकरूपों से प्रेरित है।

नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी द्वारा लेपज़िग, ईस्ट जर्मनी में आयोजित चौथी अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इनकी ग्राफिक कृतियां भेजी गई, तत्पश्चात् १९६० में ल्यूगैनो, स्विटज़रलैण्ड की छठी अंतर्राष्ट्रीय ग्राफिक और ड्राइंग कला प्रदर्शनी, १९६१ में पोलैण्ड की अंतर्राष्ट्रीय ग्राफिक कला प्रदर्शनी और यूगोस्लाविया, बेलग्रेड आदि की कला प्रदर्शनियों मे इन्होंने क्रमशः भाग लिया। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ आर्ट, पंजाब स्टेट म्यूज़ियम और भारत एवं विदेशों की अनेक सरकारी व ग़ैर सरकारी प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व

किया है।

पंजाब की ललित कला अकादेमी इनके ग्राफिक चित्रों की प्रदर्शनी चंडीगढ़ में आयोजित कर चुकी है जो बड़ी लोकप्रिय हुई। इनकी विशेषता है कि अनेक प्रभावों को आत्मसात् कर इन्होंने अपनी मौलिक टेकनीक और शिल्प-विधि को नये ढंग से प्रस्तुत किया है, खासकर पंजाब भर में इनकी टक्कर का कोई और ग्राफिक कलाकार नहीं है। वुडकट, लाइनोकट, मोनोटाइप आदि सभी पद्धतियों में उत्तम कला की बारीकियों को इन्होंने बड़े कौशल से दर्शाया है। आजकल चंडीगढ़ के कालेज आफ आर्किटेक्चर में ग्राफिक कला विभाग में ये लेक्चरार के रूप में नियुक्त हैं।

प्राशर

पंजाब के सुप्रसिद्ध दृश्य चित्रकार प्राशर लैण्डस्केप चित्रण में विशेष दक्षता रखते हुए भी एक कुशल मूर्त्तिकार, हस्तशिल्पी और डिज़ाइनर भी हैं। प्रारम्भ से ही भारतीय परम्परा और सांस्कृतिक विरासत के प्रति इनकी गंभीर निष्ठा थी, पर समय के दौर के साथ-साथ इनके दृष्टिकोण बदले और प्रयोगशील यथार्थवादी पद्धति पर यहाँ के जनजीवन, उसके संघर्षों, आशाओं-आकांक्षाओं को मानवीय धरातल पर इन्होंने प्रतिष्ठित किया। फिर भी न तो इनमें भावनाओं का आरोपण ही है और न ही अन्ध विश्वासों, रूढ़ियों, अर्थहीन रचना तन्त्र के निर्मूल उपकरणो का बंधन। देशी-विदेशी कला मूल्यों के आदान-प्रदान के सर्वाधिक सशक्त माध्यमों को विकसित कर नये-नये मार्गो की खोज और प्रभावशाली अभिव्यक्ति को मुखर करने का इनका अनवरत प्रयास रहा है, जो प्रशंसनीय है। रंग-संयोजन, तूलिकाघातों के आयोजन तथा अंतर की ऊष्मा से आपृक्त है इनके चित्र, फिर भी वे यथार्थवादी उतने नहीं हैं जितने कि भावप्रवण।

शुरू में बंगाल की वाश पद्धति को इन्होंने अपनाया। मैसूर के प्रसिद्ध परम्परावादी कलाकार अब्दुल अज़ीज इनके कला गुरु थे। पंजाब के विभाजन के दौरान जब अब्दुर्रहमान चुग़तई पाकिस्तान चले गये तो प्राशर शिमला के नये गवर्नमेंट आर्ट स्कूल के प्रिंसिपल के बतौर यहाँ नियुक्त हुए। इस बीच कितने ही प्रभाव इनकी कला में रूपायित होकर सामने आ चुके थे। प्रान्तीयता के दायरे से ऊपर उठकर इन्होंने तब तक अपनी मौलिक प्रतिभा का विकास कर लिया था। आधुनिक कला के द्रुतगामी परिवर्त्तनों, प्रयोगों और फार्मूलों के गोरखधंधे से

इन्होंने अपनी कला को बचाया है, हालाँकि ये यूरोपीय कला धाराओं से अछूते नहीं हैं। प्राशर ने एक आदर्श कलाचार्य के रूप में अपने शिष्य-प्रशिष्यों की पीढ़ी को बहुमुखी दिशाओं की ओर अग्रसर किया है, साथ ही समय की माँग के अनु-रूप ये युवक कलाकारों को एक नई स्फूर्त्ति और प्राणवत्ता के साथ चित्रण-वैविध्य की ओर प्रेरित कर रहे हैं।

सोहन सिंह

अमृतसर के कलाकार सोहन सिंह लगभग २०-२५ वर्षों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर कला की साधना में प्रवृत्त हैं। इन्हें कला विरासत में मिली थी। इनके पिता भाई ज्ञानसिंह बड़े ही मशहूर कला शिल्पी और भित्तिचित्रकार थे। अमृतसर के सुप्रसिद्ध स्वर्ण मन्दिर की प्राचीरों पर उन्होंने विशाल भित्ति-चित्रों का निर्माण किया था। ऐसे कलामय वातावरण और कलाकार पिता के तत्त्वावधान में कलाभिरुचियों को जागरूक किया। किसी स्कूल या कालेज में नहीं, वरन् उन्हीं के चरणों में बैठकर इन्होंने कला की सूक्ष्मताओं का अध्ययन किया। इन्होंने अधिकतर जन जीवन और लोक रंजक रूपों को अपनी कला में प्रश्रय दिया है। 'गाँव की गोरी', 'फूलविक्रेता' 'पुनजन्म,' 'अमृतसर का स्वर्ण मन्दिर,' 'श्रीकृष्ण', 'विद्यार्थी जीवन की कसौटियाँ', 'संगोष्ठी', 'भूसी काटते हुए,' 'हाथियों की लड़ाई' जैसे दृश्यांकनों और दैनन्दिन प्रसंगों को इन्होंने अपने चित्रण का विषय बनाया है। ये एक कुशल दृश्यचित्रकार और भित्तिकार भी हैं। भित्तिचित्रण में इन्होंने सिख स्कूल की विशिष्ट फ्रेस्को पेंटिंग के तौर-तरीके अख़्तियार किये हैं। इनके रंग-नियोजन और छवि-अंकन की प्रणालियाँ सहज और मार्मिक हैं, कारण — ये काल्पनिक या भाव-आरोपण के क़ायल नहीं, बल्कि अनौपचारिक प्रणालियों को नैसर्गिक रूप में हृदयंगम करने में अधिक विश्वास करते है, इनकी यही एक ख़ासियत है कि जिसमें कोई भी शिल्पगत सादृश्य या कलाधारा उन पर कभी हावी नहीं हुई।

कला को प्रारम्भ से ही इन्होंने स्वाभाविक शौक़ के रूप में अपनाया। बाद में उसी की साधना इनका ध्येय और विधेय बन गया। लाहौर की फाइन आर्ट्स सोसाइटी, कलकत्ता की ऐकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, मद्रास की साउथ इंडियन सोसाइटी आफ पेंटर्स द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनियों और अन्य कतिपय समसामयिक औद्योगिक और शैक्षणिक कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। इन्हें अनेक पदक, पुरस्कार और नक़द राशियाँ प्राप्त हुई हैं।

मिलिटरी के लिए और शिरोमणि गुरुद्वारा प्रबन्धक समिति की ओर से इन्होंने अनेक चित्रण कार्य सम्पन्न किये हैं। भारत और विदेशों के कला संग्रहालयों में इनकी अनेक चित्रकृतियाँ सुरक्षित हैं।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

यद्यपि अभी यहाँ की गति सुनिश्चित नहीं है, फिर भी नई-नई कलाधाराओं के प्रति यहाँ के कलाकार अधिकाधिक सचेत होते जा रहे हैं। नव्य शैलियों और रचना-प्रकारों के प्रयोग-क्षेत्र में पंजाब के नई पीढ़ी के उत्साही कलाकारों का पर्याप्त योगदान है और वे व्यापक दृष्टिकोणों को अधिकाधिक प्रश्रय दे रहे हैं।

सोहन कादरी

सुप्रसिद्ध नव्यवादी कलाकार सोहनी कादरी 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट अर्थात् अमूर्त्त चित्रण की कलात्मक प्रतिभा के धनी हैं। ये पाश्चात्य टेकनीक से बेहद प्रभावित हैं। फिर भी उनमें कोरा सूनापन या नकारात्मक चित्रण नहीं है, बल्कि मौलिक ढंग का प्रभावशाली संयोजन है-जिसने उनकी अभिव्यक्ति को एक नया मोड़ दिया है। रंग रूखे और काले-सफेद का मिश्रण, छितराये आकार जो केन्द्र-स्थल के इर्दगिर्द विश्रृंखल से प्रतीत होते हैं लगता है, जैसे आधुनिक कला मूल्यों को आत्मसात् कर ये नये राहों के उत्सुक अन्वेषी हैं और मन के 'काम्प्लेक्स' को इन्होंने बड़ी खूबी से रंगों में ढाल दिया है।

फगवाड़ा नामक एक छोटे से गाँव में इनका जन्म हुआ। कला प्रशिक्षण के पश्चात् आधुनिकता की चकाचौंध में इन्होंने अपना आपा खो दिया और पूर्व-पश्चिम व प्राचीन-अर्वाचीन के भेदभाव को मिटाकर इन्होंने सर्वथा नये ढंग की कला-सर्जना की दिशा में अनेक प्रयोग किये। इनके मत में रूपाकृति एक कौशल मात्र है, कोई भी मौलिक कल्पक किन्ही अवांछनीय बन्धनों में नहीं बँध सकता। पूर्वाग्रहों की जकड़बन्दी से मुक्त किसी भी कलाकार की उन्मुक्त भाव-धारा अनायास वेगवती तूलिका के संघात से उसके मन पर जमी वर्फ़ की परतों को रंग-रेखाओं के अविभाज्य रूपों में प्रवहमान कर देती है और इसी दृष्टिकोण से प्रेरित कादरी ने अपनी दीवानेपन व अलमस्ती को कला की अज्ञात भटकन में उँड़ेल दिया है।

'मन्द्र निनाद,' 'सिम्फनी', 'खामोशी का संगीत', 'संगीतमय अटकलें' जैसे इनके

चित्र आकार विहीन होने हुए भी निगूढ़ रंगों की लय में डूबे हुए से लगते हैं। अजीब रहस्यमय वातावरण, जिसमें गहरे ऊबडूब करते रंगों में इनका मन पिघलकर स्वाभाविक गति से थिरक उठा है। चण्डीगढ़, शिमला, दिल्ली आदि स्थानों के अतिरिक्त ये अनेक देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भी प्रतिनिधित्व कर चुके हैं।

हरदेव

मोहन कादरी की भाँति हरदेव भी पंजाब के मशहूर आधुनिकतावादी कलाकार हैं। जालंधर का फहराला गाँव इनकी जन्म-भूमि है। गाँव का अकृत्रिम, अल्हड़ वातावरण, वहाँ के भोलेभाले लोग और वहाँ के बिखरे दैनन्दिन दृश्यों में इन्हें जो कुछ दिखाई पड़ा वह इनके मन की तरंगों पर जैसे निर्द्वन्द्व तैरता रहा। शुरू में लोकरूपों को अपनी अभिव्यक्ति में इन्होंने प्रश्रय दिया, पर बाद में ज्यों-ज्यों आधुनिक धाराओं का प्रभाव इन पर पड़ा इनकी भावभूमि बदल गई। पहले चित्र बनाने में जो मजा इन्हें आता था वह अब भी वैसा ही आता है, पर इनका दृष्टिकोण क़तई बदल गया है। उजड़े शहर, मकान, छज्जे, खंभे, गिर्जाघर, अजीब-अजीब शक्लें, रंग और आकार सब कुछ जैसे रहस्यपूर्ण, अभेद्य है। इनकी नज़रों में निराकृतिमूलक पैमानों में इनका दृष्टिकोण अधिकाधिक प्रयोगवादी होता जा रहा है। इनका संवेग मात्र लय में डूबकर निराकार प्रभावों में खो जाता है।

ये भित्ति चित्रकार भी हैं और दिल्ली एवं शिमला में कई म्यूरल पेंटिंग भी बनाये हैं। नेशनल गैलरी और प्रायः हर माडर्न कलावीथि एवं प्रदर्शनों में इनके चित्रों को ससम्मान स्थान मिला है। ये फ्रांस और नीदरलैण्ड की सरकारों के सम्मानित अतिथि भी रह चुके हैं।

शिवसिंह

उपरोक्त दोनों कलाकारों की भाँति शिवसिंह भी अमूर्त्तवादी हैं और मूर्त्ति शिल्प में अंग-प्रत्यंग के उभार की अपेक्षा 'एब्स्ट्रैक्ट' पद्धति के प्रयोगों में ही अधिक दिलचस्पी रखते हैं। पत्थर, लकड़ी, सीमेंट खड़िया, मिट्टी, लोहा — सभी माध्यमों में इन्होंने अपनी मूर्त्तियों को ढाला है। इनकी मूर्त्तियाँ मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं की दिग्दर्शक तो हैं ही सामाजिक संचेतना को पकड़ने का प्रयास भी उनमें द्रष्टव्य है। जंगदार लोहे से वर्गों और आयतों में इन्होंने पत्थरों से निर्मित

चंडीगढ़ शहर का दृश्य प्रस्तुत किया है।

ये होशियारपुर के समीप छोटे से गाँव में पैदा हुए। बचपन से ही इन्हें खेल-खिलौने गढ़ने का शौक़ था। प्रयोगों के अनेक दौरों से गुजरकर ये आधुनिकता-वाद पर आ टिके है और नये ढंग की कला-कसौटियों को विकसित करने में व्यस्त है।

बी० आर० चोपड़ा

लाहौर के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने पेंटिंग मे डिप्लोमा लिया, तत्पश्चात् आर्ट्स एंड हैंडीक्राफ्ट्स में स्विटन (इंगलैण्ड) से डिप्लोमा प्राप्त किया। इन्होंने विदेशों में रहकर देश-विदेश की कला-टेकनीक का गहरा अध्ययन किया है। म्यूजियम और आर्ट गैलरियों में प्राचीन-अर्वाचीन प्रणालियों की बारीकियों मे पैठकर इन्होंने अपने ढंग से नव्य प्रयोग किये और कला एवं शिल्प पर अपने लेखों द्वारा प्रकाश डाला। पंजाब और हिमाचल प्रदेश सरकार के अर्से तक ये आर्टिस्ट और डिज़ाइनर रह चुके है। आजकल हिमाचल प्रदेश सरकार के आर्ट एक्ज़ीक्यूटिव के पद पर शिमला में कार्य कर रहे हैं।

ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति है। न केवल कला-सर्जना, वरन् कला के उत्थान में भी इनकी गहरी दिलचस्पी है। पंजाब आर्ट सोसाइटी के प्रेजीडेंट और ऑनरेरी सेक्रेटरी, इंग्लैण्ड की इंस्टीट्यूट आफ हैंडीक्राफ्ट्स और रायल ब्रिटिश आर्टिस्ट क्लब के सदस्य तथा लंदन की रायल सोसाइटी आफ आर्ट के ये फैलो हैं। सरकारी, व ग़ैर सरकारी क्षेत्र में इनकी कृतियों को सम्मान मिला है।

कला की क्रमशः वर्तमान लोकप्रियता के साथ-साथ पंजाब में कला के उद्भव, विकास और विस्तार करने वालों की संख्या कम नहीं है। ख़ासकर अमृतसर के कतिपय कलाकार इस दिशा में अधिक सक्रिय जान पड़ने है। **नाहर सिंह, दीदार सिंह, देवेन्दर सिंह, नवतेज सिंह, हरि सिंह, गुरबचन सिंह, सेवक सिंह, भूपिन्दर सिंह सग्गा, नरिन्दर सिंह, सुरिन्दर सिंह, हरभजन सिंह, मदन मोहन सिंह, कुलतार सिंह, अछर सिंह** (मूर्तिकार), **विजयकुमार, धर्मदेव, विश्वराज, ओमप्रकाश, कँवर लाल, दलीप** दत्ता, **बलवंत सिंह भट्टी, पी० वर्मा, जी० एल० सोमी, चन्द्रशेखर, प्रेम** माहेश्वरी, **चाँद** हाँडा, **फूलन रानी, ब्रज बाला** आदि उत्साही कलाकारों का एक बड़ा दल बहुविध प्रणालियों की कला

सर्जना में प्रवृत्त है । प्राकृतिक दृश्यों और लोकरंजक रूपों से उन्होंने अधिकतर प्रेरणा ली है और आकर्षक रंग-रेखाओं में ऊबडूब करती दृश्यावली, साथ ही पंजाब के जनजीवन के अनेक छविअंकन इनकी तूलिका पर थिरके हैं । चंडीगढ़ के कलाकारों में **बलराज खन्ना** जो माडर्न आटोम्बाइल लिमिटेड के कलाकार हैं और आजकल यूरोप में हैं, **चरणजीत** सिंह जो स्थानीय गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट के आर्टिस्ट हैं, **जोधसिंह**, जो गवर्नमेंट महिला कालेज के कलाकार हैं, **राज जैन**, जो गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट के कलाकार हैं, **चुग** जो इसी कालेज के मूर्त्तिकार हैं, **जे० आर० यादव** जो पंजाब यूनीवर्सिटी एडमिनिस्ट्रेटिव आफिस में कार्य कर रहे हैं, **आर० एस० रानियाँ** जो पंजाब सरकार के असिस्टेंट डायरेक्टर (डिज़ाइन्स) हैं, इसके अतिरिक्त सुप्रसिद्ध कलाकार सुशील सरकार के तत्त्वावधान में कितने ही माध्यम और शैलियाँ मुखर हुई हैं ।

शिमला के कलाकार **एस० एल० कुँवत** एक अच्छे चित्रकार और भवनशिल्पी हैं । इन्होंने राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, सुरक्षा सेवाओं की वार्षिक कला प्रदर्शनियों में भाग लिया है और पुरस्कृत भी हुए हैं । शिमला के दूसरे प्रसिद्ध कलाकार **एन० के० दे** गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के कलाकार हैं जो इसी कालेज के कार्यकारी प्रिंसिपल के पद पर भी काम कर चुके हैं । लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में फाइन आर्ट्स में इन्होंने डिप्लोमा लिया और वहीं लेक्चरार के पद पर नियुक्त हो गए । इधर काफी अर्से से पंजाब में रहकर न सिर्फ़ कला-सर्जना वरन् कला के उन्नयन में भी बराबर योगदान देते आ रहे हैं । इन्होंने व्यापक अध्ययन द्वारा पंजाब की संस्कृति को हृदयंगम किया है और विभिन्न रूपों और माध्यमों द्वारा उसके उद्घाटन एवं विकास के लिए प्रयत्नशील हैं ।

आर० आर० त्रिवेदी—स्थानीय कालेज में कार्य कर रहे हैं और इन्होंने भी कला की दिशा में पर्याप्त योगदान दिया है । 'लबालब प्याला', 'गरबा नृत्य' 'कैम्प' आदि इनकी कृतियाँ सामान्य दृश्यों से प्रेरित हुई हैं । इन्होंने लैण्डस्केप भी बनाये हैं और लोकरंजक विषयों का भी उतनी ही खूबी से चित्रण किया है ।

लुधियाना के कलाकार **कीर्त्ति खन्ना** मुख्यतः दृश्य चित्रकार हैं । 'पतझड़',

'पीला मैदान ', 'मौसम का अन्त', 'खोया चाँद' आदि इनकी कृतियाँ प्राकृतिक दृश्यों से प्रेरित हुई हैं । इसके विपरीत यहाँ के दूसरे कलाकार **एन०पी० ढांढा** ने उन्मुक्त विषयों को अपनी कला का प्रतिपाद्य बनाया है । लैण्डस्केप के अलावा पंजाब के बहुविध प्रसंगों और यहाँ की विशेषताओं को उभारा है । **मधुसूदन सिंह पुरी** भी स्थानीय उत्साही कलाकार हैं और इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और लुधियाना की नार्दर्न इंडियन आर्ट एग्ज़ीबिशन में भाग लिया है । कला के दृष्टिकोण को ये अपने तईं समेटकर रखना नहीं चाहते वरन् प्रादेशिक परिधि से परे विशद तत्त्वों को प्रश्रय देकर कला के मानदण्डों को उच्चस्तरीय व्यापक धरातल पर प्रतिष्ठित करने के हामी हैं । **आदित्य प्रकाश**— लुधियाना के भवन शिल्पी हैं और एग्रीकल्चर यूनीवर्सिटी से सम्बद्ध हैं ।

होशियारपुर के सुप्रसिद्ध कलाकार **पालजी** ने थिरकते रंग-रेखाओं के स्पन्दन में पंजाब की रंगीनी भर दी है । 'पुष्पाच्छादित दुलहिन', 'सूर्यमुखी के साथ','प्रथम घट', 'प्रकाश पुंज', 'रहस्यमयी अँगूठी', 'अंतर देखो,अनुभव करो' जैसे भावात्मक चित्रों के अतिरिक्त 'रिक्शा चालक', 'शांति के लिए संघर्ष' जैसे विषयों को भी लिया है । ये एक अच्छे छविकार और दृश्य चित्रकार हैं । यहाँ के दूसरे उत्साही कलाकार **जे० एम० सोशेल** है जिन्हें 'प्यास', 'लज्जा' जैसे भावात्मक चित्रों पर पुरस्कार प्राप्त हो चुका है । इनकी चित्र शैली पर आधुनिक कला-धाराओं का भी प्रभाव है ।

पटियाला के कलाकार **डी० आर० बींट** परम्परागत कलाकार हैं अर्थात् कला की साधना उनका खानदानी पेशा है और व्यावसायिक कलाकार के रूप में लगभग २५-३० वर्षों से कला साधना करते आ रहे हैं, खास कर मशहूर पोर्ट्रेट आर्टिस्ट हैं और जलरंगों में अधिकतर छवि अंकन करते हैं। पटियाला के यदवीन्द्र पब्लिक स्कूल के **ब्रह्मजीत सिंह** ने शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया है । ये इंडियन एकेडेमी आफ आर्ट्स के सदस्य है और उसकी वार्षिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं । इसी स्कूल के दूसरे शिक्षक **फेड्रिक डेविड** भी यहाँ के उदीयमान प्रतिभा के कलाकार हैं और न सिर्फ़ स्थानीय वरन् अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में भी भाग लेते रहते है ।

धर्मशाला के सुप्रसिद्ध कलाकार **फूलसिंह कटवाल** स्थानीय गवर्नमेंट हाई स्कूल के कलाकार हैं और इन्होंने 'देश के नेतागण', 'स्वामी दयानन्द', 'स्वामी विवेकानंद', 'ऋषि दयानन्द', 'बाल मलखान सिंह', 'बाल भारत', 'महादेव' जैसे धार्मिक और राष्ट्रीय नेताओं के 'पोर्ट्रेट' तो बनाये ही हैं , 'हुक्के की चिलम',

'फूल', दवात', 'साइकल',-जैसे सामान्य विषय भी लिये हैं ।
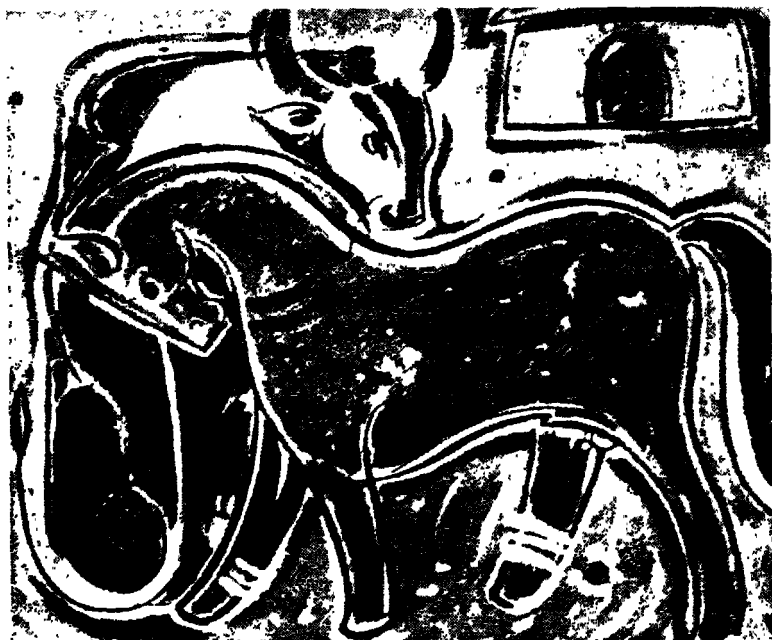
सुधीर सोजवाल की एक कलाकृति

एस० एस० दत्ता नीलोखेड़ी के मशहूर कलाकार हैं जिन्होंने दिल्ली पालि-टेकनीक से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया । आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ग्रुप प्रदर्शनियों और वार्षिक आयोजनों में सोत्साह भाग लेते रहते हैं और इन्होंने अनेक उद्योग प्रदर्शनियों में भित्तिचित्र निर्मित किये हैं । जालंधर की विद्यालय एक अच्छी चित्रकार हैं और 'व्यस्त घंटे', 'स्वामी', 'मौलाना' 'मुस्कान', 'बुढ़ापा', 'पोर्ट्रेट स्टडी' जैसे हर तरह के विषय अंकित किये हैं । सुधीर सोजवाल नये ढंग के कलाकार हैं जो अभिनव पद्धति पर प्रयोगों में लगे हैं ।

पंजाब के लगभग सभी प्रमुख नगरों मे उदीयमान प्रतिभा के उत्साही कलाकार काम कर रहे हैं और प्राचीन-अर्वाचीन शैलियों के प्रति उनकी रुचि एवं जिज्ञासा जागरूक है । प्रकट रूप में आधुनिक धाराओं का प्रभाव भी उन पर द्रष्टव्य है, फिर भी यहाँ के कलाकार किसी चौहद्दी मे बँधे नहीं है । अपनी प्रकृति के अनुसार वे अलमस्त, खुले, निर्द्वन्द्व और स्वच्छन्दता पसंद हैं और वैसे ही लोक-रंगों और उन्मुक्त प्रणालियों में काम करना उन्हें रुचिकर है ।

कुल्लू और काश्मीर के कलाकार

प्राकृतिक सौन्दर्य की क्रीड़ाभूमि कुल्लू और काश्मीर के कलाकार, जैसा कि स्वाभाविक है, दृश्यचित्रण में विशेष रुचि रखते हैं अर्थात् वहाँ की सुषमा निधि की रंगीनी को उन्होंने सदा अपनी रंग-रेखाओं में उँड़ेलने का प्रयास किया है। मस्तक पर श्वेत किरीट, वक्ष पर हरीतिमा का लहलहाता आँचल, स्वच्छ जल के झलमल आलोक में रंग-बिरंगे पुष्पों के थिरकते बिम्ब—लगता है जैसे यह अक्षत यौवना चिरसुन्दरी हिमानी बाला अपनी आकर्षक साज-सज्जा से स्वयमेव कलाकारों को मनोमुग्ध कर सृजन चेतना जगाती है। हिमाच्छादित पर्वत श्रृंखलाएँ, उन श्रृंगों तक का खुला विस्तार, अनवत गति से झरते रजत प्रपात और यहाँ का गुलाबी मौसम मन को तरोताज़ा और उत्फुल्ल बना देता है।

देवताओं की घाटी कुल्लू यहाँ के भोलेभाले निवासियों की धार्मिक निष्ठा को मूर्त्ति-निर्माण में मुखर करती रही है, बल्कि यहाँ के मन्दिरों और देवस्थल में सामूहिक रूप से जो देवी-देवताओं का प्राचुर्य है वे ही प्राचीन शिल्प-कौशल को व्यंजित करते हैं। मन्दिरों की प्राचीरों पर सूक्ष्म चित्रांकन है और पत्थरों के हर चप्पे-चप्पे पर नक्काशी की गई है। पर्वत के अंचलों में भगवद्-भक्ति और उपासना के ये प्रतीक जनता की श्रद्धा एवं आस्था के केन्द्र रहे हैं।

निकोलस रोरिक

महान् रूसी संत, दार्शनिक, द्रष्टा, तत्त्ववेत्ता एवं रहस्यमय चित्र-शिल्पी निकोलस रोरिक जब १९२४ में भारत आए तो हिमालय स्थित इसी कुल्लू घाटी ने उन्हें मुग्ध कर लिया था और उन्होंने उरुस्वती नामक स्थान में एक निजी आश्रम स्थापित किया, ताकि यहाँ की रम्य धरती उन्हें नित्य प्रेरणा देती रहे। अपने देश में उन्होंने कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया था। तत्पश्चात् वे सेंट पीटर्स में सोसाइटी आफ फाइन आर्ट्स के पुरातत्त्व विभाग में प्रोफेसर नियुक्त हो गए और कुछ समय बाद वे इसी सोसाइटी के डायरेक्टर हो गए और वे स्वीडन, डेनमार्क, फिनलैण्ड, इंगलैण्ड, अमेरिका आदि कतिपय देशों में एक जिज्ञासु यायावर की हैसियत से भ्रमण करते रहे।

मैडम ब्लावेत्स्की ने सर्वप्रथम भारत में रोरिक का परिचय कराया था। तभी से उनमें आध्यात्मिक प्रेरणा जगी और मध्य एशिया में एशियाई संस्कृति और अध्यात्म की खोज में उन्होंने व्यापक दौरे किये तथा यत्र-तत्र मूल्यवान प्रचुर सामग्री एकत्र की।

भारत आकर इन्होंने चित्रकला की सर्वथा नई परम्परा क़ायम की। आध्यात्मिक अनुभूतियों की कलामय अभिव्यक्ति हिमालय के सम्पर्क में चित्र की गति और लय, रंग और रेखाएँ तथा उसकी चरम व्यंजना में हुई।

हिमालय के सम्बन्ध में रोरिक के उद्गार थे—'हिमालय! जहाँ ऋषियों का आवास है। यहीं कृष्ण की बाँसुरी की प्रतिध्वनि गूँज रही है। यहीं गौतम बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे। यहीं वेदों की रचना हुई थी। यही पांडव रहते थे। यही आर्यावर्त्त था और यही हिमालय की अमल धवल सुषमा का प्रसार।
हिमालय—भारत का मुकुट मणि!
हिमालय — मोक्ष का पुनीत प्रतीक!'

दरअसल, हिमालय की क्रोड़ में ही उन्हें सत्य की प्रतीति हुई। उसके अंतर्दर्शन ने उनकी संवेदनाओं को अनुप्राणित किया, उनकी सूक्ष्म सौन्दर्य-चेतना को जागरूक किया और उनके प्राणों में ऐसी शक्ति भर दी जो प्रकृति और मानव मन के मार्मिक गूढ़ रहस्यों में तन्मय कर सके। कला की साधना रोरिक के लिए योग साधना सदृश थी अर्थात् आत्मदर्शन का विराट् उद्घाटन, सत्य का अन्वेषण और जीवन-वैविध्य की संभावनाओं तथा उसकी उन्मुक्त उपलब्धियों का चित्रण। कला के अंतरंग सौन्दर्य एवं आनन्द के स्रोत से सान्निध्य स्थापित कर निजी अनुभूतियों को चरमानंद में परिणत किया जा सकता है और इस प्रकार उच्चतर चेतना के उत्तरोत्तर विकास द्वारा आत्मिक संप्रतीति को
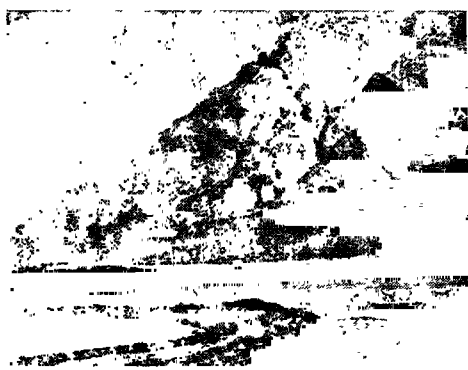
लद्दाख का एक मठ

अधिकाधिक प्रश्रय दिया जा सकता है। रोरिक की सदा चेष्टा थी—विभिन्नता में एकता की उपलब्धि, क्योंकि वे प्राच्य एवं पाश्चात्य कलारूपों में समन्वय चाहते थे. आध्यात्मिक स्तर पर उन्हें एकमेक करने के इच्छुक थे।

हिमकुमारी

उनके मत में—'जिस कला में कृत्रिमता होगी उसे देखकर आदमी थक जायेगा और ऊबने लगेगा, अतएव कलाकार की कल्पना सर्वथा स्पष्ट और रचनात्मक होनी चाहिए। उसका असर उस गीत की तरह हो जिसके प्रत्येक अक्षर की मुरम्य ध्वनि हमारे कानों में गूँजती रहती है। जब हम स्फटिक के एक टुकड़े को उठाकर देखते हैं तो उसमें अनेक रूपों का दर्शन करके हमें हैरत होती है, किन्तु वे एक समन्वयात्मक रूप प्रकट करते हैं। कलात्मक सृजन का भी यही मूल सिद्धान्त है।'

एक अन्य स्थल पर उन्होंने लिखा—'जो भी वस्तु अपने चतुर्दिक् उल्लास की ज्योति से जगमगाए वह ही वास्तव में अमूल्य निधि है। ऐसी कृति 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की एक आकर्षक मार्गदर्शक होगी और देखने वाले को जीवन की महानता का संदेश दे जायेगी। आपका जीवन सुन्दरतर बनेगा सदाचार के नीरस उपदेश से नहीं, बल्कि हृदय से निकली हुई सृजनात्मक कला की किरण ज्योति से आपके भीतर वह स्रष्टा जाग जाएगा जो चेतना की गहराई में वास करता है।'

रोरिक के कला सम्बन्धी विचार बड़े ही स्पष्ट और सुलझे हुए थे। कला के परिवर्त्तनशील रूप और सच्चे प्रयोगों के महत्त्व को उन्होंने सदैव स्वीकार किया, किन्तु अपने नयेपन के शौक़ को जो अजीबोगरीब भौंडे आकारों में बाँधते हैं वे कला के महत् उद्देश्य को भूल जाते हैं। दरअसल, कला से यह

अपेक्षा की जाती है कि वह सतत सृजनात्मक और विकासोन्मुख हो। चाहे चित्र कैसा हो जटिल या पेचीदा हो, लैण्डस्केप या पोर्ट्रेट हो—जो भी कृति सच्चे कलाकार के हाथों सृष्ट होगी वही वस्तुतः सृजनात्मक व विकासोन्मुख होगी। आधुनिक कला की अलोचना करते हुए एक बार उन्होंने अभिमत व्यक्त किया था 'आजकल विचारों में जो तेजी पैदा हो गई है उससे सृजनात्मक भावना के टुकडे-टुकड़े होगए है। कभी-कभी कुछ लोग इस प्रकार के रूप और प्राकारों में अपनी शक्ति का दुरुपयोग करते है जिसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नही है। कुछ लोग अब भी फ्रांसीसी चित्र प्रदर्शनी के उस मज़ाक को याद करते होंगे जिसमें एक चित्र के विषय में कहा गया था कि वह गधे की पूंछ से चित्रित किया गया है। सृजन कला को व्यक्त करने के प्रयत्नों में लोग उसे बजाय मुक्त करने के सीमित करने और परम्परा के बन्धनों में बाँधने के तौर तरीके खोजने लगते है। इससे लोग सृजन कला का बुनियादी उसूल भूल जाते है कि ऐसी कोई शर्त्त बर्दाश्त नहीं की आ सकती जो उसे सीमित करे और परम्परा मे बाँधे।

अतएव किसी भी सृजनात्मक कलाकार को किन्ही बंधनों या कायदे-कानूनों में नहीं बाँधा जा सकता। वह तो एक ऐसे विहंगम पक्षी की भाँति है जो उन्मुक्त वायु में विचरण करता है। चित्र सृजन में रोरिक प्रत्यक्षवाद के क़ायल थे, किन्तु इस तरह अंधाधुंधी के आवेश में बहकर जो रास्ते का समूचा कूड़ा कर्कट भी समेट ले जाये। सृजन में समन्वय के महत्त्व की विस्तृत व्याख्या करते हुए उन्होंने एक बार कहा था —

'सभी कलाओं में अच्छी सम्भावनाओं के मिश्रण को समन्वय कहते हैं। पिछली सदी के मशहूर रूसी चित्रकार ब्रूलोव ने एक बार मजाक में यह कहा था कि कलाकार बनना बहुत साधारण है। उसके लिए सिर्फ़ इस बात की जरूरत है कि— "अच्छा रंग लेकर मुनासिब जगह रँग दी जाय।" मूलतः इस कलागुरु की बात ठीक है। रंग भरते समय हर कलाकार को ठीक जगह ही रंग भरना चाहिए और उसके कान में उसकी चेतना उसे आदेश देती है कि ठीक जगह कौन सी है। कलाकार उसी तरह मे रेखांकन करके रंग भरता है। पर यदि कोई उससे बाद में यह पूछे कि उसने उस तरह रेखाएँ खींचकर रंग क्यों भरा दूसरी तरह रेखाएं खींच कर रंग क्यों नही भरा तो कोई भी कलाकार आपको यह न बता सकेगा कि उसने किस नियम के अनुसार ऐसा किया।

किसी भी चित्रण की अंतर्दृष्टि उसकी टेकनीक में निहित नही है।

कलाकार अपनी सहज बुद्धि से रंगों का चयन करता हैं, किन्तु यदि आप उससे यह पूछें कि उसने किसी बिशेष चित्र के लिए साधारण रंग, कैन्वास, कागज, तैलरंग या जलरंग क्यों इस्तेमाल किये तो वह कभी उसका उत्तर न दे सकेगा। सच्ची अनुभूति की व्याख्या शब्दों में नहीं की जा सकती, वही एक ऐसा गुण है जो वैभिन्न्य में सामंजस्य ला देता है। रोरिक के शब्दों में—

'यदि आप विविध युगों के विविध कलाकारों की कृतियों की तुलना करें तो आप पायेंगे कि ऐसी कृतियों को जो ज़ाहिरा देखने में विरोधी हैं आप एक ही समूह मे रख सकते हैं। बहुत प्राचीन चित्र, ईरानी मिनियेचर चित्र, अफ्रीका के कलाकारा के चित्र, चीन और जापान के कलाकारों के चित्र तथा गागिन और वैंगाफ के चित्र एक ही संग्रह में आसानी से रखे जा सकते हैं और एक ही पैनल में दीवा र पर टाँगे जा सकते हैं और उनमें कोई असा- मजस्य दिखाई न देगा। रंगों का चयन और चित्रण का टेकनीक विभिन्न होते हुए भी उनमें एक असमानता दिखाई न देगी। वे सब सृजन की सच्ची कृतियाँ होंगी। हर तरह की कला, हर तरह के चित्र, मूर्त्तियाँ, मोज़ेक, सिरे- मिक या इस तरह की सभी चीजे जिन्हें किसी कलागुरु ने गढ़ा है उनमें एकता होगी, सामंजस्य होगा, प्राणों की अंतर्लय अनुस्यूत होगी।

हममें से अक्सर लोगो ने कलाकारों के परस्पर विरोधी प्रतिपादनों को सुना है। एक दल कहता है कि वह केवल कला की पुरानी परिपाटी को ही समझ सकता है। दूसरा दल कहता है कि कला प्रगति में ही है और इसीलिए वह आधुनिक कला कृति को देखकर ही सन्तोष पाता है। कभी-कभी ऐसा भी होता हैं कि ये आधुनिक कलाकृतियाँ रूखी और दुर्बोध लगती हैं, मगर फिर भी कुछ लोग इन्हीं को देखकर सुख पाते हैं। कुछ लोग केवल तैल चित्रों को ही पसन्द करते हैं और कुछ वाटरकलर चित्रों को। कुछ लोग कहते हैं कि उन्हें केवल रँगे हुए चित्र ही अच्छे लगते है, किन्तु कुछ को सिर्फ़ रेखांकित चित्र ही अच्छे लगते हैं। उन्ही का सृजन वे कला समझते है। कुछ लोग आदमक़द चित्रो को और मूर्त्तियों को ही सुन्दर समझते हैं। लेकिन कुछ लोग मिनियेचर चित्रों को ही पसन्द करते है। कुछ लोग बडी-बड़ी और भारी भरकम वस्तुओं को ही कलात्मक समझते है, जबकि कुछ लोग छोटी-छोटी चीजो मे ही कला की सुन्दरता देखते है। क्या यह सीमित दृष्टिकोण कला प्रेमियों के सकुचित हृदय का परिचय नहीं देता ? और क्या ये अर्द्धशिक्षित कलाकार इस तरह अपनी सम्भावनाओं को भ्रष्ट नहीं करते ?

अक्सर देखा जाता है कि लोगों का कला संग्रह और रुचि किसी आकस्मिक भावना का परिणाम होती है।

किसी आदमी ने कभी यह सुन लिया कि तेल मे चित्र रँगे जाते हैं और इस विचार ने उसके अवचेतन मस्तिष्क में एक जगह बना ली। कभी रिश्तेदारों के बीच में किसी बच्चे के कान में वाटरकलर पेंटिंग की भनक पड़ी या उसको कुछ वाटरकलर चित्र भेंट में दिये गए और इस आकस्मिक घटना ने इस तरह के चित्रों में हमेशा के लिए उसकी रुचि को जाग्रत कर दिया। जीवन के हर प्रकार के प्रदर्शन में और खासकर कलात्मक भावनाओं के प्रदर्शन मे प्रारम्भिक प्रभाव बहुत असर डालते हैं। ये आकस्मिक घटनाएँ हमारे अवचेतन मस्तिष्क में गहरी जड़ें जमाकर बैठ जाती हैं। एक व्यक्ति एक ही तरह की चीज़ों मे प्रभावित होने लगता है और दूसरी तरह की चीजो के प्रति उसमें कोई दिलचस्पी नहीं रहती। किन्तु बसन्त आता है, नई-नई कलियाँ फूटती हैं और शीतकाल की ठंडक में, जो अब तक सोई हुई थीं, वे फूल बनकर खिलती है क्योंकि सृजन कला का नया युग जो आ रहा है।

कितना सुन्दर शब्द है यह—'सृजनकला।' दुनिया की विभिन्न भाषाओं में आज उसके असर को लोग महसूस कर रहे हैं, वह अपने तरीके से आगे होने वाली घटनाओं की सूचना दे रही है, ऐसी घटनाएँ जो मानवता को महान् विजय की ओर ले जाएँगी। यह 'सृजनकला' इतनी महान् और इतनी सत्य, शिव और सुन्दर है कि तमाम परम्परागत बाधाएँ उसके सामने नष्ट हो जाती हैं। लोग इस शब्द को सुनकर प्रसन्न होते हैं और इसे प्रगति का प्रतीक समझते हैं। सृजन कला की माँग संकुचित दिमागों को नियमों, रूढ़ियों और परम्परा की भावनाओं से ऊपर उठाती है और उनके शब्द कोष के असम्भव शब्द को सम्भव बनाती है। सृजन कला के लिए हर चीज़ सम्भव है। वह मानवता को अपने साथ-साथ आगे बढ़ाती है। सृजन कला तरुणों का झण्डा है। वह प्रगति की निशानी है। वह नई सम्भावनाओं का बीमा है। वह अन्ध-विश्वास के ऊपर शान्तिमय विजय है, वह मानव-कल्याण का नया आन्दोलन है। वह सृष्टि के मौलिक नियमों का नया प्रदर्शन है। एक शब्द में कहें तो वह साकार सुन्दरता है। भारतीय ऋषियों ने यह कहा है कि सृष्टि का कल्याण सत्य, शिव, सुन्दर बनने से ही होगा। इस बात पर कुछ लोग मुस्कराते हैं। कुछ इसे सुन कर हमदर्दी दिखाते हैं। कुछ ने इसे अवज्ञा की नज़र से देखा है। लेकिन किसी ने इसका खण्डन नहीं किया। कुछ ऐसी उक्तियाँ है जिन पर आश्चर्य

तो प्रकट किया जा सकता है, पर जिनका खण्डन नहीं किया जा सकता। कला का ही ऐसा एक क्षेत्र है कि जहां स्वतन्त्रता अपनी चरमता पर प्रदर्शन पाती है, किन्तु इस स्वतन्त्रता की कसौटी क्या है ? इस कसौटी की परख यह है कि कला वस्तु को आकर्षक होने के साथ-साथ सुन्दर भी होना चाहिए। मानव हृदय के रहस्यमय अंतरतम में प्रकृति ने विश्वास जनक न्याय और नीर-क्षीर विवेक की क्षमता दी है। उसी से यह पता चल सकता है कि वास्तविक सिद्धान्त क्या है, वास्तविक सृजन कला क्या है और वास्तविक सौन्दर्य क्या है।'

रोरिक की कला में एक प्रकार की गहरी संवेदना और अंतर की पुकार है जो चित्रपट पर रहस्यमयी गरिमा लिये उभरी है, किन्तु शनैः-शनैः रंग और रेखाएं उस रहस्य को स्वयं खोल देते है, पहेली को स्वयं बुझा देते हैं। उनके चित्र-रहस्यों के आवरण को भेद कर कलाकार के प्राणों में झांकने को प्रेरित करते हैं, लगता है— मानो इस दार्शनिक शिल्पी की तूलिका ने लौकिकता के झीने पर्दे में अलौकिकता को प्रश्रय देकर समूचे सृजन को पारदर्शी बना दिया हैं जहां छिपा पड़ा रहस्य स्वयं गहरी आत्मकथा कह देता है।

प्रकृति के सान्निध्य में होने वाले अंतर के आलोड़न को आध्यात्मिक उपलब्धि के रूप में उन्होंने अपने चित्रण की आधार-भित्ति बनाया। रूप-रस गंधमय प्रकृति और उसका प्रोज्ज्वल रूप ही उनकी कला की प्रमुख प्रेरणा है। प्रकृति के साथ मानव सम्पर्क अपरिहार्य है, दोनों परस्पर प्रीति और प्रतीति के गठबधन मे बँधे हैं। प्रकृति का रूपान्तर वह अपने में ही खोजता है, वही वस्तुतः उसकी नियंता है। इस दृश्य जगत मे जो आनन्द बिखरा पडा है वह आत्मानन्द की ही छाया है, अतः इस आनन्द में अपने को डुबो देने मे ही कला की चरम साधना है।

रोरिक की कला भारत की अमूल्य धरोहर है जिसने आध्यात्मिक प्रेरणा दी है। उनके चित्रों में जो माधुर्य, रस और उदात्त भाव है और उनके चित्रण की जो अपनी निजी शैली है वह बेजोड़ है। किसी से उसकी तुलना नहीं की जा सकती। निजी सृजन में एक ओर तो वे पूर्व और पश्चिम के सामंजस्य की चेष्टा कर रहे थे तो दूसरी ओर भाव साम्य द्वारा गूढ़ आध्यात्मिक को कलात्मक स्वरूप प्रदान करने के इच्छुक थे। फिर भी वे साधक पहले थे और बाद में कलाकार। कला तो उनकी साधना प्रकट करने का महज़ माध्यम थी।

स्वेतोस्लाफ रोरिक

निकोलस रोरिक के पुत्र स्वेतोस्लाफ रोरिक अपने पिता के समान ही एक पहुँचे हुए दार्शनिक कलाकार हैं यद्यपि उनका विचार दर्शन उतना आध्यात्मिक नहीं जितना कि विश्लेषणात्मक। श्वेताभ हिम का अखण्ड और अविच्छिन्न प्रसार जो अस्त होते सूर्य की कनकरश्मियों से स्वर्णिम हो उठता है, शोभामय क्षितिज, जिसमें शुभ्र, रक्तिम, नील, श्याम वर्ण के विविध इन्द्रधनुषी रंगों की चपल क्रीड़ा युत पर्वत श्रृंखलाएँ जिनके पार्श्व में श्वेत बादल साथ-साथ संचरण

अन्तिम क्षण

कर रहे हैं और पद तल में बिखरी अनुपम दृश्यावली इन सब में उनकी वृत्ति रमी और इन्हीं में उनकी दिव्य संभावनाएँ चरितार्थ हुई। यही उच्च आदर्श उनका ध्येय और विधेय बन गया। भारतीय कला और समय-समय पर होने वाले उसके रूपान्तरों में उन्होंने बहुत कुछ खोजा और पाया। इनकी कला की मूल भित्ति पुरातन कला परम्पराओं पर आधारित है।

बोल्शेविक क्रान्ति के बाद जब इनका परिवार स्वीडन, अमेरिका और अन्ततः भारत में आ बसा तो पाश्चात्य और प्राच्य प्रभावों से अभिभूत इनका मन विशद होता गया। एक सच्चे क्रिश्चियन होते हुए भी भारतीय दर्शन में इनकी गहरी निष्ठा है। इन्होंने व्यापक भ्रमण द्वारा यहाँ की कला की बारीकियों का गहरा अध्ययन किया है। सौन्दर्य और सत्य के मूल में बोध, ज्ञान और आनन्द की उपलब्धि भारतीय कला की विशेषता रही है जिसकी अप्रतिम पावनता में इन्हें अनन्त और अनादि की झलक मिली और प्रकृति व परमेश्वर के दर्शन हुए। इन्हें लगा-कला 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की प्रतीक है और यही भावना इनकी आत्म-चेतना को जागरूक करती हुई गहन अनुभूति में परिणत होती गई है। यहाँ की

कला कृतियों की रंग-रेखाओं की गति में एकतान इनकी मानसिक संस्थिति सबसे अधिक प्रवहमान हो उठी। सौन्दर्य के आस्वादन का रहस्य इनके हृदय मे आध्यात्मिक स्पन्दन बन कर प्रकट हुआ जो इनके कृतित्व की विशेषता है।

अपने पिता की रोरिक शैली को, जो इस युग की सर्वाधिक अद्भुत मौलिक शैली है और विभिन्न धर्मों की शुचिता व सौन्दर्य लिये है, इन्होंने आगे बढ़ाया और उसमें विश्व की समसामयिक कला धाराओं के संदर्भ में कतिपय विशिष्टताओं को उजागर किया। इन्होंने प्रायः विश्व के सभी कला केन्द्रों में घूम-घूम कर वहाँ की सांस्कृतिक सम्पदा में झाँका।

सच्चे मानो में स्वप्न द्रष्टा और मनीषी स्रष्टा होने के बावजूद आधुनिक कला धाराओं ने भी इन्हें अभिभूत किया है। माने, गागिन और वैंगाफ की लाइनें, स्पेस और कलर-टेकनीक का प्रभाव, जो अनिवार्यतः पिछली कई दशाब्दियों से था, इन्हें भी छू गया और रहस्यात्मकता मे संभावित यथार्थता की
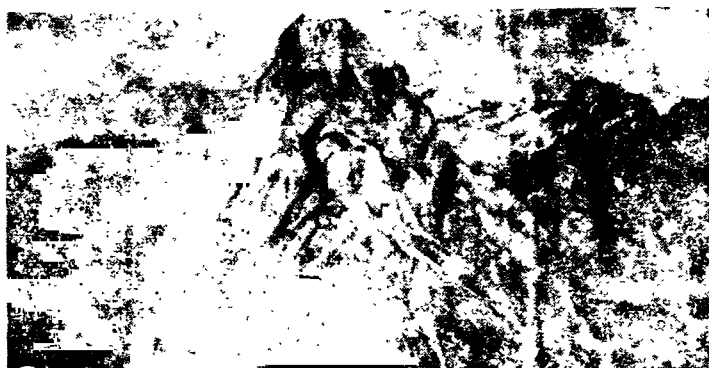
गिरनार पर्वत माला

ओर इनका झुकाव हुआ। अमेरिका, तिब्बत और दूसरे देशों की अनुभव सपदा के सत्य को पकड़ने का इन्होंने प्रयास किया। इन्होंने प्रायः समूचे विश्व का भ्रमण किया है। ज्ञान के क्षेत्र में इनका मन सदा खुलता गया और बाहरी जीवन मे अपने आपको मिटाकर आत्मा को पुष्पित, फलित और प्रतिमंडित किया। कारण—पूर्व और पश्चिम की अध्यात्म विद्या और कला विधान की मौलिक एकता को इन्होंने भली भाँति पहचान लिया है।

कला इनके लिए मन का कुतूहल नही और न ही बुद्धि का व्यसन है।

पश्चिम के ज्ञान और पूर्व की आध्यात्मिक धारा के सलिल से सींचकर इन्होंने उसकी गहरी सचाई को समझा है और उसमें एकदम नया अर्थ भर दिया है। 'गुप्त क्षण', 'पियटा', 'आदम और ईव', 'अनन्त जीवन', 'गाँव की ओर,' 'श्रम' 'कुल्लू घाटी में रथयात्रा' आदि इनके चित्रों में बड़ी ऊँची भावना का दिग्दर्शन है। प्रकाश और रंग की तेजी जो अपने ढंग से समूचे वातावरण को द्युतिमान करती है, कहीं नीलाकाश लपट की तरह दमकता है तो कहीं बर्फ़ सूरज सा चमकता है और कहीं छायाएँ एक विचित्र अद्भुत नीलिमा में खोई हुई सी लगती है। इनके हिमालय के दृश्यांकन जादू की सी लयमय चारुता में डूबे दर्शक की आँखों में सौंदर्य की कौंध सी भर देते हैं। इस विचित्र लोक में रहस्य-मयी आकृतियाँ, तिब्बती लामाओं और भारतीय ऋषियों, हिन्दू देवी-देवताओं, मनीषी दार्शनिकों व धार्मिक प्रतिनिधियों को भी चित्रित किया गया है।

रूस या मध्य एशिया के अतीत दर्शी के रूप में इनकी विश्लेषक दृष्टि बहुत दूर तक पहुँची है। धार्मिक मनोवृत्ति और दार्शनिक दृष्टि के बावजूद ये बीजैण्टा-इन रूसी संतों अथवा पूर्वी जगत के ऋषि-महर्षियों अथवा बोधि सत्त्व या गीता रामायण तक ही सीमित नहीं है, बल्कि इनकी चित्रण की दुनिया में लैण्डस्केप, हिमालय की गरिमा, प्रवहमान नदियों व झरनों का उमड़ता जल, दृश्यावली की रंगीनी और इस सबके बावजूद एक ऐसी आच्छन्न रहस्यात्मकता है जो दर्शक को अभिभूत कर लेती है, जिसमें कोई अदृष्ट संकेत है और जो अनंत की नीरवता से टकराती सी प्रतीत होती है। ऐसी व्यंजना को अधिक मुखर करने के लिए उन्होंने प्रकाश का सहारा लिया है। अर्थात् ऐसा प्रकाश जो दिव्य जीवन, ईश्वर-प्रेम और विश्व-सौंदर्य की झाँकी प्रस्तुत करता हैं। इसी प्रकाश द्वारा इन्होंने पर्वतीय दृश्य-चित्रणों, हिमालय के उच्च श्रृंगों पर वर्फ़, विभिन्न वाता-वरण, दिन की तेजी, सुबह का कुहरा, घटाटोप बादलों के मध्य सूर्यास्त, चाँदनी रात और अन्य कितने ही प्राकृतिक नज़ारे दर्शाये हैं। वस्तुतः प्रकाश की दृश्या-त्मक सत्ता द्वारा इन्होंने अपनी भावनाओं को संगीत की सी लय में बिखेर दिया है। विसंगतियों के इस निस्सीम अरण्य में प्रकाश की पावन पयस्विनी ही अंधेरों को चीरकर आत्मा के क्षितिज को छू जाती है। अतएव प्रकाश की ये रेखाएँ ही बाह्य ज्ञान और अनुभूतियों के इस सीमातीत वैपुल्य में सौंदर्य पूर्ण आनन्द एवं शिव संकल्प के अनंत विस्तार को प्रसारित करती हैं।

रोरिक ने सामान्य प्रसंगों और रात-दिन की घटनाओं पर भी दृक्पात किया है। 'खेत में एक किसान,' 'दक्षिण भारत के पर्वतीय भू-भाग का एक

चरवाहा, 'मन्दे की ओर जाते हुए ग्रामीण,' 'बाग में एक नारियल,' 'फूलों के गुच्छे' जैसे चित्र सचेतन प्रज्ञा के प्रतीक है। माइकेल एंजलो जैसी सुष्ठु चारुता, रेम्ब्रांट जैसा छाया-प्रकाश का सूक्ष्म विश्लेषण और देलाक्रो जैसा आकृति-निर्माण तथा वरमीयर जैसी नीरव शांति हमें रोरिक के चित्रों में मिलती है। किस प्रकार इनके पिता की विशिष्ट सृजन शक्ति थी—साक्षात् दर्शन और सत्य का अन्वेषण और यूँ द्रष्टा, सर्वज्ञ और ऋषि के रूप में उन्होंने अपने नई गहरी अंतर्दृष्टि जगा ली थी उसी प्रकार विश्लेषणात्मक निरीक्षण एवं एक वैज्ञानिक की सी सहज प्रतिभा द्वारा इन्होंने भी प्रकृति और मानव जीवन के रहस्यों को समझने का प्रयास किया है।

पिता— निकोलस रोरिक का पोर्ट्रेट

टेम्परा और तैलरंगों मे ये नित-नये प्रयोगों में लगे रहते हैं। रेखा-रंगों, लाइट-शेड मे इनका अद्भुत चित्रशिल्प, सौंदर्य बोध और कलात्मक सुरुचि का उत्तरोत्तर विकास हुआ है। लैण्डस्केप की ही तरह पोर्ट्रेट चित्रण में भी उन्हें वैसी ही दक्षता प्राप्त है। पुरातन कला, इतिहास और जनपदीय जीवन-प्रवाह मे बहनेवाली विश्व व्यापी सांस्कृतिक परम्पराओं और पद्धतियों में झांक कर कला-सृजन का जीवन व्रत के रूप में अंगीकार करने वाले इस साधक शिल्पी में, जिसमें देविका रानी जैसी पत्नी की निष्ठा का भी योगदान है, कैसी अक्षुण्ण कला भक्ति और अविरत साधना की कैसी अदम्य अभीप्सा जागी है इसका सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हिमालय के चरणो मे वास करने वाले इस कलायोगी ने आधुनिक युग में एक ऐसी नई दृष्टि और नये आदर्श दिये हैं जो सामान्य धरातल से उठाकर अचिन्त्य भावलोक में प्रतिष्ठित करते है।

अनागारिक गोविन्द

जर्मन कलाकार अनागारिक गोविन्द ने भी हिमालय की गोद में प्रकृति की वह रंग स्थली चुनी जहाँ क्षण-प्रतिक्षण उनके मन की ललक सृष्टि की रंगीनियो

में झूम-झूम उठी। हिमालय उनके आत्मचिन्तन और साधना का प्रतीक बन गया। हिमालय की सन्निधि में उनकी आत्मा जाग उठी, कला-संचेतना प्रखर हो उठी, जीवन्त शक्ति मुखर हुई। जिस कन्दरा के भीतर बैठकर ये आत्म-चिन्तन किया करते थे उसी के समक्ष एक विशाल पर्वत खंड था। समीप ही पहाड़ों पर एक बड़ा वृक्ष था जिसकी शाखाएँ एक विचित्र नृत्य मुद्रा में झूम-झूम उठती थीं। इस प्रकार के अलौकिक दृश्य में उन्हें आत्मदर्शन हुए जैसे मेरु पर्वत के निकट कल्प वृक्ष, जो समूची शक्ति का केन्द्र स्थल है और जिसकी गतिशील धाराएँ समूची सृष्टि में संचरण करती हैं। यह वृक्ष इन्हें महागुरु की तरह प्रतीत हुआ जो अपनी सुखद शीतल छाया में समेटना चाहता है। 'मेरु पर्वत' शीर्षक चित्र में इसी भाव की व्यंजना है, बौद्धिक विभ्रम और सांसारिक द्वन्द्व-संघर्ष के महाजंगल में जो आज का मानव दिशाहीन सा भटक रहा है, उसमें जो अजनबीपन या अकेलेपन की व्यथा टीस रही है और वह असली स्वरूप का दर्शन नहीं कर पा रहा है, तो मूलभूत प्रकृति को अनुभूत करने पर ही उससे साक्षात्कार हो सकता है। पार्वत्य प्रदेश की शांतिमयी क्रोड़ में समूचे अंतर्विरोधी दृश्य एकाकार हो युगबोध के सभी धरातलों से भिन्न कुछ और ही प्रतीति कराते है।

अनागारिक गोविन्द आधुनिक धाराओं से भी प्रभावित हुए। 'एब्स्ट्रैक्ट' आर्ट और 'क्यूबिज़म' में उन्हें भारतीय दर्शन और सूक्ष्म तत्त्वों का आभास हुआ। स्थूल रूप से परे प्रतीकों की प्रेरणा उन्हें हिमालय से मिली, जैसे उसकी हिमाच्छादित चोटियाँ कहीं दूर गहरे में पैठने का आभास देती हैं, जैसे वे आध्यात्मिक संकेत देती है कि भौतिक से परे निराकार पर जोर देना चाहिए। शैलेश्वर जीवन्त शक्ति को उद्बुद्ध करने वाला है, दिग्भ्रमित को मार्ग दिखाने वाला है। इन्होंने जीवन के कितने ही वर्ष हिमालय की साधना में व्यतीत किये हैं। इनके चित्र अधिकतर प्रतीकात्मक हैं। हिमालय का जो स्वरूप इनके चित्रों में मिलता है वह गूढ़ आध्यात्मिक चिंतन के रूप में है जहाँ कभी-कभी सूक्ष्मता व प्रतीकवादिता हावी हो उठती है।

ये एक अच्छे लेखक भी हैं। व्यापक भ्रमण द्वारा जो बहुविध संस्कृतियों, कला तत्त्वों, नूतन-पुरातन पद्धतियों को इन्होंने आत्मसात् किया, उन्हें समझा-बूझा और अपने ढंग से अपनाया तो उन्हें दूसरों के समक्ष भी रखा है। संघर्षरत मानव शांति की खोज में भटक रहा है। किसी व्यापक गहन और महान् सत्य के अभाव में उसकी यह अपरिहार्य नियति बन गई है कि जिससे उसका छुटकारा

नहीं, अतएव उसकी बुद्धि और कल्पना किसी शांत परिवेश में ही उचित दिशा खोज सकती है।

काश्मीर ग्रुप

काश्मीर तो प्रारम्भ से ही कला का केन्द्र रहा है। सदियों से वहाँ के कारीगर आर्थिक अभावों के बावजूद कला-साधना-रत रहे हैं। पेपरमार्शी, काष्ठशिल्प, ऊन और सिल्क फुलकारी, बेंत का काम, सोने और चाँदी पर उत्कीर्णन, पात्रों पर चित्रांकन आदि कला-कौशलों के कारण वे दूर-दूर तक अपना स्थान बना चुके हैं। कलाप्रिय मुग़ल बादशाहों के शासन-काल में काश्मीरी शिल्प और दस्तकारियों की बेहद उन्नति हुई। ईरान और फ़ारस की कला का भी यहाँ प्रभाव पड़ा, कलाकारों का आदान-प्रदान होता रहता, वहाँ के बहुत से कारीगर इधर आकर बस गए जिनके वंशज पीढ़ी-दर-पीढ़ी अपने पैतृक व्यवसाय को आगे बढ़ाते रहे।

मौजूदा युग में काश्मीरी कला पहले जैसी श्रमसाध्य सूक्ष्मता लिये नहीं है, किन्तु इसमें सन्देह नहीं कि उसमें वैविध्य है, तरह-तरह के तौर-तरीकों का आविष्कार हुआ है और इस कलात्मक बाहुल्य में भी उनका प्रकृति-प्रेम और कुदरत के कौतुकों के प्रति रुझान बढ़ा है, घटा नहीं। हिमगिरि के पदतल में काश्मीर की उपत्यका के चहुँ ओर हिमकिरीट धारण किये पर्वत मालाएँ और फलफूलों से लदे वृक्ष तथा हरियाली का अपार वैभव, साथ ही सैकड़ों जल-स्रोत, निर्झर, नदी-नाले और प्राकृतिक सौंदर्य में मानों उनकी उद्भावना समाहित है और वही मानो उनकी समूची आस्था का केन्द्रबिन्दु है। आन्तरिक चेतना की अनुभूति में प्रकृति के सम्पर्क से जो अभिव्यक्ति का माध्यम उन्हें सूझ पड़ा उसे उन्होंने सहज ढंग से सामने रखा। अनुभव के स्तर पर पहले की प्रणालियों में बेहद अन्तर है, किन्तु कल्पना की क्रीड़ा या निरा व्यावसायिक दृष्टिकोण ही उनका नहीं है। उनके अंतर में अहर्निश प्रकृति-प्रेम उमग रहा है, प्रकृति के मंगलमय सौंदर्य-वैभव में उन्होंने अपने सरल विश्वास की मूक परिभाषा खोजी है और प्रकृति की अलौकिक दृश्य-योजना में आत्मानन्द की झलक तथा प्राणों को झकझोरता मुक्त उल्लास जगा है।

त्रिलोक कौल

नव्य कलाकारों में अपना स्थान बना चुके हैं। बड़ौदा एम० एस० यूनीवर्सिटी से इन्होंने फाइन आर्ट्‌स में डिप्लोमा लिया। प्रारम्भ में ही कला के इतिहास और साहित्य में रुचि होने के कारण ये कला की सूक्ष्मताओं में पैठ

सके। गणित और विज्ञान में इनकी प्राथमिक शिक्षा हुई थी, अतएव कला के प्रति इनका रुझान उतना भावात्मक नहीं जितना कि बौद्धिक है, खासकर काश्मीरी सुषमा और गुजरात की लोक संस्कृति ने इनकी चेतना को प्रखर और परिष्कृत बनाया है।

पहले डायरेक्टरेट आफ काउंटर प्रोपैगेण्डा में ये दृष्टान्त चित्रकार और सज्जाकार के बतौर कार्य करते रहे। विषय-वैविध्य, उन्मुक्त प्रणाली और इनका काम करने का ढग भी बड़ा ही सहज और सादा था। किन्हीं भी वाद-विवादों से परे, हालाँकि पैर जमाने के लिए इन्हें उन दिनों घोर संघर्ष करना पड़ रहा था, किन्तु १९३९ में काश्मीर की गंभीर राजनीतिक उथल पुथल के दौरान इनमें विशेष अभिरुचि जगी और ये प्राणपण से कला की साधना में जुट गए। इनके दृष्टिकोण भी किसी खास प्रकार की पद्धति या तौर-तरीकों की क़ैद को तोड़ चुके थे। प्रगतिशील कलाकार संघ की ओर से काश्मीर में श्रीनगर, जम्मू, लखनऊ, नई दिल्ली, बम्बई तथा अन्यान्य स्थानों में आयोजित प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुके है। १९५६ मे आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी और १९५७ मे बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा ये पुरस्कृत हुए। उसी वर्ष इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स द्वारा इन्हें रजत पदक प्रदान किया गया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, पूर्वी यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी, बड़ौदा आर्टिस्ट ग्रुप प्रदर्शनी तथा समय-समय पर आयोजित देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहते हैं। बम्बई, बड़ौदा, श्रीनगर, नई दिल्ली आदि में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी भी की है। काश्मीर के प्रगतिशील कलाकार संघ के प्रमुख संस्थापक और बड़ौदा ग्रुप आफ आर्टिस्ट के ये संस्थापक सदस्य हैं। आज-कल श्रीनगर में डिज़ाइन केन्द्र के डायरेक्टर है।

गुलाम रसूल संतोष

मुख्यतः ग्राफिक कलाकार हैं। इनकी भी शिक्षा बड़ौदा एम० एस० यूनीवर्सिटी में हुई। जयपुर में रहकर इन्होंने म्यूरल पेंटिंग और फ्रेस्को टेकनीक का गंभीर अध्ययन किया। भारत सरकार की ओर से एडवांस स्टडी के लिए इन्हें छात्रवृत्ति प्रदान की गई।

रसूल का प्रकृति-चित्रण बड़ा ही रंजक है। स्वतः प्रेरणा वश इन्होंने उन्मुक्त प्रयोग किये हैं, खासकर ग्राफिक में इन्हें विशेष दक्षता हासिल है। १९५५,५६,५७ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें लगातार पुरस्कार प्राप्त होते

रहे हैं। पूर्वी यूरोप में ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी, टोकियो की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और यू० एम० ए० की म्यूज़ियम आफ माडर्न आर्ट में इनकी कृतियों को सम्मान पूर्वक स्थान मिला है। काश्मीर में दो बार इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की है। अनेक देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। दर असल, परिस्थितियों के विरोधाभासों में भी इनका दृष्टिकोण बड़ा ही विशद रहा है। जब विरोधाभासों को आत्मसात् करने की प्रवृत्ति जगती है तो आत्मा सचमुच अपने तई बहुत कुछ समेट लेती है अर्थात् उस धरातल पर पहुँचकर कलाकार युग की आवाज़ को पहचानता है।

ये प्रगतिशील दृष्टिकोणों के साथ आगे बढ़ रहे हैं, किन्तु ये उस माने में प्रगतिशील नहीं हैं कि आधुनिक विरूपता के भौंडेपन को भी पसंद करते हों। काश्मीर के लोकप्रिय कलाकार के रूप में ये वर्षों से उन्मुक्त साधना में प्रवृत्त है अर्थात् किन्हीं रूढ़ औपचारिकताओं से परे, कला के नाम ज़बर्दस्ती थोपी गई विडम्बनाओं से दूर। काश्मीर के प्रगतिशील कलाकार संघ के ये सदस्य हैं। बड़ौदा ग्रुप आफ आर्टिस्ट की स्थापना और निर्माण में इन्होंने योगदान दिया। ललित कला अकादेमी में काश्मीर के सदस्य के बतौर इन्हें मनोनीत किया गया। काश्मीर राज्य के अन्तर्गत होने वाले कला-आयोजनों और सांस्कृतिक कार्यक्रमों में भी ये बेहद अभिरुचि रखते है। बड़ौदा ग्रुप आफ आर्टिस्ट के संस्थापक सदस्यों में से हैं और इनकी प्रेरणा से अनेक कलाकार सामने आए हैं।

दीनानाथ बाली

काश्मीर के सुप्रसिद्ध दृश्य चित्रकार दीनानाथ बाली में कला प्रवृत्ति जन्मजात है। स्कूल की पढ़ाई के बंधन में इनकी कलाभिरुचियों को जब शह नहीं मिली तो एक दिन ये घर से भाग खड़े हुए। ए० एस० टी० इंस्टीटयूट से पेंटिंग और डेकोरेशन परीक्षा पास करने के पश्चात इनकी बड़ी इच्छा थी कि कलकत्ता स्कूल आफ आर्ट में दाखिल हो जायँ, किन्तु घर की संघर्षशील परिस्थितियों के कारण ये ऐसा न कर सके।

काश्मीर का एक मन्दिर

अपने परिवार, ख़ासकर माँ की सेवा की ख़ातिर इन्होंने अपने विद्यार्थी काल में ही

सीनरी पेंटर के रूप में सर्विस कर ली। बाद में मद्रास थियेटर लिमिटेड में भी तीन वर्ष तक काम किया। इस दौरान इन्हें भारतवर्ष का दौरा करने का अवसर मिला। यहाँ से काम छोड़ने के बाद ये कलकत्ता के इंडियन प्रेस लिमिटेड और दूसरी कम्पनियों से सम्बद्ध हो गए और कैलेण्डर डिज़ाइनर के रूप में काम करते रहे। शनैः-शनैः शहरी जीवन की अत्यधिक व्यवस्था से इनका मन उचट गया और ये श्रीनगर आ गए। तैलचित्र और स्केच काफ़ी संख्या में इनके पास थे। काश्मीर की औद्योगिक प्रदर्शनी में इनके सभी लैण्डस्केप बिक गए। इनके चित्र बड़े ही लोकप्रिय सिद्ध हुए। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से प्रशस्तिपत्र के साथ-साथ इन्हें पदक भी प्राप्त हुआ। १९४० में काश्मीर सरकार द्वारा स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। इससे बड़ी राहत मिली इस किशोर कलाकार के मन को। वह प्राणपण से लैण्डस्केप-निर्माण में जुट गया। विदेशी सैलानी आते और इनके स्केच बहुत पसंद करते और खरीद ले जाते।

उन दिनों इनके चित्रों पर अंग्रेजी परम्परागत शैली का विशेष प्रभाव था, किन्तु अकस्मात् उपद्रवियों के आक्रमण ने इनकी आँखें खोल दीं। विदेशियों का आना प्रायः रुक गया था। इन्हें सोचने-समझने का अवसर मिला और इन्होंने स्वयं प्रेरणा वश निजी शैलियों का विकास किया। तैलरंगों में चाकू के 'स्ट्रोक' से ये पेंटिंग तैयार करते हैं और जलरंगों में पारदर्शी 'वाश' पद्धति अधिकतर अख़्तियार की है। पहले 'स्ट्रोक' में ही ये सब कुछ आँक देते हैं, दुबारा चाकू नहीं छुआते, क्यों कि इससे रंगों की चमक मारी जाती है। सौन्दर्य चेतना का संतुलन स्थापित कर ये प्रकाश-छाया के व्यंजक सम्मिश्रित प्रभाव को उत्पन्न करने के हामी हैं। ये चाहते हैं कि जिस आनन्द की अनुभूति इन्हें स्वयं हुई वही दर्शक को भी होनी चाहिए। लैण्डस्केप के अलावा पोर्ट्रेट चित्रण भी इनकी 'हाबी' है। इन्होंने सैकडों छविचित्र अंकित किये हैं। बम्बई और दिल्ली में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ हुई हैं। इसके अतिरिक्त सम सामयिक आयोजनों एवं प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहते हैं।

ए० ए० रैबा

रैबा की कला-चेतना का विकास मिट्टी के खिलौनों से हुआ। रंग-बिरंगा मानवाकृतियों को ये घंटों निहारते रह जाते और उनकी बारीकियों पर इनका बाल औत्सुक्य सुस्थिर हो जाता। ये लगभग १९४६ से कला की गंभीर साधना में प्रवृत्त हैं। इनका प्रशिक्षण बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में हुआ।

अप्लाइड आर्टिस्ट और डेकोरेटर के रूप में इन्होंने काफी अभ्यास किया है। टेराकोटा, पच्चीकारी और ईंट व तार के संयोग से भित्ति चित्रकारी में ये विशेष दक्ष हैं। काष्ठ शिल्प में भी रुचि है और एकान्त परिश्रम एवं साधना द्वारा इन्होंने निजी मौलिक शैलियों का आविष्कार किया है।

रैबा की कला पर विदेशी धाराओं का प्रभाव है। फिर भी इनके चित्रण और आकृतियों की विशिष्ट भाव-भंगिमा इनकी अपनी है। देश-विदेश की समसामयिक महत्त्वपूर्ण प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। बाम्बे आर्ट सोसा-

तीन नारी भंगिमाएँ

इटी का स्वर्णपदक इन्हें मिल चुका है और न सिर्फ दिल्ली-बम्बई की कला-प्रदर्शनियों में, वरन् अन्तर्राष्ट्रीय प्रदर्शनियों में भी इनकी कलाकृतियाँ अपने विशेष ढर्रे और निर्माण-कौशल के कारण बहुप्रशंसित हुई है।

बंशीलाल परिमू

ये चित्रकार और मूर्त्तिकार दोनों है। किसी स्कूल-कालेज में नही बल्कि स्वतः इन्होने कला का अभ्यास किया है। इनकी कलाकृतियाँ काफ़ी लोकप्रिय हैं। काश्मीर की कतिपय कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। • १९५६

में अम्बाला में और १९५९ में कलकत्ता में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स कलाप्रदर्शनी तथा अन्यान्य प्रदर्शनियो में ये भाग लेते रहे हैं। श्रीनगर की काश्मीर आर्ट सोसाइटी के ये संस्थापक सदस्यों में से है।

'अलमस्त'

पेस्टल पेंटर 'अलमस्त' सचमुच अलमस्त और उन्मुक्त प्रवृत्ति के कलाकार है। काश्मीर के प्रकृति वैभव में झाँककर इन्होंने बड़े ही रंजक व अनूठे दृश्यचित्र प्रस्तुत किये है। पर्वतों की कतार, घाटियों की शोभा और इन घाटियों पर हरियाली के सुन्दर, गहन और सघन रूप से आच्छादित आवरण तथा विविध दृश्यावलियों ने इनके जिज्ञासु मन को शह दी। कला इनके प्राणों को झकझोरने वाली चिर सखी है, जिसमें खोकर ये मस्त हो जाते हैं?

'अलमस्त' किन्ही बाहरी लाग-लपेट में न पड़कर महज़ नैसर्गिक कलाभिरुचियों को प्रश्रय देते हैं। अपनी अनौपचारिक, निर्व्याज्य शैली के कारण ही इनका 'अलमस्त' नाम सार्थक हो सका है।

काश्मीरी कलाकार अपनी परम्परागत धारणाओं और रूढ़ मान्यताओं से परे बड़े ही सजग और हर देशी-विदेशी प्रणालियों के प्रति उन्मुख हैं। परिस्थितियाँ बदल रही है, उसके अनुसार ही नई पीढ़ी के फार्मूले भी बदल रहे हैं। **निसार हुसैन, पी० एन० काचरू, किशोरी कौल, एस० एन० भट्ट, सुरिन्दर भारद्वाज** (जम्मू)आदि कलाकार नये ढंगों को आगे बढ़ा रहे है। यूँ वे काश्मीरी सौन्दर्य और संस्कृति के प्रणेता हैं, किन्तु उन्होंने खुली आँखों से बाहरी कलाकसौटियों को परखा है। नये कलाकारों का एक बड़ा ग्रुप नितांत अधुनातम धाराओं से भी प्रभावित है, फिर भी काश्मीरी कलाकारों की यह ख़ासियत है कि वे अपने प्रकृति-प्रेम को नही झुठला सके है।

बिहार के कलाकार

भारतीय कला की समृद्धि में बिहार का अभूतपूर्व योग-दान रहा है। मगध की लोककलाएँ, नालन्दा की पाषाण प्रतिमाएँ, पाल कला-शैली और यहाँ के विभिन्न स्थानों में प्राप्त प्राचीन कला के प्रचुर अवशेष ऐसी मूल्यवान विरासत है जो ऐतिहासिक महत्त्व लिये है। मौर्य और गुप्त सम्राटों के संरक्षण में जो कला-कौशलों का विकास हुआ वह आध्यात्मिक कल्पना की सिद्धि और शाश्वत भावनाओं का मूर्त्तरूप है। देव-मूर्त्तियों, यक्ष-यक्षिणियों और बुद्ध-प्रतिमाओं में कलाकारों के चरम चिन्तन की झाँकी मिलती है।

मुग़ल शासन काल में भी बिहार कई शताब्दियों तक कला का प्रमुख केन्द्र बना रहा। पटना कलम का उन्हीं दिनों आविष्कार हुआ। इस शैली की कितनी ही खूबियाँ थीं—व्यक्ति चित्र, दृश्यचित्र, शासकीय वेषभूषा, उनके अंतरंग एवं बहिरंग जीवन की विविध झाँकियाँ जिन्हें उन्होंने बड़ी कलात्मक सूक्ष्मता से चित्रित किया। सम्राट् मुहम्मदशाह रंगीला बड़ा ही कला-प्रेमी था। उसके राज्य में कला काफ़ी फली-फूली। उस समय बड़े कुशल चित्रकार दरबार की शोभाभिवृद्धि कर रहे थे, किन्तु अचानक नादिरशाह के आक्रमण से कला के विकास को भयंकर आघात लगा। कलाकारों की टोली इधर-उधर बिखर गई। आजीविका की खोज में वे दूसरे प्रदेशों में जा बसे और यहाँ की कला की खूबसूरती और नफ़ासत जाती रही।

ब्रिटिश शासन काल में जब अंग्रेज बहुसंख्या में आ बसे तो उन्होंने यहाँ के कलाकारों द्वारा निर्मित चित्रों को पसंद किया। अक्सर वे अपनी कोठियों में टाँगने के लिए चित्र खरीदते अथवा उन्हें इंग्लैण्ड की चित्रशाला के लिए चुन लेते थे। यूँ तो वे अंग्रेजी ढंग के बनाये लैण्डस्केप, पोर्ट्रेट व पेंटिंग पसंद करते थे, पर देशी पद्धति पर बने दृश्यांकन एवं नज़ारों में भी उन्हें बेहद रुचि थी और अच्छी चीज़ों की पहचान। यहाँ तक कि पटना के मशहूर कमिश्नर टेलर ने समकालीन कलाकारों को प्रोत्साहन दिया, उनके द्वारा निर्मित चित्रों की खरीद की, उन्हें आदर व सम्मान दिया, गुणज्ञों की सराहना की, चित्र-निर्माण के साथ-साथ स्वयं कला-सर्जना में दिलचस्पी ली। इसके अतिरिक्त राजा-महाराजा, सेठ-

साहूकार, राज्याधिकारी एवं अभिजात्य वर्ग में कला का बतौर शौक़ प्रचलन था। उनके आश्रय में हर किस्म के चित्रों का निर्माण हुआ। टिकारी और बेतिया महाराज के राज्यकाल में अनेक धार्मिक पुस्तकों को चित्रांकित किया गया।

उन्नीसवी शती में पटना कलम के प्रवर्त्तकों में से सर्व प्रथम नाम **सेवकराम** का आता है। १७५०-६० के दौरान मुर्शिदाबाद से कलाकारों की जो एक टोली आ बसी थी ओर जिसने पटना कलम की नींव डाली थी उसी परम्परा के ये प्रमुख प्रणेता थे। इनके बनाये कतिपय चित्र आज भी उपलव्ध हैं। कागज़ पर काली स्याही से इकरंगे प्रभाव की मुखर गरिमा लिये हैं उनके चित्र जिन पर अंग्रेजी चित्रांकन का भी प्रभाव है। इनके बाद **हुलास लाल** नामक कलाकार ने भी काफ़ी ख्याति अर्जित की। इनके कृतित्व पर यूरोपीय प्रभाव था। लगभग अर्द्धशती तक फिरका चित्रों की भरमार रही जिनमें लोकरंजक दृश्यों, पर्वों और नज़ारों की अद्भुत छटा का दिग्दर्शन हुआ। **जयरामदास, झुमक लाल, फकीर चन्द लाल** आदि चित्रकारों ने इसी तरह के चित्र बनाये। तत्पश्चात् **शिव दयाल लाल** का नाम उल्लेखनीय हैं। इनमें शिव लाल आशु चित्रकार के रूप में मशहूर थे। कहते हैं—वे पटना से रोज पालकी में बैठकर बांकीपुर जाते और वहीं बैठकर घंटे भर में चित्र तैयार करके दे आते। उपलक्ष्य में उन्हें दो अशर्फियाँ मिलती। पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनके यहाँ कला चली आ रही थी। उनके पूर्वज नौहर लाल और मनोहर लाल दिल्ली में मुग़ल दरबार के चित्रकार थे। अकबर, जहाँगीर और शाहजहाँ के समय तक वे वहाँ रहे। उन्हीं दिनों मनोहर लाल को राय की उपाधि प्राप्त हुई। शिवलाल की यही पैतृक सम्पदा उनका मार्ग दर्शन करती रही। उनके समय फिरका चित्रों की जैसे बाढ़ सी आ गई। उनके कितने ही शागिर्द थे जो उनकी चित्र निर्माण शाला में कला का प्रशिक्षण लेते और बाद मे यही धंधा अपना लेते। उनकें शिष्य-प्रशिष्यों की परम्परा अर्से तक पटना कलम की वैविध्यपूर्ण खूबियों का विकास करती रही।

ईश्वरी प्रसाद वर्मा

मौजूदा युग में ईश्वरी प्रसाद वर्मा पटना कलम के अंतिम प्रतिनिधि माने जाते हैं। ये शिव लाल के दौहित्र थे। इन्होंने किसी स्कूल या कालेज में कला की शिक्षा प्राप्त नही की थी, बलिक परम्परागत प्रेरणा वश इनमें सहज रुचि विकसित हुई। शिव लाल की पुत्री स्वर्ण कुमारी, जो इनकी माँ थी और सोना

देई के नाम से प्रविख्यात थी, स्वयं एक कुशल चितेरी थी। माँ का सस्कार और नाना की अमिट छाप बालक पर पड़ी। इनके पिता मुंशी फकीर चन्द लाल पलटन मे ड्राइंग विभाग के सुपरवाइज़र थे। पर प्राय: उनकी बदली होती रहती, अत: नाना के तत्त्वावधान मे पले और उन्ही के चरणों में बैठकर चित्रकला का अभ्यास किया। उनकी मृत्यु के पश्चात् इन्होंने ननिहाल छोड़ दी और भारत के प्रमुख भागों का भ्रमण किया। आजीविका के लिए चूँकि कुछ धंधा करना चाहिए यह सोचकर इन्होंने मथुरा के राजा लक्ष्मण दास के यहाँ नौकरी कर ली। राजा साहब के यहाँ गुणग्राही व्यक्तियों की कमी न थी। एक बार लार्ड किचनर उनके यहाँ भोजन पर आमंत्रित किये गए, उनसे इनका परिचय भी कराया गया। इनकी कलाकृतियों को देखकर वे बेहद अभिभूत हुए। बाद में तो कितने ही वायसरायों ने इनके चित्रों की सराहना की और काम कराया।

पर्दानशीन

नित-नये प्रयोगों द्वारा ये तजुर्बे हासिल करते गए। कला की सूक्ष्मताओं में पैठने की जिज्ञासा इन्हें कलकत्ता ले गई। शुरू में इन्होंने निजी व्यवसाय किया। विदेशी कम्पनियों के लिए साड़ियों के पाट और उन पर भिन्न-भिन्न डिज़ाइन बनाया करते। कलकत्ता स्कूल आफ आर्ट में अवनीन्द्र नाथ ठाकुर से इनका सम्पर्क बढ़ता गया। इनकी मौलिक प्रतिभा और सधे हाथ की सफाई, साथ ही भारतीय ढंग का शुद्ध चित्रण देखकर वे दंग रह गए। उन्होंने इनका परिचय आर्ट स्कूल के तत्कालीन प्रिंसिपल हेवेल से कराया। गुणग्राही हेवेल ने इनकी प्रतिभा को भाँप लिया और अपने यहाँ नियुक्त कर लिया। यहाँ के कलामय वातावरण से संश्लिष्ट इनकी सृजन-सामर्थ्य का और भी अधिक विकास हुआ। जापानी चित्र टेकनीक का इन्होंने अध्ययन किया और जलरंगों

में रेशम पर चित्र बनाये। जापानी चित्रपट 'काकोमोनो' पर माउंट करके जो चित्र बनाये जाते थे उनमें भी इन्होंने दक्षता हासिल कर ली। हाथी दाँत, चमड़े तथा रासायनिक मसाले से पालिश करके सुनहरी चित्रांकन में इन्होंने काफी काम किया। 'भारत सरकार के वायसराय लार्ड हार्डिंज की प्रेरणा से हाथीदाँत पर इन्होंने उनका चित्र बनाया जिससे वे बेहद प्रसन्न हुए। लेडी हार्डिंज ने इनसे राग-रागिनियों, आसन मुद्राओं के चित्र बनवाये। बंगाल के गवर्नर की पत्नी लेडी लिटन के ये कला गुरु थे। कलकत्ता के विक्टोरिया मेमोरियल की चित्रशाला की अध्यक्षा श्रीमती पर्सी ब्राउन को भी इन्होंने चित्रकला का प्रशिक्षण दिया। इन दोनों कलाप्रेमी महिलाओं ने अपने गुरु को सम्मान दिया, साथ ही कला की दिशा में अग्रसर होने का अवसर।

इंग्लैण्ड में जार्ज पंचम के राज्याभिषेक के समय इनसे 'वेलम' पर सुनहरी प्रमाण पत्र बनवाया गया था जिस पर इन्हें साढ़े तीन हज़ार रुपये दिये गए। शिकागो की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में अष्ट धातु पर एक सुन्दर मैडल प्राप्त हुआ था। काशी के भारत धर्म महामंडल के संरक्षक नरेशों ने इन्हें 'चित्रकला विशारद' की उपाधि से विभूषित किया था। बर्दवान के नरेश भी इनका अत्यधिक सम्मान करते थे और अपने पास रखना चाहते थे, पर इनकी उन्मुक्त प्रवृत्ति कोई बन्धन स्वीकार न करती थी। सूर्यपुरा के महाराज से भी इनका प्रगाढ़ सम्बन्ध था।

इनके विशाल चित्रों का संग्रह कलकत्ता में है। चित्र-निर्माण में ये विदेशी रंगों का नहीं बल्कि स्वनिर्मित देशी रंगों का प्रयोग करते थे। जैसी इनकी मदमस्त और अल्हड़ प्रकृति थी, चित्रण का ढंग भी वैसा ही उन्मुक्त और अनौपचारिक था। कला का रसस्रोत इनकी सन्निधि में जैसे निर्बन्ध रूप से प्रवहमान हो उठता था।

इनके ज्येष्ठ पुत्र नारायण प्रसाद वर्मा भी एक अच्छे कलाकार थे, पर उनकी जल्दी ही मृत्यु हो गई। दूसरे पुत्र रामेश्वर प्रसाद वर्मा भी कला के क्षेत्र में बड़े विख्यात् हुए। इंग्लैण्ड जाकर उन्होंने पाश्चात्य कला-शैलियों का अध्ययन किया, किन्तु वे भी असमय काल-कवलित हुए। तीसरे पुत्र महावीर प्रसाद वर्मा ने लैक़र पेंटिंग सीखी और कलकत्ता के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट में काम किया। पुत्री श्यामादेवी भी चित्रण में रुचि रखती थीं।

यों इनके समूचे परिवार ने कला को अमूल्य अवदान दिया। ईश्वरी प्रसाद वर्मा·पटना कलम के जीवंत प्रतीक के रूप में काफ़ी कुछ देकर इस संसार

से विदा हुए। आध्यात्मिक और दार्शनिक चिन्तन के आधुनिकीकरण का प्रयास, जो उन्होंने विदेशी पद्धतियों के संयोग से किया था, इनकी विशिष्ट उपलब्धि है जिसमें मौजूदा कला के अंकुर प्रस्फुटित हुए। इनकी टक्कर का कोई व्यक्तित्व तो आज बिहार में नहीं है, फिर भी अनेक नये-पुराने कलाकार अपने-अपने ढंग से कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं।

राधा मोहन

ये भी पुराने खेवे के कलाकारों में से हैं। कला की प्रेरणा इन्हें अपनी बहन से मिली। होली-दीवाली जैसे लोकपर्वों पर वह इनसे चित्रांकन कराती। भाई की सधी उँगलियों की करामात देखकर वह बेहद खुश होती और इन्हें अधिकाधिक इस ओर प्रवृत्त होने का प्रोत्साहन देती। परम्परावादी कलाकार महादेवलाल से लगभग १३-१४ वर्षों तक ये पटना कलम की बारीकियाँ सीखते रहे। एक ओर इस विशिष्ट शैली का अभ्यास किया, तो दूसरी ओर कालेज की पढ़ाई भी साथ-ही-साथ चलती रही। वकालत पास की, पर उसमें इनका मन न लगा। पटना बिश्वविद्यालय से इन्होंने कला में ग्रेजुएट डिग्री ली।

इनकी खूबी है कि इन्होंने पटना में गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स की स्थापना की है जिसने कला की दिशा में न जाने कितनों को प्रेरित किया। ये ही प्रारम्भ से उसके प्रिंसिपल भी थे। १९५६ में शिल्प कला परिषद के वार्षिक समारोह में इन्हें स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। पटना में इन्होंने कतिपय भारतीय और विदेशी कला-प्रदर्शनियों का आयोजन किया। लेक्चर टूर किये और कला पर समीक्षात्मक लेख लिखे। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की प्रादेशिक समिति के सदस्य, शिल्प कला परिषद के सेक्रेटरी और पटना म्यूजियम के प्रेरक हैं। ललित कला अकादेमी की सामान्य परिषद के सदस्य हैं और अनेक स्थानीय कला एवं सांस्कृतिक संस्थाओं से सम्बद्ध रहे हैं।

राधामोहन ने न सिर्फ़ कला क्षेत्र में अमूल्य अवदान दिया, अपितु अनेक कला-शैलियों की सर्जना की। जिज्ञासु विद्यार्थियों को कला की दिशा में प्रेरित किया और नूतन-पुरातन पद्धतियों में सामंजस्य स्थापित किया।

दिनेश बख्शी

पटना के वयोवृद्ध कलाकार हैं जो लगभग २५-३०वर्षों से भी अधिक व्यावसायिक रूप मे कला-साधना में प्रवृत्त हैं। ये ख़ासतौर से तैलरंगों में पोर्ट्रेट और जलरंगों में आकृति-निर्माण की विशेष दक्षता रखते हैं। इन्होंने बिहार की ऐतिहासिक झाँकी अपने चित्रों द्वारा सामने रखी। रामगढ़ में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर इन्होंने चित्रण का दायित्व सम्भाला और बड़ा सुन्दर काम किया।

बिहार की अनेक संस्थाओं से ये सम्बद्ध हैं, कला-आयोजनों में भाग लेते रहते हैं और पटना की शिल्प कला-परिषद के संस्थापक सदस्य हैं। इन्होंने बम्बई में रहकर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा पाई, अतः इनकी कला ने विभिन्न प्रभावों को आत्मसात् किया। ये देशी-विदेशी प्रदर्शनियों मे भाग लेते रहते है।

दामोदर प्रसाद अम्बष्ठ

इन्होंने मद्रास से पेंटिंग व मूर्त्ति-कला में डिप्लोमा लिया। इन्हीं विषयों में आगे अध्ययन के लिए ये लगभग १९३६ से कला की साधना में प्रवृत्त हैं। इनकी कला-सर्जना पर देशी-विदेशी प्रणालियों का प्रभाव है। दक्षिण भारत के चित्रण शिल्प की बारीकियों में पैठकर इन्होंने अपने मूर्त्ति-निर्माण की कला को विशद बनाया है। ये आजकल सरकारी सर्विस में बंगलौर में काम कर रहे हैं।

उपेन्द्र महारथी

वयोवृद्ध कलाकारों में इनका भी प्रमुख-स्थान है। वर्षो से कला-क्षेत्र में काम कर रहे हैं, खासकर पोर्ट्रेट और दृश्य-चित्रण में अपना सानी नहीं रखते। बुद्ध चित्रावली, गाँधी, जवाहर, राजेन्द्र बाबू आदि बड़े-बड़े व्यक्तित्वों को इन्होंने हूबहू अपनी छवियों में उतार दिया है। इनकी सधी रेखाएँ और रंगों का अनुरूप सामंजस्य कमाल का होता है। जलरंगों और तैलरंगों में समान पैठ है। ये भारतीय संस्कृति के पोषक हैं, उदात्त विचार धारा और आस्थावान जिज्ञासा ही इनकी प्रमुख प्रेरणा रही है। यही प्राणवंत चेतना इनकी कला-साधना में साकार हुई। एक मौन कला साधक के रूप में प्रचार-प्रसार से दूर अपनी सहज धारणाओं और एकनिष्ठ उद्देश्यों को कला में एकीभूत करने के ये हामी हैं। आजकल पटना में इंडस्ट्रियल डिज़ाइन्स के डिपुटी डायरेक्टर हैं।

सुरेन्द्र पांडेय

पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के मौजूदा प्रिंसिपल सुरेन्द्र पांडेय ने शांतिनिकेतन में कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया है। बंगाल स्कूल की परम्पराओं और शांतिनिकेतन की बहुमुखी कला-धाराओं का गंभीर अध्ययन है। ये न सिर्फ़ कला-सर्जना में रुचि रखते हैं, प्रत्युत् कला के अभ्युत्थान में भी बेहद दिलचस्पी है। पटना के उक्त आर्ट स्कूल की, जिसमें कि ये काम कर रहे हैं, संस्थापना में इन्होंने योगदान किया और हर तरह से समसामयिक कलाधाराओं को एकोन्मुख करने में प्रोत्साहन दिया। आधुनिक प्रणालियों के दिशाहीन प्रवेग मे, जो नौसिखियों को गुमराह करने का माध्यम बनी हुई है, उनकी रुचियों को अपने ढंग से परिष्कृत एवं प्रसरणशील करने का इन्होंने गंभीर और सराहनीय प्रयास किया है।

बटेश्वरनाथ श्रीवास्तव

मुख्यत: चित्रकार और ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। लगभग पच्चीस वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। लखनऊ के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट से इन्होंनें फाइन आर्ट में डिप्लोमा लिया, तत्पश्चात् बिहार सरकार की छात्रवृत्ति पर दो वर्ष तक फ्लोरेंस की फाइन आर्ट एकेडेमी में अध्ययन करते रहे। १९४४ में पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से सम्बद्ध हो गए।

इनके कृतित्व पर विदेशी कला-प्रणालियों का भी प्रभाव है, किन्तु इससे इनकी कार्यपद्धति सुस्थिर और कलारूपों में परिपक्वता आई है। इन्होंने कितनी ही देशी-विदेशी कला-प्रदर्शनियों में भाग लिया है और १९५२ में शिल्प कला-परिषद की और से आयोजित वार्षिक कला प्रदर्शनी में उत्कृष्ट प्राच्य कलाकृति पर इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। इटली की कला प्रदर्शनी में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया और इन्हें आल इंडिया फाइन आर्ट्स सोसाइटी का स्वर्ण पदक मिला। १९४७ में फ्लोरेंस की कला प्रदर्शनी में भी इन्होंने हिस्सा लिया। ये पटना की शिल्प कला परिषद के सदस्य हैं और गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के फाइन आर्ट डिपार्टमेंट के प्राध्यापक हैं।

सत्यनारायण मुखर्जी

कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स से इन्होंने फाइन आर्ट में डिप्लोमा लिया। व्यावसायिक कलाकार के बतौर वर्षों से ये कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं, ख़ासकर ग्राफिक और मृण्मूर्ति कला में दक्षता प्राप्त हैं। न केवल कलासर्जना वरन् कला की प्रगति एवं उत्थान में इन्होंने विशेष दिलचस्पी ली। इन्होंने अनेक बार बच्चों की कला-प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं। शिल्प कला

परिषद और आर्ट एंड आर्टिस्ट्स के संस्थापक सदस्य हैं। १९४६ में शिल्प कला परिषद द्वारा पटना में आयोजित अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्हें गवर्नर का स्वर्णपदक प्राप्त हुआ। भारत और भारतेतर कला-प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। बिहार की स्टेट आर्ट गैलरी और अन्य कतिपय संग्रहों में इनके चित्रों को स्थान मिला है। आजकल पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स में कार्य कर रहे हैं।

यदुनाथ बनर्जी

पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स के मूर्तिकला विभाग के अध्यक्ष यदुनाथ बनर्जी बिहार के जाने-माने मूर्तिकार है जो १९३६ से इस दिशा में प्रवृत्त हैं। बिहार प्राचीन काल से मूर्तिशिल्प का केन्द्र रहा है। काल प्रवाह में भिन्न-भिन्न शिल्प-शैलियों का उदय हुआ। साधक ने मानस चक्षुओं से जो ग्रहण किया उन्हें ही हथौड़े और छेनी से साकार कर दिखाया, यह अवश्य है कि समयानुरूप इनकी अपनी लाक्षणिकताएँ हैं।

इन्होंने सार्वजनिक संस्थाओं के लिए आदमक़द प्रतिमाओं का निर्माण किया। पटना की म्युनिसिपल कारपोरेशन ने इन्हें काम सौपा और इन्होंने उसे बखूबी निबाहा। शिल्प कला परिषद द्वारा आयोजित वार्षिक कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं और पुरस्कृत भी हो चुके हैं।

सत्येन्द्र नाथ चटर्जी

ये भी मुख्यतः मूर्तिकार हैं, किन्तु पेंटिंग में भी इन्हें बेहद अभिरुचि रही है। पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने डिप्लोमा लिया। १९५२ और १९५६ में पटना में आयोजित अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्हें पदक प्राप्त हुआ। १९५४ में पटना में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट तथा अन्य कतिपय प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं।

दुर्गादास चटर्जी

प्रकृति-चित्रण और पशु-पक्षियों के सुप्रसिद्ध चितेरे दुर्गादास चटर्जी बहु-मुखी प्रवृत्तियों के कलाकार हैं। बचपन से ही मूर्ति-निर्माण भी इनकी 'हाबी' रही है। लोकरंजक शैली में भी चित्र बनाये हैं। ये परम्परावादी हैं, किन्तु नये मौलिक प्रयोगों में प्रतिभा के उपयोग पर इन्होंने सदा बल दिया है। बुद्धि

की परख के लिए नित-नई कसौटियों पर इन्होंने अपनी सृजन-क्षमता को कसा है और यूँ सर्वथा पृथक् तौर-तरीके अपनाये हैं।

इन्हें चित्रण का शौक जन्मजात है। बचपन से ही प्राकृतिक परिवेश में किसी चिड़िया व परिन्दे को देखकर इनकी आत्मा फुदक उठती, किसी उड़ते पंछी के पंखों पर बैठकर विचरने की इच्छा होती। कला का धन्धा चूँकि निरापद न था, अतएव परिवार ने विरोध किया, मार्ग में व्यवधान पैदा किये, किन्तु उनके मन की लगन बढ़ती गई। पटना छोड़कर ये दिल्ली अवनि सेन के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। मनोवैज्ञानिक सूक्ष्मताओं व शारीरिक अवयवों को बारीकी से चित्रांकित करने में ये निष्णात हैं। चीनी कला की चित्रांकन पद्धति का भी असर इन पर है और यही कारण है कि इनके चित्रों को इस सम्मिश्रित प्रभाव ने व्यंजक मुखरता प्रदान की है।

इन्होंने सैकड़ों पशु-पक्षियों के चित्र बनाये हैं। शुरू में लैण्डस्केप व दृश्य चित्रणों में इन्होंने बेहद रुचि ली। बहुतायत में चित्र आँके, फिर भी इनकी प्रमुख प्रवृत्ति पशु-पक्षियों के चित्रण में ही है। 'तूफान के साये में', 'चिन्ताओं के परे, 'कमलदल की शैया पर विश्राम', 'जल पर थिरकती चिड़ियाएँ' आदि चित्रणों में उन्होंने पशु-पक्षियां की निर्विकार, अलिप्त और ससार से विलग दार्शनिक मुद्राओं का दिग्दर्शन कराया है। जैसे पक्षी निर्द्वन्द्व है, चिन्तारहित, इस भौतिक संसार को तज कर वायवी जगत में बेरोकटोक विचरता है, वैसे ही कलाकार को भी निर्मोही और निश्चिन्त होना चाहिए। उसके मन में चाहे शैली कोई भी हो, आवश्यकता इस बात की है कि वह सब कुछ पचाकर एक नये रस को संचरित कर दे।

दुर्गादास ने कला की साधना में ही अपने जीवन को लगा दिया है। कला की खोज में ये इतस्ततः भटकते रहे हैं, अपने विषयों और कला-प्रसंगों को विशाल धरती और विस्तीर्ण गगन के साये में इन्होने खोजा है, दर-दर की ठोकरें खाई हैं और कड़े संघर्ष, बेहद कशमकश के साथ जीवन-साधना के पथ पर अग्रसर हुए हैं।

अवधेश कुमार सिन्हा

मुख्यतः पेंटर और ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। लगभग २०-२५ वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी, मद्रास की साउथ इंडियन पेंटर्स

सोसाइटी, पटना की शिल्प-कला परिषद और कतिपय समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है और पुरस्कृत हुए हैं। १९५४ रजत पदक और १९५६ में इन्हें स्वर्ण-पदक उपलब्ध हुए तथा १९५५ से लगातार गणतन्त्र दिवस के उपलक्ष्य मे बिहार राज्य की ओर से हर वर्ष ये नई दिल्ली के लिए झाँकी का आयोजन करते रहे हैं जो बड़ी ही सफल बन पड़ी हैं।

ये न सिर्फ़ कलाकृतियों की सर्जना में दिलचस्पी रखते हैं, वरन् हर प्रकार से कला के अभ्युत्थान के लिए चेष्टाशील हैं। कला अपने तईं समेटकर रखने की चीज नहीं, वरन् उसका उन्मुक्त वितरण होना चाहिए—जन-जन में, अमीर-गरीब, छोटे-बड़े का भेद भुलाकर, तभी सार्वजनिक रूप में कला का प्रचलन हो सकता है। आजकल पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में फाइन आर्ट्स विभाग के ये प्राध्यापक हैं।

वीरेश्वर भट्टाचार्य

ये भी १९५९ से पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में अध्यापक के बतौर काम कर रहे हैं। पहले जलरंगों में इनकी गहरी अभिरुचि थी, शनैः-शनैः अनेक माध्यमों में इनकी प्रतिभा का प्रस्फुटन हुआ। ड्राइंग, स्केच और अनेक छविचित्र बनाने का इन्हें शौक़ है। आधुनिक चित्रशैलियों का भी इन पर प्रभाव है और इन्होंने उनके संदर्भ में अनेकानेक प्रयोग किये हैं।

शीर्षहीन

अक्तूबर, १९६५ और जनवरी, १९६६ में दिल्ली की श्रीधरानी गैलरी और फरवरी, १९६७ में आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के हाल में इन्होंने अपनी कला-प्रदर्शनियों का आयोजन किया। उसी वर्ष कलकत्ता के आर्टिस्ट्री हाउस में इन्होंनें प्रदर्शन का आयोजन किया। अप्रैल,

१९६७ में पटना में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की और शिल्प-कला परिषद द्वारा पटना में आयोजित अखिल भारतीय कला प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार व स्वर्णपदक प्राप्त हुए।

बाँसुरी वादन

अमृतसर की आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी, अखिल केरल साहित्य परिषद प्रदर्शनी और अन्य कतिपय प्रदर्शनियों और आयोजनों में ये भाग लेते रहे हैं। बिहार स्टेट गैलरी और भारत और विदेशों के अनेक निजी संग्रहालयों में इनके चित्रों को स्थान मिला है।

भगवान स्वरूप भटनागर

ये लगभग १९३८ से कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स से पेंटिंग में डिप्लोमा लिया। इन्होंने १९५२ में नैनीताल में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी की, इसके अतिरिक्त अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में भी भाग लेते रहते हैं। य उत्तरप्रदेश कलाकार संघ के सदस्य हैं, किन्तु अर्से से राजकीय सेवा में हैं और राजभवन से सम्बद्ध राज्यपाल के सचिव के बतौर काम करते रहे हैं।

महादेव नारायण

समस्तीपुर के सुप्रसिद्ध कलाकार महादेव नारायण जिज्ञासु अन्वेषी हैं जो वर्षों से इस दिशा में कार्य कर रहे हैं। कला की ओर झुकाव इनका बचपन से था, कारण—राष्ट्रवादी विचार धारा के परिवार में इनका जन्म हुआ। कलात्मक एवं सांस्कृतिक अभिरुचि के परिवेश में इनका पालन-पोषण हुआ। इनकी प्राथमिक शिक्षा समस्तीपुर में हुई। रुड़की और भावनगर में भी ये पढे, किन्तु अन्ततः बड़े भाई की प्रेरणा पर शांतिनिकेतन में इनके कलापिपासु मन को धैर्य एवं शांति मिली।

महादेव नारायण बंगाल शैली से प्रभावित हैं। बड़-बड़ कलागुरुओं की छत्र-

च्छाया में इन्होंने उसको बारीकियों और विशेषताओं को पहचाना है, वैसी ही प्रकाश-छाया, रेखांकन एवं रंग-नियोजन तथा गरिमामय वातावरण, किन्तु फिर भी इनके मत में बंगाल शैली शुरू में जब कि प्रगतिशील और उदात्त थी, साथ ही चीन-जापान, प्राच्य-पाश्चात्य तथा नूतन-पुरातन की समन्वयशील सक्षमता को लेकर आगे आई थी तो भारत का सच्चा प्रतिनिधित्व कर रही थी, पर ज्यों-ज्यों उसमें आगे चलकर एकस्वरता आती गई, अन्धानुकरण की प्रवृत्ति बढ़ी और वह रूढ़ एवं अतिवादी बनती गई जिससे लक्ष्यभ्रष्ट हो गई तो इसी कारण उसकी लोकप्रियता कम हो गई। कला की निर्बाध प्रगति में किसी भी वाद या नियम की जकड़बदी अवांछनीय है, गतिरोध पैदा करती है, अतएव कला की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति ही आगे बढ़ने का मार्ग है।

'स्मृति', 'जीवन संध्या', 'विषपान' और विद्यापति की एक पंक्ति पर आधारित 'भरा बादर माह भादर शून्य मंदिर मोर' आदि इनके कतिपय चित्रों में रंग-रेखाओं का सम्यक् संतुलन द्रष्टव्य है। ये अधिक चटक रंगों को पसंद नहीं करते, बल्कि धूमिल रंग इनके मन की गहराई और स्वभाव की सहज गंभीरता से अधिक संश्लिष्ट जान पड़ते है। आर्थिक कठिनाइयों से जूझते हुए इन्होंने अनेक अवसरों पर अपने स्वाभिमान को जागरूक रखा है और नित-नये प्रयोगों में हर स्थान पर अनुपात के महत्त्व को हृदयंगम किया है। सिल्क पर भी इन्होंने चित्रों का निर्माण किया है। संघर्षों के बावजूद इनकी कला-साधना स्वान्तः सुखाय है। बिहार के रोसड़ा नामक कस्बे में इनका निवास है और बाहरी हलचलों से दूर वे अपने स्टूडिओ में साधना-रत रहते हैं।

राजनीति सिह

शांतिनिकेतन में मास्टर मोशाय के प्रिय छात्र रहे हैं। वहाँ रहकर वहुविध शैलियों का अभ्यास इन्होंने किया। प्रायः हर माध्यम और पद्धति —जलरंग, तैलरंग, वाश, काठखुदाई, काली स्याही और ब्रुश के विशिष्ट प्रयोगों द्वारा इन्होंने प्रचुर चित्र-सृजन किया है। 'संथाल परिवार,' 'पानिहारिन', 'झाड़ू वाली', 'हुक्का लिए औरत', 'वृक्षों में कुटिया', 'तरु तले', जैसे चित्रों में इन्होंने सामान्य जन जीवन को दर्शाया है। उनके रंग-नियोजन और द्रुत अंकन टेकनीक में चीनी प्रभाव द्रष्टव्य है। आधुनिक कला से ये प्रभावित हैं, पर नये के नाम पर किसी भी भोंडी शैली या पैटर्न के चक्कर में ये नहीं पड़ते।

श्रीनिवास

ये भी बिहार के साधनाशील कलाकार है। इनके कतिपय चित्रों में सूक्ष्म भाव-व्यजना और आत्मदर्शिता है जो कलाकार की गहरी मनोवैज्ञानिक पैठ की दिग्दर्शक है। आत्मविज्ञापन और प्रचार से दूर ये काम करना अधिक पसद करते हैं। परम्परावादी और सांस्कृतिक निष्ठा के व्यक्ति है। रंग-रेखांकन मे महज समानुपात द्वारा इनके चित्रों में कहीं-कहीं गहरी निस्संगता किंवा दार्शनिकता उभर आई है।

श्याम शर्मा

मुख्यत: ग्राफिक कलाकार है और पटना स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में काम कर रहे हैं। मथुरा में जन्म हुआ। लखनऊ के गवर्नमेंट आर्ट्स कालेज से कमर्शियल आर्ट में डिप्लोमा लिया। अपने विद्यार्थी काल से ही इन्हें स्व-निर्मित कला-कृतियों पर अनेक पुरस्कार और अवार्ड मिले है। लखनऊ, हैदराबाद और पटना में इनकी व्यक्तिक ग्राफिक प्रदर्शनी हो चुकी है। १९६५-१९६६ में कलकत्ता में आल इंडिया फाइन आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित कलाप्रदर्शनी एव इन्हीं दो वर्षों के दौरान उत्तर प्रदेशीय ललित कला अकादेमी की स्टेट प्रदर्शनी में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है।

रणजीत कुमार

उदीयमान प्रतिभा के तरुण कलाकार है, जो पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के छात्र हैं और आजकल वहीं पर अध्यापन-कार्य भी कर रहे हैं। शिल्प कला परिषद द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनियों, अखिल भारतीय केरल साहित्य परिषद के आयोजनों तथा पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स द्वारा प्रति वर्ष आयोजित प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। नवोदित धाराओं के क़ायल है, पर प्राचीन परम्परा में निष्ठा है और वही इनका प्रेरक स्रोत है।

बिहार का कलाकार ग्रुप अभी बहुत तगड़ा नहीं है, फिर भी वहाँ के नये-पुराने कलाकार परम्परा का निर्वाह करते आ रहे हैं। पटना कलम की नफ़ासत लुप्त प्राय है, पर नये ढंग के माध्यम एवं तौर-तरीके अपनाये जा रहे हैं। युवक कलाकार न कुछ के समतुल्य है, पर युगान्तर के शंखनाद ने उनकी चेतना को उद्बुद्ध किया है। शिल्पकला परिषद जैसी संस्थाएँ बहुत कुछ काम कर रही है और निश्चय ही कुछ सच्चे साधक नई संभावनाएँ लकर सामने आए हैं।

उड़ीसा के कलाकार

अमर शिल्प का धाम उड़ीसा, जिसकी राजधानी भुवनेश्वर मंदिरों की नगरी है, लगता है—जैसे युग-युगान्तर की शाश्वत भावना और इतिहास ने इस महानुष्ठान को प्राणान्वित किया है। कहते हैं—किसी समय यहाँ सात हज़ार मंदिर थे। अब उनकी संख्या घटकर लगभग सात सौ रह गई है। लिंग-राज का सुप्रसिद्ध विशाल मन्दिर, राजा रानी मन्दिर, भगवती, पार्वती, मुक्तेश्वर, अनन्त वासुदेव और परशु रामेश्वर के मन्दिर स्थापत्य कला की पराकाष्ठा और शिल्प-सौष्ठव के चरम प्रतीक है। मंदिरों के प्राचीर, द्वार, प्रांगण, मंडप, गुम्बद, झरोखे और प्रकोष्ठ—सभी पर सूक्ष्म उत्कीर्णन, पच्चीकारी, रूपसज्जा तथा देवी-देवताओं की प्रतिमाओं में मानव-जीवन की चिर-चिरान्त आस्था की द्योतक असंख्य भावना-संकुल मुद्राएँ और आत्मविभोर करनेवाली शिल्प-संरचना बड़ी ही आश्चर्यकारी एवं अद्भुत है।

पुरी का सुप्रसिद्ध जगन्नाथ मन्दिर और पुरी के उत्तर-पूर्व कोण पर कोणार्क का सूर्य मन्दिर भी बड़े ही विशाल और बेजोड़ हैं जिन्हें विदेशी तक देखकर चकित रह जाते हैं।

प्राचीन संस्कृति के ये जीवंत प्रतीक आज भी उड़ीसा के कलाकारों को प्रेरणा प्रदान करते हैं। समय के साथ कला के पैमाने हालाँकि बदल चुके हैं, नये हाथों को नई चेतना का साथ देना ही पड़ता है, फिर भी कला की यह अमूल्य थाती उनके प्राणों का संगीत है, उनकी संवेदनाओं को उद्वेलित करती है और वे श्रद्धानत गहरी और गूढ़ अनुभूतियों को मुखर करने के हामी हैं।

श्रीधर महापात्र

सुप्रसिद्ध शिल्पकार श्रीधर महापात्र कुछ ऐसी ही उदात्त प्रेरणा की उपज हैं। इन्होंने न केवल प्राचीन शिल्प-वैभव को अपनी कृतियों में सँजोया है, अपितु नूतन-पुरातन के सामंजस्य द्वारा अछूता मौलिक प्रतिपादन किया है, नई-नई शैलियों का आविष्कार किया है, बल्कि इनके बारे में प्रसिद्ध है कि ये प्राचीन का शृंगार और अर्वाचीन का यथार्थ लेकर चले हैं। इन्होंने स्वयं

स्वीकार किया है—'मेरी कलात्मक अभिव्यक्ति ने अपनी पुरानी कला से बहुत कुछ सीखा है, बहुत कुछ ग्रहण किया है और इसी ज्ञानार्जन को लेकर अर्वाचीन कला मे कुछ नवीन संशोधन, रूप-विचार एवं भावधारा द्वारा अपना एक अलग कला-पथ खोज लिया है, जिसका अचिन्त्य रूप मेरे आत्मतोष के साथ-साथ मेरो आत्मप्रगति का प्रतीक भी है। इसी से मै अपनी सतत साधना में लीन हूँ। मेरी एकाकी मौन साधना अपने विकास और संतोष की राह खोजने में प्रयत्नशील है। मेरी कला का यह रूप मेरी भावना, विवेक, विचार, आदेश और सिद्धान्तों को लेकर ही निर्मित हुआ है। उसकी गहराई में एक निश्छल एव पवित्र विचार-विमर्श की गंभीरता है जो मुझसे पृथक् न होने के नाते मेरी कला से भी पृथक् नहीं हो सकी है।"

राधा-कृष्ण

महापात्र ऐसे ऐतिहासिक घराने में पैदा हुए जो पीढ़ी-दर-पीढ़ी मूर्त्तिशिल्प का व्यवसाय करता आ रहा था। हथौड़ी और छेनी की अनुगूँज मे ये बड़े हुए। अनगढ़, बेडौल पत्थरों में 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की प्रतिष्ठा और मानव आकृतियों का जीवंत सम्मोहक रूप इनके बाल मन में प्रारभ से ही पैठता चला गया। इन्होंने किसी स्कूल या विद्यालय में कला का प्रशिक्षण नहीं लिया, अपितु बचपन से ही इसी घरेलू पेशे में लग गए। बाद में इंडियन सोसाइटी आफ ओरियिंटल आर्ट में इन्होंने विधिवत् प्रशिक्षण लिया। तत्पश्चात् लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल असित कुमार हाल्दार ने इन्हें अपने यहाँ ससम्मान आमंत्रित किया।

पत्थर, लकड़ी, मिट्टी और धातु—सभी पर इन्होंने प्रयोग किये हैं। महीन नक्काशी और काष्ठ खुदाई में भी ये दक्ष हैं। 'उमा की तपस्या' 'राधा कृष्ण', 'शिव और सती', 'अर्द्धनारीश्वर', 'गंगा', 'कृष्ण का मुरलीवादन' जैसे मूर्त्तिशिल्प में इनकी आध्यात्मिक भावनाएँ मुखर हो उठी हैं। भारतीय मूर्त्तिकला का सूक्ष्म विधान, तत्त्वबोध, सौन्दर्यबोध, उपपत्ति. रचना-प्रक्रिया, प्रविधि और परिकल्पना—सभी में गहरे पैठकर इन्होंने अपने ढंग से उनका मौलिक स्वरूप प्रस्तुत किया है। प्राचीन परम्पराओं और सूक्ष्म जीवनतत्त्वों को ग्रहण कर इन्होंने बहुविध प्रयोग किये और देवशैली के साथ-साथ व्यवहृत शैली को भी अपनाया है। विषयानुरूप अभिव्यक्ति इनकी विशेषता रही है। जब, जैसा अवसर होता है अपनी भावना को उसी अनुरूप ये ढाल लेते हैं। 'नायिका', 'अभिसारिका', 'देवदासी' आदि प्रतिमाएँ वैसी ही भाव व्यंजक हैं।

ध्यानमग्ना उमा

समय की गति के साथ इनकी प्रतिभा विकासोन्मुख रही है। पुरानी परिपाटी को नई स्थापनाओं से संश्लिष्ट कर इन्होंने उड़ीसा की आधुनिक मूर्त्ति-निर्माण शैली को परिपुष्ट किया है। न केवल ये अपने प्रान्त तक ही सीमित रहे हैं, बल्कि आकृति, अवयव और शारीरिक भंगिमाओं की गढ़न प्रणाली में इन्होंने भारतीय कला के मूल सिद्धान्तों और मानमूल्यों को प्रश्रय दिया है।

अधिकतर विदेशी लोग इनकी मूर्त्तियों के प्रशंसक रहे हैं। अंग्रेजी, जर्मन आदि विदेशी कलापारखी इनकी मूर्त्तियों को खरीद कर ले गए हैं। कितनी ही इनकी प्रतिमाएँ देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में स्थान पा चुकी हैं। 'अभिसारिका' की मूर्त्ति लंदन के इंडिया हाउस में रखी हुई है।

महापात्र परम्परावादी होते हुए भी पुरानेपन के हिमायती नहीं है। इनके कलातत्त्व निरन्तर विकासशील हैं, कारण—जो तत्त्व उपादेय हैं, जीवनदायी हैं और 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' को प्रश्रय देते हैं उन्हीं को अपनाना चाहिए। इनकी खूबी है कि इन्होंने आज तक जो दिया है उसमें कोई वैषम्य या अभिव्यंजना की अतिवादिता नहीं है, बल्कि कलाकार की जो आत्मप्रेरक प्राणवत्ता है, उसी का दिग्दर्शन हमें इनके कृतित्व में मिलता है।

एस०सी० देबो

उड़ीसा के वयोवृद्ध कलाकारों में से हैं और लगभग तीन दशाब्दियों से कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। लंदन के हीयरबाई स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा हुई। मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में भी ये प्रशिक्षण लेते रहे। तत्पश्चात् नंदलाल बसु के तत्त्वावधान में कुछ अर्से तक काम किया। स्टडी टूर पर ये कुछ वर्षों तक यूरोप का दौरा करते रहे। यद्यपि इनका अधिकांश समय विदेशों में बीता, पर ये आध्यात्मिक विचारधारा के व्यक्ति हैं। उपनिषद, पुराण और दर्शन-ग्रंथों मे इनकी विशेष अभिरुचि है और इनके चित्रों के प्रसंग भी वैसे ही हैं।

इन्होंने उत्कल कला संघ की स्थापना की। कला-सृजन के अलावा कला के अभ्युत्थान में भी इनका महत्त्वपूर्ण योगदान है। १९४१ और १९४६ के दौरान इनके चित्रों की प्रदर्शनी बंगाल और उड़ीसा के अलावा इंगलैण्ड में भी हो चुकी है। समसामयिक प्रदर्शनियों एवं कला-आयोजनों में ये भाग लेते रहते हैं। आजकल उड़ीसा के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट के प्रिंसिपल हैं।

विप्रचरण मोहन्ती

मुख्यतः मूर्त्तिकार और चित्रकार हैं। कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट्स में इन्होंने डिप्लोमा लिया। उड़ीसा सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्होंने अनुसंधान कार्य किया और कला की बारीकियों में बैठने के लिए भ्रमण किया। १९४६ में एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त हुआ। १९५१ में कलकत्ता विश्वविद्यालय द्वारा आयोजित कला-प्रदर्शनी में स्वर्णपदक प्रदान किया गया और उड़ीसा फाइन आर्ट्स प्रदर्शनी में इन्हें नक़द पुरस्कार मिला। इन्होंने भारत की विभिन्न शिल्पकारी में दिलचस्पी ली है। कतिपय कला एवं शिल्प प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। कला-प्रगति की दिशा में इन्होंने बहुत कुछ किया है

और चित्रकारी एवं मूर्त्ति शिल्प में ये अभिनव प्रयोग करते रहे हैं।

शिल्पी रंजन गुप्ता

व्यवसायिक कलाकार के बतौर वर्षों से साधना करते आ रहे हैं। मद्रास के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। ये प्रगतिशील विचारधारा के हैं और आधुनिक कला-धाराओं का प्रभाव भी इनके कृतित्व पर है। मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, मद्रास प्रगतिशील कलाकार संघ प्रदर्शनी तथा अन्य स्थानीय प्रदर्शनियों के अलावा देशी-विदेशी समसामयिक प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहते हैं।

विपिन बिहारी चौधरी

इन्होंने अधिकतर विदेशों में शिक्षा पाई। प्रान्तीय सरकार की छात्रवृत्ति पर समूचे यूरोप और अमेरिका का दौरा किया। उत्कल कला भवन की स्थापना इन्होंने की और कला के अभ्युत्थान में योगदान किया। इनकी कला पर अनेक देशी-विदेशी धाराओं का प्रभाव है, किन्तु इन्होंने उसमें मौलिकता बरती है।

सिम्हाद्री महाराना

ये मूर्त्तिकार और चित्रकार दोनों हैं। १९४४ में कलकत्ता की अखिल भारतीय कला एवं उद्योग प्रदर्शनी में इन्होंने पुरस्कार प्राप्त किया। राजमूंदरी की अखिल भारतीय कला-प्रदर्शनी, १९५२ में कटक और भुवनेश्वर की फाइन आर्ट्स प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हो चुके है। जेपूर के महाराजा की प्रतिमा इन्होंने बनाई और उनके कृपाभाजन बने। इसके अतिरिक्त अन्य आदम क़द और धड़ मूर्त्तियों का भी निर्माण किया है। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं और कला को उन्नत एवं विकासशील बनाने में अभिरुचि रखते है। ये आजकल जेपूर एस० बी० स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल हैं।

गोपाल चन्द्र कानूनगो

ये लगभग पचीस-तीस वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। ये पटना विश्व विद्यालय के ग्रेजुएट हैं और वहीं से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। चित्रकला के अतिरिक्त इन्होंने अनेक प्रकार के शिल्प में भी प्रशिक्षण प्राप्त किया है। उड़ीसा के प्राचीन मूर्त्ति-शिल्प, ख़ासकर प्रस्तर-उत्कीर्णन और पच्चीकारी तथा वहाँ की कला की बारीकियों के व्यापक सर्वेक्षण के लिए इन्होंने

भ्रमण किया और भारत सरकार के स्कॉलरशिप पर इन्होंने बहुमुखी दिशाओं में अनुसंधान-कार्य किया है। न केवल ये कलाकार हैं, बरन् कला-आलोचक भी हैं और अनेक स्थानीय सुप्रसिद्ध पत्र-पत्रिकाओं में इनके लेख भी प्रकाशित होते रहते हैं। कला पर इनकी एक पुस्तक भी है जो उत्कल विश्व विद्यालय से प्रकाशित हुई है। इन्हें अनेक पुरस्कार एवं अवार्ड प्राप्त हुए हैं।

विभूति भूषण कानूनगो

चित्रकार और मूर्त्तिकार दोनों हैं। लगभग विगत पंद्रह-बीस वर्षों से कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने कमर्शियल आर्ट में डिप्लोमा लिया। कटक में इन्होंने स्वयं एक कला-विद्यालय की स्थापना की और यहीं अप्लाइड आर्टि-स्ट के बतौर सेवा कर रहे हैं। ये अनेक स्थानीय कला-प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं।

भगवान प्रसाद दास

ये व्यावसायिक कलाकार के बतौर अर्से से काम कर रहे हैं। इन्होंने कम-शियल आर्ट और डी०टी०सी० में डिप्लोमा लिया। कलकत्ता की औद्योगिक कला-प्रदर्शनी में और वार्षिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं। कला-सर्जना में रुचि तो है ही, कला के अभ्युत्थान में भी इनका अभूतपूर्व योगदान हैं। कलकत्ता उद्योगों की इन्स्टीट्यूट आफ आर्ट के सदस्य हैं और कटक में सांख्यिकीय और और अर्थशास्त्र ब्यूरो में आर्टिस्ट के पद पर कार्य कर रहे हैं।

नतिनदास

ये उड़ीसा के तरुण आधुनिकतावादी कलाकार हैं, जो किसी बंधन में बँधना नहीं चाहते, अपितु उन्मुक्त प्रणालियों में निष्ठावान हैं। कला इनकी दृष्टि में मनबहलाव या मनोरंजन की वस्तु नहीं, वरन अंतर्मुखी भावनाओं का माध्यम है अर्थात् मूर्त्त हो या अमूर्त्त, नूतन या पुरातन, कोई भी शैली या ढंग हो सर्जक को पूरी सचाई बरतनी चाहिए अपनी भावाभिव्यंजना के साथ।

रविनारायण नायक

मुख्यत: ग्राफिक कलाकार हैं। शांतिनिकेतन से इन्होंने फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में डिप्लोमा लिया। विभिन्न शिल्पकारी में भी ये निष्णात हैं। इन्होंने धार्मिक ग्रंथों, महाकाव्यों, इतिहास आदि की खोज कर अपनी कला में अछूते विषयों एवं प्रसंगों को लिया है। उड़ीसा सरकार की छात्रवृत्ति पर अनुसंधान-कार्य किया है। अनेक समसामायिक प्रदर्शनों एवं कला-आयोजनों में भाग लेते रहते हैं।

आसाम के कलाकार

प्रकृति की क्रोड, हरी-भरी वादियों और जहँ और पर्वत शृंखलाओं से घिरे आसाम प्रदेश में कला एवं शिल्प की कोई अविच्छिन्न परम्परा तो नहीं मिलती, पर कतिपय मंदिरों व देवालयों के रूप में स्थापत्य एवं मूर्तिकला के प्राचीन अवशेष प्राप्त हुए हैं। गोहाटी में सुप्रसिद्ध कामाख्या देवी का विशाल मंदिर, त्वांग और बौद्ध उपासनागृह, प्राचीरों पर चित्रांकन, पत्थरों एवं काष्ठ पर खुदी आदम क़दप्रतिमाएँ, भित्ति चित्रण और ताम्रपत्रों के आलेखनों द्वारा यहाँ की विशिष्ट कलाभिरुचियों का बोध होता है। ब्रह्मपुत्र की इस अद्भुत 'कामरूप' रंजन घाटी में प्रकृति का बिखरा उन्मुक्त वैभव, उच्च पर्वत श्रेणियाँ और उनके पदतल में कल्लोल करती नदियाँ, जल-प्रपात तथा छोटे-बड़े चट्टानों की सुन्दर संरचना के संयोग में यहाँ की पहाड़ी एवं जनजातियों में जो नैसर्गिक सौन्दर्य बोध है उसकी झाँकी यहाँ मिले शिलाखंडों, उत्कीर्णनों, सिक्कों, पात्रों, हड्डियों के अवशेष, औजारों व सौन्दर्य-प्रसाधनों में द्रष्टव्य है। नर मुंडों का शिकार करने वाली यहाँ की प्रमुख नागा जाति ने अपनी परम्पराओं, रीति-रिवाजों, निष्ठा व विश्वास के अनुरूप अपनी सृजन चेतना को दर्शाया है अर्थात् उनके द्वारा व्यवहृत वस्तुओं में उनकी विचित्र कलाकारिता का आभास मिलता है। आधुनिकता की लहर ने अब यहाँ भी उद्वेलन पैदा कर दिया है और कतिपय कलाकार इस दिशा में काम कर रहे हैं।

रवीन्द्रनाथ भट्टाचार्य

यद्यपि इनकी शिक्षा-दीक्षा कलकत्ता के गवर्नमेंट कालेज आफ़ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में हुई, पर मन-प्राणों में बसे अपने प्रदेश की सौन्दर्य श्री का ही उद्घाटन इन्होंने सदा किया है। १९४९ में कलकत्ता में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय कला सम्मेलन में आसाम के विभिन्न प्राकृतिक नजारों की झाँकी इन्होंने प्रस्तुत की। कला-विशेषज्ञ के बतौर राज्य सरकार में इन्होंने कला के विकास एवं उन्नयन में योगदान किया है। इन्हें विभिन्न कला आयोजनों के अवसर पर पुरस्कार एवं पदक भी प्राप्त हुए हैं। आजकल आसाम गवर्नमेंट के कालेज इंडस्ट्री डिपार्टमेंट में व्यावसायिक कला विशेषज्ञ के बतौर ये कार्य कर रहे हैं।

तरुण दुवाराह

इन्होंने भी आसाम गवर्नमेंट के आर्ट एडवाइजर के रूप में जोरहाट, शिलांग, गोहाटी, डिब्रूगढ़ आदि स्थानों में ग्रुप-शो एव प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं और स्वर्ण पदक से पुरस्कृत हुए है। आसाम सरकार की ओर से कलकत्ता में आयोजित अखिल भारतीय कला सम्मेलन मे इन्होंने भाग लिया और असमी कला की प्रवृत्तियों पर प्रकाश डाला। ये बाम्बे आर्ट सोसाइटी और अन्य कतिपय स्थानीय कला सस्थाओं से सम्बद्ध है।

कलकत्ता से फाइन आर्ट्स में इन्होंने डिप्लोमा लिया। व्यावसायिक पेंटर और मॉडलर के रूप में ये पहले निजी कार्य करते रहे। पूर्वी क्षेत्र में अप्लाइड आर्मी में भी इन्होने आर्टिस्ट की हैसियत से काम किया। डिब्रूगढ़ में आर्ट स्कूल के डायरेक्टर और आसाम की राज्य सरकार के कला विशेषज्ञ के रूप में इन्होंने अर्से तक सेवा की। ये बहुमुखी प्रतिभा के व्यक्ति हैं और प्राचीन अर्वाचीन धाराओं के सामंजस्यपूर्ण समाधान में सदैव सचेष्ट है।

आसाम मे कलाचेतना शनैः-शनैः जागरूक है और नये कलाकारों में आधुनिक धाराओं का प्रभाव भी द्रष्टव्य है। पर निश्चय ही वहाँ के चिन्तन-मनन में वहीं की आसन्न दृश्यावली, पर्वत-शिखरों की शोभा और वहाँ के अंचल में बिखरी अनूठी हरीतिमा की व्यापकता ने उनके औत्सुक्य को जगाया है, उनकी कल्पना मे नये-नये रग भरे हैं और उनकी सृजन शक्ति को प्रेरित किया है जो निश्चय ही प्रगति पथ पर उन्हें उत्तरोत्तर आगे बढ़ाने मे सहायक सिद्ध होगा।

दक्षिण के कलाकार

दक्षिणापत्य शिल्प एवं स्थापत्य की अपनी लाक्षणिक विशेषताएँ हैं जिनमें अविच्छिन्न भारतीय संस्कृति और अगणित धार्मिक परम्पराए निहित हैं। वहाँ की भव्य प्रस्तर एवं कांस्य मूर्त्तियों में भागवती सृष्टि की व्यापकता के दर्शन होते हैं। चिन्मय कालातीत चेतना की तदनुकृति ये प्रतिमाएँ—लगता है जैसे साधक शिल्पी ने अपने मानस चक्षुओं में अपने आराध्य की जिस छवि को आँका उसी को अपनी छेनी और हथौड़ी से मूर्त्ति में साकार कर दिया। मूर्त्तियों में जहाँ निस्सीम भाव का विधान है वहाँ मन्दिरों की निर्माण-प्रक्रिया मे भी बड़ी ही सूक्ष्मता बरती गई है। भिन्न-भिन्न कालों में अनेक शिल्प-शैलियों का उदय हुआ और समूचा दक्षिण, यहाँ तक कि वहाँ के छोटे-छोटे मन्दिरों मे भी प्रभूत शिल्प-वैभव बिखरा पड़ा है।

बेल्लूर का चेन्नाकेशव मन्दिर, मदुराई का मीनाक्षी मन्दिर, तंजोर ज़िले में कावेरी तट पर कुंबकोणम मन्दिर, नागेश्वरम का सूर्य मन्दिर, रामेश्वरम का शिव मन्दिर आदि कला के ऐसे जीवन्त तीर्थ हैं जहाँ तर्क-वितर्क से परे मनोकामनाएँ निःशेष हो जाती हैं और वहाँ का पावन परिवेश भक्ति-भाव को सुदृढ़ करता है। नृत्यमय विराट् स्वरूप की प्रतीक नटराज की चोलयुगीन विशाल प्रतिमा दक्षिण की ही देन है जिसने सृष्टि की गति एवं तालबद्धता को साकार किया है। चिदम्बरम के विशाल नटराज मन्दिर तो एक सौ आठ प्रकार की नृत्य-भंगिमाएँ प्रस्तुत करते है। बेलूर मन्दिर में लास्य भंगिमा में अंकित मदनिकाएँ, जो आकर्षण और लावण्य की व्यंजक हैं, उनके विशाल मस्तक, सुडौल नासिका, लाल ओष्ठ, सघन भ्रूभंग और आकर्षक नेत्र, क्षीण कटिप्रदेश व उभरे वक्षःस्थल तथा अंग-प्रत्यंगों में सुसज्जित अलंकारों की छटा मे तत्कालीन वेषभूषा और शृंगार-प्रसाधन मूर्त्त हो उठा है।

वस्तुतः दक्षिण का मूर्त्तिशिल्प स्थूल रूपकारिता या द्रष्टव्य कला-कौशल का दिग्दर्शक नहीं, वरन् तत्त्व-निरूपक है। साथ ही आध्यात्मिक चिन्तन में जो अतीन्द्रिय व निवृत्तिपरक परिणति है उसकी स्वस्तिमयी श्रद्धा को मुखरित करने का माध्यम। अनंत अनुभूतियों के ऐश्वर्य से सम्पन्न इन मूर्त्तियों में

प्राणों का स्पन्दन है, अन्तर की रागिनी है और सर्वतोभावेन समर्पण का संगीत है।

चित्र, मूर्त्ति एवं स्थापत्य का चिरसंगम अजंता, हिन्दू धर्म, संस्कृति एव जन-भावनाओं से ओतप्रोत एलोरा तथा प्राचीन शिल्प कला एवं चित्रकारी का नव आविष्कृत तीर्थ लेपाक्षि मन्दिर—तीनों अपने आप में अद्भुत हैं, अप्रत्याशित। मानव-कल्पना एवं अनवरत प्रयत्नों से निर्मित इन रहस्यमय स्थलों को देखकर दर्शक एकबारगी ठगा सा रह जाता है। दक्षिणी मन्दिरों के शिखर की द्राविड़ पद्धति गोलाकृति लिये होती है और उनकी प्राचीरों के चप्पे-चप्पे पर हुई नक्काशी, पच्चीकारी व सूक्ष्म चित्रांकन तथा खंभों पर पौराणिक दृश्यों एवं प्रसंगों की बहुलता एक नये कलामय संसार का उद्घाटन करती है।

दक्षिणापत्य शिल्प एवं स्थापत्य की यह परम्परा काफ़ी अर्से तक विकसित होती रही और इसका प्रभाव दूर-दूर तक फैला। दक्षिण प्रदेश के आधुनिक कलाकार कुछ नया और पुराना लेकर आगे आये और उन्होंने सम्मिश्रित तत्त्वों की वहुविध प्रणालियों को प्रश्रय दिया। अपनी निजी परम्पराओं का निर्वाह करते हुए भी वे आधुनिक धाराओं से अभिभूत हुए, किन्तु यह संयोग कला-धाराओं के लिए हितकर सिद्ध हुआ।

आन्ध्र ग्रुप

उन्नीसवीं शती में जब पुनरुत्थान की लहर भारत में आई तो अनेक लोक कलाकार तंजोर से आन्ध्र में आकर बस गए थे। उन दिनों काँच पर देवी-देवताओं का उलटकर चित्रांकन बनाने की प्रथा थी। इसमें वे स्वनिर्मित रंगों एवं कूची का प्रयोग करते थे, किन्तु उनका काम मात्र अनुकृति था जो देर तक न पनप सका। अंतत: बंगाल स्कूल की परम्पराओं के साथ प्रमोद कुमार चटर्जी का आगमन मछलीपत्तनम में हुआ तो उनके कुछ उत्साही छात्रों द्वारा 'आन्ध्र ग्रुप' की स्थापना हुई जो देशीय-बहिर्देशीय प्रणालियों तथा परम्परा एवं प्रयोग का मिला जुला प्रभाव लेकर आगे आया। इस ग्रुप का सर्वाधिक प्रबुद्ध छात्र के० आनन्द मोहन शास्त्री मौलिक प्रतिभा और सूझबूझ को लेकर कला-क्षेत्र में अवतीर्ण हुआ। 'एकलव्य' और 'देवी कावेरी' जैसे चित्रों में उन्होंने उदात्त सौन्दर्य एवं सुरुचि का परिचय दिया था, साथ ही देश और काल के अनुरूप वस्तुभिज्ञता भी उनमें थी जो इस उष: बेला में शुभ लक्षण था, किन्तु ३२ वर्ष की अल्पायु में ही उनका असमय निधन हो गया।

पेरिस और लंदन में इनकी कृतियाँ बहु प्रशंसित हुई थीं। त्रिवेन्द्रम के श्रीचित्रालयम और मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी में इनके आज भी कई चित्र सुरक्षित है।

के० राम मोहन शास्त्री

इन्ही के छोटे भाई के० राम मोहन शास्त्री ने भी इसी पथ का अनुसरण किया, किन्तु उनमें वैसा रंग-विधान और गहरी पैठ न थी। चित्र-निर्माण की अपेक्षा छवि-अंकन में वे अधिक दक्ष थे। उन्होंने अनेक प्रसिद्ध व्यक्तियों के 'पोर्ट्रेट' बनाये जो निजी मौलिकता लिये है। इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'पीयूष पाणि नागार्जुन' अमरावती शैली पर निर्मित हुई हैं। 'बुद्ध का मोह' जैसे चित्रों में प्रतिपाद्य विषय का अच्छा निर्वाह हुआ है, किन्तु उनकी रंग-नियोजन टेकनीक अपरिपक्वता लिये है, साथ ही डिज़ाइन और ड्राइंग भी कमज़ोर हैं।

प्रमोद कुमार चटर्जी इनके गुरु थे और कलकत्ता एवं मैसूर में भी इन्होंने कला-प्रशिक्षण लिया। बाद में लंदन के रायल कालेज आफ आर्ट में प्रोफेसर मालकोल्म ओसबोर्न के तत्त्वावधान में ये अध्ययन करते रहे। त्रिवेन्द्रम के श्री चित्रालयम्, हैदराबाद म्यूज़ियम और मैसूर की जगमोहन पैलेस पिक्चर गैलरी में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है।

डी० रामा राव

उन्हीं दिनों मछलीपत्तनम के आन्ध्र ग्रुप के समानान्तर राजामूँदरी में भी एक कला ग्रुप डी० रामा राव के तत्त्वावधान में प्रश्रय पा चुका था। दोनों ग्रुप एक दूसरे के प्रतिद्वन्द्वी तो न थे, किन्तु उनकी परस्पर मान्यताएँ सर्वथा भिन्न थीं। मछलीपत्तनम का कलाकार ग्रुप बंगाल स्कूल की कला के काल्पनिक रहस्यवाद को लेकर चला था तो राजामूँदरी में देशी परम्पराओं और यथार्थवाद की छाप थी। इसका कारण था—रामाराव ने बाम्बे स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा पाई थी, साथ ही आन्ध्र की लोक परम्पराएँ और अतीत का वैभव जब कि शात-वाहन, पल्लव, चालुक्य, राष्ट्रकूट, काकतीय, विजयनगर साम्राज्य, मदुरा और तंजोर की कला तथा लेपाक्षि देवालयों के सजीव चित्रांकन भी उनकी प्रेरणा स्रोत रहे थे।

मौलिक प्रतिभा का यह युवक कलाकार अपने आदर्शों और स्वप्नों को कला में साकार देखने का इच्छुक था। देशी-विदेशी प्रभावों को आत्मसात् कर वह एक नई पद्धति का हामी था, जिसमें तथाकथित टैगोर स्कूल आफ पेंटिंग के काल्पनिक कुहासे को नकार कर यूनानी कला की लाक्षणिकताओं

को एक ख़ास ढग से अख़्तियार करने की कोशिश की गई थी। 'सिद्धार्थ रागोदय' में यूनान की प्राचीन क्लासिक पद्धति का अनुसरण किया गया और 'अजंता विहार,' 'कुएँ पर काठियावाड़ी महिलाएँ' और 'शकुन्तला' आदि कृतियाँ यद्यपि भारतीय शैली में चित्रित की गई, किन्तु वे यूनानी तर्ज़ पर एक विशिष्ट निर्माण-प्रक्रिया और 'पैटर्न' में ढली थीं। कार्तिक पूर्णिमा और उनकी कई ग्रुप स्टडी कलाकृतियों में रंगमयी लय द्रष्टव्य है, किन्तु चित्रात्मक प्रतीकों को ऐसा आकार प्रदान किया गया है जिसमें अल्मा टैडीमा और ब्रिटिश कलाकार लार्ड लेटन की छाप थी जो अति प्राचीन ग्रीक कला की गरिमा का प्रतिनिधित्व करते थे। रामाराव की कला पर मिस्री और जापानी कला का भी प्रभाव है। बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट में शिक्षा ग्रहण करने के दौरान बहुमुखी धाराएं उनके आगे से गुजरीं, कितनी हवाओं के रुख़ में उनकी प्रवृत्तियों का विकास हुआ, फलतः बहुविध तत्त्वों का सम्मिश्रण उनकी कला की विशेषता है। उनकी महत्त्वाकांक्षा थी कि वे भारतीय प्रतीकवाद और घिसेपिटे शरीर-विज्ञान तथा बंगाल स्कूल की रूढ़ परिकल्पना से परे नितान्त नई शैली को जन्म दें और उनके परवर्त्ती चित्रों में ऐसी नई शैली का शनैः-शनैः प्रतिफलन भी द्रष्टव्य था, किन्तु दुर्भाग्य से सत्ताइस वर्ष की अल्पायु में ही इनका निधन हो गया।

मद्रास, कलकत्ता, बम्बई, वेम्बले और टोरंटो में उनके चित्रों का सफलता पूर्वक प्रदर्शन हुआ। राजामुंदरी की रामाराव आर्ट गैलरी में उनके चित्रों का संकलन है। रामाराव की उपलब्धि इस दिशा में महत्त्वपूर्ण थी चूँकि उन्होंने प्राचीन की अंध अनुकृति नहीं की, वरन् आधुनिक और प्रगतिशील दृष्टिकोण अपनाकर देशी परम्पराओं को विदेशी मिश्रण से बहुमुखी बनाने का प्रयास किया। संभव है—यह नवयुवक आगे चलकर आन्ध्र कला की सर्वथा नई लीक क़ायम करता जिसके आसार उसके जीवन-काल में ही होने लगे थे।

के० श्रीनिवासुलु

रामाराव के असामयिक निधन से जो आन्ध्र कला को ठेस पहुँची उसकी क्षतिपूर्ति श्री निवासुलु ने की। खिलौने बनाने का व्यवसाय इनका पैतृक पेशा था। इनका परिवार आन्ध्र से मद्रास के तमिल भाषी नागलापुरम, ज़िला चिंगलपुट में आकर बस गया था और वहीं इनकी जन्मभूमि है। बचपन से ही कला में इनकी अभिरुचि थी, ख़ासकर लोककलाओं में, वहीं से इन्हें चित्र-

निर्माण का शौक लगा, पर घरवाले इनसे कुछ और ही आशा लगाये बैठे थे इन्हें अनेक विरोध-अवरोधों का सामना करना पड़ा। दादी अक्सर इनके

शृंगार

बनाये चित्रों को आग में झोंक देती, फिर भी इनकी साधना का तार न टूटा। १३ वर्ष की उम्र से ही मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में देवी प्रसाद राय चौधरी के तत्त्वावधान में ये प्रशिक्षण प्राप्त करते रहे और वहीं से इन्होंने विशेषता सहित डिप्लोमा हासिल किया। अपनी विगत बीस-पच्चीस वर्ष की कला-साधना के दौरान इन्होंने निजी शैली का विकास किया है जिसकी जड़ें इनके अपने देश की मिट्टी में पनपी। उनकी निर्माण प्रक्रिया विदेशी तर्ज पर नहीं, वरन् सर्वथा देशी अर्थात् यामिनी राय की भाँति खेल-खिलौनों और ग्राम्य कला के नमूनों से प्रेरित हुई। दक्षिण प्रदेश के प्राचीन स्मारक, चिरकाल से

विविध जीवनदर्शनों से ओतप्रोत और यहाँ की समूची रंगीनी एवं वैभव को साकार करने वाले महान् निर्माण—जैसे लेपाक्षि मंदिर के भित्तिचित्र तथा

लकड़ी के खिलौने

कितनी ही पत्थर की असंख्य भावना संकुल मुद्राओं में तथा साधारण मनुष्यों की चिरशाश्वत आस्था के बिखरे प्रतीकों में इन्होंने अपनी यात्राओं के दौरान अनुभव बटोरे और प्राचीन-अर्वाचीन के सांस्कृतिक समन्वयों में अपने ढंग से मोड़

डमी घोड़ा नृत्य

पैदा किया। श्रीनिवासुलु की चित्रणशैली गत्यात्मक मोड़-तोड़ों और साहसिक रंग-

नियोजनों का सम्पुंजन है। उनमें अनूठा अलंकरण व आकर्षक सज्जा है। उनके प्रतिपाद्य विषय उनके अपने पैटर्न में ढलकर फिसलती-रपटती रूपरेखाओं की लय में थिरकते से प्रतीत होते हैं। 'शृंगार', 'टोकरी बनाते हुए', 'कमल इकट्ठा करने वाले', 'डमी घोड़े का नृत्य', 'गोबर उठाते हुए', 'चटाई बनाने वाले', 'दही विक्रेता', 'केलों का झुरमुट' आदि इनकी कितनी ही कलाकृतियाँ आंध्र लोक-कला का प्रतिनिधित्व करती हैं, खासकर इनका अपना पैदाइशी गाँव नागलापुरम जो मद्रास से पचास मील की दूरी पर बसा है और जहाँ तमिल-तेलुगु परिवार रहते हैं, जिस जगह इन्होंने अपनी ज़िन्दगी के पन्द्रह वर्ष गुज़ारे

रथ यात्रा

और हर यात्रा से थक कर या ग्रीष्मावकाश में ये उस स्थान पर मन को तरो-ताज़ा और स्फूर्त्ति ग्रहण करने जाते हैं, इनकी कलाचेतना का प्रमुख प्रेरक स्रोत है। दर असल, वहीं की आबोहवा और फिज़ाँ में इनके प्राणों में कुहुक पैदा हुई, सृजन की ईहा जगी और इसी चहकती धरती की स्मृति के अटूट-सूत्रों को दृढ़ता से थामे समय के उलट-फेर के बावजूद अपने साधना-पथ पर वे सदा मज़बूत कदमों से आगे बढ़े हैं। यूरोपीय 'इम्प्रेशनिज़्म' की धूमिलता, फ्रांसीसी 'क्यूबिज़्म' की विरूपता तथा जापानी कला की खूबियों को उन्होंने अपने ग्राम्य प्रतीकों के समक्ष हेय समझा है और काल्पनिक कुहासे में रमने की अपेक्षा काम करते और अनवरत श्रम में लगे नर-नारियों का चित्रण करना इन्हें अधिक रुचिकर है।

अपनी अंतरंग दुनिया को इन्होंने तैलरंगों की बजाय जलरंगों में और कैन्वास की सीमित क़ैद से मुक्त कर विस्तृत कागज़ पर चित्रांकित करने में अधिक सुख माना है। उनकी प्रवहमान भावनाओं की द्रुत लय और अन्तर के आवेगों को टेम्परा में सफल अभिव्यक्ति मिली है। इनके रंग गहरे और चटक होते हैं, जीवन का उल्लास और खुशनुमा वातावरण लिये। अजंता की कला से इन्हें शह मिली, किन्तु समय की चोट खाये धूमिल रंग अथवा टर्नर और

रेनॉर की फीकी रंग-योजना इन्हें कतई पसंद न थी। ग्राम्य और नागरिक जीवन की चहक में डूबे इनके रंग बड़ी ही गरिमायी उत्फुल्ल ऊष्मा से प्राणान्वित हैं।

पेरिस के मलों-दंमे में उनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ। अमेरिकन एकेडेमी आफ एशियन स्टडीज द्वारा सानफ्रांसिस्को में आयोजित प्रदर्शनी में इन्हें द्वितीय पुरस्कार प्राप्त हुआ। आल इंडिया फाइन आर्ट्‌स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की वार्षिक प्रदर्शनी में इन्हें राष्ट्रपति प्लेक और कलकत्ता की एकेडमी आफ फाइन आर्ट्‌स द्वारा दस सर्वश्रेष्ठ भारतीय कलाकारों में इनकी गणना की गई जिन्हें नक़द पुरस्कार राशि प्रदान करने के योग्य समझा गया। यूनाइटेड़ स्टेट्स सूचना सेवा द्वारा मद्रास और इसके बाद मैसूर में इनके चित्रों की एकव्यक्तीय प्रदर्शनी का आयोजन किया गया जिसमें इनकी बड़ी-बड़ी ३२ पेंटिंग रखी गई। लगता था—जैसे चल भित्तिचित्र आँके गए हों। इनके नारी-पुरुष महज़ वाश ड्राइंग की निर्जीव आकृतियाँ नहीं हैं, वरन् स्वस्थ, कामकाजी और अत्यधिक परिश्रमी लोग हैं जो भारतीय गाँवों के सच्चे प्रतिनिधि हैं। बिहार, हैदराबाद और त्रावणकोर सरकारों के संरक्षण में इनके अनेक चित्र सुरक्षित हैं। आन्ध्र में भारतीय कला के पुनरुत्थान में इनका अभूतपूर्व योगदान है, बल्कि इन्होंने तमिल-तेलुगु में समन्वय स्थापित कर दोनों का माथा ऊँचा किया है। आजकल मद्रास में अडयार के बेसेंट थियोसोफिकल स्कूल के ये डायरेक्टर हैं।

पी० एल० नरसिंह मूर्त्ति

ये भी श्रीनिवासुलु की भाँति लोककलाओं से प्रभावित हैं और आन्ध्र के जनजीवन की छाप इनकी कृतियों में द्रष्टव्य है। यूँ तो देश-विदेश की कलाओं का इन्होंने व्यापक अध्ययन किया है, फिर भी भारतीय कला को ये विदेशी कला की जकड़बंदी में ग्रस्त नहीं देखना चाहते। हमारा अपना क्या कुछ कम है जो हम दूसरों का मुँह जोहें—यही प्रश्न सदा इनके प्राणों को झकझोरता रहा है। मद्रास गवर्नमेंट की ओर से कलाकारों का एक ग्रुप लेपाक्षि भित्तिचित्रों और सीलोन में सिगिरिया फ्रेस्को की अनुकृति के लिए भेजा गया था जिसमें से ये भी एक थे। लेपाक्षि के अद्‌भुत कला-कौशल का इनके मन पर ख़ास तौर से गहरा प्रभाव पड़ा।

इनके द्वारा निर्मित इन ऐतिहासिक अनुकृतियों में इनकी मौलिक प्रतिभा, हाथ की सफाई और रेखा व रंगों में गहरी पैठ दीख पड़ी। लेपाक्षि मन्दिर

की कलात्मक रूपाकृतियों के अंकन में, जो विजयनगर की छाप लिये अजंता पद्धति पर ही आँकी गई थीं, इस कलाकार की शिल्प-सृष्टि और कल्पना-

उपासिकाएँ

वैभव का परिचय मिलता है। उनकी मौलिक कृतियों में तो और भी उत्कृष्ट तत्वों का समावेश है। नैष्ठिक कलाकार के रूप में वे भारत की प्राचीन परम्पराओं और मध्ययुगीन कला-सम्पद् के संरक्षकों में से हैं। उनके दृष्टिकोण से यहाँ की प्रमुख शास्त्रीय कला-शैलियाँ, जो आध्यात्मिक उपलब्धियों का माध्यम रही हैं, एक ऐसी अक्षय सांस्कृतिक धरोहर है जिससे कि हर तरह की सूक्ष्म से सूक्ष्म सृजन प्रक्रियाओं का ज्ञान प्राप्त हो सकता है। जो जितनी

श्रद्धा से उसमें अवगाहन करेगा उतना ही पाएगा। 'उपासिकाए' जिसका चित्रांकन लेपाक्षि मन्दिर की अनुकृति है तथा 'शिव का बचपन', 'गणेश जननी 'भयभीत शिशु' आदि कृतियों में इन्होंने अपनी सच्ची निष्ठा और अन्तरंग प्राणों में पगी मान्यताओं को प्रश्रय दिया है। इनके विषय अधिकतर पौराणिक

शिव का बचपन

एवं धार्मिक प्रसंगों पर आधारित होते है। कहीं आन्ध्र का लोक-जीवन स्पन्दित हो रहा है तो कही ग्रामीणता का वातावरण प्रस्तुत किया गया है। उनकी सबसे बड़ी खूबी है कि उनके चित्रों का निर्माण, उनके रंगों का विधान सर्वथा मौलिक है। वे एक खास रूपाकृति में ढले होते है। ऐहिक व पारलौकिक जैसा भी प्रसंग होता है, ये अंत: संतुलन को बनाये रखते है। कितने ही समय-असमय के प्रभावों को आत्मसात् कर पूर्व काल की विशाल संस्कृति में से जीवन-सौन्दर्य से पूर्ण कलाओं को विकसित किया जा सकता है। संकीर्ण दृष्टि-कोणों तथा अनुर्वर पूर्वाग्रहों से ऊपर उठकर, साथ ही आज के वहिर्मुखी जीवन में जिन ठोस तत्त्वों का अभाव है उसकी पूर्ति भी हमें अपनी आध्यात्मिक अन्त-

दृष्टि से करनी पड़ेगी। आज के भौतिकवाद ने कला को सत्य से वंचित कर दिया है। पश्चिमी दृष्टिकोण नित-नये प्रयोगों के जंगल में ही फलते फूलते हैं, उनमें वह चीज़ नहीं जो कलाकार की आत्मा का पूर्णतया उद्घाटन कर उसे सर्वांग विकसित इकाई के रूप में प्रतिष्ठित कर सके। उसे सुन्दर से सुन्दरतर, शिव से शिवतर तथा सत्य से वृहत्तर सत्य की ओर उन्मुख कर सके।

भयभीत शिशु

मद्रास के स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। इन्होंने दक्षिण प्रदेश के अलावा विदेशों में भी भ्रमण किया है। मद्रास, कलकत्ता, दिल्ली के अलावा पेरिस में भी इनके चित्रों का प्रदर्शन हुआ है। समसामयिक प्रदर्शनियों एवं कला-आयोजनों में ये भाग लेते रहे हैं और इनकी चित्रकृतियां अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुकी हैं।

ए० पैडी राजू

पैडी राजू भी कला क्षेत्र में विशष ख्यातिलब्ध हैं, क्यों कि इन्होंने भी जन-जीवन से प्रेरणा प्राप्त की है। अतीत के माध्यम से इन्होंने वर्त्तमान की पकड़

टूटे तार

को और अधिक गहरा एवं अर्थगर्भी बनाया है। सांस्कृतिक चेतना से सम्पृक्त इनकी भावधारा ने देश की गरीबी और पीड़ाओं को भी देखा है। यहाँ की पर-वश परिस्थितियाँ, लाचारी और इस लाचारी में भी जीने की मजबूरी। फलत: सजन-शिल्प और विषय की दृष्टि से इनको कला ने एक अभिनव भावभूमि

की सृष्टि की है। इन्होंने बहुविध प्रसंगों का चुना, पर जीवन-सत्य के सौन्दर्य को अमरता प्रदान करने वाले तत्त्व ही इन्हें अधिक रुचिकर हुए। पुरातन और नूतन के सामंजस्य द्वारा इनकी कल्पना जीवन के व्यापक क्षेत्र में उड़ान भरकर

घर की ओर

एक लोकचित्र

प्रचुर विषयों का दिग्दर्शन कराती है। ये सर्वसाधारण के लिए चित्रों को सिरजते है, जीवन के सच्चे चित्रण द्वारा इन्होंने लोक कल्याणकारी भावनाओं को अपनी कला मे प्रश्रय दिया है।

विशाखापत्तनम के बोब्बिली ग्राम में ये पैदा हुए। कला के प्रति इनको नैसर्गिक रुचि थी अर्थात् पढ़ने की अपेक्षा दृश्य वस्तु के सौन्दर्य को अपनी नजरों मे समेटने के लिए ये अधिक व्याकुल रहते। अपने अध्ययन के दौरान इन्होंने अनेक चित्रों का निर्माण किया। हाई स्कूल करने के पश्चात् १९४० में इन्होंने मद्रास स्कूल आफ आर्ट में दाखिला लिया और चार वर्ष तक वही पढ़ते रहे। उनके अध्ययन काल में जो अनेक कलाकृतियों का निर्माण हुआ वे कतिपय प्रदर्शनियो और कला-आयोजनों के माध्यम से सामने आया है। फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लेने के पश्चात् इन्होंने विभिन्न कलातीर्थों का व्यापक दौरा किया

और शांतिनिकेतन भी गए, जहाँ अनेक कलागुरुओं की सन्निधि में इनका ज्ञान विकसित हुआ और बहुविध कला-तत्त्वों में पैठे।

पैंडी राजू में रंग और रूपाकार का अद्भुत सामंजस्य है। इनके चित्रण में जो लय है, एक प्रकार की गत्यात्मक त्वरा है वह उसी अनुपात में एक प्रखर प्रभाव व्यंजना को प्रश्रय देती है। आन्ध्र के लोक जीवन का लयात्मक थिरकता सौन्दर्य, स्फूर्त्ति, उत्साह, महकती मस्ती और मुक्ताकाश में उड़ान भरते जन

माता-पुत्र

समूह के सम्मिलित स्वर इनके चित्रों में मुखर हो उठे हैं। फिर भी चित्रण कौशल से अधिक इनकी रंग-टेकनीक उत्कृष्ट है। 'अवकाश के क्षण' चित्रकृति में विशाल वृक्षों की छाया तले सन्ध्या समय के शान्त वातावरण में दो युगल प्रेमी

बैठे हैं। वृक्षों की सघनता को चीरकर चन्द्रमा अपना स्निग्ध, प्रोज्ज्वल प्रकाश छिटकाने के लिए सन्नद्ध है। मुगल शैली में निर्मित इस समूचे दृश्यांकन में रंगीनी, समयानुकूल परिस्थितियों की एकीभूत प्रभाव व्यंजकता और बेहद संवेदनशीलता उभर आई है।

'गाँव का दृश्य', 'दो कृषक महिलाएँ', 'एक कदम', 'हरा और सफेद', 'कुएँ की ओर,' 'भाराक्रान्त,' 'मजदूर', 'ओखली में धान कूटते हुए', 'काला चाँद' आदि

धान कूटते हुए
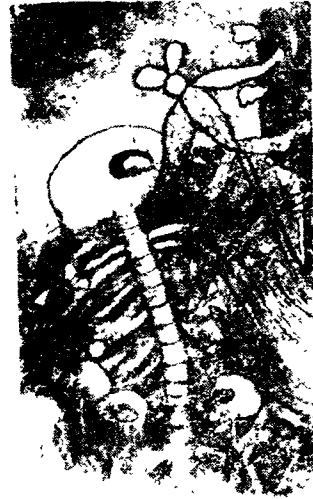
दूज का चाँद

चित्रों में इनकी यथार्थ अनुभूतियाँ और विचारों के साँचों में जीवन को काट छाँटकर प्रस्तुत किया गया है। 'स्नान के पश्चात्', 'चक्की पीसते हुए', 'एक नई सड़क' इनकी काबुल और काहिरा की प्रदर्शनियों में बिक गईं। भारतीय स्याही में निर्मित इनके तीन स्केच फ्रांस की प्राइवेट गैलरी में रखे गये हैं। लैंडस्केप और फिगर-स्टडी में भी ये विशेष रूप से निष्णात हैं और इन्होंने मूर्ति निर्माण में भी दक्षता हासिल की है।

पैडी राजू 'वाटर कलर', 'पेस्टल', 'आयल कलर' और 'इंक' का प्रयोग करते हैं। 'एक कदम' में चीनी ढंग अख्तियार किया गया गया है। यहाँ तक कि पंसिल और स्याही में बनी चित्रकृतियाँ भी जीवन-रस से लबालब और सजीव बन पड़ी हैं। इन्होंने अपने चित्रों की सीरीज़ द्वारा आन्ध्र के अकाल पीड़ितों की करुण झाँकी प्रस्तुत की। अपनी युवावस्था में ही इनकी कृतियों को

प्रतिष्ठा मिलने लगी थी, यहाँ तक कि लंदन की रायल आर्ट एकेडेमी द्वारा आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इनकी 'घर की ओर' नामक सुप्रसिद्ध कृति को चुना गया। ज्यों-ज्यों इनके निर्माण-कार्य में परिपक्वता आती गई, लोगों का ध्यान इनकी ओर आकृष्ट होता गया और ये अधिकाधिक लोकप्रिय होते गए। १९५३ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से इन्हें अवार्ड प्रदान किया गया। १९५६ में अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और आन्ध्र प्रदेश आर्ट्स एग्जीबिशन, १९५८ में केरल में गवर्नमेंट अजायबघर और चिड़ियाघर शताब्दी समारोह और १९४१ में मद्रास की आन्ध्र महासभा प्रदर्शनी द्वारा इन्हे क्रमशः स्वर्णपदक प्राप्त होते रहे। गुटूर की आन्ध्र चित्रकला परिषद द्वारा इन्हें सिलवर प्लेक प्रदान की गई और विशाखा चित्रकला परिषद द्वारा भी ये पुरस्कृत हुए।

एक साधक कलाकार के रूप में इनका कार्य-क्षेत्र बड़ा व्यापक है। न केवल भारत में समय-समय पर आयोजित प्रदर्शनियों मे, बल्कि आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित सोवियत रूस, काहिरा, काबुल, तुर्की आदि की कला प्रदर्शनियों में इन्होने भाग लिया है। अनेक सरकारी एवं गैर सरकारी, देशी-विदेशी संग्रहालयों, केरल, आन्ध्र प्रदेश एव मद्रास प्रान्त के चित्र-संग्रहों में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है। रूस और तुर्की के संग्रहालयों में भी इस भारतीय शिल्पी के आकर्षक चित्रों को ससम्मान स्थान दिया गया। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य, आन्ध्र की आर्ट एकेडेमी के सेक्रेटरी, तिरुपति के वेंकटेश्वर विश्वविद्यालय के ड्राइंग और पेंटिग बोर्ड आफ स्टडीज़ के मेम्बर और अन्य कितनी ही कला संस्थाओं से सम्बद्ध हैं। ये आजकल विजयनगरम के स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल हैं।

के० राजय्या

सुप्रसिद्ध लोक कलाकार राजय्या लगभग २०-२५ वर्षों से कला के क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। सन् १९२५ में सिद्दीपेट में इनका जन्म हुआ। बचपन में ही इन्हें लोक कला के प्रति रुचि जगी। एक मारवाड़ी घर में ये रह रहे थे। उस की दीवारों पर राजस्थानी चित्र सज्जा थी जिसने इनके किशोर मन को बेहद आकृष्ट किया। तभी से आन्ध्र जनजीवन और कर्नाटक शैली के चित्रांकन को इन्होंने अपना जीवन ध्येय बना लिया। इनके चित्रों में मौलिक सजीवता है।

रोजमर्रा के दृश्यों, लोकपर्वों और लोकजीवन के लोकप्रिय रंग और चारु वातावरण को मनोमुग्धकारी व हृदयस्पर्शी ढंग से इन्होंने अपने चित्रों में स्पन्दित किया है।
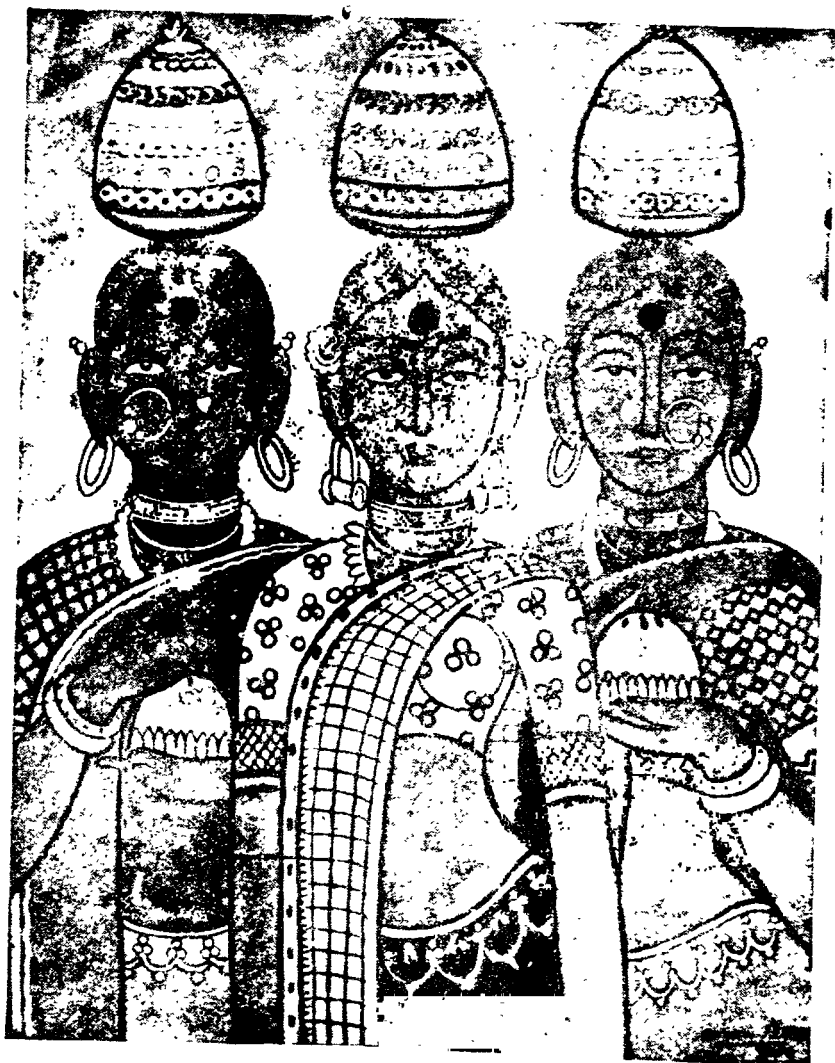
ग्राम्य नारियाँ
राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी,

एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी तथा मैसूर, गुंटूर, भोपाल और त्रिवेन्द्रम की कितनी ही प्रदर्शनियों में ये नियमित रूप से भाग लेते रहे हैं। अनेक उत्कृष्ट कृतियों पर इन्हें पुरस्कार भी प्राप्त हुए हैं। १९५६ में ललित कला अकादेमी द्वारा पूर्वी यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और हैदराबाद की स्टेट म्यूजियम व आर्ट गैलरी में इनके चित्र सुरक्षित हैं। टेम्परा में इन्होंने प्राय: धार्मिक और ग्राम्य दृश्यों को चित्रित किया है। पार्लियामेंट की लोकसभा में भित्ति-चित्रण का काम इन्हें सौंपा गया था। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी और प्रादेशिक ललित कला अकादेमी के ये सदस्य हैं। आजकल सिद्दीपेट के गवर्नमेंट हाई स्कूल में कला-प्रशिक्षक के बतौर कार्य कर रहे हैं।

विद्या भूषण

हैदराबाद के सुप्रसिद्ध पोर्ट्रेट चित्रकार हैं। इनकी चित्रकृतियों में वैविध्य तो है ही, अन्विति और सूक्ष्म मनोवैज्ञानिक पैठ भी है। किसी भी वस्तु की अंतरतम गहराई में उतर कर उसे हूबहू अंकित करने में ये अपना सानी नहीं रखते। फिर भी इनके चित्र महज प्रतिचित्र नहीं हैं, बल्कि इनकी संवेदना, प्रत्यक्ष अनुभूत और जीवन के नाना घात-प्रत्याघात, समस्याएँ, अच्छी-बुरी परिस्थितियों की व्यंजना हैं उनमें। अंतरंग भावनाओं की एक संगति और लय है इनके चित्रों में जो रंगों के साथ संश्लिष्ट हो रेखाओं में ढल जाती है। हर चित्र में शरीर के अवयवों का सम्यक् निदर्शन है तो उसकी भावभंगी भी आँकी गई है। इनकी

द्वन्द्व युद्ध

सूक्ष्म कला-टेकनीक द्वारा व्यक्तियों का समस्त व्यक्तित्व प्रत्यक्ष हो जाता है, ऐसे चित्रों में तो यह कला-व्यंजना और भी परिपक्व हो उठी है जहाँ कलाकार

की अनुभूति अछूती है और यथातथ्यता यूं की यूं उभर आई है—जैसे 'चिंता' 'शोकाकुल', 'लय' आदि भावात्मक चित्रों में।

बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट से इन्होंने डिप्लोमा लिया। नक्काशी और भित्तिचित्रण इनके खास विषय थे। १९५४ में सरकारी छात्र वृत्ति पर ये यूगोस्लाविया गए और यूरोप के अन्य कतिपय भागों का भी भ्रमण कया। आयल, एग, टेम्परा, वाटरकलर इनके प्रिय माध्यम हैं। मोटे दनदार कागज़ पर वाश शैली में ब्रुश के छितराये प्रयोग भी इन्होंने किये हैं। रचना-पद्धति एवं रूपाकार-निर्माण में यूरोपीय प्रभाव भी कहीं-कहीं द्रष्टव्य है, वैसे भारतीय पद्धति में ही इनकी आस्था केन्द्रित है। अपने साधना-काल में इन्हें काफी संघर्ष करना पड़ा। पैर जमाने के लिए इधर-उधर घूमते-भटकते फिरे। श्रमजीवी चित्रकार के रूप में व्यावसायिक तौर पर इन्होंने चित्र-निर्माण शुरू किया था, किन्तु अपनी एकनिष्ठ साधना और चन्तनशील प्रवृत्ति के कारण इनकी साधना का क्षेत्र क्रमशः विशद होता गया। १९४१ में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की ओर से इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया गया। १९५७ में नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें राष्ट्रपति की ओर से गोल्डप्लेक प्राप्त हुई। हैदराबाद, कलकत्ता, दिल्ली जैसे महानगरों और बेलग्रेड जैसे यूरोपीय प्रदेशों में इनकी कई बार चित्र-प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं। मास्को की अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनी में इन्हें रजतपदक उपलब्ध हुआ। लखनऊ के राजभवन के लिए अजंता के प्रतिकृति चित्रों का इन्होंने निर्माण किया। शाह मंजिल जुबिली हाल और उस्मानिया विश्वविद्यालय की भीतरी सज्जा के लिए इन्हें 'पोर्ट्रेट' बनाने का काम सौंपा गया। मास्को की स्टेट आर्ट गैलरी, नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट, बेलग्रेड की म्यूज़ियम आफ माडर्न आर्ट तथा अन्य कितने ही देशी-विदेशी संग्रहालयों एवं चित्र-संग्रहों मे इनकी कलाकृतियों को प्रतिनिधित्व मिला है।

इनके चित्रण की खूबी है कि चाहे 'पोर्ट्रेट' हो अथवा और कोई साधारण प्रसंग अथवा विषय, मनोवेगों की तीव्रता और कचोट को लेकर ही ये आकारों में उभरते व प्रश्रय पाते हैं। यही कारण है कि 'स्नान के बाद बत्तखों का दृश्य' अथवा 'वेणी गूंथती महिला', 'पापड़ वालियाँ', 'टूटा तार', 'स्नानागार में राजकुमारी', 'फलों का गुच्छा' और इसी तरह बनाये गए कितने ही छवि-अंकनों में उद्भ्रान्त मन की गतिशील प्रेरणा काम कर रही है।

हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के कार्यकारी सदस्य हैं और प्रमुख कला-आयोजनों एवं प्रदर्शनों में भाग लेते रहते हैं। १९५२ से हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट में ये कला शिक्षक के बतौर काम कर रहे हैं।

कला को इन्होंने सदा उस रूप में देखा जो केवल कलाकार का मनोरंजन अथवा आवश्यकताओं की पूर्ति का साधन नहीं, वरन् गंभीर साधना है। कलाकार संसार के सामने उदघाटक है, व्याख्याता जो सुष्ठु रुचियों का निर्माण और संस्कार करता है। उसकी सृजनशील कल्पना बड़ी उपादेय है कि वह जो नया, महत्त्वपूर्ण और अंतरंग भावनाओं की अनवरोध निष्पत्त करता है वही एक अभिनव सृष्टि की संरचना द्वारा दर्शक को अभिभूत कर लेती है।

राजकुमारी स्नान करते हुए

जगदीश मित्तल

यूं तो मसूरी (उत्तर प्रदेश) में इनका जन्म हुआ, किन्तु अर्से से हैदराबाद ही इनकी साधना भूमि है और अब तो आन्ध्र के प्रमुख कलाकारों में इनकी

तरु तले

एक लोकचित्र

गणना होती है। ग्राफिक शिल्पी और चित्रकार के रूप में ये विशेष ख्यात हैं,

फ्रेस्को और म्यूरल टेकनीक में इन्होंने विशेषता हासिल की है। वुडकट, लाइनो कट और इचिंग में इन्होंने नव्य प्रयोग किये हैं।

सामान्य जनजीवन को इन्होंने बड़े सूक्ष्म और प्रभावशाली ढंग से व्यक्त किया है। बिना धरती से प्रेम किये वहाँ के लोगों की जानकारी नहीं हो सकती। इन्होंने नित्यप्रति की परिस्थितियों में पैठकर और लोगों के जीवन में घुलमिलकर सामाजिक चेतना और तदनुकूल व्यवहारों तथा उससे उत्पन्न द्वन्द्व का विशद चित्रण किया। 'कलश लिये महिलाएँ', 'चटाई बुनने वालियाँ' 'पंखे वाली', 'विश्राम करती महिला', 'मिट्टी खोदने वाले', 'मुर्गा ले मुर्गी', 'झोंपड़ियाँ', 'दिनभर के काम के बाद', 'पिंजरे के तोते', 'केश सज्जा', 'रजपूती विवाह', 'गली का दृश्य' आदि चित्रों में इन्होंने जीवन की सजीव झाँकियाँ प्रस्तुत की हैं। 'मधुर स्मृतियाँ', 'काला सौंदर्य', 'दिवास्वप्न', 'चिन्तन' जैसे कतिपय भावात्मक चित्रों में गहरे मनोवेगों और अंतरंग अनुभूतियों को प्रश्रय मिला है। लैण्डस्केप और प्राकृतिक दृश्यांकनों—यथा 'शिरीष निकुंज', 'पल्लवित अमलतास', 'खिली गुलमोहर' 'दारजिलिंग की रात', 'उषा काल', 'रात्रि में सड़क पार करने का दृश्य,' 'राजगृह लैण्डस्केप', 'चाँदनी रात में ड्राइव', 'निजामसागर पुल', 'पोचाराम लेक' आद इनकी कृतियों में वैसी ही चारुता और सुष्ठु रंग-योजना है।

पहाड़ी फल वाले

प्राय: इनकी हर किस्म की चित्रण-पद्धति में तकनीकी अन्वेषण-विश्लेषण की प्रवृत्ति है, तिस पर रंगों के चयन में भी गरिमा और रंग-कौशल बरता गया है। लगता है—जैसे उनके चित्र एक 'रिदम', एक लय में थिरक रहे हैं। चीनी स्याही, लिथो टेम्परा, आयल वाश, वाटरकलर-जिस तरह के भी माध्यम अपनाये गए हैं उनमें कल्पना चेतना की सच्ची झलक मिलती है। देशीय परम्पराओं के हामी होते हुए भी ये ऐसी नित-नवीनता के पक्षधर में हैं जो स्वस्थ

एवं सुन्दर है। फिर भी पश्चिम की अतिवादिताओं से अछूती इनकी भावभंगी इनके अंतर की सचाई एवं सहानुभूति लेकर व्यंजित हुई है।

शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्स में इन्होंने डिप्लोमा लिया। न केवल कला सृजन अपितु कला-उन्नयन के क़ायल हैं। इन्होंने भारत की प्राय: सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में भाग लिया हैं। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की ओर से आयोजित प्रदर्शनों में इनकी कृतियाँ प्रदर्शित एवं पुरस्कृत हुई हैं। ललित कला अकादेमी द्वारा कुल्लू के राजमहल के भित्ति चित्रों की अनुकृति का कार्य इन्हें सौंपा गया। चम्बा के भित्ति चित्रों के अनुचित्रण भी इन्होंने किये। पेंटिंग और हैंडीक्राफ्ट में नये-नये प्रयोगों का इन्हें बेहद उत्साह एवं शौक़ रहा है। आल इंडिया हैंडीक्राफ्ट्स बोर्ड के डिज़ाइन केन्द्र के ये रीजनल डायरेक्टर रह चुके हैं। भारतीय कला का इनका विशेष अध्ययन है और ये एक कुशल कला समीक्षक भी हैं। इनके लेख 'ललित कला', 'कलानिधि', 'रूप लेखा', 'मार्ग', 'आजकल', 'जर्नल आफ इंडियन सोसाइटी आफ ओरयिंटल आर्ट', 'धर्मयुग', 'इलस्ट्रेटड वीकली' जैसे मासिक एवं साप्ताहिक पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित होते रहते हैं। हैदराबाद से प्रकाशित होने वाली 'कल्पना' के ये कला-संपादक हैं। 'वुडकट', 'दक्षिणी चित्रकला और कलमकारी', 'इम्ब्रायडरी' इनकी पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं। १९५८ में हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की ओर से इन्होंने पुस्तक प्रदर्शनी और भारतीय कला के प्रिंट का आयोजन किया था। नई दिल्ली की नेशनल आर्ट गैलरी, बड़ोदा संग्रहालय, मद्रास और हैदराबाद के राजकीय संग्रहालय, त्रिवेन्द्रम चित्रालयम, वाराणसी के भारत कला भवन, शांतिनिकेतन कला भवन, नई दिल्ली की ललित कला अकादेमी, पंजाब तथा अन्य प्रदेशों के चित्रसंग्रहों में इनकी कलाकृतियों को स्थान मिला है प्राचीन और समसामयिक कलावस्तुओं और टेक्सटाइल व अन्य प्रकार के कला-नमूनों का संग्रह करने में इनकी विशेष रुचि है, यहाँ तक कि इनका घरू वातावरण बेहद कलामय है और दम्पति अनवरत कला-साधना में लगे रहते हैं। ये हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के सदस्य और संयुक्त सचिव हैं। हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट में आजकल ये कला इतिहास के विज़िटिंग लेक्चरार के बतौर कार्य कर रहे हैं।

मोक्कपाटी कृष्णमूर्त्ति

पुरान खेवे के लोक चित्रकार हैं जिन्होंने कला के क्षेत्र में वर्षों साधना करके बहुत कुछ आन्ध्र प्रदेश को दिया है। बंगाल स्कूल की परम्पराओं के प्रभाव से मुक्त देशीय कला को उन्नत करने में इनका विशेष योगदान रहा है। लोक-कलाओं में जन-जन के अन्तर की धड़कन ध्वनित होती है। धरती के विशाल प्रांगण में बिखरी दृश्यावली ने इन्हें अभिभूत किया हैं। वातावरण की सजीवता और यथार्थता को ग्रहण कर इन्होंने अपने देश और युग की परम्परा को कायम रखा है। विदेशी तत्वों की खोज में भटकते फिरना इन्हें अभीष्ट नहीं था। इन्होंने धार्मिक प्रसंगों, पौराणिक आख्यानो और प्राचीन कथाओं को चित्रित किया। आध्यात्मिक प्रेरणा ने इनकी मनःतुष्टि की और 'तुलसी' जैसे आदर्श पात्रों ने नैतिक मूल्यों के निर्माण का पथ प्रशस्त किया।

अध्ययनशीला

पर्वत राज

कृषक जीवन

इनका जन्म कृष्णा नदी तट स्थित बसलबाड़ा में हुआ था। कला और साहित्य में इनकी जन्मजात रुचि थी। ये काव्य प्रेमी और कला प्रेमी दोनों थे, फलतः इनकी कला-प्रवृत्तियों का विकास उसी धारा के अनुरूप हुआ है। इन्होंने काकीनाडा के राजा कालेज और मद्रास के स्कूल आफ आर्ट्स में शिक्षा प्राप्त की। देवीप्रसाद राय चौधरी के तत्त्वावधान में मौलिक सर्जना की अभिरुचि जाग्रत की। इनके विद्यार्थी जीवन मे बने चित्रों को भी खूब सराहा गया और ग्राफिक कलाकार के रूप में इन्होंने विशेष ख्याति प्राप्त की। १९५० में मद्रास की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में 'तुलसी' नाम की इनकी सुप्रसिद्ध कृति पर इन्हें प्रथम पुरस्कार प्रदान किया गया। १९५४ में मद्रास और १९५५ में बम्बई में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की गईं। 'हिमवंत और गौरी' नामक इनकी चित्रकृति पर पुनः पुरस्कार मिला और मडीनीलू पर स्वर्ण पदक। भारत में आयोजित प्रायः सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं, साथ ही आस्ट्रेलिया, चीन, जापान और अन्य कतिपय देशों की कला प्रदर्शनियों एवं आयोजनों में भी इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है। १९५६ में आन्ध्र चित्रकला परिषद द्वारा गवर्नर पुरस्कार प्राप्त हुआ। ये आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी, हैदराबाद

प्रथम यात्रा

एकान्त कोना

आर्ट सोसाइटी के सदस्य और एलुरू की साहित्य मण्डली के संस्थापक सदस्य हैं।

इनके रंग बड़े हल्के और गरिमा लिये होते हैं। इनकी रेखाएँ बड़ी व्यंजक और सबल हैं। 'सांध्य अर्चना', 'एकान्त कुटीर', 'शिव भिक्षा', 'शस्य-श्यामला', 'घास कटाई', 'एक पत्र'—आदि इनके चित्रों में रंग-रेखाओं का इतना सुन्दर अनुपात व सामंजस्य है कि विदेशी कला-मर्मज्ञों ने इनके चित्रों की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। संगीत का सा मार्दव और शिल्प-कौशल का अन्यतम आकर्षण लिये इनके चित्रों में विचित्र मोहकता और अभिभूत करने वाली शक्ति है जो दर्शक के मन और दृष्टि को बाँध लेती है।

इनकी खूबी है - सहज दृश्यायोजन अर्थात् ये सच्चे अर्थों में भारतीय जन जीवन और ग्राम्य दृश्यों के चितेरे हैं। इनकी रेखाएं और रंग-विधान इनके अपने अंतर की पुकार हैं। यही कारण है कि लोका चित्रकार के रूप में इनकी भावभंगिमाओं पर लोगों की नजर है।

पी० टी० रेड्डी

आन्ध्र के वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। १६५१ में इनका जन्म करीमनगर में हुआ। शिक्षा बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में हुई। १६४१ में इन्हें भित्तिचित्रण के लिए छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इन्होंने सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट की फेलोशिप से त्यागपत्र दे दिया और १६४२ के 'भारत छोड़ो' आन्दोलन में सम्मिलित हो गए। प्रारम्भ से ही प्रगतिशील विचारों के होने के कारण इन्होंने समसामयिक कलाकारों के एक ग्रुप का संगठन किया, किन्तु आर्थिक कठिनाइयों के कारण इन्हें मजबूरन हैदराबाद में फर्नीचर की दूकान खोलनी पड़ी जिससे कुछ अर्से तक इनकी कला की प्रगति रुक गई। दस-ग्यारह वर्ष की ढील के बाद पुनः कला की ओर ये अग्रसर हुए और तब से लगातार साधनारत हैं। प्रायः सभी प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहते हैं। बम्बई, दिल्ली, हैदराबाद में कई-कई बार ये अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी कर चुके हैं।

इन्होंने सामान्य प्रसंगों और जन-जीवन के बिखरे दृश्यांकनों का चित्रण किया। अधिकतर ये तैल-रंगों का प्रयोग ही करते हैं, किन्तु अन्य माध्यमों को भी सफलतापूर्वक अपनाया है। ये हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के उपाध्यक्ष और स्टेट ललित कला अकादेमी के सदस्य हैं।

सैयद मसूद अहमद

इनके चित्रण शिल्प, रेखाकन और रंगचयन का ढंग बड़ा ही मनोहारी है। रात-दिन नज़रों के सामने गुज़रने वाले दृश्यो को इन्होंने बड़े मनोहारी ढग से प्रस्तुत किया। ख़ासकर रंग-नियोजन में कमाल पैदा किया है। साथ ही इनकी पुष्ट प्रभावमयी रेखाओं द्वारा विषय का अनुरूप प्रतिपादन संभव हो सका है।

१९३६ में पेंटिग में डिप्लोमा लेने के पश्चात् गवर्नमेंट स्कॉलरशिप पर ये लन्दन के रायल कालेज आफ आर्ट में आगे अध्ययन करने के लिए चले गए। इन्होंने यूरोप का व्यापक दौरा किया, विशेष रूप से बच्चों की कला पर इनका गहरा अध्ययन और खोज है। हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स में ये काफ़ी अर्से से काम कर रहे हैं, आजकल वाइस प्रिंसिपल है। न केवल कला-सर्जना में इनकी रुचि है, वरन् कला के उन्नयन में भी इनका भरसक योगदान है। हैदराबाद आर्ट सोसाइटी के निर्माण और उसके विकास में इन्होंने शुरू से ही श्रम-साधना की है। १९५७-५८ मे ये सोसाइटी की कार्य-कारिणी के सदस्य और अवैतनिक कोषाध्यक्ष रहे है। ये इसके संयुक्त सचिव और सचिव भी रहे हैं। सैयद अहमद के चित्रों मे मुग़ल शैली और मुग़ल परम्पराओं का प्रभाव द्रष्टव्य है। मुग़ल वेष-भूषा और नारी-भंगिमाएँ बड़ी ही आकर्षक और सजीव बन पड़ी हैं जिनमें रोज़मर्रा की झाँकी है।

चित्रकारी करते हुए

सईद बीन मोहम्मद

हैदराबाद के सुप्रसिद्ध चित्रकार और मूर्तिकार है जो ख़ास तौर से पोर्ट्रेट चित्रण में बड़े दक्ष है। किसी व्यक्तित्व को आकार और अभिव्यक्ति देने तथा जीवन व चरित्र के सहज आत्मीय पहलू की झाँकी प्रस्तुत करने के लिए उसके अतरंग तत्त्वों में पैठने की आवश्यकता है। इनका दृष्टिकोण यथार्थ-वादी रहा है। इसी आधार पर इन्होंने यथातथ्यता का निरूपण किया और जीती-जागती वस्तुओं को वैसा ही हूबहू अपने रंग-रेखाओं के बल पर चित्रित कर दर्शाया।

पोर्ट्रेट

इनका जन्म महबूब नगर में हुआ। हैदराबाद के सेन्ट्रल स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स मे, जो इस समय कालेज आफ फाइन आर्ट्स कहलाता है, इनकी शिक्षा सम्पन्न हुई। भारत की प्रायः सभी प्रमुख प्रदर्शनियों में भाग लेने के अलावा मिस्र, अफ़ग़ानिस्तान और रूस में आयोजित प्रदर्शनियों में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है। १९४४, ४५, ५२, में हैदराबाद की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार प्राप्त होते रहे। १९५३ में देवस्कर स्वर्ण पदक और प्रथम पुरस्कार मिला। मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी मे भी इन्हे प्रथम पुरस्कार उपलब्ध हुआ। लोक सभा के लिए इन्हें एक भित्तिचित्र बनाने का काम सौंपा गया। हैदराबाद में प्रथम स्वतन्त्रता संघर्ष की शतवार्षिकी के स्मारक-निर्माण का दायित्व भी इन्होंने ही पूरा किया।

सईद बीन मोहम्मद 'स्टिल लाइफ' अर्थात बेजान चीज़ों के चित्रण में बेहद रुचि रखते हैं। प्रतिपाद्य विषय के प्रतिपादन में वे सापेक्षवाद के क़ायल हैं, तार्किक आस्था के नही। इनके मन की सरल निष्ठा और विश्वास ही इन्हें साधना पथ पर अग्रसर कर सका है। नई दिल्ली के राष्ट्रीय संग्रहालय, हैदराबाद म्यूज़ियम, सालारजंग म्यूज़ियम और अन्य स्थानीय सरकारी एवं गैर सरकारी संग्रहालयों में इनकी कृतियाँ सुरक्षित हैं। आजकल हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स में ये काम कर रहे हैं।

गाय

नरसिंह राव

लगभग दो दशकों से व्यावसायिक कलाकार के बतौर कला-साधना में प्रवृत्त हैं। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इनकी शिक्षा हुई, तत्पश्चात् तीन वर्ष तक फ्रांस में वहाँ के सुप्रसिद्ध कलाचार्य आन्द्रे लोहते के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। फ्रांस में अपने प्रवास के दौरान विभिन्न किस्म के संग्रहालयों की कला का गम्भीर अध्ययन किया, साथ ही आधुनिक यूरोपीय धाराओं—यथा 'क्यूबिज्म' अर्थात् घनाकृतिवाद को प्राच्य कल्पना के साथ कैसे संश्लिष्ट किया जा सकता है, क्या यहाँ के प्राचीन कला के नमूनों व डिज़ाइनों में उसका कोई अस्तित्व खोजा जा सकता है, क्या भारतीय और यूरोपीय कला धाराओं के प्राचुर्य में कहीं किसी प्रकार का साम्य है आदि विषयों की इन्होंने विश्लेषण व अन्वेषण किया।

हैदराबाद, मैसूर, राजामुंदरी के अलावा दिल्ली और बम्बई में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित की। फ्रेंच कलाकारों की प्रदर्शनी तथा फ्रांस मे आयोजित अन्य कला-प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया। इंडिया आर्ट सोसाइटी की ओर से लंदन में आयोजित इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनी बड़ी ही सफल बन पड़ी। दो बार इटली में और वेनिस बियनले में आयोजित प्रदर्शनी तथा भारत के अनेक सरकारी व ग़ैरसरकारी संग्रहों में इनके कृतियों को सम्मानपूर्वक स्थान मिला है।

वी० मधुसूदन राव

ये एक मध्यवर्गीय तेलुगु ब्राह्मण कुल में उत्पन्न हुए। बाल्यावस्था से ही कला में अभिरुचि होने के कारण बड़े उत्साह और शौक़ से ये पेंटिंग करते। इनकी मन बहलाव की यह प्रवृत्ति शनैः शनैः गंभीर साधना मे परिणत होती गई, फलतः १६४५ में इन्होंने हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। इनके श्वसुर एम० नरसिंहम भी कला का शौक रखते थे। उनसे इन्हें विशेष प्रेरणा मिली। हैदराबाद की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, मैसूर प्रदर्शनी और अन्य कतिपय समसामयिक आयोजनों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए। काहिरा और पश्चिम जर्मनी में इनकी कृतियाँ क्रय की गईं। राज्य सरकार और केन्द्रीय सरकार ने भी इनके कुछ

चित्रों की लोक सभा के लिए खरीद की है। १९५७ में हैदराबाद में आयोजित अखिल भारतीय औद्योगिक प्रदर्शनी के आन्ध्र प्रदेश कक्ष का सज्जा-कार्य इन्हें सौंपा गया।

टेम्परा और तैलरंगों में इन्होंने अधिकतर ग्राम्य दृश्यों का चित्रण किया है। 'पुष्प विक्रेता', 'धान पछोरते हुए' आदि में इनकी पुरस्कृत चित्रकृतियां हैं जो अमेरिका व यूरोपीय देशों में बहुप्रशंसित हुई। उन पर आधुनिक यूरोपीय धाराओं का भी प्रभाव है और इन्होंने अनेक नए प्रयोग किये हैं। हैदराबाद आर्ट सोसाइटी से ये वर्षों से सम्बद्ध हैं। आजकल हैदराबाद के हैदरगुड़ु गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट स में काम कर रहे हैं।

भावमयी भंगिमा

के० शेषगिरि राव

हैदराबाद स्टेट के वारंगल जिले के तालुका महबबाबाद स्थित पेनुगोंडा नामक एक छोटे से गांव के ब्राह्मण परिवार में पैदा हुए। इनके पिता ज़मींदार और सम्पन्न व्यक्ति थे। किन्तु दुर्भाग्यवश कुछ ऐसा घाटा हुआ कि बड़ी गरीबी छा गई। अपनी शिक्षा के लिए भी इन्हें दूसरों का मुहताज़ हो कर दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं,पर इन्होंने कला-साधना को न छोड़ा। वारंगल कालेज में ये पढ़ते रहे। दीनदयाल नायडू, जो उस समय आर्टिस्ट के बतौर उक्त कालेज में कार्य कर रहे थे, इनके प्रेरक और मार्गदर्शक सिद्ध हुए। नवाब मेंहदी नवाज जंग बहादुर की सहायता के फलस्वरूप ये हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ

फाइन आर्ट्स में दाखिल हो गये और फाइन आर्ट्स ऑनर्स में डिप्लोमा लिया। नवाब साहेब की प्रेरणा एव प्रोत्साहन से ये शांतिनिकेतन गए और नंदलाल वसु के तत्त्वावधान में बहुविध प्रणालियों का अध्ययन किया।
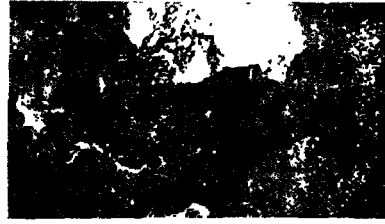
रायगिरि की चट्टानें

टेम्परा, जलरंग, तैलरंग, सिल्क आदि कितने ही माध्यमों मे इन्होंने प्रयोग किये है। सफेद-काले में इन्होंने दृश्याकनों का सफल चित्रण किया है। जयपुर पद्धति के भित्ति-चित्रों का निर्माण किया है तथा चीनी ब्रुश-शैली में उन्मुक्त और सशक्त प्रयोग भी किये हैं। भारत और विदेशों की कतिपय प्रदर्शनियो में इन्होंने भाग लिया है और कितने ही स्थानों में ये अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित कर चुके हैं। भारत सरकार ने पार्लियामेंट में म्यूरल पेंटिंग का दायित्व इन्हें सौंपा। आजकल हैदराबाद के हैदरगुडु गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स में काम कर रहे हैं।

वेलूरी राधाकृष्णा

मुख्यतः ग्राफिक कलाकार हैं। मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। भारत सरकार की ओर से शांतिनिकेतन की विश्व भारती में भी ये कुछ समय तक विशेष प्रशिक्षण लेते रहे। ये शुरू से ही साहित्य एवं कला में रुचि रखते हैं। इनके अधिकतर धार्मिक प्रसंग होते हैं। आन्ध्र पत्रिका के आर्टिस्ट के रूप में काम करते रहे। नई दिल्ली के आर्ट्स एंड क्राफ्टस सेंटर, पश्चिमी कमान के भी कुछ अर्से तक सुपरिटेंडेंट रहे। मैसूर, पंजाब, कालीकट, कलकत्ता, उज्जैन, ग्वालियर, बम्बई, हैदराबाद में आयोजित अनेक प्रमुख प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुके हैं। स्विटजर लैण्ड के

सुंघनी का मजा

भारतीय दूतावास में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है और विदेशों में इनकी कला कृतियाँ क्रय की गई हैं। नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्टस एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं और कला के उत्थान एवं विकास में सदा सक्रिय सहयोग देने में बेहद उत्साह और रुचि रखते हैं।

गुलाम जालानी

ये चित्रकार और मूर्त्तिकार-दोनों है। बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने शिक्षा प्राप्त की, तत्पश्चात् मूर्त्तिशिल्प डिजाइन मे लंदन से नेशनल डिप्लोमा प्राप्त किया। यूगोस्लाविया की फाइन आर्ट्स एकेडेमी से भी मूर्त्तिकला में डिप्लोमा लिया। इन्होंने अपने विषय की खोज और व्यापक अध्ययन के लिए भारत और विदेशो मे भ्रमण किया है। कला में बहुज्ञ तो हैं ही, विभिन्न माध्यमों और प्रणालियों को भी अपनाया है। लिथोग्राफी, इल-स्ट्रेशन, पेंटिंग, मॉडल-निर्माण कला, मूर्त्तिकला और कमर्शियल आर्ट में इनकी समान पैठ और दक्षता है।

१९४९ मे लदन में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित की। यूरोप में इनके मूर्त्ति-निर्माण कौशल की सराहना हुई और अनेक विशिष्ट व्यक्तियो की प्रतिमाएँ बनाने का इन्हें मौका दिया गया। हैदराबाद आर्ट सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी और अन्यान्य समसामयिक आयोजनों मे ये सोत्साह भाग लेते रहते है और पुरस्कृत भी हुए है। प्रादेशिक सरकार और यूगोस्लाविया सरकार की छात्रवृत्ति पर ये वर्षो यूरोप में कला के गंभीर अध्ययन-मनन मे लगे रहे और विभिन्न विषयों मे प्रमाण पत्र उपलब्ध किये। आजकल हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट मे मूर्त्तिकला विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे है।

बद्रीनारायण

सिकन्दराबाद के तरुण कलाकार बद्रीनारायण लोकचित्रांकन की सर्वथा नई मौलिक प्रणालियों को लेकर अग्रसर हुए है। दैनन्दिन प्रसग, यू ही अना-यास नज़रों के सामने आ जाने वाले दृश्यांकन जिन्हें रंगों के आकर्षण से सजीव बनाया गया है। मुग़ल और राजपूत शैली, दक्खिन कलम और लोक-चित्रों का मिल-जुला प्रभाव इनकी कला पर द्रष्टव्य है।

हल्के, फीके या कहें कि रंजीदा रंगों को नहीं बल्कि चटकीले रंगों को इन्होंने चुना है। इनका दृष्टिकोण उन्मुक्त, उदार और खुशनुमा है। अवसाद या निराशा का कुहरा अथवा माडर्न आर्ट की दुर्भेद्य जटिलता से परे हमें सर्वत्र इनके चित्रों में निर्बाध सदाशयता दीख पड़ती है। रेखाओं और रंगों के मेल से लालित्य मुखरित रंजक शैली का आविष्कार करते हैं जो इनका अपना मौलिक प्रयास है।

कुछ प्रमुख नगरों में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की है और ये पुरस्कृत भी हुए हैं। इनके चित्रण की खास खूबी यही है कि आन्ध्र की लोक परम्परा के अनुसार इन्होंने उसे सर्वथा एक नया रूप देकर निजी ढंग से अग्रसर किया है।

प्रिय पक्षी के साथ

आन्ध्र प्रदेश, खासकर हैदराबाद में इधर कला का अत्यधिक विकास हुआ है। अनेक छोटे-बड़े कलाकार सक्रिय हैं और उनकी सबसे बड़ी खूबी है कि चित्रण परम्परा में नये रूप-विधान के मोह में पड़कर उन्होंने अराजकता का अनुमोदन कहीं नहीं किया। न वहाँ के कलाकारों में आधुनिक परिपाटी पर कोई अविच्छेद्य या असम्बद्ध उद्भावना है और न ही वाह्य एकता या आंतरिक अन्विति के विपरीत भावगत द्वन्द्व। विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकारों में हैदराबाद के **वसंत गोडसे**, जो गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट से सम्बद्ध हैं और अनेक प्रदर्शनियों में पुरस्कृत हो चुके हैं तथा भारत सरकार द्वारा लोकसभा में भित्ति चित्रण का कार्य भी सम्पन्न कर चुके हैं। **प्रभाकर कट्टी**, जो मुख्यतः ग्राफिक कलाकार, व्यंग्य चित्रकार और लिथोग्राफी व लाइनोकट के विशेषज्ञ हैं तथा हैदराबाद के गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स में काम कर रहे हैं, जिनकी शिक्षा लंदन में हुई और गवर्नमेंट कालेज आफ फाइन आर्ट्स एण्ड आर्किटेक्चर के प्रिंसिपल इंचार्ज हैं, गुंटूर के **एम० वेंकट सुब्बाराव** ब्रह्मैया और **कृष्ण दास** (मूर्तिकार) जो सरकार के पुरातत्व विभाग से सम्बद्ध है, **मनमोहन दत्त** जो पेस्टल, पेन, इंक और **तैल-रंगों** के दक्ष चित्रकार हैं, पश्चिमी गोदावरी जिले स्थित पेंटापाडु के सुप्रसिद्ध भित्तिचित्रकार **पटनायक** जो स्थानीय गवर्नमेंट कालेज में काम कर रहे हैं और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एडेकमी आफ फाइन आर्ट्स, राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, मैसूर की दसैरा प्रदर्शनी, मद्रास प्रदर्शनी, आदि में भाग ले चुके है तथा प्रमुख कलावीथियों में जिनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला है, विजयवाड़ा के **वेनुगोपाल** जो व्यावसायिक कलाकार के बतौर लगभग बीस-पच्चीस वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त है और प्रमुख स्मारकों एवं कलाकेन्द्रों में भ्रमण कर चुके है तथा आन्ध्र के पूर्वी गोदावरी जिले में स्थित अमलापुरम के **पेरी सुब्बाराव** जो कला-सृजन के साथ-साथ कला के उत्थान में भी रुचि रखते हैं, सिकन्दराबाद के **डोराई स्वामी** जो आधुनिक पद्धति पर चित्रांकन करते हैं और व्यावसायिक कलाकार, लिथोग्राफर व पुस्तक सज्जाकार के रूप में काम कर रहे हैं, यहाँ के दूसरे कलाकार **एम० ज़कीर** वर्षों से कला-साधना कर रहे है, राजामुंद्री के **एम० राजाजी** जो एक कुशल भित्तिचित्रकार और दृश्यचित्रकार हैं और स्थानीय **रामाराव आर्ट** स्कूल के प्रिंसिपल हैं, काकिनाडा के **सत्यानंदम** जिन्होंने हर प्रकार की पद्धतियों में प्रयोग किये हैं, गुलबर्गा के **वासुदेव कपन्नाल** जो आधुनिक चित्रांकन करते

हैं, महबूब नगर के **मोहम्मद यसीन** जिन्हें राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में गोल्ड प्लेक और हैदराबाद आर्ट सोसायटी से गोल्ड मैडल प्राप्त हुआ तथा 'स्टिल लाइफ' व टेम्परा व तैल रंगों में छविअंकन के कुशल कलाकार हैं, इसके अतिरिक्त कितने ही कलाकार ऐसे हैं जो लोक चित्रांकन पद्धति पर काम कर रहे हैं। वियनगरम् के **केतिनीडि भास्कर राव**—इन्होंने आन्ध्र जनजीवन और सामान्य वर्ग की समस्याओं का चित्रण किया है। यहाँ की दूसरी कलाकार **श्याम सुन्दरी देवी** नारी भंगिमाओं और उनकी मनोवैज्ञानिकचेष्टाओं की कुशल शिल्पी है। आन्ध्र की सुप्रसिद्ध लोकचित्रकार **वी० राजलक्ष्मी और विजयलक्ष्मी** अपनी काव्यगत रुचियों को कला में उजागर करती हुई नारी के सूक्ष्म मनोभावों, वेशभूषा,केशविन्यास और उनकी हर चेष्टा व भावभंगी की दिग्दर्शक हैं। **विश्वनाथम्** गुड्डे-गुड़ियों के चित्रकार है और बहुविध शैलियों में प्रयोग किये हैं। राजा महेन्द्री के **के०पार्वतीराम** जिन पर कठपुतलियों का प्रभाव है और इस प्रकार की खोज में लगे हैं, यहाँ की दूसरी कलाकार **कृपावती** भी मौलिक ढंग के प्रयोग कर रही हैं। हैदराबाद के नवोदित चित्रकार **ए० गोपाल कृष्ण** और **वि० माधवराव** लोक मानस और व्यक्ति-चेतना में सामंजस्य स्थापित करने का प्रयास कर रहे हैं। **कोठि धर्माराव, रामबाबू, आर० पी० मंडल, प्रेम रामानंद, हरि गोपाल** आदि तरुण कलाकारों का एक ग्रुप हर तरह के नव्य प्रयोगों के सहारे कलाधारा को सम्पुष्ट बनाने में प्रयत्नशील है। अपने प्रदेश की संस्कृति और जनजीवन में इन्हें आस्था है और अपनी धरती की गंध से भरीपूरी भावभीनी व्यंजना को मुखर करने में वे साधनारत हैं।

मद्रास ग्रुप

मद्रास की मौजूदा कला के उन्नयन का श्रेय **देवीप्रसाद राय चौधरी** को है जिन्होंने बंगाल स्कूल की परम्पराओं को लेकर सर्वप्रथम यहाँ प्रवेश किया था। समूचे दक्षिण प्रान्त पर उनका प्रभाव पड़ा और उनके शिष्य-प्रशिष्य दूर-दूर तक बिखर गए। आन्ध्र और द्राविड़ कला-रूढ़ियाँ इस नई भावधारा के संयोग से प्रशस्त हो उठीं। यह वह समय था जबकि यहाँ की कला ने करवट ली थी और सही मार्ग दर्शन ने एक रास्ता सुझाया था। आज मद्रास ग्रुप काफी तगड़ा है और कला-क्षेत्र में उसका महत्त्वपूर्ण दाय है।

के० माधव मेनन

पशु-पक्षियों के कुशल चितेरे माधव मेनन ने अपनी सूक्ष्म मौलिक चित्रांकन

शैली से अपने भीतर की विराट् संवेदना को एक नये अर्थ के साथ व्यंजित किया है। प्रारम्भ में ही प्रकृति से इनका सहज तादात्म्य हो गया था। कुदरत के क्रीड़ा-कौतुक और जंगली जीवन में इनकी रुचि जगी। तरह-तरह के जानवरों, जलचर, थलचर, नभचर, पेड़-पौधों और फूल-पत्तियों का इन्होंने गहरा अध्ययन किया और उनके सुन्दर चित्र आँके। इनके लैंडस्केप और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र भी बड़े सुन्दर बन पड़े हैं।

त्रावणकोर-कोचीन के मालाबार तटवर्ती ऐतिहासिक स्थल क्रैन गैनोर में में इनका जन्म हुआ। छुटपन में ही सीलोन में बसने वाले अपने चाचा के यहाँ ये चले गए। वहाँ से लौटने पर इनके किसी सम्बन्धी ने इन्हें अडयार

कमल तड़ाग

की थियोसोफिकल सोसाइटी में दाखिल करा दिया। वहाँ पढ़ाई में तो इनका मन नहीं लगा, पर बंगाली कलाकार **ए० पी० बनर्जी** से इनकी भेंट हुई जिन्होंने सबसे पहले इनमें कला की अभिरुचि जगाई। अपने विद्यार्थी जीवन में विभिन्न पक्षियों की चित्रकारी के पीछे इन्होंने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया।

कुछ दिन बाद ये कलकत्ता चले आए और **रमेन्द्रनाथ चक्रवर्ती** के तत्त्वावधान में स्थानीय आर्ट स्कूल में शिक्षण प्राप्त करते रहे। शांतिनिकेतन में भी **अवनीन्द्रनाथ ठाकुर** और **नन्दलाल वसु** की सन्निधि में इन्होंने कला की साधना की। वहाँ रहकर इन में मौलिक प्रतिभा का विकास हुआ और कोचीन सरकार की छात्रवृत्ति पर मद्रास स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में वहाँ के प्रिंसिपल **देवीप्रसाद राय चौधरी** के तत्त्वावधान में कार्य करते रहे। लगभग १९३० से भारत की सभी प्रमुख समसामयिक प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और अन्यान्य आयोजनों में कितने ही स्वर्ण व रजत पदक इन्हें प्राप्त हो चुके हैं। दक्षिण भारतीय कलाकार सोसाइटी की कला परा-पर्शदातृ समिति के सदस्य तथा १९४२से१९५० के दौरान श्री चित्रालयम के डायरेक्टर रह चुके हैं। १९४५ में लार्ड व लेडी वेवल ने इनके एक चित्र 'घर की ओर' जिसमें
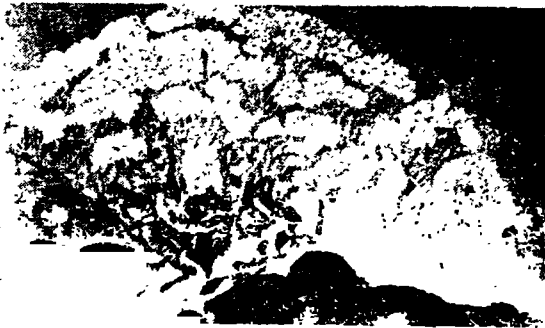
मन्दिर का पल्लवित वृक्ष

संध्या समय मवेशियों का झुंड खेतों में विचरण करता गन्तव्य की ओर बढ़ रहा है, क्रय कर लिया था। इसके अतिरिक्त अमेरिका के भूतपूर्व प्रेज़ीडेंट रूज़वेल्ट के व्यक्तिक राजदूत विलियम फिलिप्स विगत महायुद्ध के दिनों में अपनी भारत यात्रा के दौरान इनके कई चित्र खरीद कर ले गए थे। भारत सरकार के भूतपूर्व गृहमंत्री सर थॉर्न, नवाब सालरजंग और सर जहाँगीर तथा बम्बई के सर जे०जे० स्कूल आफ आर्ट द्वारा इनके अनेक चित्र खरीदे गए। इनके चित्र विदेशों में दीवारों की शोभावृद्धि करते हैं, यहाँ तक कि देश-विदेश में

लंदन के कामनवेल्थ कला समारोह में इनके चित्रों को प्रतिनिधित्व मिला, साथ ही अनेक मैडल और अवार्ड भी प्राप्त हुए। १६५४ में इन्होंने इंग्लैण्ड, फ्रांस, स्विट्जरलैण्ड और इटली का दौरा किया, १६५६ में रूस तथा १६६३ में अमेरिका गए। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और ललित कला अकादेमी, मद्रास की नेशनल आर्ट गैलरी तथा अनेक देशी-विदेशी कला वीथियों में इनके चित्रों को सम्मान मिला है। ललित कला अकादेमी की जनरल कौंसिल के नौ प्रमुख कलाकारों में इनका निर्वाचन हुआ। भारत सरकार के कल्चरल स्कालरशिप प्रदान करने वाले निर्णायक सदस्यों में से ये एक है। इसके अतिरिक्त कितनी ही प्रमुख कला प्रदर्शनियों की परामर्शदातृ समितियों के सलाहकार और निर्णायक हैं।

सुशील कुमार मुखर्जी

मुखर्जी के प्रारम्भिक चित्रों में अपने कलागुरु देवीप्रसाद राय चौधरी का प्रभाव द्रष्टव्य है,पर शनैः शनैः उनमें परिपक्वता आती गई। उनके लैंडस्केप व दृश्य चित्रणों में वैंगाफ की सी रंग सज्जा और विशृंखल चारुता है तो निर्माण-प्रक्रिया पर व्हिसलर के छवि अंकनों का सा लयमय मार्दव है। 'रहस्यमय महल की राजकुमारी' जैसे चित्रों में रूमानी रंग-मिश्रणों की टेकनीक आकर्षण पैदा करती है, किन्तु जहाँ इनके रंग कुछ हल्के या धूमिल हैं तो वहाँ गमग़ीन दार्शनिकता उभर आई है।

मद्रास के गवर्नमेंट कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। लगभग दो दशकों से ये चित्रकार और मूर्तिकार के रूप में कार्य कर रहे हैं, काहिरा, मिस्र, चीन, आस्ट्रेलिया, पेरिस की यूनेस्को अन्तर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और लंदन के इंडिया हाउस में आयोजित सम-सामयिक भारतीय कला प्रदर्शनी में भाग लिया है,एक्सचेंज प्रोग्राम के अन्तर्गत अमरीकी सरकार के अनुदान पर इन्होंने समूचे यूरोप और अमेरिका का दौरा किया। मद्रास, ऊटकमंड, कलकत्ता, बंगलौर, इंडिया हाउस, न्यूयार्क, विस-कौंसिन गैलरी यूनीवर्सिटी, लैटिन आर्ट स्कूल गैलरी, एपलटन की वोरसेस्टर आर्ट गैलरी में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित की हैं, साथ ही यहाँ की राष्ट्रीय कलाप्रदर्शनी,आल इंडिया फाइन आर्टस एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, दक्षिण भारतीय कलाकार प्रदर्शनी, अन्तर्राष्ट्रीय समसामयिक कला प्रदर्शनी, मद्रास की अखिल भारतीय प्रदर्शनी और बुद्ध

एकान्त कमरे में

जयन्ती समारोह के अवसर पर आयोजित प्रदर्शनी में भी प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। ये अनेक प्रमुख कला संस्थाओं से सम्बद्ध हैं और आजकल नीलगिरि के लारेंस स्कूल, लवडेल के कला विभाग के अध्यक्ष पद पर कार्य कर रहे हैं।

एस० धनपाल

इन्होंने भी मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स से

झूमता सांड

डिप्लोमा लिया। मुख्यतः ग्राफिक आर्टिस्ट और मूर्त्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। सफेद-काले में निर्मित स्केच, टेम्परा, वाटर कलर तथा ब्रुश व पेंसिल से आंके गए गंभीर विषय—सभी में इनकी प्रतिपादन शैली परिपक्व हो उठी है, खासकर 'समारोह', 'जादू का महल' जैसे चित्र जिनमें बच्चों की सी सहज मुग्धता और माधुर्य है। इनकी मूर्त्तिकला पर पल्लव और चोल युगीन शैली का प्रभाव है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, कलकत्ता की आर्ट एकेडेमी, प्रगतिशील कलाकार संघ, अखिल भारतीय मूर्त्तिकला प्रदर्शनी, मद्रास की अखिल भारतीय खादी और स्वदेशी कला प्रदर्शनी में ये भाग लेते रहे हैं और पुरस्कृत हो चुके हैं। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट, मैसूर की जगमोहन पैलेस गैलरी, मद्रास की नेशनल आर्ट गैलरी

तथा तंजोर आर्ट गैलरी में इनके चित्रों को स्थान मिला है। प्रगतिशील कलाकार संघ के ये सदस्य हैं और आजकल मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल में मार्डलिंग के प्रशिक्षक के बतौर काम कर रहे हैं।

एच० वी० रामगोपाल

मद्रास के सुप्रसिद्ध पोर्ट्रेट चित्रकार राम गोपाल में सूक्ष्म निर्माण कौशल, सुष्ठु अंकन और नफ़ासत है। 'बिल्ली', 'देवीप्रसाद राय चौधरी' आदि के चित्र काफ़ी मशहूर हो चुके हैं। इन्होंने ग्राफिक में अधिकतर कार्य किया है और मूर्त्ति-निर्माण भी करते हैं। इनकी शिक्षा काकिनाडा के राजा कालेज और मद्रास कालेज आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में हुई। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी,

बिल्ली

एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स और विदेशों में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स द्वारा चित्र प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं और मद्रास, देहरादून आदि में अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनी का आयोजन कर चुके हैं। ये प्रगतिशील कलाकार संघ के सदस्य हैं। आजकल मद्रास के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में कला प्रशिक्षक हैं।

पाल राज

लगभग १५—२० वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। जल रंगों में यथार्थवादी कलाकार के रूप में ये खासतौर से प्रसिद्ध हैं। मद्रास, मैसूर, हैदराबाद और कलकत्ता में आयोजित प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है और अनेक स्वर्ण व रजत पदक तथा पुरस्कार प्राप्त किये हैं। बम्बई, दिल्ली और कोदाइ कैनाल में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ की हैं। लंदन की स्ट्रैण्ड गैलरी और वैटिकन, रोम में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। ये बाम्बे आर्ट सोसाइटी के सदस्य और अन्य कला संस्थाओं से सम्बद्ध हैं।

जे. ग्नानायुथम

लगभग १५—२० **वर्षों** से व्यावसायिक कलाकार के बतौर कार्य कर रहे हैं। ये मद्रास के निकट एक छोटे से गाँव में पैदा हुए। जन्मतः भारतीय ईसाई हैं, किन्तु इनकी कला के प्रति रुचि जन्मजात है। इन्होंने **देवी प्रसाद राय चौधरी** के तत्त्वावधान में मद्रास आर्ट कालेज में अध्ययन किया। भारत में होने वाली समसामयिक प्रदर्शनियों में जलरंग निर्मित अपनी अनेक कलाकृतियों को भेजा और उपलक्ष्य में इन्हें अनेक पुरस्कार व प्रशस्ति पत्र मिले। इनकी सुप्रसिद्ध कृति 'तीन बन्दर' आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स द्वारा मद्रास में आयोजित प्रदर्शनी में पुरस्कृत हुई। बाद में भारत सरकार की नेशनल आर्ट गैलरी के लिए उसे खरीद लिया गया।

वृक्षों की छाया तले

१६५२ में 'गाँव की सड़क' नामक कलाकृति पर पटना की शिल्प कला परिषद द्वारा आठवीं अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी के अवसर पर मैडल प्रदान किया गया। जलरंगों में यह दृश्य चित्रण बड़ा सफल बन पड़ा था। 'मध्याह्न विश्राम' नामक इनकी चित्रकृति पर मैसूर की दसैरा कला प्रदर्शनी में इन्हें प्रथम पुरस्कार मिला। मद्रास की फाइन आर्ट प्रदर्शनी, तंजोर कलाविथि कोदाई कैनाल कला प्रदर्शनी, राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और इंडियन एकेडमी आफ फाइन आर्ट्स में इन्हें सर्वत्र प्रथम पुरस्कार मिलते रहे।

हवा का रुख

ये प्रायः गीले रगो से चित्रण करते है। जैमिनी स्टूडियो के आर्ट डायरेक्टर के रूप मे बड़े बड़े कैन्वासों पर गहरे 'स्ट्रोक' और ब्रुश के झपाटों से इन्होंने प्रभाव व्यंजक चित्रों की सृष्टि की है। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और अमेरिका के राज्य सग्रहालय में इनके कतिपय चित्र सुरक्षित है।

ग्राम्य अंचल में

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकार

मद्रास के विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकारों में **आर० बालरामन**, जो व्यावसायिक तौर पर ग्राफिक आर्टिस्ट के रूप में कई बर्षो से साधना करते आ रहे हैं और भारत सरकार के पुरातत्व विभाग से सम्बन्ध है, **एस० एन० चमकूर**

जो बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में पढ़े और प्रमुख नेताओं की पोर्ट्रेट पेंटिग में निष्णात हैं, **हेनरी डेनियल** जो मद्रास के आधुनिकतावादी प्रगतिशील कलाकार हैं, **एंथोनी दास** जो गोल्ड प्लेक विजेता और प्रगतिशील कलाकार संघ के सम्मानित सदस्य हैं, **एस० गोपालन** जो तमिल साप्ताहिक पत्र के चित्रकार हैं, **कंडा स्वामी** जो चित्रकार और मूर्तिकार दोनों हैं और मैसूर, हैदराबाद, लखनऊ, पटना, कलकत्ता, केरल, तंजोर आदि स्थानों में कला प्रदर्शनी कर चुके है, **एस०एस० मेनन** जो मुख्यत: ग्राफिक आर्टिस्ट, पर व्यंग्य चित्रकार भी हैं और आनन्द विकतन साप्ताहिक तमिल पत्रिका के सफल चित्रकार है, **एम०सूर्यमूर्त्ति**, जो सुप्रसिद्ध भित्ति चित्रकार और ईचिंग में दक्ष हैं, **एस०मुरुगेसन** जो सफल चित्रकार होने के साथ-साथ कला के उन्नयन में दिलचस्पी रखते है तथा अन्यान्य प्रगतिशील कलाकारों मे **एम०रेड्डेप्पा नायडू**, **आर०पद्मनाभ पिल्लइ**, **अरुल**, सुप्रसिद्ध भित्ति चित्रकार और ले- आउट विशेषज्ञ **कृष्ण राव**, आधुनिक शैली के प्रयोगकर्त्ता और मौलिक चिन्तक **सारंगन**, पोर्ट्रेट पेंटर **एस०के० राजावेलू** (इरोद) तथा अन्यान्य कलाकारो मे **रंगाराव**, **नरसिंहराव**, **वेंकटराव**, **सुरेन्द्रनाथ**, **वैद्यनाथन**, **वरदाराजन**, **आर० वेंकटेशन**, **विश्वनन्दनम्** आदि कलाकार है जो बड़े उत्साह और अंतरंग प्रेरणा के वशीभूत कला के विकास एवं उत्थान में दत्तचित्त रहकर नित-नए मार्गों के अन्वेषक एवं आविष्कर्त्ता हैं।

मैसूर ग्रुप

मद्रास ग्रुप के समानान्तर मैसूर ग्रुप भी काफी तगड़ा है और दक्षिणी कला को समृद्ध कर रहा है। अनेक छोटे-बड़े कलाकार कला के क्षेत्र में प्रयोग-रत प्राचीन-अर्वाचीन शैलियों में काम कर रहे है।

डी० बद्री

लगभग तीस वर्ष से कला-साधना में प्रवृत्त है। भारतीय परम्परागत शैली और पश्चिमी पद्धति दोनों का प्रभाव इनकी कला पर है। इन्होंने विदेशों में भ्रमण किया है और आधुनिक कलाधाराओं का इन्हें गहरा अध्ययन है। १९५२ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से भारतीय कला प्रदर्शनी का आयोजन करने के लिए ये चीन और जापान गए थे। वहाँ

की कला का प्रभाव भी इन पर हैं। मध्यपूर्व, आस्ट्रेलिया, रूस, इंडोनेशिया की प्रमुख भारतीय कला प्रदर्शनियों में भी इन्होंने भाग लिया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, हैंदराबाद आर्ट सोसाइटी, अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स तथा नई दिल्ली की आल

प्रकृति के अंचल में

इंडिया फाइन आर्ट एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित कला प्रदर्शनियों और हर वार्षिक आयोजनों में इन्होंने सहयोग दिया है और इन्हें अनेक पदक एवं पुरस्कार प्राप्त हो चुके हैं।

इनके रगों में बहुविध तत्त्वों के सफल योजन की क्षमता है। इनका दृष्टिकोण समन्वयवादी है, प्राच्य-पाश्चात्य के अंतर्विरोधों के बावजूद इन्होंने प्रकारान्तर से दोनों में सामंजस्य लाने के प्रयत्न किये है। आजकल ये बंगलौर में आल इंडिया हैंडी क्राफ्ट बोर्ड डिज़ाइन सेन्टर के डायरेक्टर हैं।
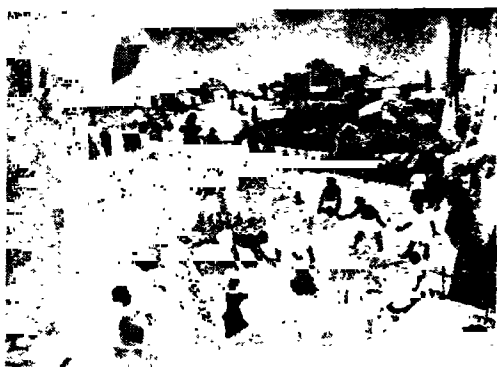
गाँव का एक दृश्य

जे० ए० लालका

वरिष्ठ कलाकारों में से हैं और लगभग ४०-५० वर्षों से कला-क्षेत्र में कार्य कर रहे हैं। इन्होंने बम्बई और लंदन में कला का प्रशिक्षण लिया, रायल सोसाइटी आफ आर्ट के ये फैलो भी रह चुके हैं। पोर्ट्रेट पेंटिंग में विशेष रूप से दक्ष हैं। १६३० में ब्रिटिश सरकार द्वारा वायसराय भवन के लिए जार्ज-पंचम और महारानी मेरी के शाही छविचित्र बनाने का काम इन्हें सौंपा गया। १६०७ और १६१३ में इन्होंने स्टडी टूर पर यूरोप का भ्रमण किया। १६३० से १६३४ तक ये सर जे०जे०स्कूल आफ आर्ट के डिपुटी डायरेक्टर रह चुके हैं, बम्बई आर्ट सोसाइटी और रायल आर्ट सोसाइटी के सदस्य है और भारत व विदेशों में कला के उन्नयन में हाथ बँटाया है।

बी० शंकरप्पा

मैसूर के सुप्रसिद्ध भित्तिचित्रकार हैं जिन्होंने शान्तिनिकेतन से फाइन आर्ट व क्राफ्ट्स में डिप्लोमा लिया। ग्राफिक कला और मूर्तिकला में भी इन्होंने विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया। बिड़ला भवन में राजस्थान के सुप्रसिद्ध कलाकार कृपालसिंह शेखावत के साथ इन्होंने महात्मा गांधी के विशाल भित्ति चित्रण में सहयोग दिया। तुन हुआंग गुफाओं के अनुचित्रण में भी ये साथ थे और १६५३ में कल्याणी में अखिल भारतीय कांग्रेस पंडाल का सुसज्जा कार्य भी अन्य कलाकारों के साथ इन्हें सौंपा गया था।

मैसूर की दसेरा प्रदर्शनी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा अन्य कितनी ही स्थानीय कला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं।

एस. जी. वसुदेव

बड़े उत्साही कलाकार है। कला-सृजन के साथ-साथ कला के उत्थान और विकास में भी अभिरुचि रखते हैं। मद्रास के गवर्नमेंट आर्ट कालेज में शिक्षा प्राप्त की। भारत सरकार की सांस्कृतिक छात्रवृत्ति पर अनुसंधान कार्य किया। कई वर्षों से राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, कलकत्ता की एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, हैदराबाद आर्ट सोसाइटी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी, मैसूर स्टेट ललित कला अकादेमी, मद्रास स्टेट ललित कला अकादेमी, एर्नाकुलम की अखिल भारतीय लेखक सम्मेलन कला प्रदर्शनी तथा कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली

बंगलौर, मद्रास के कलाग्रुप एवं समसामयिक आयोजनों में ये भाग ले चुके हैं। ये प्रगतिशील कलाकार संघ के सेक्रेटरी और दक्षिण भारतीय कलाकार सोसाइटी के सदस्य हैं। केन्द्र व प्रादेशिक ललित कला अकादेमी, हैदराबाद के सालरजंग म्यूज़ियम, मैसूर सरकार, मद्रास की नेशनल आर्ट गैलरी, इलाहाबाद संग्रहालय, बम्बई की चेमोल्ड गैलरी और बंगलौर के बिड़ला भवन में इनके चित्रों को स्थान मिला है।

विभिन्न प्रवृत्तियों के कलाकारों में गडग, ज़िला धारवाड़ की विजय आर्ट इस्टीट्यूट के डायरेक्टर **अक्की**, गुलबर्गा के **शंकर नारायण अलन्दकर**, मैसूर के **मीर शौक़त अली**, परम्परागत मूर्त्तिकार और चित्रकार **ए० सी० आचार्य**, मूर्तिकार **बी० बासवन्ना**, राजकीय मूर्त्तिकार **बी० बसबैया** जिन्होंने मैसूर राज महलों के लिए अनेक आदमकद प्रतिमाओं का निर्माण किया, सुप्रसिद्ध धातु शिल्पी **एन० वी० चिन्ना चार्य**, मैसूर मैडिकल कालेज के चित्रकार एवं मूर्त्तिकार **वी० कृष्णाह**, पीढ़ी दर पीढ़ी कला का व्यवसाय करने वाले चित्रकार एवं मूर्तिकार **वाई० नागराजू** जो १९२३ से १९५७ के दौरान अवैतनिक महल कलाकार थे और महल के कल्याणमंडप में जिन्होंने बड़ी-बड़ी म्यूरल पेंटिंग निर्मित की थीं तथा नेताओं और बड़े लोगों के पोर्ट्रेट बनाये थे, पोर्ट्रेट लिथो, इचिंग में दक्ष **एस० शंकर राजू** और **सुब्रह्मण्यम राजू**, माडल और कास्टिंग में निष्णात **रामाचार्य**, तैल चित्रकरी, हाथी दाँत और ओपलग्लास के लघु चित्रण में कुशल **एस०रामनरसैया**, पोर्ट्रेट और फिगर कम्पोजिशन में दक्ष एम०एच०रामू तथा स्त्री कलाकारों में यालावती और नीलम्मा के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं।

केरल ग्रुप

केरल में भी अनेक कलाकारों का नया ग्रुप जोर पकड़ता जा रहा है जिसमें पुरानी परम्परा और नये फैशन के कलाकारों में परस्पर होड़ है। केरल स्टेट के चेनागेन्नूर के रामा वर्मा स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स के प्रिंसिपल **के० कृष्णन** सुप्रसिद्ध छविकार हैं जिन्होंने समसामयिक नेताओं और विख्यात व्यक्तियों के पोर्ट्रेट बनाये हैं, प्रगतिशील कलाकार **ए० के० रामावर्मा** और **वी० ए० वासुदेवन** तथा गडग (मैसूर) के विजय आर्ट इंस्टीट्यूट के प्रिंसिपल **चेट्टी** कई वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। यूँ तो भावनात्मक दृष्टि से समूचे दक्षिण प्रदेश की कला एक है, तथापि हर प्रदेश की धरती, वातावरण, परिस्थिति और परम्परा का प्रभाव तो यथानुरूप प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष तौर पर द्रष्टव्य है ही।

मूर्त्तिकार

भारतीय मूर्त्तिकला मानव की चिरशाश्वत भावनाओं का मूर्त्त रूप ही नहीं वरन् परम्पराओं और युगधर्म की वाहक भी है। यहाँ के शिल्पियों ने सौंदर्य की अपेक्षा तन-मन-प्राण का रूपान्तर किया पार्थिव उपकरणों यथा मिट्टी, पत्थर और धातु में। उनकी अंतरंग अभिव्यक्ति का संयोजन, सशक्त और सजग माध्यम, जो आत्मबोध से अनुप्राणित और आध्यात्मिकता से प्रेरित है, नर और नारी आकृति में देवत्व भावना को साकार कर उठा। यहाँ के धर्म की परिकल्पना के अनुसार नारायण पुरुष और श्री को प्रकृति कहा गया है, अतः उनके भगवदीय रूप में सादृश्य लाने और शक्ति-सामर्थ्य की प्रतिष्ठा के लिए जैसे होड़ सी लग गई। शारीरिक सौंदर्य की चकाचौंध से परे मूर्त्तिकार की चरम भावना और अतर्मुखी निष्ठा की प्रतोक हैं भारतीय मूर्त्तियाँ--जो भारत के विभिन्न अंचलों में बिखरी मिलती हैं।

दैवी भावनओं से ओतप्रोत इन मूर्त्तियों की बिशेषता है कि दर्शक न केवल उनके शिल्प-सौंदर्य अपितु ज्वाज्ज्वल्य शक्तिमत्ता से अभिभूत रह जाता है। जन-मानस में युग-युग से संजोये संस्कारों के नाना रूपों में कलाकारों के कुशल हाथों ने अपनी मूक भावनाओं, अंतःकरण में तरंगायित भाव-लहरियों के रंग-बिरंगे स्वरूपों को गढ़ा। कलात्मक मंदिरों में उनके अनुरूप विमान, जगमोहन, नाट्य मंदिर, भोगमंदिर, स्तम्भ, उपपीठ, अधिस्थान, यही नही वरन् एक-एक पत्थर में जैसे प्राण फूँककर उस पुरुष परब्रह्म और पूर्णता की पूरक परमाह्लादिनी आद्याशक्ति, श्रेय-प्रेय, आवर्त्तन-प्रात्यावर्त्तन और उत्पत्ति, पालन एवं संहारमें सृष्टिकर्त्ता की चिरसहचरी है, उनके सायुज्य सिद्धान्त अर्थात दो की एकता की दिग्दर्शक अगणित मूत्तियाँ सिन्धुसभ्यता मोहन्जेदाड़ो और हड़प्पा काल से मध्ययुग को पार करती आधुनिक युग तक इसी भावना का प्रतिनिधित्व करती आई हैं। दर्शक को उन मूर्त्तियों में आध्यात्मिक सिद्धि की अनुभूति हो, उसका लुब्ध मानस उसे आत्मलीन कर ले, उसके दर्शन मात्र से उसकी आकांक्षाएं सहज तोष्य हों और मन-प्राण एकाकार हों तथा उपासना में जो अतीन्द्रिय आत्यंतिक सुख है, उसके तात्त्विक रूप का निदर्शन हो, यही मूर्त्तिकारों का ध्येय था, अतः उनके लिए शिल्प साधना का रहस्यमव महत्त्व था। अवतारवाद के कारण

यहाँ की दैव मूर्तियां अंतर्ज्ञान संभृत तथा रसार्द्रपूर्ण आध्यात्मिक उल्लास से अनुप्राणित होती थीं।

शैशुनाक कालीन यक्ष-यक्षिणियों की प्राय: चुनार निर्मित विशाल आदमक़द प्रतिमाएँ, मौर्य-शुंग युगीन सारनाथ, सांची, कोशाम्बी भरहुत की मूर्त्तियाँ, गांधार शिल्प और कुषाण-सातवाहन कालीन मथुरा मूर्त्ति-शिल्प, दक्षिणापत्य कला की सर्वोत्कृष्ट अमरावती शैली गुप्तकाल जो भारतीय मूर्त्तिकाल का स्वर्णयुग है तथा वाकाटक सम्राटों के समय जब न जाने कितनी बुद्धमूर्त्तियाँ, स्तूप, चैत्य, गुहागृह और मंदिरों का निर्माण हुआ, पूर्व मध्य-काल में अजंता, एलोरा, एलिफेन्टा, मामल्लपुरम और बादामी आदि तथा

माता-पुत्री
सुधीर खास्तगीर की एक आकर्षक मूर्त्ति-भंगिमा

प्रतिकार-कलाकार धनराज भगत

उत्तर मध्यकाल में कोणार्क, भुवनेश्वर, खजुराहो, देलवाड़ा के समीप दो जैन मंदिर तंजोर का शिव मंदिर तथा राजस्थान, उड़ीसा, चोल और होयशल मूर्त्तिकला में तत्कालीन शिल्पियों ने जहाँ एक ओर आदर्श कल्पना और कला-कारिता को प्रश्रय दिया वहाँ दूसरी ओर भावप्रधान और प्रचुर अलंकार युक्त शैली में स्वयंपूर्णत्व के साक्षात्कार की अतिशयता को कितनी ही मूर्त्तियों में व्यंजित किया गया। यहाँ की कला किसी समय इतनी उत्कर्ष पर थी कि विदेशों तक में–जावा, सुमात्रा, कोम्बोडिया आदि में उसका प्रभाव द्रष्टव्य है। मुग़ल शासन काल में मूर्त्तिकला वर्जित थी, अतः उसका उत्तरोत्तर ह्रास होता गया, फिर भी उसका अस्तित्व तो बना ही रहा।

किन्तु आधुनिकता की आँधी ने प्राचीन परिकल्पना को झकझोर दिया है युग और परिस्थिति के अनुसार इन अभिव्यक्तियों के रूप और स्वरूप बदले हैं। आज के बौद्धिक युग की तिक्तता, संघर्ष, आशा-निराशा, सुख-दुःख तथा कितने ही उतार-चढ़ाव की छाप कला पर द्रष्टव्य है। पहले का साधक व संतृप्त शिल्पी अब तार्किक और अतृप्त है, किन्तु इससे लाभ यह हुआ कि इस अपूर्व जिज्ञासा में जीवन के बहुमुखी व्यापकत्व का विश्रृंखल स्वरूप सामने आया। साथ ही यह भी सिद्ध हो गया कि आज का कलाकार किन्हीं मिथ्या रूढ़ियों के बन्धन को नहीं मानता। प्रचलित प्रथाओं की बाध्यता से मुक्त वह हर तरह के प्रयोग का हामी है, अतएव मूर्त्तिकला की हर विधा का उसके हाथों चहुंमुखी विकास हुआ।

स्पष्ट है कि आधुनिक विज्ञान के अतिशयवाद ने मूलभूत तथ्यों को बदल दिया है। मानव मस्तिष्क के चिन्तन क्रम, नियम और व्यवस्था में विभाजक रेखाएँ खिच गई हैं जिससे मन की सहज रसानुभूति उद्वेलित हो उठी है। 'सत्यं-सुन्दरम्' की अभिज्ञता के मूल में द्विधाग्रस्त व्यक्तिसत्ता और स्वकीय मूल्यों का मूर्त्तिकला में आरोपण होने से आधुनिक कला में भी तर्क-वितर्क पैदा हो गएहैं, यही कारण है कि मौजूदा शिल्प कृतियाँ तदनुरूप विकृत और भोंडी होती जा रही हैं।

पददलित चन्दन की लकड़ी की बनी प्राकृति--धनराज भगत

मूर्त्तिकला का सूत्रपात तो अवनीद्रनाथ ठाकुर के हाथों ही हो गया था किन्तु उसमें सार्वदेशिकता नहीं आ पाई थी। विगत कई दशकों से मूर्त्तिकला के क्षेत्र में देवी प्रसाद राय चौधरी का अमूल्य अवदान है। शुरू मे ही वे रोदाँ और अन्य पाश्चात्य कलाकारों से प्रभावित थे। अतः द्वन्द्व का दिग्दर्शन है उनमें। तत्पश्चात् राम किंकर बैज और सुधीर खास्तगीर ने अभिनव प्रयोग किये।

राम किंकर में tension है तो वास्तगीर में व्यंजक मुखरता। दोनों का भावपक्ष जागरूक और प्रखर है। धनराज भगत की प्रारम्भिक मूर्तियों पर हेनरी मूर का प्रभाव है, किन्तु कलाकार की संवेदना के क्रमशः विभिन्न रूप दीख पड़े हैं। शुरू में परम्परागत शैली पर उन्होंने सादृश्य लाने के लिए अनेक सुन्दर मूर्त्तियों का निर्माण किया। पर ज्यों-ज्यों अपने प्रयोगों में वे आगे बढ़ते गए उनकी कार्यपद्धति बदलती गई। अब उनकी प्रतिमाओं के विषय कोई मानवीय स्वरूप या प्रतीक नहीं, वरन् अरूप पद्धति पर प्रलम्बित, सूक्ष्म ज्यामितिक आकृति के मिश्रण का नवीन 'ऑरगेनिज़्म' है। बुद्धिगत स्थापनाओं के आधार पर मूर्त्ति शिल्प के क्षेत्र में यह क्रान्तिकारी परिवर्त्तन चिन्तन की प्रखरता का द्योतक है, फिर भी आज जो अनेक मूर्त्तिशिल्पी पश्चिमी धाराओं की तर्ज़ पर काम कर रहे हैं वे इच्छा रहते हुए भी यथार्थ आकार के प्रति अपने मोह को नहीं तोड़ सके हैं।

वी० पी० करमकर

पुराने खेवे के कलाकारों में देवीप्रसाद राय चौधरी के समकक्ष इन्हीं की गणना की जाती है। लगभग १६१६ से ये कला-साधना-रत हैं। प्रारम्भ में तैल रंगों मे इन्हें छविअंकन का शौक़ था किन्तु मूर्त्तिकला की ओर इनका झुकाव स्वर्गीय ओटो रोथफील्ड आई० सी० एस० की प्रेरणा से हुआ। यूँ तो बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के ये छात्र रहे हैं, किन्तु इन्होंने स्टडी टूर पर इंग्लैण्ड, फ्रांस, इटली, हंगरी, अमेरिका आदि देशों का भ्रमण किया। उच्च अध्ययन के लिए ये लंदन की रायल एकेडेमी आफ आर्ट में कई वर्ष तक रहे और वहां की वार्षिक प्रदर्शनियों में भाग लेते रहे। १६२८ में अखिल भारतीय शिवाजी स्मारक समिति द्वारा इन्हें पूना में शिवाजी की एक चौदह फुट ऊँची कांस्य प्रतिमा बनाने का काम सौंपा गया। १६२६में बाम्बेआर्ट सोसाइटी द्वारा स्वर्ण पदक प्रदान किया गया। तत्पश्चात् कलकत्ता, बम्बई, दिल्ली, पूना आदि कितनी ही प्रदर्शनियों में ये शरीक हुए और पदक व पुरस्कार प्राप्त किये।

करमकर प्राचीन आदर्शवादी पद्धति के क़ायल हैं। यथार्थ सादृश्य के सजीव उभार में दक्ष हैं और सूक्ष्म ब्यौरों में इनके हाथ की सफाई द्रष्टव्य है। आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया के अध्यक्ष, बाम्बे आर्ट सोसाइटी के उपाध्यक्ष, प्लास्टिक कला अन्तर्राष्ट्रीय संघ की राष्ट्रीय समिति और ललित कला

अकादेमी की सामान्य परिषद के सदस्य के बतौर ये वर्षों से कला-क्षेत्र में काम कर रहे हैं। कलकत्ता, बम्बई और सौराष्ट्र के अलावा लंदन भी इनकी साधना

पुराना सेवक

भूमि रही है जहाँ इन्होंने पाश्चात्य प्रणालियों के विशद अध्ययन द्वारा विभिन्न प्रयोगों को प्रश्रय दिया।

शंखो चौधरी

कलकत्ता यूनीवर्सिटी से ग्रेजुएट होने के पश्चात् शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। ये लगभग १६४६ से मूर्त्तिशिल्प में काम कर रहे हैं। आजकल बड़ौदा विश्व विद्यालय की फाइन आर्ट फैकल्टी में मूर्त्ति विभाग के अध्यक्ष हैं।

शंखो चौधरी प्रयोगी हैं। मूर्ति को चाहिए स्पष्ट अभिव्यक्ति तथा आव-श्यकतानुसार दृढ़ एवं मुखर व्यंजकता। इनमें जीवन का सच्चा अनुभव, गहरी दृष्टि और विषय के अन्तरतम तक पैठने की क्षमता है। १९४६ में मेरठ के अखिल भारतीय कांग्रेस अधिवेशन की सुसज्जा का कार्य इन्हें सौंपा गया। १९४८ में भारत सरकार का अनुदान इन्हें प्राप्त हुआ। रामकिंकर बैंज के साथ एक स्मारक प्रतिमा के निर्माण के सिलसिले में इन्हें नेपाल की यात्रा करनी पड़ी, साथ ही उन्होंने अन्य कतिपय मूर्त्तियों की निर्माण-साधना की। आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की ओर से इन्हें गोल्ड प्लेक मिली। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट की समसामयिक मूर्त्तिकला प्रदर्शनी और बाम्बे आर्ट सोसाइटी का प्रथम पुरस्कार और १९५६ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में अकादेमी अवार्ड प्राप्त हो चुका है। १९५३ और १९५६ में पूर्वी यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी और १९५९ में बीस कलाकारों की प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। बड़ौदा के कलाकार ग्रुप भारतीय मूर्त्तिकार संघ, बाम्बे आर्ट सोसाइटी और ललित कला अकादेमी के कार्यकारी बोर्ड के सदस्य हैं और समसामयिक आयोजनों में कला को उन्नत बनाने के लिए सदैव सक्रिय व सचेष्ट हैं।

नारायण गणेश पंसारे

इन्होंने बम्बई और लन्दन में कला का प्रशिक्षण प्राप्त किया, खासकर लकड़ी पर काम करने में ये अत्यन्त दक्ष थे। भारत सरकार की ओर से अमे-रिका और यूरोप में होने वाली भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया। इन्होंने मूर्त्तिकला के उत्थान में सदैव दिलचस्पी ली। भारतीय मूर्त्तिकार संघ के ये संस्थापक सदस्यों में से थे और वर्षों तक सेक्रेटरी व चेयर-मैन रहे। भारत सरकार की कला पुनर्गठन समिति के भी ये सदस्य थे और बड़ौदा विश्वविद्यालय की फैकल्टी आफ फाइन आर्ट्स तथा बम्बई सरकार के परीक्षक व नियंत्रक बोर्ड के सदस्य भी थे।

बम्बई की प्रादेशिक कला प्रदर्शनी में इन्हें सबसे पहले पुरस्कार मिला, फिर तो ये लगातार भारत और विदेशों में आयोजित कला प्रदर्शनियों में पुर-स्कार प्राप्त करते रहे। इनके असमय निधन से गम्भीर क्षति हुई।

आर. पी. कामथ

बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट और लन्दन की रायल एकेडेमी आफ आर्ट्स में इनकी शिक्षा सम्पन्न हुई। इनका शुरू से ही मूर्त्तिकला की ओर झुकाव था। यूँ तो चित्रकारी में भी इनकी रुचि है, किन्तु मूर्त्तिकार के रूप में ही ये अधिक प्रसिद्ध हैं। अपने विद्यार्थी जीवन में बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनी में उन्हें रजत पदक प्राप्त हुआ, तत्पश्चात् न जाने कितने पदक, पुरस्कार व नक़द राशियाँ इन्हें मिली जिनमें स्वर्णपदक भी सम्मिलित हैं। इनके प्रयोग समय के साथ-साथ परिपक्व होते गए। परम्परागत शैली और आधुनिक शैली को समन्वित करने के लिए कलाकार ने अपनी सक्षमता का विकास किया है। काष्ठ में ऐसी जान डाल दी है जिसने एक नई दुनिया का निर्माण किया है। भारत भर में इनके द्वारा निर्मित स्मारक मूर्त्तियाँ बिखरी पड़ी है। रायल एकेडेमी आफ आर्ट्स में योग्यता के आधार पर इन्हें छात्रवृत्ति मिली। रूस और पूर्वी जर्मनी में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होने प्रतिनिधित्व किया है। भारतीय मूर्त्तिकार संघ से ये अर्से से सम्बद्ध हैं और १९५२ से १९५७ के दौरान अध्यक्ष रह चुके हैं। ये कला के आलोचक भी हैं और मूर्त्तिशिल्प की सूक्ष्मताओं व टेकनीक पर अनेक लेख लिखे है और राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी की निर्वाचक व निर्णायक समिति के सदस्य हैं और अन्य कतिपय परीक्षा समितियों से सम्बन्धित हैं।

प्रदोषदास गुप्ता

'कलकत्ता ग्रुप' के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार प्रदोषदास गुप्ता अधिकतर काँसे, प्रस्तर व टेराकोटा में काम करते हैं। इन्होंने यूरोप में काफी भ्रमण किया है फलतः कलातत्त्वों के वैभिन्न्य के साथ-साथ इनकी अनुभूतियों, संवेदनाओं और विचारात्मक पहलुओं में भी बेहद अन्तर है। इन्होंने किसी खास भंगिमा को दर्शानेवाली निजी मौलिक शैली-शिल्प की अवतारणा की। विषय वस्तु की सीमाएँ टूट गई सी लगती हैं, विभिन्न प्रभावों के परिवेश से जुड़कर इनकी कला के विकास के अनेक मोड़ हैं जहाँ इन्होंने नित नये तजुर्बों के अनुरूप अपने आकारों को ढाला है। 'बंधन में', 'बंगाली माँ', 'जीसस क्राइस्ट' की मुखाकृति जैसी मूर्त्तियों में तदनुरूप मनःस्थितियों की व्यंजना है।

इनकी शिक्षा अधिकतर कलकत्ता और मद्रास में हुई, पर रायल एकेडेमी

ग्राफ स्कलप्चर में मूर्त्तिकला का उच्च प्रशिक्षण लिया। लंदन की अन्तर्राष्ट्रीय मूर्त्तिकला प्रतियोगिता में भाग लिया। बंगाल स्कूल की रूढ़िबद्ध परिपाटी के विरुद्ध इन्होंने 'कलकत्ता ग्रुप' जैसे प्रगतिशील संगठन की नीव डाली और कला के नवोत्थान में सहयोग दिया। कला की अभिनव उपलब्धि के प्रति ये सदैव सक्रिय रहे।

ढाढस

प्रारम्भ में इनसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर की मूर्त्ति बनाने के लिए कहा गया था। १६४३ में महायुद्ध की विभीषिका और बंगाल के अकाल के दारुण दृश्यों का दिग्दर्शन इन्होंने कराया। बाद में इन्होंने महसूस किया कि शायद भावातिशयता अधिक थी इन मूर्त्तियों में। हूबहू निर्माण की यथार्थता ने इनमें जुगुप्सा भर दी। यथार्थता से मूलभावना पर आ टिके। शून्य व्यजना के प्रति अन्तरंग सचेत वृत्ति 'एब्स्ट्रैक्ट' संतुलन में पैठती गई। किन्तु विकृति या विरूपता के ये क़ायल नहीं हैं। चाहे शून्य व्यंजना ही क्यों न हो आत्मचेता आग्रह की गरिमा इनके कृतित्व में है, पेरिस के प्रवास में इन्होंने अपनी प्रतिभा और गुणों का विकास किया। सिकार्द, देस्पा और बोर देले का प्रभाव इनकी कला पर द्रष्टव्य है। इनके कितने ही आकार कैक्टस इनकी दिलचस्पी बढ़ी और इनकी की सुगढ़ता, परिपक्वता, अनुपात और

मां की गोद में

के से मोड़ तोड़ की सूक्ष्मता के बावजूद बड़े ही सफल बन पड़े हैं— जैसे 'शोक' (प्लास्टर) 'नवजात','माँ और बच्चा,' 'पालना', 'वृक्ष और शाखा' तथा ऐसी कितनी ही मुड़ी तुड़ी आकृतियाँ जिनमें शारीरिक संश्लिष्ट सूक्ष्मता अनुपातत: व्यंजित होती है । प्रदोषदास गुप्ता अपने आलोचकों से रुष्ट हैं । उनके मत में—'उनकी छोटी मोटी चीज़ों की प्रशंसा हुई है, किन्तु बड़ी महत्त्वपूर्ण वस्तुएँ उपेक्षित ही रह गई हैं । 'मेरी मूर्त्तिकला' (My Sculpture) में इन्होंने अपने दृष्टिकोण और टेकनीक पर प्रकाश डाला है ।

कलकत्ते का प्रारम्भिक जीवन इनके लिए बेहद कष्टप्रद और संघर्षशील था । बाद में शिक्षक के रूप में इनकी कला को आधार मिला । ज्यों-ज्यों इनकी भीतरी कला परिपुष्ट हुई ये कला की बारीकियों और उसकी हर टेकनीक में पैठते गए । लंदन, पेरिस, दक्षिण पूर्वी देशों का इन्होंने दौरा किया । अन्तर्राष्ट्रीय मूर्त्तिकला समारोह के सभापतित्व के लिए इन्हें वियना से आमन्त्रण मिला । १९५९में ललित कला अकादेमी की ओर से रूस भेजे गए प्रतिनिधि मंडल के साथ गए और समूचे यूरोप का भ्रमण किया । अखिल भारतीय मूर्त्तिकला प्रदर्शनियों में आयोजित अन्य प्रमुख मूर्तिकला प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं । आजकल नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ मार्डन आर्ट के डायरेक्टर हैं ।

चिन्तामणि कार

आधुनिक धाराओं से प्रभावित होते हुए भी मूर्त्तिशिल्प में अतिवादिता

स्टेज पर

नहीं है । इसका कारण है—प्राचीन और अर्वाचीन, पाश्चात्य एवं प्राच्य कलाओं का इतना व्यापक व गंभीर अध्ययन कि परम्परागत भारतीय दर्शन से किस प्रकार आज की वैज्ञानिक टेकनीक का सामजस्य स्थापित हो—यही इनका प्रयास रहा है । टेराकोटा, प्लास्टर, काँसा, लकड़ी, पत्थर, संगमरमर पर इन्होंने बहुविध प्रयोग किये है । बैठी, झुकी, मुड़ी तुड़ी और सर्पाकार आकृतियां में इन्होंने बेहद सूक्ष्मता और अंतरंग एकता पर बल दिया है । इनकी सुप्रसिद्ध मूर्त्तियाँ 'स्केटिंग दि स्टैंग,' 'आलिगन' 'माँ-बच्चा', 'तीन आकृतियाँ' 'दम्पति' तथा अन्य कितनी ही आकृति भंगिमाओं में प्रखर भाव-व्यजना, शारीरिक अवयवों का गठन तथा निजी लाक्षणिकताएँ हैं ।

लगभग १६३० में इन्होंने स्कूल आफ इंडियन सोसाइटी आफ ओरियिंटल आर्ट में शिक्षा आरम्भ की, किन्तु कुछ अर्से बाद उड़ीसा के किसी मंदिर के मूर्त्तिकार के तत्वावधान मे ये कार्य करते रहे जिससे इनके कृतित्व पर मंदिर शिल्प और लोककलाओं का प्रभाव पडा । १६३८ में ये लन्दन और पेरिस चले गए । वहाँ के उन्मुक्त वातावरण मे बंगाल की प्रांतीयता से निकलकर इनकी चिन्तन प्रक्रिया विशद और बहुमुखी होती गई । १६४० में जब ये भारत लौटे तो यहाँ की भावप्रवण कल्पना और पश्चिमी विश्लेपण की एंचतान ने इनकी प्रतिभा को एक नए ढग में ढाल दिया और कुछ अजीबो-गरीब रूपाकार प्रकट हुए । कलकत्ता के आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स यूनीवर्सिटीं में जब ये लेक्चरार थे तो इन्होंने 'मेरी बहन' में बंगाली तरुणी के स्वस्थ और प्रभावशाली व्यक्तित्व को सामने रखा । १६४२ मे जब ये दिल्ली पोलिटेकनीक में चले आये थे तो रवीन्द्रनाथ ठाकुर और सर मौरिस गाइयर की दो सुन्दर प्रतिमाओं का निर्माण किया था जिनमें अनुरूप गरिमा और चरित्र का दिग्दर्शन था । 'फ्रीडा' एक युवा लड़की के भोले निष्कलुष रूप, उसके अंग-प्रत्यंग के उभार, उसकी कोमल भावभंगी की निरूपक प्रतिमा है जो इनकी अनवरत साधना और अथक अभ्यास की प्रतीक है । यूं इन्होंने कितनी ही प्रतिमाएँ गढ़ी हैं जिनमें अवयवों की सुगढ़ता, देहयष्टि की भंगिमा और आकृतियों के निर्माण में वैज्ञानिक टेकनीक अपनाई गई है । १६४५ और ५६ के दौरान ये लंदन में रहे और १६४७ में रायल सोसाइटी आफ ब्रिटिश मूर्त्तिकार सोसाइटी के सदस्य निर्वाचित हुए । चिन्तामणि कार अनेक कला संस्थाओं से सम्बद्ध हैं और कला-समारोहों व आयोजनों में प्रतिनिधित्व करते रहे हैं ।

ए. एम. डेवियरवाला

इन्होंने किसी स्कूल या कालेज में प्रशिक्षण नहीं लिया वरन् कला इनकी स्वयं प्रेरणा का परिणाम है। शुरू में इन्होंने चित्रकारी में रुचि ली और इस ओर प्रवृत्त हुए, किन्तु इन आर्द्र, सहज ही ढुलक जाने वाले गीले रंगों में इनका श्रमशील मन न टिका और इन्होंने सख्त माध्यम—काष्ठ और पत्थर जिनमें कि अभिव्यक्ति शनैः शनैः रूपायित होती है, चुन लिये। आगरा व मलाद के पत्थरों एवं संगमरमर पर काम करने में इनकी विशेष दिलचस्पी जगी, लकड़ी में भी अपनी मौलिक भावाभिव्यक्ति को ढालने में इन्होंने कुशलता का परिचय दिया।

शिरोभाग—एक अध्ययन

१९५२ में स्टडी-टूर पर ये यूरोप गए। वहाँ के प्रवास में इन्होंने पाश्चात्य कला धाराओं का व्यापक अध्ययन किया जो समयनुसार इनकी कला में प्रत्यक्ष हो उठा। काष्ठ कृति पर इन्हें गवर्नर पुरस्कार प्राप्त हुआ। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी बाम्बे आर्ट सोसाइटी, भारतीय मूर्तिकार संघ और बम्बई की प्रादेशिक कला

प्रदर्शनी में इन्हें कई कई बार रजत व स्वर्ण पदक, प्रथम पुरस्कार और नक़द राशियां प्राप्त हुईं। १९५६ में ललित कला अकादेमी द्वारा पूर्वी यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी में इन्होंने भाग लिया। भारतीय मूर्तिकार संघ के ये संस्थापक सदस्यों में से हैं और इन्होंने नये कलाशिल्प को आगे बढ़ाने में योगदान किया है।

नृत्य भंगिमा-तांबे के तार पर

नागेश यावलकर

बम्बई के सुप्रसिद्ध कलाकार नागेश यावलकर अपने प्रयोगों की परम्परा में अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इनके काम करने का सर्वथा निजी मौलिक ढंग है जिसके कारण अमेरिका और यूरोप में इनके द्वारा निर्मित मूर्त्तियाँ लोकप्रिय हुई हैं। टेराकोटा, काँसा, पत्थर और संगमरमर पर इन्होंने मूर्त्तियाँ गढ़ी हैं। इसके अतिरिक्त मिट्टी, प्लास्टर, चीनी, पेपरमाशी सीमेंट और गोबर पर भी इन्होंने प्रयोग किए हैं। 'डिवाइन लव' अर्थात् दिव्य प्रेम की दिग्दर्शक पेपरमाशी पर निर्मित इनकी उक्त कृति का सम्मान अमेरिका, फ्रांस और इंग्लैण्ड में हुआ। 'नृत्य अन्तराल' नामक पेपरमाशी की इनकी एक दूसरी प्रतिमा भी बड़ी ही सफल बन पड़ी है। ऐतिहासिक महापुरुषों व प्रसिद्ध नेताओं के अलावा स्मारक मूर्तियाँ, छवि मूर्तियां, उत्कीर्ण मूर्तियाँ, अर्द्धाकार धड़ मूर्तियाँ, घोड़ों तथा अन्य पशुओं की हर सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव-भंगी और चेष्टाएँ दर्शानेवाली मूर्तियाँ इनके द्वारा निर्मित हुई हैं जिनमें वैभिन्न्य दीख पड़ता है। इनकी मूर्तियों में प्राचीन मूर्तियों की भांति सूक्ष्म ब्यौरों की उलझन नहीं है, न ही आधुनिकता का भौंडापन, वरन् इनकी सम्मति में मूर्तियां में सौन्दर्य और स्पर्श्य गरिमा होनी चाहिए। कोई भी मूर्ति दहशत पैदा करने वाली नहीं वरन् प्राणस्पन्दन की जीवंत प्रतीक और अव्यक्त को व्यक्त, अमूर्त्त को मूर्त्त अर्थात् अंतरंग भाव को साकार करती हो। भीतर जो अनुभूति होती है, जो सचाई व समय के अनुरूप सामने आता है उसी की सुशोभन अभिव्यक्ति मूर्त्तिशिल्प का ध्येय होना चाहिए। इनकी नारी मूर्तियों की सुन्दर भावमयी मुखमुद्रा, गोलाई लिये कपोल, पतले ओंठ, उन्मीलित सुन्दर नेत्र और एक एक सुगढ़ अवयय बरबस ध्यान आकृष्ट कर लेता है।

बम्बई में मोटा भाई मैंशन स्थित इनका स्टूडिओ और फाउड्री मूर्त्तिकला का केन्द्र है। ग्रामीण कारीगरों और शिल्पियों को प्रोत्साहन देने मे और उनकी हर अच्छी चीज़ की सराहना व गुणों की क़द्र करने के पश्चात् भारत में आकर इन्होंने संगमरमर और अन्य पत्थरों पर बड़ा काम किया है। दोनों पति-पत्नी अनवरत कला-साधना में जीवन यापन करते हुए कला-क्षेत्र में मौलिक भावाभिव्यक्ति को अग्रसर करने में दत्तचित्त है।

जितेन्द्र कुमार

शांतिनिकेतन से इन्होंने फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। चित्रकारिता के साथ-साथ काष्ठ मूर्त्तिशिल्प में इनकी रुचि जगी और उसी में विशेषता हासिल की। एक पुश्तैनी शिल्पी के तत्त्वावधान में कारीगर के बतौर नेपाल में पत्थर-खुदाई का अध्ययन किया। शिल्प में इनकी अत्यधिक रुचि है, खासकर एसी कृतियों में जो उदात्त भावना, परस्पर सामंजस्य और मानवीय तत्त्वों को मुखर करती हैं, हिन्द-चीन मैत्री संघ द्वारा प्रेरित सांस्कृतिक प्रतिनिधिमंडल के सदस्य के बतौर इन्होंने चीन का दौरा किया। अपने प्रवास के दौरान विविध प्रकार के, अनेक रूपरंग के पत्थर एवं मूर्त्ति-शिल्प की साधना और उसकी सूक्ष्मताओं के वैविध्य में ये पैठे। प्राचीन-अर्वाचीन के व्यापक ज्ञान द्वारा विषय-वस्तु की बारीकियों और हर तरह की कल्पना और भावना की आत्मा मे पैठकर अपने स्ट्रोक्स से एक निश्चित प्रभाव उत्पन्न करने की कला मे ये पारगत हो गए।

१९५५-५६ की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादेमी अवार्ड प्राप्त हुआ। मसूरी मे आयोजित अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी मे इन्हे तीन पुरस्कार मिले। बम्बई की समसामयिक मूर्त्तिकार प्रदर्शनी, नई दिल्ली की अखिल भारतीय मूर्त्तिकला प्रदर्शनी तथा भारत और विदेशों में आयोजित आयोजनों व मूर्त्तिकला प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है और इनकी मूर्त्तियाँ न केवल अपने देश में, वरन् विदेशों में भी अन्तर्राष्ट्रीय सम्मान प्राप्त कर चुकी हैं।

भेंट समर्पण

जयनारायण सिंह

उत्तर प्रदेश के सुप्रसिद्ध प्रयोगशील मूर्त्तिकार **जयनारायण सिंह** मनोभावों की अभिव्यक्ति, मानव शरीर के सूक्ष्म व्यौरों और जीवन विश्लेषक तत्त्वों के अन्यतम मूर्त्तिकार हैं। यह शौक जन्मजात है, बचपन से ही वे इस ओर प्रवृत्त हैं और ज्यों-ज्यों समयानुसार उनके अनुभव और तजुर्बे बढ़ते गए, मूर्त्तिशिल्प में इनके प्रयोगों की परम्परा भी बढ़ती गई। बाल्यावस्था का शौक़ जब आस्था और श्रमशील साधना में परिणत होता गया तो उनकी आत्म विभोर तल्लीनता शिलाखण्डों में साकार होने लगी। नित-नई प्रेरणा

शांति कपोत

और सम्बल के आधार पर इन्होंने नई-नई मूर्तियाँ गढ़ीं। शुरू में प्राचीन पारम्परिक पद्धति पर इन्होंने मूर्तियों का निर्माण किया। 'वीणा वादिनी', 'धरती माता', 'अजातशत्रु', 'माँ और शिशु' ऐसी मूर्तियाँ गढ़ी गईं, जिनमें वैसी ही गरिमा, वैसी ही लाक्षणिकताएँ उभरी हैं। किन्तु समय के साथ-साथ आधुनिक धाराओं का प्रभाव भी इनके कृतित्व पर द्रष्टव्य है, आज की द्वन्द्वात्मक परिस्थितियों ने कला को तर्क-वितर्क और जोड़-तोड़ का जामा पहना दिया है। पहले का सहज आस्थावान कलाकार बौद्धिक हो गया है। यही कारण है कि कला का सहज आन्तरिक अनुशासन, जिसका पालन निष्ठापूर्वक कलाकार करता था, अब विशृंखल हैं, फलतः उसकी धारणाएँ बदल गई हैं। भीतरी उद्वेलन और तज्जनित तूफ़ान ने शारीरिक अवयवों में

पक्षी
आधुनिक
शैली

ऐसा तनाव पैदा किया है कि कुंठित व्यक्तित्व के कारण मानव स्वरूप में विरूपता और भौंडापन आ गया है ।

इस आधुनिक शैली में भी सिंह सिद्धहस्त हैं । कला की विभिन्न शैलियों को अपनाने के उत्साह और अभीप्सा में इन्होंने अभिव्यंजनावादी पद्धति अपनाई है । इधर इनके रूपाकारों में आँख, कान, नाक और मुखाकृति के उभार स्पष्ट नहीं हैं और अंग- प्रत्यंगों की गढ़न में भी अनेक प्रभाव द्रष्टव्य हैं । विकल्पों ने आधेय की संस्थिति में अंतर उत्पन्न कर दिया है और अपनी निजी शैली खोज निकालने के प्रोत्साहन से इनकी आंतरिक मूल्यों की परख जागरूक हो उठी है ।

लखनऊ के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स में एक ख़ास

टारसो
प्लास्टर पर

प्रशिक्षार्थी के रूप में ये शिक्षा ग्रहण करते रहे। ये लगभग १९२८ से इस दिशा में प्रवृत्त है। १९४५ में नई दिल्ली में आयोजित अन्तर्राष्ट्रीय सम-सामयिक कला प्रदर्शनी मे इन्हें पुरस्कार उपलब्ध हुआ। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ की हर वार्षिक कला प्रदर्शनी में ये भाग लेते रहे हैं। इसके अलावा मद्रास, कलकत्ता, मैसूर व नई दिल्ली की प्रदर्शनियों में ये प्रतिनिधित्व कर चुके हैं। लखनऊ, कानपुर, रुड़की व अन्य प्रमुख नगरों में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई हैं और उदयगंज, लखनऊ के निजी आर्ट स्टूडिओ में एक नई दुनिया की सृष्टि करने में वे बड़ी लगन और श्रम के साथ साधना रत रहते हैं।

एक मँजे हुए अनुभव सम्पन्न कलाकार होने के बावजूद सिंह प्रयोगों से कभी थकते नहीं। किसी भी वस्तु के स्वरूप-निर्णय के साथ ही वे उससे सम्बन्धित ब्यौरों का सांगोपांग विवेचन मन में कर लेते हैं। वस्तु में हाथ लगाने से पूर्व वे उसका गंभीर मनन करते हैं क्योंकि खंडित सत्य की उपलब्धि में वे विश्वास नहीं करते। द्वन्द्व या नये-पुराने का उलझाव कहीं है तो उसके विभिन्न पहलुओं की जटिलता भी आत्मानुभव के सहारे हल कर लेते हैं। 'शांति की विजय' के लिए इन्हें शांति के प्रतीक कबूतर की प्रतिकृति बनाना था। कई-कई दिन तक वे कबूतर की हर भंगिमा का अध्ययन करते रहे। अपनी सहज प्रवृत्ति, परिवेश और मान्यताओं के अनुरूप आत्मविश्वास को जगाकर किसी कृति को सम्पन्न करना इनका स्वभाव है। यही कारण है कि उत्तर प्रदेश के मूर्त्तिकारों में ये अग्रगण्य हैं।

सख्त पत्थर, प्लास्टर, एलूमिनियम, काँसे, काष्ठ, बाँस, सूखी टहनियों और खपच्चियों पर इन्होंने काम किया है। चारपाई के पायों और लकड़ी के ठूँठों की मदद से इन्होंने अनेक मूर्त्तियों का निर्माण किया है। इलाहाबाद में **चन्द्रशेखर आजाद** की विशाल कांस्य मूर्त्ति और कानपुर में **सरदार भगतसिंह** की मूर्त्ति का इन्हीं के द्वारा निर्माण हुआ। इसके अलावा राष्ट्रीय वनस्पति उद्यान, फव्वारों और अनेक सार्वजनिक स्थानों के लिए भी इन्होंने मूर्त्तियाँ बनाई हैं। यह सही है कि पाश्चात्य परम्परा की सतत गतिशीलता में इनकी आस्था है, पर यूँ भारतीयता इनकी रग-रग में समाई हुई है और अपनी सहज ग्रहणशील प्रवृत्ति के कारण ही ये नये की उपलब्धि के लिए लालायित रहते हैं।

बालाजी वसंतराव तालिम

बम्बई के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार तालिम विगत चालीस वर्षों से मूर्त्तिशिल्प में ख्याति अर्जित कर चुके हैं। ये लगभग नौ-दस वर्षों तक सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के मार्डलिंग और स्कल्पचर विभाग के विज़िटिंग प्रोफेसर के रूप में काम करते रहे। लंदन की वेम्बले आर्ट एग्ज़ीबिशन में इन्होंने भाग लिया तथा बाम्बे आर्ट सोसाइटी से इन्हें दो बार स्वर्णपदक प्राप्त हुए। बम्बई के फ्लोरा फाऊंटेन पर दादाभाई नौरोजी की प्रतिमा, स्थानीय हाइकोर्ट में सर लारेंस जेनकिन्स की प्रतिमा तथा पिलानी में महात्मा गांधी और वल्लभभाई पटेल की प्रतिमाओं का निर्माण इन्होंने किया। इसके अतिरिक्त भारत और विदेशों की प्रमुख प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया, दर्जनों पुरस्कार एवं पदक प्राप्त किये तथा बड़ौदा म्यूज़ियम के अलावा कितने ही निजी और सार्वजनिक संग्रहों के लिए इन्होंने काम किया है। बाम्बे आर्ट सोसाइटी के ये आजन्म सदस्य हैं और आर्ट सोसाइटी के अध्यक्ष हैं।

चलते-फिरते भिखारी

इनके पुत्र हरीश बालाजी तालिम भी सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार हैं और अपने पिता के साथ उन्होंने अनेक विशिष्ट मूर्त्तियों के निर्माण में हाथ बँटाया है। वे भी समसामयिक कलाप्रदर्शनियों में भाग लेते रहते हैं और आर्ट सोसाइटी

आफ इंडिया तथा भारतीय मूर्त्तिकार संघ के आजीवन सदस्य हैं।

कृष्ण रेड्डी

एक आकृति

विशाल प्रतिमाओं के निर्माता रेड्डी को भले ही अपने देश में लोग कम जानें, पर विदेशों में इनकी धाक है और कलाजगत में ये अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। इनका जन्म आन्ध्र प्रदेश के चित्तूर ज़िले स्थित एक छोटे से गाँव में हुआ था। शांतिनिकेतन में इनकी प्रारंभिक शिक्षा सम्पन्न हुई, किन्तु तत्पश्चात् २०-२५ वर्ष की अल्पायु में ही ये पेरिस चले गए तथा वहाँ के सलों-द-मे वेनिस बियनले और फिल्डेल्फिया की अंतर्राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इनके कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की गई। यूरोप व अमेरिका में इनकी अनेक कृतियाँ सुरक्षित है। 'एव्स्ट्रैक्ट' आर्ट की ओर इनका विशेष झुकाव है। फिर भी वे भारतीय पहले हैं और यथार्थ व्यंजककता उनकी मूर्त्तियों में बरबस उभर ही आती है। अपने देश की निर्माण शैली की छाप इनके कृतित्त्व में संश्लिस्ट हैं।

केवल सोनी

आधुनिक पद्धति के कलाकार है। लकड़ी, लोहा, छड़ों से मूर्त्तियाँ तैयार करते हैं। इनके आविष्कारों और प्रयोगों में अधिकतर आधुनिक मूर्त्तिशिल्प की ही छाप है। लाहौर के मेयो स्कूल आफ आर्ट में ये अध्ययन करते रहे। दिल्ली पोलिटेकनीक से इन्होंने डिप्लोमा लिया और मूर्त्तिकला का प्रशिक्षण इटली में प्राप्त किया। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर वे वहाँ दो वर्ष तक अनुसंधान कार्य करते रहे। नई दिल्ली में अखिल भारतीय मूर्त्तिकला प्रदर्शनी में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुआ। शिक्षा मन्त्रालय द्वारा आयोजित समसामयिक मूर्त्तिकला प्रदर्शनी, ललित कला अकादेमी द्वारा आयोजित राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, इटली की इंटरनेशलन फिगरेटिव आर्ट एग्ज़ीविशन तथा वेनिस

नैरोबी और दारुशलम की भारतीय समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया और पुरस्कृत हुए। ये पंजाब के बड़े ही उत्साही कलाकार हैं और लगभग दस-पन्द्रह वर्षों से इस दिशा में प्रवृत्त हैं।

बलवीरसिंह कट्ट

रावलपिण्डी के सुप्रसिद्ध तरुण मूर्त्तिकार हैं जिनमें नूतन-पुरातन का समन्वय है। डी० ए० वी० कालेज, जालंधर में इनकी शिक्षा हुई, तत्पश्चात् विश्वभारती, शांतिनिकेतन में फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में डिप्लोमा लिया। १९६३ की राष्ट्रीय सांस्कृतिक छात्रवृत्ति के अन्तर्गत ये बड़ौदा की फाइन आर्ट्स फैकल्टी में भी पढ़ते रहे। शांतिनिकेतन में रामकिंकर बैज के तत्त्वावधान में कार्य किया जहाँ इनकी सुषुप्त कला-चेतना को फलने-फूलने का अवसर मिला। इन्होंने अनेक स्मारक मूर्त्तियों और विशाल भित्ति-उत्कीर्णनों का निर्माण किया है। कलकत्ता की फाइन आर्ट्स एकेडेमी द्वारा इन्हें स्वर्णपदक प्रदान किया गया। बाम्बे आर्ट सोसाइटी द्वारा पुरस्कार, पश्चिमी बंगाल युवक समारोह में रजत पदक, गुजरात स्टेट आर्ट एग्ज़ीबिशन में अवार्ड तथा पटना शिल्प कला परिषद, अमृतसर की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, नई दिल्ली की आल इंडिया फाइन आर्ट्स सोसाइटी और राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में ये लगातार भाग लेते रहे हैं। नेशनल चिल्ड्रेन म्यूज़ियम में ये वरिष्ठ मूर्त्तिशिल्पी के रूप में काम करते रहे। ये लेखक और कला समीक्षक भी हैं और कला पर दो-दो पत्रिकाओं का सम्पादन भी कर चुके हैं।

मेठो धर्मानी

धर्मानी सिन्धी हैं और कला के प्रति इनकी रुचि जन्मजात है। इनकी प्रारम्भिक शिक्षा कराँची के आर्ट स्कूल में हुई। भारत विभाजन के पश्चात् जब पाकिस्तान बना तो सपरिवार बड़ौदा चले आए। इनका कलापिपासु मन भटकता रहा और कुछ अर्से बाद शांतिनिकेतन के कलात्मक वातावरण में नन्दलाल बसु और रामकिंकर बैज की छत्रच्छाया में ये कला का अभ्यास करते रहे।

इन्होंने काँसे, ताम्बे, लकड़ी, प्लास्टर और सीमेंट से मूर्त्तियाँ गढ़ी हैं। रोज़मर्रा के प्रसंग और जन-जीवन की झाँकियाँ इनके मूर्त्तिशिल्प के विषय हैं, पर इधर इन्होंने अपना ढंग बदल दिया है। सर्वथा नये कोणों से इन्होंने मूर्त्ति-निर्माण की दिशा में प्रवेश किया है।

इन्होंने कुछ समय मसूरी की 'मानव भारती' में काम किया। शीत ऋतु में बर्फ़ गिरती रहती और ये देवदार वृक्षों की छाया तले मूर्त्ति-निर्माण करते रहते। १९६० की राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में इन्हें अकादेमी अवार्ड मिला। उत्तर प्रदेश कलाकार संघ, आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स
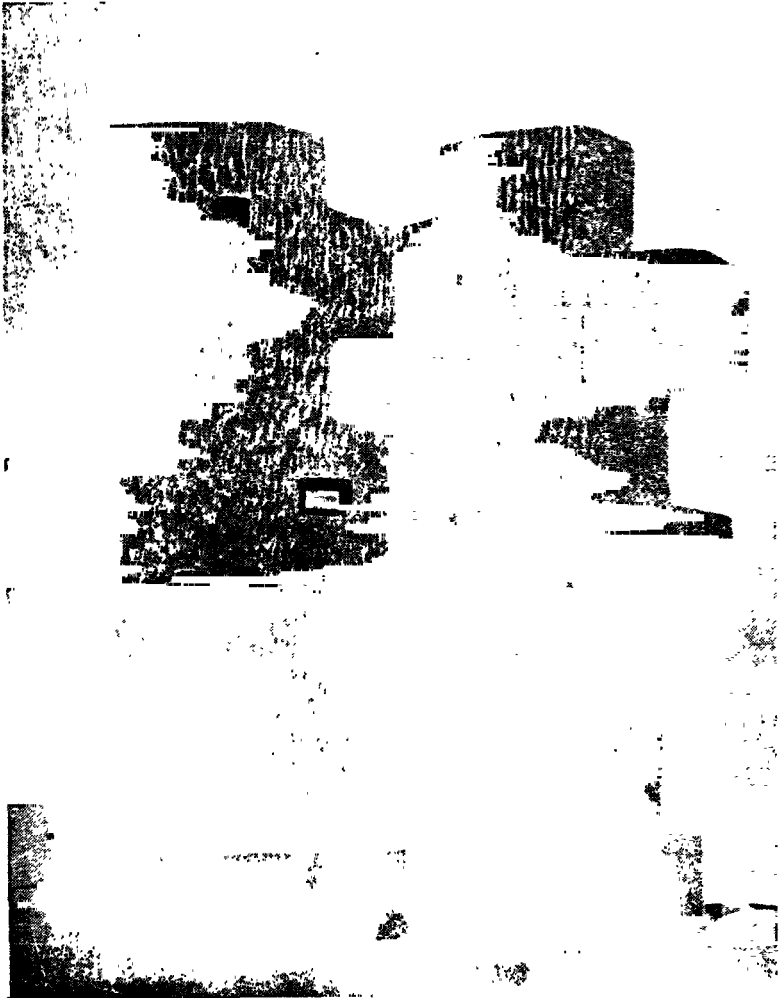
काष्ठ निर्मित प्रतिमा—दम्पति

सोसाइटी और अन्य कितनी ही प्रमुख प्रदर्शनियों में ये भाग लेते रहे हैं। मसूरी और दिल्ली में इन्होंने अपनी व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी की हैं और विदेशों में समय-समय पर आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनियों में इन्हें प्रतिनिधित्व मिला है। ये दिल्ली शिल्पी चक्र और आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के सदस्य हैं। साम्रो पाम्रोलो वियनले की यात्रा के दौरान इन्होंने प्लास्टिक के प्रयोग में परिपक्वता प्राप्त की।

राजाराम

ये मिलिटरी इन्जीनियर हैं। इन्होंने शौक़िया मूर्त्तिकला अपनाई, किन्तु वही शनैः शनैः गंभीर साधना में परिणत होती गई। लकड़ी के टुकड़ों को काट-काट कर इन्होंने ऐसी आकृतियाँ निर्मित की जिनमें नये-पुराने का विचित्र समन्वय है। झुकी हुई, आड़ी-तिरछी और भिन्न-भिन्न कोणों में 'माता-शिशु', 'मत्स्य कन्या', 'रहस्य', 'क्षमता', 'नारी' आदि मूर्त्तियों का आधुनिक पद्धति पर इन्होंने निर्माण किया। यूँ तो इन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं, पर यूरोप भ्रमण के पश्चात् - लन्दन, पेरिस, ब्रूसेल्स, फ्लोरेंस, मिलान, रोम और नेपल्स के प्रवास में आधुनिक शैलियों का इन पर विशेष प्रभाव पड़ा है। भावाभिव्यक्ति के विभिन्न माध्यम और तौर-तरीके हैं जिनमें नए-नए ढंग अख्तियार किए जा सकते हैं, फिर भी ये किसी 'इज़्म' या वाद के क़ायल नहीं। हेनरी मूर और देगाज़ की पद्धति पर ये कुछ अर्से तक काम करते रहे हैं, पर किसी चौहद्दी में कभी नहीं बँधे। इनकी प्रतिभा व प्रयास स्वयं प्रेरित है और इसी बलबूते पर ये आगे बढ़े हैं। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, भारतीय शिल्पकार प्रदर्शनी तथा ग्रुप शो एवं प्रदर्शनियों में ये पुरस्कृत हो चुके हैं।

श्रम का गौरव

युगल प्रेमी

शंकर मूर्त्ति

बंगलौर के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार शंकर मूर्त्ति ऐसे परिवार में उत्पन्न हुए जहाँ पीढ़ी-दर-पीढ़ी कला की साधना ही व्यवसाय रहा है। इनके पूर्वज मन्दिर सज्जाकार के बतौर सैंकड़ों वर्षों से यही काम करते आ रहे हैं, जिन से इन्हें इस दिशा में परिपक्व प्रशिक्षण मिला।

अधिकतर वे सीमेंट या संगमरमर पर काम करते हैं। 'सरस्वती', 'बापू', 'नटराज', 'हिरणों का पार्क', 'गतिभंगिमा' आदि प्रतिमाओं में सूक्ष्मातिसूक्ष्म ब्यौरों और बारीकियों के अंकन में बड़ी दक्षता और शिल्प-सौष्ठव है। शंकर मूर्त्ति आज की भौंडी और बेडौल प्रतिमाओं के निर्माण के हामी नहीं। 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' की साधना ही इनका ध्येय और विधेय है।

बहुमुखी प्रवृत्तियाँ

आज के मूर्त्ति शिल्प में आधुनिक यूरोपीय धाराओं के प्रभाव ने वैज्ञानिकता को अधिकाधिक प्रश्रय दिया है जिससे शास्त्रीय व परम्परागत शैली का ह्रास हुआ है। यहाँ तक कि पंजाब के सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार धनराज भगत और अमरनाथ सहगल ने सर्वथा नई पद्धति और तौर-तरीकों को अपना कर यह सिद्ध कर दिया है कि शिल्पकला को किसी खास शैली या वाद-विवाद में वर्गीकृत नहीं किया जा सकता। बम्बई के मूर्त्तिकारों में **एस० फर्नेण्डिज** का नाम उल्लेखनीय है जो सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के चित्रकला व मूर्त्तिकला विभाग के अध्यक्ष रहे हैं और वेम्बले कला प्रदर्शनी, बाम्बे आर्ट सोसाइटी और अनेक प्रमुख प्रदर्शनियों में अनेक पदक व पुरस्कारों के विजेता हैं। **नीलकंठ महादेव केलकर** जिनकी महाराष्ट्र के वरिष्ठ कलाकारों में गणना है और वर्षों से बम्बई में रहकर कला-साधना कर रहे हैं, **के० ए० शेठी** जो आजकल सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट की मूर्त्तिकला की शिल्प कला विभाग के अध्यक्ष हैं और विदेशों तथा दक्षिण प्रान्त में भारतीय कला की सूक्ष्मताओं की खोज में समय-यापन किया है, **कमलकर शंकर खाँडके** जो व्यावसायिक मूर्त्तिकार है और भारतीय मूर्त्तिकार संघ के सदस्य है, **वासुदेव विष्णु मंजरेरकर** जो लगभग बीस पचीस वर्षों से कला की साधना कर रहे हैं, बाम्बे स्टेट आर्ट एग्ज़ीविशन में इन्हें एक हज़ार रुपये का विशेष पुरस्कार मिला, भारतीय मूर्त्तिकार संघ

संगमरमर पर एक अध्ययन—**प्रमोद गोपाल चटर्जी**

के ये संस्थापक सदस्यों में से हैं और बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के पत्थर खुदाई विभाग में वरिष्ठ प्रशिक्षक के बतौर कार्य कर रहे हैं, **लक्ष्मण**

सीमेंट निर्मित पोर्ट्रेट – धर्मानी

दत्त जी सोनावाडेकर जो लगभग १९४७ से इस दिशा में प्रवृत्त हैं, खासकर कांस्य मूर्त्ति शिल्प में विशेष दक्ष हैं और सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स विभाग में लेक्चरार हैं।

बड़ौदा के मूर्त्तिकारों में सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार शंखो चौधरी के अतिरिक्त **राघव राम जी भाई कनेडिया** जिन्होंने बड़ौदा की एम० एस०यू नीवर्सिटी से मूर्त्तिकला में डिप्लोमा लिया, १९५९ में राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी में अकादेमी अवार्ड प्राप्त किया और पेरिस वियनले में भी इन्हें प्रतिनिधित्व मिला। ये कृषक पुत्र हैं और ग्राम्य वातावरण में इनका लालन-पालन हुआ है। मूर्त्ति-निर्माण में इनकी सूक्ष्म शिल्प दृष्टि और हाथ की सफाई देखते ही बनती है। एक आदर्श परम्परावादी के रूप में साधना शुरू करके आज ये नये ढंग पर कार्य कर रहे हैं।

बड़ौदा के एक दूसरे मूर्तिकार **प्रेम शरण** भी कई वर्षों से काम कर रहे हैं और भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्होंने स्टडी टूर किया है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा अन्य प्रमुख

श्री विश्वम् द्वारा अंकित नटराज की एक आकर्षक भंगिमा

प्रदर्शनियों में भी ये भाग लेते रहे हैं। **महेन्द्र पंड्या** भी भारत सरकार की छात्र-वृत्ति पर अनुसंधान कार्य करते रहे और बड़ौदा एम० एस० यूनीवर्सिटी के पत्थर खुदाई विभाग में प्रशिक्षक हैं।

उड़ीसा के **श्रीधर महारात्र** और **अजित केशरी**, कांस्य मूर्तिकार **म्हात्रे** और **कोल्हटकर**, आंध्र प्रदेश के **अहमद अब्दुल सलीम सिद्दीकी** और **मोहम्मद उस्मान सिद्दीकी**, मद्रास के **श्री विश्वम आर० वेंकटेशन**, मध्य प्रदेश के **रघुनाथ कृष्ण फड़के** और **सुरेशचन्द्र स्वस्तिक** जो एक उदीयमान मूर्तिकार थे, पर २६ वर्ष की अल्पायु में ही जिनका निधन हो गया, काश्मीर के **बंसीलाल परिमू**, लखनऊ के **मोहम्मद हनीफ़** और इलाहाबाद के **तुंगनाथ श्रीवास्तव**, पटना के **यदुनाथ बैनर्जी** तथा ग्वालियर के **रुद्रहंजी** उच्चस्तरीय कलाकारों की श्रेणी में गिने जाते हैं। मूर्त्ति शिल्प केन्द्र, जयपुर के मूर्तिकार **गोपीचन्द्र मिश्र**

भील भाई—सुरेशचन्द्र स्वस्तिक

जिन्होंने मन्दिरों, राजभवनों, सरकारी कार्यालयों और सार्वजनिक स्थानों के लिए मूर्त्तियाँ बनाई और १९६० में दिल्ली में आयोजित विश्व कृषि मेले में ऊँट पर ढोला-मारू की प्रतिमा राजस्थानी पंडाल में प्रतिष्ठित की, रूस के भूतपूर्व राष्ट्रपति बुलगानिन के भारत आगमन के समय इनकी एक प्रतिमा भेंट की गई थी। **नारायण लाल जैमिनी** जयपुर के मशहूर मूर्त्तिकार हैं। इनकी मूर्त्तियाँ भारत के कोने-कोने में स्थापित हैं। रूसी गणराज्य के प्रधान मंत्री श्री ख्रुश्चेव जब भारत यात्रा के दौरान जयपुर आये थे तो राजस्थान सरकार की ओर से इन्हीं की निर्मित मूर्त्ति भेंट की गई थी। रंगून में गाँधी जी की मूर्त्ति, अफ्रीका में श्रीनारायण एवं श्रीहनुमान जी की मूर्त्ति, पिलानी में बिड़ला द्वारा निर्मित सरस्वती मन्दिर की मूर्त्तियाँ, राष्ट्रपति भवन में गाँधी

जी की मूर्त्तियाँ—यों भारत के कोने-कोने में इनकी मूर्त्तियाँ एवं स्टैच्यू लगे हुए हैं । **सरदारी लाल पाराशर** भी मूर्त्ति कला के क्षेत्र में पर्याप्त ख्याति प्राप्त कर चुके हैं और नूतन-पुरातन सभी प्रकार की पद्धति अपनाई है ।

समसामयिक उत्साही मूर्त्तिकारों में जो हर नये-पुराने, देशी विदेशी एवं प्राच्य-पाश्चात्य परम्पराओं से कुछ ग्रहण करते रहते हैं—**जानकी राम, मदन जैन, विनीत कुमार,** विपुलकांति **साहा, पंवार, कृष्णेन्दु, चरनजीत मथारु, अजित चक्रवर्ती, एस० गोयल** गिरीश **भट्ट, कुलदीप कुमार भल्ला, जगदीश लाल आहूजा, बालकृष्ण गुप्त, नागजी भाई पटेल** आदि आधुनिकतावादी मूर्त्तिकारों का एक बड़ा गुट काम कर रहा है जो कला की नित-नई प्रगति के हर अच्छे-बुरे को समेट कर चलते हुए कला-पथ को प्रशस्त करने का हामी है ।

वसुधा विलाप अमरनाथ सहगल

पहले के और अब के मूर्त्तिकारों में एक स्पष्ट अन्तर यह है कि जीवन के दृष्टिकोण के प्रति अपनी अन्तर्मुखी साधना एवं उदात्त कल्पना द्वारा जबकि वे सूक्ष्म सौन्दर्य को मुखर करने के लिए सतत चेष्टाशील थे तो समकालीन अशांति एवं कुठाओं की अति व्याप्ति ने आधुनिक कलाकार की मनः स्थिति को संक्रान्त बना दिया है । नित-नये अभावों और विसंगतियों ने उसके मन को तोड़ दिया है, अतः परिवेश की इस टूटन का प्रभाव उसके कृतित्व पर पड़ा है, बल्कि कहें कि उसका आध्यात्मिक पतन हुआ है जिसका परिणाम है कि उसका चिन्तन खंडशः हो बिखर गया है ।

व्यंग्य चित्रकार

यूँ तो व्यंग्य चित्रकला मौजूदा मानो में आधुनिक युग की देन है, पर भारत में हास्यकला का अस्तित्व अत्यन्त प्राचीन काल से है। मनुष्य चूँकि कौतुकप्रिय है, उसकी अंतरंग अभिव्यक्ति टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों और अजीबो-ग़रीब भौंडी आकृतियों में ही सर्वप्रथम सामने आई थी जिसे देखकर वह बरबस मुस्करा पड़ा था। अतः व्यंग्यकला का सूत्रपात तो प्रस्तर युग में ही हो गया था।

भारत की प्राचीन मूर्त्तिकला में ऐसी अनेक मिसालें हैं जिनमें बौनों, बन्दरों, मोटे, स्थूलकाय व्यक्तियों और विचित्र हास्यास्पद आकृतियों का निर्माण किया गया है। मथुरा संग्रहालय में पहली शती में निर्मित एक उत्कीर्ण प्रस्तर खण्ड पर एक पशु-पक्षी चिकित्सालय का दृश्य अंकित है। दो चिकित्सक बन्दर आमने-सामने ऊँचे आसनों पर विराजमान हैं। रोगी के रूप में एक ओर खड़ा है—यक्ष, जिसकी आँख में तकलीफ़ है और वह दो उँगलियों से आँख फाड़कर गंभीर मुद्रा में बैठे उस बंदर चिकित्सक से अपनी आँख का परीक्षण करा रहा है, दूसरी ओर के बन्दर चिकित्सक से उल्लू महाशय उतने ही ऊँचे आसन पर बैठे अपनी आँख का आपरेशन करा रहे हैं। बन्दर के कंधे पर सर्जरी के सामान का थैला लटका है। दायाँ हाथ घुटने पर और बायाँ हाथ ठुड्डी पर ऐसा लगता है—जैसे बन्दर महोदय बड़ी तल्लीनता व एकाग्रता से अपने मरीज को देख रहे हैं।

एक और पुरानी मूर्त्ति भरहुत से प्राप्त दूसरी शती ई० पूर्व की है जिसमें एक विशाल शिलाखण्ड पर जातक कथा अंकित है। एक दानव के दाँत में भयंकर पीड़ा हुई जिससे वह बौखला उठा। कुछ बन्दर उसी समय दानव के चक्कर में फँस गए और वह उनका पीछा छोड़ने को तैयार न हुआ जब तक कि वे उसकी दंतपीड़ा का अपहरण करने का कोई उपाय न करें। चतुर बन्दरों ने उसे एक चौकी पर बैठा दिया। उसके दर्दीले दाँत में एक बड़ी सी संड़सी फँसा दी गई और एक बंदर कहीं से एक हाथी पकड़ लाया जिसकी सूँड में उसे अटका दिया गया। एक बंदर ने हाथी के सिर में अंकुश से प्रहार किया, दूसरे ने पूँछ मरोड़ी, तीसरे ने धक्का मारा और कुछ बंदरों ने मिलकर शंख, घड़ियाल, ढोल, नफीरी बजाना शुरू कर दिया जिससे हाथी भाग खड़ा हुआ।

फलस्वरूप दानव का दुखता दाँत बाहर निकल कर गिर पड़ा जिसे एक बंदर ने उठाकर दानव के समक्ष प्रस्तुत कर दिया। समूचा दृश्यांकन बड़ा ही सजीव और हास्योत्तेजक है। मथुरा में दूसरी शती की कुश शैली की एक सर्वांग सुन्दरी नारी प्रतिमा के पैरों तले एक महामूर्ख बौना विचित्र मुद्रा में बैठा दर्शाया गया है। इसी प्रकार उड़ीसा में प्राप्त एक कोमलांगी सुकुमारी के समीप कपि की कौतुकप्रिय भंगिमा का दिग्दर्शन है। सांची, भरहुत, सारनाथ, खिचिंग, मयूरभंज व उड़ीसा में देव-दानव, यक्ष-गंधर्व, नाग-नागिनी, पशु-पक्षी आदि की प्रतिमाएँ उपलब्ध हुई हैं जिनमें प्रचुर हास्य एवं व्यंग्यात्मक सामग्री है। बौद्ध उत्कीर्णनों में उलूक जातक, शश जातक, कच्छप जातक में कहीं बालक धृष्ट कछुए की मरम्मत कर रहे हैं तो कहीं शाखामृगों द्वारा उलूक का अभिषेक किया जा रहा है। रामायण, महाभारत और पौराणिक आख्यानों पर आधारित प्रसंगों में भी यत्रतत्र हास्यरस का पुट है।

प्राचीन काल में हमारे यहाँ व्यंग्य व हास्यकला मात्र विनोद व मनोरंजन के लिए थी अर्थात् मस्ती और प्राणों की पुलक को जगाने तथा अंतरंग उत्फुल्लता की स्वीकारोक्ति के रूप में ही उसका प्रचलन था। किन्तु आधुनिकता की हवा में बहकर तो वह राजनीतिक दाँवपेंच और कूटनीतिक हथकंडों से सम्बद्ध हो गई। इस रूप मे उमका विकास विदेशी अनुकरण पर हुआ। व्यंग्य चित्र आज बहुत मार्मिक और चोट करने वाला होता है, जो सैकड़ों शब्द नहीं कह सकते, केवल कुछ रेखाओं के 'कैरिकेचर' में उसे बड़ी खूबी से बाँधा जा सकता है। तिस पर वह एक ऐसी मूक आलोचना है जिससे कटुता या आक्रोश नहीं बल्कि बाँछें खिल उठती हैं। जिसमें जितनी ही पैनी दृष्टि है वह उतनी ही गहराई से वस्तु की तह में पैठकर उसकी कमजोरी को भाँप लेता है और इस पहलू से आँकता है कि जिससे उसका मतलब सिद्ध हो सके।

अद्यतन व्यंग्यकला का वैशिष्ट्य है—अलग-अलग सन्दर्भों में जाँचने-परखने की एक मौलिक चिन्तन प्रक्रिया, एक निरपेक्ष दृष्टि, बल्कि कहें कि दूरगामी, बेलाग होते हुए भी मौजूदा व्यंग्यकार आसन्न स्थिति के प्रति प्रतिबद्ध है। बीसवीं शताब्दी के नये पेचीदे संघर्ष, घुटनभरी उदासी, पीड़ा, विघटन, कड़वाहट और कृत्रिम आवर्त्तों में छटपटा रहा जीवन, वैयक्तिक मूल्यों की उपेक्षा करने वाली राजनीति, प्रजातन्त्र का ढोंग, खोखले आदर्शों की स्थापना

का विफल प्रयास, साथ ही विज्ञान, कला, दर्शन, साहित्य की उपलब्धियों का दंभ, जहाँ आज भी मनुष्य पहले की ही तरह बौना है वरन् पाने की बजाय उसने अपना विशिष्ट कुछ खोया है। आधुनिकता की वैचारिक यन्त्रणा ने मन को उद्वेलित किया है, उसके प्राणों को मथा है, अणु-परमाणु, समय एवं गति की झपेट में वह अनवरत संत्रस्त है, उसे कहीं भी त्राण नहीं मिल पा रहा, देश की स्थिति, आन्दोलन, अपराध भावना, प्रतिक्रियाएँ, दुश्चिन्ता, अकाल, संघर्ष, नवीन क्रान्तियों की ऐंचतान तथा हर प्रकार की समस्या व संकट बोध के प्रति व्यंग्यकार सजग है और अपने ढंग से उसे प्रस्तुत करने का प्रयास करता रहता है। वह थके हारे, दिशाहीन, भटकते लोगों को मार्ग-निर्देशन करने का इच्छुक है बशर्ते कि पेशेवर व्यंग्यकार किसी ख़ास घटना व प्रसंग में अपनी अनुभूति की अनुगूँज पाता हो। किसी भी संवेदना के साथ तादात्म्य असंभव है, जब तक कि उसमें अंतरंग सचाई न हो, अतः विषय का चुनाव उसकी अपनी संवेदना का चुनाव है। व्यंग्यकार अपनी संवेदना की आधार भूमि पर ही वस्तुतः किसी अच्छे कार्टून की सृष्टि कर सकता है।

व्यंग्यकला में दुनिया का सबसे अग्रणी शायद लंदन का 'पंच' था जिसने समसामयिक घटनाओं एवं राजनीतिक परिस्थितियों को प्रस्तुत करने में कमाल कर दिखाया। 'पंच' के सुप्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकारों—सर जान टेनियल, लिनले सैम्बर्न, सर बर्नार्ड पैट्रिज, रेवेन हिल, स्प्राड, लाम्टन आदि के अलावा विश्व-विख्यात डेविड लो, विकी, ब्रेन थाम्पसन, फ्रैंक रेनाल्ड्स, सर फ्रैंसिस गोल्ड, सिडनी स्ट्यूब, फ्रांस का व्यंग्यचित्रकार ट्रेज, अमेरिका का डैनियल रौबर्ट, फिट्ज पैट्रिक आदि यूरोपीय व्यंग्यकारों ने भारत के पुनर्जागरण काल में बौद्धिक पीढ़ी को अभिभूत किया और 'दि इंग्लिशमैन', 'स्टेट्समैन', 'इंडियन डेली न्यूज', 'टाइम्स आफ इंडिया' आदि कुछ अंग्रेजी पत्रों के माध्यम से यहाँ भी व्यंग्यचित्रों का सिक्का जम गया।

आधुनिक व्यंग्यचित्रों के जनक स्वर्गीय **गगनेन्द्रनाथ ठाकुर** थे, यद्यपि इससे पूर्व कुछ भारतीय पत्रों ने कार्टून व व्यंग्य-चित्रों को प्रश्रय दिया था। बीसवीं सदी के प्रथम दशक में 'हिन्दी पंच' बम्बई से प्रकाशित हुआ जिसमें बरजोर जी नवरोज जी के अलावा ए० तलचेरकर भी उस समय के प्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकार थे। एम० एस० शर्मा नामक एक व्यक्ति ने 'शर्मास पोर्टफोलिओ आफ ड्राइंग्ज़' नामक पत्रिका मद्रास से निकाली। इसमें उनके व्यंग्यचित्रों की धूम सी मच गई।

यहाँ तक कि टैगोर भी उनके रोचक और वैविध्यपूर्ण विषयों के क़ायल थे। 'नायक' नामक बंगला का एक पत्र था जो कलकत्ता से निकलता था और जिसमें व्यंग्यचित्रों की भरमार होती थी। इसके अलावा 'भारत मित्र', 'अमृत बाज़ार पत्रिका', 'लुकर आंन', 'माडर्न रिव्यू' आदि पत्रों के पन्ने कार्टूनों से सज्जित रहते थे।

१९२१ में गगनेन्द्रनाथ ठाकुर ने कई ठोस व प्रभावशाली व्यंग्यचित्र बनाये जो तत्कालीन दुरवस्था के दिग्दर्शक थे। उस समय की विषम परिस्थितियों पर कटाक्ष करने वाले उनके व्यंग्यचित्र अनेक पत्र-पत्रिकाओं में छपते रहे। 'विरूप बाज़ार' और 'रिफार्म स्कीम्स' नामक उनके दो व्यंग्यचित्रों के संकलन प्रकाशित हुए। गगनेन्द्र ठाकुर के शिष्यों में चंचल बैनर्जी एक अच्छे हास्य व विनोदवृत्ति के कलाकार थे जो पेरिस भी गए, किन्तु असमय ही उनकी मृत्यु हो गई। कलकत्ता की 'आनंद बाज़ार पत्रिका' का प्रकाशन १९२२ में प्रारंभ हुआ। यह पत्रिका स्वातन्त्र्य आन्दोलन और गांधी जी के सिद्धान्तों की प्रमुख प्रचारक थी। दिनेश रंजनदास, सी० दास और विनयकृष्ण बोस जैसे व्यंग्य चित्रकारों ने अपने कार्टूनों से इस पत्रिका को राजनीतिक क्षेत्र में अग्रणी बनाया और उनके व्यंग्यचित्रों की धूम-सी मच गई।

शंकर

इस समय सर्वाधिक प्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकार शंकर अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त कर चुके हैं। सामयिक परिस्थितियों, राजनीतिक घटनाओं तथा अपने समय की हर छोटी-बड़ी अन्यथा बात को लेकर उन्होंने तिलमिला देने वाले व्यंग्यचित्र बनाये है। वे गंभीर से गंभीर समस्याओं को चन्द रेखाओं से एक ऐसी मौलिक अभिव्यक्ति दे देतेहै अथवा किसी ऐसे प्रतीक अथवा रूपाकृति में ढाल देते है कि उनका कोई सानी नहीं। यही नहीं वरन् अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर वे उतनी ही खूबी से चित्र-निर्माण करते है।

त्रावणकोर इनकी जन्मभूमि है, पर अधिकतर दिल्ली ही इनकी साधना भूमि रही है। व्यंग्यचित्रों की ओर इनकी जन्मजात रुचि थी। बचपन में ही इस कला की ओर इनका ध्यान आकृष्ट हुआ, पर साथ ही साथ आजीविका के लिए इन्हें वकालत भी पढ़नी पड़ी। ऐसी रुक्ष पढ़ाई में इनका मन न रमा और ये बम्बई चले गए। वहाँ एक बीमा कम्पनी में काम करने लगे, किन्तु

खाली जेबें
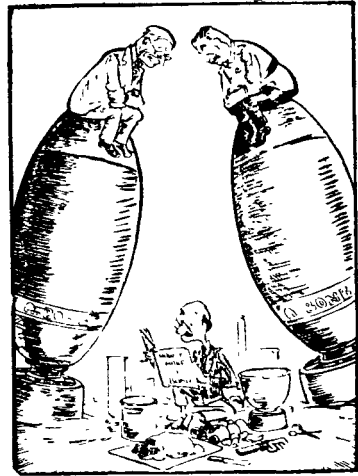
शंकर का एक पुराना चित्र

फुर्सत के वक्त ये व्यंग्यचित्र ही बनाया करते थे। उन दिनो के बनाए इनके चित्र 'बाम्त्रे क्रानिकल' में छपते थे। तत्पश्चात् 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में इन्होंने कई वर्षों तक कार्य किया और उस समय की राजनीतिक परिस्थितियों में इस पत्र के माध्यम से शंकर की ख्याति विदेशों में भी फैल गई, यहाँ तक कि कुछ पाठक तो शंकर के व्यंग्य चित्रों को देखने के लिए ही 'हिन्दुस्तान टाइम्स' खरीदते थे। कुछ समय तक इन्होंने 'न्यूज़ क्रानिकल' में भी काम किया।

शंकर का दृष्टिकोण मानवतावादी है। पूँजीवादी प्रतिनिधियों के साथ अर्से तक काम करने के बावजूद वे साम्यवादी और स्पष्टवादी विचारक हैं जिससे उद्योगपतियों के साथ उनके मन का सामंजस्य कभी न जुड़ा। उनके मत में कार्टूनकार को सदा वामपक्षी ही रहना चाहिए। यदि वह पूँजीवादी बन जाए तो वह कभी भी सफल व्यंग्यकार नहीं बन सकता। इसलिए वे किसी गुटबन्दी या पार्टी में नहीं हैं, वे तो सबकी समान आलोचना करते हैं। साम्राज्यवादी, पदलोलुप नेता व राजनीतिज्ञ, मुनाफाखोर, समाजघाती, गरीबों के रक्त-पिपासु, सबसे अधिक अय्याश, तड़क-भड़क और कृत्रिम ज़िन्दगी के हिमायती अंग्रेजीदाँ लोग, जो गुलामी की सड़ाँद में रमे दंभी और अंधे बने हुए हैं और असल की अवहेलना करके नकल के पीछे विवेकहीन पथ का अनुसरण कर रहे हैं। दरअसल, इन्हीं लोगों का प्रतीक है—बड़ा साहब और मेम साहब

जिसका सिर गधे का और बेडौल शरीर महामूर्खता का द्योतक है। शंकर कहते हैं—'मैं ऐसे सोचता हूँ जैसे एक स्टेज है और मैं उसके सामने बैठा हूँ। उस स्टेज पर जो आता है उसे मैं ग़ौर से देखता हूँ। उसके हर अनौचित्यपूर्ण दुष्कृत्य का मैं निंदक हूँ। उसी का मैं परिहास करता या कार्टून बनाता हूँ।'

शंकर अपने प्रतिपाद्य विषय के साथ इतने एकमेक हो जाते हैं कि अनेक बार चित्र बनाते समय उनकी भावभंगी और चेष्टा बदल जाती है। कभी वे मुँह बनाते हैं, कभी हास्य मुद्रा में होते हैं तो कभी क्रोध में, कभी वे अट्टहास करते हैं और कभी बेहद गंभीर हो जाते हैं। ढलती वय में भी बड़े परिश्रमी, धुन के पक्के और सच्ची लगन के व्यक्ति हैं। अपने पत्र 'शंकर वीकली' के लिए वे सुबह से शाम तक कड़ी मशक्क़त करते हैं और यूँ उन्होंने सैंकड़ों-हज़ारों चित्र बना डाले हैं। इधर बाल-कला में भी उनकी बेहद अभिरुचि बढ़ गई है और बालकों द्वारा निर्मित चित्रों की प्रतियोगिताओं के माध्यम से वे अंतराष्ट्रीय क्षितिज पर देश-देश के बच्चों की सृजन-अभिरुचियों के वैविध्य को दुनिया के सामने रखने का प्रयास कर रहे हैं।

अहमद
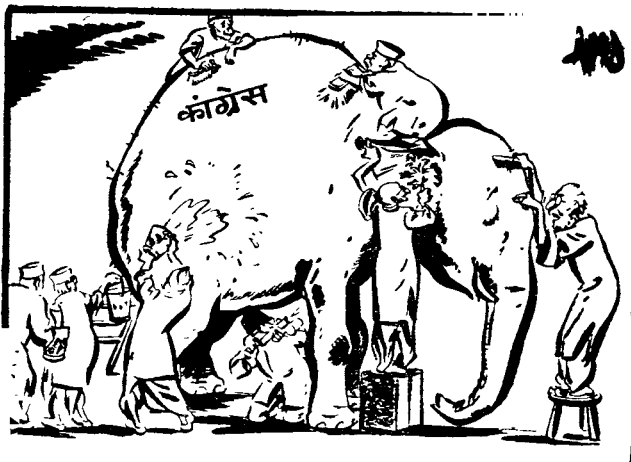
कांग्रेस की शुद्धि

अहमद जब पेट के लिए दर-दर भटक रहे थे तो अनायास उन्हें यह कला

हाथ लगी जिसके लिए उन्होंने यह कभी स्वप्न में भी कल्पना न की थी कि वह कभी उनकी रोजी और रोटी का सवाल हल कर सकेगी। प्रारम्भ में उनकी बड़ी साध थी कि वे पुलिस में नौकरी करें, वे इसके लिए इधर-उधर भटकते भी फिरे, पर सफल न हुए। तत्पश्चात् विज्ञापन एजेंसी में कार्य किया, पर कुछ समय बाद 'पाइनियर' में इनकी नियुक्ति हो गई। 'डान' से थोड़े दिन सम्बद्ध रहकर ये 'हिन्दुस्तान टाइम्स' में आ गए। अहमद रेखाओं के धनी हैं, इनकी ड्राइंग सशक्त है और वे कुछ रेखाओं में अपने अभिप्राय को खूबी से व्यंजित करते हैं। शंकर जैसी पैठ और गहराई तो इन में नहीं है, किन्तु इन्होंने राज-नीतिक समस्याओं को पाठकों के लिए सुगम और सुबोध बनाने के लिए अपने चित्रों में हास्य और व्यंग्य का सम्यक् समन्वय दर्शाया है। 'चंदू चौकीदार' नामक पट्टी 'हिन्दुस्तान टाइम्स' की विशेष व्यंग्य फीचर रही है जो अपने समय की घटनाओं का प्रतिनिधित्व करती रही है। बाहरी विग्रह-विक्षेप को आत्मसात् करके इन्होंने अपने सैकड़ों व्यंग्यचित्रों द्वारा ऐसी दिशा का संकेत किया है जिसमें पाठक की ग्राह्य शक्ति अपना मार्ग स्वयं खोज लेती है। इन्होंने न सिर्फ़ भ्रष्टाचार, साम्प्रदायिकता का ज़हर, कानूनी व्यवस्था, काश्मीर समस्या, युद्ध-आतंक जैसे गम्भीर विषयों को लिया है, बल्कि दैनन्दिन विसंगतियों के सन्दर्भ में मौलिक धारणाओं को प्रश्रय देकर नई भावभूमि उपस्थित की है। हमेशा कुछ नया दिया है, समय के रुख़ को पहचाना है, राजनीतिक, सामाजिक और राष्ट्रीय समस्याओं से एक ऐसा मानवतावादी निष्कर्ष निकाला है जो एक चुनौती के रूप में सदा सामने है।

अहमद ने अपने व्यंग्यचित्रों द्वारा अत्याचार के विरुद्ध आवाज़ उठाई है। शोषण, उत्पीड़न, बर्बरता उनकी घृणा का केन्द्र-बिन्दु रहा है। आधुनिक संचेतना के प्रबल समर्थक के नाते उन्होंने युग और समय की प्रतिबद्धता को स्वीकार किया है। मनोवैज्ञानिक विश्लेषण चूँकि राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय घटनाओं को प्रस्तुत करने के लिए अनिवार्य है, अतएव स्वातन्त्र्य भावना उनके चिन्तन का बुनियादी पहलू है और इस आधारभित्ति पर वे सैकड़ों व्यंग्यचित्रों का निर्माण कर चुके हैं।

लक्ष्मण

इनके चुटीले व्यंग्यों में मूक आलोचना और निर्दोष परिहास का पुट होता है। जीवन और जगत् की विषम समस्याओं के अलावा रोज़मर्रा की बातें भी इन्होंने उसी तत्पर गंभीरता से प्रस्तुत की हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विषयों में इनकी समान रुचि है। आज के संकुल और संघर्षशील जीवन में बड़ी भाग-दौड़ सी मची हुई है। इस मशीन युग में मनुष्य भी यन्त्र वत् हो गया है। बड़ी ऐंचतान, बेहद तनाव और कशमकश। राजनीति में तो और भी दाँव-पेंच हैं। इन्होंने नेताओं के विशिष्ट व्यंग्यात्मक चित्रों का निर्माण किया है। इसके अतिरिक्त देश-विदेश, बाहरी-भीतरी और समय-असमय की घटनाओं के व्यंग्यात्मक पहलुओं पर दृक्पात करके चित्र आँके हैं। उदाहरणार्थ—कोरिया समस्या जब पेचीदा होती गई तो अमेरिका और चीन अपनी-अपनी चाबी को ठीक समझ कर ताला खोलने की चेष्टा करते, पर और अधिक जकड़बंदी में फँस जाते। उनकी अनभिज्ञता पर करारी चोट करते हुए इन्होंने दर्शाया कि यह ताला और भी अधिक मज़बूती से कसता जा रहा है। अपने चित्रांकन के सूक्ष्म ब्यौरों और ड्राइंग की दक्षता के कारण 'कैरिकेचर' कला में इनकी मौलिक पैठ है। खासकर 'टाइम्स आफ इंडिया' से ये अर्से से सम्बद्ध रहे हैं। अपने चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी इन्होंने कई बार आयोजित की हैं।
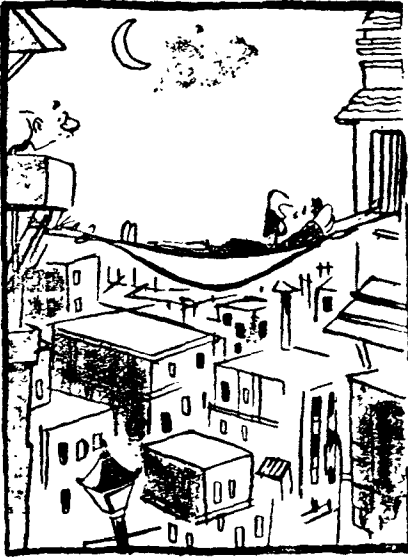
क्या करें—फ्लैट में बहुत अधिक लोग हैं

कुट्टी

कुट्टी ने भी मौलिक चिन्तक के रूप में व्यंग्य चित्रण की दिशा में क्रान्तिकारी विचार प्रस्तुत किये हैं। समय की रफ्तार को जो अपने चित्रों की लय में आबद्ध करने में सफल हो जाए तो वही सही रसोद्रेक कर सकता है। आवर्त्तन प्रत्यावर्त्तन, सामयिक गति विधि और घटना-चक्र ने अनवरत जीर्ण होते जा रहे मूल्यों के खोखलेपन का पर्दाफ़ाश किया है। एक सशक्त इंकार अधिकतर इनके चित्रों में मिलता है। समाज से जिस एक बड़ी सी निःस्पृह संगठन-मूलक काया का बोध होता है, उसके संदर्भ में न जाने कितनी विकल्पवादी स्थितियाँ उभरती हैं, साथ ही देश की राजनीतिक परिस्थितियाँ कुछ ऐसी बनती जा रही हैं कि सत्ता के लिए होने वाला संघर्ष दिनोंदिन बढ़ता जा रहा है। नित-नई समस्याओं की जटिलता बढ़ती जा रही है। अतएव इस ध्वंस की प्रवृत्ति, भ्रष्टाचार, राजनीतिक दाँवपेंच, परस्पर स्पर्द्धा, खाद्य संकट आदि के दिग्दर्शक न जाने कितने व्यंग्य चित्रों का इन्होंने निर्माण किया है। २६ जनवरी पर बनाये गए कार्टून में विशाल जलूस के पीछे काश्मीर समस्या के रेंगते ज़हरीले साँप और

उद्योगपतियों और सरकार के बीच आर्थिक गठबन्धन का एक एडवेंचर

मध्यपूर्व संगठन रूपी दानव के आतंक की मँडराती सायाएँ दर्शायी गई हैं। एक दूसरे चित्र में थोथे कांग्रेसी वायदों की एक कागज़ी क़ब्र के चित्रण में इनकी सूझ का सुन्दर परिचय मिलता है। यद्यपि आज के वातावरण में अनेक संशय उत्पन्न हो गए हैं, ज़िन्दगी की जड़ खोखली सी लगती है, फिर भी किसी भी स्थिति में, मानव सत्य सबसे बड़ा है, उसे नज़रन्दाज़ करना महान् मूर्खता है। कुट्टी मानवतावाद के क़ायल हैं और यही सिद्धान्त इनके सैकड़ों व्यंग्य चित्रों का प्रेरणास्रोत है।

सैमुएल (सामु)

सैमुएल की खूबी है कि वे तूलिका के सहारे हँसी-हँसी में बड़ा ही गंभीर
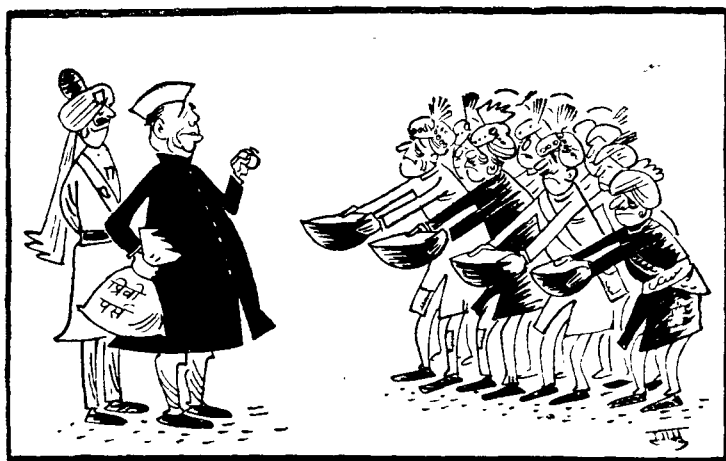
साहब, बख्शीश

बात कह जाते हैं। समाज और राजनीति सम्बन्धी दैनन्दिन प्रसंगों एवं घटनाओं तथा परस्परविरोधी परिस्थितियों के दिग्दर्शक कितने ही व्यंग्यचित्रों का इन्होंने निर्माण किया है। 'मुसीबत है', 'यह दिल्ली है', 'दिल्ली के स्वप्न' शीर्षक पट्टियों में तथा मध्यवर्गीय स्तर के द्योतक 'बाबू' के ज़रिए इन्होंने जीवन की विसंगतियों पर व्याख्यात्मक प्रकाश डाला है। आशा और निराशा के दो अतिवादी छोरों में बँधा जीवन तीखी विसंगति बोध का पर्याय है, साथ ही

विश्व युद्धों के अंतराल में लटकता यूरोपीय जीवन भी मूल्यों के विघटन और अनास्था से आक्रान्त है। इस विसंगति का कोई सहज ही समाधान नहीं है, बल्कि यह एक ऐसी महत्त्वपूर्ण समस्या है जिस बिन्दु से व्यक्ति बार-बार टकराता है।

इन्होंने अपने कितने ही व्यंग्य चित्रों में विसंगति की अबूझ प्रक्रियाओं को तर्कपूर्ण अर्थ प्रदान किया है। इनके मत में व्यंग्यकार को स्थितप्रज्ञ भाव से हर दुर्दम्य स्थिति के प्रति बेहद सचेत और जागरूक रहने की आवश्यकता है। घुमक्कड़ रुचि के साथ 'टाइम्स आफ इंडिया' से सम्बद्ध हैं, पर 'नवभारत टाइम्स' में इनकी कहानीनुमा व्यंग्य फीचर भी अपनी विशेषता रखती है।

अनवर

अनवर की भी एक नई दुनिया है जिसमें नूतन क्षितिज के नए उभरते क्रान्तिकारी उद्घोष के प्रति कहीं-कहीं गहरा असंतोष एवं आक्रोश उनके चित्रों द्वारा व्यक्त हुआ है। आधुनिक युग में नित-नई परिस्थितियों की टकराहट से राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक स्वरूप पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है। ख़ासकर राजनीति हर क्षेत्र पर हावी है। भारत-विभाजन ने भयावह स्थिति पैदा कर दी थी और भारतीयों को भीतर तक झकझोर डाला था। अनवर ने पाकिस्तानियों के विद्वेष और ग़लत नीतियों का पर्दाफ़ाश किया है। जाति भेद, शस्त्रीकरण, उपनिवेशवाद, राष्ट्रविरोधी परम्पराओं और आर्थिक वैषम्य का इन्होंने घोर विरोध किया है और कट्टरतावादी दक़ियानूस कठमुल्लों को लताड़ा है। अपने व्यंग्य चित्रों के माध्यम से इन्होंने हमेशा जनता के समक्ष अपना विशाल दृष्टिकोण सामने रखा है।

वीरेश्वर

मुख्यतः राजनीति और सामाजिक विषयों में रुचि रखते हैं। विभिन्न पार्टियों की अधिकार-लिप्सा और पैंतरेबाजी पर इन्होंने फब्तियाँ कसी हैं। 'तीन बंदर', 'मशीनगन और चूहेदान', 'सींकिया पहलवान' आदि इनके चित्रों में बड़ी गहरी कचोट और चुभन होती है। इनके चित्र वातावरण के अनुरूप परस्परविरोधी परिस्थितियों के दिग्दर्शक हैं। फिर भी वे वाह्य प्रतिक्रियाओं तक ही सीमित नहीं हैं, बल्कि बुनियादी प्रश्नों से जूझ कर उसके आधारगत अर्थ से जुड़े हैं।

शिक्षार्थी

नई पीढ़ी के व्यंग्य चित्रकारों में शिक्षार्थी के व्यंग्य चित्र सर्वाधिक लोकप्रिय है। इन्हें अपने दायित्वों का ज्ञान है और इनका दृष्टिकोण बड़ा ही संतुलित है। इन्होंने निष्पक्ष भाव से मानव-जीवन के विभिन्न पहलुओं का चित्रण किया है। पतनोन्मुख प्रवृत्तियाँ तथा आज की ज्वलंत सामाजिक एवं राजनीतिक समस्याओं को इन्होंने अत्यन्त सधे एवं प्रामाणिक रूप में प्रस्तुत किया है। छोटे-मोटे प्रसंगों, घटनाओं एवं स्थितियों पर इनकी हल्की-फुल्की छींटाकशी व कटूक्तियाँ बड़ी प्रभावपूर्ण होती है। कभी-कभी गुदगुदाकर उत्फुल्लता जगाती है तो कभी आक्रोश पैदा कर देती हैं।

तब तक मैं तुम्हारे लिए पान लगवाता लाऊँ

इनकी लोकप्रियता का रहस्य है—गहन मानवीय संघर्ष और कलात्मक सार्थकता। किसी भी सर्जनात्मक कृति की समग्रता को उजागर करने के लिए दोनों को अविभाज्य मानकर चलना होता है, अतः किसी भी मामूली सी मामूली बात को चित्रित करने के लिए, साथ ही उसके ब्यौरों की व्याख्या और गहराई आँकने के लिए मूर्त परिवेश, इन्द्रियगोचर वातावरण तथा जीवन्त परिस्थितियों को प्रस्तुत करना अनिवार्य है, ताकि समस्त सूत्रों का एक तार छू देने से समूचा भाव झंकृत हो उठे। समय की सतत प्रवहमान धारा में जीवन के क्षितिज नये-नये रूपों में उद्घाटित होते रहते हैं। नये परिवेश और परिवर्तनों ने इन्हें सदा

वचन दो कि ऊँची एड़ी के संडल कभी नहीं पहनोगी

नई दृष्टि प्रदान की है। दृष्टि बदलती है, अनुभव बदलते हैं तो अभिव्यक्ति भी बदलती है। कभी दिशाएँ बदलती है, तो कभी लक्ष्य और दोनों एक दूसरे से टकराते हैं। इन सबके बीच इनका अपना निजी दृष्टिकोण है, साधना अंतः प्रेरित, जीवन-दृष्टि स्व-उपलब्ध और शैलीशिल्प वैशिष्ट्यपूर्ण। अपने सहवर्ती समाज में, राष्ट्रीय व अंतर्राष्ट्रीय समस्याओं से ग्रस्त, परिस्थितियों के अछूते अंचलों में, निम्नवर्गों में, सुख-दुःख के ठोस संघर्षों में, दानवी, मानवी और यथार्थ व कल्पनागत भावनाओं के उद्दाम वेग में बहते हुए इन्होंने नई लीक क़ायम की है, विषय वैविध्य के बावजूद उद्देश्यपरक एवं मूल प्रेरणाप्रसूत प्रसंगों का अनूठा चित्रण किया है जो दर्शक को अभिभूत कर लेता है।

मारियो

अर्से से बम्बई के 'टाइम्स आफ इंडिया' में कार्टून कलाकार के बतौर काम कर रहे है। विदेशों में भ्रमण के दौरान विदेशी टेकनीक से प्रभावित हुए हैं, किन्तु किसी कला रूढ़ि की अपेक्षा ये उन सत्यों को महत्त्व देना चाहते हैं जो इनके तजुर्बे से गुज़रते हैं। फलतः अपने निरीक्षण के बिम्ब चुनकर और ज़िन्दगी में घुल-मिलकर सैकड़ों दैनन्दिन दृश्यों को इन्होंने सामने रखा है। न जाने कितनी अनुभूतियों, संवेदनाओं और स्थितियों को 'पर्सनल टच' देकर इन्होंने अपना बनाया है। वस्तुतः आज के व्यंग्यचित्रों का तकाज़ा है कि नये भावबोध के माध्यम से जीवन के बिखरे क्षणों में पैठा जाए, क्योंकि ये बटोरे हुए बहुमूल्य क्षण ही जीवन के प्रतिनिधि हैं, इनसे ही जीवन की सूक्ष्म से सूक्ष्म गुत्थियाँ सुलझाई जा सकती हैं।

अफसर का एक पहलू

मारियो ने इस दिशा में अनेक विधाएँ खोजी हैं। नये युग की समूची विसंगतियाँ और वर्जनाएँ इन्होंने समय की पीठिका में उभरे मूल्यगत प्रतिमानों से आँकी है। इसका अनवरत संधान ही इनके व्यंग्य की वैचारिक आधार

भूमि है अर्थात् सारे विघटन, विक्षोभ, अनास्था और संकट के बीच वे मात्र मसखरा नहीं बनना चाहते, बल्कि एक जिम्मेदार व्यक्ति के रूप में उन्हें मौलिक ढंग से पेश करना चाहते हैं।

कदम

कदम राजस्थान के हैं और बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट के विद्यार्थी रहे हैं। बचपन से ही व्यंग्यकार के रूप में अपने प्रखर चिन्तन को जनता के समक्ष रखने की इनकी महत्वाकांक्षा बलवती रही है। पत्रकारिता की साधना इनकी ज़िन्दगी का पेशा है और ये इधर-उधर पत्रों में अपने व्यंग्य-चित्रों द्वारा विचार व्यक्त करते रहते हैं। १९५० से ये 'नवभारत टाइम्स' में

प्यासा

काम कर रहे है, किन्तु इन्होंने प्रायः सभी प्रमुख पत्रों में अपने व्यंग्यचित्र प्रकाशित कर ख्याति अर्जित की है, यहाँ तक कि यूरोप और बाहरी देशों ने भी इनके चित्रों की सराहना की है। व्यापक पैमाने पर इन्होंने समसामयिकता का अर्थ निभाया है। एक बीहड़ और दुर्निवार मार्ग सामने दिखाई पड़ता है। यह मार्ग कटु सत्य और निर्मम यथार्थ का है। निराशा, पराजय और आत्म-घात की भावना इस युग में अधिकाधिक प्रश्रय पाती जा रही है। यन्त्रयुग ने मानव शक्ति को कुंठित बना दिया है, जैसे कोई भयानक कुचक्र का दानव मुँह बाए खड़ा हो। आज का वातावरण कुछ ऐसा है जो अविश्वास जगाता है। जैसे एक ही अनन्त महासमुद्र के अंतराल में तरंगित छोटी-बड़ी लहरें दूर

प्रसारित दृष्टि में एकाकार हो उठती हैं उसी प्रकार समय की गति पर थिरकती हर छोटी-बड़ी घटनाओं का विश्लेषण इन्होंने किया है और समयानुरूप ये व्यंग्यचित्र आँकते रहते हैं।

इनकी 'पोपट' की पट्टी विशेष लोकप्रिय है जिसमें समसामयिक प्रसंगों को लेकर वैविध्य दर्शाया गया है। कानूनी पीठ, वर्त्तमान शिक्षा-पद्धति, भाषा नीति, घरेलू धड़कन तथा नित-नई समस्याओं पर इन्होंने सैकड़ों-हजारों चित्रों का निर्माण किया है।

प्राण

आज जो जीवन विषम होता जा रहा है और परिस्थितियाँ उसे और भी संकुल बनाये हैं, इससे द्वन्द्व अधिक है, सामंजस्य कम। जटिलता और कटुता अधिकाधिक बढ़ती जा रही है, ऐसी परिस्थिति में जनता को हँसाने वाला इनके मत में सीधे स्वर्ग जाता है। ये कैसे व्यंग्यकला की ओर प्रवृत्त हुए, इन्हीं के रोचक शब्दों में जरा सुनिए—

'एम० ए० (राजनीति) और सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट्स से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लेने के बाद भी कोई नौकरी न मिली तो निराशा हुई। नौकरी की तलाश में फिर रहा था तो प्रसिद्ध व्यंग्यचित्रकार शंकर से भेंट हुई। उन्होंने सुझाव दिया कि यदि मैं राजनीति का एम० ए० और फाइन आर्ट्स का डिप्लोमा मिला दूँ तो मैं एक अच्छा कार्टूनिस्ट बन सकता हूँ। मुझे यह सुझाव इतना पसंद आया कि वहीं से घर की तरफ तेजी से दौड़ लगाई।"
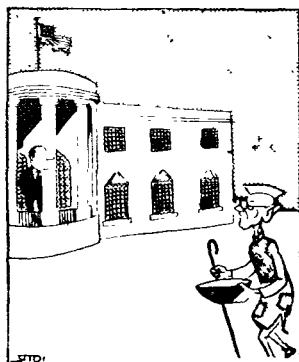
अनोखा भिखारी

प्राण नवयुवक हैं और बड़े लोकप्रिय कलाकार हैं। इनके व्यंग्यचित्रों की विशेषता है कि ये अपनी रुचि के अनुसार अनेक प्रमुख विसंगतियों में से कुछ हल्की फुल्की ज़ायकेदार घटनाएँ चुन लेते हैं और बड़े जीवन्त रूप में उभारते हैं। इन्होंने वैषम्य पर दृक्‌पात करते हुए रूढ़ियों की विडम्बना को तोड़ा है। ये यथार्थ को निस्संग भाव से देखते और व्यक्त करते हैं, यही कारण है इनके द्वारा

अंकित चित्रों में व्यक्तित्व का संस्पर्श होता है। इनके अपने तजुर्बे की कही न कहीं अलग 'शेड' है, अपने कथ्य का अभिप्रेत प्रभाव उत्पन्न करने के लिए इनके प्रतीक अथवा विम्ब पाठक का दृष्टिकोण लिये उभरते हैं जो देश और समाज पर बड़ी दक्षता से घटित होते हुए निर्भीक सत्य का साक्षात्कार कराते हैं।

इनके कार्टून न केवल हिन्दी पत्रों में, वरन् अंग्रेजी, उर्दू, कन्नड़, मलयालम तेलुगु, तमिल, बंगला आदि भाषाओं के पत्रों में भी छपते हैं। इनकी चित्रकथा सीरीज़ और पट्टियाँ समूचे भारत भर के प्रमुख अखबारों में चल रही हैं। विषय-वैविध्य में गहरे पैठने की अपनी क्षमता के कारण इन्होंने अल्प वय में ही काफ़ी ख्याति अर्जित कर ली है।

नेगी
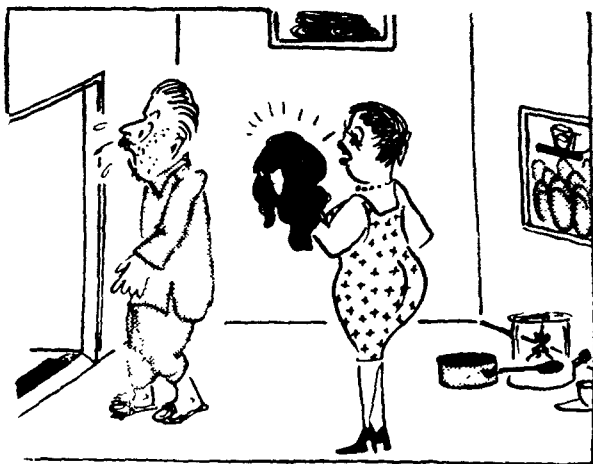
नाई की दुकान पर जा रहे हो तो मेरे बाल भी लेते जाओ, जरा पीछे से छोटे कराने हैं

नेगी की व्यंग्यकला भी संघर्षों से उपजी है। जीवन-यापन के लिए इन्हें दर-दर की ठोकरें खानी पड़ीं, किन्तु घात-प्रत्याघातों और सम-विषम परिस्थितियों ने व्यंग्यात्मक अनुभूतियों और प्रतिक्रियाओं के प्रति सचेत कर दिया। अनेक यातनाएँ, दवाब, कुंठाएँ और विसंगतियों का दिग्दर्शन कराते हुए इन्होंने अपने चित्रों द्वारा स्वार्थ न्यस्त मूल्य पक्षधरों के अन्याय और षड़यन्त्रों से देश की छटपटाती आत्मा एवं बेबसियों का एहसास कराया है। वस्तुतः

सचाई के रूबरू होकर उसके नग्न रूप को पहचानना और उसे निर्भीक अभिव्यक्ति देना तथा थोथी मान-मर्यादाओं एवं मूल्यों को निर्ममता से ठुकरा देना इनकी साधना का ध्येय रहा है।

अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर नेगी ने जीवन-सत्यों और संवेगों को सच्ची अभिव्यक्ति दी है। यथार्थ के बीच जीवन-दृष्टि की पैठ और झूँठे मूल्यों को नकार कर सही पीड़ाओं और विषमताओं को उनके संश्लिष्ट रूप में प्रस्तुत करने में इनका सचेत कलाकार अन्तरंग रूप से सम्पृक्त होकर चला है, सीधी सच्ची बात कहने में इन्होंने रूढ़ शिल्प साधनों को अस्वीकार कर दिया है। हर हिन्दी अंग्रेजी पत्र-पत्रिकाओं में इनके चित्रों का स्वागत हुआ है। ये समसामयिक, राष्ट्रीय-अन्तर्राष्ट्रीय, सामाजिक-राजनीतिक सभी प्रकार के स्थूल-सूक्ष्म पहलूओं की विराटता को बड़ी सहजता से अंकित कर लेते हैं।

रंगनाथ
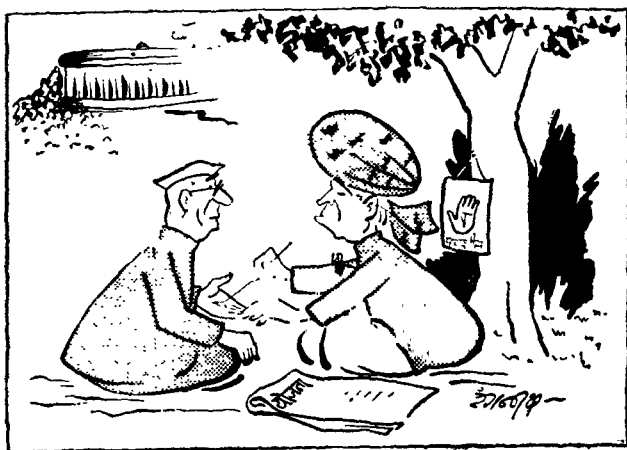
पंडित जी, क्या मैं डिपुटी मिनिस्टर भी नहीं हो सकता ?

रंगनाथ भी परिस्थितियों के प्रखर आलोचक हैं। जैसा जो कुछ दिखाई देता है उसकी असलियत में झाँककर इन्होंने धर्म, समाज, सत्ताशाही के आरोपित आवरणों को उतार फेंका है। अनेक समस्याओं के संदर्भ में अपने आस पास के परिवेश को आत्मसात् करते हुए छोटे-छोटे तजुर्बों, घटनाओं-दुर्घटनाओं एवं

परिस्थितियों को इन्होंने व्यंग्यात्मक पुट दिया है। आज के दुर्दान्त संकट को झेलने वाला मध्यवर्ग इनकी सहानुभूति का विशेष पात्र है। अभिजात्य को अस्त्र बनाकर इस विराट वर्ग की विपन्नताओं में इन्होंने अपनी संवेदना को मुखर कर व्यापक पैमाने पर चित्र आँके हैं। हर दैनिक, साप्ताहिक व मासिक पत्र-पत्रिकाओं में इनके व्यंग्यचित्र छपते रहते हैं।

रवीन्द्र

'हिन्दुस्तान टाइम्स' से सम्बद्ध हैं और समसामयिक घटनाओं पर अपने व्यंग्यचित्रों द्वारा प्रकाश डालते रहते हैं। सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक व घरेलू समस्याओं को इन्होंने सूक्ष्मता से दर्शाया है। ख़ास कर 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में नियमित रूप से प्रकाशित इनकी व्यंग्य फीचर 'मुसीबत है' तथा दैनिक 'हिन्दुस्तान' में 'आजकल' नामक कार्टून विशेष लोकप्रिय हैं। जीवन को विभिन्न स्तरों पर वहन करने वाले पात्रों की इन्हें तलाश है। व्यक्ति और समाज के द्वन्द्व ने इन्हें हर वस्तु के प्रति शंकालु बना दिया है, अतएव इनकी सचेतन प्रज्ञा निरन्तर कुछ पाने के लिए संधानरत है।

सुधीर दर
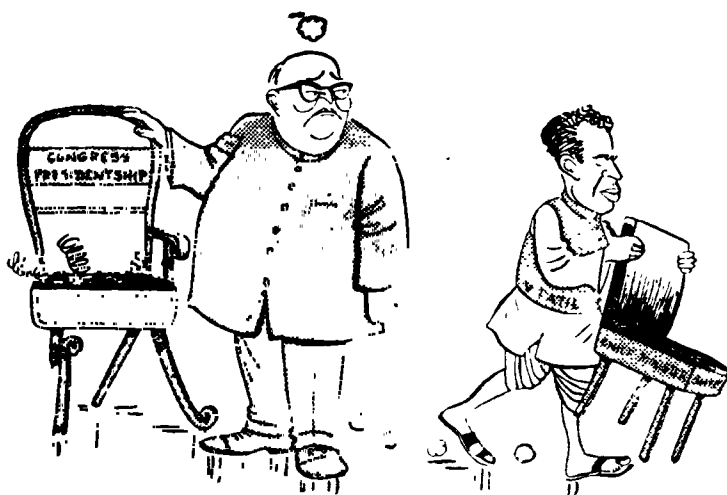
भले ही यह कुर्सी छोटी हो, किन्तु यदाकदा विश्राम के लिए तो ठीक है

ये भी उदीयमान प्रतिभा के धनी हैं और 'हिन्दुस्तान टाइम्स' से सम्बद्ध हैं। 'स्टेटसमैन' में काफी अर्से तक काम कर चुके हैं। ये नित-नये 'एडवेंचर' में विश्वास रखते हैं। दरअसल, हर ज्वलंत समस्या से जूझ कर जीना एक चुनौती है। इनके विद्रूप और व्यंग्यात्मक डिज़ाइनों में हर गुत्थी और उलझन का समाधान रहता है। दिनानुदिन विकृत मनोवृत्तियाँ, संतुलित जीवन स्थितियों का विघटन, नवीन मान-मूल्यों की सापेक्ष्यता में चरामरा कर टूट गई परम्पराएँ तथा जिस अनुपात में भौतिक उन्नति हुई है उसी अनुपात में नैतिक निष्ठा का ह्रास होता जा रहा है। इसके अतिरिक्त आज का क्षोभ, झुंझलाइट, खीझ, कुण्ठा, हीनभाव और औद्धत्य, साथ ही समकालीन सत्य और यथार्थ को भी इन्होंने सबल तूलिका से पकड़ने का प्रयास किया है।

पुरी

एक सशक्त व्यंग्यकार के रूप में इनकी सृजनशील संभावनाओं का नित-नया आभास मिल रहा है। समयानुरूप सजगता इनमें है और ये अपने कार्टूनों द्वारा उसके मर्म पर चोट करते रहते हैं। यथावत् चित्रण के नाम पर बेसिरपैर की हाँकने की इनकी आदत नहीं। इनके व्यंग्यचित्र युग-जीवन को उद्भासित करने वाले और स्वस्थ सर्जनात्मक चेतना को जागरूक करने वाले हैं। इनके विषय अपने परिवेश और जीवन-मूल्यों से टकराते हैं और नये-पुराने का द्वन्द्व उनमें दर्शाया गया है।

विदेशी टेकनीक से प्रभावित व्यंग्यकारों में —

मिकी, बॉब टपर, विष्णु, लिम, वूच, रूपम्, साबु, रविकान्त फड़के आदि हैं जो सामान्य मनुष्य के जीवन-संघर्ष, उसकी करुण नियति व अवसाद को बड़ी ही गहरी चिन्ता वा 'कन्सर्न' के साथ प्रस्तुत करने में विश्वास करते हैं, किन्तु उनके द्वारा सृष्ट आकृतियाँ व उनकी वेशभूषा भारतीय न होकर एकदम विदेशी होती हैं। डी० जी० कुलकर्णी मैसूर स्टेट के वरिष्ठ कलाकार हैं जो 'डिजी' के उपनाम से कार्टून बनाते हैं, बल्कि इन्हें पाकेट कार्टूनों का जनक कहना चाहिए। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, भारत तथा विदेशों में होने वाली अनेक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। पुराने खेवे के व्यंग्य चित्रकारों में दक्षिण भारत के लोकप्रिय सामाजिक व्यंग्यचित्रकार **मालि** जिनका पूरा नाम महालिंगम था और जिनकी असमय मृत्यु से भारी क्षति हुई,

इसके अलावा विभिन्न प्रदेशों में अर्से से काम करने वाले व्यंग्यकारों में **वासु, तानू, गोपुलू, रामकुमार, श्रोमेन, पिस्कल, थैंकरे, प्रकाश, सुनील चट्टोपाध्याय, केरल वर्मा, जोजेफ बसु, जोंटन, जिमिट, मनोरंजन कांजिलाल, श्रीकान्त, अरविन्द, रेवल, टोपा, अमल, अनीस फारुखी, केशारकर, बोरगाँवकर, विजयन, रंगन, दास, नरेन्द्र, बिज्जी, कनाडे, चकोर** आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। नई प्रतिभाओं में **सुरेश, सद्‌गुरु, सुरती, सदानंद, नंदलाल, तूलिको, विनोद, चोपड़ा, पंकज, दिग्विजय, आनन्दलाल भाटिया, बलाराम, कुसुम, इन्द्रा, जानकी** आदि कलाकार अपने नित-नये प्रयोगों द्वारा बड़ी खूबी से इस नई शताब्दी का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं।

सामाजिक घात-प्रत्याघातों और राजनीतिक दाँव-पेंचों में उलझी अद्यतन व्यंग्यकला भारतीय संस्कृति व जीवन-दर्शन से दूर पड़ती जा रही है। गरिमा व महिमामयी भारतीय नारी की तो अच्छी दुर्दशा हुई है। तस्वीर का इकतरफा पहलू कहीं-कहीं इतना अतिरंजित है कि उसे व्यंग्यकारों के हाथ उपेक्षा एवं अवमानना सहन करनी पड़ी है। यह सत्य है कि व्यंग्यकार क्षणधर्मी है, पर इन विशिष्ट क्षणों में उसकी संवेदना निजता से कटकर महज़ नारेबाजी का रूप धारण न करे, वरन् नैतिक अथवा सांस्कृतिक उत्कर्ष प्रदान करने वाले व्यावहारिक जीवन के स्थायी प्रेरक तत्त्वों की अभिव्यक्ति हो। उसकी बौद्धिक चेतना ठोस अनुभव, ज्ञान और स्थिर अवधारणाओं के साथ आगे बढ़नी चाहिए, तभी वह असंगत में से सम्यक् संगत की खोज कर सकता है।

नारी कलाकार

भारतीय कला की विस्तीर्ण परम्परा में नारी की भावप्रवण कोमल अनुभूतियाँ, भीतरी साध एवं सृजनाकांक्षा समय-असमय चित्रों में व्यक्त होती रही। राजप्रासादों, उच्च अट्टालिकाओं और शून्य कक्षों में न जाने कितनी बार कोमल उँगलियों ने लुक-छिपकर प्रिय के चित्र आँके और मिटाये। कितनी ही बार प्रणायस्फूर्त प्रेरणा ने रंग भरे तो विरहदग्ध अश्रुओं ने उन्हें धुँधला किया। नारी की स्निग्ध प्राण-धारा ने कला में नित-नया उल्लास और माधुर्य भरा है। एक ओर प्रेम उसकी कला का मूलमंत्र रहा है तो दूसरी ओर प्राचीन आदर्श, परम्परा एवं संस्कारों के प्रति उसमें गहरी निष्ठा है। अपने व्यावहारिक और घरेलू जीवन में न सिर्फ़ उसने चिरगत्यात्मक प्रवहमान क्षणों को पकड़ने का प्रयास किया, बल्कि अपनी तत्त्वपरक दृष्टि से भिन्न गुण एवं सूक्ष्म प्रक्रियाओं के विकास की नूतन उपलब्धियों को भी प्रश्रय दिया।

बीसवीं सदी में नारी की कलागत सौन्दर्य-चेतना समानान्तर विकसित हुई है। जिस बिन्दु से उसने चलना शुरू किया था, आज वह वहाँ से इतनी दूर चली आई है कि उसके प्राचीन और अर्वाचीन रूप में काफ़ी अन्तर दीख पड़ता है। रेनाँसाँ काल में अमृत शेरगिल युगसापेक्ष्य कलामूल्यों की खोज करने वाली प्रथम महिला थीं। उनकी कला समस्त वर्जनाओं और रूढ़ियों को तोड़कर तात्कालिक जीवन की गहराइयों में पहुँचने और अंतरंग अनुभूतियों के अछूते आयामों को जीवन्त बिम्बों के रूप में चित्रित करने की ओर अग्रसर हुई। उनके हर चित्र में एक कहानी मिलेगी—एक कोई स्थिति, मानवीय पात्र, अभाव की छाया, अव्यक्त पीड़ा, मनोवैज्ञानिक भंगिमा, अपने देश के लोगों के साथ गहरी आत्मीयता और शुद्ध कलात्मक स्तर पर हर दृश्यांकन के भीतर पैठने की अदम्य आकांक्षा। महत्त्व इस बात का था कि उनकी नजर किसी दृश्य के पहलू को किस कोण से चुनती है। वे यथार्थ की समग्रता में, युग की वेदना और संवेदना में, व्यक्तित्व की विसंगति और सुसंगति में अपने स्वरों को खोजती रहीं, अपने प्राण स्पन्दन की अनुगूँज को मुखरित करती रहीं, विदेशी कलातत्त्वों से प्रभावित हुई

अमृत शेरगिल द्वारा निर्मित एक नारी-भंगिमा

तो उन्हें लगा कि भारत की आत्मा तो कुछ और ही है, उन्होंने देशी तर्ज पर सृजनात्मक प्रक्रिया को समझने और परखने की चेष्टा की। किन्तु एक ओर उन्होंने लोक संवेगों को प्रश्रय दिया तो दूसरी ओर अपने चित्रों में बाहरी रंगों की ऊष्मा भी भर दी। कला के क्षेत्र में उनका योगदान इतना महत्वपूर्ण है कि भावी पीढ़ी के लिए वे पथरेखा खींच गई।

देवयानी कृष्णा

दिल्ली शिल्पीचक्र की सुप्रसिद्ध कलाकार देवयानी कृष्णा ने यथार्थ की साक्षात् प्रतीति में अपनी अनुभव राशि बटोरी। अपने यायावर कलाकार पति कँवलकृष्ण के साथ इन्होंने तिब्बत, सिक्किम, भूटान और हिमालय क्षेत्र का व्यापक दौरा किया। काश्मीर और यूरोप भी ये गईं। वहाँ के वातावरण, स्थानीय परम्पराओं और लोक रूढ़ियों को इन्होंने अपनी मौलिक शैली में अभिव्यक्ति दी। बर्फ़ीले दृश्यों में इनकी कल्पना ने करवटें बदलीं, किसी विचार की विशिष्ट स्वीकृति के साथ हर प्रकार के ज्ञान को ग्रहण करने में ये सदा तत्पर रही हैं। लगता है—जीवन की विशदतर मान्यताओं की झकझोर ने इनके बहुविध विषयों को प्रेरित किया है। खुली वादियों और हिमाच्छादित दृश्यों की भव्यता ने इनके मानस-पट पर अमिट रंगीन रेखाएँ अंकित कर दीं जिससे इनके अन्तर में भाव-ऊर्मियाँ लहरा उठीं।

खिलौना

इनके चित्रण की विशेषताएँ हैं—लोक शैली, प्राकृतिक दृश्यांकन, खिलौने तथा मानवाकृतियों की उद्भावना। खासकर लामा नृत्य, विभिन्न हाव-भाव, मुद्राएँ और मुखाकृतियों के चित्रण में इनकी रंग-योजना बड़ी ही प्रभावोत्पादक और व्यंजक बन पड़ी है। ऐसा प्रतीत होता है कि इन गति भंगिमाओं में रूप और रंग की वास्तविक सत्ता की प्रतीति द्वारा चरित्र का पूर्ण निदर्शन हुआ है। किसी भाव विशेष का बन्धन तो नहीं, पर वे भाव-प्रकाशन के नैसर्गिक साधन हैं। इनकी बोधगम्य चेतना ने भावात्मक जगत् में पैठकर सर्वथा निजी मौलिकता को प्रश्रय दिया है। गहरे रंगों के चटकीलेपन ने आकर्षण और चकाचौंध उत्पन्न

कर दी है। हर चित्रांकन में एक ख़ास तर्ज़ अदा है, जिसमें तान्त्रिक प्रणाली बहुदेवतावाद, प्रेतोपासना और लोक विश्वासों के आधार पर वैचित्र्य व्यंजक सर्जना को प्रश्रय दिया गया है।

पाक कारवाँ

देवयानी की प्राकृतिक दृश्यावलियों में झरने, चट्टान, हिमपात, बर्फ़ानी ढलान, हिम-तूफ़ान, आँधी-वर्षा और सरसब्ज़ नज़ारे आँके गए हैं। खेल-खिलौनों और 'स्टिल लाइफ' के चित्रों में वैविध्य और बहुरूपता है। सुसज्जित पुष्प, फूलदान, सजे हुए पात्र, चमचमाते थाल और अन्य कितनी ही वस्तुओं का चित्रण बड़ी सजीवता से हुआ है। इस जड़ जीवन में भी अपनी चटक रंग-योजना द्वारा इन्होंने नवप्राणों का संचार किया है। इधर वाटिका में भी ये विभिन्न प्रयोग कर रही हैं। देवयानी की दार्शनिकता और अप्राप्य के प्रति दुस्सह आकर्षण का पुट इनके चित्रों की विशेषता है।

सबसे बड़ी खूबी और दृष्टि की गहरी पैठ इनके खेल-खिलौनों में है। बच्चे की अंतरात्मा और मनोविज्ञान का इन्हें गंभीर ज्ञान है। बच्चा किस कोण से किसी वस्तु को देखता है, उसे अभिभूत करने वाला, उसके रोम-रोम को रोमांचित करने वाला, मन को मुखरित करके वाला कौन सा फ़न है, क्या है जो उसका सर्वाधिक मनोरंजन करता है, उसके चेतना के तारों को अनायास झनझना देता है इसे जैसे इन्होंने खूब समझा और हृदयंगम किया है। इस युग के बच्चे अपेक्षाकृत जिज्ञासु और ज्ञान-पिपासु हैं। उनका भावबोध आज

के वातावरण और परिस्थितियों के अनुरूप अधिक विकसित और बहुरूपी है। यही कारण है कि ये अपने खिलौनों में सादृश्य की इतनी क़ायल नहीं जितनी कि बाल मनोविज्ञान में गहरे पैठकर आकार की सूक्ष्मता और रंगों के आकर्षण में इनकी रुचि है। इनके खिलौनों के निर्माण में वैसी ही सहजता और भोलापन है जैसा कि बच्चों के मन में होता है। उनके अस्तित्व का सशरीर आकलन भले ही औपचारिक हो, पर उनकी रंग-रेखाएँ किन्ही अज्ञात संकेतों से एकतान हुई-सी लगती हैं। फलतः इनके द्वारा निर्मित जानवरों और गुड़ियों ने शिशु मानस को वरबस आकृष्ट किया है।

देवयानी इन्दौर की है और कला में इनकी प्राथमिक शिक्षा वही माता-पिता की छत्रच्छाया में सम्पन्न हुई। कला की उच्च शिक्षा के लिए पाँच वर्ष

रक्त चूषक

तक ये सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में अध्ययन करती रहीं। पेंटिंग और रेखा चित्रण में डिप्लोमा लेने के पश्चात् इन्होंने भित्तिचित्रण में विशेषता हासिल की। इनके चित्रों की सर्वप्रथम प्रदर्शनी १९४१ में कलकत्ता में हुई। दिल्ली में कई बार इनके लोक चित्रों की प्रदर्शनी हो चुकी है। विगत दशकों में इनकी टेकनीक निरन्तर विकसित और परिपक्व होती गई है। लन्दन, पेरिस आदि की अन्तर्राष्ट्रीय कला-प्रदर्शनियों में भी इन्होंने भाग लिया है। आजकल दम्पति दिल्ली के सुप्रसिद्ध माडर्न स्कूल में बच्चों के शिक्षक हैं।

शैला आडेन

युवा पीढ़ी का प्रतिनिधित्व करने के बावजूद शैला आडेन ही अमृत शेरगिल के बाद सर्वाधिक लोकप्रिय कलाकार हैं जिन्होंने नूतन-पुरातन के सम्मोहक द्वन्द्व को अपनी कला में समेटा है। डिज़ाइन में गहरी पैठ, संयत पर सशक्त रेखाएँ, रंगों का साहसिक और यथानुरूप नियोजन, साथ ही अपने मौलिक चिन्तन द्वारा प्रतिपाद्य पात्रों की चारित्रिक खूबियों को उभारने में इन्होंने कमाल कर दिखाया है।

शुरू में ही यामिनीराय के प्रभाव को अपनी कला में आत्मसात् कर इन्होंने कला की रूढ़िवादी प्रचलित परम्पराओं को झकझोर दिया और भारतीय लोक-

कृष्ण और गोपियाँ
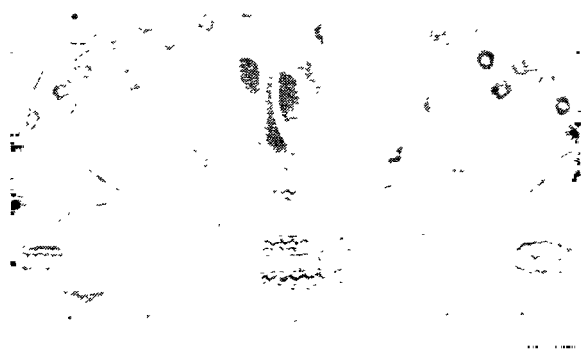
कला को नये ढंग से प्रश्रय दिया। देशी कला पद्धति और यहाँ की लोकरुचियों में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर इन्होंने दिलचस्पी जगाई। तात्कालिक मूल्यबोध के प्रति सजगता और भीतरी संवेगों को व्यापक 'कैन्वास' पर अपने विवेक से अनुशासित करने की कला में ये दक्ष है। नये कला आन्दोलन के रूप में तो नहीं, पर नव्य परम्परावादी के रूप में एक अछूती विचार दिशा का उद्घाटन इन्होंने अपने चित्रों द्वारा किया। प्राय: बच्चों को रुचने वाले विषय इन्होंने अपनाये तथा बंगाल की ठेठ वस्तुएँ जैसे कंथा, आभूषण आदि विभिन्न देशों की नारियाँ की साज-सज्जा तथा शृंगार प्रसाधन, उनके गहनों की विभिन्न किस्में, साथ ही कितने ही देशी ढंग की चीज़ों की प्रतिकृतियाँ प्रस्तुत कीं।

जन्मतः ये बंगाली हैं और इनका बचपन कलकत्ता में गुज़रा। बंगाल के कलाकारों और साहित्यकारों—जैसे रवीन्द्रनाथ ठाकुर से इनका काफ़ी सम्पर्क रहा। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के तत्त्वावधान में इनका प्राथमिक प्रशिक्षण कलकत्ता के ओरियिंटल स्कूल ऑफ आर्ट में हुआ। देवीप्रसाद राय चौधरी से भी ये निजी तौर पर अभ्यास करती रहीं। बाईस वर्ष की उम्र में ये म्यूनिक चली गई। वहाँ इन्होंने व्यावसायिक कला का अध्ययन किया। तत्पश्चात् लंदन में इन्होंने सेंट्रल और वेस्टमिनिस्टर आर्ट स्कूलों में कला का प्रशिक्षण लिया। सुप्रसिद्ध पशु-मूर्तिकार जान स्कीपिंग ने मैत्री भाव से इन्हें अपने स्टूडिओ में काम करने की अनुमति दे दी थी। इनके पशु-पक्षियों का 'माडलिंग' बड़ी सूक्ष्मता लिये है। वियना, इटली, दक्षिणी फ्रांस और स्कैण्डेनविया में इन्होंने यात्रा की। भूगर्भ-विद् जान आडेन से विवाह के पश्चात् तो इन्हें और भी इधर-उधर घूमने का मौका मिला। राजस्थान, गया और बनारस के मंदिरों की सूक्ष्मताओं को इन्होंने निकट से निरखा-परखा, खासकर दार्जिलिंग में अपने पति के साथ इन्हें काफ़ी लम्बे अर्से तक ठहरना पड़ा। वहाँ अपने प्रवास के दौरान एक लामा के तत्त्वावधान में इन्होंने तिब्बती कला का प्रशिक्षण लिया और तत्पश्चात् यहाँ की लोक-संस्कृति को आधुनिकता का रंग देने का श्रेय इन्हीं को है। खास तिब्बती डिज़ाइन पर 'टोंक' (लम्बे लपेटे वस्त्रों) पर 'जीवन-चक्र', 'तिब्बती चाय पार्टी' 'तिब्बती जलूस', जिस पर कलकत्ता एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स से स्वर्ण पदक प्रदान किया गया, इसके अतिरिक्त कितने ही तिब्बती दृश्यांकनों व लोक-चित्रणों को इन्होंने प्रस्तुत किया। बच्चों की गुड़िया और खिलौनों के निर्माण में भी इन्होंने गहरी रुचि ली। १९४३ में ऐसे ५३ चित्रों की जब इनकी प्रदर्शनी बम्बई में आयोजित की गई तो पहले ही दिन इनके सभी चित्र बिक गए।

शैला आडेन की एक सुप्रसिद्ध कृति

ये कला आलोचिका भी हैं और इनका अंतरंग एवं बहिरंग चिंतन हर प्रकार से क़लामय है।

कंथा पद्धति पर 'मैडोना' का चित्रण स्वर्णिम सतह पर नीले-पीले, लाल-गुलाबी और दूसरे कितने ही चटक रंगों के मिश्रण से किया गया। प्रायः भुरभुरी सुनहली सतह पर तैलरंगों के हल्के लेप से ये अनेक रंगों के संयोग से चित्र तैयार करती हैं। 'बिखरे पत्ते' में ऐसे रंगों के मिश्रण की छटा दर्शनीय है जिसमें राजस्थानी प्रभाव का पुट है। इन्होंने कुछ ऐसे डिज़ाइन और प्रतिरूप भी अंकित किये हैं जिनमें प्राचीन मिस्र, तिब्बत, भारत के ऐतिहासिक कालों की विभिन्न संस्कृतियों का दिग्दर्शन होता है। चालुक्यवंशीय यक्षी के गले का नेकलेस, चौदहवी शताब्दी ईसा पूर्व की मिस्री 'ममी' के गले का जड़ाऊ आभूषण तथा तिब्बती सौन्दर्य प्रसाधनों की प्रतिकृतियाँ, प्राचीन क्लासिक चित्रकारों में एल ग्रेको और आधुनिकों में मोदिग्लिआनी से ये विशेष रूप से प्रभावित हैं।

रानी चंदा

रानी चंदा ने अपनी कला में एक नई विधा को प्रश्रय दिया। मूल रूप से बंगाल स्कूल की सुसज्जा, रंग-नियोजन और वैसी ही लय, साथ ही उनकी सृजन टेकनीक ने नई कल्पना को गति प्रदान की है। उनके व्यक्ति चित्रों में सूक्ष्म चारित्रिक विशेषताएँ द्रष्टव्य हैं। यूँ तो ये भारतीय आदर्शवाद की क़ायल हैं, पर उनके रेखांकन में जापानी सौष्ठव, रंगसज्जा में चीनी नफ़ासत, रूपाकारों में फ़ारसी लघु चित्रांकन की छाप है। इनकी प्राथमिक शिक्षा नन्दलाल बसु के तत्त्वावधान में हुई। तत्पश्चात् महान् कलागुरु अवनीन्द्रनाथ ठाकुर के चरणों की छत्रच्छाया में इन्होंने अपने अभ्यास को परिपक्व बनाया। कला-चेतना के विस्तृत आयामों की खोज में इनके अनवरत संघर्ष काल के दौरान चहुँओर कलामय वातावरण बड़ा सहायक सिद्ध हुआ। कारण, इनके चारों भाई कलाकार थे जिनमें से मुकुल दे और मनीषी दे ने तो अन्तर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त की। इनके पति अनिल कुमार चंदा, जो वर्षों तक शांतिनिकेतन में विश्व-भारती के प्रिंसिपल और गुरुदेव के निजी सचिव रहे हैं, बाद में राजनीति अपनाने के बावजूद कभी भी कला-मोह से मुक्त नहीं हो पाए। लक्ष्य के प्रति सचेत रहकर ज़िन्दगी की पगडंडी पर सुदृढ़ कदमों से दोनों आगे बढ़ते रहे।

रानी चंदा दृश्य-चित्र, भित्तिचित्र और 'लाइनोकट' में समान दक्षता रखती हैं, ख़ासकर 'पोर्ट्रेट' के निर्माण में बड़ी गहराई से उतरती हैं जिसमें

व्यक्तित्व और चारित्रिक वैशिष्ट्य के भी दर्शन होते हैं। अवनीन्द्रनाथ ठाकुर, सी. एफ. एंड्रूज तथा अन्य कितने ही पोर्ट्रेट-चित्रों में सहज हावभाव और चेष्टाओं की अभिव्यक्ति हुई है। 'माँ-पुत्र', 'राधा-विरह', 'पुत्र वधू', 'दो खजूर के वृक्ष', 'उषःकालीन किरणें'—यूँ 'टेम्परा' एवं 'वाश' में समान रूप से सफलता प्राप्त की है। लैदर वर्क, पॉटरी, बाटिक और अल्पना भी इनकी 'हाबी' है। १९४६ में पेरिस में आयोजित यूनेस्को प्रदर्शनी में इनके कई चित्रों को स्थान मिला। १९४८ में ऑल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के तत्त्वावधान में नई दिल्ली में इनकी व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित की गई जिसमें सौ से ऊपर चित्रों का सफल प्रदर्शन किया गया। बम्बई में भी इनके चित्रों की प्रदर्शनी हो चुकी है।

आकांक्षित

ग्रीक-विट्ठल — राधा

रानी चंदा परम्परागत कला की हामी हैं। पाश्चात्य कला की बहुमुखी धाराओं से इन्होंने प्रेरणा एवं प्रोत्साहन तो प्राप्त किया है, किन्तु वे अंधभक्त नहीं हैं, वरन् यूरोपीय एवं प्राच्य कला टेकनीक में वे काफ़ी अन्तर मानती हैं। पश्चिम में ऐन्द्रिय पक्ष प्रधान होने के कारण दृश्य वस्तु की प्रधानता है जबकि प्राच्य कला में आध्यात्मिक पक्ष सबल होने के कारण अन्तरंग चेतना का दिग्दर्शन और गहन भावात्मकता को अपेक्षाकृत दर्शाया गया है। इनके मत में कलाकार का कथ्य नितान्त नवीन दिशाओं का उद्घाटन तो है, पर ऐसी नवीनता नहीं जो क्षणधर्मी या महज़ चमत्कृत करने वाली है। कलाकार द्वारा सृष्ट वस्तु अथवा उसकी अभिव्यक्ति जीवन के शाश्वत मूल्यों के धरातल पर उन युगीन परिवर्त्तनों की ओर संकेत करने वाली होनी चाहिए जिसमें सृजक के अन्तः-करण की सहज एवं सच्ची प्रतिच्छवि हो। विशुद्ध नैसर्गिक सौन्दर्य, छायांकन में बँधी सच्ची स्थितियाँ, एक अव्यक्त वेदना और गहरी आत्मीयता यही इनके चित्रण की विशेषता है।

सुशीला यावलकर

गोआ के प्राकृतिक परिवेश की मनोहारी झाँकी और तरोताज़ा याद को लेकर एक दिन सुशीला अपनी सखी के साथ सुप्रसिद्ध कलाकार नागेश यावलकर की मूर्त्ति एवं चित्रकला प्रदर्शनी देखने बम्बई आई थीं। दोनों का यह आकस्मिक परिचय शनैः शनैः प्रगाढ़ प्रेम में परिणत होता गया और वे अंततः वैवाहिक सूत्र में बँध गए। प्रकृति और मानव का वाह्याभ्यंतर सौन्दर्य और स्वानुभूत संवेदना की प्रखरता इनमें पहले से ही मौजूद थी। कलाकार पति के संसर्ग से निश्चय ही इनकी प्रतिभा को नई राह, नया उन्मेष प्राप्त हुआ।

वाद-विवाद करती गुड़ियाएँ

सुशीला ने किसी स्कूल या कालेज में कला प्रशिक्षण नहीं

दिव्य प्रेम
(एक सुप्रसिद्ध कृति)

लिया, वरन् उनकी सृजन-क्षमता उनकी अपनी नैसर्गिक प्रेरणा का परिणाम है। इनकी जन्मभूमि धारगाल गोमांतक प्रदेश का एक शान्त चारु स्थानहै, जिसके सौन्दर्य का जादू और धरती की गंध इनकी कल्पना को जगाती है, मन को मानो लोरी देती है और जहाँ के अनगिन दृश्यों की अमिट स्मृतियाँ इनकी चेतना पर प्रतिभासित हो उठती है। यही कारण है इनकी 'एप्रोच' अकृत्रिम, सहज और सशक्त है। इनकी अनेक कृतियों में रंगों के माध्यम से बहुत कुछ

स्नान की तैयारी

सहजात अभिव्यक्ति हुई है। इनके रेखांकन और रंगों के अनुपात पर मातीस की छाप है। 'निर्जन में स्नान', 'शृंगार-कक्ष', 'दादी-माँ', 'वाद-विवाद करती गुड़ियाएँ', 'दिव्य प्रेम', 'दो नग्नाएँ', 'समाचार-उन्मुख' आदि चित्रों में डिज़ाइन और रचना-प्रक्रिया में सूक्ष्म दृष्टि और गंभीर मनन है। कहीं-कहीं बच्चों का सा भोलापन है इनके चित्रों में, चारित्रिक वैशिष्ट्य और आधारगत अर्थ से भी वे जुड़े हैं जो समूची सर्जना को सार्थकता प्रदान करते हैं। रूमानी रंग दर्शनीय हैं, पर उनमें गहराई और सौम्यता है। इनके दृश्यांकनों में प्रकृति की विविध झाँकियाँ प्रस्तुत की गई है।

तूलिका के सदृश ही सुशीला ने छेनी के प्रयोगों में भी उतनी ही सफलता प्राप्त की है। इन्होंने मूर्तियों द्वारा विविध नारी भंगिमाओं का दिग्दर्शन कराया है। यूँ 'एब्स्ट्रैक्ट' आइडिया है इनके रूपाकारों में, किन्तु इनकी अंतश्चेतना ने अनायास मानव-मनोविज्ञान, उसके हर तरह के 'मूड' और अंतर्द्वन्द्वों को ढालने में कमाल कर दिखाया है। खासकर इनकी प्रतिमाएँ प्रतीकात्मक हैं। लगता है—जैसे इनके चित्रों की 'फिगर' और 'ड्राइंग' मूर्त्ति-भंगिमाओं में सजीव हो उठी हैं। इनके काम करने के तौर-तरीके सर्वथा आधुनिक हैं, आधुनिक इस अर्थ में क्योंकि अतीत में निष्ठा के बावजूद इन्होंने निजी कला के मूल्यबोध में क्रांति उत्पन्न कर दी है। मूलतः कला के सिद्धांत तो शाश्वत और चिरचिरान्त हैं, पर समयानुसार ज्यों-ज्यों हवा का रुख़ बदलता है तो काम करने के ढंग के साथ-साथ रूपाकार और शक्लें भी कुछ और की और हो जाती हैं। समय और रूढ़ियों से परे सुशीला यावलकर में कला-चेतना सक्रिय है। अपनी श्रम-साधना और कलाकार पति की प्रेरणा से इन्होंने अपनी अन्तरंग प्रतिक्रियाओं, रुचियों और अनुभूतियों को नये ढंग से अभिव्यक्त करने की चेष्टा की है। अपने पति के साथ ये विदेशों में गईं और जो कुछ इन्होंने वहाँ देखा उसे अपनी भावना के अनुरूप भिन्न-भिन्न स्तरों पर अभिनव रूप प्रदान किया।

दिल्ली के आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी के हाल में इनकी प्रदर्शनी हुई जिसमें इनकी २० पेंटिंग और ५० मूर्त्तियाँ रखी गईं। तत्पश्चात् बम्बई के ताजमहल होटल में एक वृहद् प्रदर्शनी हुई। कितनी ही देशी-विदेशी प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुकी हैं।

दमयंती चावला

पंजाब की सुप्रसिद्ध कलाकार दमयन्ती चावला ने कला की प्रारम्भिक शिक्षा लाहौर के फाइन आर्ट्स स्कूल में ली, तत्पश्चात् ये लन्दन के स्लेड स्कूल आफ आर्ट्स में प्रशिक्षण प्राप्त करती रहीं। अपने सौन्दर्य पूर्ण रेखांकनों की लय और एकतानता के अनुरूप इन्होंने रंगों की गहराई को आँका है। इनकी चित्रण-पद्धति, प्रस्तुतीकरण की नव्यता, विषय-प्रतिपादन और नये-नये माध्यमों की खोज भावी संभावनाओं की ओर संकेत करती है।

यूँ तो इनका विश्वास यथार्थवादी शैली में भी है, पर इनके चित्रण का प्रमुख पहलू अमूर्त अर्थात् 'एब्स्ट्रैक्ट' है। यह पद्धति शनैः शनैः इनके हाथों

परिपक्व हुई है। किन्तु उनकी अमूर्त्तता ऐसी नहीं जो भ्रामक या समझ में न आने वाली हो, वरन् जो प्रतीक या कल्पना बिम्ब उनके मस्तिष्क में होते हैं वे रंग एवं रेखाओं के माध्यम से बरवस उभर आते हैं। 'धोबिन', 'भिखारी' जैसे चित्र तो मुखर व्यंजना के द्योतक हैं ही, पर जहाँ किसी दृश्यांकन या प्राकृतिक अंचल में कोई झोंपड़ी या वृक्ष आदि का चित्रण किया गया है तो उसमें विभिन्न रंगों के प्रभाव से आकृति उभर आई है। बल्कि कहें कि इस अमूर्त्त के माध्यम से इन्होंने जीवन के अनुभवों को पकड़ने का प्रयास किया है। यह ढंग इनकी दृष्टि में बन्धनमुक्ति की प्रक्रिया है। रेखा-रंगों में जब प्राणों के स्वर उभरते हैं तो औपचारिकताएँ स्वयमेव नष्ट हो जाती हैं। फलतः इनकी 'एब्स्ट्रैक्ट' कल्पना निरी भावशून्य नहीं है, न ही इनकी संवेदना बंजर प्रदेश में संचरण करती है, इसके विपरीत अपनी हाल की कलाकृतियों द्वारा इन्होंने सिद्ध कर दिया है कि किस प्रकार कला में रूढ़ियों से परे, साथ ही पाश्चात्य अनुकरण की मोहान्धता के बग़ैर नव्य प्रयोगों को आगे बढ़ाया जा सकता है।

शाम के खाने की तैयारी

दमयन्ती चावला में 'मार्डन' बनने की महज़ चाह नहीं, वरन् साधक की जिज्ञासा है। यूरोप के कलाकेन्द्रों में अपनी ज्ञान वृद्धि के लिए इन्होंने भ्रमण किया। आधुनिक मनोविज्ञान के अनुसार मानव मन में कितनी ही उलझनें व जटिलताएँ हैं, कलाकार के लिए उसका तात्विक विश्लेषण सीखना अनिवार्य है। अपने निरीक्षण द्वारा इन्होंने अपनी उपलब्धियों को व्यापक स्तर पर आगे बढ़ाया है।

प्रेमजा चौधरी

प्रेमजा चौधरी भारतीय परम्पराओं और देशी पद्धति की क़ायल हैं। इनकी प्रवृत्ति सादगी, रंगों की भव्यता और सुरुचिपूर्ण सृजन की ओर रही है। 'प्रतीक्षा', 'भिखारिन', 'ग्रामीण बालक', 'तीन महिलाएँ' आदि इनके चित्रों में सामान्य जनजीवन की झाँकी देखने को मिलती है। रात-दिन के बिखरे दृश्यों में प्रायः मानवीय पहलू अधिक उभरे हैं, ख़ासकर इनके द्वारा निर्मित 'पोर्ट्रेट' अर्थात् छविचित्रों में चारित्रिक सूक्ष्मताओं का सफल निदर्शन हुआ है। दैनन्दिन जीवन में इधर-उधर के प्रसंग एवं घटनाएँ मन पर जो प्रभाव छोड़ जाते हैं, भले ही उनमें क्रम अथवा व्यवस्था न हो, पर वे अपनी सचाई और सहजता द्वारा कलाकार की कल्पना को व्यवस्थित एवं एकोन्मुख करते हैं। प्रेमजा चौधरी इसी अंतरंग रूप के दिग्दर्शन में सचेष्ट हैं और इनके चित्रित पात्र सजीव, स्वाभाविक और यथार्थ से प्रतीत होते हैं। उनके रूपरंग, वेशभूषा और चेष्टाएँ भी सशक्त और यथानुरूप हैं।

प्रेमजा चौधरी मूर्तिकला में भी दक्ष हैं। इन्होंने अनेक सुन्दर मूर्तियों का निर्माण किया है जिनमें मानवोचित प्रभावकता एवं चारित्रिक अन्विति द्रष्टव्य है। राजधानी में इनका स्थायी निवास है, पर इन्होंने कलावस्तुओं को खोज में अनेक प्रमुख स्थानों का भी भ्रमण किया है। ये यथावसर प्रदर्शनियों एवं कला-आयोजनों में भी भाग लेती रहती हैं और व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ भी इन्होंने आयोजित की हैं।

शन्नू मजूमदार

शन्नू मजूमदार आकृति-चित्रण में दक्ष हैं, खासकर नारियों की भाव-भंगिमा और उनके चरित्र की बारीकियाँ इनके चित्रों में द्रष्टव्य हैं। यूँ तो बंगाली जीवन से ये प्रभावित हैं, किन्तु विदेशी टेकनीक को भी पकड़ने की चेष्टा की है। सुप्रसिद्ध विदेशी कलाकार मेरी लारेंसिन की सी स्त्रियोचित गरिमा, कोमलता और सहज सौष्ठव को इन्होंने अपने अनेक चित्रों में मुखर किया है।

शन्नू मजूमदार एक प्रयोगी जिज्ञासु हैं। वे सीमाओं को तोड़ने में विश्वास नहीं करतीं, किन्तु पश्चिमी दर्शन ने उनके सृजन को बल दिया है। 'यदि मन कहीं ललके तो आगे बढ़ने से इन्कार नहीं करना चाहिए। चिर अतृप्त मन की तृप्ति काम करने से ही होती है। इन्होंने अपने प्राणों की पुकार को समझा है और नई पीढ़ी के उत्साह को लेकर आगे बढ़ी हैं।

प्रभा रस्तोगी

इनकी शिक्षा-दीक्षा पंजाब विश्वविद्यालय में हुई। कुछ अर्से तक दिल्ली में भी इनका प्रवास रहा। चित्रण में ये प्रभाववादी पद्धति की क़ायल हैं। 'दैनिक श्रम', 'पत्ती बीनने वाले', 'रस्सी खींचने वाले', 'खेत का कुआँ' आदि इनके कतिपय चित्रों में कितने ही प्रभाव एवं टेकनीकों का मिश्रण है। ये खुशनुमा और कहीं-कहीं विश्रांति की भावना को लेकर चली हैं। रूपाकारों के निर्माण में दक्ष अन्विति तो है, किन्तु रंग-सुसज्जा न होकर संश्लेषण की प्रवृत्ति अधिक है अर्थात् इनके कृतित्व में रागात्मकता उतनी नहीं जितनी कि बौद्धिकता है। वर्त्तमान विघटन से उत्पन्न निषेध वृत्ति ने प्रकारांतर से जीवन-मूल्यों के प्रति प्रच्छन्न स्पृहा को जगा दिया है। इस निषेध से उत्पन्न संवेद्य भाव-व्यंजना ही इनके चित्रण का आधार है।

जया अप्पास्वामी

जया अप्पास्वामी रूमानी पेंटर के रूप में विख्यात हैं, किन्तु इनकी कला की खूबी है कि इन्होंने अन्तर्मन की अनुभूतियों और यथार्थ की सापेक्ष्यता को एक अलग नज़रिए से देखने की कभी हिमाक़त नहीं की। इनकी स्वतन्त्र उद्-भावना नए प्रतिमानों के सहारे भावबोध और रूपशिल्प को विभाजित करके नहीं चली, वरन् इनकी अंतरंग जिज्ञासा ने नारी और प्रकृति को संश्लिष्ट करके देखा। ऊँचे-नीचे पर्वत-खंड एवं हरी भरी वादियों में, किसी 'लेक' के सहारे या वृक्षों के झुरमुट में, नेत्ररंजक दृश्यावली अथवा कलकल-छलछल करते किसी नदी के किनारे लेटी या अर्द्ध विश्राम की मुद्रा में बैठी कोई सुन्दरी, खासकर प्रकृति की बिखरी हरीतिमा में नग्न छवियों के सौन्दर्य आँकने में ये निष्णात हैं। हरे, नीले, भूरे रंगों में स्वप्निल छाया सी अथवा विमूढ़-सी मादकता बिखेरने वाले ऐसे इनके कितने ही चित्र हैं।

'समुद्र के किनारे' में एक विवस्त्र सुन्दर आकृति क्षितिज और समूचे वाता-वरण के आकर्षण में खोई-सी लगती है। 'हरी भरी घाटी' एक दूसरा चित्र भी तैलरंगों में आँका गया है। कुछ रूपाकारों में एक विशिष्ट गतिभंगिमा और निर्माण प्रक्रिया है, फिर भी वे सादी, अहर्निश मिल जाने वाली और इस

यथार्थ, ठोस दुनिया की रहने वाली सी लगती हैं। रंग खुले हाथ से फैलाए गए हैं, पर उनमें कलाकार का निजी मौलिक सृजन-सौष्ठव है।

इस समय कला बोध जिन विभिन्न स्तरों पर विकसित हुआ है उसके एहसास के साथ जया अप्पास्वामी इस दिशा में अग्रसर हुई हैं। उनकी अपनी वैयक्तिक शैली इधर काफ़ी मँजी है और उनकी अभिव्यक्ति एवं कलारूप सुस्थिर एवं सुनिर्दिप्ट हैं। इनकी सबसे बड़ी खूबी है कि इनकी कलाकृति में एक गीत की सी लय और मार्दव है। आधुनिक बनने की चाह में ये इतस्ततः अंधेरे में नहीं भटकीं, न ही इन्होंने अवसादमय अथवा भौंडी कुरूप आकृतियों की सर्जना की, बल्कि इनके कागज़ व कैन्वास एक ऐसी ज़िन्दगी का माहौल पैदा करते हैं जो बड़ा खुशनुमा और तरोताज़ा है। सुष्ठु रंगों के साथ इनका रेखांकन बड़ा ही सबल और सुस्थिर है जो भारतीयता का पुट लिये है।
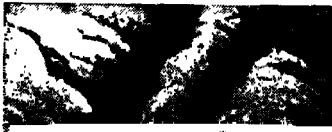
झील का रमणीक दृश्य

चश्मा निर्मित पुल

इनकी कला-शिक्षा शांतिनिकेतन में हुई। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्होंने पेकिंग के नेशनल आर्ट स्कूल में चीनी पेंटिंग का अध्ययन किया।

कला की व्यापक एवं बहुमुखी प्रवृत्तियों की खोज में इन्होंने अमेरिका, यूरोप और भारत के कतिपय क्षेत्रों का दौरा किया। बचपन का शौक़ चित्रांकन की लालसा बन गया और जया अप्पास्वामी एक उगती पौध की क्रमशः परिपक्वता को लेकर आगे बढ़ीं।

आज की क्षत-विक्षत तनावपूर्ण परिस्थितियों में मानसिक विरेचन के अतिरिक्त हृदय की सहज मुक्तावस्था का अभाव है, पर इनके चित्र बड़े ही सौम्य और आकर्षक प्रतीत होते हैं। 'बस स्टाप', 'पोखर', 'स्नानार्थी' जैसे दैनन्दिन विषयों और प्राकृतिक नज़ारों को इन्होंने नये परिवेश में गहरा अर्थ प्रदान किया है। आकृतियों के बीच के स्थल चीनी पद्धति पर प्रयोग में लाये गए हैं। पेस्टल रंगों में बड़ी ही नफ़ासत के साथ रंग एवं रेखाओं को ढाला गया है। अपनी निजी प्रणालियों को विकसित करने में ये अनवरत प्रगति कर रही हैं।

दिल्ली शिल्पी चक्र की ये सदस्य हैं और उसकी संयुक्त सचिव रह चुकी हैं। नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट और ललित कला अकादमी में इनके चित्रों का संग्रह है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और अन्य समय-समय पर आयोजित अखिल भारतीय प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुकी हैं, साथ ही व्यक्तिक प्रदर्शनी और ग्रुप-शो भी आयोजित किये हैं। दिल्ली पालिटेकनीक में काम कर चुकी हैं। आजकल ललित कला अकादेमी से सम्बद्ध हैं।

बहुमुखी प्रवृत्तियों की कलाकार

इस समय भारत के हर प्रदेश में नारियाँ अनेकानेक प्रणालियों एवं कला-रूपों की साधना में प्रवृत्त हैं। अपनी अंतरंग अनुभूति को नाना भावों, भंगिमाओं रूप-विधाओं और प्रतीकों में ढालने के लिए वे भी उतनी ही आतुर हैं जितने कि पुरुष। वे नव्य कल्पना से क़तरा नहीं रहीं, वरन् जागरूक बुद्धिजीवी वर्ग को चुनौती दे रही है अर्थात् युगानुरूप सच्ची कला की पहचान उन्हें है। नारी की संवेदना जो अंतर्गूढ़ और विशिष्ट थी तथा अपनी संश्लिष्टता में जी रही थी, अब वृहत्तर सामाजिक, राष्ट्रीय एवं बाहरी परिवेश से जुड़ गई है। कितने ही जीवन-प्रश्न, समस्याएँ, सामूहिक हित-अहित, संघटन विघटन, संगति-विसंगति, समता-विषमता से गुज़र कर उसने अपने अनुभवों का संचय विविध रूपों में किया है। यही कारण है कि अपने आसपास से कटकर नहीं, अपितु रोज़मर्रा के अनुभव-

बिम्बों को वे अपने सृजन में उतार रही हैं। फलतः इस संक्रान्ति युग के बनते-बिगड़तेमूल्यों और तनावों-दबावों में उसकी उलझी संवेदनाओं के विविध रंग कला में द्रष्टव्य हैं।

सुनयनी देवी

अवनीन्द्रनाथ ठाकुर की शिष्या और अमृत शेरगिल की समकालीन सुनयनी देवी न सिर्फ़ आयु में ही बुजुर्ग हैं, वरन् अजंता और मध्ययुगीन कला की प्राचीन संस्कृति की क़ायल हैं। अपनी आदर्श कला-सम्पदा में झाँककर उनमें एक नया कलाकार जन्मा है। उनके मन, उनके भीतरी प्राणों में यहाँ की परम्पराओं से उद्वेलन हुआ और कला के प्रति उनका आग्रह बढ़ता गया। देवी देवताओं, राधा-कृष्ण और धार्मिक प्रसंगों में उन्होंने रुचि ली, खासकर दिव्य सौन्दर्य ने इन्हें अभिभूत किया। इन्होंने अनेक चित्रों का निर्माण किया है जिनमें आकर्षण, उत्फुल्लता, करुणा, कोमलता और शाश्वत सौन्दर्य फूटा पड़ रहा है। इटली के कलाकारों का प्रभाव भी इन पर पड़ा, अतएव अनायास सहजता, मुक्तता, चारुता, स्वतःस्फूर्ति एवं अकृत्रिमता उनकी कला के नैसर्गिक गुण हैं। उनके रंग एवं रेखाएँ भी नव्यता लिये है, पर साथ ही साथ भारतीय मिनियेचर (लघु) चित्रों की सी प्रखरता और बारीकी है। ब्यौरों में स्वल्पता है, फिर भी उनकी आकृतियाँ अलंकरण व साज-सज्जा से बोझिल नहीं हैं। स्त्रियों व लड़कियों के रूपांकन में स्वल्प रेखाओं एवं रंगों का प्रयोग हुआ है। उनकी सुडौल मुखाकृति, आकर्षक भंगिमा, रक्तिम कपोल, चंचल नेत्र और ओष्ठ द्वय बड़ी ही कोमल भावाभिव्यंजना को लेकर आँके गए हैं। हरी और लाल साड़ियों के आवरण में लिपटी आकृतियाँ-यथा 'माँ', 'राधा', 'ग्वालिन', 'मल्लाहिन' आदि कृतियों में उनकी सूक्ष्म अनुभूतियों का सफल निदर्शन है।

अपने कतिपय दैवी चित्रों में भारत की सूक्ष्म अध्यात्म चेतना, प्रकृति-पुरुष के सायुज्य सिद्धान्त एवं भागवत रूप को इन्होंने प्रतीकों एवं रूपकों में दर्शाया है, ऐसे रूप जो आत्मगोपन और स्वतः समाहित हैं। अधमुंदी आँखें, आलक्ष्य सौन्दर्य, दैवी आभा और ऐसा आत्मलीन करने वाली व्यंजना जो नित-नयी माधुरी लिये मन-प्राणों को एकवद्ध करती है और जिनसे कामनाएँ सहज तोष्य हैं।

भारत की लोककला और ग्राम्य चित्रणों से ये विशेष प्रभावित हैं। दरअसल भारतीय कला की जड़ें गाँवों की मिट्टी में पनपी हैं जो विभिन्न रूप और भावनाओं में प्रश्रय पा चुकी हैं। बंगाल की लोककला ने इन्हें प्रारम्भ से

ही मुग्ध किया है और इनके चित्रों के सूक्ष्म विश्लेषण, निर्माण-प्रक्रिया और रंग-रेखाओं में यही प्रभाव द्रष्टव्य है। इनके द्वारा निर्मित 'बाउल' चित्र में अजंता और बाघ गुफाओं की शैली की झलक है। युवक गीतकार बड़ी आकर्षक मुद्रा में दायाँ हाथ उठाकर संगीत-विभोर है। अपने इसी अद्वितीय कौशल द्वारा इन्होंने एक अलग पथ का निर्माण किया है।

इनकी साधना अन्तर्मुखी है, तथापि भारत की हर कलावीथि एवं विदेशों की आर्टगैलरियों में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

मगदा नचमन

वैसे तो ये रूसी महिला हैं, पर एक भारतीय पत्रकार एवं लेखक से विवाह होने के कारण अब भारत ही इनकी साधनाभूमि है। देश-विदेशों में घूम-घूम कर इन्होंने प्राचीन एवं अर्वाचीन पद्धतियों को हृदयंगम किया है, किन्तु आधुनिकता की अंधभवत ये नहीं हैं। 'माडर्न' के नाम पर कल्पना-वैचित्र्य या भावावेशों की ऐंचतान में ये नहीं पड़ना चाहतीं, ये सहज और स्वच्छन्द अभि-व्यक्ति के साथ सूक्ष्म दृष्टि और अनुभूत को स्पष्टता के साथ सामने रखने की हामी हैं। घटनाओं और परिस्थितियों के संदर्भ में जनरुचि का आकर्षण इनके चित्रण की खूबी रही है। भारतीय परिवेश में इन्होंने हर प्रतिपाद्य वस्तु को अधिक गहराई में जाकर, अधिक व्यापकता और विस्तार के साथ, स्वस्थ एवं तटस्थ दृष्टि से समझने-बूझने की चेष्टा की है। 'सूखे वृक्ष', 'साधु', 'भविष्य-वक्ता' आदि चित्रों में इन्होंने अपने असाधारण रंग-नियोजन और रूपशिल्प का परिचय दिया है। इनके स्टूडियों में अभिजात्य महिलाओं के चित्र तो मिलेंगे ही, पर मज़दूरिनों, बोझा ढोने वालियों, गली-कूचों में भटकने वाले गरीब बच्चों, कुलियों, किसानों, सौदागरों, फेरीवालों, श्रमिकों, जादूगरों, सँपेरों, नट-नर्तकों आदि के चित्र भी बहुतायत में प्राप्त होंगे। इनके 'पोर्ट्रेट' और 'फिगर-स्टडी' बड़े कमाल के होते हैं जिनमें रेखांकन और रंगों का आनुपातिक समन्वय है। खासकर उनकी आँखें कुछ ऐसी हैं जिनमें उनकी आत्मा का प्रतिबिम्ब झलकता है। आकृतियों की हूबहू आँखें अनजाने ही आकृष्ट कर लेती हैं जिससे समूचा व्यक्तित्व मुखर प्रतीत होता है। इन्होंने भारतीय खिलौनों और दैन-न्दिन वस्तुओं के 'स्टिल लाइफ' चित्र भी आँके हैं।

रूस में इनकी प्राथमिक शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। लेनिनग्राद के सांस्कृतिक अन्तर्राष्ट्रीय वातावरण में इनका पालन-पोषण हुआ। इन्होंने यूरोप के अधिकांश देशों और भारत का व्यापक दौरा किया है। बड़े संघर्ष झेले हैं जीवन में, यही कारण है कि इनके चित्रों में प्राणों की ऊष्मा है।

गौरी भांज

मास्टर मोशाय की पुत्री गौरी रंग, रूप और सौन्दर्य की सहज चेतना लेकर अवतीर्ण हुई। जैसा कि स्वाभाविक है इनमें बड़ी ही सूक्ष्म पैठ और प्रतिपाद्य विषय के गंभीर विश्लेषण की क्षमता है। इन्होंने कितने ही कैन्वास चित्र, भित्ति चित्र और हर तरह के माध्यमों के उपयोग द्वारा प्रचुर कला-सामग्री का सृजन किया है। अपने पिता नन्दबाबू की छत्रच्छाया में इन्होंने जो सिरजा, जिन मधुर रंगीन कल्पनाओं को चित्रों में साकार किया उनका बाहर बहुत कम प्रचार हो सका, किन्तु शांतिनिकेतन में इनके इस अमूल्य अवदान को भुलाया नहीं जा सकता।

गौरी कला की मूक साधिका हैं। बाटिक, लैदरवर्क और अल्पना की विस्मृत एवं उपेक्षित कला में इन्होंने प्राण फूँके हैं। प्रारम्भ में बाटिक को विकसित करना जब कुछ कठिन था इन्होंने उसमें नन्दबाबू के प्रतिभावान छात्रों के सहयोग से नई-नई ल्पनाएँ प्रस्तुत कीं। अल्पना की चित्र-विचित्र पद्धतियों को विकसित किया और 'रांगोली' जो घरेलू सज्जा के बतौर प्रचलित थी, उसे लोकप्रिय बनाने में मदद दी, साथ ही शास्त्रीय रंग-रूपों में ढाल कर एक गंभीर कला-साधना की कसौटी बना दिया। कला इनके रक्त में घुली मिली है, रंग और रूप का नशा इनके नेत्रों में समाया है, अतः चित्र तो अनायास स्फूर्त होते हैं—इनके हाथों। इनके बारे में प्रसिद्ध है—यदि गौरी पुत्री न होकर पुत्र होती तो नंदबाबू से कहीं अधिक प्रख्यात होती।

करुणा राव

यद्यपि ये आन्ध्र प्रदेशीय महिला हैं, किन्तु इनकी कला-शिक्षा बम्बई के सर जे० जे० स्कूल आफ आर्ट में सम्पन्न हुई। कला के व्यापक एवं गंभीर अध्ययन के लिए ये पेरिस गईं और इन्होंने यूरोप तथा भारत का काफी भ्रमण किया है। देशी-विदेशी कला-प्रणालियों की छाप इनकी कला पर है, पर इनकी मौलिक प्रतिभा और सूक्ष्म दृष्टि की पकड़ इनकी निजी विशेषता रखती है।

मैसूर, हैदराबाद, राजामुन्द्री में तो इनकी कला-प्रदर्शनियाँ आयोजित हुई ही हैं, पर पेरिस, लंदन, वेनिस बियनले तथा फ्रांस के अन्य नगरों में आयोजित प्रदर्शनियों एवं ग्रुप-शो में भी इन्होंने अनेक बार भाग लिया है।

श्रीमती राव जिज्ञासु वृत्ति की साधक कलाकार हैं। कुछ नया, कुछ अछूता पाने को वे सदा लालायित रहती है। पेरिस की माडर्न आर्ट म्यूज़ियम द्वारा आयोजित अंतर्राष्ट्रीय महिला प्रदर्शनी में तीन बार तथा सलों द आर्टिस्ट फ्रैंसिस में ये दो बार भाग ले चुकी हैं। १९५८ में पेरिस के नगर निगम द्वारा इन्हें रजत पदक प्राप्त हो चुका है। इसके अतिरिक्त यहाँ की कतिपय कला-संस्थाओं द्वारा भी ये पुरस्कृत एवं सम्मानित हो चुकी हैं।

कमला मित्तल

हैदराबाद की सुप्रसिद्ध कलाकार कमला मित्तल लगभग ३०-३५ वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। इन्होंने शांतिनिकेतन से फाइन आर्ट्‌स में डिप्लोमा लिया। ग्राफ और चित्रकारी के अलावा इन्होंने 'म्यूरल' और 'फ्रेस्को' टेकनीक का भी प्रशिक्षण लिया। वुडकट और बाटिक तथा मणिपुर पद्धति पर सुन्दर बुनाई का टेक्सटाइल का काम इनके कलाकौशल का परिचायक है। इनका नैसर्गिक कलाकार परम्परागत भारतीयता और रोज़मर्रा के दृश्यो में अधिक पैठता है। इन्हें जो कुछ व्यंजित करना है सीधे-सादे ढंग से ये प्रस्तुत करती हैं। 'माँ और बच्चा', 'दीपक वाली', 'जाट औरतें', 'दो बहनें', 'संथाल गाँव', 'साँप और नेवला', 'पनघट', 'सैर के लिए', 'झील के समीप', 'वृक्ष तले', 'नवबधू', 'मधुर स्मृतियाँ', 'स्नान करते हुए', 'पोखर में भैंस', 'गोधन', 'घर का आँगन' आदि सामान्य दृश्यांकनों को इन्होंने

गाँव की दुलहिन

बड़ी सजीवता से चित्रबद्ध किया है। इन्होंने 'राजगृह लैण्डस्केप', 'झाऊ वृक्षों के बीच', 'सूर्यमुखी', 'सेमल की बहार', 'गुलदाउदी के फूल', 'राजगिर कुण्ड', 'गाँव का नज़ारा', 'खिला पलास', 'वृक्षों के झुरमुट' आदि चित्रों द्वारा प्राकृतिक प्रेम दर्शाया है। पंचतन्त्र, बौद्ध जातक और ऐतिहासिक प्रकरणों को भी इन्होंने चुना है और तत्सम्बन्धी दृष्टान्त-चित्र प्रस्तुत किए हैं।

एक भावचित्र

'इचिंग' 'इम्ब्रायडरी' और 'वुडकट' में भी इनका आग्रह सादगी की ओर है। अपने देश का सामान्य जन-जीवन ही इनके आकर्षण का केन्द्र-बिन्दु रहा है जो अभिव्यक्ति में जटिल अथवा दुरूह न हो, साथ ही दर्शक को भी गूढ़ अथवा समझ से बाहर न लगे। इनके रंगों की गहराई, रेखांकन-लय और सशक्त एवं संतुलित निर्माण-प्रक्रिया अछूती है जो किसी वाद या धारा की कारा से परे स्वच्छन्द एवं उन्मुक्त प्रवृत्ति की द्योतक है। अपने कलाकार पति जगदीश मित्तल से इन्हें प्रेरणा एवं प्रोत्साहन मिला है तो ये भी अनेक अवसरों पर उनकी सहयोगी के रूप में उनके कला-चित्रों को सम्पन्न कराने में मददगार रही हैं। ललित कला अकादेमी, ईस्टर्न यूरोप में आयोजित भारतीय कला प्रदर्शनी और अनेक ग्रुप-शो में ये भाग लेती रही हैं। १९५५ में आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स द्वारा ये पुरस्कृत हुई। लिखने में भी इनकी रुचि है। भारतीय कसीदाकारी, साजसज्जा एवं हस्तशिल्प पर इनके अनेक लेख प्रकाशित हुए हैं। ये हैदराबाद आर्ट सोसाइटी की सदस्या हैं।

कुमुद शर्मा

कुमुद शर्मा निजी विशेषताओं और नव्यताओं के साथ अभी हाल में ही कला-क्षेत्र में अवतीर्ण हुई हैं। पटना के सुप्रसिद्ध लेखक स्वर्गीय आचार्य नलिन विलोचन शर्मा की पत्नी, जिनकी साधना पति के जीवन-काल में अंतर्मुखी थी, सहसा चित्रों में मुखर होकर प्रकट हुई। लगता है, उनमें भी वैसी ही कमनीय कल्पना, भावुकता और निगूढ़ मनोवैज्ञानिकता का समुचित समावेश है। पति के अभाव

में कला इनके मन का मूक समझौता या कहें कि आप्लवनकारी टीस है जो इनकी भावनाओं की निष्पत्ति या परितृप्ति का प्रतीक, साथ ही इनके निजीपन के वैशिष्ट्य की गरिमा लिये उभरी है।

यूँ तो बचपन से ही कलारुचि और सृजन का शौक़ इनमें था, पर इन्होंने किसी स्कूल या संस्था में कला का प्रशिक्षण नहीं लिया। स्वानुभूत तथ्यों

मातृत्व

और अहर्निश आँखों के सामने से गुज़रने वाले दृश्यों में से ये अपना अभिप्रेत खोज लेती हैं। 'गपशप', 'दो औरतें', 'माँ और बच्चा', 'दो बहनें', 'चूड़ीहारिन', 'रामू', 'सर्दी की रात', 'संघर्ष', 'एक गीत', 'सफर', 'कुली', 'एकान्त', 'संतोष', 'रचना', 'मातृत्व', 'विश्वास' आदि चित्रों में प्राणों की धड़कन है, यथार्थ स्वरूप की झाँकी है, साथ ही मानव-प्रकृति और उसके भिन्न-भिन्न 'मूडों' का दिग्दर्शन है।

आयासहीन रंगों, सुदृढ़ रेखाओं और ब्रुश के झपाटों द्वारा इन्होंने तजुर्बों को बटोरकर मानो सामने रख दिया है। इनके पोर्ट्रेट बड़े सफल बन पड़े हैं। लैण्डस्केप और दृश्य-चित्रण में यथार्थता व चारु रम्यता है। साबुन से इन्होंने मूर्तियाँ भी गढ़ी हैं। अनेक भावात्मक चित्र भी हैं जिनमें टेकनीक की औपचारिकता की अपेक्षा अंतरंग अनुभूति की निर्व्याज्य व्यंजना है।

संघर्ष

आधुनिक प्रणालियों की ऊहापोह-भरी उलझन में नही बल्कि स्पष्ट-वादिता और सरलता की ये हामी हैं। दैनन्दिन जीवन-दृश्यों को अपनी रंग रेखाओं द्वारा इन्होंने सहज, संयत रूप में एक निजी मौलिकता प्रदान की है। विषय प्रतिपादन में कहीं अलगाव या दुराव नहीं, बल्कि रात-दिन नज़रों के सामने से गुज़रने वाले प्रसंग व घटनाएँ ही उनके प्रेरणा-स्रोत हैं, साथ ही उनके मनोमय संसार की संरचना के साधन हैं और साध्य भी।

दिल्ली में दो बार और पटना में अनेक बार इनके चित्रों की व्यक्तिक प्रदर्शनियाँ आयोजित हो चुकी हैं। यद्यपि प्रदर्शन से परे कला की मूक साधना ही इनका ध्येय और विधेय है।

शकुन माथुर

इनके जीवन में भी असमय घटी 'ट्रेजेडी' ने अकस्मात् सुप्त कला-प्रतिभा को जगा दिया। पति की दारुण मृत्यु के वज्राघात ने इनके प्राणों को मसोस डाला और अंततः इन्होंने शांति और समाधान खोजा कला में, जो इनके बचपन की चिरसखी थी। भरतपुर में जहाँ इन्होंने अपना शैशव और किशोरावस्था व्यतीत की, चित्रकला की ओर इनकी जन्मजात रुचि थी। शहर से बाहर जहाँ इनकी कोठी थी, पास ही नहर बहती थी, सामने एक विशाल किला था और ऊँचे-नीचे टीले व पत्थर, नहर के इर्दगिर्द वृक्षों की सघन छाया में कई मंदिर भी बने हुए थे। खेलते-खेलते इनकी अल्हड़ आँखों को जैसे कुछ छू जाता, इनकी थिरकती चपलता को अवाक् कर जाता, भूली-बिसरी हिलोरों में सहसा

व्यस्तता जगा जाता। शांत वातावरण में प्राकृतिक सुषमा और नैसर्गिक आकर्षण इनके बाल मन को अभिभूत कर जाते। इनकी इच्छा होती कि प्रकृति के इन थिरकते, क्षण-प्रतिक्षण बदलते रंगों को चित्रों में ढाल दूँ, पर जब तक एक

एक दृश्यांकन
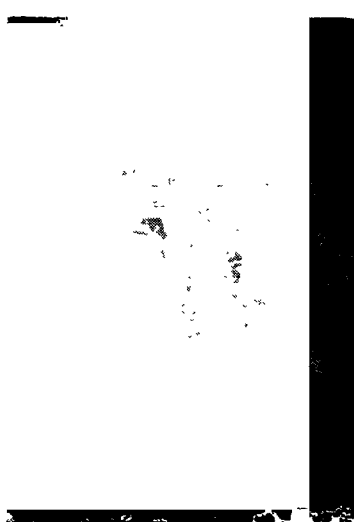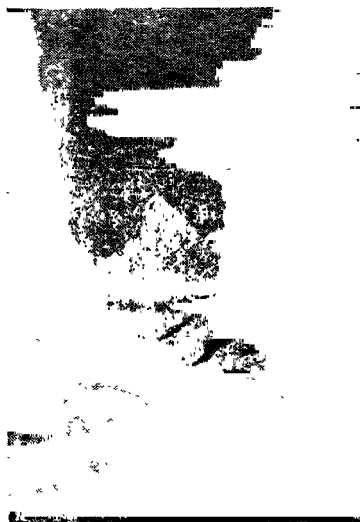
अमरीका की प्रसिद्ध उभय चट्टानें

चिंतनमयी प्रतीक्षा

झलक पकड़ पाती कि दूसरा ही रंग बदल जाता। सब कुछ जैसे गड़बड़ा जाता। दूसरे ही दृश्य और रंगों में प्रकृति अपना शृंगार बदल लेती। बस, इसी ऊहापोह में घंटों आँखें फाड़े ये देर तक निहारती रह जातीं। नभ-मण्डल में बादलों के बनते-मिटते अनगिन रूपाकार जो नहर के जल के साथ नर्तन-सा करते, उषःकालीन अथवा संध्याकालीन सूर्य की रश्मियाँ जो अपनी अरुणिम आभा से आँखों को मोह लेतीं, पक्षियों के नाना कलरव और उनकी आकाशचारी आकर्षक उड़ानें, हरे-भरे वृक्षों के पत्र-संभार, फल-फूलों का रंगीन वैचित्र्य, लताकुंजों की सघन चारुता, ऊँची-नीची चट्टानों की सहज गरिमा तथा बदलते मौसम के कारण प्रकृति की रंगरलियों में ये सहसा खो जातीं। यही नहीं इन्हें दैनन्दिन दृश्यों का आकर्षण भी मोह

भारवाही

लेता। सड़क पर बैलों से कशमकश करता गाड़ीवान, कुएँ पर जल भरती गूजरियाँ और उनके हँसी-ठठ्ठों व चुहलबाजियों की अनुगूँज, किसी कोने में गरीबी की कसक लिए बैठी भिखारिन, मैदान में खेलते बालक-बालिकाओं के झुण्ड, घर के आँगन में बँधी गाय-भैंसें अथवा जंगल में चरकर आते डंगरों की टुनटुनाती घंटियाँ, किसी टूटी झोंपड़ी में अपने परिवार की सेवा में जुटी मजदूरिन या कृषक महिला, श्रमिकों, कामगारों और रोजी-रोटी के लिए कड़ी

घर के आँगन में

मशक्क़त करने वाले मजदूर-पेशा लोगों में इनकी भावुक, कोमल वृत्तियाँ अधिक रमीं और इन्होंने उस समय अपनी अनुभूतियों को अनेक दृश्यचित्रों में साकार किया।

श्रीमती माथुर मुख्यतः लैंडस्केप चित्रकार हैं। विवाह के पश्चात् कुछ अर्से तक इनकी साधना पति की सेवा-सुश्रूषा में खो सी गई। पर वैधव्य ने पुनः इनके पहले संस्कारों को जगा दिया है और इधर कुछ अर्से में ही इन्होंने सैकड़ों दृश्यांकन बना डाले हैं जिनमें इनकी सूक्ष्म पर्यवेक्षण क्षमता, विषय-वैविध्य में गहरी पैठ तथा रंग-रेखाओं का सामंजस्य दर्शित होता है। प्रचार-भावना से दूर कला इनकी एकांत साधना और मन की विश्रांति है जहाँ ये अपने दुःख-दैन्य और पति के अभाव की गहरी वेदना को अंतर्गूढ़ करती रहती हैं। अधिकतर तैल-रंगों में इन्होंने अपने लैंडस्केप बनाये हैं। कसीदाकारी, सलमे सितारे और बाटिक पद्धति पर भी इन्होंने प्रयोग किये हैं और घरेलू साज-सज्जा में भी विभिन्न माध्यमों को अपनाया है।

जगजीत कृपालसिंह

जगजीत कृपालसिंह कला के उच्चतर मूल्यों को आत्मोपलब्धि के रूप में स्वीकार करके ख्याति एवं प्रचार-भावना से दूर एक लम्बे अर्से से एकान्त श्रम-साधना में ही परितृप्ति और आत्मतोष का अनुभव कर रही हैं। इनकी विशेषता है कि नूतन कला के माध्यम से नहीं वरन् प्राचीन कलादर्शों का निर्वाह करते हुए जीवन के वैविध्य को इन्होंने गहरी रेखाओं से आँका है। अतएव प्रारम्भ से ही इन्होंने किसी बंधन या दबाव को स्वीकार न करके सर्वथा मौलिक और उन्मुक्त कला-सृजन किया है।

किन्हीं उलझे या अस्पस्ट दृष्टिकोणों से अलग इनकी कला में ताजगी, ज़िन्दादिली, मर्यादा और वैशिष्ट्य, साथ ही सौन्दर्य और सत्य का साक्षात्कार है। जिन मानो में 'माडर्न आर्ट' की वेहूदगियाँ आज प्रचलित हैं वह इन्हें कतई नापसन्द हैं, बल्कि ऐसी टेकनीक और अतिरंजित मान्यताओं से इन्हें सख्त नफ़रत है। इनके मत में—मन की कोमल वृत्तियों से प्रेरित और रंग-रेखाओं के सामंजस्य में से सिरजी गई रूपाकृतियाँ 'सत्यं, शिवं, सुन्दरम् की अनिवार्य रूप से द्योतक तो हैं ही, ब्रुश और पेंट से ढली हर सामान्य से सामान्य व्यंजना में भी उदात्त कल्पना और जीवन-दर्शन के निगूढ़तम तत्त्व सन्निहित होने चाहिए। किन्तु आधुनिक कला बहुत कुछ अंशों में विकृत रुचियों का ही प्रतिविम्ब है। सर्जक में सहज दृष्टि द्वारा जो साम्यावस्था जगती है और क्रमशः उसकी उदात्त चेतना अंतरंग विश्वास और ज्योतिर्मय एकाग्रता से भरीपूरी होती है यह सृजन में उभर कर न सिर्फ़ उसे बल्कि दूसरों को भी एक शक्तिदायिनी विश्रांति प्रदान करती है। पर आज की कला ठीक उसके विपरीत है, यह ऐसी नहीं है—जिसे प्राणात्मा का स्पर्श प्राप्त हो या जिसे किसी की चरम साधना कहा जा सके। ऐसी स्थिति में क्या यह पैसे, समय, सामग्री आदि का दुरुपयोग नहीं है? इनके शब्दों में— 'मैं ऐसे पागलपन को शह देने या उसका अन्धानुसरण करने की अपेक्षा अब तक जो मैंने इस दिशा में कार्य किया है उसे भी तिलांजलि देने को तैयार हूँ।'

श्रीमती कृपाल ने बड़े ही व्यापक पैमाने पर कला-साधना की है। कैन्वास, लकड़ी, टिन, ग्लास, सिल्क, सूती वस्त्र और मृण्पात्रों पर इन्होंने बहुत सुन्दर

काष्ठ शाखाओं और हरी पत्तियों द्वारा निर्मित एक वृक्ष

मेजपोश के कोने की कसीदाकारी का एक आकर्षक नमूना

ढंग से चित्र-सज्जा प्रस्तुत की है। उदाहरणार्थ—डाल्डा के कितने ही डिब्बों को इन्होंने अपनी कलामय कूची से सुन्दर रद्दी की टोकरियों में परिणत कर दिया है, पुराने और बेकार ग्रामोफोन-रिकार्डों को दीवार सजाने वाली चित्रित प्लेटों में बदल दिया है, ग्लास और मामूली शीशों को आकर्षक 'ट्रे' और मेज के खूबसूरत काँच बना दिया है। चित्र-निर्माण में तैलरंग, जलरंग, पोस्टर रंग और अंडे के मिश्रण का ये उपयोग करती हैं। बंगाल स्कूल की टेकनीक और कलादर्शों को अपनाकर इन्होंने वाश पेंटिंग में विशेष दिलचस्पी ली है। सिल्क पर जलरंगों से काम करके इन्होंने एक नई टेकनीक बरती है और रेशमी धागों के प्रयोग किए हैं। इष्ट की अनुकूलता के लिए ये रूपाकृतियों में सौन्दर्य-विधान अनिवार्य मानती हैं। जैसे कि आधुनिक प्रवृत्तियों का रुझान दीख पड़ता है ये भयंकर या ऊलजलूल चित्राकृतियों को सिरजने में विश्वास नहीं करतीं। टेढे मेढ़े आकार, धँसी या उभरी आँखे, मोटे ओठ, अनुपातहीन हाथ, घिनौनी भंगिमाएँ और डर या जुगुप्सा उत्पन्न करने वाले चेहरे ये कदापि बर्दाश्त नहीं कर सकतीं।

खाके पर लाल रंगों द्वारा चित्रित एक पुष्प डिजाइन

कला तो सचमुच वह है जो मनोभाव को पूर्णतः और हूबहू अभिव्यक्त कर सके, जो सुन्दर और रंजनकारी हो, जिसमें तिमिर से प्रकाश की ओर ले जाने तथा आंतरिक शक्तियों को उद्‌बुद्ध करने की क्षमता हो। स्पष्ट ही, वह कला नहीं है जो बाहरी प्रकृति से सम्बन्ध रखती है जिसमें किसी की वैयक्तिक इच्छाएँ, 'मूड' या मन की पसन्दगी-नापसन्दगी निहित रहती है। इसलिए इन्हें पुराने खेबे के कलाकार ही अधिक पसन्द हैं, उन्हीं की कला-प्रवृत्तियों से इन्होंने प्रेरणा प्राप्त की हैं। आज के भौंडे प्रयोग—इनकी दृष्टि में—उदात्त कलाभिरुचियों को ह्रास की ओर ढकेल रहे हैं।

जगजीत कृपाल पटियाला में एक संभ्रान्त और कुलीन परिवार से सम्बद्ध हैं। इनकी बाल्यावस्था भी अधिकतर वहीं व्यतीत हुई। इनके पिता सरदार अजीतसिंह पटियाला हाईकोर्ट के चीफ जज और तत्पश्चात् नाभा स्टेट के चीफ मिनिस्टर नियुक्त हुए। तीन भाई और दो बहनें—एक भरापूरा, सम्पन्न परिवार, पंजाब की हरीभरी धरती और कलामय वातावरण ने प्रारम्भ से ही इनमें सृजन-चेतना जगाई। दस्तकारी और बुनाई के शौक़ के साथ-साथ रंग और कूची से खिलवाड़ करना भी इनकी विशेष 'हाबी' थी। छुटपुट पेंटिंग करने में तो ये पहले से ही दिलचस्पी लेती थी, पर १९५७ से ये गंभीर कला-साधना में प्रवृत्त हुई। चित्रण में जटिलता या सूक्ष्मताओं में उलझने में इन्होंने कभी विश्वास नहीं किया, अपितु जिस किसी प्रकार हो 'सुन्दर' को सिरजना ही इनका ध्येय बन गया।

इन्हें अपनी कला-साधना में पति से विशेष सहयोग और प्रेरणा मिलती रही है। श्री कृपाल सिंह रेलवे बोर्ड के एक विशिष्ट उच्चाधिकारी और चेयरमैन रहे हैं, किन्तु अपने अत्यधिक उत्तरदायित्वपूर्ण और व्यस्त जीवन में भी वे अपनी पत्नी की हर कृति के प्रशंसक या छिद्रान्वेषी द्रष्टा बने रहे जिनकी प्रशंसा या कटु आलोचना ने इनमें सदैव सतर्कता और सूझबूझ जगाई। घर की अन्दरूनी साज-सज्जा को भी ये विशेष महत्व देती हैं, कम से कम घर की हर एक वस्तु में अपने जीवन और व्यक्तित्व की छाप, उस वस्तु से विशिष्ट संसर्ग, साथ ही स्थिति और रुचि के अनुरूप व्यवस्था की ये क़ायल हैं। घरेलू सज्जा के ये मानी नहीं कि उसमें केवल कीमती सामान या बहुत बड़ी संख्या में वस्तुओं का प्रदर्शन हो, वरन् स्वच्छता, क्रम, सुघड़ व्यवस्था, सुरुचि एवं सादगी, सौम्य एवं लुब्धकारी

कसीदाकारी का एक आकर्षक पैनल चित्र

रंगों से, भले ही वे रंग बेमेल या मेल खाते हों, उनमें परस्पर सामंजस्य या असामंजस्य किन्तु फिर भी उनकी स्थिति एवं संयोजन के साथ-साथ वे विभिन्न पहलुओं और विचार-कोणों के दिग्दर्शक तो अवश्य होने ही चाहिए। घर की आधुनिक सज्जा में जो कृत्रिमता, रंग-बिरंगे पर्दे, विचित्र भाँति-भाँति की सज्जा सामग्री का प्रदर्शन, भारी भरकम फर्नीचर, बड़ी-बड़ी शानदार मेजें व कुर्सियाँ आदि होती हैं उनमें कलाकारिता या सुरुचि का नितान्त अभाव होता है। कोई भी मूल्यवान से मूल्यवान वस्तु उस स्थिति में अनुपयोगी हो जाती है जबकि सौन्दर्योपलब्धि के गुण से हीन होने के कारण दर्शक का मन उसके प्रभाव से वंचित रह जाता है। अतएव घरेलू सज्जा गृहस्वामियों के आचरण, उद्देश्य, लक्ष्य और मौलिक चिंतन के अनुरूप होनी चाहिए। श्रीमती कृपाल किसी भी सज्जा-कृति की एकमात्र कसौटी उसके द्रष्टा पर पड़ने वाले प्रभाव को ही मानती हैं। उनका कहना है कि व्यक्ति का सौन्दर्यलुब्ध मन रसग्राही और पिपासु होता है, उसकी अनुभूति का किसी भी कृति के साथ एकात्म्य तभी संभव है जबकि चिरंतन तत्वों को ग्रहण कर उससे सहज एवं स्वतंत्र नाता क़ायम कर सके। कलाकार निश्चय ही अपनी कृति का दर्शक भी होता है। अतएव कला के साधक के पास जो उसकी अपनी कला के मूल्यांकन की कसौटी है वह है उसका आत्मानंद। इसी आत्मानंद में लय होकर श्रीमती कृपाल निरंतर दृढ़ और निर्भीक कदमों से साधना-पथ पर अग्रसर हो रही हैं।

शीला सब्रवाल

लाहौर इनकी जन्मभूमि है और वहीं इनकी शिक्षा-दीक्षा सम्पन्न हुई। चित्रकला की ओर इनकी जन्मजात रुचि थी। पंजाब विश्वविद्यालय में चित्रकारी के विषय में विधिवत् अध्ययन करने के पश्चात् ये बम्बई के 'नूतन कला मंदिर' में प्रशिक्षण लेती रहीं। अजंता, एलोरा, एलिफेंटा आदि कला-तीर्थों में इन्होंने भ्रमण किया है और वहाँ की भित्ति-चित्रकारी को समझा और हृदयंगम किया है। सन् १९४७ में 'नागपुर आर्ट सोसाइटी' द्वारा आयोजित वार्षिक प्रदर्शनी में इन्होंने प्रथम पुरस्कार प्राप्त किया और इनका यह चित्र इतना पसन्द किया गया कि सेन्ट्रल म्यूजियम में खरीदकर रखा गया।

विवाह के पश्चात् इन्हें अपने इंजीनियर पति के साथ स्थानान्तरित होकर

ऐसी जगह जाना पड़ा जो संथालों की निवास भूमि थी। इस जाति के समीप रहकर उनके स्वभाव, रहन-सहन, वेश-भूषा, रीति-रिवाज, सुख-दुःख, आमोद-प्रमोद, क्रीड़ा-कौतुक, नृत्यगान तथा विभिन्न स्थितियों एवं संस्कृति का प्रभाव इन पर पड़ा और अनेक दृश्यांकनों में इन्होंने उसे प्रस्तुत किया। कुछ अन्य जातियों के चित्र भी इन्होंने आँके हैं। लगता है गहरे पैठकर उनके मनोभावों और अन्तर के आलोड़न-विलोड़न को इन्होंने बारीकी से समझा-बूझा है जिसका उद्घाटन ये अपने बहुविध चित्रों में कर चुकी हैं।

फूलन रानी

ये अमृतसर की कलाकार हैं। ठाकुरसिंह स्कूल आफ आर्ट में इन्होंने प्रशिक्षण लिया। जलरंगों में इनका चित्रण अपनी निजी विशेषता रखता है। पंजाब के प्राकृतिक वैभव की हरी-भरी दृश्यावलियों ने इनके मन को अभिभूत किया है। अमृतसर की इण्डियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स, पटियाला फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स एग्जीबिशन तथा सिखों के बृहद् शिक्षा सम्मेलन के अवसर पर आयोजित कला-प्रदर्शनी में इन्हें स्वर्ण एवं रजत पदक प्राप्त हुए हैं। समय-समय पर इनके चित्रों को सम्मान एवं प्रशंसा प्राप्त हुई। पेंटिंग के अलावा इम्ब्रायडरी, लेदर क्राफ्ट और कसीदाकारी में भी ये दक्ष हैं। अमृतसर की इण्डियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स की गवर्निंग कौंसिल की सदस्य और काँगड़ा कला केन्द्र की सेक्रेटरी हैं। स्थानीय गवर्नमेंट हाईस्कूल की हेडमिस्ट्रेस के रूप में इन्होंने कला के प्रचार-प्रसार में योगदान दिया है।

इन्दु बाली

पंजाब की सरसब्ज धरती, दूर-दूर तक फैली हरियाली और दिगंचल में बिखरे अनिर्वचनीय सौन्दर्य ने बचपन से ही इनके भावुक, कल्पना-प्रवण मन को अभिभूत किया है। उषः वेला में क्रमशः झिलमिलाती स्वर्णरश्मियाँ, जो प्राची वधू का घूँघट सहसा उलटकर अपनी रंगमयता बिखेर देती हैं और संध्या समय इसी रागरंग से उसकी सघन केशसज्जा में रंजित रेखा आँज देती हैं, क्रमशः बढ़ते अँधेरे में आँखमिचौनी से करते उसकी चुनरी में ढँके अनगिन तारे, चाँद की बेंदी, शुक्र और बुध के कर्णफूल, नभगंगा की करधनी—यों इनके

शीत के झोंके में

हिमाच्छन्न

बसंत के हर दिन पतझड़

बालमन के आवेग इनकी अंतरंग कल्पना में विभोर हो जाते। इन्दु की माता का निधन बचपन में ही हो गया था। अतः इस मातहीन बालिका ने अपनी

हिल लेक (विश्राम मुद्रा)

उमंगों को प्रकृति के सौन्दर्य में ढाल दिया। प्रकृति के साथ खेल-खेलकर ही वह बड़ी हुई।

इनके पिता साहित्यिक एवं कलात्मक वृत्ति के थे। उनके साथ विभिन्न स्थानों में भ्रमण के दौरान ये प्रेरणा प्राप्त करती रहीं। जब कभी चित्र बनाती, इनके पिता फूले न समाते। उनका ममता भरा प्रोत्साहन ही इनका प्रेरणास्रोत था। पिता की खुशी के लिए ये बार-बार चित्र बनातीं—यों इनका अभ्यास बढ़ता रहा। माँ का अभाव इन्हें रुलाता था तो पिता का अपार स्नेह इनकी करुणार्द्र मनोवृत्तियों को सहलाता था। जब ये शिमला गई तो वहाँ की हरियाली, पहाड़ एवं उन्मुक्त प्राकृतिक दृश्यों के सौन्दर्य में ये और भी खोई रहतीं। उस समय इन्होंने अनेक 'लैंडस्केप' बनाये। जल रंगों, तैल गों में इन्होंने दृश्यांकनों को बाँधकर अनेक प्रयोग किये है।

इन्दु बाली की कला किसी शैक्षणिक औपचारिकता अथवा शास्त्रीय पद्धति पर आधारित नही है, वरन् स्वयंजात है जिसे एकान्त अभ्यास एवं साधना ने

मंज़िल की ओर

मेरा बालमित्र

आगे बढ़ाया है। इनके घरेलू चित्र संग्रह ने अथवा यदाकदा सम्पर्क में आए कलाकारों ने इन्हें राह दिखाई। वही इनका सम्बल था। इन्होंने अनेक 'पोर्ट्रेट' भी बनाए है। शौक के बतौर सुईकारी और साज-सज्जा के कार्य में भी ये दक्ष हैं।

मेरे बाजी

पहला पुरस्कार इन्हें लाहौर की चित्रकला प्रदर्शनी में प्राप्त हुआ, तत्पश्चात् होशियारपुर में इन्हें प्रथम और द्वितीय पुरस्कार मिला। १९५६ में पंजाब सरकार द्वारा आयोजित अखिल भारतवर्षीय चित्रकला प्रदर्शनी में इन्हें रजत पदक प्रदान किया गया जो स्वर्गीय पं० जवाहरलाल नेहरू ने इन्हें अपने हाथों दिया था।

प्राय: सभी सम्वन्धियों के यहाँ इनके हाथ के बने चित्र टँगे हैं। चित्रकला को इन्होंने सदा अपनी चिरसखी माना है जो इनके सुख-दु:ख, हर्ष-उल्लास और भावनाओं के उतार-चढ़ाव तथा हर अच्छे-बुरे मूडों को अपने में समेट लेती हैं। मन की वेदना और टीस को इन्होंने उसमें संजोया है, फिर भी इनके चित्र निराशा अथवा अवसाद के कुहासे से आच्छन्न नहीं हैं, बल्कि उनमें आशावाद और अन्तर की सच्ची पुकार है।

चन्द्रा योगेश

प्रचार-प्रसार एवं वाह्य प्रदर्शन से दूर चन्द्रा योगेश की कला भी ऐकान्तिक साधना का परिणाम है। निजी कलाकक्ष में इनके विभिन्न चित्रों में बड़ी ही सुष्ठु, कोमल व्यंजना है। रंग एवं रेखाओं का समानुपात, आकृतियों को

सुगढ़ता, साथ ही इनके काम करने की बड़ी ही सुचारु मौलिक पद्धति दर्शक को अभिभूत करने वाली है।

प्राचीन आदर्श कला-पद्धति और भारत की सांस्कृतिक विरासत से इन्हें प्रेरणा मिली। इनके विषय भी प्रायः धार्मिक एव पौराणिक होते हैं। 'मीरा', 'पादुका याचना', 'कृष्णार्जुन', 'शक्ति-उपासना', 'भरत-मिलाप' आदि चित्रों में पावन भावना और संयत अभिव्यक्ति है, पर इन्होंने शृंगारिक विषय भी उतनी ही सफलता से आँके हैं। 'दिवा स्वप्न', 'नायिका', 'वर्षा विहार', 'तीन बहनें' आदि चित्रों में विभिन्न नारी भंगिमाओं का दिग्दर्शन हुआ हैं। आधुनिक वादों अथवा फार्मूलों के ये खिलाफ़ हैं, फिर भी इन्होंने बाहरी प्रभावों को एकदम नकार नहीं दिया है। इनकी रूपाकृतियों के निर्माण, गठन और संरचना पद्धति पर राजपूत एवं मुग़ल कला का प्रभाव है। विदेशी कला-टेकनीक की छाप भी इनके कुछ चित्रों में यत्र-तत्र द्रष्टव्य है।

सान्त्वना गुहा

सुप्रसिद्ध बंगाली चित्रकार सान्त्वना गुहा एक अर्से से दिल्ली में रहकर कला-साधना में प्रवृत्त हैं। इन्होंने उकील परिवार से कला की प्रेरणा प्राप्त की और शारदा उकील आर्ट्स कालेज़ में कला का प्रशिक्षण लिया। तत्पश्चात् छात्र-वृत्ति पर क्षितीन्द्रनाथ मजूमदार के तत्त्वावधान में कार्य किया। सरकारी छात्र-वृत्ति पर ये अढ़ाई साल यूगोस्लाविया में मशहूर यूरोपीय कलाकार लुबार्डा से आयल पेंटिंग और 'मोज़एक' (पत्थर चित्रकारी) का प्रशिक्षण प्राप्त करती रहीं। साढ़े छः महीने एक अन्य छात्रवृत्ति पर ये फ्रांस में रहीं और इन्होंने अन्य यूरोपीय देशों का भी दौरा किया। लंदन, रोम, पेरिस की कलावीथियों में घूम-घूमकर ये कला की सूक्ष्मताओं का अध्ययन करती रहीं जिनका अप्रत्यक्ष प्रभाव इनकी चित्रण पद्धति पर भी पड़ा।

शुरू में इन्होंने शुद्ध भारतीय शैली पर अनेक चित्रों का निर्माण किया है। श्री कृष्ण और राधा, भगवान की चित्र सीरीज़, रामायण के विविध दृश्यांकन, माता-पुत्र का वात्सल्य, ग्रामीण नारियों की विभिन्न छवियाँ और क्रिया-कलाप, उत्सवों और त्योहारों के दिग्दर्शक चित्र, अजंता शैली से प्रेरित 'नटराज' आदि

नदी किनारे गर्भिणी (वाश शैली)

यों इन्होंने कितनी ही आकर्षक भंगिमाओं को चित्रबद्ध किया है। ऐसे चित्रों में इनकी कल्पना बड़ी ही कोमल और रंग-रेखाएँ आकर्षक बन पड़ी हैं।

किन्तु विदेशी भ्रमण के प्रभाव के कारण ये क्रमश: आधुनिकता की ओर बढ़ते हुए प्रभाववादी और अर्द्ध अरूपवादी हो गई हैं अर्थात् इनकी निर्माण-प्रक्रिया मि० लुबार्डो से प्रभावित है। 'फ्रेस्को' और 'मोज़एक' का अभ्यास इन्होंने यूगोस्लाविया और फ्राँस में किया था। बाटिक पर भी इन्होंने प्रयोग किये हैं और पेंसिल ड्राइंग में भी दक्ष हैं। फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स में आयोजित इनकी प्रदर्शनी में, जिसका उद्घाटन डा० जाकिर हुसैन ने किया था, टूटे-फूटे मकान

स्नान के बाद

कुएँ पर

के इर्दगिर्द वृक्षों में से छन-छन कर आती 'चन्द्र ज्योत्स्ना', 'तूफ़ान', 'नर्तक', 'वसंत', 'अहंकार' आदि आधुनिक शैली पर निर्मित चित्रों की अत्यधिक सराहना हुई। इन्होंने घोड़ों के 'पोज़' भी आंके हैं—आधुनिक पद्धति पर, किन्तु इतना तो निर्विवाद है कि इनका इधर काम का ढंग भले ही विदेशी पद्धतियों का क़ायल हो, किन्तु इनके विषय एकदम भारतीय होते हैं। श्रीमती गुहा कला की मूर्तिमान प्रतीक हैं, इनका एकमात्र पुत्र जयन्तकुमार भी माँ के कदमों का अनुसरण करता हुआ एक अच्छा होनहार कलाकार है और कई शंकर वीकली पुरस्कार प्राप्त कर चुका है।

आचार्या बिशन

आचार्य बिशन पेशावरी महिला हैं, किन्तु उनके पठान प्राणों में बड़ी ही गहरी करुणा और मर्मभेदी कचोट है, जो उनके चित्रों में अनायास उभर आई है। 'उत्कंठिता', 'प्रतीक्षातुर' 'मातृस्नेह', 'मिलन', 'अमर प्रणय', 'पूजा' आदि चित्रों में बड़ी ही कोमल भावाभिव्यंजना है। इन्होंने धार्मिक एवं पौराणिक

विषयों को भी लिया है। जो चित्र यथार्थ जीवन से प्रेरित हुए हैं उनमें बड़ी ही सजीव और वास्तविक घटनाओं को चित्रबद्ध किया गया है।

चित्रकला इन्होंने शौक़ के बतौर शुरू की, किन्तु वही अंततः इनकी साधना बन गई और साध्य भी। इनकी रेखाएँ गतिमय और रंग अनुरूप सौष्ठव लिये होते हैं। 'माडर्न' की विकृति और भौंडेपन से अछूती इनकी कला स्वस्थ और सुखकर है।

उषा नंदी

उषा नंदी ने दिल्ली पालिटेक्नीक से फ़ाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। व्यावसायिक चित्रकार के बतौर ये ग्राफिक कला में काफी अर्से से काम कर रही है। मूर्तिकला और एप्लाइड आर्ट में भी इनकी पैठ है। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी द्वारा आयोजित प्रदर्शनी में इन्हें अवार्ड मिला, तत्पश्चात् उद्योग प्रदर्शनी में भी इन्हें पुरस्कार प्रदान किया गया। यूनेस्को, पेरिस, लंदन, अन्तर-एशियन और नारी मूर्तिकारों की प्रदर्शनी में ये भाग ले चुकी है।

उषा नंदी बड़ी कर्मठ और उत्साही कलाकार हैं। उनकी चित्रण पद्धति नवीन है और आकृति-निर्माण का ढंग निजी वैशिष्ट्य और निरालापन लिये हैं। 'माडर्न' को नये मूल्यों के रूप में इन्होंने नया संदर्भ प्रदान किया है। फिर भी बदसूरती की ये क़ायल नहीं बल्कि इनकी कृतियाँ यथार्थ को निजी अनुभूति के स्तरों पर उतार कर एक नई लाक्षणिकता की ओर संकेत करती हैं।

बीना भवनानी

बचपन से ही कला में सहज रुचि थी, खासकर प्राकृतिक दृश्यों से इन्हें बेहद प्रेरणा मिली। बालिका के उत्साह से प्रेरित बारहवीं वर्षगाँठ पर जब इन्हें स्वजनों द्वारा तैलरंग और कैन्वास-सेट भेंट किया गया तो पेंटिंग को इन्होंने स्वयं-साधना बना लिया। अल्पायु में ही इन्होंने एक जहाज का चित्रण किया और अनवरत कला की दिशा में प्रयोग करती गईं। प्राचीन आदर्शों की क़ायल तो ये हैं ही, पर प्रभाववादी, यथार्थवादी और अरूपवादी पद्धतियों पर इन्होंने अनेक प्रयोग किये हैं। आधुनिक शैली और नव्य धाराओं ने इनके तरुण उत्साही

आधुनिक पद्धति पर निर्मित एक दृश्य चित्र, वृक्षों के झुरमुट से झाँकता हुआ एक मकान

कलाकार मन को अधिक अभिभूत किया है। 'डिजाइनिंग', 'डिस्प्ले', 'डैकोरेशन में दक्ष हैं। पुस्तकों के आवरण-चित्रों, दृष्टान्त चित्रों और छवि चित्रों में भी पटु हैं।

रंग एवं रेखाओं में बड़ी सहज एवं सशक्त शैली इन्होंने अख्तियार की है। इनका आकृति-निर्माण का ढंग सादा और निरायास है जिसमें आकर्षण और मुग्ध भाव है। ये सिन्धी महिला हैं, पर कला की दिशा में अन्य कतिपय प्रभावों को आत्मसात् कर अपने दृष्टिकोणों को इन्होंने व्यापक और उदार बनाया है।

एक शरणार्थी परिवार

सरला रमन

देहरादून के सुप्रसिद्ध कलाकार रणवीर सक्सेना की पत्नी हैं और स्वयं भी उच्चकोटि की कलाकार हैं। 'माडर्न' की कुंठाओं से परे इन्होंने जीवन के स्वस्थ और सुन्दर को अपनाया है। इन्होंने अनेक धार्मिक, पौराणिक और लोकरंजक दृश्यों को चित्रबद्ध किया है। आज परिस्थितियाँ बदल गई हैं, जीवन की कशमक़श और ऐंचतान ने मन को झकझोरा है, पर कला की मौन आत्मा मानवता की चिर पोषक है, अतः चित्र की अन्तःशक्ति 'सत्यं-शिवं-सुन्दरम्' में ही मुखरित होनी चाहिए। इन्होंने सैकड़ों चित्र बनाये हैं। इनका चित्रांकन अतिरंजना से परे यथार्थता के अधिक निकट है, इसलिए चित्रों में सादगी और सजीवता है। इनके मत में कुरुचि या अवसाद उत्पन्न करने वाले नहीं, वरन् आशा और सुरुचि उत्पन्न करने वाले चित्रों का निर्माण होना चाहिए। इसलिए जीवन-संघर्षों तथा यथार्थ की विभीषिकाओं को इन्होंने कला में लय कर दिया है।

इनका समूचा परिवार कला में साधना रत रहा है। कलाकार पति तो इनके सहभागी हैं ही इनका एकमात्र पुत्र भी माता-पिता के चरण चिह्नों पर एक होनहार कलाकार के रूप में अपनी प्रतिभा को विकसित कर रहा है।

युगल छवि

अन्य कलाकार

कला की दिशा में कितनी ही अन्य छोटी-बड़ी कलाकार रचनात्मक कार्य कर रही हैं। बम्बई की **बी० प्रभा**—व्यावसायिक कलाकार के बतौर एक अर्से से काम कर रही हैं। कई बार पुरस्कृत हो चुकी हैं। बम्बई राज्यकला प्रदर्शनी, राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी और बम्बई, दिल्ली व पूना में अपने व्यक्तिगत प्रदर्शनों के अलावा अन्य कितनी ही समसामयिक प्रदर्शनियों में भाग ले चुकी हैं। इन्होंने विदेशों का भी दौरा किया है और प्राचीन-अर्वाचीन शैलियों के प्रभाव से निजी मौलिक पद्धति का विकास किया है। ये बम्बई आर्ट सोसाइटी की सदस्य हैं। बम्बई की दूसरी सुप्रसिद्ध कलाकार **क्यूमी एच० दलास** – छवि चित्रण, आकृति-निर्माण हैं और भित्तिचित्रण में दक्ष हैं। इन्होंने देश-विदेश में भ्रमण कर कला की आधुनिक कला-कसौटियों का अध्ययन किया है और अनेक पदक एवं पुरस्कार प्राप्त किये हैं। भवनशिल्पियों और कलाकारों के अन्तर्राष्ट्रीय

सम्मेलन की प्रतिनिधि, अखिल भारतीय महिला कलाकार संघ की उपाध्यक्ष, आर्ट सोसाइटी आफ इंडिया की अध्यक्ष और बाम्बे आर्ट सोसाइटी और आल इंडिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी की सदस्य हैं। यूरोप में वर्षों घूम-घूम कर इन्होंने कतिपय देशों की म्यूजियम एवं आर्ट गैलरियों का निरीक्षण किया है, साथ ही वहाँ की विशेषताओं का अनुसंधान किया है। बम्बई की **एंजला त्रिवेद** भी विगत पच्चीस-तीस वर्षों से कला-साधना में प्रवृत्त हैं। ये भारतीय ईसाई कलाकारों की प्रवर्तिका हैं और ईसा जीवन के विभिन्न प्रसंगों एवं पहलुओं को आँका है, खासकर पोर्ट्रेट-निर्माण में इन्होंने विशेषता प्राप्त की है। अखिल भारतीय कलाकार प्रदर्शनी में इन्हें स्वर्ण-पदक प्रदान किया गया। स्वर्गीय पायस पोप ने क्रिश्चियन आर्ट की महत्त्वपूर्ण सेवाओं के कारण इन्हें गोल्ड क्राम भेंट किया। भारत में तो इन्होंने व्यापक दौरा किया ही है, यू० एस० ए०, साउथ अमेरिका, वाशिंगटन, फ़िलडेल्फिया, क्लीवलैंड और यूरोपीय देशों का इन्होंने भ्रमण किया और अपनी प्रदर्शनियाँ आयोजित की। लंदन, रोम और ब्रूसेल्स की प्रदर्शनियों में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। बम्बई की एक और कलाकार **शिरीन जाल विरजी** मूर्तिकार हैं और इन्होंने साउथ केंसिंगटन, लंदन के रायल कालेज आफ आर्ट में प्रशिक्षण लिया। तत्पश्चात् रोम में अध्ययन के लिए इटली सरकार से इन्हें छात्रवृत्ति प्राप्त हुई। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी के अलावा अनेक देशी-विदेशी कला प्रदर्शनियों में भाग ले चुकी हैं। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके कई चित्र सुरक्षित हैं।

पिल्लू पोचखानवाला—ख्याति प्राप्त मूर्तिकार हैं। हेनरी मूर के प्रभाव के कारण इनका 'टेक्सचर' और अमूर्तीकरण का तौर तरीका सर्वथा निजी है। लोहे की छड़ और चटाई के संयोग से इन्होंने कुछ मूर्त्तियाँ गढ़ी हैं। टूटी-फूटी सतह और रिक्तियों को भरने का इनका अपना ढंग है जो प्रभाववाद के निकट है और निर्माण-प्रक्रिया की सशक्तता का द्योतक है।

स्टैला ब्राउन ने लंदन के रायल कालेज आफ आर्ट में प्रशिक्षण लिया, किन्तु ये १९३४ से भारत में बसकर कला-साधना में प्रवृत्त हैं। विदेशी महिला होने के बावजूद यहाँ की मिट्टी और लोगों से इन्हें लगाव है। इन्होंने भारतीय दृश्यांकनों को प्रस्तुत किया है। कलकत्ता में इन्होंने व्यक्तिक प्रदर्शनी आयोजित की। इसके अतिरिक्त दूसरे देशों की प्रदर्शनियों में भी इन्होंने भाग लिया है। नई

दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके कई चित्र सुरक्षित हैं। कलकत्ता की **करुणा साहा** भी एक अच्छी चित्रकार और ग्राफिक आर्टिस्ट हैं। उद्योग प्रदर्शनी, एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स तथा अन्य कई प्रदर्शनियों में इन्हें पुरस्कार प्राप्त हुए हैं। **दुर्गालाल** काफी अर्से से लंदन में रह रही हैं। ये स्थानीय आर्ट सोसाइटी की सदस्य हैं। दिल्ली-मद्रास के अलावा लंदन व पेरिस में भी कला प्रदर्शनी कर चुकी हैं। **अनीतादास** मूर्त्तिकार हैं और क्राफ्ट्स में भी प्रशिक्षण लिया है। आजकल पटना के गवर्नमेंट स्कूल आफ आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स के शिल्प कक्ष में प्राध्यापिका है। शिल्प कला परिषद्, अखिल भारतीय मूर्त्तिकार प्रदर्शनी, नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट तथा उद्योग प्रदर्शनी में ये पुरस्कृत हो चुकी हैं। पटना नगरपालिका द्वारा स्वर्णपदक प्रदान किया गया है।

ऊषारानी हूजा मूर्त्तिकार हैं और दिल्ली पालिटेकनीक में शिक्षा समाप्त कर ये लंदन के रीजेंट स्ट्रीट पालिटेकनीक में भी अध्ययन करती रहीं। यू० के० और यूरोप में इन्होंने स्टडी टूर किया है, पाश्चात्य प्रणालियों को हृदयंगम कर उनकी सूक्ष्मताओं में पैठी हैं। भारतीय औद्योगिक मेला और १९५८ की भारत प्रदर्शनी के लिए इन्होंने मूर्त्तियाँ तैयार की। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी, आल इण्डिया फाइन आर्ट्स एण्ड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में इन्होंने भाग लिया है। मेरठ की कलाकार **प्रभा पंवार** ने शांति निकेतन से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। व्यावसायिक कलाकार के बतौर ये क्राफ्ट्स में भी कार्य कर रही हैं। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा लखनऊ और ग्वालियर की अखिल भारतीय कला प्रदर्शनी, साथ ही अन्य कतिपय समसामयिक प्रदर्शनियों एवं ग्रुप शो में ये भाग ले चुकी हैं। ग्वालियर की गवर्नमेंट गैलरी और नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इनके चित्र सुरक्षित हैं।

सोनीपत की सुप्रसिद्ध मूर्त्तिकार **हरभजन संधू** कांस्य प्रतिमाओं के निर्माण में दक्ष हैं। भारत सरकार की छात्रवृत्ति पर इन्होंने चित्रकला एवं मूर्त्ति-शिल्प की बारीकियों का अध्ययन किया। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में ये भाग लेती रहती हैं। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है। अमृतसर की **मोहिन्दर कौर** ने पालिटेकनीक से फाइन आर्ट्स में डिप्लोमा लिया। दिल्ली शिल्पी चक्र, अमृतसर और कलकत्ता की इंडियन एकेडेमी आफ फाइन आर्ट्स तथा अन्य समसामयिक प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुकी हैं। दिल्ली शिल्पी चक्र की ये सदस्य हैं और

आजकल दिल्ली में अध्यापन कार्य कर रही हैं।

महाराष्ट्र की कलाकारों में **विमल गोडबोले** एक ख्याति प्राप्त चित्रकार हैं। कलकत्ता, बम्बई, पूना, शिमला, दिल्ली और भारत के अन्यान्य कला-केन्द्रों में आयोजित प्रदर्शनियों में भाग ले चुकी हैं और इन्हें पुरस्कार एवं पदक प्राप्त हुए हैं। बम्बई में इनकी निजी प्रदर्शनी भी हुई है। बाम्बे आर्ट सोसाइटी, आर्ट सोसाइटी आफ इण्डिया और अखिल भारतीय महिला कलाकार एसोसिएशन की सदस्य हैं। महाराष्ट्र की दूसरी कलाकार **प्रभा डोंगरे** हैं जिन्होंने बड़ौदा विश्व-विद्यालय से चित्रकला में प्रशिक्षण प्राप्त किया है। राष्ट्रीय कला प्रदर्शनी तथा अन्य कतिपय प्रमुख प्रदर्शनियों में ये भाग ले चुकी हैं। नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट में इन्होंने प्रतिनिधित्व किया है।

अहमदाबाद की **सावित्री बेन इन्द्रजीत पारीख** कला की एकान्त साधिका हैं जिन्होंने अपने आवास में ही 'अनन्त कला' नामक कलाकक्ष स्थापित किया है जहाँ इन्होंने सेंकड़ों-हज़ारों कृतियाँ सृष्ट की और जो दर्शकों का प्रेरणा स्रोत है। पं० नेहरू, डॉ० राधाकृष्णन, डा० जाकिर हुसेन, डा० मुल्कराज आनन्द, श्रीमती कैनेडी आदि गण्यमान्य व्यक्तियों ने इनके कार्य की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। नैसर्गिक, कम खर्चीली और सहज प्राप्य चीजें इनका माध्यम हैं। लकड़ी व मिट्टी से इन्होंने चित्र एवं मूर्त्तियाँ गढ़ी हैं तो बीज, जड़ें, सब्ज़ियाँ, फल के छिलके, गुठलियाँ, पत्ते, लताएँ, टहनियाँ, छाल, तने, बाँस, सींग, सीपियाँ, नदियों में पाए जाने वाले पत्थर के टुकड़े, खड़िया, चाक आदि सामान्य उपेक्षणीय वस्तुओं को इन्होंने आकर्षक कला-कृतियों में जैसे पक्षी, जानवर एवं मानव-आकृतियों में बदल किया है। इनका विश्वास है कि कोई भी चीज व्यर्थ नहीं है। हर वस्तु में सौन्दर्य छिपा हैं, केवल उसकी खोज, उसके भीतर पैठने की कमी है। राष्ट्रपति भवन और अहमदाबाद के राजभवन और श्रीमती कैनेडी के लिए इन्होंने स्वनिर्मित झूले भेंट किए हैं। लाल बहादुर शास्त्री, हितेन्द्र भाई देसाई, डॉ० जाकिर हुसेन को इन्होंने कलात्मक कुर्सियाँ भेंट की हैं। अपने अन्तरंग स्वप्नों को ये अनवरत अपनी साधना में साकार करने में संलग्न हैं।

मैसूर की कलाकारों में **जे० वी० सुभाषिणी देवी** लगभग पन्द्रह-बीस वर्षो से चित्रकार एवं मूर्त्तिकार के बतौर साधना कर रही हैं। मैसूर, बंगलौर, मद्रास. कलकत्ता, दिल्ली की प्रदर्शनियों में इन्होंने पुरस्कार एवं पदक प्राप्त किये हैं। इन्होंने मूर्त्तिशिल्प एवं भवन शिल्प के गंभीर अध्ययन के लिए भारत के

प्रमुख कला-केन्द्रों का भ्रमण किया। आल इंडिया फाइन आर्ट्स एंड क्राफ्ट्स सोसाइटी तथा मैसूर की फाइन आर्ट्स सोसाइटी की ये सदस्या हैं। **नीलम्मा** मैसूर की उत्साही कलाकार एवं मूर्तिकार हैं। मद्रास की **कमलादास गुप्ता** वरिष्ठ कलाकारों में से हैं। एर्नाकुलम, मद्रास और शांति निकेतन में इनकी शिक्षा सम्पन्न हुई। कलकत्ता ग्रुप की संस्थापक सदस्यों में से हैं और नई दिल्ली की नेशनल गैलरी आफ माडर्न आर्ट की क्यूरेटर हैं। हैदराबाद की कलाकार **विजय लक्ष्मी** भी ख्यातिप्राप्त कलाकार हैं। उदीयमान प्रतिभा की कलाकारों में कलकत्ता की **माया राय, अणिमा मुखर्जी, नीलिमा दे, गायत्री दत्त, सरस्वती घटक,** बम्बई की **अरुणा मोदक, मालिनी कोठारे, पिरो कोठारे, डी० आर० ढोंडी, एस० डब्ल्यू पठारे, कुमुदिनी चेम्बूरकर, डी० एम० झंघियानी, एस० एस० आनन्दकर, इन्दुमती कारेकर, सुधा सावे, कु० गुप्ते,** लखनऊ की **कामिनी साहनी** और **प्रभा दत्त** इलाहाबाद की **रोमा मुखर्जी** और दिल्ली की **गौरी कांजीलाल, कनक रत्नम, स्वर्ण कुमारी, अरुणादास, सुरैया तैयबजी, कुन्ती नांगिआ, निर्मला माथुर, मीना आयंगर, प्रोमिला, गीताकपूर, केतकीसेन, प्रीति अग्रवाल** आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं जो विभिन्न दिशाओं में प्रयोग कर रही हैं।

इधर 'बाटिक' एक ऐसा कला-प्रयोग है जो दक्षिण-पूर्वी एशिया खासकर इंडोनेशिया की देन है, यद्यपि कुछ इतिहासकारों के अनुसार प्राचीन काल में भारत ही इसका मल उत्पत्ति केन्द्र था। इस लुप्तप्राय कला को सर्वप्रथम पुनर्जीवित करने का श्रेय टैगोर की पुत्र वधू **प्रतिमा देवी** और पुत्री **गौरी भांज** को है, जिन्होंने शांतिनिकेतन में बाटिक टेकनीक को विकसित किया। तत्पश्चात् १९६१ में सुप्रसिद्ध कलाकार **ज्योतिरिन्द्र राय** ने बम्बई में स्कूल ऑफ बाटिक पेंटिंग की स्थापना की जिसमें इनकी शिष्याओं में—कुसुम मेहता, सुरुचि चन्द, बिन्दु झावेरी, यशस्विनि मनिआर, कालिन्दी दलाल, जसुमति पटेल, पामा कपाडिआ, गीता खिमजी, प्रणयिनी मुंशी, शारदा आचार्या, सरला कामदार आदि नारी कलाकारों का एक बड़ा ग्रुप कार्य कर रहा है। यह उल्लेखनीय है कि इनकी जिज्ञासु एवं सृजनशील प्रवृत्तियाँ उत्तरोत्तर उत्कर्ष का पथ प्रशस्त कर रही हैं।

बाल कलाकार

'बालक की छोटी अवस्था उपेक्षा की वस्तु नहीं प्रत्युत् उसका अपना एक विशिष्ट व्यक्तित्व है। उसकी आवश्यकताएँ अपनी एक पृथक् सत्ता रखती हैं और उसमें बालक की अन्तश्चेतना एवं मनोबुद्धि अन्तर्निहित रहती है।'

उपर्युक्त शब्द हैं रूस के महान् दार्शनिक रूबी के, जिन्होंने कि सर्वप्रथम बच्चे में एक पृथक् व्यक्तित्व की कल्पना की थी। निःसन्देह, बालक का जीवन, आचार-विचार, कल्पना एवं चिंतन शक्ति एक अपनी निज की विशेषता लिये हुए होती है। जीवन के प्रति, जगत् के प्रति, प्रकृति के रहस्यलोक के प्रति उसकी बुद्धि सदैव सजग एवं क्रियाशील रहती है। वह एक ऐसा सूक्ष्मदर्शी पर्यवेक्षक है जो बाहरी वस्तुओं का प्रतिबिम्ब अपने हृदय-दर्पण पर उतारता

'चिया'
(चिड़िया)

अमिय :
(उम्र ढाई वर्ष)

चलता है और निजी मानसिक संश्लेषण द्वारा परिपार्श्विक परिस्थितियों को अपनी बोध क्षमता द्वारा ग्रहण करता है। उसके गोपन मन के कोने में न जाने कौन उसके अंतर्प्राणों के अलक्ष्य तार झनझना जाता है जो उसे रूप-रस-गान-गंध-स्पर्श के माधुर्य रस से ओतप्रोत कर देता है। वस्तुतः उसकी मानसिक थाह ले सकना कठिन है। अतीत की धुंधली स्मृतियाँ, वर्तमान की सुखद याद, अपने छोटे से व्यक्तित्व के प्रति ध्यान आकर्षित करने की उसकी उत्कट

अभिलाषा, नये-नये माधुर्य-क्षेत्रों और रूपाकर्षणों के प्रति उसकी निरपेक्ष जागरूकता, आत्मा की तल्लीनता और अन्तश्चेतना में खो जाने की उसकी सहजात वृत्ति तथा क्रीड़ा-कौतुक का बेहद शौक़ीन होने के कारण आनन्दोल्लास की भव्यता में उसका मन इतना अभिभूत रहता है कि उसकी उत्सुकता, उसकी उत्कंठा का उद्दाम ज्वार दब नहीं पाता। उसके मन का समस्त व्यापार एक आत्मस्थ विन्दु पर केन्द्रित हो जाता है, चतुर्दिक् वातावरण की उल्लासपूर्ण रूपच्छटा से आनन्द की लहरियाँ उठ कर उसके उत्फुल्ल मन को गुदगुदा देती हैं और रंगीन कल्पनाएँ जीवन में प्राण रस का संचार करती हैं, जिससे कि

पेम (प्रेम)

(**अमिय** द्वारा अपने खिलाने वाले छोटे नौकर की परिकल्पना)

उसमें अनायास ही अभिव्यक्ति की भावना पैदा होती है। वह शनैः-शनैः अपनी उद्दाम कल्पना शक्ति के सहारे हाथ-पाँव हिलाकर अथवा अस्फुट शब्दों द्वारा या सीधी-तिरछी रेखाओं की सहायता से अपनी अतरंग भावनाओं को प्रकट करने की चेष्टा करता है और इसी संघर्ष, इसी मानसिक ऊहापोह में अन्तरिक जिज्ञासा अत्यन्त प्रबल हो उठती है तो उसमें अभिव्यक्ति की इच्छा उत्पन्न

होती है। कभी-कभी बच्चों द्वारा निर्मित चित्र इतने विचित्र एवं महत्त्वपूर्ण होते हैं कि वह अपनी बुद्धि के अनुसार अपने मनोभावों को बहुत सुन्दर ढंग से व्यक्त करता है। कभी-कभी वह वाणी की अपेक्षा चित्रों द्वारा अपने मनो-भाव प्रकट करने में अधिक सफल होता है।

बालकों की कला-प्रेरणा के स्रोत बहुमुखी हैं। अपनी आस-पास की बिखरी वस्तुओं से वह सबसे पहले प्रभावित होता है और उनके आकार स्वयं निश्चित कर लेता है। बड़े—जिसे व्यर्थ अथवा अर्थहीन समझते हैं बच्चे की दृष्टि में उसमें कितने ही अर्थ छिपे हैं। उनकी कला की अपनी निजी विशेषता होती है, जो बड़ों की कला से सर्वथा भिन्न कोटि की है। इसके अतिरिक्त बाल-कला की भिन्न-भिन्न प्रणालियाँ होती हैं। सब में एक ही नियम अथवा उपनियम लागू नहीं होते। प्राचीन काल की बाल-कला आधुनिक समय के सभ्य बालकों की कला से बहुत भिन्न है, तथापि उन दोनों प्रणालियों में एक विशिष्ट कला-सौन्दर्य का दर्शन होता है जो आश्चर्यजनक एवं कौतूहलपूर्ण है।

निर्विवाद है कि प्रारम्भ से ही बच्चे पर चतुर्दिक् वातावरण का प्रभाव पड़ता है। बहुत छुटपन से ही उसकी प्रवृत्तियाँ अत्यन्त सजग एवं सचेष्ट रहती हैं और वह अपने आस-पास की वस्तुओं को बहुत से ग़ौर देखता व सुनता है। बालक को जिस प्रकार बोलने का शौक़ होता है, उसी प्रकार कागज़ पर टेढ़ा मेढ़ा आँकने का भी। ज्यों-ज्यों उसके अस्फुट शब्द क्रमशः वाणी का रूप धारण करते जाते हैं, उसी प्रकार उसके द्वारा खींची गई अस्पष्ट रेखाएँ चित्र में बदलती जाती हैं। ये दोनों प्रकार उसकी आत्माभिव्यक्ति के साधन हैं। बोलने की भाँति लिखना भी उसकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है। कभी-कभी वह अपनी अनुभूतियों को चित्रों द्वारा बड़े विचित्र ढंग से व्यक्त करता है। कारण न तो वह सादृश्य की पर्वाह करता है और न परिप्रेक्षण व निर्माण-प्रक्रिया की। विषय-चयन, रेखांकन व रंग भरने में भी उसे कोई हिचकिचाहट महसूस नहीं होती।

अपने आत्म-सुख के लिए वह लिखता और चित्र बनाता है। कभी-कभी वह अपने मनोभाव उस व्यक्ति पर भी व्यक्त कर देना चाहता है जो अत्यन्त प्रेम और सहानुभूतिपूर्वक उसकी बातें सुनने व समझने के लिए उत्सुक रहते हैं, अथवा माता-पिता या अपने शिक्षक से भी वह भावों का आदान-प्रदान और

प्रेम की प्रत्याशा रखता है, किन्तु प्रायः उसे बदले में उपेक्षा ही मिलती है और कभी-कभी उस पर कठोर प्रहार भी किये जाते हैं। माता-पिता और शिक्षकों के घृणात्मक व्यंग और रुक्ष व्यवहार बच्चों की कोमल भावनाओं को बुरी तरह कुचल देने में सहायक होते हैं तथा उनके हृदय पर गहरा आघात करते हैं।

बालकों के मानसिक विकास की क्रमगत सीढ़ियाँ हैं और उनके दृष्टिकोण और आत्माभिव्यक्ति की शक्ति भी उनकी अवस्थानुसार उत्तरोत्तर विकसित होती है। उनका विकास स्वाभाविक रूप से निश्चित समय के भीतर स्वतः
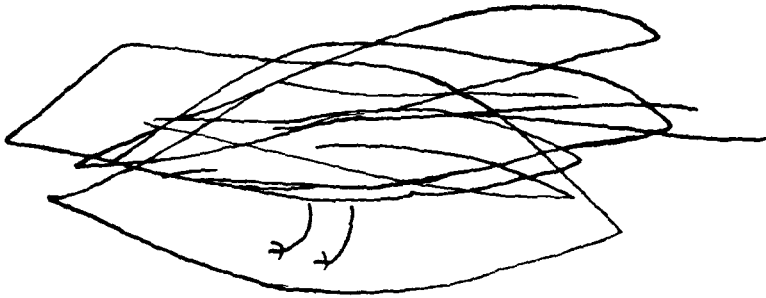
हवाई जहाज

(अमिय का जमीन पर चाबी से रेंगने वाला एक खिलौना)

ही होता है और उसमें किसी प्रकार की बनावट नहीं होती। चूँकि बच्चे में प्रारम्भ से ही चिन्तन एवं कल्पना शक्ति होती है, अतएव वह प्राप्य साधनों द्वारा निरन्तर इस बात की चेष्टा-रत रहता है कि किस प्रकार वह अपने मनोभावों को दूसरों पर प्रकट करे। बस, यही बालक की स्वतन्त्र अभिव्यक्ति की भावना तथा बिना सिखाए-पढ़ाए रंग-रूप की कल्पना करके चित्र बनाने की पद्धति बालकला है।

बच्चा अपनी दुनिया का निर्माण अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे स्वयमेव करता है। उसका मोर वास्तविक दुनिया के मोर से भिन्न है, परवाह नहीं अगर उसकी चिड़िया के पंख नहीं हैं या पैरों का अनुपात दुरुस्त नहीं हैं। वह प्रत्येक वस्तु की दूसरे रूप में ही कल्पना करता है। उसके सोचने-समझने का

ढंग निराला है। उसकी सरल बाल-क्रीड़ा में जो आकर्षण है, जो सहज विलक्षणता है उसमें बड़ों की चिन्तन प्रक्रिया से काफ़ी अन्तर है।

बच्चों के चित्र जो वस्तुओं के असली प्रतिरूप न होकर उनका दिग्दर्शन मात्र कराते हैं इसका कारण है बच्चे अपनी कल्पना-शक्ति के बलबूते पर दृश्य वस्तुओं की संकेतात्मक रेखाएँ-सी आँकने का प्रयास करते हैं। एक रहस्यात्मक ढंग से वे अंतराल में घुस कर अपनी बुद्धि के अनुसार वस्तुओं का रंग-रूप स्थिर कर लेते हैं और इसी के अनुसार कार्य करते हैं। यही कारण है कि उनके चित्र भावात्मक दुरूहता लिये नहीं होते।
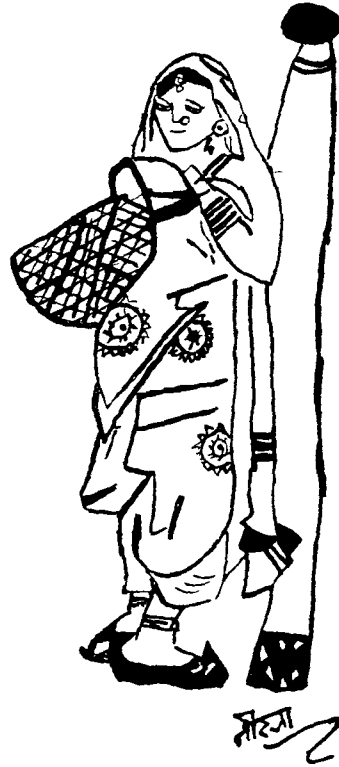
बनावट, आकार एवं रंग रूप की चमक-दमक में बच्चों के चित्र अपना सानी नहीं रखते। आकार की समता, रेखाओं की सुनिश्चित स्थिति और ठीक निर्माण की भावना का बालक के लिए कोई प्रतिबन्ध नहीं है। दृश्य वस्तु की अनुपस्थिति में भी वे उसकी रूप-रेखा की कल्पना कर लेते हैं। त्रिकोण वस्तु के प्रदर्शन की समस्या को बच्चे द्विकोण स्थिति में ही इस खूबी, योग्यता और सफाई से हल करते हैं कि बड़ों को उनके रचना-चातुर्य पर दंग रह जाना पड़ता है।

बाजार की ओर (उम्र १२ वर्ष)

बच्चे अपने चित्रों में स्थान की स्वाभाविक स्थिति अति शीघ्र ही बना लेते हैं। कभी-कभी बच्चों का रंग भरना और रेखाओं का ठीक-ठीक विभाजन बहुत ही संतोषजनक और विस्मयकारी होता है।

मौजूदा युग में बाल शिक्षा की भाँति बाल चित्रण का महत्त्व भी बढ़ता जा रहा है, क्योंकि कृत्रिम बन्धनों एवं मिथ्याचार से परे कोई ऐसा माध्यम होना चाहिए जो उसके निजत्व को व्यक्त कर सके, साथ ही उसकी रचनात्मक शक्ति को उद्बुद्ध कर सके। बच्चे के मन की कल्पित दुनिया में हर क्रिया एक दूसरी से जुड़ी है। वह काम की अपेक्षा खेल को अधिक महत्त्व देता है, अतः कला चित्रण को उसके लिए पृथक् विषय निर्दिष्ट न कर उसके अन्य कार्यकलापों से जोड़ देना चाहिए।

मुधुलिका (उम्र १० वर्ष)

आयु के अनुसार बच्चे की तीन मानसिक स्थितियाँ हैं—एक तो वह जब उस पर किसी वस्तु की छाया भर पड़ती है, उसमें पहचान या विश्लेषण क्षमता नहीं होती, दूसरी वह जब उसमें पर्यवेक्षण बुद्धि जगती है और तीसरी जब वह असल की नकल में रुचि लेता है। तीनों अवस्थाओं में उससे छेड़छाड़ नहीं करनी चाहिए, न ही उसे वैज्ञानिक प्रशिक्षण देने की चेष्टा करनी चाहिए। कागज़, पेंसिल, क्रेयन, रंग की छूट देने से उसकी रुचि का सहज ही अनुमान किया जा सकता है। हाँ—वहीं दख़ल देनी चाहिए जहाँ बच्चा भटका हुआ

हो या उसके दिमाग में कोई चीज धुँधली, अस्पष्ट और भ्रामक हो अथवा वह किसी ऐसी चीज पर अड़ा हो कि उससे आगे कुछ सूझ न पड़ रहा हो। वस्तुत: उसमें कलात्मक एवं विश्लेषक बुद्धि दोनों छिपी हैं। उसके मानसिक परिवर्त्तनों के दौरान बड़ी सावधानी बरतने की आवश्यकता है।

विश्व भर के बच्चों का अपने विचार एवं मनोभाव प्रकट करने का प्राय: एक सा ही तरीका है। बालकला की प्रणाली भी समस्त देशों में लगभग समान रूप से मिलती है। हर वर्ष शंकर वीकली प्रतियोगिताओं द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि सभी बच्चे कला के माध्यम द्वारा प्राय: एक से ही विचार, भाव, अनुभूतियाँ व्यक्त करते हैं। नि:सन्देह, बाल-कला ही एक ऐसी कला है, जो एकरूपता का दावा कर सकती है। वह स्वभावत: अनूठी, सरल, अकृत्रिम एवं सीधी-सादी है।

अकबर के दरबार में—वीरेश्वर सेन